Vinay Patrika
OF
GOSWAMI TULSIDASA
Commentary by
Baijnath Kur

भूमिका ।
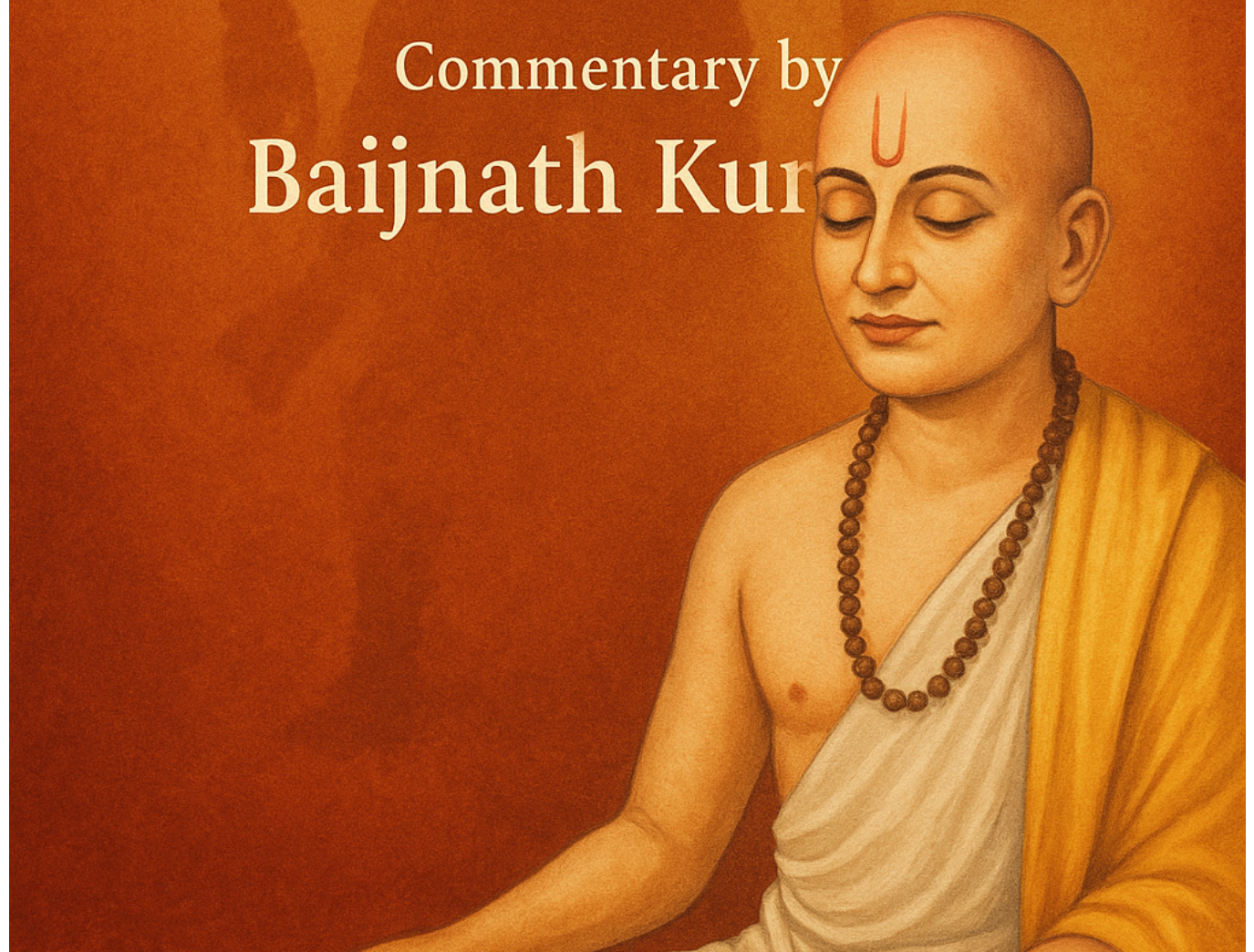
साकेते कल्पमूले वसुदलकमले रत्नसिंहासनस्थं सर्वालङ्कारयुक्तं जलधररुचिरं रुग्युतं पीतवस्त्रैः।सीताया वामभागे धनुशरसहितंब्रह्मविश्वेशवन्द्यमीशानां पारमीशं स्वजनपरिवृतं रामचन्द्रं स्मरामि १ ॥ सवैया ॥ कोश अलंकृत व्याकरणार्थ विचारद ज्ञान सुबुद्धि भलीके । नेम यमासन ध्यान विवेक विकासकहैं हृदि कंजकलीके ॥ रामस्वरूप उपासक दास प्रकाशक पावन भक्ति गलीके । वैजसुनाथ पुटाञ्जलिकै पद वन्दत श्रीमिथिलेशललीके २ ॥ दो० ॥ जनकलली श्रीजानकी, दशरथसुत रघुवीर । दोउ उदार कुलवर रहे, हरत सुदीनन पीर ३ बैजनाथ तव शरणहैं, धरहु दया करि हाथ । करसम्पुट वन्दन करौं, चरणकमल धरिमाथ ४॥ कवित्त ॥ शास्त्र श्रुति संहिता रहस्य काव्य नाटकादि भाष्य सपुराण गूढ़ भावन प्रकाशकार। विद्या बुद्धि शील शान्ति समता विराग तोष सत्य शौच दया दान दायक सुधर्मसार ॥ यम नेम न्यास ध्यान धारणा समाधि ज्ञान भावना भजन प्रेम भक्तिके करनहार । पांय धरिमाथ पुटहाथ वैजनाथ नित कृपावारिधर गुरु वन्दतहौं वारवार ५ ॥ दो० ॥ चरणकमल गुरुदेव के, वन्दौं वारंवार । विनयपत्रिका सिन्धुते, वेगि कीजिये पार ६ स्वामी तुलसीदास पद, शिर धरि करौं प्रणाम । जाकी वाणी गानते, सब पूरण मन काम ७ रामदास रक्षक सदा, हनुमत पद शिर नाय। जाकी कृपाकटाक्षते, रामतत्त्व दरशाय ८ गुरु सियवल्लभ शरण कहि, वैजनाथ पितु धाम । रसिकलता सियकल्पतरु, सेवत आठौ याम ६ बोहित सियवरकी कृपा, गुरुकरुणा पतवार । तुलसी कृपा सुपवन यदि, मैं मतिमन्द गँवार १० अगम तरेउ गीतावली कवितावलि खरधार । घोरधार शतसतिका, मानससिन्धु अपार ११ स्वइ जहाज केवट स्वई, पवन स्वई सुखसार। विनयपत्रिका अगम म्वहिं, सुगम करहिंगे पार १२ ॥ छन्द ॥ रसवेद अंक शशि मार्ग शुक्ल सातैं वासव गुरु कर्क पीन। गुरुकृपा पाइ वल वैजनाथ शुभ विनय प्रदीपक चहत कीन १३॥ दो०॥कीरति सुयश प्रताप गुण,प्रभुके गावत वेद । लक्षणसहित उदाहरण,वरणहुँ सबके भेद १४ होत जु अस्तुति दानते, कीरति ताहि बखान । दीनन जाते दान दैं, गुरुजन करि सनमान १५ धर्म नीति वल वाहुते प्रकटत यशको थोक । वाणनते जीते वली, सत्याननते लोक १६ शत्रु डरै सुनि कीर्ति यश,ताको नाम प्रताप । खग सुकण्ठ खर बालि सुनि, डरे निशाचर आप १७ चाहत व्यापक वशकरन, जग प्रशंस गुण सोइ । विभु प्रेरक मोहन शरण पाल शीलनिधि होइ १८ तीनि भांति लीला सगुण,गायक चारि विधान । मागध वन्दी सूत अरु, अर्थी चौथ प्रमान १६ प्रकृतमयी माधुर्य है, सामरस्ति ऐश्वर्य । मिश्रित लीला तीसरी, मिलि ऐश्वर्य मधुर्य २० विधि हरि हर वन्दित सदा, जानि सकत नहिं भेद । प्रभु लीला ऐश्वर्य ज्यहि, नेति नेति कह वेद २१ श्याम सुभग दशरथसुवन, शील सनेह निधान । इति लीला माधुर्य है, रघुवर सहज सुजान २२ परतरपर परब्रह्म प्रभु, ज्यहि गति जान न कोइ । महि विचरत जन हेतु स्वइ, मिश्रित लीला सोइ २३ मागध मधुरी कीर्ति को, ऐश्वर्य वन्दि प्रताप । पौराणिक मिश्रित यशै, सब गुण स्वारथि आप २४ त्रैलीला कीर्ति सुयश गुणगण सहित प्रताप । सबकर वर्णन जासु में, रामचरित त्यहिथाप २५ ॥ अथ वार्त्तिक ॥ श्रीरामचरित के प्रकाश ते अपने उर को मोहतम मिटिबे हेतु प्रथम गोसाईंजी पौराणिक भाव करि मानस रामायण वर्णन कीन्हे तामें कीर्ति यश प्रताप गुण त्रै भांति

लीला इत्यादि सब हैं पुनः शरणागति पर मन दृढ़ होने हेतु वन्दीभाव करि प्रभुको प्रताप ऐश्वर्य लीला में कवितावली वर्णन कीन्हे पुनः प्रेमानन्द वर्धन हेतु मागधभाव करि गीतावली में माधुर्यलीला अरु कीर्ति गान कीन्हे पुनः जब कलियुगने भय देखावा अर्थात् एक हत्यार ने श्रीरामनाम उच्चारण करि भिक्षा मांगा सो सुनि गोसाईंजीने कहा कि तू रामनाम उच्चारण करता पुनः हत्यारा बना है जो करोरिन जन्म के महापाप होवैं तौ रामनाम अग्निके सम्मुख सब तूलसम हैं भाव एक वार राम ऐसा नाम मुखते निसरै तौ सब पाप भस्म ह्वैजाते हैं अरु तू वारंवार रामनाम उच्चारण करता है अब तेरे हत्या कहां रही तू मेरे समीप आइ बैठ यह सुनि सब काशी के पण्डितलोग विवाद कीन्हे तापर गोसाईंजी पुराणनकी प्रमाण दीन्हे यथा पद्मपुराणे ॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनामपरात्परम् । शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥ विष्णुपुराणे ॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्यते सर्वपातकैः । पुमान्विमुच्यते सद्यस्सिंहत्रस्तमृगैरिव ॥ आदिपुराणे ॥ श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि । तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥ ब्रह्मवैवर्ते ॥ कथंचिन्नाम संकीर्त्य भक्त्या वा भक्तिवर्जिताः । दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत् । तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं रामनाम दहेदघम् ॥ इत्यादि बहुत प्रमाणैं दीन्हे परन्तु किसीने माना नहीं तब वाके निष्पाप होनेकी जो जो परीक्षा लोगोंने कहा सो सब पूरी करि वाकी शुद्धता देखाइ दीन्हे इस बात को देखि सुनिकै विश्वास मानि हजारन मनुष्य रामनाम जपनेलगे तब कलियुग ने कोप करि गोसाईंजी को प्रसिद्ध डाटा कि मेरी राज्य में तुम बाधक भये ताते तुमको चबाइ जाउँगो नाहीं इसको माफ़ूफ करौ सो भय मानि गोसाईंजी सब हाल हनुमान्‌जीसों कहे तब हनुमान्‌जी बोले कि निरपराध तुमको डाटा है तुम श्रीरघुनाथजीसों दादि हेतु विनयपत्रिका बनावउ तापर हम स्वामीको हुकुम कराइलेवैं तब कलियुगको दण्ड देसकैं काहेते समयको राजा है वाको यही काम है इत्यादि भक्तमाल में लिखा है इसहेतु गोसाईंजी स्वार्थी भावकरि विनयपत्रिका में गुणनको गानयुत प्रभुसों विनती करेहैं दास्यतामय शान्तरस की अधिकारता है नवधाभक्ति शरणागति हेतु है स्वार्थीभाव यथा ॥ कबहुँक कर कृपालु रघुनायक धरिहौ नाथ शीश मेरे ॥ स्वार्थी अधिकारी कहे यथा ॥ जाके चरण विरंचि सेय सिधि पाई शंकरहूं ॥ सातभूमिका में विनय कीन्हे प्रथम दीनता यथा ॥ क्यहि विधि देउँ नाथहि खोरि ॥ पुनः मानमर्षता ॥ काहेते हरि मोहिं बिसारे ॥ पुनः भयदर्श यथा ॥ राम कहत चलु ॥ पुनः भर्त्सन यथा ॥ ऐसी मूढ़ता या मनकी ॥ पुनः आश्वासन यथा ॥ ऐसे राम दीन हितकारी ॥ पुनः मनोराज ॥ कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ॥ पुनः विचारणा ॥ केशव कहि न जाइ का कहिये ॥ पुनः गुण यथा ॥ ऐसो को उदार जग माहीं ॥ इति उदारता ॥ पुनः ॥ जानत प्रीति रीति रघुराई ॥ इति सौहार्द ॥ पुनः ॥ दूसरो को दीनको दयाल ॥ इति दया ॥ पुनः ॥ सुनि सीतापति शील स्वभाऊ ॥ नवधाभक्ति यथा ॥ श्रवण कथा मुख नाम हृदय हरि शिर प्रणाम सेवाकरु अनुसरु ॥ हेतु यथा ॥ कस मन मूढ़ राम बिसराये ॥ शान्तरस यथा ॥ जो निज मन परिहरै विकार ॥ सिद्धान्त यथा ॥ हरिहि हरिता इत्यादि ॥

इति भूमिका समाप्ता ॥

अनुक्रमणिका।

इति।

श्रीगणेशाय नमः ॥

विनयपत्रिका सटीक ॥

दोहा ॥ सुखद जानकी जानकी, जासु जानकी पूरि ।
सुजन जानकी जानकी, कृपा सजीवन मूरि ॥
करि प्रणाम श्रीजानकी, चरण कमल उर राखि ।
ज्यहि तुलसी बानी सुगम, विनय प्रदीपक भाखि ॥

राग बिलावल ।

(१) गाइये गणपति जगवन्दन । शंकरसुवन भवानीनन्दन १
सिद्धिसदनगजवदनविनायक । कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक २
मोदकप्रिय मुदमंगलदाता । विद्यावारिधि बुद्धिविधाता ३
मांगत तुलसिदास करजोरे । बसहिं राम सिय मानस मोरे ४

टी० । इस ग्रन्थ में प्रथम गणेशजी के गुण गाये पुनः सूर्यन के पुनः शिव के पुनः भवानी इत्यादि क्रम किस हेतु बांधे ताको कारण यह है कि जहां कोऊ दादिहेतु राजद्वार को जात तहां प्रथम द्वारपालन को पूजत पुनः मंत्री मित्र बंधु सखादि सबको पूजि तब राजा को अर्जी देत तौ वाको कार्य सुलभ सिद्ध होत तथा जहां यंत्रराज पर सांगदेव सपरिवार प्रभु को पूजन लिखा है तहां द्वारदेवन में पूर्व गणेश की पूजा पुनः सूर्यनकी पुनः शिवकी इसी क्रम ते सबकी पूजा लिखी है यथा अगस्त्यसंहितायाम् ॥ पूजाविधानं वक्ष्यामि नारदाभिमतं च यत् । वाल्मीकाय मुनीन्द्राय द्वारपूजादिकं तथा ॥ आकर्णयमुनिश्रेष्ठ सर्वाभीष्टफलप्रदम् । श्रीरामद्वारपीठाङ्गं परिवारतया स्थिता ॥ ये सुरास्तानिह स्तौमि तन्मूलाः सिद्धयो यतः । वन्दे गणपतिं भानुं तिलकस्वामिनं शिवम् ॥ क्षेत्रपालं तथा धात्रीं विधातारमनन्तरम् । गृहाधीशं गृहं गङ्गां यमुनां कुलदेवताम् ॥ इत्यादि प्रथम द्वारपाल गणेशके गुण गाये पुनः सूर्यन के पुनः शिवके पुनः जगद्धात्री भवानी के पुनः गंगा यमुना पुनः क्षेत्रपाल काशीपुरी पुनः आपना अरु प्रभुको सुख विलास गृह जानि चित्रकूट को पुनः गृहाधीश अरु कुलदेवता जानि हनुमानजी के इति अंगदेव पुनः प्रभु को परिवार लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न के पुनः जानकीजी के इत्यादि सबके गुण गाइ प्रार्थना करि तब प्रभु के गुण गाइ प्रार्थना कीन्हे इत्यादि हेतु यह

क्रम बांधे तहां जो स्वार्थीभाव ते जाके ढिग जात तब प्रथम वाके गुणन की अधिक प्रशंसाकरि दानी को प्रसन्नकरि वाके मन में उदारताकी उत्साह बढ़ाइ लेत तब प्रार्थना करत आपना मनोरथ कहत यह याचक स्वार्थीकी रीति है तथा इहां प्रभुके प्रथम द्वारपाल जानि श्रीगणेशजी के गुण गाइ प्रार्थना करत तिलक यथा श्रीगोसांईजी कहत कि हे मन! चित्त बुद्धि वैखरीवाणी द्वारा प्रकटहै गणेश जी के गुण गाइये तहां गुणको स्वरूप यथा ॥ दो० ॥ जगव्यापक जगवशकरण, जगत सराहत जाहि । जग चाहत ज्यहि त्यहि सुकवि, गुणगण कहिये ताहि ॥ अर्थात् शक्ति तेज वीर्य बल शौर्य धैर्य इत्यादि गुण जगत् देहधारिन के अंतर व्यापक होते हैं पुनः सुंदरता चातुर्यता नम्रता सौहार्द इत्यादि गुण जगत् को वश करनहारे होते हैं पुनः शील उदारता गंभीरता धर्म नीति क्षमा दया इत्यादि गुण परोपकारी हैं ताते इनको सब जगत् सराहना करत पुनः विद्याकुलीनता स्वतंत्रता आनंद ज्ञान इत्यादि गुण परिश्रम करि उत्पन्न होते हैं ताते इनको जगत् चाहना करत इत्यादि चारिभांति के गुण होते हैं इत्यादि हे गणेशजी! आपुके गुण गावत हौं सो सुनिये प्रथम आपु शिवके गणन के पतिहौ अर्थात् शिवके सेनापति हौ यह विभव है पुनः जगत्के वंदनहौ शुभकार्य के प्रारंभमें पूर्वहीं सब जगत् आपुको स्मरण करत भाव जगत्पूज्य यह ऐश्वर्य गुणहै पुनः जगके मंगलकर्ता यह उदारता गुण है अर्थात् याचकमात्रकी आश पूर्ण करना पुनः शंकरसुवन कल्याणकर्ता के पुत्रभाव शिव ऐसे उत्तम समर्थ लोककल्याणकर्ता ऐसे शंकर आपुके पिता हैं पुनः भवानी के नंदन अर्थात् पार्वती के आनंदवर्धन रूप पुत्रहौ अर्थात् भव शिव तिनकी प्रियपत्नी पतिव्रता पुनः लोकरक्षा पर जिनकी सदा कृपादृष्टि है सोई भवानी स्वतन मैलकरि अपनी शक्तिते तुमको उत्पन्न कियाहै इति भवानीनंदन भाव सबला शक्ति कृपाला पतिव्रता ऐसी उत्तम आपुकी माता है इत्यादि माता पिता दोऊ उत्तम समर्थ हैं या में उत्तमता कुलीनता दोऊ गुण हैं इहां सुवन नंदन दोऊ पद एक अर्थ ते यद्यपि पुनरुक्त देखात परंतु माताके गुण अरु पिता के गुण न्यारे न्यारे अर्थको भूषित करत ताते पुनरुक्त आपना दूषण नहीं प्रकाश करिसकत पुनः गणपति पद में दूषण आवता रहै कि शिव के गणनको स्वभाव तीक्ष्ण स्वरूप अमंगल है तिनके पति हैं तौ इनके आचरण वैसही होइँगे तहां जगवंदन ते मंगलीकता अरु माता पिताकी कृपालुताते स्वभाव की कृपालुता भूषित है १ पुनः सिद्धिसदन समग्र सिद्धिन के भरे मंदिरहौ भाव आपको स्मरण करतही सबको कार्य सिद्ध होत आपुकी कृपाते सब सिद्धी प्राप्त है सक्ती हैं इति शक्ति गुण है पुनः गजवदन हाथी कैसो मुखहै अर्थात् यथा सिद्धिन के मंदिरहौ तथा बड़ाभारी मुखरूप द्वार है भाव बड़े मुखवालेते बड़ा कार्य होताहै भाव बड़े वर के देनहारेहौ पुनः विनायक विघ्न यावत् हैं तिनके नायक स्वामीहौ अर्थात् जो आपुको स्मरण करत ताके निकट एकहू विघ्न नहीं आवते हैं पुनः सिद्धी बड़े क्लेशते मिलतीहै ताके सदन तौ कठोरस्वभाव चाहिये सो नहीं कृपासिंधु हौ स्वाभाविक सबकी रक्षा करते हौ पुनः गजवदन तौ कुरूपता चाही सो नहीं सर्वांग सुठौर बने ऐसा सुंदर आपुको स्वरूपहै पुनः विघ्ननके नायक तौ परअपकारता चाहिये सो नहीं परोपका-

रता उदारतादि सब लायकही २ पुनः मोदकप्रिय अर्थात् मीठी वस्तुकी रुचि जाको होतीहै सो सतोगुणी होताहै ताते जो लड्डू आपुको प्रियहै तौ सतोगुणी शीलमय आपुको स्वभाव है काहेते अर्थार्थीते मोदकमात्र पाइ प्रसन्न है मुद जो मानसी आनंद पुनः मंगल बाह्य उत्सव इत्यादि के दाता सहजही देतेहौ भाव लड्डूमात्र पाइ बड़ा मुदमंगल देतेहौ ऐसे सुलभ उदारहौ पुनः विद्यावारिधि विद्यारूप जल के भरे अगाधसमुद्र हौ पुनः बुद्धिको उपजावनहारे विधाता ब्रह्माहौ यह विद्या चातुर्यता गुण हैं ३ इत्यादि चतुर सुलभ उदार दानी जानि तुलसीदास कर हाथ जोरि आपुते मांगत सों कृपाकरि दीजिये कि श्रीरघुनंदन जानकी मेरे मानस मनमें बसहिं इति गणेशके गुणगानमात्र वाच्यार्थ है पुनः अर्थार्थ दर्शित भावार्थ गोसाईंजी कहत कि हे गणपति! आपु प्रभुके प्रथम द्वारपाल हैं अरु मैं कलियुगकी भयकरि भयातुर दादिहेतु आयाहौं सो मेरा हाल प्रभुसों गाइये बखानकरि विस्तार सहित सुनाइये काहेते आपु उदारहौ तौ तौ सब जगत् आपुको वंदना करता है पुनः जे लोककल्याण हेतु सदा राम यश प्रचार करते हैं ऐसे परोपकारी शिव पार्वती के पुत्र हौ तौ विशेष परोपकारी होउगे पुनः सिद्धिसदन भाव आपुको नाम लेतही कार्य सिद्ध होत तौ जो आपही जौन कार्य करोगे सो स्वाभाविकही सिद्ध होइगो पुनः गजवदन भाव बड़ी बात कहवेयोग्य बड़ाभारी आपुको मुख है पुनः विनायकभाव विघ्नन के स्वामीहौ जो कार्य करौगे तामें विघ्न निकट न आवैंगे पुनः कृपासिंधुहौ भाव जीवमात्र पालन को दृढ़ानुसंधान राखे हौ ऐसा सुंदर कोमल स्वभाव सब कार्य करवेलायक समर्थ हौ पुनः मोदकप्रिय भाव ऐसे सुलभ उदार हौ कि लड्डूमात्र पाइ प्रसन्न है मंगलमुद बड़ा पदार्थ देतेहौ सोई लड्डू मैं भोग लगावउँगो मेरा कार्य सिद्धकरौ पुनः विद्याभरे बुद्धि उपजावनहारे ऐसे चतुरहौ तौ मेरा हाल विधिपूर्वक कहिके प्रभुसों सुनाइये कि कलियुग को सतावाहुआ दादिवंत तुलसीदास हाथ जोरे मांगता है कि मेरी मानस रामायण में श्रीरघुनंदन जनकनंदनी सहित वासकरैं जामें श्रीरामनाम रामचरित प्रचार में कलियुग बाधा न करिसकै क्योंकि मोको डाटता है कि क्यों सुगम रामचरित प्रचार करते हौ कितौ माफ़ककरौ नातरु तुमको खाइजाउँगो इसहेतु मेरी दादि है ४॥

(२) दीनदयालु दिवाकर देवा। कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा १
हिमतमकरिकेहरिकरमाली। दहन दोष दुख दुरित रुजाली २
कोक कोकनद लोक प्रकाशी। तेज प्रताप रूप रस राशी ३
सारथिपंगु दिव्यरथगामी। हरिशंकरविधिमूरति स्वामी ४
वेद पुराण प्रकट यश जागै। तुलसी रामभक्ति वर मांगै ५

टी०। गणेशप्रथम द्वारपालद्वारा जब दरबारमें खबरि गुजरिगई स्वामीकी आज्ञा हैचुकी तब और अंग देवद्वारपालनते सई करावनेमात्र प्रयोजन रहा इसहेतु दूसरे द्वारपाल सूर्यन के गुणगाइ प्रार्थना करते हैं हे देव, दिवाकर अर्थात् अंधकार रात्री हरि स्वप्रकाशते दिनकरनेवाले! आपु दीननपर सदा दया राखतेहौ अर्थात् अंधकार सबको दुःखरूप है ताको मिटाइ चराचरको सुखी करतेहौ वे प्रयोजन परदुःख

मिटावना दया गुणको लक्षण यथा भगवद्गुणदर्पणे॥ दया दयावतां ज्ञेयं स्वार्थं तत्र न विद्यते॥ ऐसे दीनदयालु जानि सुर देवलोकवासी असुर दैत्य पातालवासी नर मृत्युलोकवासी मुनि सर्वत्रवासी इत्यादि जलांजलि प्रणाम पूजापाठादि सबै आपु की सेवा करते हैं भाव त्रिलोकपूज्य दीनदयालुहौ १ हिम पाला तम अंधकार अर्थात् पाला अरु अंधकार तेई करि नाम हाथी हैं ते संसार क्षेत्र में जीवरूप कृषी के नाशकर्ता हैं तिन हाथिनके नाश करिवेहेतु हरि नाम सिंहहौ सिंहके समूह नख दंत तिन करिकै हाथीको मारत इहां किरणैं तिनको माला समूह धारण किहेहौ अर्थात् किरणनको माला धारण किहे ताते करमाली हैं तिन किरणरूप नख दंतन करिकै हिम तमरूप हाथिनको मारि जगको सुखी राखतेहौ पुनः सतजीवहिंसादि महादोषनकरि कुष्ठ विस्फोटक नेत्रपीड़ा वा दरिद्र प्रियवियोगादि दुःख पुनः दुरित परहानि आदि साधारण पाप करि दाद्रु खाजु ज्वर संग्रहणी आदि रुजाली रोगनकी पांती इत्यादि सघन वनको दहन अर्थात् स्मरणमात्र दावानलसम भस्म करिदेते हौ भाव सूर्यनके स्मरणमात्र सब रोग नाश होते हैं यथा भविष्योत्तरे॥ आदित्यहृदये॥ विस्फोटककुष्ठानि मण्डलानि विचर्चिका। ये चान्ये दुष्टरोगाश्च ज्वरातीसारकादयः॥ जपमानस्य नश्यन्ति २ पुनः कोक जो चक्रवाक तिनको रात्री को स्त्री पुरुषको वियोग रहत भोरभये संयोग पावत पुनः कोकनद कमल सो रात्री को संपुटितरहत भोर प्रफुल्लितहोत पुनः लोकजीवौ रात्रीको निद्रा भयादि संकुचित रहते हैं ते सब प्रभात पाइ हर्षित ह्वै फैलि आपने आपने व्यापारमें लागते हैं इत्यादि चक्रवाकी अरु कमलन के विशेष सुखरूप प्रकाशक हौ पुनः स्वाभाविक तौ सबै जगको सुख प्रकाशकर्ताहौ पुनः तेज याको कही कि जो सेना सुभटादि विभव राखै तिनकी इच्छा न राखै केवल आपने बलप्रताप ते सबको पराजय करिदेवै पुनःकैसहू प्रतापी आवै ताकी दृष्टि सन्मुख न ह्वैसकै अरु प्रतापहू लोपह्वैजाय जिसको कोऊ सहि न सकै ताको तेज कही यथा भगवद्गुणदर्पणे॥ स्वाधीनानपेक्षत्वमन्योद्दीपनमित्यपि। आदित्यस्य प्रतापश्च सामन्ताग्निप्रदर्शनम्॥ परैरपिविभाव्यत्वं दर्शनादेव दर्शितम्। दुष्प्रेक्षत्वं च येन स्यात् तत्तेजः समुदाहृतम्॥ पुनःप्रताप यथा॥ दो०॥ जाकी कीरति सुयश सुनि, होत शत्रु उर ताप। जग डरात सब आपही, कहिये ताहि प्रताप॥ पुनः॥ विन भूषण भूषित जु तनु, रूप अनूपम गौर॥ उक्तं च॥ अङ्गानि भूषितान्येव निष्कायैश्च विभूषणैः। येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते॥ पुनः रस यथा फल अन्न पान ऊखआदि सब ओषधी इत्यादि सबकी राशि ढेरीहौ अर्थात् तेज आपु में ऐसा समूहहै जो कोऊ न सहिसकै न दृष्टि सन्मुख होइ सबको प्रताप लोप ह्वैजात केवल आपने बलते त्रिलोक विजय कीन्हेहौ पुनः कमलादि अनेकन को सुखद ताते कीरति त्रिलोकविजयी बलते यश ताको सुनि सब जग डरत पुनः प्रताप देखि शत्रुन के तापहोत अर्थात् पाला गलिजात अंधकार फाटिजात पुनः रूप ऐसा है कि विना भूषणै शोभामय देखातेहौ पुनः रसकी राशि ऐसे हौ कि जहां आपुकी किरणैं परत-तहँ सब रस उत्पन्नहोते हैं जहां छाया तहां अन्नादि कछु नहीं होतेहैं ३ पुनः आपु ऐसे दीनवंधु अनाथ के नाथहौ कि विना हाथन पावन के पंगुले अरुण को सारथी बनाये हौ तौ हांकता कैसे है तहां हांकने की जरूरत नहीं रथ दिव्य है

अर्थात् श्वेतवर्ण सभुजा महाबली सात घोड़े नहे हैं पुनः कनकजटित वज्रमणि हीरनते सब पंजर बना है सो प्रतिदिन नवीन होत जात यथा भविष्योत्तरे ॥ हरित-हयरथं दिवाकरं कनकमयं वज्रेण पञ्जरं प्रतिदिनमुदयं नवंनवम् ॥ इत्यादि दिव्यरथ पुनः गामी वेगवंत कैसाहै कि आधीपलकमें दुइबाढ़ि बाइससौयोजन जाताहै यथा॥ योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोस्तुते ॥ पुनः हे स्वामी! प्रभात तौ आपु ब्रह्माको रूप रहतेहौ अरु मध्याह्न में शिवरूप पुनः अस्त समय विष्णुरूप इति हरिशंकरविधिमूरति हौ यथा भविष्योत्तरे ॥ उदये ब्रह्मरूपस्तु मध्याह्ने तु महेश्वरः । अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रयोमूर्तिर्दिवाकरः ४ पुराणको श्लोक प्रसिद्ध लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु शिवरूप सूर्य है अरु वेद में गायत्री आदि ऋचन में प्रसिद्ध है कि सूर्यमण्डल परब्रह्मरूप है इत्यादि वेदन में अरु पुराणन में आपको यश जागतहै प्रकट सबको देखाता है भाव वेद पुराणद्वारा सब संसार जानता है जैसा पुरुषार्थ है ऐसे यशस्वी प्रतापी उदार दानी जानि मैं जो तुलसीदास हौं सो आपसों यह वर मांगत हौं कि श्रीरघुनाथजीकी भक्ति दीजिये अर्थात् आप प्रभुके दूसरे द्वारपाल अंगदेवहौ सो ऐसी सिफारश कीजिये जामें श्रीरघुनाथजी मोको सेवकाई में राखे रहैं जामें कलियुग बाधा न करिसके ५ ॥

राग धनाश्री ।

(३) को याचिये शम्भु तजि आन ।

दीनदयालु भक्तआरतिहर सब प्रकार समरथ भगवान १
कालकूट ज्वर जरत सुरासुर निज पन लागि कियो विष पान ।
दारुण दनुज जगत दुखदायक मारेउ त्रिपुर एकही बान २
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत सन्त श्रुति सकल पुरान ।
सो गति मरणकाल अपने पुर देत सदा शिव सबहि समान ३
सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारवतीपति परम सुजान ।
देहु कामरिपु रामचरण रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान ४

टी० । जब तीसरे द्वारपाल सबल समर्थ श्रीरामभक्तन में श्रेष्ठ सुलभ उदारदानी शिवजीको देखे तब हर्षिकै कहत कि श्रीरघुनाथजीकी भक्ति पाइबे हेतु शम्भु शिव जी को तजि आन दूसरा को ऐसा है जाको याचिये ताते शिवैजीसों याचिये कैसे हैं शिवजी दीनदयालु हैं अर्थात् दीनजननको दुःखित देखि बेप्रयोजनै वाको दुःख मिटाइ देते हैं इति दया गुण भरे हैं पुनः भक्तजननके आरति जो दुःख ताके हर कहे हरिलेनेवाले अर्थात् भक्तवत्सलतागुण भरे हैं पुनः ऐश्वर्य धर्म यश श्री वैराग्य मोक्षादि षडैश्वर्ययुत ताते सबप्रकार समर्थ भगवान् हैं १ जो ऊपर कहि आये तिनहीं गुणनकी प्रमाण के उदाहरण कहत यथा कैसे दीनदयालु हैं कि देखिये कालकूट ज्वर अर्थात् समुद्र मथनेते जो हलाहल विष निसरा रहै ताके ज्वालनकी ताप करिकै सुरासुर देवता दैत्य सबै जरेजातेरहैं इत्यादि सबको दीन दुःखित देखि निजपन लागि आपने दीनदयालुता प्रणको दृढ़ करनेहेतु उसी विषको पान करिलिये इति बेप्रयोजन परदुःख मिटाइदेना यही दीनदयालुता है पुनः भक्त आरति-

हर कैसे हैं कि दनुज दनुसों उत्पन्न भाव दनुको पुत्र त्रिपुरासुर जो दारुण कराल बली अजित विश्व संसारभरेको दुःखदेनहारा रहै कोऊ जीति न सका तब सब देव शिवकी शरण गये इति शरणागत भक्तनको दुःख मिटावनेहेतु त्रिपुरासुर को शिवजी एकही बाणते भस्म करिदीन्हे इति भक्तवत्सलता है २ पुनः सबप्रकार समर्थ कैसे हैं सो कहत कि ऐसे समर्थ हैं कि जो गति अगम जो मुक्ति पद को सामान्य जीवनकी गम्य नहीं कि कौनिहु उपायकरि कोऊ चलाजाइ सो नहीं जाय सकत पुनः जे लोकते विरक्त मननशील महामुनि हैं तिनको भी दुर्लभ बड़े दुःख करि मुक्तिपद लाभ होता है यही बात संतजन कहते हैं पुनः श्रुति वेद अरु भागवत पद्मादि सकल पुराणैं यही बात कहती हैं कि मुक्तिपद दुर्लभहै सोई गति मुक्तिपद कैसी सुलभ शिवजी किहे हैं कि आपने पुर काशीजी में मरणकाल मरतसमय श्रीरामनाम उपदेशकरि नर पशु पक्षी कीट पतंगादि सबही जीवनको समान एकही भांतिकी मुक्ति सदा देते हैं ऐसे समर्थ हैं यह बात श्रीरघुनाथजी सों शिवजी मांगि लिये हैं कि आपुको नाम सुनाइ काशीमें मैं सब जीवनको मुक्ति देउँगो यह वार्ता श्रीरामतापिनी उपनिषद् में प्रसिद्ध है ३ पुनः षडैश्वर्ययुत भगवान् काहेते हैं कि सेवाकरिबे में सुलभ हैं अर्थात् चारि अक्षत जल धतूर के फूल बेलदल इसी में प्रसन्न होते हैं कछु पकवान मिठाई द्रव्यादिकी जरूरत नहीं है पुनः प्रसन्न कैसे होते हैं सेवकके हेतु उदार कलपतरु यथा कलपवृक्ष तथा उदारदानी हैं समग्र मनोरथ पूरण करिदेते हैं काहेते जो पार्वती परमशक्ति सहजही जीवन पर दयादृष्टि राखे हैं तिनके पतिहैं पुनः परम सुजान अर्थात् पूजादि करते बने अथवा न बने ताको नहीं देखते हैं केवल वाको भाव देखि प्रसन्न होते हैं हे कामरिपु! भाव काम ऐसे बली समर्थ को क्रोधकरि भस्मकरि दीन्हेउ पुनः कृपानिधान कृपा गुण भरे स्थान हौ भाव जीवमात्र पालने को दृढ़ानुसंधान राखेहौ ऐसा जानि मइं याचता हौं सो रामचरण रति देहु अर्थात् कलियुग की भयकरि दादिहेतु आयाहौं सो ऐसी सिफारश कीजिये जासें श्रीरघुनाथजी चरणनकी सेवकाई में राखेरहैं ४॥

(४) दानी कहुँ शंकरसम नाहीं।

दीनदयालु दिबोई भावै याचक सदा सुहाहीं १
मारिकै मार थप्यो जग में जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुर को रीझि निवाजिबो कह्यो क्यों परत मोपाहीं २
योग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि मांगत सकुचाहीं।
वेद विदित तेहिं पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं ३
ईश उदार उमापति परिहरि अनत जे याचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ मांगने कबहुँ न पेट अघाहीं ४

टी०। शंकरसे कल्याणकर्ता शिवजीके समान उदारदानी तीनिहूं लोकन में कहूं नहीं है काहेते औरनको तो ऐसा स्वभाव है कि दानदेना आपना स्वार्थ लेना इत्यादि दोऊ भावते हैं ताते दिनौ राति याचकनको निकट आवना किसी

दानीको नहीं सोहाता है अरु शिवजी कैसे दीनदयालु हैं कि स्वार्थरहित प्रतिक्षण देयोई भावत ताते सदा याचक सोहात मांगनेवालेन को निकट आवना सदा प्रिय लागता है ताते इनके समान दूसरा दानी नहीं कहो है १ पुनः समर्थ कैसे हैं सो देखिये कि जगमें भटमाही मोहके सुभटनमें जिस कामदेवकी प्रथम रेखाहै अर्थात् प्रथम गिनतीमें कामहै पुनः क्रोध लोभादि पीछे गनेगये ऐसे बली वीर कामदेव ताने जब समाधि छुड़ाइ दियो अर्थात् ब्रह्मानंदते आत्मदृष्टि खैंचि विषयोजीवत्व इव विषयानंदमें डारिदियें जो भव पंथहै इत्यादि वेप्रयोजन घात करना महाअपराधहै पुनः सदाको कंटकहै याको मिटाइदेना चाहिये इस न्यायसे वाको भस्म करिदिये अर्थात् विशेष वीरन में अग्रणीय पुनः लोकविजयी सो जाकी क्रोधदृष्टि परतही भस्म होगया ऐसे सबल समर्थ हैं पुनः करुणासिंधु कैसे हैं कि मारको मारि पुनः थाप्यो अर्थात् जब कामकी वाम रति विलापकरते आई तब वाको दुःखित देखि करुणाआई ताते पुनः कामदेवको जीवनदान दिये अंगहीन जग में व्यापकता दिये इत्यादि थाप्यो तहां उजारना पुनःबसावना यह काम ठाकुरनकोहै इसहेतु कहत कि ताही शिव ऐसे ठाकुरको रीभिकै निवाजियो अर्थात् जापर क्रोधकरि नाश किये ताहीको जो परिपूर्ण ऐश्वर्य देदिये तौ जाको रीभिकै निवाजतेहैं अर्थात् सेवनपूजनादि भक्ति पर प्रसन्न हैकै जाको जैसो ऐश्वर्य देहैंगे सो मोपाहीं क्यों कहो परत अर्थात् याकी महिमा शेष शारदादि नहीं कहिसकत सो मोसों कौन भाँति कहते बनैगो प्राकृतनरमें कौन शक्तिहै जो कहौं २ यद्यपि मोको कहवेकी गति नहींहै तथापि यथामति कछु कहतहौं यद्यपि विष्णु भगवान् बड़ेउदार कहावतेहैं परन्तु सुलभ नहीं हैं काहेते विषयी विमुखादि सामान्य याचकनको को पूछै जे मननशील मुनिभाव लोकव्यवहार त्यागे मुक्तिके अधिकारी तेऊ विवेक विराग जप तप योगक्रियादि करोरिन उपायकरि जो गति मुक्तिपद हरिसों मांगन सकुचाते हैं भाव अबहीं हम मुक्ति के अधिकारी नहीं भये काहेते काल कर्म गुण स्वभाव सूक्ष्मवासना नहीं मिटी है ताते विना आत्मरूपकी अमलता कैसे मुक्तिपावेंगे इति सकुचहै सोई मुक्ति शिवजी कैसी सुलभ कीन्हे हैं कि पुरारि शिव तिनको पुर जो काशी है तहां के वासी उत्तमजीवन की को कहै जे कीट पतंगादि तुच्छजीव हैं तेऊ शिवजी की कृपाते ताही मुक्तिपद में समाहीं बरबस प्रवेश करिजाते हैं इत्यादि सामान्य पुरवासिनको ऐसा ऐश्वर्य देते हैं तौ सेवकनको जो ऐश्वर्य देते हैं ताकी महिमा कौन जानिसकै इति शिवजीकी सुलभउदारता वेदप्रमाण सहित लोक में विदित सब जानत छपी नहीं ३ जो वेदविदित है सोई गोसाईंजी कहते हैं कि एक तौ ईश सब भाँति समर्थ पुनः उदार परिपूर्ण दानके देनहारे पुनः जिनकी सहजही जीवन पर दयादृष्टि है ऐसी उमापार्वती तिनके पति सुलभ दयालु तिनको परिहरि शिवजी को त्यागि जे औरसों अनत याचन मांगनेहेतु जाते हैं ते मानो मांगनहारे मूढ़अज्ञान हैं उनको पेट कबहूं न अघाई सुलभ मनोरथ कहां को पूर्ण करि देई जो पेटभरै याते भूखे ही बनेरहैंगे ४॥

(५) बावरो रावरो नाह भवानी।

दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी १

निज घर की वर बात विलोकहु हौ तुम परम सयानी ।
शिव की दई सम्पदा देखत श्री शारदा सिहानी २
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निशानी ।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकवानी ३
दुखी दीनता दुखियन के दुख याचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी ४
प्रेम प्रशंसा विनय व्यंग्य युत सुनि विधि की वर वानी ।
तुलसी मुदित महेश मनहिंमन जगत मातु मुसुकानी ५

टी० । शिवजी को सदा देवोई भावत पावा गैरपावा याचक नहीं विचारते हैं तातें किसी समय ब्रह्माजाइ पार्वती ते कहे कि हे भवानी ! रावरोनाह आपुके पति वौरहाहैं काहेते वेदधर्मते दानकी रीति यह है कि जे बड़ेदानी प्रतिदिन दान देते हैं ते विना दियेहुये याचकको देते हैं अरु जो प्रभात लैगया अरु मध्याह्नआइ पुनः मांगै ताको नहीं देते हैं इति वेदवड़ाई भानी वेदरीति को शिवजी तोरिडारे एकही यान्त्रक जैवाजी आवै तवै देते हैं वाको विचारते नहीं हैं कि यह दुवारा आयाहै इसी ते इनको वौरहा जानौ १ पुनः वेदरीति तोरनेकी दूसरी वात घरही में कीन्हे हैं क्या घरकी वात है कि निज आपनी वरवात आपने श्रेष्ठता की वात विलोकहु अथवा घरकी वर शिवकी वड़ीपत्नी तुम्हारी वड़ीवहिनी जो गंगाजी तिनकी अरु आपनी वात विलोकहु देखहु अर्थात् हे पार्वतीजी ! पति पत्नीको निकटराखनेकी कौनरीति वेदकहत अरु कौनीरीतिते तुमको अरु गंगाजीको कौनीरीतिते शिवजी निकटराखे हैं इति निज आपनी वात अरु घरकी वर जो गंगाजी हैं तिनकी वात विलोकहु देखहु पुनः तुम परम सयानीहो सब तत्त्वसिद्धान्त जानिवे में प्रवीणहो विचार करके देखिलेउ वेदकी मर्यादा मिटाइदिहिनि है कि नहीं भाव वेदरीति तौ ऐसी है कि धर्मकार्य में तौ पत्नी दक्षिण दिशा चाहिये यह स्मृतिवचन यथा ॥ सीमन्ते च विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने । व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दाक्षिणे ॥ पुनः शयनसमय शय्या पर वामदिशि इत्यादि समय वरावरि आसन चाहिये अरु स्वाभाविकसमाज में पत्नी को वरावरि न वैठावना चाहिये तहां शिवजी तुम्हारे ऊपर ऐसा प्रेम वढ़ाया कि तुमको तौ वामांगमें मिलाइलिया सो देखि जव गंगाजी मान किया तव उनको शीशपर धरिलिये इत्यादि शिवकी दई जो सम्पदा तुम्हारे श्रेष्ठ पद पावनेका ऐश्वर्य ताको देखतसन्ते अव श्रीलक्ष्मी अरु शारदा सिहानी भाव तुम्हारेही तुल्य पतिन में पद पावने को लक्ष्मी औ सरस्वती लालच किहे हैं भाव त्रिदेव तीनिहू शक्ती वरावरि गनीजाती हैं तहां जो शिवजी पार्वतीको अर्धांग में मिलाइ लिये तौ हमारे पति हमारे विषे वैसेही प्रेम क्यों नहीं करते हैं अर्थात् हमकोभी हमारे पति अर्धांग में मिलाइलेवैं इत्यादि ब्रह्माजी कहत कि जो वेदकी वड़ाई तोरिडारे तामें तौ हमारी हानि कछु नहीं रहै अरु जो तुमको अर्धांग में मिलाइलिया यामें तौ हमारे अरु विष्णु के हेतु आफति पैदाकरिदिया अव किती

दोऊजने पतिनको अर्धांगमें मिलावेंगे नातरु घरमें विरोध पैदाभया इति ऐसे वेद लोकरीतिते प्रतिकूल आचरण न किसीने किया है अरु न अब किसीते होइगा ऐसे आचरण करते हैं ताते शिवजी बौरहा हैं यह शिव पार्वती के प्रेमकी प्रशंसा है २ पुनः तीसरी बात यह कि जीव जो शुभाशुभ कर्म करते हैं ते सब बटुरिकै संचित जमा रहते हैं ताहीते लैकै देह उत्पन्न होत समय शुभकर्मनको फल सुख अशुभको फल दुःख उसीके माथमें मैं लिखि देताहौं इत्यादि वेदकी रीति है जो जैसा कर्म करत सो तैसाही फल पावत विनाभोगे छूटता नहीं यथा मिताक्षरायाम् ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्मकल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ इत्यादि वेदकी बड़ाई ताहूको शिवजी तोरिडारे कौनभांति कि जिनके भाल माथे में मेरी लिखी लिपि जो प्रारब्धकी पाँति है तामें सुखके वरणको कहै सुखकी निशानीभी नहीं भाव जे सेवाइ असतकर्मके सतकर्मको नाम नहीं लीन्हे ताते उनको जन्मपर्यन्त दुःखै भोगनापरता सोई किसीसमय कारणपाइ चारि चाउर धतूरफूल बेलदल लोटाभरि जल शिवपर एकबार चढ़ाइदिया तापर शिवजी ऐसा ऐश्वर्य दै दिये सो हाल सुनिये कि उनहीं अभागी जिनके भाल में सुखकी निशानी नहीं रहै तिन रंकनि कंगालनको नाक सवारत अर्थात् जो दुःखके अंक रहैं तिनको मिटाइ पुनः इन्द्रपुरी भोगको सुख लिखनापरा इति रंकनको नाक सवारतहौं नकवानी आयो अर्थात् पूर्वलिखा मिटाइ मिटाइ पुनःलिखते लिखते मेरेनाक में दम ह्वैगये इत्यादि जलदलाक्षत एकबार पाइ तामें जन्मभरे को दुःख मिटाइ इन्द्रपुरी को सुखदेना यह चैतन्यते कबहूं न होई सो करते हैं इसीते शिवजी बौरहा हैं ३ जब थोरिही परिश्रम में शिवजी बड़ाभारी फल देनेलगे अरु याचकनको अयाचक करि दीन्हे तब दुःखपीड़ित पुरुषारथहीन अधीरहोना इत्यादि जो दीनताहै सो दुःखितभई भाव वाको रहने को ठौर न देखिपरा पुनः भूषण वसनहीनता प्रियवियोग रुज पीड़ादि जो दुखियनमें दुःख रहैं तेऊ दुःखी भये भाव दुःखनकोभी रहनेको ठौर न मिला पुनः याचक सब अयाचक होतेजाते हैं ताते याचकताभी अकुलानी कि जो शिवकी ऐसिही उदारता बनी है तौ हमारेभी रहनेको ठौर न रहिजाइगा अर्थात् ब्रह्माजी कहत कि मैं तो जीवनके कर्मानुसार फल देताहौं तहां जाको मैं दीन बना-घताहौं ताको शिवजी पुरुषारथ देदेतेहैं जाको मैं दुःखी बनावताहौं ताको सुखदेते हैं जाको मैं याचक बनावताहौं ताको अयाचक करिदेते हैं ये आचरण शिवजी के देखि मेरे हर्ष अरु आकुलता दोऊ भई तहां आकुली तौ यहहै कि जो शिवजी पूर्व मोको लोककर्त्ता बनाये सो तौ सर्वथा वृथाकरिदीन्हे काहेते जो मेरा लिखा एकहू पूरा नहीं होने देते हैं ताते अकुलाइकै मैं इस पदवी को इस्तीफा देताहौं कि यह अधिकार लोककर्त्तापदवी अब किसी औरको सौंपिये मोसों अब यह मशक्कतीकाम न ह्वैसकैगो काहेते अब मैं जानिलीन्हेउँ कि भीख भली है अर्थात् पूर्व तौ मैं जानता रहौं कि मांगेते कछु बड़ी ऐश्वर्य तौ मिलती नहीं ताते तपस्याआदि परिश्रमकरि मनभावत लाभ होताहै जब शिवजी की उदारता देखा तब जाना कि अब भीखै भलीहै काहेते महत्त्व सुख ऐश्वर्य बड़ाई आदि सब शिवजी के याचनामात्र मिलि सक्ती है तौ परिश्रमकरना वृथाहै ४ हे गिरिजा! तुमपै शिवको प्रेम देखि श्रीशारदा

सिहातीहैं इति प्रेमकी प्रशंसा पुनः शिवजीके दयालुता उदारतादि गुणनकी प्रशंसा पुनः व्यंग्य यथा काव्यनिर्णये ॥ दो० ॥ सूधो अर्थ जु वचनको त्यहि तजि औरहि वैन। समुझि परै त्यहि कहतहै शक्तिव्यंजनाऐन ॥ अर्थात् तुम्हारे पति वावरे हैं वेद वड़ाई तोरिडारे जाके सुखकी निशानी नहीं ताको स्वर्ग पठावत इत्यादि सूधे शब्दनमें सुलभ उदारशक्ति इत्यादि गुण व्यंग्यते प्रकट होतेहैं अथवा व्यंग्ययुत निंदा के वहाने स्तुति तहां निंदा तौ प्रसिद्धै है विनय यह कि आपु ऐसे सुलभउदारहौ कि महा अभागिनको स्वर्ग देतेहौ पुनः मेरा पद आपहीको दियाहै मैंभी याचक होउँगो इत्यादि विधि की कही वरवानी अर्थात् थोरे अक्षर अर्थ वड़ो विलक्षण चातुरी हास्ययुक्त श्रवणरोचक गूढ़आशय सनेहवर्धक ऐसी उत्तम ब्रह्मकी वाणी सुनिके क्या चेष्टा दोऊजनेनकी भई सो गोसाईंजी कहत कि निज प्रशंसा सुनि सज्जन प्रसन्नता गुप्त राखते हैं ताते महेश तौ मनहींमन मुदित जो आनन्दउठी सो अन्तरै में गुप्तराखे अरु पतिकी प्रशंसा सुनि जगतमातु पार्वतीजी मुसुकाती भई अन्तरकी प्रसन्नता प्रकटकरिदीन्हीं गोसाईंजीको आशय कि ऐसे समर्थशिव हैं जाकी ब्रह्मा स्तुति करते हैं ५ ॥

राग रामकली।

(६) याचिये गिरिजापति कासी। जासु भवन अणिमादिक दासी १
अवढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन करजोरे २
सुख सम्पति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ शंकर सेवकाई ३
गये शरण आरत के लीन्हे। निरखि निहाल निमिष महँकीन्हे ४
तुलसिदास याचक यश गावै। विमल भक्ति रघुपति की पावै ५

टी०। जाको मांगनाहोइ सो गिरिजापति महादेवजीसों याचिये काहेते जहां स्वाभाविक जीवनको मुक्ति मिलती है ऐसी काशी ऐसी पुरी जासु भवन वासस्थान है पुनः अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्रकाम वशीकरण अरु ईशता अष्टसिद्धि के नाम इत्यादि अणिमाआदिक सव सिद्धी जिनकी दासी सेवकाई में लगीरहती हैं भाव मुक्ति की कांक्षा होइ सो सुलभ सिद्धाईकी कांक्षा होइ तौ महासुलभ है १ औढरलोक वेदरीति वाह्य जिस मार्गपर कोऊ नहीं ढरत अर्थात् भाव कुभाव किसी बहाने भूलिहूकै जो जलदलाक्षतादि शिवपर फेंकिहू देता है ताहूपर प्रसन्न ह्वै भारी दान देते हैं इति औढरदानि पुनः थोरेही पूजा पाइ द्रवत अत्यन्त प्रसन्न होते हैं यह सौलभ्यता है पुनः दीनजन दुःखपूर्वक जो सन्मुखआइ कर हाथ जोरत ताको देखि नहीं सकत आपहू दुःखित ह्वै वाको दुःख मिटाइदेत यह करुणा गुण है २ सुख यथा वनिता भोजन वसन पान गंध वाहन राग नृत्यादि पुनः सम्पति यथा धनधान्य धरणी धाम राज्यादि पुनः मति विद्या बुद्धि चातुरी विचारादि पुनः सुगति यथा परलोक में देवलोक वास अथवा मुक्ति इत्यादि जिस वात की कांक्षाहोय ताके हेतु शिवजी को अर्चनादि करौ काहेते शंकर कल्याणकर्त्ता जाको नामार्थ है तिनकी सेवकाईकरौगे तौ सकल वस्तु सुलभ है भाव तपस्यादि परिश्रम नहीं करना है केवल जल दलाक्षत देनेमात्र प्रसन्न ह्वै मनवांछित देते हैं ३

आरति दुःख ताको लीन्हे अर्थात् मनते वातनते दुःखित ह्वैके जे कोऊ शिवजीकी शरण सन्मुखगये तिनको निरखि निमिषभरेमें निहालकरिदीन्हे अर्थात् शरणागत को दुःखित देखतही एक पलकमात्रमें वाके दुःख नाशकरि सबभांतिते सुखी करि दीन्हे ४ हे शिवजी! यथा सब याचकन को निहाल कीन्हेउ तथा तुलसीदासभी आपुको यश गावता है याचना करता है कि रघुपतिकी विमलभक्ति शुद्धशरणागती पावै अर्थात् कलियुग की भयकरि दादि हेत दरबार में आयाहौं अरु आपु प्रभु के द्वारदेवहौ ताते मेरी प्रार्थना है कि कृपायुत सईकरि प्रभुकी शरणागती दृढ़करवाइ दीजिये जामें अभय होउँ ५॥

(७) कस न दीन पर द्रवहु उमावर। दारुण विपतिहरण करुणाकर १
वेद पुराण कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयहु कृपणतर २
कवनिभक्तिकीन्हींगुणनिधिद्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेउशिव पदनिज ३
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ४
देहु कामरिपु रामचरण रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेदमति ५

टी०। हे उमावर! आपु तौ दारुण महाकठिन विपतिके हरणहारहौ काहेते सेवकनको दुःख देखि आपहू दुःखितह्वै शीघ्रही सेवकको दुःख हरिलेना यही करुणा गुणहै ताके आकर नाम खानि इति करुणाकर जानि दुःखितह्वै आपते याचना करतहौं सो मैं दीनजन आपु दीनदयालह्वै मोहिं दीन पर कस नहीं द्रवतहौ भाव मेरा दुःख देखि क्यों नहीं आपके करुणा आवती है १ जो कहौ कि तुमने हमारी सेवकाई किया है जाते तुम्हारे ऊपर करुणाआवै तहां वेद तथा पुराण तौ आपुको कहत हैं कि हर शिवजी उदार हैं अर्थात् याचनामात्र याचकन को परिपूर्ण दान देतेहैं ऐसे उदार दानी कहाइ अब हमारी बेर कृपणतर महाकृपण कस भयहु अर्थात् सदा याचकन हेतु उदार बनेरहेउ अरु मेरी याचना में दान देत में काहेते महासूम बनतेहौ २ जो कहौ विना सेवकाई कीन्हे हम किसको दान दियाहै सोभी पुराणद्वारा प्रसिद्ध हाल सुनिये गुणनिधि विप्र आपकी मूरतिपर चढ़ा घंटा छोरतारहै चोर जानि पुजारियोंने मारा मरिगया ताको आत्मसमर्पण दान मानि हे शिवजी! वापर प्रसन्नह्वै निजपद कैलासवास दीन्हेउ तौ बताइये श्रवण कीर्त्तन अर्चन सेवनादि कौनि भक्ति गुणनिधि नामे विप्रने कीन्हीरहै जाको आपनी समीपता दीन्हेउ ३ पुनः जो गति मुक्तिपदको महामुनि आत्मदर्शी तेऊ अगमकरि गावतेहैं कि मुक्तिपद मिलना दुर्घट है सोई मुक्तिपद हे शिवजी! आपुकी उदारताते कैसी सुलभ है कि तवपुर आपुके पुर काशीजी में कीट पतंगादि सब जीव मुक्ति पावते हैं ४ स्वाभाविक मुक्ति देनहारे ऐसे उदार जानि मैं भी आपुसों याचना करताहौं आपु कामके रिपुहौ ताते सब कामना मिटाइ रामचरणरति रघुनाथजी के पाँयन में प्रीतिदेहु कैसे प्रीतिदेहु कि आपु प्रभु समर्थहौ ताते तुलसीदासकी जो भेदमति देहाभिमान बुद्धी ताको हरिलेउ तब प्रभुमें प्रीति थिर रहै ५॥

(८) देव बड़े दाता बड़े शङ्कर बड़े भोरे। कियेदूरिदुख सबन के

जिन जिन करजोरे १ सेवासुमिरणपूजिवोपातअक्षतथोरे। दियोजगत जहँलगिसवैसुखगजरथघोरे २ गावँवसतवामदेवमैंकवहूं न निहोरे। अधिभौतिकवाधाभई ते किङ्कर तोरे ३ वेगिवोलिवलिवरजिये करतूतिकठोरे। तुलसीदलिरूंधोचहैं शठशाखसहोरे ४

टी०। देवनमें बड़े देव सबै माथ नावत कृपाचाहत दातन में बड़ेदाता जिनकी दातव्यते और दाताभये पुनः शंकर कल्याणकर्त्ता बड़े स्वपुरमें सहजै मुक्तिदेत पुनः भोरे सहजै प्रसन्न होत काहेते जिन जिन आर्त्त है सन्मुखकर हाथजोरे तिन सवनके दुःख सहजही में दूरि करि दीन्हे १ पुनः भावकुभाव नहीं विचारते हैं ताते सेवा-करिवे में सुलभ पुनः विधिअविधि नहीं विचारत ताते नाम मंत्रादि सुमिरण सुलभ पुनः पूजिवों सुलभ काहेते वेलके पात अरु अक्षत चाउर सोऊ थोरेही में प्रसन्नहोत तब क्या देते हैं सुंदर मंदिर शय्या सुभग स्त्री भोजन वसन पान गंधराग नृत्यादि यावत् सुख जहां लगि जग में प्रसिद्ध हैं पुनः गज हाथी रथ घोड़े इत्यादि यावत् विभवहैं सो सब दैदेते हैं २ हे वामदेव शिवजी! आपुके गांव काशीजी में वसतहौं आपुते मांगना उचित रहै परंतु मैं कवहूं निहोरे आपुते कछु मांग्यउँ नहीं परंतु जब अधिभौतिक भूतनकरिकै वाधाभई अर्थात् रामनाम को प्रचार करनेते कलियुग मेरेऊपर कोपकिया ताकी सेना भूतगण मोको सतावा चाहते हैं ते भूतगण सहित कलियुग सब आपुहीके किंकर सेवक हैं ३ इस हेतु मैं वलिहारिहों आपुसों दादि करताहौं ताते करतूति कठोरे जाकी करणी सब कठोर है निर्दयी है सब काम करता है ऐसा जो कलियुग है ताको वेगि शीघ्रही वोलाइकै वरजिये अर्थात् मेरे ऊपर जो वाधा करता है सो मनाकरि दीजिये क्या वाधा करता है कि तुलसीदलि तुलसीको वृक्षकाटि ताकी शाखनसों शठ सहोरेको वृक्ष रूंधाचाहत भाव भक्तिकी प्रचार मिटाइ पाप कर्मनकी प्रचार कीन चाहत अथवा तुलसी सम साधु जननको नष्टकरि सहोरेसम दुष्ट तिनकी रक्षा कीनचाहत सो दोऊ कठोर करणी हैं ४॥

(९) शिव शिव होइ प्रसन्न करु दाया।

करुणामय उदारकीरति वलि जाउँ हरहु निज माया १
जलजनयन गुणअयन मयनरिपु महिमा जान न कोई।
विनु तव कृपा रामपदपङ्कज सपनेहु भक्ति न होई २
ऋषी सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं।
तव पद विमुख न पार पाव कोउ कल्प कोटि चलिजाहीं ३
अहिभूषण दूषणरिपुसेवक देवदेव त्रिपुरारी।
मोहनिहारदिवाकर शङ्कर शरणशोकभयहारी ४
गिरिजामनमानसमराल काशीश मशाननिवासी।
तुलसिदास हरिचरणकमल वर देहु भक्ति अविनासी ५

टी०। कलियुगकी भयकरि विभ्रमताते वा प्रेमते द्वैवार नाम कहे वा शिव कल्याण

रूप हे शिवजी ! मैं भयातुर शरण आयाहौं मोपर प्रसन्नह्वै दायाकरौ मेरा दुःखहरउ काहेते आपु करुणामय अर्थात् सेवकको दुःखदेखि आपह्नू दुःखीह्वै तुरतही वाको दुःखमिटाइ देतेहौ इति करुणा गुणरूप जलभरे समुद्रहौ पुनः उदार याचकमात्र को मनवांछित दान देतेहौ इत्यादि करुणा दयालुता उदारतादि गुणनकी प्रशंसा इति कीरति आपुकी फैलीहै सो सुनि वलिजाउँ मह्नूं शरणआयाहौं सो कृपाकरि अपनी मायाको हरहु अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंधादि इंद्री विषयरूप माया प्रसिद्ध है तिनकी प्रवलताते कामक्रोधादि जीवको नाश करताहै इत्यादि माया निर्मूलकरि शुद्ध सनेह रघुनाथजी में लगावउ १ आपु कैसेही जलज कमल सम नयन करुणा रसभरे दया कोमलता सहित अर्थात् करुणा दयादृष्टि सदा जननपर राखते हौ पुनः ज्ञान विराग समता शांति क्षमा कृपादि गुणन के अयन वासस्थान हौ पुनः मयन रिपु काम ऐसा वली ताको नाशकरि दीन्हेउ ऐसे सवल समर्थहौ कि महिमा जैसी है तैसी शैव शाक्त वैष्णवादि कोऊ यथार्थ नहीं जानताहै ताते परस्पर विरोध करतेहैं अरु हे शिव ! यथार्थ तौ वात ऐसी है कि श्रीरघुनाथजी तुमको अत्यंत प्रिय माने हैं अरु आपु श्रीरघुनाथजी के उत्तम भक्तहौ ताते विनु तव कृपा विना आपुकी कृपाभये श्रीरघुनाथजी के पदकमलनकी भक्ति कोऊ चाहै तौ जागतकी कौन कहै सपने में भी न होई भाव आपुके दीन्हेते रामभक्ति मिलसक्ती है आपुते विमुखह्वै कैसे पाई २ पुनः ऋषी जे तपस्या पूजा हवन यज्ञादि कर्म साधन करते हैं सिद्ध जे अष्टांग योगादि करि अणिमादि सिद्धी पाये हैं मुनि मननशील मनुज मनुष्य मृत्युलोकवासी दनुज दैत्य पातालवासी सुर देवलोकवासी इत्यादि अपर जे यक्ष नागादि इत्यादि यावत् सब जीव जग में हैं ते आपुके पाँयनते विमुख है जो भवपार जावा चहैं तौ और उपाय करत सन्ते जो कोटिन कल्प चलि जाहिं अन्य साधन करतसन्ते करोरिनकल्प वीतिजाहँगे भवसागर को पार न पावहिंगे ३ अहिभूषण सर्पनके कंकण कुण्डल मालादिभूषण धारण किहेहौ पुनःखरवन्धु दूषण ताके रिपु जो श्रीरघुनाथजी तिनके सेवकहौ ताके प्रभावते अमंगल वेष भी मंगलरूपहै काहेते देवनके देवहौ सब देवता आपुको पूजत माथनावतेहैं पुनः त्रिपुरारि जो किसीको मारा न मरिसका ऐसा त्रिपुरासुर ताको आपु एकही वाणते भस्म करिदीन्हे ऐसे सवल हौ नीहार यथा ॥ अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिमम् ॥ इत्यमरः ॥ अर्थात् नीहारजो है पाला सो जीवनमें मोह है जीवको जड़ करि देताहै ताकी वेग नाशकरिवे हेतु आपु दिवाकरसूर्य हौ आपुके वचनरूप किरण परतही मोह शीत नाश ह्वैजाता है पुनः शंकर कल्याणकर्त्ता जाको नामही है काहेते शरण शोकभयहारी अर्थात् शोक यथा प्रिय वियोग इष्टहानि रुज पीड़ा दरिद्रतादि स्वार्थ में पुनः जन्म जरा मरणादि परमार्थ में इत्यादि यावत् दुःख हैं पुनः भय यथा राज चौर व्याघ्र सर्प शत्रु भूतादि स्वार्थ में गर्भजाना यमलोकादि परमार्थ में इत्यादि यावत् डरहैं इत्यादि जो आपुकी शरण आवताहै ताके शोकभयादि सब हरिलेतेहौ४ गिरिजा पार्वती जिनकी सदा कृपादृष्टि जीवनपर रहती है परोपकार हेतु सदा राम यश श्रवण करती हैं तिनको मनरूप अमल मानसर है तामें मराल हंससरीखे सदा वास किहेहौ भाव गिरिजा सदा आपुको मनमें राखती हैं अरु आपु गिरिजाते

क्षणमात्र भिन्न नहीं होतेहौ यह परस्पर सनेहकी प्रशंसा है पुनः जहां सहजै जीवन को मुक्तिमिलतीहै ऐसी काशी पुरी ताके ईश स्वामी भाव ऐसे उदारहौ मुक्ति भिक्षा इव देतेहौ पुनः मशाननिवासी ऐसे विरक्तहौ कि चिता भूमि महाउदासीनमें वास करते हौ भाव निरपरवाही ·उदारजानि मैं आपुते याचना करताहौं हे शिवजी ! हरि श्रीरघुनाथजी के चरणकमलनकी भक्ति यह वर देहु कैसी भक्ति अविनाशी जाके प्राप्त भये जीवकी नाश नहीं होती है यथा ॥ ताते नाश न होइ दासकर। भेद भक्तिबाढ़ विहंगवर॥प्रमाणगीतायाम् ॥ कौन्तेय प्रतिजानीहि न मद्भक्तःप्रणश्यति ४॥

राग धनाश्री ॥

(१०)मोहतमतरणि हर रुद्र शङ्कर शरण हरण मम शोक लोकाभिरामं।
बालशशिभालसुविशाल लोचनकमल कामशतकोटिलावण्यधामं १
कम्बुकुन्देन्दुकर्पूरविग्रह रुचिर तरुणरविकोटि तनु तेज भ्राजै।
भस्म सर्वांग अर्द्धांग शैलात्मजा व्याल नृकपाल माला विराजै २
मौलि संकुल जटा मुकुट विद्युच्छटा तटिनिवरवारि हरिचरणपूतं।
श्रवणकुण्डल गरलकंठ करुणाकन्द सच्चिदानन्द वन्देवधूतं ३
शूल शायक पिनाकासि कर शत्रुवनदहन इव धूमध्वज वृषभयानं।
व्याघ्रगजचर्मपरिधान विज्ञानघन सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं ४
तांडवितनृत्यपर डमरु डिमडिम प्रवर अशुभइव भांतिकल्याणराशी।
महाकल्पांत ब्रह्माण्डमण्डलदवन भवनकैलाश आसीनकाशी ५
तज्ञ सर्वज्ञ यज्ञेश अच्युतविभव विश्व भवदंश संभव पुरारी।
ब्रह्मेंद्र चंद्रार्क वरुणाग्नि वसु मरुत यम अर्च्य भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ६
अकल निरुपाधि निर्गुण निरंजन ब्रह्म कर्मपथमेकमज निर्विकारं।
अखिलविग्रह उग्ररूप शिव भूपसुर सर्वगत सर्व सर्वोपकारं ७
ज्ञान वैराग्यधन धर्म कैवल्य सुखसुभग सौभाग्य शिव सानुकूलं।
तदपि नरमूढ़ आरूढ़ संसारपथ भ्रमत भव विमुख तव पादमूलं ८
नष्टमति दुष्टअति कष्टरत खेदगत दासतुलसी शंभु शरण आया।
देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे भक्ति भवहरणि गत भेद माया ९

टी०। यहांतक माधुर्य प्रसाद गुणमय ललित रागनमें यश कीरतिगाये अब प्रताप वर्णन करत ताते ओजगुणमय दण्डक कहत छब्बिस वर्णते अधिक तुकमें होइ ताको दण्डक संज्ञा है देवपद सम्बोधनहै हे देव शिवजी ! आपु कैसे प्रतापवन्तहौ कि मोह तमहर मोहरूप जो हृदय में अन्धकार है ताको हरकहे हरिलेवेहेतु आपु तरणिरुद्रहौ तरणि सूर्य रुद्र भयानक अर्थात् मोहान्धकार हरिवेको भयंकरसूर्यहौ आपुके सन्मुख होतही मोह नाश होत ऐसे शंकर कल्याणकर्त्ताकी मैं शरणहौं ताते मम शोकहरण मेरेशोक जो अनेकप्रकारके दुःख हैं तिनको हरिलेवे योग्य आपुहौ

काहेते लोकभरेको अभिराम नाम आनन्ददेनहारेहो तहां मैं तो आपुकी शरणागत हौं मेरा दुःख अवश्यही हरौगे काहेते जो सौभाविक संसारको हितकर्त्ता ऐसा बालशशि द्वितीयाको चन्द्रमा ताको भालनाम माथे में धारण किहेहौ पुनः सुवि- शाल सुन्दर बड़ेलम्बायमान लोचन जो नेत्र ते अरुण कमल सरीखे करुणारस भरे हैं पुनः शत कोटि सौकरोरि काम सरिस लावण्य धाम शोभाके मन्दिरहौ १ कैसे शोभाधामहौ कि कंबु जो शंख तद्वत् पावनता चिक्कणता सहित गौरता पुनः कुन्दके फूल सम कोमलतायुत गौर इन्दु चन्द्रमा सम शीतलता अहलादकता प्रका- शता सहित गौर कर्पूरसम सुगन्धतासहित गौरइति कम्बु कुन्द इन्दु कर्पूरसम गौर विग्रह गौरांगहौ रुचिरनाम सुन्दरेतनविषे तरुण रविकोटि दुपहर के सूर्यनते करो- रिनगुण अधिक तेज भ्राजे अर्थात् कोटिन सूर्यवत् तेज तनमें शोभित है तहां देह की सुन्दरता कछु बनावट तैलादि लगाये ते नहीं है सर्व अंग में भस्म विभूति लगाये हैं पुनः कछु करालता करिकै सूर्यवत् तेज नहीं है अर्द्ध आधे अंग में शैल आत्मजा हिमगिरिकी पुत्री पार्वती विराजमान भाव जिनको शीतल मधुररूप पुनः कछु दिव्य भूषण करिकै तेज नहीं व्यालसर्प अरु नृ मनुष्य ताकी कपाल खोपँड़ी इत्यादि माला विराजते हैं २ मौलिशंकुल जटाशीशमें परिपूर्ण सेघनजटा है ताके मुकुटके बीच विद्युत् छटा बिजुली कैसी चमक तटिनि वर नदी उत्तम श्रीगंगाजी हैं सो कैसी हैं जिनको वारि जल हरि भगवान् के चरण प्रच्छालित है ताते पूत कहे पवित्र लोक पावनकर्त्ता है श्रवण कानन में सर्पनके कुंडल हैं पुनः गरल जो विष पानकरिगये ताकी श्यामता कंठमें शोभित पुनः सेवकनको दुःख देखि जो आपहू दुःखितह्वै दुःख मिटावना करुणा है सोई करुणारूप जल वर्षिवेको कंद नाम मेघ हैं पुनः सत् आत्म चैतन्य आनंदरूप इति सत् चित् आनंद कारण रहित भगवत् मूर्त्ति पुनः अवधूत उदासीन योगेश्वर वेष तिनहिं मैं वंदनाकरतहौं ३ पुनः त्रिशूल अरु शायक नाम बाण पिनाक नामे धनुष असिनाम तरवारि इत्यादि हथियार कर हाथनमें धारण कीन्हे कैसे वीररूप हैं कि सुर साधु सतावनहारे खल दैत्यादि जो शत्रुनकी सेनारूप वन है ताको दहन भस्म करिदेवे हेतु वृषभयान धूमध्वजेव हैं वर्ध है सवारी जिनकी ऐसे जो शिवजी ते अग्नि की समान हैं धूमै है ध्वजा जाके ताते धूमध्वज अग्नि ताही इव नामसम शत्रुवन दहन शिवजी हैं वाघचर्म तथा गज हाथीको चर्म सोई परिधान पहिरेहैं वसन पुनः विज्ञान विशेष ज्ञान सो घन कहे समूह है जिनमें ऐसे जो शिवजी सो सिद्धनकरि सुर देवतनकरि मुनिनकरि मनुज मनुष्यनकरि सेव्यमानहैं आपना स्वार्थ पाइवेहेतु सवै शिवजीकी सेवाकरि मनवां- छित फल पावते हैं ४ तांडवित नृत्य सर्वत्र लिखा है परंतु ऐसा चाहिये न काहेते तांडव भी नृत्यही को नामहै किसी गतिको नाम नहीं है यथा ॥ तांडवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्त्तने ॥ इत्यमरः ॥ ये छहयो नाम नृत्यही के हैं ताते दिंडिमी नृत्य ऐसी पाठ चाहिये क्योंकि दिंडिमी गति है यथा संगीतदर्पणे ॥ उत्प्लुत्य चरणं द्वंद्वं वक्रनिःपीडनोपमम् । परिभ्राम्यावनीयातियदितद्दिंडमुच्यते ॥ इत्यादि अर्थात् पांव बटोरे उछारत वेगते चक्राकार घूमना इत्यादि जो दिंडिमी नृत्य गतिपर डमरू जो कपालिनको बाजा है पुनः डिंडिम तोमड़ी जो योगिनको बाजा है इत्यादि प्रवर

कहे गतिकी पदप्रहार बाजाकी ताल दोऊ एक में मिली लयह्वैजाना इत्यादि करते हैं सो अमंगल इव भांति काहेते विज्ञानघन अवधूत वेपते हैं तहां आसनमारि समाधिलगावना शुभ रहै अरु वेपत्यागी में नृत्य राग बाजादि विषयवर्द्धक व्यापार हैं ताते अशुभकी नाईं दर्शितहोत अथवा यहवेपै अशुभहै परंतु कल्याणके राशिढेरी हैं भाव दर्शन ध्यानादिकीन्हे सबप्रकारके मंगल देनहारेहैं पुनःसमर्थ कैसेहैं कि महाकल्पको अंत जब ब्रह्माके मरेपर महाप्रलय काल आवता है तब ब्रह्मांडमंडल दवन समग्र लोकालोकनको नाश करिदेनहारेहैं पुनः कैलाशपर्वत जिनको भवनघरहै पुनः काशीपुरी जिनको सुखविलासस्थान है तहां आसीन सदा बैठे रहतेहैं ५ हे पुरारि त्रिपुरासुरके शत्रु! आपु तज्ञहौ अर्थात् वेदशास्त्र सिद्धांतादि सबतत्त्वनके जाननहारे हौ पुनः सर्वज्ञभूत भविष्यत् वर्त्तमानादि सबवस्तुके जाननहारहौ पुनः यज्ञेश यज्ञन के ईश स्वामीहौ अर्थात् यज्ञकर्त्तनको फलदायक आपुहीहौ पुनःअच्युत आपकोगोत्र किसीकारणते च्युत नाम भ्रष्ट नहीं ह्वैसक्काहै पुनः विभोनाम समर्थ आपु कैसेहौ कि विश्व जो सब संसार रचना अर्थात् सुरासुर नरनागादि ते भवतअंश संभव सब आपुहीके अंशते उत्पन्नभये हैं पुनः ब्रह्मा इंद्र चंद्रमा अर्क जो सूर्य्य वरुण अग्निद्रोणादि आठौवसु मरुत उश्वासौ पवन यमराज इत्यादि यावत्लोकपाल दिग्पाल हैं ते सब भवतअंघ्रि अर्चि आपुहीके पाँय पूजिकै ब्रह्मादिक सबै अपने अपने पदकी अधिकारपाये अर्थात् आपुहीके दीन्हेते सबकी ऐश्वर्य्य है ६ अकल कलाकरिकै हीन अर्थात् यथा चंद्रमामें कला घटावढ़ाकरती है तैसा नहीं सदा अखंड परिपूर्णरूपहौ निरुपाधि यथा उपाधिर्नामधर्मचिंता अर्थात् धर्म खंडितहोने की जो चिंता है ताको उपाधिकही सो उपाधि यथा हरिश्चंद्रपै विश्वामित्रकिया शिविपर अग्नि इंद्रकिया ऐसी उपाधि आपुपर कोऊ नहीं करिसक्का है ताते निरुपाधिहौ पुनः निर्गुण तीनिहूं गुणनते परेहौ अर्थात् न सतोगुण आपुको शांत करिसकै न रजोगुण विषयभोगी करिसकै न तमोगुण क्रोधी करिसकै सदा एकरस स्वतंत्रहौ पुनः अंजनकारण माया जो आत्मदृष्टि खैंचि जीवत्वकरि देती है त्यहिते रहित इति निरंजन अर्थात् देही देहविभागरहित बाहर भीतर आत्मरूपहौ पुनः ब्रह्म सबमें व्यापक सबसों न्यारे अद्वैतहौ पुनः धर्म्मयथा धर्म्मशास्त्रे ॥ इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिःक्षमा। अक्षोभइतिमार्गोयं धर्मश्चाष्टविधः स्मृतः ॥ इत्यादि जो धर्मांगहैं ताके कर्म्म करना यथा वर्णाश्रम अनुकूल नित्यनैमित्य यज्ञकरना दानदेना जप पूजापाठ हवन स्वाध्याय संयम संध्यातर्पण तीर्थाटन व्रतइत्यादि कर्मको पथ शुद्ध निर्विघ्न चलाइबे में एक आपही हौ दूसरा आपुकी समताको नहीं है भाव थोरही सत्कर्म कीन्हेते बड़ाफल दैदेतेहौ विधिअविधि नहीं देखतेहौ इसीते सबकी नेष्ठा बढ़ती है पुनः अज जन्मरहित अर्थात् काहूकरि आपुको जन्म नहीं भया पुनः हर्ष विषाद काम क्रोधादि विकार रहित इति निर्विकार सदा शुद्धरूपहौ पुनः अखिलविग्रह समग्रचराचर देहधारी ब्रह्मांडरचना सब आपहीको विराट्रूप है पुनः हे शिव! आप उग्रनाम भयंकररूप सुरभूप देवनके राजा सर्वगत सब में व्याप्त अरु सबके लोक परलोकादि सबभांतिते उपकारकरताहौ ७ ज्ञान आत्मरूपकी पहिचान वैराग्य स्वर्गपर्यंत लोकसुखको त्याग धन द्रव्यादि ऐश्वर्य धर्म वर्णाश्रम अनुकूल

वेदआज्ञा पर चलना कैवल्य जो मोक्षको सुख परलोक अथवा सुभग सौभाग्य सुंदर ऐश्वर्य सहित सुंदरभाग्य यथा ॥ सुगंधं वनितावस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम्। भूषणं वाहनं चेति भाग्याष्टकमुदीरितम् ॥ इत्यादि सब सुलभ मिलि रह्या है जो शिवजी सानुकूल प्रसन्न होइँ यह जानतेहैं तदपि नर ऐसे मूढ़हैं कि हे शिवजी ! आप के पदमूलते विमुख हैके संसारपथपर आरूढ़ होत अर्थात् संसारसुखमें मन लगाइ चौरासीमें भ्रमत फिरतेहैं हिताहित नहीं सूझत ताते मूढ़हैं ८ नष्टमति नाश ह्वैगई है बुद्धि जाकी ऐसा दुष्ट काहेते अतिकष्टरत अत्यंतदुःखदायक जो इंद्रीविषयनको सुख तामें प्रीति किहेहैं ताते खेदगत मनविग्रह दुःखको प्राप्त ऐसा मैं तुलसीदास सो हे शंभो ! आपकी शरण आयाहौं किस हेतु हे कामारि, कामको भस्मकरनेवाले शिवजी ! श्रीरामपदपंकजे भक्ति देहि कैसी भक्ति भवहरणि अर्थात् जन्म मरणादि जो भवसागर है ताको हरिलेनहारी पुनः जाके प्राप्तभयेते भेद अरु मायागत अर्थात् मेरा तेरा शत्रु मित्र राग द्वेष हर्ष विषाद इत्यादि जो भेदबुद्धिहै सो गत नाम जात रहती सबमें समता बुद्धि होती है तथा इंद्रीसुखद्वारा मनको संसार में लगावनेवाली जो शब्द स्पर्श रूप रस गंधादि विषयरूप माया है सोभी जातरहती है शुद्ध इंद्रिनकी वृत्ति लैकै अमल ह्वै मनु रामसनेहके व्यापारमें लागत ऐसी अमल अचल प्रीति श्रीरघुनाथ जीके पदकमलन विषे लगाइ दीजे इति भक्ति देहि ९ ॥

(११) भीषणाकार भैरव भयंकर भूतप्रेतप्रमथाधिपति विपतिहर्त्ता।
मोहमूषकमार्जार संसारभयहरण तारणतरण अभयकर्त्ता १
अतुलबल विपुलविस्तार विग्रहगौर अमल अतिधवल धरणीधराभं।
शिरसि संकुलित कलजूट पिंगलजटापटल शतकोटिविद्युच्छटाभं २
भ्राज विबुधापगा आप पावन परम मौलि मालेव शोभाविचित्रं।
ललित लल्लाट पर राज रजनीशकलकलाधर नौमि हर धनदमित्रं ३
इन्दु पावक भानु नयन मर्दनमयन ज्ञानगुणअयन विज्ञानरूपं।
रवनगिरिजा भवनभूधराधिप सदा श्रवणकुण्डल वदनछवि अनूपं ४
चर्म असि शूलधर डमरु शर चाप कर यानवृषभेश करुणानिधानं।
जरत सुर असुर नर लोक शोकाकुलं मृदुलचित अजित कृतगरलपानं५
भस्मतनुभूषणं व्याघ्रचर्माम्बरं उरग नरमौलि उर मालधारी।
डाकिनी शाकिनी खेचरं भूचरं यंत्र मंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी ६
काल अतिकाल कलिकाल व्यालादि खग त्रिपुरमर्दन भीमकर्मभारी।
सकललोकान्त कल्पान्त शूलाग्र कृत दिग्गजाव्यक्तगुण नृत्यकारी ७
पाप सन्ताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जग योनि नहिं कोपि त्राता।
पाहि भैरवरूप राम रूपी रुद्र बंधु गुरु जनक जननी विधाता ८
यस्य गुणगण गणति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी।

शेष सर्वेश आसीन आनन्दघन प्रणत तुलसीदास त्रासहारी ६

टी०। अब काशीके क्षेत्रपाल भैरवरूप जो शिव तिनके प्रतापमय गुण गावत यथा भैरव भीषण आकर भयंकर आकार सूरतिहै जाकी ऐसे भयंकर सहजही भयकरनेवाले पुनः भूत जो तुच्छ देवयोनिमें कराल हिंसक होतेहैं पुनः प्रेत जो मनुष्य मरे पर होते हैं पुनः प्रमथ जो रुद्रगण इत्यादिके अधिपति नाम स्वामीहौ अरु शरणागतनके विपति यथा रुज दारिद्रता राजदंड शत्रुबाधा इत्यादि हर्त्ता मिटावनहारेहौ पुनः परमार्थ में मोह सोई मूसा है मुमुक्षुनकी शमदमादि सामग्री को काटि डारताहै तथा भक्तनकी नवधादि कृपी खाय लेता है ताके हेतु आपु मार्ज्जार विलारहैं सहजे ग्रास करिलेतेहौ पुनः संसारमें रुज भूतबाधादि यावत् भय डरहैं ताको हरणहारहौ आपुके स्मरणते सब बाधा जात इत्यादि सबको अभयकर्त्ता पुनः आपु तरण मुक्तरूप पुनः काशीजी में सबको तारणहारेहौ १ जाकी तौल नहीं की क्यतनाहै ऐसे अतुल आपके बलको विस्तार वेद पुराणद्वारा संसारमें फैलाहै जो कैसहूं दुर्घट काम करै तामें श्रम न आवे ताको बल कही सो आपुमें अतुलकरि प्रसिद्ध है पुनः धरणीधर पर्वत अर्थात् हिमगिरि तद्वत् आभा प्रभा अतिधवल अत्यंत श्वेतवर्ण तद्वत् अमल गौर विग्रह नाम शरीर है भाव हिमाचलसम विमल गौर वर्ण आपुको शरीरहै पुनः शिरसि शिरविषे शंकुल नाम सघन परिपूर्ण पिंगल नाम पीतवर्णको जो जटा तिनको कलजूट सुंदर जूरा बांधेहौ ताही जटाकी पटल नाम पांति ताके बीचमें शतकोटि विद्युतछटाआभम् सौ करोरि विज्जुलछटासरीखे आभनाम शोभा देखातीहै २ क्या विज्जुलछटाभहै विबुध आपगा देवनदी श्रीगंगा जी भ्राजनाम विराजतीहैं तिनकी चमकहै तिनको आप जो जलहै सो परम पावन लोकपवित्र करनहाराहै सोई गंगाजी आपुको मौलि जो है शीश तापै मालाइव मालाकी नाईं विराजतीहैं तिनकी शोभा विचित्र अद्भुतहै ललित सुन्दर जो ललाट तापर रजनी ईश रात्रि को स्वामी जो चन्द्रमा ताकी कला द्वितीयाकी शोभितहै चौंसठि कला वा उत्पत्ति पालनादि कला ताके धारण करनहारे पुनः धनद कुबेर के मित्र तिनकी नौमि नमस्कार करताहौं ३ इन्दु चन्द्रमा वाम नेत्रमें है जाते कृपाकरि जननको अहलाद करतेहौ भानु सूर्य दक्षिण नेत्रमें है त्यहि करिकै मोहतम हरतेहौ पुनः पावक अग्निमय नेत्र माथे में है त्यहि करिकै मर्दन मयन कामदेवको भस्म करि दीन्हेउ है पुनः ज्ञान आत्मरूपकी पहिचान पुनः समता शांति कृपा क्षमादयादि गुण ताके मन्दिर इति ज्ञानगुणअयनहौ पुनः रामरूप की पहिचान वा अखंड अनुभव इति विज्ञान ताके रूपहौ पुनः गिरिते जा उत्पन्न जो पार्वती तिनके रमनकर्त्ता पुनः भूधरअधिप पर्वतनके राजा जो कैलास सो भवन घरहै रविकोटि आपुको सदा पुनः श्रवण काननमें सर्पनके कुण्डल धारण किहेहौ अरु चन्द्रवदनमें अनूप छविहै जाकी उपमा नहींहै ४ चर्म ढाल असि तरवारि त्रिशूल अरु डमरू शायक बाण चाप धनुष इत्यादि धारण किहे पुनः यान वृषभेश सवारी नन्दी वर्धकी ऐसा देखत में कठोर पुनः करुणानिधानहौ अर्थात् सेवकन को दुःख देखि आपहू दुःखित है शीघ्र दुःखहरना इति करुणागुण के भरे समुद्र वा मन्दिरहौ कोहेते करुणानिधान

जानिये कि सुर असुर नर मनुष्यादि जाके ज्वालनते जरत सन्ते सबलोक शोक आकुल दुःखकरिकै अकुलाइउठेरहैं तिनको दुःख देखि ऐसे मृदु कोमलचित्तहैं शिव जीकी जाकी वेगको सहिजानेवाला कोऊ न रहै ऐसा अजित गरल विष ताको पान कृत पीगये ऐसे करुणानिधान हैं ५ पुनः विरञ्च कैसेहैं कि तनमें भस्म लगाये सोई भूषणहै व्याघ्रचर्म अम्बर बाघ के चर्मको वसन धारण किहेहैं पुनः उरग जो सर्प तथा नरमौलि मनुष्यकी खोपरी तिनहिंनको माला उरपर धारण कीन्हेहैं अर्थात् सर्पसेरुही मुण्डमाल छातीपर पहिरे शोभित हैं पुनः लोकरक्षक कैसेहैं कि डाकिनी बाल पूतनादि ग्रह जो सोरहवर्षतक बालकनको खाइजातीहैं पुनः शाकिनी योगिनी पिशाचिनीआदि पुनः खेचरी आकाश में रहनेवाले तुच्छ देवी देवादि तथा भूमि पै रहनेवाले मशानी भूतादि तथा यंत्र बीज अंकादि अंकितपत्र अरु मारण उच्चाटनादि के मंत्र इत्यादि को भंजनकहे इन सबकी जो बाधाहै सो सबको नाश करिदेवेमें प्रबल प्रकर्षकरिकै बलीहौ भाव आपुको स्मरण करतेही सबबाधा निवारण ह्वैजातीहै पुनः कलमष पाप ताके अरि शत्रुहौ आपुके पूजनते पाप नाश ह्वैजाताहै ६ कालहुके अतिकाल महाकालहौ अथवा काल में अतिकराल काल जो कलिकाल है सोई व्यालनाम सर्पहै सब जीवनको डसताहै ताको अदनाम भक्षणकरिजावे हेतु खग पक्षी अर्थात् गरुड़हौ पुनः त्रिपुरमर्दन त्रिपुरासुरके नाशकर्त्ता हे शिवजी ! आपुको भारी भीमकहे भारी भयंकर कर्महै क्या भयंकर कर्महै कि स्वर्ग भूमि पाता-लादि सकल लोकनको अन्तकर्त्ता मिटावनहारा कल्पांत जो महाप्रलयकाल है तामें दिग्गज शूलाग्रकृत अर्थात् पृथ्वीको थाँभनेवाले जो दिशागज हाथीहैं तिनको त्रिशूलकी मुर्न्नि जो अग्रभागहै तामें कृतनाम करिलेते अर्थात् दिग्गजनको त्रिशूल की नोकमें नाथिकै अव्यक्तगुण नृत्यकारीहौ व्यक्त कही प्रकट अव्यक्त कही नहीं हैं प्र-कटगुण अर्थात् अगुणरूप ते नृत्य करतेहौ प्रलयकालमें ७ जहां पाप कर्मरूप सघन-वृक्ष तिनके फल सन्तापनाम दुःखते घोरनाम भयंकरहै ऐसा संसृत जो संसाररूप वन तामें दीन पुरुषारथहीन जगत्की चौरासीलक्षयोनिरूप मार्गमें भ्रमतहौं नहिं कोपि त्राता कोऊ रक्षक नहीं है कलिव्याघ्रग्रसित भयातुरहौं हे भैरवरूप रुद्र ! आपु गौणरूपहैं अरु रामरूपीहैं ताप्रभुकी मैं शरण जावाचाहतहौं ऐसा जानि पाहि मेरी रक्षा कीजिये काहेते प्रभुके सम्बन्धीहौ मैंभी सम्बंध चाहताहौं ताते बन्धुहौ आपु भक्तशिरोमणिहौ ताते गुरुहौ पुनः भक्तनके रक्षकहौ ताते मातापिताहौ कृपाकरि भक्त करिदेतेहौ ताते विधाता उत्पन्नकर्त्ताहौ ८ पुनः शारदा अरु निगम जो वेद पुनः प्रमुख मुखियाहैं नारद जिनमें ऐसे ब्रह्मचारी पुनः शेष इत्यादि विमलमतिवाले ते सब यस्य कहे जाके कृपा दया सुलभ उदारतादि गुणनके गणगनत समूह गुणनको वर्णन करते हैं ऐसे सर्वेश सर्वईशनके ईश स्वामी शिवजीहैं जे आनन्दवन जो काशीहै तामें आसीन वास किहे हैं सो तुलसीदासके त्रासहारी होहिं अर्थात् कलियुगकी भयकरिकै त्रासनाम डरसहितहौं ताते प्रभुकी शरणागती दै मेरा डर मिटाइ दीजै ६ ॥

(१२) शंकरं संप्रदं सज्जनानंददं शैलकन्यावरं परमरम्यं ।
कामनदमोचनं तामरसलोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं १

कम्बुकुंदेंदुकपूरगौरं शिवं सुन्दरं सच्चिदानन्दकन्दं ।
सिद्धसनकादियोगीन्द्रवृन्दारकाविष्णुविधिवंद्यचरणारविन्दं २
ब्रह्मकुलवल्लभं सुलभमतिदुर्लभं विकटवेषं विभुं वेदपारं ।
नौमि करुणाकरं गरलगंगाधरं निर्मलं निर्गुणं निर्विकारं ३
लोकनाथं शोकशूलनिर्मूलिनं शूलिनं मोहतमभूरिभानुं ।
कालकालं कलातीतमजरं हरं कठिनकलिकालकाननकृशानुं ४
तज्ञमज्ञानपाथोधिघटसंभवं सर्वगं सर्वसौभाग्यमूलं ।
प्रचुरभवभंजनं प्रणतजनरंजनं दासतुलसी शरणसानुकूलं ५

टी० । शंकरं शंनाम कल्याण ताके करनहारे हैं कैसे कल्याण करनहारे हैं सं-प्रदं संनाम संपूर्ण सुखादिके प्रदनाम देनहारे हैं पुनः सज्जननको आनन्द देनहारेहैं ऐसे शैलकन्यावर गिरिजाके पति उदार हैं पुनः परमरम्य अत्यंत सुन्दर स्वरूपवान् हैं पुनः सवल कैसे हैं कि काम को जो मद तिसके मोचननाम छुड़ानेवाले हैं पुनः दयावंत कोमल कैसे हैं कि तामरस जो कमल तद्वत् लोचन नेत्र करुणारसभरे हैं पुनः भावगम्य प्रीति करिकै प्राप्त होते हैं ऐसे वामदेव जो शिवजी ताहि भजे तिनहिं मैं भजत हौं सेवन करत हौं १ कैसे सुन्दर हैं कि कंबु जो शंख तैसे चिक्कन पावन गौर पुनः कुंदके फूल सम कोमल रसीले गौर पुनः कपूरसम सुगंध सहित इत्यादि गौर तनु है जिनको सर्वांग सुठौरबने ऐसे सुंदर स्वरूपवानन् जो शिव ते कैसे हैं सच्चिदानन्दकन्द अर्थात् सत् कहे शुद्धरूप चित्कहे सदाचैतन्य पुनः अखंड आनन्द ताके कन्दनाम मूल अथवा आनंदरूप जलभरे मेघ हैं कैसे सच्चिदानन्द हैं कि जिनको सबै माथ नावत को माथ नावत यथा अणिमादिक प्राप्तिवाले सिद्ध पुनः आत्मदर्शी मुनिसनकादि पुनः योगींद्र योगिनमें जे श्रेष्ठ याज्ञवल्क्यादि पुनः वृन्दाकर जो इन्द्रादि देवता पुनः विष्णु अरु विधि अर्थात् उत्पात्ति पालन करनहारे इत्यादि चरणवंद्यम् शिवजी के चरणारविन्दनकी सबै वंदना करते हैं २ ब्रह्मकुल ब्राह्मणनके गोत्रमात्र के वल्लभनाम प्रिय हैं भाव सबै उपासना करते हैं पुनः हैंतौ अत्यंत दुर्लभ दुःखौकरि प्राप्त होनेहार नहीं परन्तु दयालु ऐसे हैं कि सुलभ थोरेही पूजादिते प्रसन्न होतेहैं पुनः विकट करालवेष हैं अर्थात् जटा सर्प भस्म कपाल डमरू धारण किहे हैं पुनः विभु समर्थ ऐसे हैं जिनकी गतिको वेद पार नहीं पावत पुनः निर्मल शुद्धरूप निर्गुण तीनिहुँ गुणनते पर निर्विकार कामादि विकार रहित ऐसे दुर्लभ ते संसारके हित हेतु शीशपर गंगा धारण किहे भाव जिनको जगमें पठाइ सुलभ लोगनको कल्याण कीन्हे पुनः कंठ में गरल विष धारण किहे भाव सबको जरत देखि पानकरि लीन्हे ऐसे करुणाके आकर खानि शिवजी को नमस्कार है ३ लोकनके रक्षाकरनहारे इति लोकनाथहैं प्रियवियोग इष्टहानि भय वंधन दरिद्रतादि शोक तथा रोगकी पीड़ा यथा शिर नेत्र श्रवण मुख उदर कटि इत्यादि में जो शूल इत्यादि के निर्मूलन जर सहित नाशकर्त्ता शूलिनं त्रिशूल धारणकरनहार मोहरूप तमभूरि अंधकार बहुत ताके नाशकर्त्ता भानु सूर्य हैं पुनः कालके भक्षणकर्त्ता महा-

कालहू पुनः उत्पन्न पालन नाश तथा जन्म बाल कुमार पौगंड किशोर युवा वृद्ध इत्यादि जो कला हैं तिनते अतीत परे अर्थात् सदा एकरस रहते हैं अजर जरा अवस्थारहित भाव न बढ़े न घटै ऐसे जो हर तें कलिकालरूप कानन जो वन ताको भस्मकरिबे हेतु कृशानु कहे अग्निहैं भाव कलि प्रभावको नाश करिदेते हैं ४ तत्त्व नाम तत्त्व सिद्धांत के जाननेवाले हैं पुनः अज्ञानरूप पाथोधि जो समुद्र ताको सोखि लेवे हेतु घट संभव नाम अगस्त्य हैं सर्वगं सर्वभूतमात्र में गं कहे व्याप्त हैं पुनः भोजन वसन भूषण वाहन गंध पान राग नृत्यादि मनभावत प्राप्ती इत्यादि जो सब प्रकार की सुन्दर भाग्यहै ताके उपजावने हेतु मूलहैं भाव शिवार्चनकरतसंते भाग्यांग बढ़तजाते हैं पुनः भवभंजन प्रचुर संसाररूप सागर के नाशकर्त्ता करिकै प्रसिद्ध हैं प्रणत जो शरणागत जन तिनको रंजननाम आनन्द देनहारे ऐसे सानुकूल सहज प्रसन्न होते जानि तुलसीदासहू शरणमें आनन्दहेतु आया ५ ॥

राग वसन्त।

(१३) सेवहु शिवचरण सरोजरेनु। कल्याण अखिल प्रदकामधेनु १
कर्पूरगौर करुणाउदार। संसारसार भुजगेंद्रहार २
सुखजन्मभूमि महिमाअपार। निर्गुण गुणनायक निराकार ३
त्रयनयन मयनमर्दन महेश। अहंकार निहारउदितदिनेश ४
वरबालनिशाकर मौलि भ्राज। त्रैलोक्यशोकहर प्रमथराज ५
जिनकहँविधिसुगति न लिखीभाल। तिनकी गति काशीपति कृपाल ६
उपकारी कोऽपर हर समान। सुर असुर जरत कृत गरलपान ७
बहुकल्प उपायन करि अनेक। बिनु शम्भुकृपा नहिं भवविवेक ८
विज्ञानभवन गिरिसुतारमन। कह तुलसिदासममत्रासशमन ९

टी०। हे मन! शिवजीके चरणकमलनकी रेणु पगधूरि को सेवन करु कैसी वह धूरिहै कि अखिल कल्याण अर्थात् लौकिक पारलौकिक यावत् मंगलानन्द हैं तिन सब को प्रदनाम देनहारी फिर कैसी है यथा कामधेनु सेवन करतसंते सबफल देत १ शिवजी कैसे हैं यथा कपूर तद्वत् गौरवर्ण सुगंधयुत पुनः सेवकको दुःखदेखि आपहू दुःखित ह्वै शीघ्र दुःखहरत इति करुणागुणभरे पुनः उदार याचकमात्रको परिपूर्ण दान देनहारे हैं पुनः संसार चराचरके सार अन्तर्यामीरूप सबमें वास किहे हैं भुजंग इन्द्र सर्पनके राजा जो शेष तिनको हार बनाये पहिरेहैं २ सुखकी जन्मभूमि लौकिक पारलौकिक यावत् सुख हैं तिनको उपजावने की भूमि जाकी महिमा अपार है अर्थात् जाको गावतसन्ते सब सुख तौ उत्पन्न होते हैं परंतु गाइकै कोऊ पार नहीं पावताहै निर्गुण रज तम सतादि गुणनके वश नहीं हैं क्योंकि गुणनायक हैं सबगुण जाके आज्ञाकार हैं पुनः निराकार आकार जो पंचभौतिक माया सो जिन में नहीं है शुद्धआत्मारूप हैं ३ चन्द्र वामनेत्र सूर्य दक्षिणनेत्र अग्नि भालके नेत्र इति तीनि नयन हैं जाके ताही अग्निनेत्रकरि मयनमर्दन कामदेवको भस्मकरि दीन्हे पुनः अहंकार सोई निहारनाम पाला है जननको जड़ करि देताहै ताके नाश करिबे हेतु उदित दिनेश सूर्यसम उदय हैं ४ वरबाल श्रेष्ठ अमल द्वितीया को निशा-

कर चन्द्रमा मौलिभ्राज शीश पर विराजत हैं भूत वैतालादि रुद्रगण इत्यादि जो प्रमथ तिनके राजा अर्थात् स्वाभाविक दुःखदायकनके राजा परंतु त्रैलोक्य शोक दुःख हरिलेनहारेहैं ५ काहेते जानिये त्रैलोक्य शोकहर हैं कि जिन जीवनके भाल माथे में विधाताने सुगति नहीं लिखी है तिनहूंकहँ निजपुरी में सुन्दरिगति मुक्ति देते हैं ऐसे कृपालु कृपागुणधाम काशीके पतिहैं भाव वेस्वारथ परदुःख हरते हैं ६ पर उपकारी हर समान को परस्वारथ करनहारा शिवजी के समान सुर नर नागादि और को है काहेते सुर असुर जरत जाकी ज्वालनते देवता दैत्यादि सब जरे जाते रहैं तिनकी रक्षाहेतु गरलपानकृत महाकराल विषको पानकरिलिये ७ पुनः जप तप पूजा पाठ होम यज्ञ तीर्थ दान व्रतादि सत्कर्म्म अथवा यम नियम आसन प्रत्याहार प्राणायाम ध्यान धारणा समाधि इत्यादि अष्टांगयोग अथवा शम दम उपराम तितिक्षा श्रद्धा समाधान इत्यादि अनेकन उपाइ बहुते कल्पनतक करिये कि जामें संसारते विराग होवै विवेक करि देहभाव इत्यादि आतमभाव दृष्टि ते भवते पार आइये परन्तु विना शिवजी की कृपा भवविवेक नहीं अर्थात् संसार छूटना दुर्घट है ८ हिमगिरिसुता पार्वती तिनके रमण शिवजी विज्ञान के भवन ब्रह्मानन्द अनुभवके मन्दिर अरु तुलसीदास की त्रास कलियुग की भय ताके शमन नाशकर्त्ता हैं ९ ॥

(१४) देखो देखो बनबन्यो आजु उमाकन्त। मानोदेखन तुमहिं आई ऋतुवसन्त १ मानो तनुद्युति चम्पककुसुममाल। बरवसननील नूतन तमाल २ कलकदलिजंघ पदकमललाल। सूचक कटिकेहरि गति मराल ३ भूषण प्रसून बहु विविधरङ्ग। नूपुर किंकिणि कलरव विहङ्ग ४ कर नवल बकुल पल्लव रसाल। श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल ५ आननसरोज कच मधुपपुंज। लोचनविशालनवनील कंज ६ पिकवचन चरित वर वरहि कीर। सित सुमन हास लीला समीर ७ कस तुलसिदास सुनु शिवसुजान। उर वसि प्रपंच रचे पंचबान ८ करि कृपा हरिय भ्रमफंदकाम। जेहि हृदय वसहिं सुखराशि राम ९ ॥

टी०। इहांतक शिवजीका यश कीर्त्ति प्रताप मैं गुणगानकरि अपनी याचकता जनाये चरणसेवन मनको उपदेश व्याज सेवकता दरशाये अब शिव पार्वतीयुत जो अर्द्धांगहैं ताकी शोभा कहा चाहतेहैं तहां केवल शिवजीको तनुतो पूर्व वर्णनकरि चुके केवल पार्वतीजीके सर्वांग की शोभा कहा चाहते हैं तहां जगत्मातुकी शोभा कैसे कहिसकैं इसहेतु अतिशयोक्तिरूपक अलंकारमें कहत भाव उपमान की शोभा वर्णनकरि उपमेयको बोध करत अर्थात् वन को उपमान कहि शिवजीको उपमेय सूचित कीन्हें पुनः ताही वन अर्द्धांग में वसन्त ऋतु की सर्वांग शोभा उपमानकहि पार्वतीजी के सर्वांग की शोभा सूचित करते हैं यथा हे शिवजी! देखिये देखिये आजु वन उमाकंत बन्यो है भाव यथा आपु पार्वतीजीको अर्द्धांगमें मिलाये हैं तैसेही

वसन्त ऋतुको अर्द्धांग में मिलाइ अरु दिगम्बर उदासीन तपसी परोपकार उदारतादि गुण लीन्हे वन आपुको रूप बनाहै तहां वसन्तऋतु आपुको देखन आई है भाव शिवजीके अर्द्धांग में यथा गिरिजा की शोभा ताहीतुल्य वनके अर्द्धांग में मेरी शोभा सर्वांग में परिपूर्णहै कि नहीं इति अद्भुत शोभा देखिये १ पार्वतीजीके तनुकी गौर शोभाहै तथा वनमें चंपक कुसुममाल चंपाके फूलन को समूह सोई मानो वसन्तऋतु के तनुकी द्युति प्रकाश है इहां गौरअंग में श्यामरंग की सारी शोभा देत तथा वनमें जो श्याम तमालके वृक्ष नूतन नवीन पल्लव सहित सोई ऋतुके तनुमें वरनाम उत्तम वसनहैं श्यामरंग सारी २ इहां चिक्कन लावण्यतायुत सुढर चढ़ाउतार जंघाहैं वनमें कलकदलि सुन्दर जो केलाके वृक्षहैं सोई ऋतु के सुन्दर जंघाहैं पुनः इहां अरुण कोमल पदहैं तथा वन तड़ागनमें जो लालरंग कमलफूले हैं तेई ऋतुके पद हैं पुनः इहां पार्वतीजी की कटिसूक्ष्म है तासमता सूचक वनमें केहरि हैं अर्थात् सूक्ष्मकटिवाले जो सिंह हैं सोई ऋतु आपने कटिकी सूक्ष्मता जनावती है इहां मन्दगतिहै तथा वन तड़ागनमें जहां कमलपद तहां जो हंसहैं सोई ऋतुकी मन्दगति है ३ इहां पार्वतीजीके शीशपै चूड़ामणि भालपर टीका श्रवण ताटंक नासावेसरि कण्ठ मालादि भुज में वाजूवंदांगदादि करमूल कंकण अँगुरिनमें मुद्रिका इत्यादि भूषण धारण किहेहैं तथा वनमें जो विविध अनेक रंगके प्रसून फूल जो बहुत फूलेहैं तेई ऋतुके अंगनमें भूषण शोभित हैं इहां पदनूपुर कटिकिंकिणिमें शब्द होता है तथा वन में कलहंस जलकुक्कुट कीर कोयलादि विहंगन को कलरव सुंदर शब्द ह्वै रहा है सोई ऋतु के नूपुर किंकिणी आदि को सुन्दर शब्द है ४ इहां पार्वतीजी के कोमल सचिक्कन सुढर भुज तथा अरुण हथेली हैं तथा वनमें वकुल रसाल मौनसिरी अंबादि के नव नवीनशाखा तथा नवीन पल्लव सोई ऋतु के कर अर्थात् भुजा नवीन शाखा पल्लव हथेली हैं इहां सकुच कंचुकी है तथा वनमें श्रीफल जो बेलके फल सोई सुभग मनोहर गोल कठोर ऋतुके कुच उन्नत पयोधर हैं तिन पर जो लतन को जाल फैलि रहो है सोई चोलीपहिरे हैं ५ पार्वतीजी को सुन्दर मुख है तथा वन तड़ागनमें जो पीतवर्ण सरोज जो कमल फूलो है सोई ऋतुको आनन मुख है इहां शीश में सचिक्कन श्यामकच बार हैं तथा वनमें मधुपपुंज भवँरासमूह जो फूलन पर बैठे हैं सोई ऋतु के माँगमोती सिंदूरयुत गुहे बार हैं इहां करुणारस के भरे खंजन बड़े बड़े लोचन हैं तथा वन तड़ागनमें जो नीलरंग कमल नवीन फूले हैं सो ऋतु के विशालनेत्र हैं ६ पार्वतीको कोमल वचन है पुनः नृत्यगान वाक्विलासहास्यादि अनेक लीलाचरित करती हैं तथा वनमें जो पिक कोकिला बोलिरहीं सोई ऋतुको मधुर वचन है पुनः वरहि मयूर जो नृत्यकरिरहे हैं पुनः कीर सुवा जो अनेकभांति बोलिरहे हैं इत्यादि ऋतुके चरित हैं सित सुमन सफेद फूल जो फूलिरहे हैं सोई हँसनि है शीतल मन्द सुगंध समीर जो पवन चलत सोई ऋतुकी अनेक विधिकी लीला है ७ इत्यादि अर्द्धांगरूप वर्णनकरि पुनः कहत कि हे शिवजी! आपु सुजान हैं विचारसहित तुलसीदासकी कही वार्त्ता सुनिये भाव वसन्तऋतुमें वनकी शोभा कामोद्दीपनकरनहारी होत सो मुमुक्षुनको बाधक है इसहेतु आपुते मैं प्रार्थना करता हौं कि मारण मोहन उच्चाटन आकर्षणादि मंत्रित करवीर कंज गुलाब केवड़ा

केतकी आदि फूलनके पांचौबाण धारण करनेवाला इति पंचवाण जो काम सो ऐसा सबल है कि उरमें बरबस बसा है सो प्रपञ्चरचे है अर्थात् शांति श्रद्धा विवेक विरागादि जो सत्पन्थ हैं तिनके मतको मानि जीव परमार्थ मार्ग जावा चहत तहां काम मन को मिलाई सत्पन्थन को मतरोकि शब्द स्पर्श रूप रस गंध इत्यादि जो प्रपञ्च हैं अर्थात् असत्को सत्यकरि देखावनेवाले तिनके मतते जीवको भवसागरको लै-जावाचाहत है इत्यादि प्रपञ्च रचेहै भाव जीवको इन्द्रियनद्वारा सुख में भुलाये है ८ कैसे भुलाये है कि संसार को सुख झूठाहै ताको सांचकरि देखावताहै इत्यादि भ्रमरूप वृक्षको उपजावने को कन्दमूल जो काम है सो बरबस उरमें बसा दुःख-दायक है ताके आपु शत्रुहो इसहेतु हे शिवजी! आपु ते दादिकरताहौं ताते मेरे ऊपर कृपा करि कामको हरिये कामनाश करिये तौ हृदय अमल होइ ज्यहिमें सुखके राशि श्रीरघुनाथजी हृदयमें बसें तिनके प्रभावते दुःख मिटै सब सुख उत्पन्न होइ ९॥

(१५) दुसहदोषदुखदलनि करु देवि दाया।

विश्वमूलासि जनसानुकूलासि शरशूलधारिणि महामूलमाया १

तडितगर्भांगसर्वांगसुंदरलसत दिव्यपट भव्यभूषण विराजै।

बालमृगमंजुखंजनविलोचनि चन्द्रवदनि लखि कोटिरतिमार लाजै २

रूपसुखशीलसीमासि भीमासि रामासि वामासि वरबुद्धि बानी।

छमुखहेरम्बअम्बासि जगदम्बिके शम्भुजायासि जयजय भवानी ३

चंडभुजदंडखंडनि बिहंडनि मुंड महिषमदभंगकर अंग तोरे।

शुंभनिःशुंभकुंभीशरणकेशरिणि क्रोधवारिधिवैरिवृन्द बोरे ४

निगमआगमअगमगुर्वितवगुणकथन उर्विधरकहतजेहिसहसजीहा।

देहि मां मोहिं प्रण प्रेम निज नेम यह रामघनश्यामतुलसीपपीहा ५

टी०। प्रभुके द्वार देवनकी पूजा जोनेक्रमते अगस्त्यसंहितामें लिखीहै ताहीक्रम प्रथम गणेश पुनः सूर्य पुनः शिवेत्यादिते प्रार्थना करिचुके अब धात्री जगत्माता पार्वती के गुण गाइ प्रार्थना करत कि आपु प्रभुके चतुर्थ द्वार देवनमेंहौ अरु मैं प्रभु की शरण आयाहौं तहां अनेक बाधनको दुःखहै ताते हे देवि! दाया करु दुःख हरिये कैसीहौ आपु दुसह जो सहि न जाइ ऐसे हिंसा अधर्मादिदोष तिनको फलभोग दुःख इत्यादि को दलनि नाशकरनहारी हौ काहेते विश्वमूलासि विश्व जो सब सं-सार ताकी मूल आदिशक्ति असि नामहौ यद्यपि संसार की रक्षकहौ ताहूपर जन सानुकूलासि अर्थात् साधारणतौ सबकी माताहौ तामें जे आपुके जन हैं तिनपर सानुकूल अधिक प्रसन्न रहती हौ तिनके रक्षाहेतु हे महामाये! शर बाण त्रिशूल धारण किहेहौ १ तडित्को गर्भ बिजुली को सारांश तद्वत् गौरता सर्वअंग सुठौर बने ऐसे सुन्दर लसत शोभादेत तामें दिव्यपट जो नित्य नवीन बने रहत ऐसे बसनसारी आदि तथा भव्य मंगलमय सुन्दर मणि कनकजटित टीका ताटंकादि भूषण अंगनप्रति विराजते हैं पुनः बालअवस्थाके मृगके ऐसे विशाल ललित नवल

लावण्यता भरे खञ्जनी सरीखे कजरारे चञ्चलतायुत ऐसे विलोचन दोऊ नेत्र हैं चन्द्र सरीखे मुख है जाको इति हे चन्द्रवदनि ! आपुकी शोभा लखि देखिकै रति अरु मार कामदेव लजातहैं २ जो विना भूषणै भूषितवत् देखाइ ताको रूप कही भोजन वसन भूषण वाहन धन धामादि प्राप्ती ताको सुख कहिये जो छोटे बड़े सबको प्रियवचनपूर्वक बड़ाई आदर देइ ताको शीलकही इत्यादिकी सीमा मर्यादाही पुनः जननके शत्रु दुष्ट दैत्यादिकनके हेतु भीमासि भयंकरही पुनः रामासि लक्ष्मीरूप हौ वामासि अत्यंत सुन्दर स्त्रीरूपहौ पुनः वर श्रेष्ठवाणी सम बुद्धिमान्हौ पुनः षट्मुख अरु हेरंब जो गणेश तिनकी अंब माता हौ शंभुकी जाया पत्नीहौ हे जगदम्बिके जगत्जननी भवानी ! आपुकी जय होइ जय होइ ३ चंडनामदैत्यके भुजदंडनको खंडनि काटनहारी हौ मुंड दैत्यको विहंडनि विशेष नाश करनहारीहौ महिषासुर ऐसे बली को मदभंग करि बलहीन करि ताके सब अंग कर पदादि तोरिडारेउ कुंभी हाथी ताके ईश महामत्तहाथी सम शुंभ तथा निशुंभ उद्भटबली रहे तिनके हेतु केशरिणि सिंहिनि सम है सहजहीं रणमें मर्दन किहेउ इत्यादि क्रोधरूप वारिधि समुद्र में अनेकन वैरीवृन्दनको बोरिडारेउ ४ हे पार्वतीजी ! कीर्ति यश प्रतापादिवर्द्धक जो प्रणतपालता दयालुता कृपालुता शोभा करालता बलवीरता तेज उदारतादि गुणनके गण जो आपुमें हैं तिनको कथन वर्णन करना निगमागम वेदशास्त्रादिकन को गुर्वि गरू हैं भाव वर्णन नहीं करिसकत तथापि गुण कथन करते हैं उर्विधर पृथ्वीको धारण करनेवाले जो शेषजी जाके सहस्रजीहा हजार जीभेंहैं तेऊ कहिकै पार नहीं पावत ताको मैं कहांतक कहौं हेमा माता पार्वतीजी ! अब पन प्रतिज्ञा सहित प्रेमको यह नेम मोको देहु कया देहु सो कहत कि निजराम आपु श्रीरघुनाथजी स्वाती के श्यामघन होहिं तिनकी शोभा अवलोकनरूप बुंदपान करिबे हेतु तुलसीदास पपीहा बनेरहैं भाव अनन्यता सहित श्रीरघुनाथजीकी प्रेमाभक्ति अचल करि दीजिये ५ ॥

राग सारंग।

(१३) जय जय जगजननि देवि सुरनरमुनिअसुरसेवि भुक्तिमुक्तिदायिनि भयहरणि कालिका। मङ्गलमुदसिद्धिसदनि पर्वशर्वरीशवदनि तापतिमिर तरुणतरणिकिरणमालिका १ वर्म चर्म करकृपाण शूल सेल धनुष बाण धरणि दलनि दानवदल रणकरालिका। पूतना पिशाच प्रेत डाकिनि शाकिनि समेत भूत ग्रह बेताल खग मृगालि जालिका २ जय महेशभामिनी अनेकरूपनामिनी समस्तलोकस्वामिनी हिमशैलबालिका। रघुपतिपदपरमप्रेम तुलसी यह अचलनेम देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणतपालिका ३

टी०। जगत्को उत्पन्न पालन करनहारी हे जगजननि, देवि ! आपुकी जय होइ जय होइ कैसीहौ आपु सुर नर मुनि असुरसेवि सेवा करिबे योग्य अर्थात् देवता मनुष्य मुनि दैत्यादि सबै आपुकी सेवा करते हैं काहेते सेवा करते हैं कि आपु भुक्ति औ मुक्तिदायिनि हौ पुनः राज चोर अग्नि भूत रोग दोषादि बाधा काजो

भय डर होता है ताको कालिका करालरूपते हरि लेतीहौ, सेवक को अभय राखतीहौ सो मार्कंडेयपुराणते प्रसिद्ध है पुनः मंगल जो प्रसिद्ध उत्सव हैं यथा पुत्रजन्म विवाहादि पुनः मुद जो मनवांछितभये मनमें आनन्द होती है पुनः अणिमादिक सिद्धी इत्यादि की सदनि परिपूर्ण मन्दिरेहौ पर्व जो शरदपूर्णिमा ताको शर्बरीश रात्रिको स्वामी चंद्रमा तद्वत् वदनि अर्थात् शरदपूर्णचंद्रसम मुख है ताकी कृपारूप किरण करिकै दैहिक दैविक भौतिकादि ताप मिटाइ शीतल करिदेतीहौ पुनः मोहादि तिमिर हृदयको अन्धकार है ताके नाशकरिये हेतु तरणि जो सूर्य तिनकी तरुण नवीनी किरणनिकी मालिका अर्थात् मोहांधकार नाशिवेको समूह सूर्यकिरण सम हौ १ वर्म जो बखतर सो देह में धारण किहे हौ पुनः आठ जो भुजा हैं तिनमें वामदिशि एकमें चर्म ढाल एकमें धनुष एकमें परशु एकमें गदा पुनः दहिने एकमें कृपाण तरवारि एकमें त्रिशूल एकमें सेल जो सांग एक में बाणइत्यादि अस्त्र करनमें धारण कीन्हे दानवदलदलनि दैत्यनकी सेना नाश करिवेहेतु रणमें करालिका भयंकरहौ पूतना शिवजीकी बनाइ बालग्रहन में है पिशाच मांसाहारी तुच्छ देवता प्रेत मृतक नर डाकिनी रावणकी वहिनी बालग्रह शाकिनी योगिनी पिशाचिनी आदि इत्यादि खग पक्षी समहैं तिन समेत पुनः भूतभयंकर रुद्रगण पुनः विशाखा शकुनि रेवती आदि यावत् बालग्रह वा नवग्रह अरु वेताल ज्वालामुखवाले पिशाच इत्यादि मृगनकी अलि पंक्ती हैं इत्यादि खग मृगालिन को पकरि लेवेको आपु जालिका जालरूपहौ २ हे महेशभामिनि शिवजीकी पत्नी ! आपुकी जय होइ आपु कैसी हौ काली सती दुर्गा भवानी इत्यादि अनेकरूप तथा अनेक आपुके नाम हैं पुनः समस्तलोकनकी स्वामिनी आदिशक्ति हौ हे हिमशैलबालिके हिमाचल की पुत्रि ! रघुनाथजी के पदकमलनको अत्यन्त परमप्रेम अचलनेम सहित तुलसी चाहत हैं सो कृपाकरि देहु हे मातु ! आपु शरणागतको पालनकरनहारी हौ ताते मांगेउ ३ ॥

(१७) जयजय भगीरथनंदिनी मुनिचयचकोरचंदिनी नरनागविबुधवंदिनी जय जह्नुबालिका। विष्णुपदसरोजजासि ईशशीश पर विभासि त्रिपथगासि पुण्यरासि पापछालिका १ विमल विपुल बहसि बारि शीतल त्रयतापहारि भँवरवरविभंगतरतरंगमालिका। पुरजनपूजोपहार शोभित शशिधवलधार भंजनि भवभार भक्तकल्पथालिका २ निज तटवासी विहंग जल थल चर पशु पतंग कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका। तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुवंशवीर विचरत मति देहु मोहमहिषकालिका ३

टी०। प्रभुके द्वार देवनमें पंचमगंगाजी के गुण गावत यथा हे भगीरथनंदिनि ! भाव भगीरथद्वारा भूमंडल में प्रकटभई ताते पुत्री कहे आपु कैसीहौ मुनिचय कहे समूह मुनिचकोरवत् आपुको अवलोकतेहैं तिनको सुखदायक आपु चांदनीरातिहौ ऐसी सुखदाता आपुकी जय होइ पुनः हे जह्नुबालिके ! ऐश्वर्य आपुका कैसा है कि नर

भूतलवासी नाग पातालवासी विबुध देवता स्वर्गवासी इत्यादि वंदिनि अर्थात् त्रैलोक्यवासी आपुको सदा माथ नावते हैं ताकी जय होइ आश्रम बूड़त देखि जाह्नवी ऋषि पानकरि लिये भगीरथकी प्रार्थना ते पुनः प्रकट कीन्हे ताते जह्नुपुत्री कहे विष्णुके पदसरोज भगवान् के पदकमलनते जा नाम उत्पन्नभइउ पुनः शंभुजी के शिरपर विशेष करिके भा नाम शोभा देतीहो पुनः त्रिपथगामि स्वर्ग पाताल भूतल तीनिहूं लोकनको गमन कीन्हेउ भगवत् पाँयनते उत्पन्न शिव शीशपर वास ऐसी पुण्यकी राशि ढेरी हो कि दरशपरशमात्र पापनको छालिका धोइ डारने वालीहो १ मैलरहित विमल वारि जो जल सो विपुल बहुत अगाध बहतीहो सो कैसा जल है कि पान करनेमें शीतल मधुर है पुनः स्नान पानते त्रैतापहारि तीनिहूं तापनको हरिलेनहारीहो अर्थात् ज्वर संग्रहणी आदि जो रोगादि सो दैहिक तापहैं ताको हरि लेती हैं ताते देहको पुष्ट करती हैं पुनः व्याघ्र सर्पादि जीवनते जो बाधा सो भौतिक ताप है ताको मेटि मनको अभयतारूप पुष्ट करती हैं पुनः जो देवनते भयहोइ सो दैविकताप है ताको मिटाय जीवको स्वतंत्रतारूप पुष्ट करती हैं पुनः घर भँवर अगाध बहनेते जल में उत्तम आवर्त्त परते हैं पुनः विभंगतर कहे बहुत चंचलता से अत्यन्त श्रेष्ठ तरंगनकी माला धारण किहे हौ निकटके पुरजनन जो गंगाजी की पूजा कीन्ही तिनको उपहार सामग्री यथा फूल फूलमाल कपूरयुत चंदन दुग्धादि मिलेते शशिधवल चंद्रमासम उज्ज्वल धारा शोभित है इति स्वरूपता पुनः प्रभाव कैसा कि जन्ममरणादि जो भवको भार ताको भंजनि तोरिके जीवको कल्याणदायक पुनः भक्तजनको जो रामसनेहरूप कल्पवृक्ष है ताको थालहा सम है जिनके सेवनते रामसनेह उपजतहै २ पुनः उदार कैसीहौ कि निज आपने तटवासी विहंग जे पक्षी कुक्कुट हंस सारसादिक जे जलचर तथा मोर कीर काक सारिका पिकादि जे थलचर हैं अथवा मीन कच्छप मगर घरियार मेंढुकादि जे जलचर पुनः थलचर भूमिचर निकटके पशु यथा गाइ भैंसि अज मेष लोवा शृगाल मृगादि पतंग कीटादि तथा जटिल जटाधारी तापस तपस्या करनेवाले इत्यादि सबको सरिस पालिका अर्थात् लघुता श्रेष्ठता नहीं विचारतीहो सबनको बराबरि ही पालन करतीहो ऐसी उदार आपुको जानि हे गंगाजी ! मोहरूप महिषासुर को नाशकरनहारी कालिका अर्थात् मोहादि विकार नाशकरिके ऐसी विमलमति देहु जामें श्रीरघुनाथजी को सुमिरत भजन ध्यानकरत सन्ते मैं तुलसीदास तुम्हारे तीरतीर विचरत रहौं ३॥

राग रामकली।

(१८) जयति जय सुरसरी जगदखिलपावनी । विष्णुपदकंज मकरन्द इव अम्बुवर वहसि दुखदहसि अघवृन्दविद्राविनी १ मिलित जलपात्रअजयुक्त हरिचरणरज विरजवर वारि त्रिपुरारि शिर धामिनी । जह्नुकन्या धन्य पुन्यकृत सगरसुत भूधरद्रोणि विदरनि बहुनामिनी २ यक्ष गन्धर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज युतकामिनी । स्वर्गसोपान विज्ञानज्ञानप्रदे मोहमदमदन

पाथोज हिमयामिनी ३ हरित गम्भीर बानीर दुहुँ तीर वर मध्य धारा विशद विश्वअभिरामिनी । नीलपर्यंककृतशयन सर्पेश जनु सहस शीशावलीस्रोत सुरस्वामिनी ४ अमितमहिमा अमितरूप भूपावली मुकुटमणिवंदि त्रैलोक्यपथगामिनी । देहि रघुवीरपदप्रीति निर्भर मातु दासतुलसि त्रासहरणि भवभामिनी ५

टी० । जयति सदा जय प्राप्त होती है जिनको ऐसी सुरसरी देवनदी गंगाजीकी जयहोइ काहेते सदा जय प्राप्त होती है कि अखिल जगत्पावनी समग्र जगत् भरे को पावन करतीहौ अर्थात् जगत् जीव जे दर्श स्नान पान करते हैं तिनके पापनको नाश कीन करती हौ इत्यादि सदा पापों ते जय प्राप्त होती हैं पुनः कैसी हौ कि विष्णुपदसरोजमकरंद इव वरअम्बु वहसि अर्थात् भगवान् के पदकमलों के मकरंद रसकी समान उत्तम जलको वहती हौ प्रभाव कैसा है कि दुखदहसि प्रिय वियोग इष्ट हानि रुज दरिद्रतादि दुःखनको भस्म करिदेती हौ कौनभांति ते अघवृन्द विद्रावनी पाप के झुण्डनको भगाइदेनहारीहौ अर्थात् जब पापनको भगाइ दीन्हेउ तब दुःख कहां है १ अजपात्र ब्रह्मा के कमण्डलु में आपुको जल मिलित है भरा है कैसा जल है हरिचरणरजयुक्त भगवान् के पाँयनकी धूरिसहित जल है अर्थात् ब्रह्मद्रव जहां समुद्रवत् भराहै तामें सब ब्रह्माण्ड अण्डासरीखे उतरातेहैं सोई जब वामनमहाराज लोकनापतमें स्वर्गको पाँव उठाये तिनके अँगुठाकी ठोकरते ब्रह्माण्ड आवरण फूटिगया उसी मार्ग ब्रह्मद्रव वहिआया भगवान् के पाँयनको स्पर्शपाय विरज अत्यन्त पावन ह्वैगया ॥ यथा ॥ विरजस्तमसः स्युर्द्वयातिगाः पवित्रः इत्यमरः ॥ अर्थात् रजोगुण तमोगुण जातरहा है जामें केवल सतोगुणमय अत्यन्त पावन है ऐसा वरवारि श्रेष्ठजल पुनः त्रिपुरारि शिरधामिनी शिवजी के शीश में घरकरि वास कीन्हेउ हे जह्नुऋषिकन्या गंगाजी ! आपु धन्य कृतार्थरूपहौ काहेते विप्र क्रोधाग्निजरे घोरगति के अधिकारी सगरपुत्र साठिहजार तिनको पुण्यकृत पावन कीन्हेउ उत्तम गति दीन्हेउ ऐसा प्रभाव पुनः बल कैसा है भूधर-द्रोणि बिदरनि अर्थात् कोमल जलधार वेगते पर्वतन के कन्दरा तोरत फारत चली आइउ पुनः बहुनामिनी क्रिया गुणन करिकै अनेकन आपुके नाम प्रसिद्ध हैं पुराणन में २ यक्ष कुबेर की जातिवाले गंधर्व गान विद्यावाले खेतुंबुरादि किन्नर अश्वाकार मुखवाले देव उरग सर्प वासुकी आदि दनुज दैत्य प्रह्लादादि मुनि कश्यपादि मनुज मृत्युलोकवासी इत्यादि कामिनीयुत जे मज्जहिं अर्थात् स्त्रीसमेत गांठिजोरिकै जे आपुकी जलधार में स्नान करते हैं तिनकी सुकृत जो पुण्याय सो पुंजनाम बड़ी भारी गनी जाती है. कैसी सुकृति होती है कि जे पापयुत हैं तिनके हेतु स्वर्ग की सोपान सीढ़ी हौ पापिनको पाप हरि स्वर्गको चढ़ाइ देती हौ पुनः जे सुकृती हैं तिनको विज्ञानप्रदे अनुभव ज्ञान देती हौ जे विषयी हैं तिनको ज्ञान देती हौ कौन भांति कि विषयिन में जो मोह अचैतन्यता है पुनः मद जो जाति विद्या धनादि की हर्ष तथा मदन कामाशक्ती इत्यादि सब विकार हृदयरूप तड़ाग में पाथोजनामक कमलसम प्रफुल्लितहैं तिनको नाश करिबे हेतु हिमयामिनी पालामय

रातिही सब विकार मिटाइ अन्तस शुद्ध करि देती हौ ३ अब स्थूलरूप शोभा की उत्प्रेक्षा करत यथा हरित गंभीर हरेरे रंग को अत्यन्त घन वन जो बानीर नाम बेत सो दुहं तीरमें बरं उत्तम शोभित है ताके मध्य में विश्वअभिरामिनी संसारको सुख देनहारी जो गंगाजी तिनकी विशद उज्ज्वल धारा शोभितहै ताकी कैसी शोभा देखात जस नीलपर्यंक पर सर्पशशयनकृत सर्पनके ईश शेषजी शयन कीन्हे हैं अर्थात् दुहूं किनारन में बेत को वन नहीं है नील रंग को पलँग बिछा है मध्य में श्वेतवर्ण गंगधार नहीं है शेषजी पलँग पर शयन कीन्हे हैं तहां शेषजी के हजार शीश हैं सो इहां सुर देवन की स्वामिनी जो गंगाजी तिनमें किनारे की भूमि ते सोताइ सोताइ ठौर ठौर जो जल बहि रहा है इत्यादि सुरस्वामिनी में जो अनेकन स्रोत हैं तेई शेषजी की सहस्र शीशन की अवली पंक्ती सोहती हैं ४ अमित महिमा प्रमाण रहित बड़ाई है जिनकी अमित संख्यारहित रूप है जिनके पुनः भूपनकी अवलीपंक्ती तिनके मुकुट की मणिन करिकै वंद्य वंदना कीनी जाती हौ अर्थात् सब लोकन के राजा बटुरिकै शीशन पर मणि मुकुट सहित आपुको प्रणाम करते हैं किस हेतु त्रैलोक्य पथगामिनी अर्थात् सुलभ जीवन को उद्धार करने हेतु तीनिहूं लोकन को चलीगइउ इति कृपा जानि सबै शीश नावते हैं ऐसी उदार जानि मैं भी याचना किया हे भवभामिनी शिवपत्नी! तुलसीदास की भी त्रास भयहरनहारी होहु अभय करहु कौन भांति हे मातु! निर्भर अतिशय परिपूर्ण श्रीरघुनाथजी के पाँयन की प्रीति दृढ़ करिकै देहु यही अभयस्थल है ५॥

(१६) हरणि पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित। बिलसति महि कल्पबेलि मुद मनोरथ फरित १ सोहति शशिधवलधार सुधा सलिलभरित। विमलतरतरंग लसत रघुवर के से चरित २ तो बिनु जगदम्ब गङ्ग कलियुग का करित। घोर भव अपारसिंधु तुलसी कैसे तरित ३

टी०। दैहिक दैविक भौतिकादि जो तीनि विधिकी तापैं हैं तथा मानसिक वाचिक कायिक तीनि विधिके पापहैं इत्यादि सुरसरिता देवनदी गंगाजी सुमिरणमात्र हरिलेती हैं अर्थात् गंगाजीको नामलेतही पाप ताप नाश होत पुनः महि पृथ्वीविषे कल्पबेलि लसत शोभितहै काहेते दर्शन मज्जनकरत सन्ते मुद मनोरथ सफल होतहै मनकी कामना आनन्द देनहारी हैं ताते कल्पलता हैं १ स्वरूपता कैसी है कि शशि धवल चन्द्रमासम श्वेतप्रकाशमान धारा सोहत पुनः पानकरिवे में स्वादिष्ठ पुष्ट सलिल सुधासम भरित जल अमृतसमान जिनमें भरा है पुनः विमलतर महाविमल अर्थात् रेणु पंक मलरहित ताको विमलकही पुनः कफ वातादि विकार रहित ताते महाविमल है इति ऐसी विमलतर तरंगें लसती हैं शोभित होती हैं यथा रघुवर के ऐसे चरित अर्थात् रामचरित कैसे हैं जिनमें काम क्रोध लोभादि मल नहीं ताते अमल पुनः ललित श्रवणरोचक पुनः जीवन को कल्याणकर्त्ता तथा अमल मधुर कल्याणकर्त्ता तरंगें भी हैं २ हे जगत्अम्ब जगत्मातु गंगाजी! तो बिनु अर्थात् जो आपु भूतल में प्रकट न होतीं तो नहीं मालूम है कलियुग अपनी राज्यमें जीवनकी

कौन कौन दुर्दशा करता परन्तु आपु ऐसी सुलभ उद्दार भूतल में प्रकट हौ कि सहजही जीवनको उद्धार करती हौ पुनः घोर महाभयंकर अरु अपार जाको पार पावना दुर्घट ऐसा घोर अपार भवसिंधु संसारसागर तामें तुलसी कैसे तरते भाव जे ज्ञान भक्ति में परिपूर्ण तत्पर हैं संसारसुखनते विरक्त ऐसे सवलते तौ चहले भवसिंधु के पारजाते परन्तु मेरे तौ कुछ भी वल नहीं रहे ताके हेतु आपु की कृपा सवल है सहजही पार करौगी ३ ॥

(२०) ईश शीश वससि त्रिपथ लससि नभ पताल धरनि । मुनि सुर नर नाग सिद्ध सुजन मंगलकरनि १ देखत दुख दोष दुरित दाह दारिद दरनि । सगरसुवनसाँसतिशमनि जलनिधिजलभरनि २ महिमा को अवधि करसि वहु विधि हरि हरनि । तुलसी करु वानि विमल विमलवारिवरनि ३

टी० । हे गंगाजी ! आपु ईश शिवजी के शीशपर वास किहेहौ पुनः तीनिपथ में गमन लससि शोभा देतीहौ तहां एक नभ आकाश मार्ग है स्वर्गको गइउ दूसरे पातालको तीसरे धरणि पृथ्वीपर वहिउ इति त्रिपथमें शोभितहौ ताते मुनिनको सुरदेवतनको नर मनुष्यन को नाग सर्पनको सिद्धनको सुजन हरिदासनको इत्यादि सबको मंगल करनहारीहौ भाव दर्शमात्रते पाप दुःख नाशकरि सुकृत उत्सव सबको वढ़ावतीहौ १ कैसे मंगलकरनहारीहौ कि आपुको देखत दर्शन पावतही जीव सुखी होत काहेते प्रियवियोग इष्ट हानि इत्यादि जो दुःख हैं पुनः जीवहिंसादि जो दोष हैं पुनः परहानि अपवादादि दुरित साधारण जे पाप हैं दैहिक दैविक भौतिकादि तापन की जो दाहतपनि हैं दरिद्रता जो महादुःख इत्यादिको दरनि दर्शनमात्रते नाश करिदेनहारीहौ काहेते साधारण पाप तापनकी कौन गनतीहै जे कपिलदेवके क्रोधाग्नि ते भस्म भये ताते नरकके अधिकारी भये ऐसे सगरसुवन पुत्र साठि हजार तिनकी साँसति शमनि यमपुरीको जो दंड रहे ताको मिटाइ उनको शुभगति दीन्हेउ पुनः जलनिधि जो समुद्र जामें अगाधजल भराहै ताहूमें जल भरनि आपने जलकरिकै ताहू को भरा करतीहौ भाव याचक वनायेहौ २ हरिके चरणपर्शि करि प्रकटिउ ताहीते भगवान् की वड़ाई भई ब्रह्मा के कमंडलु में वास कीन्हेउ ताहीते ब्रह्माकी वड़ाई भई शिवके जटा शीशमें वसिउ ताते शिवकी वड़ाई भई इत्यादि विधि हरिहर कोभी वहुत महिमाकी अवधि करसि वड़ाईकी मर्याद करनहारीहौ भाव आपही के सम्बन्धते त्रिदेवनको माहात्म्य लोकमें प्रसिद्ध भया ऐसी महिमा जानि मैं भी आपते प्रार्थना किया है हे विमलवारिवरणि ! अमल वरण जल धारण करनहारी गंगाजी तुलसीकी वानी विमल करु अर्थात् अंतरको विकार कामादि मल नाशकरि रघुनन्दनके गुणानुवाद गान करिवे योग्य अमलवानी करिदीजिये ३ ॥

राग विलावल ।

(२१) यमुना ज्यों ज्यों लागी वाढ़न ।
त्यों त्यों सुकृत सुभट कलिभूपहि निदरि लगे वहुकाढ़न १
ज्यों ज्यों जलमलीन त्यों त्यों यमगणमुख मलीन है आढ़न ।

तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघमेघ लागे डाढ़न २

टी० । अब प्रभुके पगद्वार देवन में यमुनाजी के गुणगावत यथा ग्रीषम में जल थोरा परे पर कलिकाल अभयमानि धर्मवंतनके अंतर प्रवेश करिगयउ कुमतिको प्रकाश करने लगो पुनः वर्षाऋतुपाइ वर्ष जल मिलि ज्योंज्यों यमुनाजी बाढ़नलगी त्योंत्यों नीति सत्य शौच दान दया विचार विवेकादि जे सुकृतके सुभटहैं ते सबल परें तातें कलिभूपहि निदरि कलियुग राजाको धर्मवंतनके उरते अच्छी भांति निकारि देन लागेउ भाव इहां तुम्हारा कामु नहीं है जाइकहीं अधर्मिन के उरमें वास करौ १ यद्यपि वर्षापाइ धारा बढ़ती है परन्तु जल मलीन ह्वैजाता है सो जलअमलतामें दूषणहै सो नहीं ग्रीषममें जलकी संकीर्णता देखि प्रसन्नतासहित यमगण भूतलमें विचरतेरहैं सो वर्षामें धाराबढ़तसंते ज्योंज्यों जलमलिन भयो त्यों त्यों यमगणन के मुखमें मलीनताह्वै स्याही पावते हैं आढ़न नाम स्यारन अर्थात् यमुनाजी के जल में मलिनता नहीं बढ़ती है यमगणनके मुखन में स्यारन कालिमा लागतजाती हैं आढ़क यथा ॥ अस्त्रियामाढकद्रोणौ इत्यमरः ॥ ग्रीषम में जवासा हरित होता है सोई वर्षा में मेघनको वर्षाजल परतही सूखिजाता तथा गोसाईंजी कहते कि कलियुगरूप ग्रीष्म पाइ जगत् अघ जगत् विषे पापरूप जवासा हरित परो पाप नवीन होनेलगे ताके हेतु यमुनाजी की प्रवाह धारा करि अनघ अहिंसा धर्मरूप मेघ हैं ते क्षमा दयादि जलवर्षि पापरूप जवासा को डाढ़न लगे जरावने लगे भाव यमुनाजी के स्नान करने ते धर्म्म बढ़त पापकर्म्म नाश ह्वैजात तथा मेरा मन शुद्ध कीजिये २॥

राग भैरव।

(२२) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।
शमनि शोक संताप पाप रुज सकल सुमंगलरासी १
मर्यादा चहुँ ओर चरन वर सेवत सुर पुरवासी।
तीरथ सब शुभ अंग रोम शिवलिङ्ग अमित अविनासी २
अन्तरअयन अयन भल थल फल बच्छ वेद विश्वासी।
गलकम्बल वरुणा विभाति जनु मूल लसत सरितासी ३
दण्डपाणि भैरव विषाण मलरुचि खलगण भयदासी।
लोलदिनेश त्रिलोचन लोचन करणघण्ट घण्टासी ४
मणिकर्णिका वदन शशिसुन्दर सुरसरि सुख सुखमासी।
स्वारथ परमारथ परिपूरण पंचक्रोश महिमासी ५
विश्वनाथ पालक कृपालुचित लालति नित गिरिजासी।
सिद्धि शची शारद पूजहिं मन जुगवत रहति रमासी ६
पंचाक्षरी प्राण मुद माधव गव्य सुपंचनदासी।
ब्रह्म जीव सम राम नाम युग आखर विश्वविकासी ७
चारितु चरति करम कुकरम करि मरत जीवगण घासी।

लहत परमपद पयपावन जेहि चहत प्रपंच उदासी ८
कहत पुराण रची केशव निज कर करतूति कलासी।
तुलसी वसि हरपुरी राम जपु जा भयो चहै सुपासी ६

टी०। अब क्षेत्रपाल काशीपुरी के गुण गावत यथा कलिकाल विषे सर्व फल देनहारी जो काशीरूप कामधेनु है ताको मनते सनेह सहित अरु तनुते देहभरि मरण पर्यंत सेइये अर्थात् इस काल में जो सुलभ सब फल चाहो तौ मन लगाइ काशी कामधेनु को सेवन करौ कैसी है काशी कि शोक संताप पाप रुज शमनि नाशकर्त्ता अर्थात् प्रियवियोग हितहानि दरिद्रतादि शोक जो दुःख है पुनः दैहिक दैविक भौतिकादि जो संताप संपूर्ण प्रकारकी तापैं हैं पुनः हिंसा परस्त्री परधन हरणादि जो पापहैं पुनः ज्वर संग्रहणी कुष्ठादि जो रुज रोगहैं इत्यादि अमंगल वस्तुनकी नाश करनहारी है पुनः प्रिय मिलन हित लाभ पुत्रजन्म विवाह हरि उत्सवादि सकल सुमंगलन की राशि ढेरी है सब प्रकार के उत्सव उपजावती है १ अब कामधेनु को रूप कहत यथा कामधेनुके चारि चरण होतेहैं इहां चारिहू ओर मर्यादा काशीकी जो सींव है सोई चारिहू चरण हैं यथा पूर्व पश्चिम द्वियो-जन तथा उत्तर दक्षिण अर्द्ध योजन अर्थात् वरुणा अरु असीकी मध्य यह सींवा है यथा अग्निपुराणे ॥ द्वियोजनं तु पूर्वं स्यात् योजनार्द्धं तदन्यथा। वरुणा च नदी चासीत् तयोर्मध्ये वराणसी ॥ इत्यादि मर्यादा सोई वर श्रेष्ठ चरण हैं तिनको सुरपुरवासी इन्द्रादिदेवता सब सेवन करते हैं यथा दर्शन प्रदक्षिणा प्रणामादि पुनः धेनुके मुख शीश ग्रीवा कंधा उर पृष्ठ कटि कुक्षि काख पुच्छ जानुनी शृंगादि सब अंग होते हैं इहां काशीजीमें यावत् तीर्थ हैं तेई सब शुभ अंग हैं तिनमें मुखादि जो आगे प्रसिद्ध वर्णन हैं तिनके सिवाइ जे अंग नहीं वर्णन कीन्हे तिनमें इनको जानिये यथा हरिश्चन्द्र मन्नातकेश्वर जयेश्वर श्रीपर्वत महालय भृगुचण्डेश्वर केदार इत्यादि जे मुख्य स्थान हैं ते शिर ग्रीव कंधा उर पृष्ठ कुक्षि जंघादिहैं पुनः धेनुके रोम होते हैं इहां अविनाशी अमित नाश रहित अनेकन जो शिवलिंग स्थापित हैं तेई रोम हैं २ धेनुरहने की शाला होती है इहां अंतर अयन सींवाके अन्तरकी भूमिका सोई भलअयन सुन्दरि शालाहै अथवा धेनुके आयनु होताहै दूध रहने को स्थान सो इहां पुरी को अन्तर अयन मध्यस्थल सोई भला आयन है तामें चारि थन चाहियें सो अर्थ धर्म्म काम मोक्षादि चारिउ फल सुलभ प्राप्ती तेई थनहैं धेनुके वच्छ होता है ताके मुखलागे पन्हाती है इहां वेद विश्वासी काशी महिमावर्णित जो वेदवचन तिनपर विश्वास राखनेवाले तेई वच्छ हैं तिनके-हेतु पन्हाना फलदायकता है धेनुके गलेमें खाल लटकी रहती है सो गलकंबल कहावत इहां उत्तर दिशि जो वरुणा नदी है सोई गलकंबल विभाति विशेषि शोभा देती है धेनुके पुच्छ होती है इहां दक्षिण दिशि जो असी सरिता नदी सोई जनु लूमलसति पुच्छ शोभित है ३ धेनुके सींगें होती हैं तिनते विरोधीजनन को डर पावती है इहां पुरी के कोतवाल भैरव दण्डपाणि औ हाथों में जो दण्ड लीन्हे विचरते हैं तेई विषाण सींगें हैं तिन करिकै खलगणन को भयदायक ऐसी है

कैसे खल जिनकी रुचि मल नाम पापकर्मन में है ऐसे दुष्टन को डरपावती है धेनु के नेत्र होते हैं इहां लोल दिनेश लोलार्क स्थान तथा त्रिलोचन स्थान तेई लोचन नेत्र हैं धेनु के गले में घण्टा बँधा रहता है इहां कण्ठघण्टस्थान घण्टा से शोभित हैं ४ धेनु के मुख होता है अन्तर सुख बाहेर तनु में शोभा होती है इहां मणिकर्णिका तीर्थ सोई शशिवदन चन्द्रमा सम मुख सुन्दर है तथा सुरसरि गंगाजी करि जो स्नान पानादि की सौलभ्यता सोई सुख पुनः निकट धारा दिव्य मन्दिर घाटादि की शोभा सोई सुखमा शोभा सरीखे है पुनः मन कामना देनहारी यह कामधेनु की महिमा होती है तथा इहां अभिलाषी जनन हेतु काशीजी में स्वार्थ जो लौकिक सुख यथा स्त्री पुत्र पौत्र भोजन वसन भूषण वाहन धरणी धन धाम आरोग्यता दीर्घायु सुमति धर्म आचरणादि पुनः परमार्थ परलोक में मोक्षइत्यादि परिपूर्ण मन भावत सब को देती हैं इत्यादि प्रकट प्रभाव पंचकोश क्षेत्र में है सोई इहां महि सरीखे है ५ धेनु को पालनहार चारा पानी आदि सब भांति ते रक्षा करत तथा वाकी स्त्री भारत पोंछत दुलारत कोऊ पूजत कोऊ धेनु को मन प्रसन्न राखत तथा इहां विश्वनाथ पालनहार ते कृपाभरे चित्त सों रक्षा करते हैं तथा गिरिजा गौरी दयावंत तेई लालत सदा दुलारत रहती हैं पुनः अणिमादिक सिद्धी अरु इंद्रपत्नी शची तथा शारदा इत्यादि मनवांछित पावने हित सदा पूजन करती हैं पुनः रमा लक्ष्मी ऐसी समर्थ तेई सदा मन जोगवत रहती हैं भाव मनोरथ अनुकूल कार्य सिद्ध कीन करती हैं ६ धेनु के पंचप्राण होते हैं इहां काशी कामधेनु में पंचाक्षरी जो शिव मन्त्र है यथा (नमःशिवाय) इत्यादि पांचों अक्षर पंच प्राण हैं यथा प्राण अपान समान उदान व्यान इति पंचपवन अन्तर बसते हैं तहां नकार प्राण है हृदय में बसत अरु नकार शुभाक्षर है ताते काशी के अन्तर सब मंगल उत्पन्न होत यथा ॥ रुद्रयामले । नकारे धनसम्पत्तिर्बहुलाभो भविष्यति । आरोग्यं सफलं कार्यं भवेत्तत्र न संशयः ॥ पुनः मकार अपान है गुदा में बसत अरु मकार अशुभाक्षर है यथा ॥ मकारे निधनं नाशमापदा च पदेपदे । न भोगो लभते तस्य सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ अपानवायु अन्तर को मैला गुदाद्वारा बाहेर करि देती है तथा काशी को अमंगलादि सब विकार को मकार सोंवाँ ते बाहेर करि देती है पुनः शिकार समान वायु है नाभी में बसत अरु शकार शुभाक्षर है यथा ॥ शकारे कार्यसिद्धिश्च सफलं च दिनेदिने । अर्थलाभं भवेन्नित्यं सर्वलाभं भविष्यति ॥ समानवायु नाभी में शुभ विचार चिंतवन करावती है तथा शिकार काशी के अन्तर सब कार्य सिद्ध करावती हैं पुनः वाकार उदान वायु कण्ठ में बसत तामें वकार अशुभाक्षर है परन्तु वामें अकार मिलो है सो शुभाक्षर है यथा ॥ वकारे धननाशं च ॥ इत्यादि पुनः ॥ अकारे विजयं विद्यात् ॥ इत्यादि ताको भाव यथा धेनु जो कछु खाती सो उदान वायु अन्तर को पहुँचाइ देती याते भले बुरेते काम नहीं ताको विभाग अन्तर की वायु करि लेती है तथा वाकार काशी के कण्ठ में रहत जो कछु भला बुरा आवत सब को अन्तर पठाइ देत उहां शिकार नकार शुभ कार्य को ग्रहण करि लेत जो विकार रहत ताको मकार बाहेर करि देत पुनः यकार व्यान वायु सब शरीर में बसत पुनः यकार शुभाक्षर है यथा ॥ यकारे चार्थलाभश्च धनधान्य-

समन्वितः। सौभाग्यं च भवेत्तस्य शुभं भवति सर्वदा॥ यथा व्यान वायु सब शरीर को चैतन्य राखत तथा यकार काशीजी भरे में कल्याण करनहारी है इत्यादि पंचाक्षर काशी के पंचप्राण हैं पुनः धेनु के मुदअन्तर में आनन्द रहत तथा काशीजी में जो विंदुमाधव भगवान् हैं तेई आनन्दरूप हैं पुनः धेनु को गोवर मूत्र दूध दही घृत इत्यादि एक में मिलाइ पंचगव्य बनावत ताके स्नान ते देह शुद्ध होत तथा काशीजी में जो पंचनद तीर्थ है सोई पंचगव्य सरीखे स्नान ते पावन करताहै पुनः धेनु के अन्तर ब्रह्मजीव चैतन्य करता है तथा काशीजी में जो रामनाम के दोऊ वरण हैं अर्थात् राकार ब्रह्म है मकार जीव है जे विश्वविकासी संसार भरे को प्रकाश करत तिनके प्रभाव ते मुक्तिदायक यह काशी की चैतन्यता है ७ धेनु हरित वा रूखी घासादि चारितु नाम चरहा में चरती है त्यहि करिकै तृप्त है पुष्टरी तब दूध देती है ताको पानकरि लोग स्वाद सुख पुष्टता पावते हैं तथा काशीरूप कामधेनु क्या चरती है इहां सुकर्म यथा दान व्रत पूजा तीर्थादि तथा कुकर्म हिंसा परस्त्री परधनहरणादि इत्यादि कर्म कुकर्म करि जे जीवगण यावत् पुरी के अन्तर मरते हैं तेई घास समान तामें सुकर्म हरितघास कुकर्म सूखी सम इत्यादि चारितु चरती है अर्थात् सबन के शुभाशुभ कर्म खाइजाती है काहेते सुकर्म को फल सुख लोकते स्वर्ग पर्यंत तथा कुकर्म को फल दुःख दरिद्रतादि नरक पर्यंत सो तौ इहां के मरे जीवन को कछु होतही नहीं क्योंकि सब मुक्त ह्वै जाते हैं तब कर्म फल किसको मिलै इत्यादि कर्मन को चरती है तब तृप्त ह्वैकै मुक्तिरूप दूध देती है अर्थात् जे काशी में मरते हैं ते परमपद पावनपय लहत मुक्तिरूप पवित्र दूध पावते हैं कैसा वह दूध है ज्यहि प्रपंच उदासी चहत अर्थात् पाञ्चभौतिक रचना जो संसारी व्यवहार त्यहिते उदासीन रहनेवाले विरक्त ते ज्यहिकी चाहना करत अरु पावते नहीं सो इहां सुलभ है भाव जीवन को शुभाशुभ कर्मरूप घास चरि मुक्तिरूप दूध देत ८ शिव स्कंद पद्मादिपुराण यह कहत कि निजकर करतूति कलासी केशवरची आपने हाथों की कर्तव्यता की कला शिल्पशास्त्र की परिपूर्ण कारीगरी प्रकटकरि भगवान् ने काशीरूप कामधेनु को बनाया है अर्थात् विंदुमाधव के हाथों की चातुर्यता को रूप ऐसी काशी है ताको गोसाईंजी आपने मनते कहत कि हे मन! कलिकाल की भय अथवा भवसागर की भय ते जो सुपासी चहु अभय ह्वन चहु तौ हरपुरी काशी में बसिकै राम जपु अर्थात् रामनाम जपु रामरूप हृदय में धरु रामयश श्रवण कीर्तन करु ६॥

राग बसन्त।

(२३) सबशोचविमोचन चित्रकूट। कलि हरन करन कल्याण बूट १
शुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन विचित्र बारी विशाल २
मन्दाकिनि मालिनि सदा सींच। बरवारि विषम नर नारि नीच ३
शाखा सुशृंग भूरुह सुपात। निर्झर मधुकर मृदु मलय बात ४
शुक पिक मधुकर मुनिवर विहारु। साधन प्रसून फल चारि चारु ५
भव घोर घाम हर सुखद छांह। थप्यो थिर प्रभाव जानकीनाह ६

साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ ७
रसएक रहित गुण कर्म काल। सिय राम लषण पालक कृपाल ८
तुलसी जो रामपद चहसि प्रेम। सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ९

टी०। अब प्रभुको सुख विलास धाम जानि चित्रकूटके गुण गावत यथा इष्टहानि प्रियवियोग होनहारादि लौकिक शोच जरा मरण गर्भवासादि पारलौकिक इत्यादि सब प्रकारके शोचनको विमोचन विशेष छुड़ाइ देनेवाला है चित्रकूट काहेते सब शोच छुड़ावनेवाला है कि कलिहरण कलियुग की बाधा वा सब प्रकारके क्लेश ताको हरिलेनहार है पुनः लोक मंगल आनंद परलोक शुभगति इत्यादि सकल कल्याणरूप फलन सहित बूटनाम हरित वृक्ष है १ वृक्ष थालहा में होता है इहां शुचिअवनि क्षेत्रकी पवित्र भूमि सुहावनि रमणीक सोई आलवाल सुंदर थालहा है तहां वारीरूँधना चाहिये सो कानन विचित्र अर्थात् अनेक रंग के फूल भांति भांति के फल पल्लवदल भार लीन्हे ऐसे सघन वृक्षनमय जो अद्भुत वन है चारिहुं दिशि सोई विशाल बड़ीभारी सघनवारी चारिहुं दिशि रूंधीहै जाकी भयते स्वाभाविक कोऊ फल पाइ नहीं सकत २ वृक्षको सींचनहार चाहिये सो कहत कि मंदाकिनी जो नदी है सोई मालिनी वृक्षको सेवनहारी है सोई सदा सींचती है सींचनेहेतु उत्तम जल चाहिये इहां विषम नरनारि कुटिल स्वभाववाले स्त्री पुरुष तथा नीच म्लेच्छ चंडालादि पतित जीव इत्यादि वरवारि श्रेष्ठ जल है तासों सींचत है सींचि वृक्ष हरियात फूलत फलत तथा कुटिल नीच मंदाकिनी में मज्जनकरि जो पावन होत सो माहात्म्य वृक्षको हरित रहना है पुनः पावन भये पर जो जप तपादि साधन बनत सोई फूलना है तथा अर्थ धर्म काम मोक्ष पावना सो सदा सफल रहना है ३ वृक्षमें डारें चाहिये इहां पर्वतके जे शृंग कँगूरा होते हैं तेई शाखानाम डारें हैं डारनमें पाता चाहिये इहां शृंगनपर भूरुह जो वृक्ष अनेकन हरित लगेहैं तेई सघन पाता हैं वृक्ष में मकरंद वाको रस बहता है इहां निर्झर पर्वतते जो अनेक झरना बहते हैं जल सोई वरमधु उत्तम मकरंदरस है वृक्षते मधुर सुगंध आवती है इहां शीतल मंद सुगंध वात जो बयारि बहिरही है सोई मृदुमलय मधुर सुगंध आवती है ४ वृक्ष पर फलहेतु पक्षी अरु मकरंदहेतु भ्रमर आवते हैं इहां मुनिवरन को जो विहार है सोई शुक पिक अरु मधुकर हैं अर्थात् जिनको साधन को फल प्राप्त है ते मुनिवर शुक तथा पिक कोकिला इत्यादि पक्षी हैं पुनः साधना करनेवाले मुनि ते मधुकर भ्रमर हैं वृक्ष में फूल फल होते हैं इहां शमदमादि विवेक विराग अथवा यम नियमादि साधन तेई प्रसूननाम फूल हैं पुनः अर्थ धर्म काम मोक्षादि जो चारिउ फल तेई चारु सुन्दर फल हैं ५ वृक्ष की छांहीं घामे की तपनि हरती है इहां चित्रकूट को प्रभावरूप जो छांह है तामें वास करना छांहको आवना है सो छांह कैसी है कि भवघोरघामहर भव जो संसार ताको गर्भवास जन्म तीनिउ तापें जरा मरण इत्यादि जो भयंकर घाम है ताको हरणहारी पुनः सुखद जीव को कल्याणप्रदरूप सुख को देनहारी है काहेते जिस प्रभावरूप छांह को जानकीनाह श्रीरघुनाथजी थिर अचल करिकै थाप्योहै यथा॥ बृहद्रामायणे॥ पुराकृतयुगस्यादौ

ब्रह्मा लोकपितामहः। तपस्तेपे पुरा तत्र यथार्थं दारुणं प्रभुः॥ ततः प्रादुरभूदेव वरदानाय राघवः॥ ब्रह्मोवाच॥ स्थानानि पुण्यतीर्थानि पृथिव्यां सन्ति ते प्रभो। शतमष्टोत्तरं स्थानं तच्छ्रेष्ठं च वदस्व मे॥ भगवानुवाच॥ गिरिः श्रीचित्रकूटाख्यो यत्र मंदाकिनी नदी। तयोर्मध्ये सुविस्तीर्णस्त्रिशङ्कुनुपमायता॥ एतत्क्षेत्रं प्रियतमं न कस्मैचित्प्रकाशितम्। तत्र त्वं धनुपक्षेत्रे यज्ञं कुरु पितामह। इति दत्वा वरं तस्मै तत्रैवांतर्दधे हरिः॥ इत्यादि ६ सो कैसा प्रभाव है कि ज्ञान योग तपादि साधना करनेवाले तेई सुंदर पथिक हैं ते बड़े भाग पाइ जब बड़ी भारी सुकृति उदय होती है तब इस छांह को पावते हैं अर्थात् चित्रकूट की वास प्राप्त होती है तहां वास साधनाकरि क्या लाभ है कि अनेक भांति के जो अभिमत मनोरथ हैं अर्थ धर्म काम मोक्षादि ते अघाइके पावते हैं मनोरथते अधिक जामें पुनः इच्छा न रहिजाइ तैसे फल प्राप्त होते हैं यथा॥ वृहद्रामायणे॥ प्रयागं राघवं नाम सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। यत्किंचित्क्रियते कर्म तदक्षयमिहोच्यते॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्। संध्योपास्यं तर्पणं च श्राद्धं पितृसमर्चनम्॥ शताश्वमेधिके तीर्थे सकृत्स्नात्वा नरोत्तमः॥ ७ काहेते इहां थोरे साधनकरि बड़ा फल मिलता है ताको कारण कहत कि अन्यत्र जीवन में कालकर्म गुणादि को प्रभाव व्यापि जात ताते शुद्धता नाश ह्वैजात अर्थात् सतोगुण ते शांतस्वभाव ह्वै सत्कर्म करत रजोगुण ते राजसी स्वभाव ह्वै ऐश्वर्यभोगी कर्म करत तमोगुणते क्रोधी स्वभाव ह्वै असत्कर्म करत पुनः काल को प्रभाव व्यापे स्वभाव बदलि जाता है यथा सतयुग में सतोगुणी त्रेता में सतोगुणमें कछु रजोगुण मिला द्वापर में सत थोरा रज अधिक कछु तम मिला कलि में तमोगुण इत्यादि के वश कर्मकरि फलभागी होत ताते जीव शुद्ध नहीं रहत ते सत्कर्मौ विधिवत् नहीं करिसके हैं तौ फल पूरा कैसे होइ सो इहां रजोगुण तमोगुण नहीं व्यापत तथा कलियुगादि काल को प्रभाव नहीं व्यापत अरु जो पूर्व के असत्कर्म हैं ते इहां नाश ह्वैजाते हैं इत्यादि गुण काल कर्मन को प्रभाव रहित है ताते इहां को प्रभाव सदा एकरस रहत है काहेते श्रीजनकनंदिनी रघुनंदन लषणलाल ऐसे कृपालु कृपागुणभरे ते सदा पालन करते हैं ताते एकै रस प्रभाव बना रहत ८ सोई प्रभाव विचारि गोसाईंजी कहत हे मन! जो श्रीरघुनाथजीके पदकमलनमें प्रेम उत्पन्नकीन चहसि तौ निरउपाधि सब प्रकार की चिंता त्यागि स्वतंत्र ह्वै नियमसहित चित्रकूटगिरि को सेवन सदा वास करिये ६॥

राग कान्हरा।

(२४) अब चित चेति चित्रकूटहि चल। कोपित कलि लोपित मङ्गलमग विलसत बढ़त मोह माया मल १ भूमि विलोक रामपद अंकित वन विलोक रघुवरविहार थल। शैल शृंग भवभंगहेतु लख दलन कपट पाखण्ड दम्भ दल २ जहँ जनमे जगजनक जगतपति विधि हरि हर परिहरि प्रपञ्च छल। सकृत प्रवेश करत जेहि आश्रम विगत विषाद भये पारथ नल ३ न करु विलंब विचारु चारुमति वर्ष पाछिले सम अगिलो पल। मंत्र सो जाइ जपहि जो जपि भे

अजर अमर हर अचै हलाहल ४ राम नाम जप याग करत नित मज्जत पय पावन पीवत जल। करिहैं राम भावतो मनको सुख साधन अनयास महाफल ५ कामदमणि कामताकल्पतरु सो युग युग जागत जगतीतल। तुलसी तोहिं विशेष बूझिये एक प्रतीति प्रीति एकै बल ६

टी०। गोसाईंजी चित्तसों कहत कि कराल कलियुगकी भय ताहूपर तू मोहमें मूर्च्छित पराहै ताते हे चित! चेतकरि चित्रकूटको हि नाम निश्चय करिकै चलु उहँ सुपास है अन्यत्र नहीं बचारा है काहेते कलिकोपित ताते मंगल मगलोपित अर्थात् कलियुगने कोपकरि धर्म के तीनि पायँ पूर्वही तोरिडारा इत्यादि कलियुगको क्रोधवन्त देखि मंगलजीव को कल्याणपद पहुँचावनेवाली सत्य शौच दया दान जप तप विवेक विरागादि जो मार्गे ते लुप्त ह्वैगई डरिके लुकिरहीं ताते माया को उपजावा मल बढ़त अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंधादि विषयन के सुखमें इन्द्रिन द्वारा मन की चाह अधिकात जात ताके प्रभावते कामना बढ़त ताकी हानि ते क्रोध उपजा क्रोध बढ़े मोह भया इत्यादि मोह विलसत आपनी सहायता पाइकै आनन्दित होतजात इति भय है १ जहां चित्रकूट की भूमिविषे श्रीरघुनाथजी विचरे हैं तिन के पायँन करिकै अंकित सच्चिह्नितभूमिहै जिन पायँनकी रजपरसि अहल्याको पाप शाप नाशभया शुद्ध भई तथा दण्डकवन पावनभया तिन पाँवन के अंक देखि तेरे भी पापताप नाश होइँगे पुनः रघुवर को विहार आनन्द उपजावनेवाला थलहै तहां तेरेहू आनन्द उपजी अथवा पितुवचन ते राज्यत्यागि वनवास कीन्हे ताते भरतादि पुरवासिनके विरह भई इत्यादि सुनि वनदेखे रामसनेहिन के अवहूं विरह होत इत्यादि वन विलोकि देखि तेरे भी रामविरहाग्नि उत्पन्न होइगी ताकी ज्वालनते कामादि सब विकार भस्म ह्वैजाइँगे शुद्ध रामसनेह होई पुनः कामद गिरिके प्रभावते उहां कलिप्रभाव कालकर्म गुणादि नहीं व्यापते हैं ताते भवभंगहेतु भवकी भय जन्म मरणादि नाशहोने हेतु शैलशृंग लखु पर्वतके कँगूरा देखु पुनः अन्तरदुष्ट मुखते साधुवत् वचनकहना इति कपट पुनः वेदधर्म को खण्डन तर्कादि पाखण्ड अरु अन्तर असाधु पुनः वेषपूजनादि झूठही साधुता देखावना इति दम्भइत्यादि मोहके दलको दलन नाशहेतु २ पुनः चित्रकूट कैसा है कि जगत्के जय संहारकर्त्ता हर महादेव ते प्रपंच परिहरि अर्थात् प्रपंच लोकरचना ताको संहारकर्ता पदत्यागि शिवजी सो आइ दुर्वासामुनिरूप जहां अवतरे पुनः जगत्के जनक पिता जगको उपजावनेवाले विधि ब्रह्माजी सोऊ प्रपंच जगत्रचना पद त्यागि ब्रह्माजी आइ चन्द्रमारूपते जहां अवतरे पुनः जगत्के पति जगजीवनको पालनहारे हरि भगवान् ते छलपरिहरि अर्थात् जगत् रक्षाहेतु वरदानी दैत्य राक्षसन के वधकारण चतुर्भुजरूप छपाइ मच्छ कच्छ वाराह नृसिंह वावनादि अनेक छलमय रूप धारण करते हैं तहां वृन्दासों वलिसों प्रसिद्ध छल है इत्यादित्यागि भगवान् आइ दत्तात्रेयरूपते जहां अवतरे अर्थात् अनुसूया अरु अत्रिमुनिकी तपस्याते प्रसन्न त्रिदेव चित्रकूटमें आइ मनोभिलाषित वर दीन्हे कि हमारे तीनिहू देवांशते तुम्हारे तीनिपुत्र होइँगे यथा॥बृहद्रामायणे॥

दण्डकादुत्तरे भागे मन्दरो नाम पर्वतः । तपस्तेपे महाबुद्धिरत्रिर्नाम महातपाः ॥ पातिव्रताख्यधर्मेण युक्तया भार्यया सह । ध्यायन्भगवतो रूपं पुत्रोत्पत्तिप्रकाम्यया ॥ आगतास्तत्र ते देवा ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । दृष्ट्वा मुनिं प्रसन्नास्ते वरं दातुं समुद्यताः॥ गृहीत्वाज्ञां भगवतः शिवोवोचत्प्रसन्नधीः ॥ महादेव उवाच ॥ वरं वरय भद्रं ते वर-देशावयंत्रयः ॥ मुनिरुवाच ॥ वायुर्यथा सर्वगतो ह्येवं पुत्रा भवन्तु मे । एवं श्रुत्वा वचस्तस्य महर्षेऽमितौजसः ॥ प्रत्युवाच महातेजास्त्र्यम्बकः प्रहसन्निवाएवंविधास्ते तनया भविष्यन्ति न संशयः ॥ दत्तात्रेयो हरेरंशाच्चन्द्रमा ब्रह्मणस्तथा । ममांशाच्चैव दुर्वासा भविष्यन्ति न संशयः॥इत्यादि तीनिहू देव जहां शुद्धरूपते अवतार धरे ऐसा चित्रकूट है पुनः ज्यहि आश्रमविषे सकृतप्रवेश करत एकवार चित्रकूट के अन्तर पैठिआवतसन्ते महादुःख ते पीड़ित पारथ युधिष्ठिरादि पंडवा तथा दमयन्ती के पति राजानल वियोग विषाद में भरे ते दोऊ विपाद विगतभये दुनहुनको दुःख छूटिगया अर्थात् जब दुर्योधनने छलकरि राज्य लै लिया तब अनेक विपति सहत फिरत युधिष्ठिरादि पांडवा चित्रकूट में आइ तपस्याकीन्हे पुनः स्नानदान प्रदक्षिणादि कीन्हे ताके प्रभावते महाभारत करि जय अरु राज्य पाये ॥ यथा बृहद्रामायणे ॥ कुरुभिर्हृतराज्यस्तु पार्थो भ्रातृसमन्वितः । धौमेन गुरुणा युक्तो कुंत्या द्रुपद-कन्यया ॥ चित्रकूटे शुभे क्षेत्रे श्रीरामपदभूषिते । तपश्चचार विधिवद्धर्मराजो युधि-ष्ठिरः ॥ स्नात्वा मंदाकिनीनीरे प्रदक्षिणमथाकरोत् । दानं ददौ स विधिवच्छ्रीकृष्ण-प्रीतिहेतुकम् ॥ तीर्थराजप्रभावेन स्नानदानानुकूलतः । विपत्तिर्नाशमगमत्तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ तथा नलकी विपति प्रसिद्ध है कि राज्य छूटी दमयंती रानी को भी वियोग भया ऐसे दुःख भरे चित्रकूट में स्नानादि कीन्हे विपति छूटि गई ॥ यथा बृहद्रामायणे ॥ दमयंतीपतिर्वीरो राज्यं प्राप्य हताशुभः । मंदाकिनी पुण्यतमा गंगा त्रैलोक्यविश्रुता ॥ इत्यादि ३ चित्रकूट जाइ जो कार्य करना है तामें हे चित ! अब विलंब न करु भाव थोरी आयु में वृथा काल न गवाँउ काहेते चारुमति विचारु सुन्दरी बुद्धि ते विचार करिकै देखिले भाव कुबुद्धि ते तौ ऐसा लोग विचा-रत कि जो वर्ष बीति गये तिनको पलनसम मानत अरु जे पला आयुर्बल बाकी है तिनको वर्षनसम मानत सो नहीं सुन्दरी बुद्धि ते ऐसा विचार कीजै पला आयुर्बल वृथा बीतिगई मानौं तै वर्ष बीतिगये अर्थात् थोरी हानि को बहुत मानना चाहिये अरु जै वर्ष आगे आयुर्बल बाकी है तै पलासम मानु भाव मृत्यु समीपही समुझु इत्यादि विचारि शीघ्रही चित्रकूट में जाइ हृदय शुद्धतासहित मन लगाइ सो महामंत्र जपहि जाप करु जो जपि जिसको जप करिकै महामंत्र के प्रभावते हर अजर अमर तनमें जराअवस्था की अबलता तथा मरणकालते रहित शिवजी भये पुनः जाकी ज्वालन को कोऊ देव दैत्य न सहिसका ऐसा हलाहल विष ताको अचै पानकरि सावधान रहे ऐसा मंत्र में प्रभाव है ४ जिस महामंत्र के प्रभावते विषने शिवजी को अमृतको फल दिया सोई महामंत्र रामनाम को जपरूप नित्यहीं यज्ञकरतसन्ते पुनः पयकहे पयस्विनीजी में नित मज्जत स्नान करत देह पावन होइगी तथा अमृतसम स्वादिष्ठ पावन जल पीवत सन्ते अन्तर शुद्ध होइगो इत्यादि चित्रकूट में स्नान पान रामनाम जपतसन्ते इतनेही सुखपूर्वक साधन

कीन्हे अनायास योग तपस्यादि परिश्रम विना कीन्हे स्नान पानादि सुख साधनै करि रामनामजपे ते श्रीरघुनाथजी तेरे मनको भावत महाफल करिहैं अर्थात् जो तेरे मनकी कामना है यथा लोक सुख मान बड़ाई सबसों अभयहै भवबन्धनते सहजही छूटिजाना इत्यादि महाफल अमल भक्ति देहैं जाके आधीन ज्ञानादि सब गुण तथा अर्थ धर्म काम मोक्षादि सब फल है इति महाफल ५ काहेते इहां अनायास महाफल मिलता है कि यथा देवलोक में चिंतामणि कल्पवृक्ष हैं ते तीनिही फलदायक हैं अर्थात् अर्थ धर्म कामै देसकत अरु जगतीतल पृथ्वी विषे चित्रकूट में जो कामदगिरि है सो अर्थ धर्म काम मोक्षादि चारिहू फलदायक कामदमणि मनोकामना देनहारी चिंतामणि है पुनः कल्पवृक्ष सम है सहजही सब फलदायक यह प्रभाव युगयुग जागत चारिहू युगन प्रकाशितहै ॥ यथा बृहद्रामायणे ॥ चित्रकूटं महातीर्थं परं निर्वाणकारकम् । धर्माभिलाषबुद्धीनां धर्मराशिकरं परम् ॥ अर्थिनामर्थदातारं परमार्थप्रकाशकम् । कामिनां कामदं श्रेष्ठं मुमुक्षूणां च मोक्षदम् ॥ इत्यादि प्रभाव तौ सबही के हेतु है अरु हे तुलसी ! तोको तौ इस प्रभाव को विशेष बूझना चाहिये कि एक रामरूप में प्रीति एक रामनामकी प्रतीति एक रामै के तीर्थनको बल सब फल मांगना इत्यादि ६ ॥

राग धनाश्री ।

(२५)जयतिअंजनीगर्भअम्भोधिसंभूतविधुविबुधकुलकैरवानंदकारी।
केशरीचारुलोचनचकोरकसुखद लोकगणशोक संतापहारी १
जयति जय बालकपिकेलिकौतुकउदित चण्डकरमण्डलग्रासकर्त्ता ।
राहु रविशक्र पवि गर्व खर्वीकरण शरणभयहरण जय भुवनभर्त्ता २
जयति रणधीर रघुवीर हित देवमणि रुद्रअवतार संसारपाता ।
विप्रसुरसिद्धमुनिआशिषाकरवपुष विमल गुण बुद्धिवारिधिविधाता ३
जयति सुग्रीव शिक्षादि रक्षण निपुण बालिबलशालि वधमुख्यहेतू ।
जलधि लंघन सिंहसिंहिकामदमथन रजनिचरनगरउत्पातकेतू ४
जयति भूनंदिनीशोचमोचन विपिनदलन घननादवश विगतशङ्का ।
लूमलीलानलज्वालमालाकुलित होलिकाकरण लङ्केशलङ्का ५
जयति सौमित्रि रघुनन्दनानन्दकर ऋक्ष कपि कटक संघट विधायी ।
बद्धवारिधिसेतु अमरमङ्गलहेतु भानुकुलकेतु रणविजयदायी ६
जयति जय वज्रतनु दशननखमुखविकट चण्डभुजदण्ड तरुशैलपानी।
समरतैलिकयन्त्र तिल तमीचरनिकर पेरिडारे सुभट घालि घानी ७
जयति दशकण्ठ घटकरण वारिदनाद कदनकारण कालनेमिहन्ता ।
अघटघटनासुघट सुघट विघटन विकट भूमि पाताल जल गगनगन्ता ८
जयति विश्वविख्यात बानैत बिरदावलीविदुषबरणत वेद विमलबानी।
दासतुलसी त्रास शमन सीतारमन संग शोभित रामराजधानी ९

टी०। अब राम भक्तमात्रके कुलदेव मानि हनुमान्‌जी के गुण गावत यथा प्रथम हनुमान्‌जीको अमल चंद्रमाको रूपक कहत सो चंद्रमा समुद्रते भया कोकाबेली को प्रकाशक जगको सुखद चकोर अवलोकन करत इत्यादि इहां अंजनी को गर्भ सोई अंभोधि समुद्रहै त्यहिते संभूत उत्पन्न विधु चंद्रमारूप हनुमान्‌जी की जय होइ कैसे चंद्रही विबुध देवताकुल सोई कैरव कोकीवनहै ताको आनंदकर्त्ता अर्थात् रावण रूप सूर्यकरि अनीति दिन ते देव कोकी वनइव संपुटितरहे तिन राक्षसनको नाशरूप अस्तकरि देवतनको प्रफुल्लित कीन्हेउ पुनः आपुके पिता केशरी तिनके चारु लोचन सुंदरनेत्र तेई चकोर वात्सल्यभावते निरखत रहत तिनको सुखदेन हारे आपुके सुयश प्रकाशते आनंद पावत पुनः लोकगण त्रैलोक्यवासी जनके शोक दुष्टनकी भयकरिकै जो दुःख रहा सोई संपूर्ण प्रकारकी तापै रहीं सो दुष्टन को मारि तापैं हरिलीन्हेउ १ जयति जय होतीहै सदा जिनकी ऐसे कपिरूप हनुमान्‌जी की जय होइ कैसा है कपिरूप जो बालकेलि उत्पन्नहोतही लरिकाई खेल में एक अद्भुत कौतुक तमाशा कीन्हें चंडकर उदित प्रचंडहैं किरणें जिनकी ऐसे सूर्य को उदयभये देखि लालफल जानि लीलिजावे हेतु पहुँचिगये ताहीसमय संधिपाइ राहु आया इनको देखि डरिकै जाइ इंद्रको लैकै आया वाहूको देखि धाये राहु भागा इंद्र डरिकै वज्र मारा जो पर्वतोंको चूर्ण करनेवाला ता वज्रके लागे हनुमान्‌जी के किंचित घाव आया यह वाल्मीकि उत्तरकांड के पैंतीसवेंसर्गमें विस्तार है यथा॥ ग्रहीतुंकामो बालार्कं प्लवतेम्बरमध्यगः। एतस्मिन् प्लवमाने तु शिशुभावे हनूमतः॥ इत्यादि सूर्यनको गर्वरहा कि मेरा तेज कोऊ नहीं सहिसक्ताहै तिन सूर्यमंडल के ग्रासकर्त्ता लीलिजानहारे होतभये पुनः राहुको गर्व रहा कि मैं सूर्यनको ग्रासकर्त्ता हौं सोऊ हनुमान्‌जीको देखि डराइगया इंद्रको गर्व रहा कि मेरे वज्रते कोऊ नहीं बचिसक्ताहै सोभी वृथा भया इत्यादि समयमें राहुको अरु रवि सूर्यनको तथा शक्र इंद्रको अरु पवि वज्रको जो बड़ाभारी गर्वरहा तिनको खर्वकिरण लघुकरि देनहार अर्थात् बड़े गर्वको छोटा करिडारेउ पुनः भुवनके भर्त्ता लोकनके स्वामी जो रघुनाथ जी तिनके शरणागतन के भयहर्त्ता डर मिटावनहारे यथा ब्रह्मांडपुराणे॥ श्रीराम-हृदयानंदं भक्तकल्पमहीरुहम्। अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये मारुतात्मजम्॥ अथवा आपने शरणागतनके भयहरणहारे आपही सब लोकनके स्वामीहौ तिनकी सदा जय होइ २ पुनः रणभूमि में सहजस्वभावते धैर्यवान् ऐसे वीररूप हनुमान्‌जी की सदा जय होइ जिस वीररूपते रघुवीरके हितकर्त्ता देवमणि चिंतामणि समान सब स्वार्थ कीन्हे यथा सिंधुनांघि खबरि ल्याये सुखेनको लाये द्रोणागिरि ल्याये भरतजीको खबरि सुनाये इत्यादि धावनको काम पुनः युद्धमें सबसों बढ़िकै वीरताको काम पुनः पीठि चढ़ाइलै चलन वाहन को काम पगप्रक्षालन पलोटनादि दासको काम विभीषणको बुलावने उत्तम मंत्रीको काम वेदशास्त्र सुनावने में आचार्य को काम आज्ञापालन में सेवकको काम किशोरीजीके महलमें चारुशीला रूपते दासीको काम भरतादिको मनोरथ प्रभुसों कहिबे में सखाको काम इत्यादि अनेक भांति हितकर्त्ता पुनः संसारके पाता रक्षक जो शिवजी तिनके जे गेरह रुद्र हैं तिनमें हनुमान्‌जी एकरुद्रावतार हैं जासमय इन्द्रने वज्र मारा तब पवनने कोपकरि सबके श्वासाबंद

करिदिया तब सब ऋषि देवता सिद्ध मुनि जाइ चैतन्यकरि हनुमान्‌जीको सबहिन आशीर्वाद दिया इत्यादि वपुप जो देह हनुमान्‌जीकी सो सबके आशिषाकी आकर खानिहै पुनः विद्या शांति क्षमा दया समता संतोष विचार विवेक विरागादि जो अमल गुण तिनके भरे वारिधि समुद्र अरु बुद्धिके उपजावनहार विधाता ब्रह्मा सम हैं ३ सूर्यनते विद्या पढ़े तिन गुरुदक्षिणा मांगे कि हमारे पुत्र सुग्रीवको यावत् राज्य न मिले तावत् समीप रहि उनकी सहायता करौ इसी हेतु हनुमान्‌जी सुग्रीवके समीप रहि सब कार्यके सहायक रहे ऐसे गुरुआज्ञापालक हनुमान्‌जीकी जय होइ कैसे आज्ञापालक कि सूर्यनकी आज्ञाते शिक्षा हितकी बात सिखावनादि अनेक उपायनते सुग्रीवकी रक्षाकरिवे में निपुण साम दाम दंड भेदादि सब उपाय साधने में आपु अत्यंत प्रवीणहौ काहेते सुग्रीवको शत्रु वालि बलशालि कठिन बली रहा ताके वधकरिवेको मुख्यहेतु आदिकारणहौ भाव प्रभुते अनेक वार्ताकरि सुग्रीवते मित्रताकरावना इत्यादि तथा सुग्रीवके भूले में चारिउ विधिते कहि समुझाये पुनः लक्ष्मणजीको क्रोधित जानि स्तुतिकरि समुझाये इत्यादि प्रवीणता पुनः जलधिलंघन समुद्रके फांदिजानेमें तथा सिंहिका राक्षसी सिंधुमें जो जीवनकी छाया गहि खैंचि लेतीरहै ताको मद मायाबलकी हर्ष ताको मथन नाश करिदेनेमें सिंह अर्थात् दोऊ कार्य करिवेमें निःशंक वीर पुनः रजनिचरनको जो नगर लंका तामे उत्पात करिवेको केतु अर्थात् क्रूरग्रह केतु के उदयभये ते अवर्षण अकाल महामारी राजनसों युद्धादि देशमें अनेक उत्पात होते हैं तथा हनुमान्‌रूप केतु उदय है लंका में अनेक उत्पात कीन्हे सो आगे वर्णन करेंगे ४ भू पृथ्वी ताकी नंदिनी जो जानकी जी तिनको पतिवियोगको जो शोच शोक संताप में तर्कना ताको मोचन छुड़ाइ देनेहार अर्थात् मुद्रिकादै प्रभुको आगमनकहि शोच मिटाइदीन्हे ऐसे हनुमान्‌जी की सदा जय होइ आपु कैसेहौ कि लंका में विपिनदहन विपिन जो अशोकवाटिका ताके दहन विध्वंसन अर्थात् राक्षसनको जीति वन उजारिडारे पुनः घननादवश मेघनाद के हाथों बँधे तबहूं विगतशंका डररहित अर्थात् बंधनौमें निःशंक चलेगये भाव ब्रह्मास्त्रकी महिमा राखे सभामें गये उहां पट लपेटि तेल बोरि फूंकिदीन्हे तिस लूमलीला अनल फूंकीहुई पूंछको फिरावनादि कौतुकमें जो अग्निके सघन कराल ज्वालनको जाल सबको फँसाये है तिनको देखि सब राक्षसी राक्षस आकुलित अकुलाइउठे काहेते लंकेश रावण ऐसा बली प्रतापी वीर ताके सन्मुखही वाकी लंकापुरीको होलिकाकरनहारे हौ होलीसमान लंकाको जराइदीन्हेउ ५ लंका जराइ चूड़ामणि सहित आइ प्रभुको खबरि सुनाय आनंद कीन्हे इत्यादि सौमित्रि लक्ष्मणजी सहित रघुनंदन को आनंदकरनहारे हनुमान्‌जीकी जय होइ पुनः कैसे हौ आपु कि ऋक्ष कपिकटक संघट बटोरिकै लैचलनेके विधायी विधान करने वाले अर्थात् ऋक्ष वानरनकी सेना को व्यूह बांधि लैचलने के समय व्यापार के करनहारहौ वारिधि समुद्र में नलनील के हाथ सेतु बँधाइ सेना पार लैजाइ अमर देवतन के मंगल सुखपूर्वक बसावने हेतु भानुकुलकेतु सूर्यकुलमें पताका जो श्री रघुनाथजी तिनको रणमें विजयदेनहारे अर्थात् रावणादि राक्षसोंके बंध करने में अग्रणीय रहेउ ६ कैसे अग्रणीय वीररूप रहेउ कि वज्रसम पुष्ट तन जामें किसीके

मारे चोट न व्यापी पुनः नख अरु दशन दांतनसहित मुख विकट ऐसा कराल जाको देखि राक्षसौ डेराइजाइ पुनः चंडवल साहसभरे पुष्ट ऐसे प्रचंड भुजदंड तरुशैल पानी वृक्षपर्वत हाथौं में धारण कीन्हे ऐसे वीररूपकी सदा जय होती है ताकी जय होइ तिस वीररूपते क्या कीन्हेउ कि निकरतमीचर समूहराक्षस तेई तिलसम हैं तिनके हेतु समर तैलिकयंत्र युद्धरूप कोल्हू में राक्षससमूह सुभटन को घानी सम घालिडारिकै पेरिडारेउ भाव सहजै मींजि डारे तिल पेरे तेल खरी होती है यहां जीव शुद्ध है तैलवत् परधाम गये देहमृतक खरीसम रही ताको गीधादि खाइ तृप्त भये ७ सिंधुनांघि खबरि लाये यज्ञ विध्वंसकरि रावणको रणभूमिमें लाये रणमें अग्रणीय रहे ताते रावण मारागया सजीवन लाय लक्ष्मण को जियाये ते मेघनाद को मारे लषण के जीवने को हाल सुनि रावण कुम्भकर्ण को जगाइ पठाये सो मारा गया इत्यादि दशकंठ जो रावण घटकर्ण कुम्भकर्ण वारिदनाद मेघनाद इत्यादि के कदन मारनेके मुख्य कारण उपाइ करनेवाले पुनः मारग में मुनिवेषते छला चाहे तिस कालनेमि के हन्ता वाको आपुही मारे ऐसे समर्थ हनुमान्‌जी की जय होइ कैसे समर्थ हैं कि जो घटना अघट रहै किसीके घटावने योग्य नहीं यथा सिन्धुलंघन लंकाते खबरि लावना द्रोणागिरि लावना इत्यादि दुर्घट कामन को सुघट सुंदरीभांति घटावनेवाले सुलभही सब कार्य कीन्हे पुनः जो सुघट रहै यथा बालिको बल रावणको प्रताप जो सबमें व्याप्त रहै ताको विघटन नाशकरि देनहारे विकट भयंकर रूपहौ पुनः भूमिलोक पृथ्वीपै तथा पाताललोक जलमें तथा स्वर्गलोक में गगनआकाश मारगगंता सर्वत्र सुलभही जानेकी गतिहै ८ वेद की विमल वाणी को प्रमाण सहित विबुध पण्डित शेष शारदादि जिनकी विरदावली वीरताके यश की पंगती वर्णन करते हैं ऐसे बानैत वीरताके बानावाले वीर जो विश्वविख्यात संसार भरेमें प्रसिद्ध ऐसे वीरन में महावीर की जय होइ ७ लंका जीतिआइ रामराजधानी अयोध्याजी में सीतारमण के संग सेवामें सदा शोभित अर्थात् रघुनाथजी को राज्याभिषेक पीछे सब वानर घरनको गये हनुमान् जी सेवै में सदा रहे ऐसे श्रीरामानुरागी रामदुलारे हे हनुमान्‌जी । आपको याचक मैं जो तुलसीदास ताकी त्रास कलिकी भय ताके शमन नाशकर्ता होहु ६ ॥

(२६) जयति मर्कटाधीश मृगराजविक्रम महादेव मुदमङ्गलालय कपाली ।
मोह मद कोह कामादि खल संकुलाघोरसंसारनिशि किरणमाली १
जयति लसदञ्जनादितिज कपिकेशरीकश्यपप्रभव जगदार्तिहर्त्ता ।
लोक लोकप कोकनद शोकहर हंस हनुमान कल्याणकर्त्ता २
जयति सुविशाल विकराल विग्रह वज्रसारसर्वांग भुजदण्ड भारी ।
कुलिशनखदशनवर लसत बालधिबृहद वैरिशस्त्रास्त्रधर कुधरधारी ३
जयति जानकीशोचसंतापमोचन रामलक्ष्मणानन्दवारिजविकाशी ।
कीशकौतुककेलि लूमलंकादहन दलनकानन तरुणतेजराशी ४
जयति पाथोधिपाषाणजलयानकर यातुधानप्रचुरहर्षहाता ।

दुष्ट रावण कुंभकर्ण पाकारिजित मर्मभित्कर्मपरिपाकदाता ५
जयति भुवनैकभूषण विभीषण वरद विहित कृत रामसंग्राम शाका।
पुष्पकारूढ़ सौमित्रि सीता सहित भानुकुलभानुकीरतिपताका ६
जयति परयन्त्रमन्त्राभिचारग्रसन कर्म रणकूट कृत्यादि हन्ता।
शाकिनी डाकिनी पूतना प्रेत वेताल भूत प्रमथ यूथ यन्ता ७
जयति वेदान्तविद् विविधविद्याविशद वेदवेदांगविद् ब्रह्मवादी।
ज्ञान वैराग्य विज्ञान भाजन विभो विमल गुण गणत शुक नारदादी ८
जयति काल गुण कर्म माया मथन निश्चलज्ञानव्रत सत्यरत धर्मचारी।
सिद्ध सुर वृंद योगींद्र सेवित सदा दास तुलसी प्रणत भयतमारी ९

टी०। पूर्व यश वर्णन करे ताते चन्द्रमाको रूपक कहे अब प्रताप वर्णन करत ताते सूर्यनको रूपक हनुमान्जीको कहत माधुर्य में मर्कटन के अधीश वानरों के राजा पुनः मृगराज विक्रमसिंहसम पराक्रम निःशंक पुनः ऐश्वर्यमें महादेव को अवतार है कैसे हैं महादेव कपाली नरकपाल को धारण कीन्हे हैं भाव अमंगल वेष किहे रहत अरु हैं तौ मुदमंगल के आलय अर्थात् मुदमानसी आनन्द अरु मंगल प्रसिद्ध उत्सव इत्यादि के आलय कहे मंदिर हैं पुनः प्रतापवन्त कैसे हैं सो कहत कि मोह जीव को अचेतहोना पुनः मद धन विद्या राज्यादि पाइ हर्ष बढ़ावना पुनः क्रोध काम इत्यादि संकुल परिपूर्ण भरे हैं खल चोर डाकू आदि जामें ऐसी भयंकर संसाररूप निशि रात्री ताके नाशकर्ता किरणमाली किरणनको माला धारण करनेवाले अर्थात् प्रचण्डसमूह किरणें हैं जिनमें ऐसे सूर्यवत् प्रतापवन्त हनुमान् रूप सूर्यन की जय होइ १ देवनकी माता दिति पिता कश्यप तिनते सूर्य उत्पन्न भये पुनः आपनी प्रकाशते रात्री तम मिटाइ जगको दुःख हरत कमलन को विशेष दुःख हरत इत्यादि सांगरूपक कहत यथा अंजनीरूप दिति लसत शोभित तिनते ज उत्पन्नभये पुनः कपिवानर जो केशरी सोई कश्यप पिता है तिनकरिकै प्रभव उपजाये गये आपने बलरूप प्रकाशकरि निशाचररूप अन्धकार नाशकरि जगत्को आर्ति दुःखहर्ता भये इति साधारण लोकजन पुनः लोकप इन्द्रादि कोकनद कमल सम संपुटित रहे तिनको शोक दुःख हरि प्रफुल्लितकरे पुनःऐश्वर्यते वियोग रहा तिनको संयोग कराये ऐश्वर्य प्राप्तकरि दुःख हरे इति सबके कल्याणकर्ता हनुमान्रूप हंस सूर्यन की जय होइ २ सुविशाल अत्यंत बड़ीभारी विकराल विशेष भयंकर विग्रह देह अर्थात् बहुतभारी महाभयंकर देह तामें नखते शिखापर्यंत सर्वअंगते वज्र के सारांशसम कठोर हैं भाव किसीकी मारी चोट नहीं व्यापिसकत ताहूपर भुजदंड अत्यंत पुष्ट अरु भारीबल भरेहैं ताहूमें नख अरुमुख में दशन दांत इत्यादि वज्र धर लसत वज्रहूते श्रेष्ठ कठोर शोभित होत पुनः घालधि बृहद पूंछ अत्यंत बड़ीपुष्ट बलिष्ठहै पुनः अस्त्रबाण शक्तिचक्रादि अरु शस्त्र खड्ग गदा मुशलादि धर अस्त्रशस्त्रादि धारण करनेवाले वैरी निशाचरादि तिनके नाश करिबेहेतु कुधरधारी पर्वत धारण किहेहौ भाव ऐसा भारी पर्वत डारिदेतेहौ कि हथियार वाहनसहित शत्रु

चूर्ण ह्वैजाताहै ऐसे प्रतापवंत रविवत्‌रूप हनुमानूजीकी सदा जय होतीहै जय होइ ३ पतिवियोग दुःखते तर्कना इतिशोच ताको मोचन छुड़ावनहारे अर्थात् मुद्रिका दै प्रभुआगमन सुनाय अशोच कीन्हे पुनः विरहाग्नि शत्रुवश कुवचनादि सांसति इत्यादि संपूर्ण प्रकारकी तापैं तिनको धीरज दै छुड़ाये इति जानकीके शोचसंताप मोचन छुड़ावनहारे हनुमानूजीकी जय होइ भाव चकईसम जानकी वियोगी रहीं तिनहेतु सूर्यवत् उदय ह्वै आनंद दीन्हेउ तथा वियोग रात्रीकरि जो कमलवत् प्रभु को आनंद संपुटितरहा सो चूड़ामणिसहित खवरि लाय आनंदित कीन्हेउ इति सूर्यवत् उदयह्वै रघुनाथजीको तथा लक्ष्मणजीको आनंदवारिज विकासी वचनरूप किरणकरि आनंदरूप कमलको प्रफुल्लित कीन्हेउ सूर्यनकी प्रचंड किरणकरि तृणादि भस्म होत तथा वन वृक्षादिभी सूखत तथा कपिकौतुक वानरी चंचल स्वभावको तमाशा यथा कूदफांद तोरना फारनाइत्यादि तरुण तेजराशि दुपहरके सूर्यको प्रचंड तेजको ढेरहै त्यहिकरिकै कानन दलन अशोकवाटिकाको नाश करिदीन्हे पुनः लूमकेलि फूंकीहुई पूंछके खेलवारकरि लंकादहन तृणवत् भस्म करिदीन्हेउ ४ सूर्य की प्रचंड किरणैं लूकादिको नाम सुनतही सब डराइ उठतेहैं तथा पाथोधि समुद्र विषे पाषाण जलयानकर भाव पहारनको नावसम करि उतराइ सेतु बांधेउ त्यहि करिकै यातुधानहर्षहाता प्रचुर अर्थात् राक्षसनकी खुशीके नाशकर्ता प्रसिद्ध भयो अर्थात् सेतुबंधन सुनतही सब डरिगये ऐसे प्रतापवंत हनुमानूजीकी जय होइ शीश नेत्र कर्णमुख ग्रीव कांख उर उदर अंगनकी संधीइत्यादि मर्मस्थान हैं इनमें थोरहू घावलागे प्राणहारक पीरा होतीहै इत्यादि रावण कुंभकर्ण पाकारिइंद्र ताको जीतने वाला मेघनाद इत्यादि दुष्टनके मर्मअंगनके भित भेदि घावकरि कर्मपरिपाकदाता अर्थात् मर्म अंगमें घाव नहीं कीन्हे उनके पाप कर्मनके फल देनहार भये ५ प्रथम भेंटमें जब विभीषण कहे कि हे कपि! रघुनाथजी कबहूं मेरे ऊपर कृपा करेंगे तापर हनुमानूजी कहे सुनहु विभीषण प्रभुकै रीती। संतत करहिं दास पर प्रीती॥ भाव तुमपै प्रभु कृपा करैंगे यह वरदान गुप्त है इति विभीषणवरद विभीषणको ऐसा वरदान दीन्हेउ कि भुवनभरेको प्रकाश शोभा करनेवाला एकभूषण भया जिस भूषणको प्रकाशविहितकृत वर्तमान करिरहा है रामसंग्रामशाका रावणप्रति रघुनाथजीके युद्धको जो रामयश सोई प्रसिद्ध सबको दिखाइरहा है अथवा विभीषण भुवनको एकभूषण भया इति वरदान देनहारे पुनः रामसंग्रामको शाकाविजयको यश सो विहित कृत वर्तमान करनेवाले आपुही रामयश उत्पन्न होनेके कारण हौ पुनः राक्षसनको मुक्ति दैं विभीषणको राज्य दै देवनको अभय दैकै लक्ष्मण जानकी सहित पुष्पकआरूढ़ पुष्पक विमानपर चढ़ि प्रभु अयोध्याजीको आये इत्यादि भानुकुल भानुसूर्य कुलके प्रकाशकर्ता सूर्य जो श्रीरघुनाथजी की ऊंची धवल कीरति है ताहू में पताका सरीखे आपुको यश ऊंचे फहराइ रहाहै ऐसे प्रतापवंत हनुमानूजी की जय होइ ६ पर जो शत्रु ताके कियेहुये यंत्र अथवा मंत्रमय अभिचार अर्थात् विद्वेषण उच्चाटनादि प्रयोग तिनको ग्रसन नाशकर्ताहौ पुनः कूटनाम गुप्त रणकर्म अर्थात् मारण प्रयोग पुनः कृत्या अर्थात् जीवहिंसक तामसी देवादिकनके हंता नाश करनहारेहौ भाव आपुको नाम लेतही सब बाधा भागत ऐसे प्रतापवंत हनुमानूजीकी

जय होइ पुनः बालग्रह शाकिनी योगिनी पिशाचिनीआदि पूतना डाकिनी रावण की वहिनी शिवजीकी बनाइ बालग्रह प्रेत मृतकनर वैताल ज्वालामुख पिशाच भूत भयंकर देव तुच्छ प्रमथ शिवगण इत्यादिके यूथसमूह झुंडके यंता सारथीहौ यथा॥ यंता सूतः इत्यमरः॥ भाव सब आपुके पाछे चलतेहैं प्रतिकूलता नहीं करिसक्ते हैं ७ शम दम उपराम तितिक्षा श्रद्धा समाधान मुमुक्षुता विवेक विरागादि साधन जो वेदांत है तिनके ज्ञाता पुनः ऋक् यजु साम अथर्वणादि वेद तिनके अंग यथा शिक्षा गृह्यसूत्र व्याकरण निरुक्ति छंदशास्त्र ज्योतिष पुनः शिल्प गंधर्व चिकित्सा इत्यादि विविध विद्या विशद उज्ज्वल सतोगुणी इत्यादि के विद्नाम ज्ञाता पुनः ब्रह्मवादी आत्मपरमात्मरूप को नीकीभांति जाननेवाले पुनः ज्ञान आत्म तत्त्वदर्शी वैराग्य संसारसुखको त्याग विज्ञान अखंड अनुभव इत्यादिके भाजन परिपूर्णभरे पात्रहौ हे विभो! सब भांति समर्थ आपुके विमल गुणनके गणनको शुकदेवादि परमहंस नारदादि भक्त गान करते हैं तिनकी जय होइ ८ काल पला दंड दिन मास वर्ष युगादि ताको शुभाशुभ प्रभाव पुनः गुण यथा सतोगुणते शांतीस्वभाव रजोगुणते राजसी तमोगुणते तामसी जीव होता है शुभाशुभ कर्म करि सुख दुःख भोगत माया जो आत्मरूप भुलाइ मोहवशकरि जीवको इन्द्रीविषय सुखमें लगाये है इत्यादि के मथन नाशकर्ता निश्चल अचल सदा एकरस ज्ञान है व्रतसत्यरत सत्यव्रत को धारण किहे धर्मचारी धर्म के आचरणपर चलतेहौ ऐसे समर्थ हनुमान् जीकी जय होइ जिनको अणिमादिक प्राप्तीवाले सिद्ध सुर इन्द्रादि देववृन्द समूह अष्टांग योग करनेवाले योगी तिनमें इन्द्र श्रेष्ठ इत्यादि करिके सेवित सब आपुकी सेवा करते हैं तुलसीदास प्रणत आपुकी शरणागत है ताकी भय सब प्रकारको जो डर सोई तम अंधकार ताके अरि नाशकर्ता आपु सूर्य हौ ९॥

(२७)जयति मंगलागार संसारभारापहर वानराकारविग्रह पुरारी।
रामरोपानलज्वालमालामिस ध्वान्तचरशलभ संहारकारी १
जयति मरुदंजनामोदमन्दिर नतग्रीव सुग्रीव दुःखैकबन्धो।
यातुधानोद्धतक्रुद्धकालाग्निहर सिद्ध सुर सज्जनानन्दसिन्धो २
जयति रुद्राग्रणी विश्वविद्याग्रणी विश्वविख्यात भटचक्रवर्ती।
सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी रामहित रामभक्तानुवर्ती ३
जयति संग्रामजय रामसंदेशहर कोशलाकुशलकल्याणभाखी।
रामविरहार्कसंतप्त भरतादि नर नारि शीतलकरण कल्पशाखी ४
जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि निरभरहरष नृत्यकारी।
राम संभ्राज शोभा सहित सर्वदा तुलसीमानस रामपुरविहारी ५

टी०। पुत्रजन्म विवाह धन लाभादि लौकिक मंगल कथा पारायण भगवत् उत्सवादि पारलौकिक इत्यादि मंगलन के आगार मन्दिरहौ संसारको भार जन्म मरणादि ताके अपहर नाशकर्त्ता पुरारि शिवजी सोई वानरको आकार विग्रह देह

धारण किहेहौ तिनकी जय होइ कैसेहौ आपु रामरोष अनल रघुनाथजीको क्रोध रूप जो अग्निहै ताके ज्वालनके मालासमूह ज्वालनके मिस वहानेते ध्वांतचर शलभनको संहारकर्त्ताहौ अर्थात् ध्वांत जो अंधकार तामें चरनेवाले जो निशाचर तेई भये शलभ पांखी तिनको नाश करनहारेहौ १ मरुत पवन पिता अंजनी माता तिनके मोद आनन्दके मन्दिर भाव मातापिताके आनन्दके धाम ऐसे यशी पुत्र हौ पुनः नतग्रीव वालिकी भय करि सदा नीची ग्रीवा वनी रहतीहै जाकी ऐसा दुःखी जो सुग्रीव ताके दुःखविषे वन्धुसमान सहायकर्त्ता एक आपुही भयो भाव रघुनाथ जीको मिलाइ सव दुःख हरि महाराज वनायउ पुनः यातुधान राक्षस उद्धत नवल प्रताप ऐश्वर्यकरि जे ऊंचे हैं जिनको क्रोध काल अनल है अर्थात् जिनको क्रोध प्रलयकालकी अग्नि समान सवको भस्म करि देवे योग्य रहा ताके हर नाशकर्त्ता हौ पुनः सिद्धनको सिद्धिदायक देवतनकी विपतिहर्ता सज्जननको भक्तिवर्द्धक इत्यादि सिद्ध सुर सज्जनन हेतु आनन्द जलपूर्ण समुद्र हौ ऐसे उत्तम सवल सुख-दायक हनुमान्जी की जय होइ २ शंभुकपर्दी आदि जे एकादश रुद्र हैं तिनमें अग्र-णीय ग्यारहौ में श्रेष्ठ पुनः विश्वविद्याग्रणी संसार में यावत् विद्वान् हैं तिनमें आगे गनती आपुकी है पुनः विश्वविख्यात संसार में प्रसिद्ध यावत् भट योधाहैं तिनमें चक्रवर्ती महाराज भाव जे भटनमें भट हैं तिनमें महाभट हौ सामगाता साम-वेद के गावनेवाले यावत् त्रिलोक में हैं तिनमें अग्रणी श्रेष्ठ हौ तथा काम को जीतनेवाले यावत् हैं तिनमें श्रेष्ठ हौ रामहितकार रघुनाथजी को हितकार्य करनेमें अग्रणीय हौ रामभक्तन के अनुवर्त्ती सदा रक्षा करिवेहेतु रघुनाथजीके भक्तनके पाछे पाछे फिरा करतेहौ ऐसे गुणवन्त उत्तम हनुमान्जीकी जय होइ ३ संग्राममें सदा जय होतीहै जिनकी ऐसे हनुमान्जीकी जय होइ जे कोशला अयोध्याजीमें कुशल कल्याणकर्ता रघुनाथजीके आवनको संदेश भाषिके अयोध्याजी में जो अकल्याण अकुशल रहै ताको हरणहार भये काहेते रामविरह अर्क रघुनाथजीके वियोग ते विरहरूप जो सूर्य ता करिके भरत आदि दै पुरवासी नरनारि तप्त रहैं तिनको शी-तल करिवेहेतु कल्पसाखी कल्पवृक्ष ह्वै प्राप्तभयो प्रभुको आगमनमात्र वचनरूप छायाते विरह ताप हरे पुनः रणमें जयपाय सीता लषणसहित प्रभु प्रसन्न आवते हैं देवादि विमलयश गावत इत्यादि वचन अनेक वाञ्छित फलदायक हैं ताते कल्प-वृक्ष भये ४ पुनः अयोध्याजीमें आयके सीतारमण रघुनाथजी जानकी सहित भू-षणवसन साजि राज साज सहित सिंहासन आसीन राज्याभिषेक समय रत्न-सिंहासन पर वैठेहैं ताअवसर युगलस्वरूप की शोभा नेत्रनभरि निरखि निरभर जो उरमें भरिके अमाइ न सका ऐसा अधिक हर्ष भया ताते नृत्यकारी हर्षवश नाचने लगे ऐसे रामानुरागी हनुमान्जी की जय होइ सव प्रकारकी शोभा सहित राम सम्भ्राज सम्यक्प्रकार सत्यकरि विराजमान जो रघुनाथजी सोई समय की शोभा-सहित तुलसीमानस तुलसीदास को मनरूप जो रामपुर अयोध्याजी तामें सर्वदा सदा विहारी विहार करौ अर्थात् मेरे उरमें वहि समाज सहित सदा वसौ ५ ॥

(२८)जयतिवातसंजात विख्यातविक्रम वृहद्वाहु वलविपुल वालधिवि शाला । जातरूपाचलाकारविग्रह लसत लोमविद्युल्लताज्वालमाला १

जयति बालार्कवरवदन पिंगल नयन कपिश कर्कश जटाजूटधारी।
विकटभृकुटी वज्रदशन नखवैरिमदमत्तकुंजरपुंजकुंजरारी २
जयति भीमार्जुन व्यालसूदन गर्वहर धनंजयरथत्राणकेतू।
भीष्मद्रोण करणादि पालितकालदृक सुयोधनचमू निधनहेतू ३
जयति गतराज्यदातार हंतार संसारसंकट दनुजदर्पहारी।
ईति अतिभीति ग्रह प्रेतचौरानल व्याधिबाधा शमन घोरमारी ४
जयतिनिगमागमव्याकरणकरणलिपि काव्यकौतुककलाकोटिसिन्धो।
सामगायक भक्तकामदायक वामदेव श्रीरामप्रियप्रेमबन्धो ५
जयति घर्मांशुसंदग्ध संपाति नवपक्षलोचन दिव्यदेह दाता।
कालकलि पापसंतापसंकुल सदा प्रणत तुलसीदास तात माता ६

टी०। केशरी कुमार कहना साधारण है अरु वातसंजात पवनकरिकै सत्य सत्य उत्पन्नभये ताते विक्रम विख्यात पराक्रम प्रसिद्धहै अर्थात् महाबली पवनके पुत्र हैं इस हेतु हनुमान्‌जी को पराक्रम स्वाभाविकही सब जानिलिये भाव बलीको पुत्र बली होतही है पुनः बृहद् कहे बड़ी लम्बायमान हैं बाहु तिनमें विपुल बहुत है बल पुनः बालधि विशाल अर्थात् पूंछ बड़ी लम्बी है पुनः जातरूप अचल आकारविग्रह लसत सोने के पर्वताकार देह शोभित है तामें लोम जो रोमा हैं ते विद्युत लता बिजुली के लतन के ज्वालन के माला समान हैं अर्थात् भारी देह सोने कैसी कान्ति तामें समूह बिजुलीकी ऐसी चमक देह भरे के रोमा चमकिरहे हैं ऐसे स्वरूपवन्त हनुमान्‌जी की जय होइ १ बालअर्क वरवदन प्रभातकाल के सूर्यनते श्रेष्ठ मुखमें लालिमा है पिंगलनयन पीतरंगके नेत्र हैं कपिश यथा ॥ श्यावः स्यात्कपिशो धूम्र इत्यमरः॥ कपिश कर्कश अर्थात् धूम्ररंग को कठोर जटा ताको जूटधारी जूरा बांधे हैं पुनः विकट टेढ़ी हैं भृकुटी दशन जो दांत अरु नख ते वज्रसम पुष्टहैं वैरी राक्षसादि तेई मदमत्तपुंज कुंजर अर्थात् बलवीरतादिके मद करिकै माते समूहझुण्ड हाथिन सम हैं तिनके नाशकरिबे हेतु आपु कुंजरारि सिंहहौ ऐसे वीररूप हनुमान्‌जी की जय होइ २ कृष्णचंद्र के बुलाये महाभारत में हनुमान्‌जी आये किसी समय भीमने कहा आपना करालरूप दिखावो हनुमान्‌जीने कहा डरायउठोगे तब भीमके गर्व भया कि क्या हम नहीं वीरहैं जो डरिजायँगे सो जानि हनुमान्‌जी करालरूप प्रकट किया देखतही डरिकै नेत्र बंद करिलिये भीमको गर्व नाशभया तथा अर्जुनने कहा रघुनाथजी ने बाणों का सेतु क्यों न बांधि लिया सो सुनि हनुमान्‌जीने कहा कि तुम बाणनते सेतु बांधो जो मेरा भार न थांभि सकेगा तो तुम्हें पटकि मारौंगो जब सेतु बांधा तापर भारीरूपकरि हनुमान्‌जी चढ़ने लगे तबअर्जुन डराय भगवान्‌को सुमिरे जब भगवान् पीठिदीन्हे सो जानि हनुमान्‌जी उतरि आये परंतु अर्जुनको गर्व भंग भया तथा गरुड़जी को कृष्णचंद्रने पठाया कि हनुमान्‌जीको बुलाइलावो तें जाइ कदलीवनमें कहे कि आपुको भगवान् बोलावते हैं हनुमान्‌जीने कहा कि तुम मेरे संग न पहुँचोगे ताते चलौ मैं आवता हौं सो सुनि

गरुड़ बड़ेवेगते चले उहां देखैं तो हनुमान्जी बैठे हैं तब गर्व भंगभया इत्यादि भीम अर्जुन तथा व्याल सर्प तिनके सूदन नाशकर्त्ता जो गरुड़ इत्यादिके गर्वहरनेवाले हनुमान्जीकी जय होइ कैसे हौ आपु कि धनंजय जो अर्जुन तिनके रथ के पताका ध्वजामें बैठि त्राणनाम रक्षाकरनहारे भयउ काहेते जहां भीष्मपितामह ऐसे धर्मधुरीण हरिभक्त तथा द्रोणाचार्य ऐसे ऋषीश्वर तपस्वी पुनः करण ऐसे दानी ऐसे प्रतापी बली शूरवीर तिनकरिकै पालित सुयोधनकी चमू सेना जो कालकी ऐसी दृक्नाम दृष्टि अर्थात् यथा काल जापर दृष्टि करै सो न बचै तथा सेना के रक्षक जो भीष्मादि जापर कोप करैं सो न बचिसकै इत्यादि जामें रक्षक तिस सेनाके निधन के हेतु नाशकरिबेके कारण भयो भाव ध्वजामें बैठि रथ थांभेरहेउ ताते अर्जुन युद्ध जीते ३ यथा सुग्रीव विभीषणादि की राज्यगत नाम जात रहीहै तिनके दातार उपाइकरि देवाइदेनहारेहौ पुनः संसारसंकट लोकजीवन कौ दुःख हरणहारे नाम लेतही संकट छोड़ाइदेतेहौ तथा दनुजदर्पहारी बलवीरताकरि दैत्यनको अहंकार नाशकरि देते हौ ऐसे सुजनपाल खलघाल हनुमान्जी की जयहोइ अतिवृष्टि अनावृष्टि शलभ सुवा मूसा स्वराज्य परराज्य इत्यादिकी बाधा ईति कहावत सो प्रजन के हेतु अतिभीति अत्यंतभय है तथा सूर्यादि नवग्रहकरिकै जो बाधा पुनः प्रेतचोर अग्निज्वर संग्रहणी कुष्ठादि जो व्याधि घोर मरी भयंकर हुलका इत्यादि की जो बाधा हैं तिनके शमन नाशकर्त्ताहौ भाव आपुको नामलेतही सर्व बाधा शांत हैजाती हैं ४ निगमवेद आगमशास्त्र तथा व्याकरणादिके लिपिकरण लिखने में प्रवीण अर्थात् यावत्विद्या सूर्यनते पढ़ी तिनमें समास व्युत्पत्ति व्याख्या भाष्यादि नवीन लिखाकरते हौ पुनः साहित्यरस अलंकार छंदप्रबंधादि जो काव्यहैं तिनको कौतुक नवीनचोज उपमा चित्रादि तमाशा तथा चातुर्यताकी जो करोरिन कलाहैं इत्यादि जलपूर्ण समुद्रहौ सामवेदको विधिवत् गानकर्त्ता भक्तजनों को मनोकामना देनहारे वामदेव शिवको अवतार हौ पुनः प्रेम है प्रिय जिनको ऐसे जो श्रीरघुनाथजी तिनको बन्धु समान प्यारे हौ ऐसे हनुमान्जीकी जय होइ ५ अंशु जो किरणैं सोई घर्मनाम उष्ण हैं जिन की अर्थात् सहजै स्वभावते प्रचण्ड किरणैं फैलाये रहते हैं जे ऐसे घर्मांशु जो सूर्य तिनके तेज ते संदग्ध सम्यक्प्रकार जरिगया जो संपाति पक्षी ताको सिन्धुतट दर्श दै पुनः नवीन पक्ष नवीनलोचन नेत्र तथा नवीन दिव्य देहके देनहार भयउ ऐसे दयालु उदार हनुमान्जीकी जय होइ मेरी भी प्रार्थना सुनिये कलिकाल कराल कलियुगप्रेरित पाप तिनको फल संताप सम्पूर्ण तापन करिकै सदा संकुल परिपूर्ण भरा मैं जो तुलसीदास सो आपके प्रणत शरणागत हौं मेरे रक्षा करनहारे माता पिता एक आपही दयासिन्धु हौ ६ ॥

(२९)जयतिनिर्भरानन्दसन्दोहकपिकेशरीकेशरीसुवनभुवनैकभर्त्ता।
दिव्यभूम्यंजनामंजुलाकरमणे भक्तसन्ताप चिन्तापहर्त्ता १
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ब्रह्मलोकादि वैभव विरागी।
वचन मानस करम सत्य धर्मव्रत जानकीनाथचरणानुरागी २
जयति विहगेशबलबुद्धिवेगातिमदमथन मन्मथमथन ऊर्ध्वरेता।

महानाटकनिपुण कोटिकविकुलतिलक गानगुणगर्व गन्धर्व जेता ३
जयति मन्दोदरीकेशकर्षण विद्यमान दशकंठ भटमुकुटमानी।
भूमिजादुःखसंजात रोषांतकृत यातनाजंतुकृतयातुधानी ४
जयति रामायणश्रवणसंजातरोमांच लोचनसजल शिथिलवानी।
रामपदपद्ममकरन्दमधुकर पाहि दासतुलसी शरण शूलपानी ५

टी०। जो उरमें परेते न अमाइसके ऐसा निर्भर आनन्द संदोहनाम समूहहैं जिन में ऐसे कपिकेशरी अर्थात् वानरनमें सिंह केशरीके सुवन पुत्र जो हनुमान्जी सो भुवनके एकभर्ता जगत् के मुख्य रक्षक स्वामी हैं काहेते भक्तन की जो संपूर्ण प्रकार की तापैं हैं तथा लोकमें हानि परलोकमें कुगति इत्यादि यावत् चिंता हैं तिनको अपहर्ता नाशकरि देवेहेतु चिंतामणिकी समान हैं सो चिंतामणि तो किसी भूमिमें खानिते निसरती है इहां दिव्य भूमि जो अंजनी हैं सोइ मंजुलनाम सुंदरि आकर खानिहैं तहां उपजे ऐसे हनुमान्जीकी जय होइ १ चिंतामणि चाहती कछु नहीं परन्तु प्राप्तमात्र देती सब पदार्थ तथा ब्रह्मलोकादिको विभव ऐश्वर्य ताहू को त्यागे ऐसे विरागवान अरु दर्शनमात्रते अर्थ धर्म काम मोक्ष के देनहारे ऐसे विभो समर्थ हनुमान्जी की जय होइ जो सबसों विरागी हैं तौ रागी काहेके हैं सो कहत कि मनकरि वचनकरि कर्मकरिकै जानकीनाथ जो श्रीरघुनाथजी तिनके चरणकमलके अनुरागी हैं येही एक अनन्यता धर्मको व्रत धारण किहे हैं २ गरुड़ के बुद्धि बल वेगको गर्व भया ताते कृष्णचन्द्र कहे कि हनुमान्जी को बुलाइ लावउ कदलीवन को गये हनुमान्जी सो कहे जे गोपालजीकी आपुको श्रीकृष्णजी बुलावते हैं हनुमान्जी न बोले जब पुनः कहे तब गरुड़की टांग पकरि फेंकिदिये आइ द्वारिकामें गिरे हाल कहे तब कृष्णचन्द्र बोले कि वै तो रामरूप के उपासक हैं तुम कैसे निर्बुद्धी हौ जो कृष्णनाम कहे अब जाउ रघुनाथ नामते बोलावना तब आनन्द ते आवैंगे पुनः गये तब बोले जे श्रीरघुनाथजीकी तैसे उठि हनुमान्जी मिले आदर कीन्हे तब कहे कि रघुनाथजी बुलावते हैं तब कहे तुम चलौ मैं आवता हौं गरुड़ आइ देखे कि हनुमान् बैठे हैं यह स्कन्द में प्रसिद्ध है इत्यादि विहंगन के ईश जो गरुड़ तिनको बुद्धिबल वेग को अत्यन्त मद रहै ताके मथन नाशकर्ता अर्थात् पकरि फेंकिदेने ते बलको मद गया वार्ता करते न बनी याते बुद्धिको मद गया बराबरि चलि न सके ताते गतिको मद गया इत्यादि पुनः इंद्रीजित अकाम ऐसे कि मन को मथनेवाला कामदेव ताको मथन मदनाशकर्ता काहेते ऊर्ध्वरेता हैं आपनो बीज शीशपर चढ़ाइलिये हैं पुनः महानाटककाव्य करिबेमें निपुण अत्यन्त प्रवीण काहेते रामायण बनावनेवाले वाल्मीक्यादि जे कोटिनकवि हैं तिनमें तिलक शिरोमणि हैं अर्थात् संग में जो रामचरित देखतगये सो प्रतिअक्षर सांचीबात नाटक काव्य करते गये पुनः गानविद्या में ऐसे प्रवीण कि गान गुणको गर्व रहा जिनके तिन गंधर्वनको जीतलिये ताकी जय होइ ३ निःशंक वीर कैसे हैं कि राक्षसनके बीच रावण मन्दिरमें पैठि यज्ञ विध्वंस कीन्हे पुनः भट योधन में मुकुटमणि शिरोमणि जाके दशकंठ ऐसे रावण के विद्यमान देखत संते वाकी रानी मंदोदरी को केशकर्षण वारणकरि

भीतरते आँगन को खैंचिलाये ऐसे हनुमान्‌जीकी जय होइ वीर है खिनको यथों सताये तापर कहत कि भूमिजा जो श्रीजानकीजी तिनके दुःख करिकै संजात नाम उत्पन्न जो रोष क्रोध ताके वशते यातुधानी जो राक्षसी तिनको कैसी सांसति कीन्हे यथा अंतकृत जो यमराज ते कर्मफल भोगहेतु सब जीव जंतुनको जातना करते हैं निर्दयी है दुःख देतेहैं तैसही निर्दयी है राक्षसिनको दंड दीन्हे भाव जानकीजी के दुःखमें ये सब खुशी रही हैं ताको फल दीन्हे याते परवश अवलको दुःख न देखना चाहिये ४ रामायण श्रवणकरत में प्रभु के गुणगण विचारि संजात नाम उत्पन्न होत जो प्रेमानंद सो उरमें नहीं अमात ताकी उमंग उरमें नहीं अमात ताते देहमें रोमांच उठिआवत नेत्रनमें आंशूजल निसरिआवत कंठारोधन ते वाणी शिथिल गद्गदवाणी निसरत ऐसे प्रेमी हनुमान्‌जीकी जय होइ पुनः कैसे प्रेमीहैं कि राम-पदपद्म श्रीरघुनाथजी के पदकमलन में अनुरागरूप जो मकरंदरसहै ताके पान करनेवाले मधुकर भ्रमर हे शूलपाणि साक्षात् शिवको अवतार हनुमान्‌जी! मैं जो तुलसीदास सो आपुकी शरणहौं ताते पाहि अर्थात् कृपाकरि मेरी रक्षा करौ कलिभय हरौ ५॥

राग सारंग।

(३०) जाके गति है हनुमान की।

ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिश पषान की १
अघटितघटन सुघटविघटन ऐसी बिरदावली नहिं आन की।
सुमिरत संकट शोचविमोचन मूरतिमोदनिधान की २
तापर सानुकूल गिरिजा हर लषण राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपाविलोकनि खानि सकलकल्यान की ३

टी०। जाके गति जा पुरुषके आशभरोसा विश्वासादि हनुमाने को गति है भाव सेवा सुमिरण अर्चनादि करत संते एक हनुमानेजी को बल राखे हैं जो ताकी पैज पूरि आई अर्थात् हनुमान्‌जी को बलभरोसा राखि उसने जो प्रतिज्ञा किया सो हर्ष सहित पूर्ण भई यह बात अचल जगमें कैसी प्रसिद्धहै यथा कुलिश पाषाणकी रेखा भाव वज्र पत्थर में जो रेखा होती है सो किसीके मिटाये मिटती नहीं है तैसे हनुमान् जीकी कर्तव्यता कोऊ मेटि नहीं सकत १ काहेते कुलिशपाषाणकी रेखाहै कि ऐसे सबल साहसी समर्थ हनुमान्‌जी हैं कि जो अघटित घटने योग्य नहीं ताको घटावने वाले यथा सुग्रीवको अभय होना दुर्घट रहै तिनको महाराज बनाये तथा विभीषण को लंकाका वास दुर्घट रहै ताको अविचल राजा बनाये पुनः जो सुघट सहजही घटत रहै ताको विघटन मिटावनेवाले यथा वालि रावणकी अचल राज्य अजीतता तिनको बिगारि दीन्हे इत्यादि ऐसी बिरदावली वीरता उदारतादि यशकी पांति आन और किसीकी नहींहै जैसी हनुमान्‌जीकी है काहेते आनन्दपरिपूर्ण पात्र इति मोदनिधान हनुमान्‌जीकी मूरति कैसी है कि जाको सुमिरतमात्रही शत्रु राज-भयादि सबप्रकार के शोचन को विशेष छुड़ाइ देते हैं तथा व्याघ्र सर्प शत्रुको

संघट्ट बंधन रुजादि संकट विशेषि छुड़ाइ देते हैं २ ऐसी शक्ति काहेते है कि मोद निधान हनुमान्‌जीकी जो मूरति है तापर गिरिजा हर पार्वती शिव पुनः लक्ष्मण जी रघुनाथजी अरु विशेषि जानकीजी इत्यादि सब सानुकूलभाव हनुमान्‌जी की मनभावत करते हैं इसीसे तुलसीदास कहत कि कपि की कृपाविलोकनि हनुमान् जीकी कृपाभरी दृष्टिते देखनि कैसी है कि पुत्रवत् धाम धरणी लाभादि लौकिक उत्सव तथा भगवत्कथापरायण सतसंगादि पारलौकिक उत्सव अंतसुगति इत्यादि सकल कल्याणकी खानि है सब कल्याण उपजते हैं ३॥

राग गौरी।

(३१) ताकिहै तमकि ताकी ओर को।

जाको है सबभांति भरोसो कपि केशरीकिशोर को १
जनरंजन अरिगणगंजन मुखभंजनखल बरजोर को।
वेद पुराण प्रकट पुरुषारथ सकल सुभट शिरमौर को २
उथपे थपन थप्योउथपनपन विबुधवृन्द वन्दिछोर को।
जलधि लंघि दहि लंक प्रबलदलदलन निशाचरघोर को ३
जाको बालविनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुक चोट चूरण किय रदमद कुलिश कठोर को ४
लोकपाल अनुकूल विलोकिबो चहत विलोचनकोर को।
सदा अभय जय मुद मंगलमय जो सेवक रणरोर को ५
भक्त कामतरु नाम राम परिपूरणचन्द्चकोर को।
तुलसी फल चारो करतल यश गावत गई बहोर को ६

टी०। केशरी नाम कपि तिनके किशोर पुत्र हनुमान्‌जी तिनकी सेवन सुमिरण अर्चनादि सिवाय दूसरेको जे भरोसा नहीं राखेहैं इत्यादि जाके सबभांति हनुमानै जीको भरोसा है ताकी ओर को ऐसाहै जो तमकि क्रोधभरी कुदृष्टि ताकिसकै १ कैसे हैं केशरीकिशोर कि जनरंजन दासनको आनंद देनहारे पुनः अरिगणगंजन शत्रुसमूहनको नाशकर्ता पुनः दुष्टों के मुख तोरिडारनेवाले अत्यंत बली सिवाय एक हनुमान् जी और दूसरा को है काहेते सहस्रभुजवान् रावणादि जे ते बली वीर कहावते हैं तिन सकल सुभटन के शिरमौर जो हनुमान्‌जी तिनको पुरुषारथ बल वीरता साहस दया पालता उदारतादि वेदपुराणादि द्वारा लोकनमें प्रकट है सबै जानतेहैं २ क्या पुरुषारथ प्रकटहै यथा जे थपेहैं सुग्रीव विभीषणादि जे घरते निकारि दियेगये तिनको थपनहार अर्थात् राजा बनाये पुनः थप्यो यथा बालि रावण जे अचलराज्य ऐश्वर्यको प्राप्त रहे तिनको उथपन अर्थात् मूलसहित उखारिडारे पुनः विबुधवृंद देवतासमूह सब रावणके वंदीखाने में बँधुवा रहे तिनके बंदी छुड़ावनहारपन सिवाय हनुमान्‌जीके और दूसरा कौनहै भाव रावणादिकनको वधके आदि कारण हनुमानै जीहैं काहेते सिंधु नांघनेवाला और कौन रहै सो जलधि लांघि समुद्रको फांदि रावण

के सामने लंकादहि भस्म करि पुनः प्रवल प्रकर्षकरिकै वली अरु घोर महाभयंकर ऐसा जो निशाचरनको दल सेना ताको अकेलही नाश कीन्हे तिन राक्षसनको दलन हारा दूसरा कौन रहै इति पुरुषारथ प्रसिद्ध है ३ वालअवस्थामें फल जानि सूर्यन को ग्रास करने धाये इत्यादि जा हनुमान्जीको वालविनोद आनंदमय वालकेलि समुझिकै भोरको दिवाकर उदयकालमें सूर्य रोजही डरत हैं भाव पुनः ग्रास न करि लेइ जा समय सूर्यनको ग्रास करने गये तब इंद्रने हनुमान्जीकी दाढ़ी में वज्र मारि तामें चोट न आई दाढ़ीकी कठोरताते वज्रके दांतोंकी धार भरिगई इत्यादि जो पर्वतन को चूर्णकरनहारा ऐसा कठोर कुलिश वज्र ताके रद जो दांत तिनके कठोरताको जो मद रहा ताको चूर्ण करिदिया जा हनुमानजीकी चिबुक दाढ़ीकी चोटने भाव दाढ़ी की कठोरता लागेते वज्र के दांत टूटिगये ४ जा हनुमान्जीके विलोचन दोऊ नेत्रनकी कोरको अनुकूल विलोकिवो प्रसन्नतापूर्वक देखिवो लोकपाल इंद्रादि चाहत कि हनुमान्जी हमपै दयादृष्टि राखैं काहेते रण में रोर कठिनस्वभावहै जाको ऐसे सबल वीर जो हनुमान्जी तिनको जो सेवकहै ताको किसीकी भय डर नहीं रहत ताते सदा अभय रहतेहैं पुनः जो कोऊ शत्रुताकरत तासों युद्धमें जय पावत पुनः मुद मानसीआनंद पुनः मंगल प्रसिद्ध उत्सवइत्यादि मय रहताहै ५ श्रीरघुनाथजी परिपूर्ण पूर्णमासी के चंद्रमा हैं तिनको प्रेमसहित यकटक अवलोकनकर्ता चकोर जो हनुमान्जी तिन को नाम स्मरणमात्र भक्तनको अर्थ धर्म काम मोक्ष देनहारा कामतरु कल्पवृक्षकी समानहै काहेते जाकी जो वस्तु जातरही यथा सुग्रीवकी ऐश्वर्यताको वहोरि मिलाइ देनहारे इति गई वहोरि जो हनुमान्जी तिनको यश गावत गावत संते चारिहू फल करतल वाके हाथमें प्राप्त होते हैं ऐसा तुलसीदास कहत ६ ॥

राग विलावल।

(३२) ऐसी तोहिं न बूझिये हनुमान हठीले। साहव कहूं न राम से तो से न वसीले १ तेरे देखत सिंह के शिशु मेढक लीले। जानत हौं कलितेरोऊ मन गुणगण कीले २ हांक सुनत दशकंध के भये बन्धन ढीले। सो वल गयो किधौं भये अव गर्वगहीले ३ सेवक को परदा फटे तू समरथसीले। अधिक आपते आपनो सुनि मान-सहीले ४ सांसति तुलसीदास की सुनि सुयश तुहीले। तिहूं काल तिनको भलो जे रामरँगीले ५

टी०। ऐसा स्वारथी अरु कविनको सहजही स्वभाव होता है ताते समर्थ उदार जानि बहुत गुण गाये जब परिपूर्ण दान न पाये तब कूटिसहित प्रशंसा करते हैं कैसा ही दुर्घट काम होवे जो किसी भांतिते न ह्वैसकै ताको भी आपु ऐसे हठी हौ कि विना करिडारे नहीं छाड़े यथा जे ऐसे वरदानी राक्षस हैं कि कर चरण पर्वत प्रहार मर्दै मींजे किसी भांति के मारे न मरे तिनको लूम में लपेटि आकाश को फेंकि दीन्हें ते वायुमण्डल में परे देहैं सूखिकै मरिगये इत्यादि हे हठीले हनुमन्। ऐसी बूझि तोहि न चाहिये कि सवल वीर दयावन्त उदार ह्वैकै मेरी वारको अवल कादर निर्दयी सूम वने जाते हौ यह समुझ तुमको उचित नहीं है भाव अमल चंद्रमा

सम यश उदितअमल श्वेतचांदनी सम कीर्ति जगमें फैली तामें मलीनता आइ जायगी यथा परेवाको चंद्रमा रातिभरि पूर्ण प्रकाशमान रहत परन्तु निशामुख में मुहूर्तमात्र विना उदयभये अँधेरापक्ष कहावताहै पुनः राम से सवल समर्थ सर्वोपरिरूप सुलभ उदार रघुनाथजी ऐसो साहेब त्रिलोकनमें कहूं नहींहै तिनके दरवार में तोसे न वसीले आपुकी समान सई करनेवाला भी दूसरा नहीं १ ताते इस दरवारमें दादि करनेवाला मैं आपुते शिफ़ारश चाहता हौं इस हेतु आपकी शरणागती रूप आपु को वालक हौं आपु सवल सिंह समान हौ तेरे आपुके देखत सामने आपुको शिशु वालक जो मैं ताको मेढकसम तुच्छ कलिकाल सो लीलि लेता है सो आपु तमाशा देखते हौ ताते अब मैं ऐसा जानता हौं कि कलिकाल ने मानों तेरे भी गुण यथा शरणपालता दयालुता वात्सल्यता सवल वीरतादि गुणगणन को कीलिडारा यथा कीले मंत्र में शक्ति नहीं रहती है तथा कलिकाल के प्रभावते आपहू के सब गुण शक्तिहीन ह्वै गये यथा वनवासी लोग वन के सवल जीवन को मंत्रन सों कीलि देते हैं ताते उनकी सीवां भरे में व्याघ्रादि भी चोट नहीं करते हैं तथा आपुको कलियुग ने कीलि दिया ताते वाकी सीवां में आपु सिंहवत् ह्वै चोट नहीं करते हौ २ काहेते जानि परत कि कलियुग ने आपुको कीलि दिया कि तुच्छ कलियुग की कौन गिनती जो परीक्षित के क्रोधते सभीत ह्वै पायँनपरा जिसने सुर नर नागादि सवको जीति लिया ऐसा सवल रावण रहै ताके सन्मुख समर में जब आपुने प्रचारा सो हांक सुनतही दशकन्धर के भी वंधन ढीले परिगये भाव लंका फूंकत में जो वीरता वल विशालता देखा रहै सोई सुधि करि हियेते हारिगया ताते निर्वलसी देह हाथ पायँ जनु छूटिपरे ऐसा आपुमें वल रहा है जाको देखि रावण ऐसा सवल शूर वीर सोऊ सशंकित ह्वै शिथिल भया ऐसा जो आपुमें वल रहा है सो अब मिटि गयो क्या पूर्ववाला वल अब नहीं रहा इत्यादि अवल ताते कलिकाल को डराते हौ अथवा ऋषिशाप वशते सो पूर्वको वल भूलि गयो होय तौ मैं सुधि करावता हौं कि आपुमें ऐसा वल रहा है कि हांक सुनि रावण के वंधन ढीले भये कलियुग तुच्छ आपुके आगे क्या है अथवा अब गर्व गहीले भये गर्व ग्रहण किहेउ अर्थात् तब त्रेता के प्रभावते दया शीलवन्त रहौ अब कलियुग को प्रभाव आपहू के व्यापि गया ताते अभिमानी ह्वै गयउ इस हेतु दीनन की पुकार नहीं सुनते हौ ३ काहेते जानियत कि अब गर्वगहीले भयो कि तब तौ आपुका स्वभाव ऐसा दयालु शीलवन्त रहाहै कि शरणागत सेवक आपनो जानि ताको मानवड़ाई आपुते अधिक सुनिके सहीले कहे सहिलेते रहौ अर्थात् कैसहू नीच होय जो सेवक ह्वै आपुकी शरणागत आया ताको अपना ते अधिक मान वड़ाई देत रहे हौ यही जानि मैं भी सेवक ह्वै आपुकी शरणागतहौं इत्यादि आपुको सेवक जो मैं ताके परदाफटे अर्थात् मेरी द्वारा जो रामनाम रामयश को लोक में प्रचार भया ताके प्रभावते सुधर्म ज्ञान विरागभक्ति इत्यादि मेरी मर्यादा लोक में वढ़ी है ताको कलियुग पकरि काम क्रोध लोभ मोहादि लगायके मेरी मर्यादा नाश कीन्ह चाहत इत्यादि परदाफटे ताको सीवे योग्य तू समर्थ है भाव आपुके सिये वसन को कलियुग पुनः न फारि सकैगो ताते सदा रक्षारूप धागा

मेलि कृपारूप सुईते आपु मेरे फटे परदा को सीलीजिये भाव समर्थता करिकै कलियुग को डाटि दीजिये अरु कृपादृष्टि मेरी सदा रक्षा राखिये जाते कामादिको वेग न व्यापने पावै ४ कलियुग कृत सांसति महादुःख संकट तुलसीदास को है तापै दयादृष्टि ते देखि भाव कलियुग ते मोको बचाय यह सुन्दर यश आप लें अर्थात् कलियुग दुष्ट को डाटि रामसनेही साधु को बचावना यह लोक में प्रशंसा प्रभु के द्वारपर आपही लैलीजिये क्योंकि आपु प्रभु के मुख्य सेवक हौ ताते आपु के योग्यहै कि दारिद्रवंत की दर्द जो द्वारही पर आपु मिटाइ देवैं तौ प्रभु के ढिग काहेको पुकारना परै नाहीं तौ वेद पुराण द्वारा यह बात लोक में प्रसिद्ध है कि जे रामरँगीले हैं तिनको तिहूं काल में भलो है अर्थात् श्रीरघुनन्दन की प्रीति रंग में जिनके मन रँगे हैं तिनको भूतकाल में भला भया है वर्तमान में भला होता है भविष्य में भला होयगा यह वचन जो सांचा है तौ अवश्य मेरा भला होयगा ५॥

(३३) समरथ सुवनसमीर के रघुवीरपियारे। मोपर कीबे तोहिं जो करिलेहि भियारे १ तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी चियारे। अँधियारी मेरी बार क्यों त्रिभुवनउजियारे २ केहि कारण जन जानिकै सनमान कियारे। केहि अघ अवगुण आपनो करि डारिदिया रे ३ खाये खोंची मांगि मैं तेरो नाम लियारे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जियारे ४ जो तोसों होतो फिरो मेरो हेतु हियारे। तौ क्यों वदन देखावतो कहि वचन इयारे ५ तोसों ज्ञाननिधान को सर्वज्ञबियारे। हौं समुझत साईं द्रोह की गति छारछियारे ६ तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सियारे। तहँ तुलसी को कौन को काको तकियारे ७

टी०। हे समीर के सुवन! भाव पवन के पुत्र हौ ताते महाबली वीरहौ पुनः रघुवीर के प्यारे सेवक ऐसे समर्थ है मेरी सासति को तमाशा देखते हैं तौ भियारे तोको भी जो कछु करना होइ सो मोपर तुमहूं करिलेउ भाव कलियुग तौ मारतै है तहां आपहू हाथ लगाय लीजे तहां सबल समर्थ जो सभीतको अभयदान न देवै तौ मारने तुल्य है ताते आपुको उचित नहीं कि मेरी रक्षा न करौ क्योंकि मैं सभीत शरण आया हौं आपु समर्थ हौ १ कैसे समर्थ हौ कि तुम्हारी महिंमा ते चिंचिनी के चिया अर्थात् आपुके प्रभाव ते अमिली के बीज तेऊ रुपया अशर्फ़ी रत्नादि के भावपर चलते हैं भाव सुकर्मी रुपया है ज्ञानी अशरफ़ी हैं भक्त रत्न हैं तथा आपुकी कृपाते लघुजीव विना साधन कीन्हे सुधर्मी ज्ञानी भक्त ह्वै जाते हैं ऐसा प्रभाव आपुको तीनिहूं लोकन में सूर्यप्रभावत् प्रकाशित है इत्यादि त्रिभुवन उजियारे हे हनुमान्जी! अब मेरी बार क्यों अँधियारी किहे हौ भाव त्रिलोक दुःखदायी रावणादि राक्षसन को मारि त्रिलोक जीवन को सुखी कीन्हेउ अब

कराल कलियुग मोको सतावता है सो हँसि हँसि तमाशा देखते हो इति मेरी बार अँधेरी भाव अनीति करते हो २ क्यहि कारण पूर्व कौन ऐसी सुकृत अरु शुभ गुण हमारे रहैं जिनको देखि अपना जन जानि आपुने मेरा सन्मान आदर किया अरु अब क्यहि अघ कौने पापनते तथा कौने औगुणनते आपनो करिकै पुनः आप ने मोको छांड़िदिया भाव अब काहेते मोको त्याग करतेहौ पूर्व काहेते ग्रहण किह्यउ रहै दोऊको कारण बताइये नातरु ग्रहणकरि त्यागना प्रतिष्ठित वीर उदारों को काम नहींहै कि बाँह दै घात करावैं दानदै फेरिलेवैं ३ पुनः मेरी रीति सुनिये कि जबते आपुने कृपा की तबते खोंची अर्थात् बजारदुकानों में ग्राम द्वार द्वारनमें चुटकी मांगिकै मैं खाये भाव कछु व्यापार नहीं किया जामें पापकर्म होइ सो नहीं पुनः तेरो नाम लिया भाव सदा आपुहीको नाम स्मरण करत रह्यों कछु अन्य देवन के मंत्रादि जापअभिचार नहीं कीन्हे जामें पापकर्म होवे पुनः बलि तेरे बल मैं बलिहारीहौं आपुहीके बलते जगजागि जगत् में प्रसिद्ध है आजलों जिया सुखपूर्वक जीवन रहा भाव जगमें प्रसिद्ध है कि तुलसीदास पर हनुमान्जीकी कृपा है इति जगमें जागना है अनेकन प्रतिज्ञा मेरी पूरी परीं इति आपुको बल रहा पुनः केवल स्वारथहेतु मुखते कठोर वाणी कही अरु अंतरते बलिहारी हौं विमुख न विचारना ४ काहेते विमुख न विचारना कि जो मेरे हियरेहेतु अर्थात् विमुखता को कार्य कैसा जो मेरे हृदय में कारणमात्र था सो फिरो आपुते विमुखहो तो भाव जो उरमें कारणमात्र विमुखता होती तो प्यारे यारदोस्त के ऐसे ढीठे वचन कहिकै क्यों वदन कैसे मुख आपुको देखावतो भाव ढीठे वचन कहि स्वारथकरावना ऐसो बल सेवाइ सनेही के अरु विमुख के नहीं होता है इत्यादि विचारि विमुख न जानिये ५ कदाचित् मैं छल करता होउँ तो आपुसरीखे ज्ञाननिधान परिपूर्ण ज्ञानी अरु सर्वज्ञ अंतर बाहरकी त्रिकालकी बात जाननेवाला आपुसरीखे बियानाम दूसरा कोहै अर्थात् आपु तौ ज्ञानवंत सर्वज्ञ हौ जो मेरे उरमें विमुखता होयगी वा झूठ कहत होउँगो तो आपु जानिलेउगे पुनः हौं सांई द्रोहकी गति समुझत अर्थात् स्वामी से विरोध करनेते जैसी गति होती है सो मैं समुझत हौं क्या होत छारछिया छार नरकमें छियानाम दुर्दशा होती है जे स्वामी सों द्रोह करते हैं तिनकी यथा भागवते ॥ अथ च यस्त्विहवाआत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्म तपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वाक्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरंता यातना ह्यश्नुते ६ तेरे स्वामी रामसे पुनः आपु कैसेही जिनके रघुनाथजी ऐसे स्वामी भाव सर्वोपरिरूप सुलभ उदार शीलवंत तथा क्षमानिधि परमकृपाला अह्लादिनी शक्ति जानकीजी ऐसी स्वामिनी हैं भाव दोऊ जनेनको आपु पुत्रवत् प्यारेहौ तहां तिनके दरबार में तुलसी के कौन स्वामिनी है अर्थात् केवल श्रीजानकीजी मेरे स्वामिनी हैं पुनः और दूसरा को स्वामी है अर्थात् केवल श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं तिनके शरणागत पहुँचावनेवाला इस दरबार में काको तकिया नाम भरोसा राखौं भाव मेरे एक आपुही को तकिया नाम भरोसा राखेहौं यह तकिया लफ्ज अरबी है तकिया के माने जिसपर सहारा लगायाजावे यह करीमुल्लुगातमें लिखा है अर्थात् जिसके भरोसे रहना पुनः गुलिस्तांमें शेखसादी लिखे हैं यथा ॥ मकुन्तकियबरमुल्कदुनियां व पुश्त ॥

अर्थात् मतकर भरोसा ऊपर दुनियां के और एतमाद अर्थात् विश्वास इति हे हनुमान्जी! मेरे सबभांति आपुही को भरोसा है ७॥

(३४) अतिआरत अतिस्वारथी अतिदीन दुखारी। इनको बिलग न मानिये बोलहिं न बिचारी १ लोकरीति देखी सुनी व्याकुल नर नारी। अतिबरषे अनबरषेहूं देहिं दैवहि गारी २ नाकहि आये नाथसों सांसति भै भारी। कहिआयो कीबी क्षमा निज ओर निहारी ३ समयसांकरे सुमिरिये समरथ हितकारी। सोउ सबबिधि ऊपर करै अपराध बिसारी ४ बिगरी सेवक की सदा साहिबहि सुधारी। तुलसीपर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी ५

टी०। जो पूर्व कठोर वचन अनेकन कहिआये तिनके क्षमाकरावने हेतु प्रार्थना करते हैं कि हे हनुमान्जी! मेरे अंतरकी प्रीति विचारिकै जो बेहोशीमें मेरे कठोरवचन हैं तिनको सांच न मानिये काहेते कि यह लोक प्रसिद्ध रीति है यथा॥ बात कहीं सब स्वारथहेतू। रहत न आरत के चितचेतू॥ ऐसा विचारि जे अतिआरत सबल शत्रु संघट्ट प्रचंड राजदंडादि भयातुर अधीर इति अति आरत तथा स्वारथ में जे महा लोभ किहे हैं इति अतिस्वारथी तथा जे दरिद्रादिपीड़ित इति अतिदीन तथा कुष्ठ नेत्र उदर शूलादि व्याधिपीड़ित इति दुखारी इत्यादि जो केसहू कठोरवचन कहैं तौ इन सबको अपनाते बिलग भिन्नकरि न मानिये भाव कुवचन सुनि बिमुख न मानि लेना चाहिये क्योंकि आरतादि विवश चितचैतन्य तौ रहता नहीं ताते बुद्धि नष्ट ह्वै जाती है इसहेतु विचारिकै तौ बोलते नहीं जो कुछ मनमें आया सो बकिडारे तिनकी कौन प्रमाण है १ तथा जो लोक जननकी रीति है सो वर्तमान में तौ देखतेही पुनः भूत काल की वार्ता सुनिये कि अति बर्षे जब बड़ी वर्षा होती है तथा अनवर्षेहूं अर्थात् जब नहीं वर्षा होती है तब नारीनर जीविका हानि दुःखकरि व्याकुल ह्वै दैवको भी गारी देते हैं अर्थात् ब्रह्माण्डनका स्वामी चराचरको पालनहार जाको सबै भरोसा राखे सदैव याचना करते हैं ऐसा जो ईश्वर ताहूको स्वारथहानि वश बेहोश ह्वै कुवचन कहते हैं लोग तिनकी बातन को जो ईश्वर ख्याल करै तौ सब सृष्टि नाशह्वै जाइ ताते आरतवशकी वार्ता वृथा मानि नहीं सुनता है यथा बालक निज स्वार्थ-हानि ते माता को अनेक कुवचन कहत सो माता के रोमा में नहीं छुइजात सदा लालन पालनै करती है तथा मेरे आपुहौ कुवचनन को ख्याल न कीजिये सेवक आरत जानि प्रतिपालन कीजिये २ क्या दुःखवशते बेहोशी भई कि कलियुग मोपर कोपकरि काम क्रोधादिकन को लगाइ दिया ते मोको महादुःखदायी संकटमें डारे इत्यादि कलिकृत सासति की महाभारी भय डर करिकै नाकहिआये अर्थात् नथुननमें प्राण मेरे भये इत्यादि बेहोशी में नाथसों कहिआये अर्थात् हे नाथ! उसी बेहोशी ते आपुको अनेक कुवचन कहिआयों सो आरतके वचन हैं ताते निज ओर निहारि आपनी कृपा दया करुणा वात्सल्यतादि गुणोंपर दृष्टि करि क्षमाकीबी मेरे अपराध क्षमा कीजिये मैं सेवक आपु स्वामी हौ ३ उत्तम स्वामी की यह

रीति है कि कैसहू सेवक अपराध किहे है अरु जब शत्रु संघट्टादि सांकरे समयमें सुमिरिये अर्थात् हितकर्ता समर्थ स्वामी को सुमिरण करता है तब वात्सल्यता गुणते जनके पूर्व अपराधनको बिसारि सो स्वामी आपनी सामर्थ्य ते आपनो जानि सेवकको सब विधि ते उपकार करता है अर्थात् संकट शोच हरि सुखके साज साजि देता है तथा संकट में मैं पुकारता हौं ताते अपराध बिसारि मेरी सहाय करौ स्वामी हौ ४ उत्तम स्वामी की यही सनातन रीति है कि जब जब सेवकनते बिगरी तब तब साहबहि वाके स्वामी ने सदा सुधारा है इस रीति ते मेरी बिगरी आपु सुधारिये पुनः तुलसीपर तेरी कृपा अर्थात् हे हनुमान्जी! मेरे ऊपर तौ आपुकी कृपा निरुपाधि धर्म चिन्तादि उपाधि रहित निनारी लोक वेद रीति ते न्यारी है अर्थात् वेद विधान ते पूजापाठ हवनमंत्र जाप करनेते जब परिपूर्ण उतरै तब देवता कृपा करते हैं नातरु अवधिअशुद्धता अपावनतादि पूजा धर्म में बाधा होनेकी चिन्ता उपाधि लागती है तब कार्य सिद्ध नहीं होता है इत्यादि रहित स्वाभाविकही आपुके दर्शन पाये प्रणाम प्रार्थनामात्र आपुने कृपाकिय ऐसी रीति लोक वेदमें कहा है ताते यथा प्रतिपाल करते आये तथा करौ ५ ॥

(३५) कटु कहिये गाढ़े परे सुन समुझि सुसांई। करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई १ समरथ शुभी जो पाइये बीर पीर पराई। ताहि तकै सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई २ अपने अपने को भलो चहैं लोग लोगाई। भावै जो जेहि तेहि भजे शुभ अशुभ सगाई ३ बांह बोल दै थापिये जो निज बरिआई। बिन सेवा सों पालिये सेवक की नाई ४ चूक चपलता मेरिये तू बड़ो बड़ाई। होत आदरे ढीठ है अतिनीच निचाई ५ बन्दिछोरबिरदावली निगमागम गाई। नीको तुलसीदास को तेरिही निकाई ६

टी०। स्वामी सों कटुवचन कहनेको यह हेतु है कि गाढ़ेपरे जो कटु कहिये अर्थात् संकट परेपर अतिआरत वश जो स्वामी को सेवक है कठोरौ वचन कहि डारते हैं तिनको सुनि वाके अन्तरकी प्रीति जानि आपनो सेवक समुझिकै गोसांई जो पालनहार स्वामी हैं सो आपनी भलाई अर्थात् क्षमा दया कृपा करुणा वात्सल्यतादि गुणमय आपने भले स्वभाव ते अनभले सेवक को भी भला करते हैं भाव जे सुस्वामी हैं ते आपने भले स्वभाव ते कुसेवकौ को भला करि देते हैं १ कैसे भला करते हैं कि जो कुसेवक भी है अर्थात् शुभ मंगल होनेवाले कछु आचरण नहीं सब अशुभै होनेके व्यापार करते हैं ऐसहू अनभला सेवक है परंतु जो शुभाशुभ कल्याणकर्ता समर्थ पाइये तौ वाको नाम टेरतही सब भांतिकी पीर पराइ नाम भागिजात अर्थात् कैसहू कुसेवक है सदा कुत्सितै कर्म करता है परंतु जो मंगलकर्ता समर्थ सुस्वामी पाइगया भाव सबल सुस्वामीको सेवक भया तौ जब कुकर्मन के फल उदय भये तिन संकट में परा तासमय जो समर्थ स्वामीको नाम लै टेरा तब स्वामी के प्रताप ते डरि पीरा करनहारे रुज प्रेत दारिद्र यमदूतादि सब

भागिजाते हैं यह तौ केवल सबल स्वामीके नामही को प्रभाव होता है पुनः टेर सुनि जब स्वामी समीप आया तब तासेवक के सब भांतिते हित कैसे करता है अनिच्छित यथा वारिधि समुद्रने बुलाई नहीं परन्तु सब नदी आपही वामें चली जाती हैं तैसेही जब कुसेवक है तौ शुभपदार्थ की इच्छा वाको कब होयगी परन्तु सुस्वामी आपने नामकी लाज ते वाके अवगुण मेटि शुभगुणनयुत सत्मार्गी बनाइ देइगा भाव आपु समर्थ सुस्वामी हौ मैं कुसेवक संकट में आपुको पुकारता हौं आपनी दिशि हेरि प्रभाव बलते कामादि सेनायुत कलियुगको भगाइ ज्ञान विरागादि शुभगुणनयुत सत्मार्गी करि प्रभुकी शरण प्राप्त कीजै २ पूर्व जो कहे सो तौ उत्तम स्वामिनकी रीति है नातरु सब संसार की साधारण यह रीति है कि लोग लुगाई अर्थात् पुरुष अरु स्त्री छोटे बड़े यावत् संसार में हैं ते अपने अपने सेवकन को सबै भला होना चाहते हैं बलअनुमान हित करते हैं तथा देवताओं की यह रीति है कि जो देवता ज्यहि जनको भावै त्यहि को शुभ अथवा अशुभ सगाई सम्बन्धते भजै तौ देवता भी सेवकके मनोरथ अनुकूल फल देदेता है अर्थात् मारण मोहन उच्चाटन विद्वेषण आकर्षण वशीकरणादि षट्प्रयोग करनेवाले अशुभसम्बन्धी हैं तिनहूं को मनोरथ देवता सब पूर्ण करि देते हैं पुनः राजशत्रु यज्ञ भूतादि भयबाधा निवारण तथा धरणी धामधन पुत्रादि लाभ स्वर्गप्राप्ति इत्यादि मनोरथ वाले शुभसम्बन्धी हैं तिनको भी मनोरथ सब देवता पूर्ण करि देते हैं तथा मैं आपुको भजता हौं मेरा मनोरथ सफल कीजिये कलिबाधा हरि प्रभुकी शुद्ध शरणागती दीजिये ३ यद्यपि हमते परिपूर्ण सेवकाई नहीं बनती है तौ हे हनुमान्जी! जो निज बरियाई आपनी सामर्थ्य ते बाँह बोल दै अर्थात् तू हमारा है हम तेरी सदा रक्षा करैंगे इति बाँह बोल अभयवचन जो पूर्व दै राख्यउ होइ तौ अबहूं थापिये रक्षाकरि मोको थिर करि राखिये जो बिना सेवाको अर्थात् आपुकी सेवकाई मोसों नहीं बनिपरती है सो सेवक ताहूको आपना थापा जानि आपने प्रणतपालता गुण ते आपने सांचे सेवककी नाई मोको पालिये भाव कुसेवकको भी पालनहारे आपु सुस्वामी हौ आपनी दिशि हेरि मेरी रक्षा करौ ४ कुसेवक होनेको कारण यह है कि कुस्वामी है सदा दंड राखत ताकी भयते निचाई दबी रहती है ताते नीचहू सेवक सेवकाई में नहीं चूकते हैं अरु जो सुस्वामी है सेवक को आदर करता है तहां जो सुसेवक होइ तौ आदरौ पाइ ढीठ न होइ तौ सेवकाई में न चूकै अरु जो नीच है सो स्वामी के आदर कीन्हेते ढीठ हैजाता है तब अतिनीचे सेवककी निचाई चंचलता प्रकट ह्वै आवती है ताते सेवामें चूकताहै इत्यादि जो आपुकी सेवामें चूक परी सो चपलता मेरिही नीचताहै क्योंकि जो कहिये कि आपहीने मोको ढीठ करिदिया तो यह कहना उचित नहीं काहेते तू बड़ा है तैसी यह बड़ाईहै अर्थात् आपु बड़े उत्तम स्वामीहौ ताते सेवकनको आदरकरना यह आपुकी उत्तमता की प्रशंसा है ५ क्या प्रशंसाहै कि जो किसी भांतिके संकट में परा है तहां आपुको सुमिरण किया ताको संकट तुरतही छुड़ाइ दीन्हे यह सदा आपुको सहज स्वभाव है कछु वाकी सेवकाई पर नहीं केवल आपनी शरणपालताते सहाय करतेहौ इत्यादि बंदीछोर जो बिरद बाना बांधेहौ ताके कर्तव्यतनकी अवली पंक्ती इति बंदीछोर बिरदा-

चली जो आपुकी निगमागम वेदशास्त्रन ने गाई बखान कीन्ही है इत्यादि जो आपु की निकाई प्रणतपालता है ताहीके प्रभावते तुलसी कुसेवक को भी भला होई ६॥

राग गौरी।

(३६) मङ्गलमूरति मारुतनन्दन। सकल अमंगलमूलनिकन्दन १
पवनतनय सन्तनहितकारी। हृदय विराजत अवधविहारी २
मातु पिता गुरु गणपति शारद। शिवा समेत शम्भु शुक नारद ३
चरण बन्दि बिनवों सब काहू। देहु रामपदनेह निबाहू ४
बंदों राम लषण वैदेही। जो तुलसी के परमसनेही ५

टी०। पृथ्वीजल पवन सहजही परस्वार्थी हैं तिन मारुत के नंदन पवनके पुत्रहैं ताते स्वाभाविक हनुमानजीकी मूर्ति मंगलमय है अर्थात् दर्शमात्रते आनंदमय उत्सव उपजावतेहैं पुनः प्रियवियोग हितहानि राजक्रोध रुज भूतबाधादि जो अमंगल तिन सबन की मूलनिकंदन नाम लेतही जरसहित अमंगलन को नाश करिदेते हैं १ काहेते ऐसा प्रभाव भया कि एक तौ पवन के तनय पुत्र हैं ताते बली हैं पुनः संतनके हित करनहारे सत्मार्गी ताते तेजवंतहैं ताहू पर जिनके हृदय में अवध विहारी रघुनाथजी बसत तिनके प्रभावते शक्तिमान् हैं तिनको प्रणाम करतहौं इति शेषः २ पुनः माता जिन जन्म दै सेवन किया पुनः पिता जिन विद्यादि गुण दै प्रतिपाल करि प्रौढ़ करिदिया पुनः गुरु जिन रामतत्त्व दिया पुनः गणेश शारदा शिवा पार्वती समेत शंभु इति प्रभुके द्वारदेव पुनः शुकदेव नारद उत्तमभक्त ३ जो पूर्व गनाइ आये इत्यादि सब काहूके चरण बंदि बिनवौं प्रणाम करिकै बिनती करत हौं सब कृपाकरि यह बर देहु कि जामें श्रीरघुनाथजीके चरणारविंदनमें मेरा सनेह सदा एकरस जन्मजन्मांतर निबहै ४ कैसा नेह कि जे तुलसीके परम सनेही हैं तिन रघुनाथजीको लषणलाल अरु श्रीजानकी सहित वंदना करतरहौं ५॥

दंडक।

(३७) लाल लाड़िले लषण हित हौ जन के।
सुमिरे संकटहारी सकल सुमङ्गलकारी पालक कृपालु अपने पनके १
धरणीधरणहार भञ्जन भुवनभार अवतार साहसी सहसफनके।
सत्यसन्ध सत्यव्रत परमधर्मरत निर्मल कर्म वचन मन के २
रूपके निधान धनुबाण पाणि तूणकटि महावीर विदितजितैया बड़ेरनके।
सेवक सुखदायक सबल सब लायक गायक जानकीनाथगुणगन के ३
भावते भरत के सुमित्रा सीता के दुलारे चातक चतुर रामश्यामघनके।
बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहवश धनी धन तुलसी से निरधन के ४

टी०। लाड़िले लाड़ दुलारकरिबे योग्य काहेते अंतरबाहेर निर्विकार सुभग स्वरूपताते पिता माता पुरपरिवार रामजानकी इत्यादि सबके दुलारे इति हे लाड़िले लषणलाल! रामजननके आपु विशेषि हित करनहारेहौ काहेते राजशत्रु

भयादि यावत् संकट हैं तिनको सुमिरतमात्र हरिलेतेहौ पुनः पुत्रजन्म धन लाभहरिसंबंधी उत्सव इत्यादि सकल प्रकारके मंगल करनहारेहौ काहेते कृपालु कृपागुण पूर्ण सहजही जनन्के पालनहारहौ पुनः आपने पन जो प्रतिज्ञा ताके पालनहार १ धरणीधरण पृथ्वीके थांभनहार जो सहसफन शेष सोई रघुवंश में अवतार लीन्हेउ सहसी महापराक्रमी अर्थात् दुर्घट भी कार्य तत्कालही करनेवाले त्यहि करि मेघनादादि खलनको मारि भुवनको पापरूप भार ताके भंजन नाशकर्ताहौ संधनाम प्रतिज्ञा आपनी प्रतिज्ञाको सत्य करते हौ इति सत्यसंधहौ पुनः सत्यव्रत सत्यनेम धारण किहेहौ परम धर्म जो अनन्यता रामभक्ति तामें रत सदा लगे रहते हौ अर्थात् अनन्यता भक्तिको व्रत सत्य करिकै यही धर्म पर सदा एकरस आरूढ़ रहते हौ दूसरी बात पर भूलिहूकै नहीं मन दृष्टि देते हौ कौन भांति कि कर्म करौ तौ केवल रघुनाथ की कैंकर्यता वचनते रामयश गान मनते रामरूपको ध्यान इसके सिवाय दूसरा काम नहीं इति कर्म वचन अरु मनते निर्मल हौ कामादि मल नहीं है २ जो विना भूषणै भूषितवत् देखाइ ताको रूपकही त्यहिके निधानरूप भरे स्थान हौ पुनः पाणि हाथों में धनुषवाण धारण वाणों को भरा तूणि तरकस कटिमें वांधे ऐसा महावीररूप विदित सब जानते हैं काहेते जहां मेघनाद ऐसा अजय बली वीर युद्धकर्ता रहै ऐसे बड़े रणके जितैया हौ अर्थात् दुघ्रन के हेतु सबल वीर पुनः कृपाकरि सेवकनको सुख देनहारे इत्यादि कृपालु उदार अरु सबल पुनः जानकीनाथ के कृपा दया करुणा शील पतितपावनता वात्सल्यता सुलभ उदारतादि गुणन के गण समूहता ताके गायक ऐसे रामानुरागी ताते सब लायक भाव जो कछु कीन चाहौ सब वात करिवेको समर्थ हौ ३ अहो धन्य लक्ष्मणबड़भागी ॥ इत्यादि भरतजी के मनभावते प्रियबंधु हौ पुनः जिनकी पुत्रवंतिन में प्रशंसा ऐसी सुमित्रा तिनके दुलारे तथा उत्पत्ति पालन संहार करनहारी परम कृपाला क्षमावंत आह्लादिनी शक्ति श्रीजानकीजी तिनके दुलारे पुनः रामरूप श्यामघन स्वातीके मेघ हैं तिनकी माधुरी अवलोकनरूप जल पान करिवेको चतुर चातक अनन्यरूप उपासिकहौ चातक केवल स्वाती के जलपान को अधिकारी है कछु मेघकी सहायतादि नहीं करसक्ता है अरु लक्ष्मणजी प्रभुके सब भांतिकी सेवा सहायता करने में प्रवीण अनन्यभक्त हैं ताते चतुर चातक कहे श्रीजानकीजी की लघु भगिनी जो उर्मिला तिनके वल्लभ प्राणप्यारे पतिहौ पुनः कृपालु ऐसेहौ कि सुलभ थोरेही सेवन सुमिरणादि स्नेह ते वश होतेहौ पुनः तुलसी ऐसे जे निर्धन अर्थात् लौकिक धनहीन तथा कर्मज्ञान भक्ति आदि पारलौकिक धनहीन अथवा कलिपीड़ित सहायतारूप धनहीन इत्यादि तुलसी ऐसे निर्धन याचकन को श्रीरामशरणप्राप्तीरूप धन देवे हेतु धनी अत्यंत उदार मनभावत दान देनहारेहौ भाव निर्धन याचनाकर्ता हौ श्रीरामशरणप्राप्ती धन दीजिये ४ ॥

राग धनाश्री।

(३८) जयति लक्ष्मणानन्त भगवन्तभूधर भुजगराजभुवनेश भूभारहारी। प्रबलपावकमहाज्वालमालावमन शमनसन्ताप लीलावतारी १ जयति दाशरथि समरसमरथ सुमित्रासुवन शत्रुसूदनरामभरतबन्धो।

चारु चम्पकवरन वसन भूषण धरन दिव्यतर भव्य लावण्यसिन्धो २
जयति गाधेय गौतम जनक सुखजनक विश्वकण्टककुटिलकोटिहन्ता।
वचनचय चातुरी परशुधरगर्वहर सर्वदा रामभद्रानुगन्ता ३
जयति सीतेशसेवासरस विषयरसनिरस निरुपाधि धुरधमधारी।
विपुलबलमूल शार्दूलविक्रम जलदनादमर्दन महावीर भारी ४
जयति संग्रामसागरभयङ्करतरण रामहितकरण वरबाहुसेतू।
उर्मिलारमन कल्याणमङ्गलभवन दासतुलसी दोषदवन हेतू ५

टी०। ऐश्वर्य धर्मयश श्री वैराग्य मोक्ष इति षड्भागयुत ताको भगवंत भगवान् कही पुनः जाको अंत कोऊ नहीं पावत ताको अनन्तकही इति अनन्त भगवंत श्रीलक्ष्मणजीकी जय होइ कैसे अंत कोऊ नहीं पावत कि भुजंग सर्प विषते जीवनके नाशकर्ता तिन भुजंगन के राजाहौ महाविषधर ते प्रलयकाल में पावक विषाग्निके महाज्वालनकी माला समूह वमत उगिलत तिहि करिकै लोक नाश होत यह क्रोधमय कठोर करणी है पुनः भुवनके ईश जगके स्वामीहौ रक्षा करनहारे ताते भूधर पृथ्वीको शीशपर धारण किहे रहत पुनः भूभारहारी पृथ्वीको भार पापकर्मी राक्षसादि ताके हरिलेनहारेहौ ताते संताप शमन जगजननको दुःखादि सब प्रकारकी तापै नाश करिवेहेतु लीला अवतारी माधुर्य लीला में नराकार रूपते रघुवंश कुलमें अवतार लैकै खलन को वधकरि लोकको संताप नाश कीन्हेउ इत्यादि आचरण देखि सुनि किसीको निश्चय नहीं होत कि क्रोधमय कठोर स्वभाव करालरूपहौ अथवा कृपामय कोमल स्वभाव सुभग सौम्यरूपहौ इत्यादि अंत कोऊ नहीं पावत ताते अनन्त भगवंत हौ १ दशरथ ऐसे समरथ जिन परब्रह्मको पुत्र बनाये तिनके पुत्र इति दाशरथी पुनः जो पुत्रवंती करि उत्तम मातन में गनीगई ऐसी सुमित्रा के सुवन पुत्र पुनः जे भुवनमें विख्यात परात्पर परब्रह्मरूप करि लोकमें प्रसिद्ध ऐसे श्रीरघुनाथजी तथा सद्धर्मधुरीण उत्तम रामानुरागी भरत ऐसे समर्थ राम भरत के प्रिय छोटे बंधु हौ इत्यादि सब भांतिते समर्थ श्रीलक्ष्मणजी की जय होइ पुनः कैसे हौ आपु कि चारु सुंदर तन चंपाके फूल सम गौरवर्ण सर्वांगमें जरवफ्तादि वसन तथा हेम रत्नजटित भूषण धारण किहेहौ कैसे वसन भूषण हैं दिव्यतर महादिव्य अद्भुत पुनः भव्य सुन्दर मंगलीक मनको हरणहारे ऐसे लावण्यसिंधु शोभारूप जलभरे समुद्रहौ २ गाधेय विश्वामित्र तिनकी यज्ञ पूर्णकरि सुख उपजाये अहल्या को पावन करि गौतम के सुख उपजाये धनुष तोरि जनक के सुख उपजाये इत्यादिकन के सुख उपजावनेवाले जनक पिता पुनः विश्व संसारके कांटा कुटिल निशाचर तिन कोटिन के हंता नाशकर्ता तथा चातुरीमय वचन चय नाम समूह अर्थात् अनेक चातुरीमय वचन कहि परशुधर गर्वहर परशुरामको गर्व हरिलीन्हे ऐसे जो रामभद्र कल्याणरूप रघुनाथजी तिनके सर्वदा अनुगन्ता पीछे चलनेवाले अर्थात् सदा सेवकाई अरु सहायकर्ता ऐसे लक्ष्मणजीकी जय होइ भाव सेवकाई तौ सदा करते हौ जो लोकमंगलहेतु रघुनाथजी कार्य कीन्हे तिनमें सदा सहाय करत रहेउ ३ पुनः सीताके ईश जो श्रीरघुनाथजी तिनकी सेवा में सरसभाव रामसनेह

रूप रसके रसिक रामसनेह पुष्ट करिकै हृदय में धारण किहेहौ पुनः शब्द स्पर्श रूप रस गंध मैथुनादि जो इंद्रीविषयिनको रस है यथा नेत्रनसों सुंदरि स्त्रीआदि रूप देखनेकी चाह रसनाकरि षट्रस भोजनकी चाह इत्यादि विषयरसते निरस अर्थात् सब विषयनते इंद्री अचाह हैं पुनः अनेक धर्मनको चितारूप उपाधिरहित निरुपाधि एक रामसनेहरूप जो भारी सेवक धर्म है ताकी धुरी बोझा पुष्टकरि धारण किहेहौ पुनः विपुल बड़ेभारी बल की मूल जर जासों बलका प्रचार होत सो शार्दूलसम विक्रम सिंहसम प्रताप शक्ति सहित महापराक्रम है ताते मेघनाद ऐसा महाभारी वीर ताको रणमें मर्दन नाशकर्ता ऐसे लक्ष्मणजीकी जय होइ ४ जहां रावण कुंभकर्ण दोऊ तट हैं अतिकाय अकंपन महोदर कुंभ निकुंभ मकराक्षादि मगर घरियारादि जलजंतु निशाचरचमू समूह जल है मेघनाद कहर धारा है ऐसा लंका में संग्रामरूप भयंकर अपार सागर रहे तामें तरिकै रघुनाथजीको पार जाने हित बल भरी वर श्रेष्ठ बाहुनको सेतु कीन्हेउ अर्थात् सहज तौ अनेकनको मारे सदा संग्राममें करतरहे सबसों अधिक महाबली अजय वीर मेघनाद को चपरिकै मारे ऐसे लक्ष्मण जीकी जय होइ हे उर्मिलारवन! जीवके कल्याणकर्ता तथा लोक में मंगल आनंद उपजावना इत्यादि के भरे भवन मंदिरहौ ऐसा जानि काम क्रोधादि दोषनके शमन नाशहेतु तुलसीदास आपुके शरणागत आयोहै कृपाकरि प्रभुकी शरणप्राप्ती करौ५॥

(३९) जयति भूमिजारमण पदकञ्जमकरंदरसरसिकमधुकरभरत भूरि भागी। भुवनभूषण भानुवंशभूषण भूमिपालमणि रामचन्द्रानुरागी १ जयति विबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराजसम्राजसुख पदविरागी। खड्गधाराव्रती प्रथमरेखा प्रकट शुद्धमति युवति पति प्रेमपागी २ जयति निरुपाधि भक्तिभावयन्त्रितहृदय बन्धुहित चित्रकूटाद्रिचारी। पादुकानृपसचिव पुहुमिपालक परमधर्मधुरधीर वरवीर भारी ३ जयति संजीविनी समय सङ्कट हनूमान धनु बान महिमा बखानी। बाहुबलविपुल परमितपराक्रम अतुल गूढ़गति जानकीजान जानी ४ जयति रणअजिरगन्धर्वगणगर्वहर फिर किये राम गुणगाथगाता। माण्डवीचित्तचातकनवाम्बुदवरण शरण तुलसीदास अभयदाता ५

टी०। भूरिभागी बड़ी भाग्यवाले जो भरतजी तिनकी जय होइ काहेते भूरिभागी हौ कि भूमिजारमण पदकंज जानकीरमण रघुनाथजी के पद सोई कमलहैं तिनको अनुरागरूप जो मकरन्द रस है ताके रसिक रसग्राही मधुकर भ्रमरहौ ताते भूरि भागी हौ काहेते जे ऐश्वर्य रूपते भुवनभरेके प्रकाशकर्ता भुवन भूषण पुनः माधुर्य रूप ते भानुवंश भूषण सूर्यकुल के प्रकाशकर्ता पुनः भूमि के पालक राजा तिनमें शिरोमणि रामभद्र कल्याणरूप जो श्रीरघुनाथजी तिनके अनुरागी भक्त हैं १ पुनः विषयसुख के त्यागी कैसे हैं कि विबुध देवता तिनके ईश इन्द्र तथा धनद कुबेरादि

तिनको जो दुर्लभ सदा चाह किहे हैं जाकी ऐसा महाराजों में सम्राज चक्रवर्ती की राज्य त्यहि पद के सुखसों विरागी भाव अयोध्या की राज्यसुख को तृणवत् त्याग कीन्हे ऐसे भरतजी की जय होइ कैसे अनन्य हौ आपु यथा स्त्रिनको पातिव्रत तथा खड्गधारावती अर्थात् सत्त्व शक्तिवलते तरवारकी पैनी धार पर सुखपूर्वक चलना इत्यादि अनन्यताव्रत है तिन अनन्य भक्तनमें आपुकी प्रथम रेखा प्रकट है अर्थात् अनन्य भक्तनमें अग्रणीय करि लोकमें प्रसिद्ध हौ काहेते आपुकी शुद्धमतिरूप युवती स्त्री सो पति जो श्रीरघुनाथजी तिनके प्रेममें पागी है अन्तर वाहर प्रेम व्याप्तहै यथा सत्यवलते लोकजन गोला कराहीं में नहीं जरते हैं तथा पतिव्रता सत्त्ववलते तरवारि की धारपर चली जाइ तौ पावँ कटै नहीं यथा एक पतिव्रताकी वाँहपर शिरधरे पति सोवता रहै तासमय वाको लघु वालक खेलतसंते अग्निकुण्डमें गिरिपरा स्त्री उठी नहीं परन्तु शक्तिते अग्नि को शीतल करिदिया यथोक्तं च॥ शिशुं पतंतं प्रसमीक्ष्य पावके पतिव्रता नैव पतिं न्यबोधत। तदैव पातिव्रतभंगशंकया हुताशनःचन्दनपंकशीतलः॥ तैसेही अनन्यता व्रतके प्रभाव ते सबको अनादर कीन्हे यथा माता पिता गुरु वशिष्ठादिकनको सो एकहू दूषण भरतजीमें न आइसका सब प्रशंसै कीन कीन्हें २ कैसा अनन्यताव्रत धारण है कि निरुपाधि भक्ति उपाधि कही अन्य धर्म वाधा की चिन्ता यथा॥ उपाधिर्ना धर्मचिन्ता इत्यमरः॥ अर्थात् माता पिता कुलगुरु देव विप्रादि यावत् धर्म हैं तिनकी चिन्ता त्यागे इति उपाधिरहित जो रघुनाथजीकी भक्ति ताको भाव सेवक धर्मकी जो प्रीति है त्यहि करिकै हृदययंत्रित अर्थात् यथा द्वारकपाट में जंजीर लगाइ कोठी में कुलुफ वन्द करिदिया जाता है तैसेही हृदय में भक्ति भाव पुष्ट धारण है पुनः वन्धु जो रघुनाथजी तिनके सनेहवश मिलन वुलावनहित राजसुख त्यागि चित्रकूटाद्रिचारी पैदर पर्वतन में विचरे पुनः प्रभुआज्ञाते पादुका लेकै नृप कीन्हे सिंहासन पर स्थापितकरि आपु सचिव मंत्री वनि पुहुमि जो पृथ्वी ताको पलक अर्थात् पादुकन ते आज्ञामांगि विधिवत् राजकाज प्रजापालादि कीन्हेउ इत्यादि भक्तिरूप जो परमधर्म ताकी धुरी अनन्यता प्रेमको एकरस निर्वाहनारूप भारी वोझा ताके धारण करिवेमें धीरजमान पुनः वर श्रेष्ठ भारी वीर संग्राम में अचल ऐसे भरतजीकी जय होइ ३ कैसे भारी वर्ला वीर हौ कि जव लषणलालके शक्ति लगी ताहेतु सजीवनिमूरि लावते समय विना गाँसीको वाण थोथामारे ताकी चोटते हनुमान्जीके संकट भया मूर्च्छित ह्वै गिरिगये पुनः जव चैतन्य भये तव भरत जी के कहेते वाण पर चढ़े सो भार भरतजीको कछु न समुझिपरा तव उतरि प्रणामकरि चले तव हनुमान्जी भरतजी के भुजवल धनुष वाणकी महिमा वखान कीन्हे ऐसा वाहुनमें वल अर्थात् हनुमान्जीको वाणपर चढ़ाये तामें नेकहू श्रम न आया इत्यादि विपुलपरामित वड़ी भारी प्रमाणहै भुजवल की पुनः जिनके थोथाके मारेते जे वज्रांग हनुमान् ऐसे महावली वीर तेऊ मूर्च्छित ह्वै गिरिगये इत्यादि अतुल पराक्रम नाम शक्ति है जो काहूके जानवे योग्य नहीं क्योंकि पराक्रम जो शक्ति पुनः वल वूत जैसा अन्तर में गूढ़गुप्त है सो जानकी के जान श्रीरघुनाथजी जानते हैं और कोऊ नहीं जानि सक्ता है ४ समुद्र के अरु सिन्धुनदी के मध्य में शैलूषनामें गन्धर्व तीनि करोर वीरन सहित रहता रहै भरतजीके मामा युधाजितका विरोधी

रहे तिनकी प्रार्थनाते रघुनाथजी के पठाये ते भरतजी उहां जाइ गन्धर्वनको जीते हैं यह वाल्मीकि उत्तरकाण्ड में विस्तार है इत्यादि रणभूमिरूप अजिर आँगन में शैलूषादि गन्धर्वगण समूहन को बलका जो गर्वरहै ताको हरिलीन्हे भाव जे विमुख भये तिनको मारि अरु जे सन्मुख शरण आये तिनको राम गुणन की गाथा जो कथा ताके गाता गानकर्ता करिदिये भाव रामचरित गानमें लगाइ शुद्ध कीन्हे ऐसे भरतजी की जय होइ मांडवी को चितरूप चातकके आनंददायक स्वातीके नवीन अंबुद मेघवर्ण श्याम स्वरूप हे भरतजी! कलियुगकी भय करिकै तुलसीदास आपु की शरण है ताको अभय के दाता होहु श्रीरघुनाथजीकी शरणागती प्राप्त करै ५॥

(४०) जयति जय शत्रुकरिकेशरीशत्रुहन शत्रुतमतुहिनहर किरणकेतू। देव महिदेव महि धेनु सेवक सुजन सिद्धमुनि सकलकल्याणहेतू १ जयति सर्वाङ्गसुन्दर सुमित्रासुवन भुवनविख्यात भरतानुगामी। वर्म चर्मासि धनु बाण तूणीर धर शत्रुसङ्कटशमन नत प्रणामी २ जयति लवणाम्बुनिधि कुम्भसम्भव महादनुजदुर्जनदवन दुरितहारी। लक्ष्मणानुज भरत राम सीता चरणरेणुभूषित भालतिलकधारी ३ जयति श्रुतिकीर्तिवल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमित नर्मद भक्तभक्तिदाता। दास तुलसी चरणशरण सीदत विभो पाहि दीनार्तसन्तापहाता ४

टी०। शत्रुरूप करि जो है हाथी तिनके नाश करिवे को केशरी नाम सिंह सम ऐसे जो शत्रुहन जिनकी सदा रण में जय होतीहै तिनकी जय होइ कैसे हौ आपु कि शत्रुगण तेई तम तुहिन अंधकार अरु पाला हैं तिनको सहजही नाश करिवेहेतु किरण केतु सूर्यहौ सन्मुख होतही शत्रु नाश होत पुनः देव इंद्रादि महिदेव ब्राह्मण महि जो पृथ्वी धेनु जो गौवैं सेवक जे आपनी शरणागत सुजन यावत् सत्मार्गी हैं सिद्ध जिनको अणिमादिक सिद्धी प्राप्त हैं मुनि मननशील इत्यादि यावत्हैं तिन सकल के कल्याणके हेतु अर्थात् जे देवादि के विरोधी लवणासुरादि दुष्ट हैं तिन शत्रुनको नाश करते हौ इति कल्याण हेतुहौ १ सुमित्रा ऐसी उत्तम मातु तिनके सुवन पुत्र पुनः भरत ऐसे रामानुरागी शुद्ध धर्मधुरीण तिनके अनुगामी सेवक इत्यादि उत्तमता भुवन में विख्यात प्रसिद्ध सब जानतेहैं पुनः नखशिखतक सर्वांग सुठौर बने ऐसे सुंदरस्वरूपवान् शत्रुहनजी की जय होइ कैसे हौ आपु कि वर्म जो कवच चर्मढाल असि तरवारि धनुष बाण तूणीर तरकस इत्यादि धारण कीन्हे हौ इत्यादि वीर रूप आपुको यत्प्रणामी जो कोऊ आरतजन प्रणाम करता है ताको शत्रुकृत जो संकट ताके शमन नाशकर्ताहौ २ बल प्रताप वीरतादि जलपूर्ण लवणासुर अंबुनिधि समुद्रसम अगाध रहा ताको नाशरूप शोपिलेवेहित कुंभसंभव अगस्त्यऋषिकी समानहौ इत्यादि महाबली दनुज दुर्जन यावत् दुष्टजन हैं तिनको दवन नाशकर्ता तथा दुरित जो पाप ताको हरिलेनहारे लक्ष्मणजी के अनुज छोटे भाई अरु भरतजी के तथा श्रीरघुनाथजी के जानकीके चरणरेणुपायँनकी धूरि लैके तिलक धारण किहे हौ त्यहि करिकै भूषित है भाल माथ अर्थात् भरतराम जानकीके

चरणसेवक ऐसे शत्रुहनजीकी जय होइ३श्रुतिकीर्तिके सुवल्लभ सुंदर प्राणप्यारे पति दुष्टनको दुर्लभ अथवा ऐश्वर्यरूपते सबको दुर्लभ रहौ सोई कृपा करि रघुवंश में अवतार लै सबको सुलभ भयो क्या सौलभ्यता है कि नमत प्रणाम करतमात्र स्वाभाविक जनन को नर्मदनाम सुखदाता पुनः भक्तजननको अचल भक्तिके दाता ऐसे शत्रुहनजी की जय होइ आपुके चरणशरणागती में प्राप्तभये परभी तुलसीदास सीदत कलिकृत दुःख पावता है अरु आपु दीननके आर्ति जो दुःख दरिद्रादि तथा सब प्रकारकी तापैं तिनके हाता नाशकर्ता ऐसे विभो समर्थ हौ ताते पाहि मेरी रक्षा करो ४॥

(४१)जयति श्रीजानकी भानुकुलभानु की प्राणप्रियवल्लभे तरणि भूपे।
राम आनन्द चैतन्यघन विग्रहाशक्ति अह्लादनी साररूपे १
चितचरणचिन्तनि जेहि धरतही दूर हो काम भय कोह मद मोह माया।
रुद्र विधि विष्णु सुर सिद्ध वंदितपदे जयति सर्वेश्वरी रामजाया २
कर्म जप योग विज्ञान वैराग्य लहि मोक्ष हित योगि जे प्रभु मनावैं।
जयति वैदेहि सब शक्तिशिरभूषणे ते न तव दृष्टि विन कबहुँ पावैं ३
कोटिब्रह्माण्ड जगदीश को ईश जेहि निगममुनि बुद्धि ते अगम गावैं।
विदित यह गाथ अहदान कुलमाथसो नाथ तव दानते हाथ आवैं ४
दिव्य शतवर्ष जप ध्यान जब शिव धस्यो रामगुरुरूप मिलि पथ बतायो।
चितै हित लीन लखि कृपा कीनी तबै देवि अति दुर्लभहिं दरश पायो५
जयति श्रीस्वामिनी सीय शुभनामिनी दामिनीकोटि निज देह दरसै।
इन्दिरा आदि दै मत्तगजगामिनी देवभामिनि सबै पांव परसै ६
दुखितलखि भक्तविन दरश निजरूप तप यजन जप यतनते सुलभनाहीं।
कृपाकरि पूर्ण नवकंजदललोचना प्रगटभइ जनकनृप अजिर माहीं ७
रमिततव विपिनप्रिय प्रेमप्रकटनकरन लङ्कपति व्याजकछु खेल ठान्यो।
गोपिका कृष्ण तवतुल्य बहुयतनकरि तोहिंमिलि ईश आनन्द मान्यो८
हीन तव सुमुख के संग रहि रंक सो विमुख जो देव नहिं नाह नेरो।
अधमउद्धरणि यह जानि गहि शरण तव दासतुलसी भयो आय चेरो९

टी०। अब जानकीजी के गुण गावत यथा भानुकुलभानु सूर्यकुलके प्रकाशकर्ता जो श्रीरघुनाथजी तिनकी प्राणसम प्यारी वल्लभा पत्नीहौ भवतरणिभूपे यावत् भव-तारकरूप तिनमें श्रेष्ठ हौ काहेते जे सदा चैतन्य जिनमें आनन्द घननाम समूह ऐसी विग्रह देह जिनकी अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप साकेतनिवासी जो राम परात्पर परब्रह्म तिनकी आह्लादिनी शक्ति निज सार निज आपने यावत् शक्तिरूप तिनमें सारांश रूपहौ ऐसी श्रीजानकीजी की जय होइ अर्थात् पर धामनिवासी जो पर-ब्रह्मरूप रघुनाथजी तिनकी आह्लादिनी शक्ति सब शक्तिनमें शिरमौरहौ तहां आप ही की प्रार्थना ते सहजै लोक जीवनके उद्धार हेतु जब सौलभ्यता उदारता गुणन

को धारण करि प्रभु सूर्यवंश में अवतीर्ण भये माधुर्य रूप जो श्रीरघुनाथजी तिनकी ऐसी परम प्रियाहौ कि आपही को वचन मानि प्रभु सहजही जीवनको उद्धार करते हैं ताते आपु भव तारने में सर्वोपरि उत्तमहौ १ पुनः कैसी हैं श्रीजानकीजी जिनकी दिशि चितै चरणको चिंतवन ज्यहि रूपको ध्यान हृदयमें धरनमात्र जिनके प्रभावते काम बाधाको भय तथा क्रोध मद मोहादि परिवारसहित माया डरायके दूरि ह्वैजाती है क्योंकि माया तो आज्ञाकारी है जब सहस्रशीश रावण को वध कीन्ही तब ब्रह्मा विष्णु शिवइत्यादि सब स्तुति कीन्हे यह मार्कंडेयसंहिताके पंद्रहें अध्यायमें प्रसिद्ध है यथा ॥ विशुद्धाभां शुभांगीं विपुलकटितटीं पद्मपत्रायताक्षीं उद्यद्रत्नकिरीटकुण्डल- धरां स्निग्धमंदस्मितां॥ विद्याविद्यमयीं विचिंत्य विलसद्भृतिप्रदां भासुरां ध्याये श्री- रामकांतां हरिहरविधिभिःसेव्यपादाब्जयुग्मम्॥ इत्यादि ब्रह्मा विष्णु शिवादि देवता सिद्धन करिके वंदना करिबे योग्य जिनके पदारविन्द हैं ऐसी सर्वेश्वरी रामजाया रघुनाथजीको वामांगी श्रीजानकीजीकी जय होइ२त्रिकालस्नान संध्या तर्पण पूजा पाठ तीर्थ व्रत दान होम यज्ञादि कर्म तथा विधिवत् मंत्र जाप पुनः यमनियम आसन प्रत्याहार प्राणायाम ध्यान धारणा समाधि इत्यादि अष्टांगयोग विज्ञान आत्मरूपको अनुभव पुनः वैराग्य संसारसुख को त्याग इत्यादि लहि प्राप्त है मोक्षहित संसार बंधनते छूटनेहेतु जे योगीजन प्रभु मनावै रघुनाथजी की प्राप्ति चाहते हैं तिनको क्या हाल होता है हे सर्वशक्ति शिरभूषणे लक्ष्मी आदि सबशक्तिन की शिरोमणि हे श्रीजानकीजी! तव दृष्टि बिन अर्थात् विना आपुकी कृपादृष्टि हेरे तेन कहे तिनकर्म योग ज्ञानादि करिके प्रभुको ढूंढ़ते हैं ते कबहूं नहीं पाइसके हैं भाव विना आपुकी शरणागती अन्यसाधन करि रामरूपकी प्राप्ति अगम है यथा अगस्त्यसंहितायां शिव- वाक्यम्॥यावन्न ते सरासिजद्युतिहारिपादे न स्याद्गतिस्तरुणवांकुरखण्डितास्ते। ताव- त्कथं तरणिमौलिमणे जनानां ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे ३ ब्रह्मांडप्रति जगत् के ईश ब्रह्मा विष्णु शिवादि हैं तिनके ईश स्वामी तथा करोरिन ब्रह्मांड हैं तिन सबन के ईश जो श्रीरघुनाथजी परब्रह्म हैं ज्यहि रूप की प्राप्ति को निगम वेद गावत कि मन करिके बुद्धि करिके अगम हैं नहीं प्राप्त ह्वै सके हैं सो नाथ अहदान कुलमाथ अर्थात् अह नाम दिन ताके दान देनहारे सूर्य तिनके कुल के माथ श्रेष्ठ भाव सूर्यवंश में शिरोमणि सो नाथ श्रीरघुनाथजी तेऊ तव दानते हाथ आवते हैं अर्थात् जब शरण ह्वै आपुकी आराधना करै जब आपु प्रसन्न ह्वै वर देउ तब रामरूपकी प्राप्ती होती है यह गाथ कथा अगस्त्यसंहिता द्वारालोक में विदित है सो कहत ४ क्या विदित है कि दिव्य शत वर्ष मनुष्य को वर्ष देवन को एक दिन होता है इसी रीति दिव्य देवसम्बन्धी सौ वर्ष तक शिवजी मंत्रराज को जाप करत संते जब रामरूप को ध्यान धरे रहे तब रघुनाथजी गुरुरूप ह्वै मिलिके पुनः अपनी प्राप्ती को पथ बताये गुरु ह्वै उपदेश कीन्हे कि जब जानकीजी को आरा- धन करौ वे प्रसन्न होइं तब हम प्राप्त ह्वै सके हैं अन्य उपाय नहीं है सो सुनि वि- नयपूर्वक जब शिवजी आपुकी आराधना कीन्हे तिनको चरण शरणलीन लखे शरणागत में लगे देखि हित सहित उनपर चितै आपु कृपा कीन्ही जब तबै दुर्लभ- रूप जो रघुनाथजी तिनको दर्शन शिवजी पाये यथा अगस्त्यसंहितायाम्॥ चकारा-

राधनं तस्य मंत्रराजेन भक्तितः। कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेःपरं॥दिव्यं वर्ष-शतं वेदविधिनाविधिवद्द्‌वना। जजाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थितचेतसा ॥ प्रसन्नोभूत्तदा देवःश्रीरामःकरुणाकरः। मंत्राराधेन रूपेण भजनीयःसतां प्रभुः ॥ द्रष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदं। आह्लादिनीं परां शक्तिं स्तुयाः सात्वतसंमतां ॥ तदाराध्यस्तदा-रामस्तदाधीनस्तया विना। तिष्ठामि न क्षणं शंभो जीवनं परमं मम ॥ इत्यादि ५ शुभ नामिनी श्री ऐसा जो नाम है सो उच्चारणमात्रही कल्याण करता है तिन श्रीकी स्वामिनी सीय ताते आपुको नामै शुभ कल्याणकर्ता है ताते लोकन में सदा आपु की जय होती है पुनः आपुकी देहमें कोटिन दामिनीसी प्रकाश दर्शित होती है पुनः ऐश्वर्य कैसा है कि इंदिरा लक्ष्मी आदि यावत् मत्तगजगामिनी मत्त हाथी कैसी मंद गमन जिनमें है अर्थात् लक्ष्मी सरस्वती पार्वती तथा इन्द्राणी आदि देवनन की भामिनी स्त्री इत्यादि सबै आपुके पदवंदन करती हैं ६ निज आपुको जो ऐश्वर्य रूप है सो तपस्या करि यजन नाम पूजा करि मंत्र जपकरि इत्यादि यत्न करि आपुको प्राप्ति सुलभ नहीं है अरु विना दर्शन पाये भक्तजन दुःखित रहैं तिनको लखि दुःखित देखिकै कृपारूप मकरंद परिपूरित है जिनमें ऐसे नवकञ्जदल लो-चन नवीन कमलदलवत् नेत्र हैं जिनके अर्थात् कृपादृष्टि हेरि जनक महाराज के अजिर आंगन में आइ प्रकट भई माधुर्यरूप ते सबको सुलभ दर्शन दीन्हे ७ तुम्हारे विषे प्रभु ऐसे सनेह ते रमित आसक्त रहैं कि विपिन वनवासहू में संगही रात्रे ऐसे प्यारे पतिको अंतर को प्रेम प्रकटकरि सबको देखाइबे हेतु लंकपति व्याज रावण को नाश करिबे के बहानेते कछु खेल ठाने देखावमात्र वियोग लीला कीन्हे तिस वियोग दुःखमें कया हाल भया कि तब कृष्ण तुल्य अरु प्रभु गोपिका तुल्य वियोगते विकल ढूंढ़त फिरे अर्थात् यथा ग्यारहवर्ष विहारकरि कृष्ण स्वयं रूपते गोलोक को चलेगये अरु कृष्णरूपते विष्णु द्वारका को चलेगये त्यहि वियोग दुःख ते गोपिका विकल भई तथा स्वयं सीतारूप ते आप अग्निमें वास कीन्ही जानकी रूप ते वेदवती लंकाको गई रावण के नाश हेतु त्यहि वियोगते प्रभु गोपिकनकी नाई विकल ढूंढ़त फिरे पुनः सुग्रीवते मित्रता करि वालिको मारि दूतनको पठाइ आपको खबरि मंगाये सेना साजि चले समुद्र में सेतु बँधाये पार जाइ वसीठी पठाइ विमुख रावण को जानि पुर घेरि युद्ध ठाने कुंभकर्ण मेघनाद सेनायुत रावण को मारि इत्यादि बहुती यत्न करि तब आपको मिलि ईश श्रीरघुनाथजी आनन्द माने ८ हे श्रीजानकीजी! तब सुमुख आपुकी सन्मुखता शरणागत ते हीन अर्थात् जे भक्तिरहित तिनके संग रहिकै रंक कंगाल भये सब सुख नाशभये भाव विषयसुख में परि दुःखके भाजन भये रावणादि खलनद्वारा महादंड पाये सोई जो विमुख देवादि हैं तिनके नेरे आपुके नाह पति रघुनाथजी नहीं आवते तथा औरहु मनुष्यादि विषयवशते दुःखित रहैं तिन सबको दुःखित देखि आपु के दया लागि तब प्रार्थना करि प्रभुको मकतिमंडल को लाइउ ताते सबको कल्याण भयो ऐसी अधमन को उद्धार करनहारी आपुको जानिकै तुलसीदास भी तब कहै आपुकी शरण गहिकै आइ आपुको चेरो गुलाम भयो इसहेतु दाया करि मेरा भी दुःख नाश कीजै ९ ॥

राग केदारा।

(४२) कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिवो सुधि द्यायबी कछु करुण कथा चलाइ १
दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासीदास कहाइ २
बूझिहैं सो है कौन कहिवो नाम दशा जनाइ।
सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरिवो बनिजाइ ३
जानकी जगजननि जन की किये वचनसहाइ।
दास तुलसी तरै भव तव नाथ गुणगण गाइ ४

टी०। कौन भांति दुःख नाश करौं हे अम्ब माता! कबहुँक किसी दिन अवसर पाइकै स्वाधीन एकांत समय पायकै यहां गुप्तरीति ते समय भी दर्शाये हैं क्योंकि यह सोरठ रागिनी में पद है यह अर्धराति को गाईजात ताते इस रागिनीमें प्रार्थना करि जनाये कि सबकामते सावकाशी लै अर्धराति को एकांत प्रभुको स्वाधीन पाइकै कछु करुणा गुणकी कथा चलायकै अर्थात् करुणागुण को लक्षण यह है यथा॥ दोहा॥ सेवक दुख ते दुखित है स्वामि विकल ह्वैजाय। दुख हरि सुखसाजै तुरत करुणागुण सो आय॥ प्रमाणं भगवद्गुणदर्पणे॥ परदुःखानुसंधानाद्विह्वली-भवनं विभोः। कारुण्यात्मगुणस्त्वेष आर्तानां भीतिवारकः॥ इत्यादि गीध सुग्रीव विभीषणादिकनको जो करुणामय चरित है सो कथा चलाइ प्रभु में करुणागुण उद्दीपन कराइ त्यही समय मेरी भी सुधि कराइदेव भाव एक आर्तजन शरणागत आया है तापर दयाकरि वाकी रक्षा कीजिये १ कैसा आर्त है कि कर्म ज्ञान भक्ति इत्यादि के जो अंग हैं यथा संध्या तर्पण पूजा पाठ जप तप तीर्थ व्रतादि कर्म के अंग शम दमादि विवेक विराग मुमुक्षुतादि ज्ञान के अंग श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वंदन, दास्यता, आत्मनिवेदनादि भक्ति के अंग इत्यादि सब अंगन करिकै हीन ताते क्षीण ज्ञान करि दुर्बल भाव अल्पज्ञ पुनः अघन पापन करिकै अघाय अर्थात् हिंसा अपवाद द्रोह परहानि ईर्षादि पापकर्मन को जन्मभरि कीन्हे ताते काम क्रोध लोभादिकन ते अंतसम लीन भाव पतित हौं पुनः कलियुग को सतावा ताते दीन हौं पुनः प्रभुकी दासी जो तुलसी तिनको दास कहाइ अर्थात् मैं जो एक तुलसीदास ऐसा नाम कहाइकै प्रभुको नाम लैकै भिक्षा मांगिकै उदर पेट भरताहौं भाव केवल पेटभरिवे हेतु नाम लेताहौं कछु प्रेमते नहीं २ जो प्रभु बूझैं कि वह कौन है तब ऐसा कहियो कि तुलसीदास ऐसा नाम लोकप्रसिद्ध पुनः रामबोला नामे जो आपुको गुलाम है ताने आपुके नाम यशको लोक में प्रचार किया ताते ईर्षा मानि कलियुगने वाको सतावा है ताकी भयमानि दादि हेतु आया है इत्यादि मेरी दशा जनायकै नाम कहियो जो संदेह करौ कि कदाचित् न सुनैं तहां प्रभु तौ कृपागुण पूर्ण हैं यथा॥ दोहा॥ रक्षक सब संसार को हौं समर्थ मैं एक। दृढ़ मन अनुसंधान यह सो गुण कृपाविवेक॥ भगवद्गुणदर्पणे॥

रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः । इति दृढानुसंधानकृपा सा पारमेश्वरी ॥ इत्यादि रघुनाथजी कृपागुण मंदिर हैं आपुके वचनद्वारा दादि सुनतही जो पूर्व की बिगरी भी मेरी बात है सो प्रभुकी कृपाते सब बनिजाई ३ उत्पत्ति पालन करनहारी इत्यादि जगकी जननी हे श्रीजानकीजी! आपुके वचन सहाय कीन्हेते भाव मेरा हाल प्रभुसों कहौं इति वचनद्वारा मेरी सहाय करौ भाव जो आपुके कहेते प्रभु मेरी रक्षा करैं कलि मोको न सतायसकै तौ हे मातु! तव नाथ आपुके स्वामी जो श्रीरघुनाथजी तिनके कृपा, दया, करुणा, शील, सुलभ, उदारतादि गुणनके गण गानकरि तुलसीदास भी भवसागर तरै अर्थात् रामयश गानते कलियुग मेरे ऊपर कोप कीन्हे ताभे यश प्रचारकी हानि अरु मोको भवसागर में डारा चाहत इस हेतु जन जो मैं ताकी वचनमात्र आपुकी सहाय कीन्हेते आपुके पतिको यश प्रचार होई ताके प्रभावते मैं भवसागर तरिजैहौं ४ ॥

(४३) कबहुँ समय सुधि द्यायबो मेरी मातु जानकी ।
जन कहाइ नाम लेतहौं किये पन चातक ज्यों प्यास प्रेमपान की १
सरल प्रकृति आप जानिकै करुणानिधान की ।
निजगुणअरिकृतअनहितोदासदोषसुरतिचितरहतन दिये दान की २
बानि बिसारन शील है मानद अमान की ।
तुलसीदास न बिसारिये मन कम वचन जाके सपनेहु गति न आनकी ३

टी० । आपुके वचन सहायमात्र ते मेरा कल्याण है ताते हे मातु जानकी! काहू दिन समय पाइकै प्रभुसों मेरी सुधि दिवाय दीजिये क्योंकि मैं प्रभुको जन कहाय रघुनाथजी को नाम लेतहौं पन करिकै कौन भांति ज्यों स्वाती मेघ जलकी प्यास चातकको होती है दूसरा जल नहीं पीवत इस हेतु पनकरि सदा पीव कहां पीव कहां ऐसा रटत ताही भांति सजल मेघवत् श्यामतन जो श्रीरघुनाथजी तिनके प्रेमरूप जल पानकी मोको प्यास है दूसरेको आश भरोसा त्यागे इति अनन्यता पनकरि स्वामीको नाम रटतहौं १ आपु जो विचारैं कि हमारे कहे कदाचित् प्रभु न सुनैं सो संदेह न करौ काहेते प्रभु तौ करुणानिधान हैं करुणा यथा ॥ दोहा ॥ सेवक दुखते दुखित ह्वै स्वामि विकल ह्वैजाय । दुख हरि सुख साजै तुरत करुणा गुण सो आय ॥ यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ परदुःखानुसंधानाविह्वलीभवनं विभोः । कारुण्यात्मगुणस्त्वेष आर्तानां भीतिवारकः ॥ इत्यादि करुणागुण के स्थान हैं प्रभुको मेरा दुःख सुनतही करुणा आइ जाइगी पुनः सरल प्रकृति प्रभुको सहज स्वभाव है सो आपु जानिये भाव मैं तौ शास्त्रपुराण द्वारा सुनी कहताहौं अरु आपु तौ सदा निकट रहतीहौ तौ विशेषही जानती होउगी तौ सहज स्वभाव कृपानिधान ते कहने में क्या संदेह है पुनः अपरके साथ भलाई करना इति निज अपना गुण तथा अरिकृत शत्रुनको किया अनहित पुनः दासनके दोष अरु अपना दिया हुआ दान इत्यादि चारि वस्तुनकी सुरति प्रभुके चित्तमें नहीं रहत क्योंकि आपने अपर चारि गुणोंके प्रभावते भूलिजातेहैं अर्थात् कृपागुणके प्रभावते अपनी करी भलाई

को गुण भूलि जातेहैं काहेते यथा ॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी ॥ इत्यादि जीवमात्र के रक्षक जो आपहीं को समर्थ मानेहैं तौ भलाई करना किससे मानैं ताते निज गुणकी सुरति नहीं राखते हैं पुनः क्षमागुण के प्रभावते शत्रुकृत अनहितों की सुरति नहीं राखते हैं कैसहू पापी अपराधी सन्मुख आवै ताहूको कृपाकरि शरणमें राखैं पुनः कृतज्ञता गुणके प्रभावते भक्तनके दोषन की सुरति नहीं राखतेहैं अर्थात् भक्तनकृत भलाई थोरिहू को बहुत करि मानते हैं ताते दोष भूलि जातेहैं पुनः उदारता गुणके प्रभाव ते दिये हुये दानकी सुरति नहीं राखते हैं याचकमात्रको परिपूर्ण दान दै अयाचक करिदेते हैं तौ पूर्व दियेकी सुधि कैसे राखैं २ पूर्व जो कहे इत्यादि विशरण शीलवानि है भूलनमय स्वभाव प्रभुको अर्थात् पूर्व भलाई करि मनुष्य तन दिये में विषयासक्त भया सो न विचारैंगे क्योंकि पूर्वगुण भूलिजाते हैं पुनः कुसंगमें परि विमुख भया सोऊ भूले होइँगे पुनः दास कहाय लोकसुखहेतु अनेक कर्म करताहौं सो दास के दोष भूलि जाते हैं पुनः उत्तमकुलमें जन्म सुभूमिकामें उत्तमसंग इत्यादि दान दिये तबहूं मैं याचना करता हौं सो दानों की सुधि नहीं रहती है ताते अवश्य मेरी याचना मिटावैंगे परिपूर्ण दान देहैंगे पुनः अमान जाको मान कोई नहीं करता है वा जाके किसी वस्तुको मान नहीं है इत्यादि अमान जन के मान देनहारे हैं तहां मैं ऐसा अमान हौं कि जाके मनसा वाचा कर्मणा सपनेहू में आनकी गति नहीं है अर्थात् दूसरे की आश भरोसा नहीं है केवल एक रघुनाथजी की गति है ऐसा विचारि तुलसीदास को न विसारिये प्रभुकी शरणागती प्राप्त कीजिये अथवा हे माता! आपु प्रभुसों ऐसा कहिये कि तुलसीदास को न विसारिये याको दारिद्र अवश्य दीजिये ३ ॥

(४४) जयति सच्चित्व्यापकानन्द परब्रह्म विग्रहव्यक्त लीलावतारी।
विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोच वश विमलगुणगेह नरदेहधारी १
जयति कोशलाधीशकल्याण कोशलसुताकुशल कैवल्यफल चारुचारी।
वेदबोधित कर्म धर्म धरणी धेनु विप्र सेवक साधु मोदकारी २
जयति ऋषिमखपाल शमसज्जनशाल शापवशमुनिवधूपापहारी।
भंजि भवचाप दलिदापभूपावली सहित भृगुनाथ नत माथधारी ३
जयति धार्मिक धुर धीर रघुवीर गुरु मातु पितुबन्धु वचनानुसारी।
चित्रकूटाद्रि विन्ध्याद्रि दण्डक विपिन धन्यकृत पुण्यकानन विहारी ४
जयति पाकारिसुत काककरतूतिफलदानि खनि गर्त गोपित विराधा।
दिव्यदेवीवेश देखि लखि निशिचरी जनु विडंबित करी विश्वबाधा ५
जयति खर त्रिशिर दूषण चतुर्दशसहस्रसुभट मारीच संहारकर्ता।
गृध्रशबरी भक्तिविवश करुणासिन्धु चरितनिरुपाधि त्रिविधार्तिहर्ता ६
जयति मदअन्ध कुकबन्धबधि बालि बलशालिवधकरण सुग्रीवराजा।

सुभट मर्कट भालु कटक संघट सजत नमत पद रावणानुज निवाजा ७
जयति पाथोधिकृत सेतुकौतुकहेतु कालमन अगमलइ ललकि लंका।
सकुल सानुज सदल दलित दशकण्ठ रण लोकलोकप किये रहितशंका ८
जयति सौमित्रिसीतासचिवसहित चले पुष्पकारूढ निज राजधानी।
दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल राम भे भूप वैदेहि रानी ९

टी०। यहांतक द्वारदेव अंग देवनके गुण गाइ प्रार्थना करिचुके अब स्वयं स्वामी श्रीरघुनाथजीके गुण गावत यथा सत् कहे शुद्ध आत्मरूप चित् कहे सदा चैतन्य ज्ञान एकरस आनंदसमूह व्यापकपद अर्थात् अंतर्यामीरूपते चराचर में व्यापक पद हैं जिनको ऐसे सच्चिदानंद की जय होइ कैसे हैं आपु ब्रह्मविग्रह परब्रह्मरूप सोई लोकोद्धार हेतु लीलावतारी लोकमें लीला करिवे हेतु माधुर्यरूप ते अवतारी सब अवतारन के शिरोमणि राजकुमाररूप ते व्यक्तनाम प्रकटभयो काहेते ब्रह्मा आदि सुर यावत् देवता पुनः सिद्ध अर्थात् योग जप तप साधनादि करि जे सिद्ध भये हैं साधु मुनि ऋषि विप्रादि सब रावणकी अनीति प्रचारते विकल ह्वै पुकार कीन्हे तिनके संकोचवश ह्वै विमल गुण यथाशक्ति तेज वीर्य बल दया कृपानुकंपा नृशंस्य वात्सल्य सौशील्य सौलभ्य कारुण्य क्षमा गांभीर्य उदारतादि असंख्य जो विमल कल्याण गुण हैं तिनके गेह मंदिर ऐसी नरदेह बालकुमार पौगंडादि अवस्थायुत नरवत् देह धारण कीन्हेउ संकोच शील मानि १ कहां नर-रूपधारी भयो यथा कोशलाधीश अयोध्याके महाराज जो दशरथ कल्याणरूप अर्थात् वेद प्रथम मनुरूप ते धर्म प्रचार करि सतयुग में जीवन को प्रसिद्धै कल्याण करे पुनः उग्रतप करि परब्रह्मको पुत्र करि मांगि पुनः त्रेता में दशरथरूप प्रकट ह्वै रामअवतार द्वारा संसार भरेको तीनिहूं युगमें जीवनको कल्याण कीन्हे पुनः कोशलभूप की सुता पुत्री जो कौशल्या इनआदि दै तीनिहूं रानी ते कुशलरूप हैं अर्थात् यथा वेदको अवतार दशरथ तथा वेद धर्ममें उपासना ज्ञान कर्म ये तीनि शक्ती हैं तिन विना जीवनकी कुशल नहीं है तिनमें ज्ञानशक्ति कौशल्या उपासना शक्ति सुमित्रा कर्मशक्ति कैकेयी हैं यथा शिवसंहितायाम् ॥ ज्ञेयो दशरथो वेदः न्याय्यासाधनदर्शनः। क्रियाज्ञानं तथोपास्तिरिति शक्तित्रयीशतुः॥ तासां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिकाम्। ज्ञानशक्तिं च कौशल्यां वेदो दशरथो नृपः॥ तिन दशरथ कौशल्यादि रानिन द्वारा कैवल्यादि चारु सुंदर चारिउ फलरूप उत्पन्न भये तहां ज्ञानरूप कौशल्या तामें फल कैवल्य मोक्षरूप रघुनाथजी भये कर्मरूप कैकेयी ताको फल धर्मरूप भरतजी भये उपासनारूप सुमित्रा ताके फल कामार्थ ते मोक्षधर्मके सम्बन्धी ते लक्ष्मण, शत्रुहन, राम, भरत के सनेही भये इति चारि फलरूप उत्पन्न ह्वैके वेदबोधित वेद करिके उपदेशित जे यज्ञादिकर्म सत्यादि धर्म तथा पृथ्वी गौवें ब्राह्मण हरिसेवक साधु इत्यादिकन के मोद आनंद करनहारे भये अधर्म मेटि धर्म थापि सबको सुख दीन्हेउ ऐसे प्रभुकी जय होइ २ ऋषिमखपाल विश्वामित्रजी को यज्ञ के रक्षा करनहारे पुनः सज्जननके शाल दुःख देनहारे जे मारीच सुबाहु आदि दुष्ट तिनको शमन नाश करनहारे तथा वीररूप पुनः पतिके

शापवश गौतममुनिकी वधू अहल्या ताके पापहारी भये परपतिरन को पाप हरि पाषाणते शुद्ध स्त्री बनाये ऐसे दयासिंधु प्रभुकी जय होइ जे जनकजीकी प्रतिज्ञा पूर्ण करिबे हेतु भवचाप भंजि शिवजीको धनुष तोरि मानी भूपन की अवली पंक्ति जे समूह रहे तिनको दाप अभिमान दलनसहित बल गर्व वीरता करिकै भारी है माथ जिनको ऐसे भृगुनाथ ते नत परशुराम ते नमस्कार कराये भाव जिन काहू को माथ नहीं नाये तेऊ हथियारधरि माथ नाये ऐसे प्रतापी हौ ३ धर्मकी धुर जो सत्यादि बोझा ताके धारण करिबेमें धैर्यवान् भाव अनेक धर्म परस्पर विरोधी परे तिन सबको निर्वाह कीन्हे ऐसे धार्मिक धर्मधुरीण रघुवीरकी जय होइ कौन अनेक धर्म यथा गुरु वशिष्ठ तिनके वचन अनुसार विना भरत राज्याभिषेक हेतु संयम कीन्हे माता पिता के वचन अनुसार वन गये बन्धु लक्ष्मण के वचन अनुसार संग लीन्हे भरत वचन अनुसार पादुका आधार दीन्हे पुनः अवधिके दिनै आये इत्यादि गुरु माता पिता बन्धु इत्यादि के वचन अनुसार चलनेवाले पुनः चित्रकूट विंध्यादि अद्रिपर्वतन में तथा दण्डक विपिनवन में इत्यादि पुण्यमय कानन वन में विहारी वास विश्राम गमनादिते पदांकित करि अधिक धन्य कीन्हेउ जिनकी पुराणै प्रशंसा करत ४ पाकारिसुत इन्द्रपुत्र जयन्त काकरूप ते विरोध कीन्हेउ ताकी करतूति को फलदायक एक नेत्र कीन्हेउ पुनः विराध राक्षस वर प्रभाव ते अस्त्रकरिकै नहीं मरि सक्ता रहे ताको गर्त गड्हा भूमिमें खनिकै गोपित तोपि लीन्हेउ ऐसे सबल स्वामी की जय होइ पुनः पञ्चवटी में शूर्पणखा दिव्यदेवी अद्भुत देवांगना वेष बनाइ प्रभुसों विवाह करने हेतु आइ प्रार्थना कीन्हों ताको सुवेष देखिकै लखि चीन्हि लिये कि रावणकी भगिनी वृद्ध विधवा है राक्षसी मायाते कुमारी बनि आई है यह विचारि हासमय वचनचातुरीते वाको सापराधी बनाय नाक कान काटिलिये इत्यादि निशाचरी को नहीं कुरूप कीन्हे विश्व संसार ताको बाधा दुःखदायक जो रावण ताको जनु विडम्बित उपहासकरी जामें विरोधी बने ५ शूर्पणखा के सहायक चतुर्दश सहस्रसुभट चौदहहज़ार योधा वीरन सहित खरदूषण त्रिशिरादि आये पुनः रावणके पठाये ते मृग बनि मारीच आयउ तिन सबको संहारकर्ता सबको नाश कीन्हेउ ऐसे खलनाशक प्रभुकी जय होइ जे भक्तिके विशेषवश ते गृद्धजटायुको पिता तुल्य मानि सुगति दीन्हे तथा शबरी को मातातुल्य मानि सुगति दीन्हे इत्यादि करुणासिन्धुके चरित निरुपाधि अन्यधर्म चिन्तादि उपाधिरहित यथा अम्बरीषपर दुर्वासाकी उपाधि नहीं व्यापी इत्यादि भक्तनको कछु उपाधि नहीं व्यापती है जे रामचरित गान करते हैं पुनः दैहिक दैविक भौतिकादि त्रिविध की तापनको हरिलेनहारा रामचरित है ६ कुत्सित मद हिंसामें सबल भाव योजन भरे की बाहुइ रहैं तिन करिकै सब जीवन को खैंचिकै खाइ जाता रहै इत्यादि कुत्सितबलते मदान्ध जो कबन्ध अर्थात् इन्द्र ने वज्र मारा ताते शीश पेटमें हैरहा इत्यादि विना शिरका कबन्ध मिला ताको बधि मारिकै पुनः सुग्रीवते मित्रता कीन्हे ताको विरोधी जानि जो बलशालि महाकठिन बली ऐसा बालि वीर रहै जाके सन्मुख कोऊ वीर नहीं होतारहै ताको बधि एकही बाणते मारि पुनः सुग्रीवको वानरनको राजा किहेउ अर्थात् मित्र

सुग्रीव को राजा करने हेतु वालिको मारेउ भाव कछु अन्य अपराधते नहीं यह दया वीरता है ऐसे दयालु सबल स्वामीकी जय होइ जिन मर्कट भालु बानर रीछ सुभटन की कटक संघट अर्थात् सेना बटोरि सजत सिन्धुतट विराजमान ताहीसमय रावण को अनुज छोटा भाई विभीषण आइ नमत प्रणाममात्र करतहीं ताको निवाजे लंका को राजा बनाये ७ कौतुकहेतु पाथोधिमें सेतुकृत अर्थात् ऐश्वर्यरूप ते कछु प्रयोजन न रहे माधुर्यरूप ते नरनाट्य तमाशामात्र समुद्र में सेतु कीन्हेउ तापर उतरि सिंधुपार गये ऐसे प्रभुकी जय होय जाको जीतने हेतु सुर नर नागादिकी को कहै जो कालहूके मनको अगम रहै रावणकी भयते जाकी दिशि कालो नहीं मनकरिसक्ता रहै ऐसा अगम गढ़ लंका रहै ताको ललकि हर्ष-पूर्वक ललकारिकै लंक लीन्हेउ कैसे लीन्हेउ सकुल राक्षस कुलसहित पुनः अनुज छोटा भाई कुंभकर्ण त्यहि सहित राक्षसनको दलसमेत दशकंठ जो रावण ताको दलि नाशकरि रणभूमिमें पुनः स्वभक्त विभीषणको राज्याभिषेक करिकै तीनिहूं लोकवासिनको तथा इन्द्रादि लोकपालनको शंका रहित किये अर्थात् दुष्ट सबल शत्रुनको डर मिटाइदिये ताते आनंद सहित अपने धामनमें सब वास कीन्हे ८ सौमित्रि सुमित्रापुत्र श्रीलषणलाल अरु सीता स्वयं श्रीजनकनन्दिनी पुनः सचिव यथा सुग्रीव, विभीषण, जामवंत, अंगद, हनुमान् इत्यादि सहित पुष्पक विमान पर आरूढ़ ह्वैकै निज अवनी जो राजधानी है श्रीअयोध्याजी तहांको भरत के मिलिवेकी आतुरी ते आकाशमार्ग ह्वै अत्यंत शीघ्र चले ऐसे प्रभुकी जय होय पुनः अवध्न आय भरतादिको मिलि मन्दिरमें प्राप्तभये ताही दिन सुघरी विचारि राजसाजसजि राजसिंहासनपर बैठाइ मुनिन समाजसहित वशिष्ठजी राज्याभिषेक कीन्हे इत्यादि गोसाईंजी कहत कि जब रामभूप श्रीरघुनाथजी महाराज भये तथा वैदेही श्रीजानकी रानी भई इति शोभा देखि मन भायो पाय तब अवधवासीजन नारी नर सकल मुदित आनन्दको प्राप्त भये ९ ॥

(४५) जयति राजराजेन्द्र राजीवलोचन राम नाम कलिकामतरु सामशाली । अनयअम्भोधिकुम्भज निशाचरनिकर तिमिरघनघोर खर किरणमाली १ जयति मुनि देव नरदेव दशरथके देव मुनिवंद्य किय अवधवासी । लोकनायक कोकशोकसंकटशमन भानुकुलकमल-काननविकासी २ जयति शृंगारसरतामरसदामद्युतिदेह गुणगेह विश्वोपकारी । सकलसौभाग्य सौन्दर्य सुषमारूप मनोभवकोटिगर्वा-पहारी ३ जयति सुभग शारङ्ग सुनिषङ्ग शायक शक्ति चारु चर्मासि वरवर्मधारी । धर्मधुरधीर रघुवीर भुजबलअतुल हेलया दलित भू-भारभारी ४ जयति कलधौतमणिमुकुटकुण्डलतिलकझलकभलि भालविधुवदनशोभा । दिव्य भूषण वसन पीत उपवीत किय ध्यान कल्याणभाजन न को भा ५ जयति भरत सौमित्रि शत्रुघ्न सेवित

खुमुख सचिव सेवक सुखद सर्वदाता। अधम आरत दीन पतित पातक पीन सकृत नतमात्र कहैं पाहि पाता ६ जयति जय भुवनदशचारियशजगमगत पुण्यमय धन्य जय रामराजा। चरित सुरसरित कविमुख्यगिरिनिःसरित पिवत मज्जत मुदित संतसमाजा ७ जयति वर्णाश्रमाचारि वर नारि नर सत्यशम दम दया दानशीला। विगतदुखदोष सन्तोष सुख सर्वदा सुनत गावत रामराजलीला ८ जयति वैराग्यविज्ञानवारांनिधे नमतनर्मद पापतापहर्ता। दासतुलसी चरणशरण संशयहरण देहि अवलम्ब वैदेहिभर्ता ९

टी०। राजराजेन्द्र राजन के राजा तिनमें महाराज राजीवलोचन अर्थात् कृपारसभरे कमलसम जिनके नेत्र ऐसे राम रघुनन्दन महाराजकी जय होइ कैसे प्रतापवंत हौ कि आपुको नाम कलि में कामतरु है अर्थात् कलियुग ऐसा करालयुग जामें धर्मकर्मादि एकहू नहीं पूरपरतेहैं ताहू समय आपुको नाम कल्पवृक्षसम अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष देनहारा है पुनः रूपसामशाली है अर्थात् सवल निर्वल सब परस्पर प्रीति राखैं यह साम राजनीति है ताके शाली साम राजनीति भरे मंन्दिर हौ भाव आपु के प्रतापते किसी में विषमता नहीं रही ताते कोऊ किसी से वैर विरोध नहीं करता है इस कारण दाम दण्ड भेदादि राजनीति नहीं रही केवल सामनीति रहिगई काहेते रावणादिकृत अनय अम्भोधि अनीति समुद्रसम अगाध रहे ताके हेतु आप कुंभसंभव अगस्त्यसम है अनीतिसिंधु को शोषि लिहेउ पुनः निकरसमूह निशाचर तेई तिमिर घनघोर अंधकार सघन भयंकर रहैं तिनके नाश करिवे हेतु आप खरकिरणमाली हौ तीक्ष्ण सूर्य हौ किरणनको माला समूह धारणकिहे सो किरणमाली सूर्य ग्रीष्म कैसे १ ऐश्वर्यरूपते आप कैसेहौ कि देव जो ब्रह्मा शिव इंद्रादि तिनके देव हौ पुनः मुनिन में देव नारद सनकादि नरन में देव भूतल में यावत् उत्तम राजा इत्यादि सबके देव अर्थात् पूज्य स्वामी हौ सोई कृपाकरि लोकोद्धार हेतु माधुर्य में दशरथ के कुमाररूप अवतीर्ण है अवधवासिन को देव मुनि वंद्यकिये भाव आपके सम्बन्धी सनेही जानि पुरवासी नारी नरनको देवता मुनि सबै वन्दना करते हैं पुनः रावणकृत अनीति रात्रि में राजश्री वियोगते लोकनायक इन्द्रादि लोकपाल कोक चक्रवाक सम दुःखित रहै तिनके शोकघरं छूटने को दुःख अरु अत्रुके घातको संकट ताके शमन नाशकर्ता सूर्यकुलकमलवन के प्रकाशकर्ता सूर्य भयो रावणादि मारि अनीति रात्रि हरि नीति भोर प्रकाश पाय इन्द्रादि राजश्रीसंयोग पाय चक्रवाकसम आनन्द भये ऐसे प्रतापवंत प्रभुकी जय होइ २ माधुर्यरूप कैसा शोभामय है यथा ॥ दोहा ॥ वुधि विलास युत जहँ रहै रतिको पूरण अंग। ताहि कहत शृंगाररस केवल मदनप्रसंग ॥ इत्यादि शृंगारसरतामरस शृंगाररसरूप तड़ाग के उत्पन्न भये जो तामरस कमल हैं अर्थात् सर्वांग शोभा यथा ॥ दोहा ॥ द्युतिलावण्यस्वरूप स्वइ सुंदरता रमनीय।

कांति मधुरमृदुता बहुरि सुकुमारता गनीय ॥ इत्यादि जो शृंगाररसर के कमल हैं तिनके दाम कहे माला तद्वत् गुणनको गेह देह की द्युति है भाव श्याम तन में शृंगारमय सर्वांग शोभा परिपूर्ण है यथा शरद चन्द्र सम प्रकाशमान मुख सो द्युति है मर्कतमणिसी चमक तनु में सो लावण्यता है विना भूषणही भूषितवत् तन सो रूप है सर्वांग सुठौर बने सो सुन्दरता है देखे पर भी अनदेखीसी अद्भुताई सो रमणीकता है सोनेसी ज्योति कांति है देखनहार तृप्त नहीं होत सो माधुरी है मृदुता सुकुमारता सर्वांग में है इत्यादि शोभा गुणन की भरी गेह मन्दिर देह है पुनः विश्व जो संसार ताको उपकार करनेवाले अनेक गुण अन्तर में हैं यथा दया, कृपा, अनुकंपा, वात्सल्य, करुणा, क्षमा, शील, उदारतादि गुणनयुत है ताते विश्वोपकाररूप है पुनः भाग्यांग यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनं । भूषणं वाहनं चेति भोगाष्टकमुदीरितम् ॥ अर्थात् अतरादि सुगन्ध सुन्दरि पतिव्रता स्त्री विचित्र वसन नृत्य गान सुन्दर भोजन पान स्वर्णमणिभूषण गज रथादि वाहन इत्यादि सकल प्रकार की सुन्दर भाग्ययुत सौन्दर्य अर्थात् सर्वांग सुठौर बने ऐसे रूप की सुखमा शोभा करिकै कोटिन मनोभव कामदेवन के गर्व-अपहारी अपनी शोभाको जो गर्व किहे ताको हरिलेते हौ अपनी शोभाते ३ पुनः राजकुमाररूप में वीरता कैसी है कि सुभग विचित्र शोभामय शारंग धनुष सुन्दर निषंग तरकस शायक जो बाण शक्ति जो सांग चारु सुंदरि चर्म जो ढाल असि जो तरवारि वरवर्म उत्तम कवच इत्यादि युद्ध वीरता के हेतु धारण किहे हौ पुनः दयादि वीरता हेतु सत्य शौच तप दानादि जो धर्म है ताकी धुर जो बोझा ताके धारण करिवेमें धैर्यवान् ताते पांचौ वीरतन करिकै परिपूर्ण हौ यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः । पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः ॥ पञ्चवीराः समाख्याता राम एव स पंचधा । रघुवीर इतिख्यातिः सर्ववीरोपलक्षणः ॥ इत्यादि सब वीरतायुत ऐसे रघुवीर जिनके भुजन में अतुलबल है ताते हेलया अर्थात् बल प्रताप वीरता प्रकट दर्शाय तत्कालही दलि हेला करिकै भू पृथ्वी को भारी भार रावणादि रहे तिनको दलित नाश कीन्हे ऐसे रघुवीर की जय होइ ४ पुनः राजकुमाररूप में माधुरी शोभा कैसी है यथा विधुवदन शरदपूर्णचंद्रमासम मुखकी शोभा भाल जो माथ तापर केसरिको तिलक ताकी झलक भलीभांति शोभित पुनः कलधौत जो सोना तासों रचित तामें हीरा माणिक मरकत पुखराज पिरोजादिमणि जटित मुकुट शीशपर तथा कान में मकराकृत कुण्डल गर में कण्ठा माला भुज में अंगद करमूल कड़ा पहुंची अँगुरी में मुद्रिका कटिमें कांची इत्यादि दिव्य अद्भुत भूषण सर्वांग पीतवसन जामा उपन्ना धोती आदि पीतयज्ञोपवीत इत्यादिक जो शोभा सर्वांग की माधुरी ताको ध्यान करता जननमें कल्याणभाजन को नहीं भया अर्थात् तीनिहूं काल में कल्याणपात्र भये ऐसे शोभाधाम कल्याणकर्ता श्रीरघुनाथजी की जय होइ ५ साज समाज कैसी उत्तम है यथा भरत सौमित्र जो लषण शत्रुहन इत्यादि उत्तम अनुजन करिकै सेवित सदा सेवा करते हैं तथा सचिव सुमुखमन्त्री सुमंतादि सब मन तनते सन्मुख हैं आज्ञानुकूल कार्य करते हैं पुनः सेवकगण सुख देनहारे रुख देखि सेवकाई करतेहैं पुनः आप सर्वजीवमात्र के

सुखदाता कैसेहौ कि जो अधम वेदप्रतिकूल कर्म करनेवाला तथा आरत किसीको सताया हुआ दुःखित पुनः दीन कंगालादि पुनः पतित चाण्डाल म्लेच्छादि तथा पातकपीन पापनकरिकै मोटा महापापी इत्यादि कोऊ होइ सन्मुख शरण आइकै सकृत नत एकबार प्रणाममात्र करि कहै पाहि हे प्रभो ! मेरी रक्षा करौ ऐसा कहै ताके पाता नाम रक्षा करनहारे हौ यह आपकी प्रतिज्ञा है यथा वाल्मीकीये॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ ऐसे शरणपाल प्रभु की जय होइ ६ दश चारि चौदह भुवन में यश जगमगत झलकि रहा है अर्थात् खलन को मारि भूभार उतारि नीतिधर्म को प्रचारकरि सुर मुनि नर नागादि सब को सुखी कीन्हेउ इत्यादि धर्ममय बाहुबल की प्रशंसा सबलोकन के वासी करते हैं ऐसे पुण्यमय रामराजा धन्य जिनकी राज्य की सदा प्रशंसा है ऐसे रघुनन्दन महाराज की जय होइ जिनको चरित सुरसरित गंगाजी की तुल्य सुलभ लोकपावन करत यहां गंगाजी पहाड़ ते निकरी हैं यहां वाल्मीक्यादि जे उत्तम कवि हैं सोई सुन्दर गिरि हैं पहाड़ त्यहिमाते निसरिकै संसार भरे में फैली हैं तामें सन्तनकी समाज मुदित आनन्दमन सहित कथा श्रवणरूप काननद्वारा पीवते हैं पुनः कीर्तनरूप मनन सोई मज्जन स्नान करते हैं ताते अन्तर बाहिरते पावन होते हैं इति शेषः ७ जिन रघुनाथजी की राज्यविषे ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासादि चारिउ आश्रम तथा शूद्र वैश्य क्षत्री ब्राह्मणादि चारिहुवर्ण के नारिनरादि सब अपने धर्म आचारपर चलते हैं कौन भांति सत्य जो कछु देखै सुनै सो यथार्थही कहै अरु जो कहै सोई करै पुनः शम मनादि की वृत्ति रोकि थिर किहे पुनः दम इन्द्रिनकी वृत्ति विषयते रोके दया जीवनकी सदा रक्षा करना दान धन भोजनादि देना इत्यादि आचरणशीला सहज स्वभावते ये गुण हैं जिनके प्रभावते प्रजा धर्मवन्त ऐसे महाराज रघुनाथजीकी जय होइ जिनकी राज्य की लीला गावत सुनत संते वियोग व्याधि दरिद्रतादि दुःख तथा पाप दोषादि विगत विशेष गतनाम नाश होत पुनः सब प्रकार को सुख सहित संतोष सर्वदा सदा एकरस बना रहत ८ स्वर्ग पर्यंत लोकसुखको त्याग करना सो वैराग्य है पुनः ब्रह्मानन्द को अनुभव एकरस बनारहना सो विज्ञान इति वैराग्य विज्ञानरूप जलपूर्ण वारांनिधे समुद्र ऐसे प्रभुकी जय होइ जे नमत नमस्कार करतमात्र नर्मद सुखके देनहार अरु सब विधि के पाप तीनहूं तापन के हरिलेनहारे हौ ऐसे समर्थ सुलभ उदार जानि तुलसीदास हू आपके चरणारविन्दन की शरणागत आया हैं आप लोक परलोक सब प्रकारको संशय हरणहारेहौ ताते हे वैदेहिभर्ता, जानकीनाथ ! अवलम्ब देहि अर्थात् कलिप्रेरित कामादिकनके कोपते भवसागर में बूड़ताहौं ताते बांह गहि निकारि लीजिये भाव कृपाकरि ज्ञान विरागादि बली करि शुद्धमन चरणारविन्दन में लगाइये कलियुग को हटकि कामादि शत्रुन को उरते निकारि दीजे ६॥

राग गौरी।

(४३) श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरणभवभयदारुणं।
नवकंजलोचन कंजमुख करकंज पदकंजारुणं १

कंदर्पअगणितअमितछवि नवनीलनीरजसुंदरं।
पटपीत मानहुँ तड़ितरुचि शुचि नौमि जनकसुतावरं २
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अंगविभूषणं।
आजानुभुज शरचापधर संग्रामजित खरदूषणं ३
भजु दीनबन्धु दिनेश दानवदैत्यवंशनिकन्दनं।
रघुनन्द आनँदकन्द कोशलचन्द दशरथनन्दनं ४
इति वदत तुलसीदास शंकरशेषमुनिमनरंजनं।
मम हृदयकंज निवास करु कामादिखलदलगंजनं ५

टी०। मन स्वाभाविकही चंचल होत इस हेतु माधुर्यरूपकी शोभामें मनको लगाइ थिरकरि पुनः ऐश्वर्यरूप प्रसिद्धकरि प्रार्थना करत यथा जन्म मरणादि जो भवसागरकी भय सो दारुण कठिन डर है भाव किसीभांति नहीं मिटिसक्नी है त्यहि दारुण भवभयके हरणहारे ऐसे कृपालु कृपागुणमन्दिर अर्थात् जीवमात्र के रक्षा करिबेको दृढ़ानुसंधान राखे हैं ऐसे रामचन्द्रको हे मन! भजु रूपकी माधुरीमें सदा लागरहु तहां शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि पञ्चइन्द्रिनकी विषय हैं तिनहीं द्वारा मन भृंगवत् उड़ाकरत परन्तु भृंग कमल पाइ आसक्त होत अरु कमल में शोभा कोमलता रस गन्ध पराग इत्यादि पञ्चगुण हैं सोई एक एक गुण देखाइ प्रभुके पंचांग कमल देखाइ मनको आसक्त करत यथा नव नवीन तुरंतको फूला हुआ कंज कमल सम लोचन नेत्र कृपारस भरे है ताको रसनाद्वारा पानकरु भाव कृपाको भरोसा राखे कृपा गुणमय श्रीरामयश रसना करिकै गान करु यथा॥ कृपा-दृष्टि सब लोग विलोकी। किये सकल नरनारि विशोकी॥ इत्यादि पुनः नवीन कमल सममुखशील करुणादि कोमलतायुत है तापर श्रवणद्वारा आसीन रहु भाव शीलकरुणामय जो वचन रघुनाथजीके यथा॥ कहि बातैं मृदु मधुर सुहाई। किये बिदा बालक बरिआई॥ राम सकल वनचर परितोषे। कहि मृदुवचन प्रेमपरि-पोषे॥ इत्यादि मधुर शब्दन को श्रवणद्वारा सदा सुनत रहु पुनः नवीन कमल सम कर हाथ दान उदारता सुगन्धभरे ताको नासिका द्वारा धारण करु भाव उदारता सहित जो प्रभुको दान है॥ जो संपति दशशीश अर्चिकै रावण शिवपहँ लीन्ही। सो संपदा विभीषण जनको सकुच सहित प्रभु दीन्ही॥ इत्यादि सुगन्ध नासिका द्वारा धारण या भांति करु कि सबकी आशभरोसा त्यागि केवल रघुनाथजी के हाथनको दान लेने की वासना राखु पुनः अरुण नवीन कमलसम पदपराग पावनता भरे हैं ताको त्वचा द्वारा स्पर्श करु भाव जिस पदरज को परस करि महापातकी पावन होत यथा॥ जो पद परसि तरी मुनिनारी। दण्डककानन-पावनकारी॥ इत्यादि विचारि पदरज को सदा तनमें लगाव ये चारि अंग अरुण कमलवत् कहे १ नवीन फूला हुआ नीलरंग को नीरज कमल सम सुन्दर सर्वांग सुठौर बने ऐसा श्याम शरीर है जामें अगणित कन्दर्प अनेकन कामदेवनकी ऐसी अमित संख्या रहित छवि है त्यहिरूप माधुरी को नेत्रनद्वारा अवलोकन करु जो

सजल मेघवर्ण श्याम शरीरमें पीतपट धारण कीन्हे सो कैसा सोहत मानहुँ श्याम-घनमें तड़ित रुचि बिजुली की ऐसी दीप्ति शुचि पवित्रभाव दर्शनते जीव पावन होत पुनः जिनकी सहजही दयादृष्टि जीवनपर है तिन जनकसुताके वर हैं भाव माता पिता दोऊ दयालु कृपासिन्धु उदार हैं प्रणाममात्र सर्वफलदायक हैं ऐसा जानि नौमि नमस्कार करु २ स्वर्ण रत्नजटित दिव्य प्रकाशमय मुकुट शिरपर तथा कानन में मकराकृत कुण्डल भालपर केसरिको तिलक पुनः जीवनको दर्शन-मात्र सब फलदायक ऐसे उदार अंग यथा गर उर भुज पाणि कटि पदादि तिनमें सुन्दर माला केयूर पहुँची मुद्रिका कांची नूपुरादि विभूषण धारण कीन्हे ऐसा शोभाधाम माधुर्यरूप पुनः वीरता कैसी है कि आजानु टिहुनीतक लंबी भुजा तिन में शरचापधर बाण विचित्र धनुष धारण कीन्हे संग्राम विषे चौदह सहस्र वीरन सहित खर दूषणादि को क्षणमात्र में अकेलहीं जीतिलीन्हे तिनकी शरण में कलि-प्रभाव कामादि क्या करिसक्ते हैं ३ दानव विराध कवन्ध लवणासुरादि दैत्य हैं तथा रावणादि राक्षस दुष्ट हैं-इत्यादि को वंशसहित निकन्दन नाशकर्ता पुनः दीन दुखित जननको वन्धुसम हितकरनहारे दिनेश सूर्यनसम प्रभाव जिनको प्रसिद्ध है तिन दीनवन्धु को भजु सदासेवन करु कैसे हैं रघुनन्दन आनन्दरूप जल वर्षिवे हेतु कन्दनाम मेघ हैं पुनः कोशल जो अयोध्याजी तामें पूर्णचन्द्रवत् उदय है सब लोकन में यश प्रकाश कीन्हे ऐसे जो दशरथनन्दन हैं तिनहिं भजु इत्यादि माधुर्य-रूप की शोभा प्रभावदर्शाय मनको थिरकरि आगे ऐश्वर्यरूप कहि प्रार्थना करत ४ जिनको शिवजी सदा भजन ध्यानकरि आनन्द पावते हैं शेषजी सदा सेवाकरि आनन्द पावते हैं मुनिजन कर्म ज्ञान भक्ति योग तपस्यादि अनेक उपायनते जाकी आराधना करि सुख पावते हैं इति शंकर शेष मुनिनको मनरंजन आनन्द देनहारे परात्पर परब्रह्म हौ सोई कृपाकरि राजकुमाररूपते प्रकट है सुलभ जीवनको उद्धार करते हौ इति तुलसीदास वदत कहते हैं कि यथा खलनको दलि धर्म स्थापित करि सबके कल्याणकर्ता हौ तथा मेरे हृदयकमल में निवास वासकरि कामादि काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यादि खलनके दल अविद्या सेना को गंजनं नाशकरि समता शांति संतोष विरागादि सहाय धर्मस्थापित करि शुद्धमन चरण शरण राखि मेरा भी उद्धार करउ ५॥

राग रामकली।

(४७) सदा जपु राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु मूढ़ मन बारबारं। सकल सौभाग्य सुखखानि जिय जानि शठ मानि वि-श्वास वद वेदसारं १ कोशलेन्द्र नवनीलकंजाभतनु मदनरिपुकंज हृदि चंचरीकं। जानकीरमन सुखभवन भुवनैकप्रभु समरभंजन परमकारुणीकं २ दनुजवनधूमध्वज पीन आजानुभुजदण्डकोदण्ड-वर चण्डबानं। अरुणकरचरणमुखनयनराजीव गुणअयन बहुमयन शोभानिधानं ३ वासनावृन्दकैरवदिवाकर कामक्रोधमदकञ्जकानन-

तुषारं। लोभअतिमत्तनागेन्द्रपंचाननं भक्तहितहरणसंसारभारं ४ केशवं क्लेशहं केशवंदितपदद्वन्द्व मन्दाकिनीमूलभूतं। सर्वदानन्द-सन्दोहमोहापहं घोरसंसारपाथोधिपोतं ५ शोकसंदेहपाथोदपटला-खिलं पापपर्वतकठिनकुलिशरूपं। सन्तजनकामधुकधेनु विश्रामपद नाम कलिकलुषभंजन अनूपं ६ धर्मकल्पद्रुमारामहरिधामपथसंवलं मूलमिदमेव एकं। भक्तिवैराग्य विज्ञान शम दान दम नामआधीन साधन अनेकं ७ तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं ८ श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोकगत नामबल विपुल मति मलिन परसी। त्यागि सब आस संत्रास भवपास असि निशित हरिनाम जपु दासतुलसी ९

टी०। प्रथम पदमें जो कहे कि रामचन्द्र कृपालुको भजु पुनः प्रभुके पांच अंगन की माधुरी देखाय थिरकरे पुनः अब भजिबेकी रीति बतावत यथा हे मूढ़मन! अर्थात् तोको हानि लाभ दुःख सुख नहीं सूझत ताते मूढ़ है काहेते भवसागरकी मूल जो शब्द स्पर्श रूप रस गंधादि इंद्रिन की विषय तोको भावत अरु कल्याण की मूल प्रभुकी शरणागती सो नहीं भावत यह मूढ़ता है ताको त्यागिकै जो वेदनको सारांश है रामनाम जो सबभांति की सुन्दरी भाग्य अरु लोक परलो-कादि सुखनकी खानि है इसीते सुख भाग्य उपजत ऐसा जीवते जानि ताकी वि-श्वास मानिकै हे शठ, मन! रामनाम को वद प्रीति सहित कहु कौन प्रकारते कि जब श्रवणद्वारा तेरी वृत्ति चलै तब प्रभुके मुखके कोमल वचनन में श्रवण लगाइ रामनाम जपु जब त्वचाद्वारा तेरी वृत्ति चलै तब प्रभुके पदकी परागको स्पर्श करि रामनाम जपु जब नेत्रद्वारा तेरी वृत्ति चलै तब श्यामरूप में नेत्रलगाइ रामनाम जपु जब रसनाद्वारा तेरी वृत्ति चलै तब प्रभुके नेत्रनकी कृपाकटाक्षमय गुणगान में रसना लगाइ रामनाम जपु जब नासिका द्वारा तेरी वृत्ति चलै तब प्रभुके कर की उदारता दानकी वासना में नासिका लगाइ रामनाम जपु इत्यादि वारंवार रामनाम को सदा जपु १ कोशलेन्द्र अयोध्या के महराज हैं पुनः शोभाधाम कैसे हैं कि नव नवीन फूला हुआ कंज जो कमल नीलरंग सरीखे तन की द्युति कोमल चिक्कण झलक है पुनः मदनकाम ताके रिपु जो शिवजी तिन के हृदिकंज हृदय-कमल विषे चञ्चरीक भ्रमरसम बसे हैं भाव शिव ऐसे समर्थ ते जिनको ध्यान किहे हैं पुनः जगत् उत्पत्ति पालन संहार करनहारी ऐसी जो श्रीजानकीजी तिनके रमन प्राणप्यारे पति हैं सब सुखन के भरे भवन मन्दिर हैं अर्थात् अखण्ड आनन्दरूप सबभांति के सुख सुमिरणमात्र देते हैं काहेते भुवनैकप्रभु अनेक भुवनन के एक स्वामी सब के रक्षा करनहारे हैं ताते जगत् के दुःखद जे दैत्य राक्षसादि खल हैं तिनको समर विषे भंजन तुरतही नाश करिदेते हैं पुनः स्वाभाविक परम-कारुणीक हैं सेवकके दुःख में दुखी ह्वै शीघ्र दुःख हरते हैं २ दनुजवन राक्षस

दैत्यादि समूह सघन वनकी समान हैं तिनको भस्म करिवे हेतु धूमध्वज अग्निकी समान नाशकर्ता हैं पीन पुष्ट आजानु टिहुनीतक लम्बे सुन्दर भुजदण्ड हैं बलभरे तिनमें कोदण्ड जो धनुष अरु चण्ड तीक्ष्ण बाण धारण किहेहैं पुनः कर हाथ चरण पांय मुखादि अरुण राजीव लालकमलसम हैं पुनः नयन, श्यामकमल सम हैं कृपा दया शील उदारतादि गुणभरे अयन मन्दिर हैं बहुमयन बहुते कामदेवन की ऐसी शोभाके भरे निधान स्थान हैं ३ धन धाम स्त्री पुत्रादि लोकसुखकी वृन्द अनेक प्रकार की वासना सोई कैरव कोकाबेली को वन है तिनको संपुटित करिवे हेतु दिवाकर सूर्यसम हैं जिनके ध्यान ते वासना नहीं उठती हैं पुनः काम क्रोध मदादि विकारते उरूव तड़ाग में कंजकानन कमल के वन सम हैं तिनके नाश करिवे हेतु तुषार पालासम भाव नाम लेतही कामादि नाश होत परधन हरणादि जो लोभ सोई नागेन्द्र हाथी माते सम है ताके नाशकर्ता पञ्चानन सिंहसम ध्यानमात्र लोभ नाश होत साधु ब्राह्मण के सुखहेतु संसार को भार पापकर्मी रावणादि राक्षसन को नाशकरि भार हरे ४ केशवनाम है जिनको रुज दरिद्र हानि संकटादि क्लेशन के हं कहे नाशकर्ता शरणागती मात्र सब दुःख नाश होत पुनः केश ककार ईश मिलि केश भया क ब्रह्मा ईश शिव इन करिकै वन्दित वन्दना कीन जात हैं द्वंद्वनाम दोऊपद जिनके कैसे पद हैं मंदाकिनीमूलभूतं गंगाजी की उत्पत्ति की जर हैं भाव जिन पदन ते गंगाजी उत्पन्न भईं सर्वदा आनन्द सन्दोह सदा आनन्दसमूह परिपूर्ण हैं मोह के अरहं नाशकर्ता हैं पुनः संसार जन्म मरणादि सोई घोर पाथोधि भयंकर समुद्र है ताके तरिवे हेतु जिनके पद पोत नाम नाव सम पार उतारते हैं ५ दरिद्र व्याधि वियोग हानि इत्यादि शोक जो दुःख तथा शत्रुघात राजदण्ड यमयातनादि जो संदेह इत्यादि समूह पयोदपटल मेघन को पंक्ती हैं हृदयरूप आकाश को आच्छादित कीन्हे हैं तिनको उड़ाइ देवे हेतु अनिल पवन प्रचण्ड है सब शोक संदेह हृदयते दूरि करि देते हैं पुनः हिंसा परहानि इत्यादि पाप कठिन पर्वत हैं तिनको काटने हेतु कुलिश वज्ररूप हैं सन्तजनन को कामधुकधेनु कामना दुहिवेहेतु धेनु की समान सब कामना पूर्ण करिदेत अनेक योनिन में भ्रमित थका जीव जो शरण में आवत ताको विश्रामप्रद थिर आनंद देत पुनः कलिकलुषभंजन कलियुग के कराल पापन को भंजन नाशकर्ता जिनको नाम अनूप है भाव राम नाम जैसा पापहरणहारा है तैसा तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दानादि कोई पदार्थ समता को नहीं है यथा विष्णुपुराणे ॥ ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ श्रीहरिकीर्तनात् ॥ पुनः वाल्मीकीयटीकायाम् ॥ रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः। कलौयुगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ६ सत्य शौच दया दानादि जो धर्मरूप कल्पवृक्ष है ताको निर्विघ्न रहवे हेतु रामनाम आराम कहे वाटिका है पुनः हरिधाम को जानेवालेन को पंथ में सुखदायक संबलं खर्चहेतु धन है पुनः भगवत् प्राप्ती हेतु यावत् साधन हैं तिनके उपजाने को कारण इदं पर्व एकं मूलं इदं कहे यह जो रामनामका सुमिरण है सो पर्व को निश्चय करिकै एक यही सबकी मूल जर है काहे ते भक्ति, श्रवण, कीर्तनादि वैराग्य लोकसुख को त्याग पुनः विज्ञान आत्मअनुभव सम वासना को

त्याग दान भोजन धनादि देना दम इन्द्रिन की वृत्ति विषय ते रोकना इत्यादि अनेकन साधन हैं ते सब रामनाम के आधीन हैं भाव विना रामनाम जपे कोई साधन सिद्ध नहीं है सके हैं ७ काहे ते सब साधन नामके आधीन हैं कि कालं अवलोक्य अनवद्यं श्रीरामनाम अमृतं अनिशं येन पानकृतं काल जो कलियुग ताकी करालता विलोक्य नाम देखिकै अनवद्य दूषणरहित श्रीरामनामरूप जो अमृत है ताको येन कहे जिन करिकै अनिशं नाम दिनराति पान किया गया भाव जे दिनराति रामनाम जपते हैं तेन हुतं तप्तं तिनहीं हुत जो अग्नि तामें तप्त पञ्चाग्नि आदि तपस्या कीन्हे पुनः अखिलं एव दत्तं धन भोजनादि अखिल नाम सब प्रकार की पदार्थै एव कहे निश्चय करिकै दानदत्त कहे दीन्हे पुनः तेन कर्मजालं सर्वकृतं सन्ध्या तर्पण पूजा पाठ तीर्थ व्रत होम यज्ञ स्वाध्यायादि यावत् सत्कर्म हैं तिनके जाल समूह ते सर्वकृत सब करिचुके जे रामनाम जपे यथा केदारखण्डे शिववाक्यम् ॥ रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्। यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोमलाम् ॥ पद्मपुराणे ॥ ये ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम्। तत्सर्वं सिद्ध्यति क्षिप्रं रामनामैव कीर्तनात् ८ अब प्रसिद्ध प्रमाण देखावत यथा श्वपच जाति को डोम जाके भोजन कीन्हे युधिष्ठिर की यज्ञ पूर्ण भई चित्रकूटादि के भिल्ल खल सहज स्वभाव ते दुष्ट रहे यमन जो मरत समय हराम कहि हरिधाम पायो इत्यादि विपुल बहुत मतिमलिनपरसी जिनकी बुद्धि मलीनी क्रिया को स्पर्श कीन्हे रहे भाव उत्तम क्रिया जिनमें नहीं रहै तेऊ जपकरि रामनाम के बलते हरिलोकगत भगवत्धामको प्राप्त भये ऐसा विचारि सर्व साधनादि की आशा त्यागि संकहे संपूर्ण प्रकार की जो त्रास डर हैं पुनः भवपाश भव की फसरी को काटने हेतु निशित असि पैनी तरवारि सम हरिनाम ताको हे तुलसीदास! सदा जपु ६ ॥

(४८) ऐसी आरती राम रघुवीर की करहि मन। हरण दुख द्वन्द गोविन्द आनन्दघन १ अचरचररूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति वासना धूप दीजै। दीप निजबोध गतक्रोधमदमोहतम प्रौढ़अभिमानचितवृत्तिछीजै २ भाव अतिशयविशद प्रवर नैवेद्य शुभ श्रीरमणपरमसंतोषकारी। प्रेमताम्बूल गतशूलसंशय सकल विपुल भववासनाबीजहारी ३ अशुभशुभकर्मघृतपूर्णदशवर्तिका त्यागपावकसतोगुणप्रकासं। भक्तिवैराग्य विज्ञानदीपावली अर्पि नीराजनं जगनिवासं ४ विमलहृदि भवनकृत शान्तिपर्यंकशुभशयनविश्राम श्रीरामराया। क्षमाकरुणाप्रमुख तत्र परिचारिका यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया ५ येहि आरती निरत सनकादि श्रुति शेष शिव देवऋषि अखिलमुनि तत्त्वदरसी। करे सोई तरे परिहरे रागादि मल वदति इति अमल मति दासतुलसी ६

टी०। यन्त्रराजपर जो प्रभुके पूजनकी विधि अगस्त्यसंहितादि में लिखी है ताही क्रमते विनय करत तहां प्रथम अंगन्यासकरि मन थिर करना चाहिये ताहेतु नेत्र मुखादि प्रभुके अंगन में इंद्रिन की वृत्ति लगाइ मन थिर कीन्हे पुनः मन्त्र-जाप करना चाहिये ताहेतु वारंवार नाम जपने को कहे पुनः मानसीपूजा करना चाहिये तिससे कहत हे मन ! राम रघुवीर अर्थात् परशुराम वलराम इत्यादि नहीं जे राम रघुवंश में वीररूप ते अवतीर्ण भये तिनकी आरती अर्थात् षट्उप-चार पूजन करौ कैसे हैं राम गोविन्द आनन्दघन अर्थात् अन्तर्यामीरूप ते नाभि-कमल में वास कीन्हे गोविन्द जिनकी चैतन्यताते सव इन्द्रिय चैतन्य हैं पुनः घन नाम समूह आनन्द है जिनमें पुनः हर्ष शोक रागद्वेषादि जो द्वंद दुःख जीव को है ताके हरणहारे हैं भाव सन्मुख होतही जीवकी भेदबुद्धि नाश करिदेते हैं तिनकी आरती षट्उपचार पूजन यथा धूप १ दीप २ नैवेद्य ३ ताम्बूल ४ नीराजन ५ शयन इत्यादि करु १ तहां धूप में देवदारु, गूगुल, कपूर, अगर, तगर, घृत, मिठाई आदि सुगंधित वस्तु मिलाइ अग्नि पर धरि ताको सुगंधित धूम प्रभु को घ्राण करानेते ताकी प्रसादी अपनी नासिका में जव परती है ताके प्रभावते अंतरकी कुवासना नाश ह्वै हरि प्रीति की सुंदर वासना उठती है इहां द्वैतबुद्धि त्यागि जीव-मात्र पर क्षमा, दया, समता, शांति इत्यादि सुगंधित वस्तु बटोरि संतोषरूप अग्नि पर शुद्ध मन धरै ताको सुगंधित धूम यथा चराचर यावत् जीवमात्र हैं तिन सवके अंतरगत व्यापक जो हरिरूप सर्वदा वसत इति समताकी वासना शुद्ध मन की चाह सोई प्रभु को धूप दीजे ताके प्रभावते तन, धन, गेह, स्त्री, पुत्र, इंद्री, सुखादि की जो अंतर कुवासना है ते सव नाश ह्वैजाइगी पुनः रुई की एक वाती घृत में वोरि ताको वारि इति दीपदान प्रभुको देने ते ताकी ज्योति दृष्टिमें परे ताके प्रभावते अंतर को मोहादितम नाश होता है यहां निज अपने आत्मरूप को वोध अर्थात् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि तीन अवस्था छिकला सरीखे त्यागि रज तम सत इत्यादि गुण व्यनवरते भिन्न तुरीय में शुद्ध आत्मरूप रुई की दृढ़ता वाती करि शुद्धबुद्धिरूप घृत में वोरि विरहरूप अग्नि में जराइ इत्यादि निज वोधरूप दीप-दान प्रभुको दीजै अर्थात् शुद्ध आत्मरूपते सुबुद्धि सहित चित्तकी सनेहमय वृत्ति भगवत्रूप में लीन वनीरहै सोई अनुभवरूप प्रकाश दृष्टि में परतही अन्तर में क्रोध मद मोहादि जो तम अन्धकार सो गतनाम जात रहै पुनः प्रौढ़ ढीठा अभि-मानमय जो चित्तकी वृत्ति अंतरदृष्टिकी मंदता सो छीजै मिटिजावै रामतत्त्व देखि परै २ पुनः घृत दुग्ध मिठाई षट्रस अन्नादि भगवत् को नैवेद्य लगाइ सोई प्रसादी पावनेते षट्रसकी चाह क्षुधादि सव मिटिजाती अंतरमें संतोष वनारहत अंतर में वल देह पुष्टरहत तथा यहां अतिशय विशद अत्यंत करिकै उज्ज्वल अमल जो भाव है यथा शेष शेषी अंश अंशी प्रकाश प्रकाशी पति पत्नी सेवक स्वामी इत्यादि कोई ईश्वरते सम्वन्ध राखे होइ ताही भावकी जो सर्वांग प्रीति है यथा ॥ दो० ॥ प्रणयप्रेम आसक्त पुनि लगन लाग अनुराग। नेह सहित सव प्रीति के जानव अंग विभाग ॥ इत्यादि घृत दुग्ध मिठाई षट्रस अन्नादि प्रवर परम उत्तम नैवेद्य लगावै सो श्रीरमण जानकीनाथ को परम संतोष करनहारी नैवेद्य है सोई

प्रसादी पायेते अपनेभी उरमें परमसंतोष होइगो आत्मरूप देह पुष्टपरी ज्ञानवल वढ़ी पुनः ताम्बूल भोग लगाइ प्रसादी पावने ते मुखकी गंध कृमि आदिकी भय मिटिजाती है यहां प्रेम प्रीतिकी जो उमँग है सोई ताम्बूल है अर्थात् शुद्धप्रेम भगवत्रूप में बना रहना पानभोग है ताको प्रसादी प्रेमानन्द पावनेते तीनिउँ तापै जन्मत मरतको दुःख इत्यादि शूलपीड़ा पुनः संसार के पदार्थ झूठे में सांचे विचारना इत्यादि सकल प्रकार की संशयगत जात रहैंगे हरिरूप सांचा मानि ताके सनेह में आनंद रही पुनः जन्म मरण गर्भवास यमयातनादि विपुल बहुत प्रकार की भय डर पुनः लौकिकसुख स्त्री पुत्र धन धामादिकी जो वासना तिनको वीजहारी कारणै नाश होत ३ पुनः चारि आठ दशादि वाती घृत में बोरि जलाइ नीराजन सर्वांग पै आरती उतारत ताके प्रकाशते रज तमादि श्रम शोक नाशह्वै शांत चित्त आनंद होत तथा इहां योगअग्नि अर्थात् इंद्री मनादिकी थिरता में अशुभ शुभ कर्म को मैहर छांछीसम जराइ भाव सब कर्म त्यागि शुद्ध रामसनेह घृतपूर्ण दशवर्तिका अर्थात् विराग सहित नवधाभक्ति इत्यादि दश वाती सो रामसनेहते बोरि त्यागरूप पावक अग्नि में जरावै जामें शुद्ध सतोगुण प्रकाश है सब वाती वरे पर एक पांति होती है यहां नवधाभक्ति अरु वैराग्य इति दशौ वातिनकी दीपावली दीपनकी पांति सो विज्ञान रामरूपकी सांची पहिचान है इति नीराजन जगनिवास को अर्पि रघुनाथजी के सर्वांग पर आरती उतारु अर्थात् सब कर्म रहित लोकसुखते विरागी ह्वै अपना इष्ट रघुनाथजी को जानि सनेह सहित श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि करु यही आरती हैं ताके कीन्हे सब दुःख नाश ह्वै सुखी होयगो भाव उरमें नित्य रामरूप की प्राप्ति बनी रही तिनके प्रभावते कोई विकार न आइसकी सो प्रसिद्ध आगे कहत ४ जब लोकसुख त्यागि राम सनेह सहित नवधाभक्ति कीन्हेते सब विकाररहित हृदयरूप विमल भवन में शांतिरूप पर्यंक पर प्रभुको शयन कराउ सदा ध्यान थिर राखु इत्यादि शुभशयन मंगलमय शय्यापर जब रामराया विश्रामकृत श्रीरघुनन्दन महराज विश्राम करैंगे तब कहे तहां क्षमा करुणा इत्यादि प्रमुख मुखिया हैं जिनमें अर्थात् क्षमा, करुणा, शांति, कृपा, दया, शीलता, कोमलता, दीनता, अमानतादि परिचारिका दासी रहैंगी दासी कहि जानकीजीसहित शयन सूचित कीन्हे इत्यादि हरि श्रीरघुनाथजी यत्र जहां विश्राम करते हैं तत्र तहां भेदबुद्धि आदि माया नटीको परिवार निकट नहीं जाइसके हैं भाव महारानी सहित महाराज को ध्यानरूप विश्राम जाके उर में है तहां माया नटी डरतीहै ताते वाको परिवार समीप नहीं जाइ सक्ता है ५ संसार सुख त्यागि विरागवान् ह्वै प्रेमसमेत श्रीरघुनाथजी की नवधाभक्ति शुद्ध आत्मारूपते सदा करना यही आरती में निरत सदा लगे रहते हैं सनकादि प्रेम सहित सदा हरियश श्रवण करते हैं अरु शुद्ध आत्मरूप ते प्रभुको ध्यान राखते हैं यथा भागवते सनत्कुमारवाक्यं ॥ कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्याच्चेतोलिवद्यदिनुते पदयो रमेत। वाचस्तु नस्तुलसिवद्यदितेङ्घ्रिशोभा पूर्येत ते गुणगणैर्यदिकर्णरन्ध्रः ॥ पुनः शुकदेवको वचन भागवते॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वंदनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्। लोकस्य सद्यो विधु-

नोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः॥ शेषजी सदा सेवै में रहत सहस्रमुख ते सदा यश गावत शिवजी सदा वालरूप को ध्यान राखत गिरिजा प्रति सदा यश गावत देवऋषि नारद कीर्तन भक्ति को अधिकारै धारण कीन्हे हैं तथा परा-शर अगस्ति याज्ञवल्क्यादि यावत् तत्त्वदर्शी मुनि हैं ते अखिल सब प्रेमसहित न-वधाभक्ति में लगे रहते हैं भाव यही सबको सिद्धान्त है तथा नीच ऊंच कोऊ होइ जोई कामादिमल परिहरै सब विकार त्यागि शुद्ध हृदयते जोई भक्ति करै सोई भवसागर तरै निश्चय तरिजाई इति यह वचन विमलमति बुद्धि शुद्धकरि तुलसीदास वदति कहते हैं ६॥

(४९) हरति सब आरती आरती रामकी। दहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की १ सुभग सौरभ धूप दीप वरमालिका। उड़त अघविहँग सुनि ताल करतालिका २ भक्तहृदि भवनअज्ञानतमहा-रिणी। विमलविज्ञानमय तेज विस्तारिणी ३ मोहमदकोहकलि कञ्जहिमयामिनी। मुक्ति की दूतिका देहद्युति दामिनी ४ प्रणतजन कुमुदवनइन्दुकरजालिका। तुलसिअभिमानमहिषेश वहुकालिका ५

टी०। विराग प्रेम सहित नवधाभक्तिरूप जो श्रीरघुनाथजीकी आरती हैं सो सब आरती लौकिक पारलौकिकादि सब भांतिके दुःखनको हरिलेती हैं भाव दास्यता जो भक्ति सेवक सेव्यभाव आवतै सब आर्ति नाश होते हैं पुनः हानि, व्याधि, वियोग, दरिद्रतादि दुःख, हिंसादि दोष इत्यादि को दहति भस्म करिदेत पुनः कामकी निर्मूलिनी सब कामनाको जरते उचारि डारत है भाव हरियश श्रवण करतही दुःख दोष नाश ह्वैजात संतोष आवत ताते कामना उठतही नहीं १ कौन भांतिकी आरती है कि हरिरूप प्राप्तिकी जो वासना है सोई सुभग सौरभ सुन्दर सुगंधित धूप है पुनः सब कर्म त्यागि केवल रामसनेहते सर्वांगभक्ति करना इत्यादि वर श्रेष्ठ दीपमालिका वरत बातिनकी पांति है तहां रामयश कीर्तन करत समय में ढोल झांझादि में ताल मिलाइबे हेतु प्रेमते गान करत समय जो तारी वजावते हैं सोई करतालिका की हाथ तारीकी ताल सुनतही अघविहँग पापरूप पक्षी उड़िभागते हैं जीव किसान परमारथ कृपीको खानहारे पाप पक्षीते भागिजाते हैं २ भक्तहृदि भवन भक्तनको हृदयरूप जो मन्दिर है तामें अज्ञानरूप तम अन्धकार ताको हरिलेनहारी आरती की प्रकाश है भाव हृदयमें अज्ञानवशते आत्मरूप नहीं देखिपरत तहां प्रभुको स्मरण कीन्हे ते सहजे अज्ञान नाश होत आत्म परमात्मरूप दर्शत पुनः प्रभुपद सेवन जो भक्तिहै सो विमल विज्ञान अमल अनुभवमय तेज उरमें विस्तारिणी फैलावनेवाली है ३ मोह जीवकी अचेतता पुनः मदजाति विद्याधनादि पाइ हर्ष बढ़ावना पुनः कोह क्रोधकलि विरोधते क-लह होना इत्यादि हृदयरूप तड़ाग में कंज कमलसरीखे प्रफुल्लित रहते हैं तिनके नाश करिबे हित हिमयामिनी पालाकी राति सम आरती है भाव भगवत्अर्चन करतसंते मोह, मद, कोह, कलहादि आपही नाश ह्वैजाते हैं अंतस शुद्ध होत पुनः

आरती कैसीहै कि जो मुक्तिरूप नायिका कर्मी ज्ञानी पुरुषनको दुर्लभ है तिस मुक्ति-नायिकाकी प्राप्ति कराइदेनेको चतुर दूतिका है सहजहीं मिलाइदेती है पुनः स्वाभाविकही जीवको मोहितकरिलेनहारी स्वरूपवंत कैसी है जाकी देहकी द्युति प्रकाश दामिनी सरीखे है भाव अत्यंत सुलभ जो हरिपदवंदन भक्ति है तामें सौल-भ्यता यही जीवनको मोहनहारी स्वरूपता है अर्थात् जो केवलपदवंदन कीन्हेते भक्ति भई तौ यामें कौन परिश्रम है ताते अवश्य करना चाहिये इति मोहित करने हेतु सुंदरता है पुनः प्रभुकी यह प्रतिज्ञा है कि जो एकहू बार प्रणाम करि कहै कि मैं शरणहौं ताको मैं सबसों अभयकरिदेताहौं यथा वाल्मीकीये॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ इत्यादि जो प्रणाममात्रही अभय करत तौ मुक्ति सुगमै है इत्यादि मुक्तिकी प्राप्ति हेतु दूती है ४ प्रणतजन कुमुदवन शरणागत जन तेई कोकीवन समान हैं तिनको प्रफुल्लित करिबे हेतु इंदुकर चंद्रमा की किरण की जालिका सघनता है भाव यथा चंद्रमा अपनी किरणन करिकै कुमुदवन को प्रफुल्लित करत तथा सख्यभाव के भक्त यथा सुग्रीव विभीषणादि जे सखाभावते शरण भये तिनको वचनरूप किरण करि प्रभु सदा प्रसन्न राखते हैं यथा॥ मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन॥ पुनः गोसाईंजी कहत कि अभिमान महिषेश यथा मैं ब्राह्मण विद्वान् तपोधनी मैं क्षत्री महाराज शूरवीर बली मैं वैश्य धनी देशान्तर प्रामाणिक मैं कुलीन युवा रूपवंत गुणी इत्यादि देहाभिमान सोई महिषासुर सम शांति समता विवेकादि देवनको शत्रु दुष्ट दैत्य है ताको नाश करिबे कहँ हरि आरती कालिकादेवी सम है भाव आत्म-समर्पण भक्ति अर्थात् जब आत्मा प्रभुको देदिया तब देह भी स्वामी की है गई ताते देहाभिमान सहजही नाश है गया ५॥

(५०) दनुजवनदहन गुणगहन गोविन्द नन्दादिआनन्ददाताऽविनाशी।
शम्भु शिव रुद्र शङ्कर भयङ्कर भीम घोर तेजायतन क्रोधराशी १
अनन्त भगवन्त जगदन्त अन्तकत्रासशमन श्रीरमण भुवनाभिरामं।
भूधराधीश जगदीश ईशान विज्ञानघन ज्ञान कल्याणधामं २
वामनाव्यक्तपावन परावर विभो प्रगट परमात्मा प्रकृतिस्वामी।
चन्द्रशेखर शूलपाणि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेशगामी ३
नीलजलदाभतनुश्याम बहुकामछवि राम राजीवलोचन कृपाला।
कम्बुकर्पूरवपुधवल निर्मल मौलि जटा सुरतटिनि सितसुमनमाला ४
वसनकिंजल्कधर चक्र शारंग दर कंज कौमोदकी अतिविशाला।
मारकरिमत्तमृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरणसंसारज्वाला ५
कृष्ण करुणाभवन दमनकालीय खल विपुल कंसादि निर्वंशकारी।
त्रिपुरमदभंगकर मत्तगजचर्मधर अन्धकोरगग्रसन पन्नगारी ६
ब्रह्म व्यापक अकल सकल पर परमहित ज्ञानगोतीत गुणवृत्तिहर्ता।

सिंधुसुतगर्वगिरिवज्रगौरीश भव दक्षमखअखिलविध्वंसकर्ता ७
भक्तिप्रिय भक्तजनकामधुकधेनु हरि हरणदुर्घटविकट विपतिभारी।
सुखदनर्मद वरद विरज अनवद्यऽखिल विपिनआनन्द वीथिनविहारी८
रुचिर हरिशंकरी नाम मन्त्रावली द्वन्द्वदुखहरनि आनन्दखानी।
विष्णुशिवलोकसोपानसम सर्वदा वदति तुलसीदास विशद बानी ९

टी०। या पदमें हरि शंकर दोऊ रूपनके गुण गावत यथा हे भगवन् देव! आप कैसे प्रतापवंत हौ कि दनुज सोई सघनवन सम हैं तिनको दहन दावानल सम भस्मकर्ता हौ पुनः कृपा दया शरणपालतादि गुणन के गहन सघनवन सम हौ पुनः गोविंद इंद्रिन को चैतन्यकर्ता व्यापक अविनाशी नाश रहित तेई कृष्णरूप ते प्रकट है व्रज में नन्दादि गोपगणन के आनन्ददाता हौ पुनः हे शम्भु! ग्यारहौ रुद्र में जो शिवरूप ते शंकर अर्थात् प्रणतजन के कल्याणकर्ता हौ पुनः प्रलयकर्ता भीम भयंकर भयंकर जो कालादि तिनहूंते अधिक भयंकर काहेते घोर भयंकर तेज के आयतन घर हौ क्योंकि क्रोध की राशि ढेरी भाव जा क्रोध ते त्रिलोकनाश करि देते हो १ हे देव! आप कैसे भगवन्त हौ जिनके ऐश्वर्य को अंत नहीं है पुनः जगत् अंत अंतक जगत् को अंतकाल ताके कर्ता अंतकर्ता की त्रासशमन यम- सांसति को डर मिटावनहारे हौ भाव मारण समय भूलिहू कै नाम आवै तौ यम- त्रासते छुँड़ाइ देते हौ यथा अजामीलको ऐसे श्रीरमण लक्ष्मीनाथ भुवन भरे के अभिराम आनन्ददायक हौ पुनः हे ईशान, भूधर आधीश कैलास पर्वतके पति! आप जगत्के ईश स्वामी हौ अरु आपमें विज्ञानघन आतमअनुभव समूह है जीवन- हित ज्ञान कल्याण के धाम हौ अर्थात् सेवक को ज्ञान कल्याणदायक हौ भाव निर्वासिकन को ज्ञान देते हौ सवासिकन को कल्याण करते हौ २ व्यक्त प्रकट अव्यक्त नहीं है प्रकट जो इति हे अव्यक्त परावरविभो! परपूर्वरूप चतुर्भुज अवर प- श्चात्रूप जो दूसरा रूप धारण करनहारे विभो समर्थ प्रकृति माया ताके स्वामी परमात्मा अर्थात् जो लोक में प्रकट नहीं ऐसे मायापति परमात्मा पररूप तेई अ- वर कहे पश्चात् देवनकी विपत्ति निवारणार्थ कृपा करि परमपावन वामनरूपते प्रकट भयउ पावनको भाव आपके पांयनते प्रकट है गंगाजी लोकपावन करती हैं पुनः चन्द्रमाहै माथ में जिनके हाथ में त्रिशूल इति हे चन्द्रशेखर शूलपाणि हर ताप पापहरनेवाले! आप अनघ पापरहित सदा पावन हौ अज जन्म मरण रहित अवि- नाशी अनादि हौ पुनः अविच्छिन्न क्षीण हीनता करिके विशेष रहित सदा एकरस ऐसी अमित असंख्य महिमा है आपकी परन्तु लोकहित एक वृषभगामी एक वर्ध पर चढ़े सुलभ जीवनकी रक्षा करते फिरते हौ ३ हे देव! आप ऐसे दयासिन्धु हौ कि सुलभ लोकोद्धार हेतु जय विजय के शापोद्धारव्याज राजकुमाररूपते अवतीर्ण भयो कैसा मनोहररूप नीलजलदआभ नीलसजल मेघनकी आभासरीखे सुन्दर श्याम तन जामें बहुते कामकी छवि है पुनः राजीवलोचन कमलसम नेत्र कृपारूप मकरन्द भरे इति कृपालु अर्थात् लोकजीवन को पालिवे आपही को समर्थ माने हैं ताते सुलभही जीवनको उद्धार करते हैं पुनः हे शिवजी! आपको वपु शरीर कैसा

धवल गौरांग है कम्बु शङ्ख सम चिक्कण चमकदार पावन श्वेत पुनः कपूरसम सुगं-
धित निर्मल श्वेत पुनः मौलि जो शीश तापै भूरेरंग को सघन भारी लंबा जटा है
तामें सुरतटिनि देवनदी गंगाजी अरु सित सुमन सफ़ेद फूलन को माला शोभित
अथवा सफ़ेद फूल मालसम गंगाजी शोभित होती हैं ४ हे देव ! आपको बाना
कैसा है किंजल्क कमल की केशरि तद्वत् पीतवसन धारण पुनः शार्ङ्ग धनुष तथा
सुदर्शन चक्र अरु दरनाम शंख पुनः कौमोदकी नाम गदा अरु कञ्ज कमल अर्थात्
अत्यन्त विशाल लम्बी जो चारिभुजा हैं तिनमें चक्र शंख गदा पद्म धारण किहे हौ
सो शोभा देते हैं पुनः हे त्रिनयन ! आप कैसे सबल समर्थ हौ कि मारमत्तकरि
कामदेव बल वीरता मदभरा माते हाथी सम रहा ताको सहजही नाश करिवे हेतु
आप मृगराज सिंह सम हौ पुनः शरणागतन को संसाररूप अग्नि के जन्म जरा
मरण तीनिउँ तापादिरूप ज्वालन को अपहर निश्चय करिकै हरणहारे हौ ऐसे हर
नौमि ऐसे दयालु शिवजी को नमस्कार है ५ सेवक के दुःख में आप दुःखित ह्वै
शीघ्रही दुःखहरि सेवक को सुखी करै ताको करुणा गुणकही तिस करुणाभरे
मंदिर इति हे करुणाभवन ! आप कृष्णरूप प्रकट ह्वै व्रजवासीजननको दुःखित
देखि करुणा लागि ताते जाके विषते कालीदह को जल विष ह्वै गया रहै तिस
काली को मददवन करि पकरि निकारि दिहेउ पुनः कंसादि विपुल खल बहुते दु-
ष्टन को निर्वंशकारी वंश सहित नाश कीन्हेउ पुनः त्रिपुरासुर के बल मदको भंग
कर नाशकर्ता मत्तगजचर्मधर माते हाथी को चर्म सोई वसन धारण कीन्हे हौ
अन्धक नाम दैत्य उरग सर्पसम रहा ताको आसन लीलिजावे हेतु पन्नगअरि स-
र्पन के शत्रु गरुड़सम भयो शीघ्रही नाश कीन्हेउ ६ हे देव ! अकल अंशभागादि
कलारहित चराचर में परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म सकलरूपनते पर जीवमात्र के परम-
हित रक्षादिकर्ता ध्यानते अरु गो इंद्रिनते अतीत ज्ञानइंद्रिन करिकै नहीं प्राप्त हौ
पुनः गुणवृत्तिहर्ता अर्थात् रजोगुण की वृत्ति विषयकी चाह तमोगुण की वृत्ति
वृथा क्रोध इत्यादि के हरिलेनहारे हौ पुनः हे गौरीश, भव, पार्वतीकेपति, शिवजी!
आप कैसे सबल हौ कि सिंधुसुत गर्वगिरि जलन्धर को अपने बल को गर्व प-
र्वत के समान रहै ताको नाश करिवे को वज्रसम हौ पुनः दक्षमख जहां देवता
मुनि सबै रक्षा करनहारे रहैं ऐसी प्रजापति की यज्ञ ताको विध्वंस करिदीन्हेउ ७
हे हरि ! आपको भक्ति प्यारी है काहेते भक्तजनन को कामना दुहिवे हेतु कामधेनु
सम सहजही सब फल देते हौ पुनः सामान्य लोकजीवन को कैसे हितकर्ता हौ
कि जो दुर्घट किसी के मिटाइवे योग्य नहीं ऐसी जो विकट भयंकर भारी विपति
यमसांसति आदि ताको नामलेतमात्र हरिलेनहारे हौ पुनः हे शिवजी ! आप
सुखद निरुज तन धन धाम स्त्री पुत्र भोजन भूषण वाहनादि सुखके देनहार सवा-
सिकन को हौ पुनः निर्वासिकन को नर्मदवरदहौ नर्मद कहे सुखदायक ज्ञान भक्ति
आदि ऐसे वरके देनहार हौ यथा ॥ है अकाम जो छल तजि सेइहि । भक्ति मोरि
त्यहि शंकर देइहि ॥ पुनः विरज रजोगुणादि रहित पुनः अखिल अनवद्य सब
विकाररहित हे विपिनवन आनंदवन जो काशी ताकी वीथी पुरांतरकी गलिन में
विहार करनेवाले हौ ८ गोविन्द, अनंत, भगवंत, श्रीरमण, वावन, अव्यक्तराम-

चक्रधर, कृष्ण, परमात्मा इत्यादि हरिके नाम हैं तथा शंभु, शिव, रुद्र, ईशान, चंद्रशेखर, शूलपाणि, हर, कामारि, त्रिनयन, त्रिपुरारि, गौरीश इत्यादि शंकरी अर्थात् शंकर के नाम हैं इत्यादि रुचिर सुंदर जो दोऊ पक्षके नाम कहिआये तिनमें पूर्व प्रणवादय चतुर्थ्यंत उच्चारण ते सब मन्त्र हैं यथा॥ ॐगोविंदाय नमः ॐशिवाय नमः॥ इत्यादि मन्त्रन की अवली जो द्वयपंक्ती हैं ते प्रीति पूर्वक उच्चार करने में कैसी हैं कि शुभाशुभ कर्मबंधन जो द्वंद्व दुःख है ताको हरणहारी हैं पुनः सब प्रकार के आनंद उपजने की खानि हैं पुनः पूर्वपंक्ति विष्णुलोक की दूसरी पंक्ति शिवलोक प्राप्ति की सोपान सीढ़ी सम है सदा सर्वदा ऐसा विशद उज्ज्वली वाणी ते तुलसीदास वदत नाम कहते हैं भाव वेदप्रामाणिक बात है ६॥

(५१)भानुकुलकमलरविकोटिकन्दर्पछविकालकलिव्यालमिव वैनतेयं। प्रबलभुजदण्ड परचण्ड कोदण्डधर तूणवर विशिख बलमप्रमेयं १
अरुणराजीवदलनयन सुषमाअयन श्यामतनुकान्ति वर वारिदाभं। तप्तकाञ्चनवस्त्र शस्त्रविद्यानिपुण सिद्धसुरसेव्य पाथोजनाभं २
अखिललावण्यगृह विश्वविग्रह परमप्रौढ़ गुणगूढ़ महिमाउदारं। दुर्धर्ष दुस्तर दुर्ग स्वर्गअपवर्गपति भग्नसंसारपादपकुठारं ३
शापवशमुनिवधूमुक्तकृत विप्रहित यज्ञरक्षणदक्ष पक्षकर्ता। जनकनृपसदसि शिवचापभंजन उग्रभार्गवागर्वगरिमापहर्ता ४
गुरुगिरागौरवअमरसुदुस्त्यजराज्यत्यक्त सहित सौमित्रिभ्राता। संग जनकात्मजा मनुजमनुसृत्य अज दुष्टवधनिरत त्रैलोक्यत्राता ५
दण्डकारण्यकृतपुण्यपावनचरण हरण मारीचमायाकुरंगं। बालिबलमत्तगजराजइव केशरी सुहृद सुग्रीवदुखराशिभंगं ६
ऋक्ष मर्कट विकट सुभट उद्भट समर शैलसंकास रिपुत्रासकारी। बद्धपाथोधि सुरनिकरमोचन सकुलदलनदशशीशभुजबीसभारी ७
दुष्टविबुधारिसंघात अपहरणमहिभार अवतार कारणअनूपं। अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुण सगुण ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूपं ८
शेष श्रुति शारदा शम्भु नारद सनक गणत गुण अन्त नहिं तव चरित्रं। सोइराम कामारिप्रियअवधपति सर्वदा दासतुलसी त्रासनिधिवहित्रं ६

टी०। हे देव! भानुकुलकमल रवि सूर्यकुल कमलवनके प्रफुल्लितकर्ता सूर्यवत् श्रीरघुनाथजी आपके तनमें कंदर्प कामदेव कोटिनकी छवि है पुनः कलिकाल सोई व्यालइव सर्पकी समान है ताके नाश हेतु आप वैनतेय गरुड़की समान हौ प्रबल प्रकर्ष करिकै बलके भरे पुष्ट जो भुजदण्ड हैं तामें प्रचण्ड कोदण्डधर कठोरधनुष धारणकिहेहौ वरतूण उत्तम तरकस कटिमें दक्षिण हाथमें विशिख बाण धारण अप्रमेय प्रमाणरहित आपमें बल है १ अरुणराजीव लाले कमलदलसम नयन पुनः

सुखमाश्रयन शोभाको मंदिर श्यामतनुकी कांति वरवारिदाभ श्रेष्ठ मेघनकी आभा सरीखे है तेहि तनु विषे तप्तकांचनवस्त्र तपाये सोनेकी कांतिसम पीतवस्त्र धारण किहे हौ यह माधुर्य है कि विश्वामित्रके पढ़ायेते शस्त्र अस्त्रादि बाणविद्यामें निपुण हौ पुनः ऐश्वर्यरूप जाकी नाभिते पाथोज कमल उत्पन्न भया जामें ब्रह्मा भये सिद्ध सुर सेव्य जारूप की सिद्ध मुनि देवादि सब सेवा करते हैं २ विश्वविग्रह संसारदेह है विराट् स्थूल देह है जिनकी पुनः परमप्रौढ़ अत्यंत बढ़िकै ऐश्वर्य तेजवीर्य बल शक्ति इत्यादि गुणगूढ़ गुप्त किहेहौ पुनः संसारको कल्याण करनहारी ऐसी उदार महिमा है ऐश्वर्य की बड़ाई कैसो ऐश्वर्य है दुर्धर्ष अर्थात् किसीके जीतिवे योग्य नहीं है पुनः दुस्तर आपकी महिमा के कोऊ तरिकै पार जावा चहै तौ नहीं जाइसकत पुनः दुर्ग अतुट महिमा है कैसी अतुट है स्वर्ग देवलोकादि अरु अपवर्ग मोक्ष इत्यादि के पति हौ भाव चहौ स्वर्ग देउ चहौ नरक देउ चहौ मुक्त करौ चहौ ताको भवबंधनमें डारौ ताको कोऊ रोकनेवाला नहीं है ऐसी महिमा जिनकी सोई संसार पादपभवरूप वृक्ष भग्न काटिवे को कुठार हौ सुलभ जीव उद्धार हेतु अवतीर्ण भयो अखिललावण्य अह समग्र शोभा के मंदिर राजकुमाररूप धारण किहेउ ३ गौतम मुनिकी वधू अहल्या पति शाप के वश पाषाण रहै ताको मुक्तकृत शाप पाप छुँड़ाइ दिव्यदेह करिदिहेउ पुनः वेदधर्म के पक्षकर्ता सहायक ऐसेहौं कि विप्र विश्वामित्र के हित यज्ञरक्षण करने में दक्ष परम प्रवीण हौं पुनः रंगभूमि जनकजी की सभा में इति जनकनृप सदसि विषे शिवचाप जो पिनाक धनुष ताको भंजन तोरनहारे पुनः भार्गव जो परशुराम तिन को बलवीरता को उग्र गर्व रहै गरिमा महागरिष्ठ ताको अपहर्ता निश्चय करिकै नाश करिदिहेउ भाव धनुष चढ़ाइ मानहरि शुद्ध ब्राह्मण करेउ जीव हिंसक उग्र भयंकर गर्व ताको हरिलिहेउ ४ गुरु गिरा गौरव पिताकी कही बाणी गरू मानिकै अमर सुदुस्त्यज्य जाको त्यागत में देवतन को बड़ा दुःख होत ऐसी ऐश्वर्य सहित अयोध्याजी की राज्य सो सप्तांगराज त्यक्त त्याग कीन्हेउ सौमित्रि लक्ष्मण भ्रातासहित जनककी आत्मजा पुत्री श्रीजानकीजी तिनको संग लै वनको गमन कीन्हेउ अज जिनको जन्म कबहूं नहीं तेई मनुज मनुष्यरूप ते यथा स्वायंभुवमनु धर्म पथपर आरूढ़ रहे तैसही स्मृति नाम पदवी लैकै मनुसम धर्म स्थापित करिवे हेतु दुष्टवध निरत विराध कबंध खरदूषणादि दुष्टन के मारिवे के व्यापार में तत्पर है तीनिउँ लोकवासिन के त्राता रक्षा करनहार भयउ ५ दण्डक नाम आरण्य वन शापित श्मशानसा रहै तामें पावन चरणधरि पुण्यकृत पवित्र कीन्हेउ पुनः माया करि कुरंग मृगा बनिकै जो मारीच आया ताके प्राण हरिलीन्हेउ बलमत्त गजराज इव बलमद करिकै माता हाथी सम जो बालि रहै ताके नाश करिवे को आप केशरीसिंह सम शीघ्रही प्राण हरेउ किस कारण कि सुहृद मित्र जो सुग्रीव तामें बालिकी भयते दुःखकी राशि ढेर रहै ताके भंग मिटाइबे हेतु बालि को मारि सुग्रीव को राजा बनायउ ६ ऋक्ष अरु मर्कट वानर विकट भयंकर जे सुभटन में उद्भट वीरन में महाबली वीर है समर युद्ध विषे शैल संकाश पर्वताकार देहैं जे रिपुनको त्रास करनेवाले भाव जिनकी भारी भयंकर देहैं देखिनकै शत्रु डराइ

उठैं सुर निकर देवता समूहनकी बंदी मोचन हेतु पाथोधिबद्ध समुद्र में सेतु बांधि वानरी सेनायुत पार उतरि लंका में जाइ जाके बलभरे भारी बीस भुजा हैं ऐसा जो दशशीश रावण ताको कुलसहित दलननाश करि दीन्हेउ निज दास विभीषण को थिरथापि अचल राज्य दै पुष्पकपर आरूढ़ है अयोध्याजी को आयउ ७ विबुध देवता तिनके अरि शत्रु रावणादि जे दुष्ट संघात बहुन रहे तिन करिकै महि पृथ्वी को महाभार रहा ताको अपहरण कहे नाश करिबे हेतु भाव भूभार उतारि धर्म स्थापन सुर साधु गोविप्रादि रक्षाहेतु इत्यादि अवतार धरिबे को अनूप उपमारहित कारण है जाको अमल धवलयश ब्रह्माण्ड भरे में छाइ रहा है ऐसे अनवद्य दूषणरहित पुनः अछेन जाकी समता को दूसरा रूप नहीं है जो अपनी इच्छा ते निर्गुण अंतर्यामीरूपते सबमें व्यापक पुनः चतुर्व्यूह अवतारादि सगुणरूप धारण करते हो ऐसे परब्रह्म सोई नराकार भूप राजाधिराजरूप ताहि सुमिरामि सदा स्मरण करता हौं ८ श्रुति वेद शास्त्र संहिता पुराणादि पुनः शेष शारदा शम्भु महादेव नारद सनकादि यावत् आचार्य हैं ते सदा गुणन को गणत वर्णन करत तथापि तव चरित्रं आपके रूप नाम लीलादि चरित्रन को अन्त कोऊ नहीं पावत ऐसे जो परब्रह्म कामअरि शिवजी तिनके प्रिय इष्टदेव सोई अवधपति राम अयोध्या के महाराज श्रीरघुनाथजी कैसे हैं कि त्रासनिधि दुःखरूप जलको भरा जो भवसागर ताते वहित्र वाहर करनेवाले भवसागरते पार करनेवाले हैं ऐसे श्रीरघुनाथजी को तुलसीदास सदा सर्वदा स्मरण करत हैं ६॥

(५२) जानकीनाथ रघुनाथ रागादितमतरणि तारुण्यतनुतेजधामं।
सच्चिदानन्द आनन्दकन्दाकरं विश्वविश्राम रामाभिरामं १
नीलनववारिधर सुभगशुभ कान्तिकर पीनकौशेयवरवसनधारी।
रत्न हाटकजटित मुकुट मण्डित मौलि भानुशतसदृश उद्योतकारी २
श्रवणकुण्डलभालतिलकभ्रूरुचिरअतिअरुणअम्भोजलोचनविशालं।
वक्त्र अवलोकि त्रैलोक्यशोकापहं माररिपुहृदयमानसमरालं ३
नासिकाचारु सुकपोल द्विजवज्र द्युतिअधर बिम्बोपमा मधुरहासं।
कण्ठदर चिबुकवर वचनगम्भीरतर सत्यसंकल्प सुरत्रासनासं ४
सुमनसुविचित्रनवतुलसिकादलयुतं मृदुलवनमाल उरभ्राजमानं।
भ्रमत आमोदवश मत्तमधुकरनिकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं ५
सुभग श्रीवत्स केयूर कंकणहार किंकिणीरटनि कटितटरसालं।
वामदिशि जनकजासीनसिंहासनं कनकमृदुवल्लिमिव तरुतमालं ६
आजानुभुजदण्ड कोदण्डमण्डितवामबाहु दक्षिणपाणि बाणमेकं।
अखिलमुनिनिकर सुर सिद्ध गन्धर्व वर नमत नर नाग अवनिप अनेकं ७
अनघ अविच्छिन्न सर्वज्ञ सर्वेश खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं।
प्रणतजनखेदविच्छेदविद्यानिपुण नौमि श्रीराम सौमित्रि साकं ८

युगलपदपद्म सुखसद्म पद्मालयं चिह्नकुलिशादि शोभातिभारी।
हनुमन्तहृदिविमलकृतपरममन्दिरसदादासतुलसीशरणशोकहारी ६

टी०। जगकी रक्षा करनहारी क्षमावन्त ऐसी श्रीजानकीजी तिनके नाथ पुनः धर्म उदारता वीरतादि सब गुणनमय रघुवंश ताके नाथ ऐसे श्रीरघुनाथजी हैं जे रागादि तम किसीते प्रीति किसीते विरोध इत्यादि विषमता जीव में अंधकार है ताके नाशहेतु तारुण्य नवीन तेज के धाम मंदिर तरणि सूर्यरूप सच्चिदानन्द सत् शुद्ध चित् सदा चैतन्य आनंद समूह पुनः आनंद रूप जल वर्षिवे को कंदनाम मेघ ताके आकर खानि हौ पुनः हे राम, रघुनाथजी! आप कैसे हौ कि भवभ्रमित विश्व जो संसार जीव तिनके विश्राम थिरता अभिराम आनंददायक हौ १ नव वारिधर नवीन मेघ नीलरंग के तद्वत् सुभग सुंदर शुभ मंगलमय तनु की कांति ज्योति प्रकट करनेवाले हौ पीतरंग को कौशेय रेशमी वर उत्तम वसन धारण किहे हौ हाटक सोना तामें हीरादि रत्नजटित ऐसा मुकुट मौलिमण्डित शीशपर शोभित है जो शतभानु सदृश सौ सूर्यन की समान उद्योतकारी प्रकाश करनेवाला भाव मुकुट में अनेक सूर्यवत् प्रकाश है २ श्रवण कानन में मकराकृत कुंडल पुनः भाल माथे पर केशरि को तिलक भ्रू अति रुचिर भौंहैं अत्यंत सुंदरी हैं अरुण अंभोज लाले कमलसम विशाल लोचन बड़े लंबे सुंदर नेत्रहैं तासों वक्र अवलोकि तिरछी चितवनि त्रैलोक्य शोक दुःख अपहं नाशकर्ता भाव कृपाकटाक्ष ते तीनिउँ लोक जीवन को दुःख नाश करनहारेहौ पुनः माररिपु काम के शत्रु जो शिवजी तिनको हृदय अमल मानसर है तामें मराल हंसवत् सदा वास किहे हौ ३ चारु सुंदर शुकतुंड सरीखी नासिका सुंदर गोलकपोल वज्र द्युति द्विज हीरा की ऐसी चमक दांतन में बिम्बकुंदुरू फलकी उपमा है जाकी ऐसे अरुण अधर ओठ मधुर हसनि कंठ त्रिरेखायुत गोल चढ़ाउतार दर शंखसम चिबुक ठोढ़ी वर उत्तम बनी गंभीरतर अत्यंत गंभीर वचन गरू वचन सोऊ सत्यसंकल्प जो कहैं सोई करैं सोऊ सुरत्रासनाशं जामें देवतन को डर नाश होइ ऐसे सत्यसंकल्प वचन यथा निशिचर हीनकरौं महि इत्यादि भाव अनयरत जे तमोगुणी तिनको दंडकर्ता पुनः जे नीतिरत सतोगुणी हैं तिनके रक्षाकर्ता ऐसे सत्यसंकल्प गंभीर वचन ४ कुंद मंदार पारिजात कमल इत्यादि विचित्र सुमन फूल सुंदर तिनमें नव नवीन तुलसीदलयुत गुहा इत्यादि मृदुल कोमल वनमाला उर भ्राजमान छातीपर शोभा देरहा तापर सुगंध लेनेहित आमोद आनंद वशते निकर मधुकरसमूह भ्रमर भ्रमत घूमि घूमि उड़त अरु मधुरतर मुखर अत्यन्त मधुर शब्दते गानं कुर्वन्ति गान करि रहे हैं ५ सुभग सुंदर श्रीवत्सचिह्न अर्थात् पीत रोमनकी दहिनावर्त भँवरी वाम छातीपर शोभित भुज में केयूर जो बहूँटा सोहत करमूल में कंकण सोहत उरपर मणिन के सुंदर हार शोभित कटि तटमें किंकिणी रसालरस भरे शब्द रटनि बोलि रही है इत्यादि भूषण वसन सहित श्याम तनु श्रीरघुनाथजी तिनके वाम दिशि जनकजा श्रीजानकीजी इत्यादि गौरश्यामतनु सिंहासनपर आसीन बैठे कैसे शोभित होत यथा प्रभु श्यामतनु सोई तमाल को तरु वृक्ष है ताके समीप कनक मृदु वल्लिवत् सोने की कोमल लतासमान श्रीजानकीजी सोहती हैं ६ बलभरे पुष्ट

टिहुनी तक लंबे इति आजानु भुजदंड दोऊ हैं तहां वामबाहु में कोदंड मंडित धनुष शोभित है पुनः वामपाणि हाथ विषे एक बाण शोभित है अखिल समग्र मुनि निकरसुर बहुत देवता सिद्ध गन्धर्व वर जे उत्तम हैं नर भूतलवासी नाग पाताल-वासी अवनिप जे राजा अनेक ते सब नमत प्रणाम करते हैं जिस रूप को सदा ७ कैसा रूप है अनघ पापरहित सदा शुद्ध अविच्छिन्न क्षीणता हीनता करिकै विशेष रहित सर्वज्ञ सब वस्तु के जाननेवाले सर्वेश सब ईशन के ईश खलु नाम निश्चय करिकै सर्वतोभद्र सबके कल्याण करनहारे असमाकं कहे हम ऐसे निकामन को मनोरथदाता हौ काहेते प्रणतजन जे जन सभीत शरणागत आवने हैं तिनके खेद जो भय संकटादि मानसी दुःख हैं ताको विशेष छेद कहे नाशकरनहारी जो क्रिया है प्रणतपालता तामें निपुण प्रवीण हौ ऐसे जो श्रीरघुनाथजी हैं तिन्हैं सौमित्रि-सार्क लक्ष्मणजी सहित नमस्कार है ८ युगल पदपद्म जिनके दोऊ पदकमल कैसे हैं सुख के भरे सद्म मंदिर हैं काहेते पद्मा आलय हैं पद्मा जो लक्ष्मी तिनको बसिबे को आलय नाम मंदिरहैं तो जहां लक्ष्मीजी की बास तहां सब सुख सहजही वास करते हैं पुनः अत्यंत भारी है शोभा जिनमें ऐसे कुलिश वज्रआदिक अरनालिक्त चरणचिह्न हैं तिनके ध्यान को न्यारा न्यारा फल महारामायण में लिखा है यथा॥ वज्राद्वज्रसमुत्पन्नः पापौघान्विनिहन्ति यः। इत्यादि चिह्न सब सुखदायक हैं पुनः जे रामदासन के सदा रक्षक ऐसे जो हनुमान्‌जी को विमल हृदय ताको परम-उत्तम मंदिर करि तामें सदा वास करते हैं तिन चरणारविन्दन की शरणागत तुलसीदास हैं ताते मेरेभी शोक दुःखहारी हैं पद ६॥

(५३) कोशलाधीशजगदीशजगदेकहितअमितगुणविपुलविस्तारलीला गायन्तितवचरितसुपवित्रश्रुतिशेषशुक्रशंभुसनकादिमुनिमननशीला
वारिचर वपुषधर भक्तनिस्तारपर धरणिकृतनाव महिमातिगुर्वी। सकलयज्ञांशमय उग्रविग्रहक्रोड मर्दिदनुजेशउद्धरणउर्वी २
कमठअतिविकटतनु कठिनपृष्ठोपरी भ्रमत मन्दर कण्डुसुख मुरारी। प्रगटकृत अमृत गो इन्दिरा इन्दु वृन्दारकावृन्द आनन्दकारी ३
मनुज मुनि सिद्ध सुर नाग त्रासक दुष्ट दनुज द्विजधर्ममर्यादहर्ता। अतुलमृगराजवपुधरित विदरितअरि भक्तप्रह्लाद अह्लादकर्ता ४
छलनबलि कपटवटुरूपवामन ब्रह्म भुवनपर्यन्त पदतीनकरणं। चरणनखनीर त्रैलोकपावनपरम विबुधजननी दुसहशोकहरणं ५
क्षत्रियाधीशकरि निकरवरकेसरी परशुधर विप्रसासिजलदरूपं। बीसभुजदण्डदशशीशखण्डन चण्डवेगशायक नौमि रामभूपं ६
भूमिभरभारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूप धर भक्तहेतू। वृष्णिकुलकुमुदराकेश राधारमण कंसवंशाटवीधूमकेतू ७
प्रबलपाखण्डमहिमण्डलाकुलदेखि निन्द्यकृत अखिलमख कर्मजालं।

शुद्धबोधैक घनज्ञान गुणधाम अज बुद्धअवतार वन्दे कृपालं ८
कालकलिजनितमलमलिनमनसर्वनरमोहनिशिनिविडयवनान्धकारं।
विष्णुयशपुत्रकल्कीदिवाकरउदित दासतुलसी हरणविपतिभारं ६

टी०। हे कोशलाधीश, देव, अवधेश, महाराज! सब जगत् के ईश स्वामी जगत् एकहित जगत् भरे के हितकर्ता एक आपही हौ पुनः कृपा, दया, शील, करुणा, सुलभ, उदारतादि अमित अनेकन आपमें गुण हैं तथा विपुल विस्तार बहुत फैलाव लीला को है काहेते सुपवित्र तव चरित्र सुंदर लोक पवित्रकर्ता जो आपको चरित्र है नाम रूप गुण लीलादि को वर्णन ताको शेष, शुकदेव, शंभु, सनकादि मननशील मुनि इत्यादि सब गायंति नित गावते हैं पार नहीं पावते हैं १ वारिचर वपुषधर जलचर देह धारण किहेउ भाव मत्स्यरूप धारणकरि भक्तन को निस्तार प्रभाव पार करिबे के उपाय में आरूढ़ भयो अर्थात् प्रलयकाल में धरणि नावकृत पृथ्वी की नाव कीन्हेउ तापर सब प्रजा बैठारि अपनी आधार राखि प्रलयकाल भरि सबकी रक्षा कीन्हेउ ऐसी गुर्वी गरू महिमा बड़ाई आपकी है पुनः जब हिरण्याक्षने पृथ्वी हरा ताके उद्धार हेतु यज्ञके सकल अंशनमय उग्र विग्रह क्रोड़ भयानक देह वाराहरूपते दनुजन को ईश राजा जो हिरण्याक्ष ताको संग्राम में मर्दि मारिकै उर्वी उद्धरण पृथ्वीको उद्धार किहेउ स्वथल थापेउ २ जब दैत्यनकी प्रबलता ते देवता अबल भये पुनः दुर्वासाकी प्रौढ़ता पर कोप करि लक्ष्मीजी सिंधु में लोप भई तब पालन कौन करै लोकन में महाउत्पात भया तब ब्रह्मादि देव वैकुण्ठ में पुकारे भगवान् कहे कि सिंधु मथौ लक्ष्मी निसरैं तब पालन लोक को करैं पुनः अमृत निसरी सो पानकरि देवता बली होहुँगे इस हेतु भगवान् कच्छप भये तिन की पीठि पर धरि मंदराचलकी मथानीते देव दैत्य मिलि सिंधु मथने लगे ता समय अति विकट अत्यंत भयानक जो कमठतनु धरेउ ताकी पृष्ठ ऐसी कठिन कि जाके ऊपर मंदराचल को भ्रमन घूमना मुरारि भगवान् को कैसा सुखद लागत यथा कंडु कहे खाजु ताके खजुवावत में सुख होत ता समुद्रको मथिकै वृंदारकावृंद जो देवनको झुंड तिनको आनंद करनहारी अनेकन रत्न प्रकटकृत करतभयो यथा अमृत ताको पानकरि अमरभये गो कामधेनु जासों सब पदार्थ पाये इंदिरा लक्ष्मी सबको पालन कीन्ही इंदु चंद्रमा जो शिवको भालभूषण है इत्यादि सुखकारी ३ मनुज भूमिवासी सुर देवता स्वर्गवासी नाग पातालवासी मुनि सिद्धादि साधु इत्यादि सबको त्रासक दुःख देनहारा पुनः द्विज ब्राह्मण तिनके धर्म की जो मर्यादा सीवां ताको हरिलेनेवाला दुष्ट दनुज हिरण्यकशिपु जो प्रह्लादजी को महादुःख देता रहै तिनके रक्षाहित खंभफारि प्रकटेउ जामें बल तेज वीर्य प्रतापादि अतुल तौल संख्यारहित है ऐसा मृगराजवपु नृसिंहतनु धारणकरि अरि विदरि शत्रु हिरण्यकशिपु को उर फारि मारेउ अरु प्रह्लाद भक्त को आह्लाद आनंद करनहारे भयउ ४ राजा बलिको छलन हेतु परब्रह्म सोई छलकरि बटु ब्रह्मचारी बावनरूप ते तीनि पांव भूमि मांगि ब्रह्म को भुवन सत्यलोक वा ब्रह्मांड पर्यंत तीनिही पद करि नापि लीन्हेउ सो इंद्रादि को दै अभय कीन्हेउ ताते विबुध जननी देवनकी माता जो

अदिति तिनको दुसहशोक जो सहि न जाइ ऐसा दुःख अर्थात् पुत्रनकी राज्यछूटनादि विपत्ति ताके हर्ता हरणहारे भयउ भाव दितिके पुत्रनको सुखी कीन्हेउ नापत समय ब्रह्माजी पग धोइ लीन्हे इत्यादि चरण नखनको धोवन नीर जो श्रीगंगाजी भूतल में भगीरथ द्वारा प्रकटभई सो तीनिहूं लोकनको परमपावन करनहारी हैं ५ क्षत्रियाधीश क्षत्रिन में महाराज सहस्रबाहु आदि ते निकर करि समूह हाथी सम मदमाते रहे तिनके नाश हेतु वर केशरी उत्तम सिंह सम परशुधर परशुरामरूप धरि क्षत्रिनको नाशकरि पृथ्वी ब्राह्मणनको संकल्पि दीन्हेउ इति विप्र शशि ब्राह्मण अन्न से सूखते रहें क्षत्रिन की अनीति देखि तिनको जलद मेघरूप हैं सुधर्म जल वर्षि हरित कीन्हेउ पुनः दुष्ट रावण ऐसा बली जाके बीसभुज दंड बलभरे पुष्ट पुनः जाके दशशीश हैं तिनके खंडन भुज शीशादि काटन हेतु प्रचंड वेग है जिनमें ऐसे शायक बाण धारण करनेवाले राम भूप नौमि रघुनंदन महाराज को नमस्कार है नमस्कार को भाव सब अवतारन के अवतारी आप हौ ६ द्वापरांत अधिक पापवृद्धिते भूमि पाप भार करिकै भरिगई क्षत्रिय दैत्यनसम भये सो भार हरिवेहेतु परमातमा परब्रह्म सोई भक्तन के उद्धार अथवा सुख देवे हेतु नर मनुष्यरूप धारण करते भये कैसा नररूप कि वृष्णिकुल सोई है कुमुद कुही वन ताके प्रकाशकर्ता राकाईश पूर्णिमा को चंद्रसरीखे ऐसे राधा के रमण विहारकर्ता श्रीकृष्णचन्द्र जो कंसको वंश सोई अटवी नाम वन है ताके भस्म करिवे हेतु धूमकेतू नाम अग्नि समान है ७ यज्ञादि धर्म कर्म करि सबल परे असुर देवगण हारि गये तब भगवान् सों पुकार कीन्हे यथा सिद्धांत तत्त्वदीपिकायां ॥ चौ० ॥ यज्ञ करत असुरन बल बढ़्यो। सुरनहारि हरिको स्तव पढ़्यो ॥ तब प्रभु बुद्धरूप है सोहे । कहि पाखंड सुअसुर विमोहे ॥ जब यज्ञादिधर्म तजिदये। तब सब सुरन जीति ते लये ॥ इत्यादि जे वेद प्रतिकूल चलनेवाले पाखंडकर्मी ते जब वेद अनुकूल कर्मकरि पाखंडवाले बली भये इति पाखंड प्रबलपरा ताते सुर, नाग, नरादि महिमंडल आकुल पृथ्वीमंडल भरे के बासी सब विकल भये तिनको देखि करुणा आई ताते बौद्धरूप धरि मख यज्ञादि कर्मन के जालसमूह कर्मनको निंदकृत वेदकर्मन में हिंसादि दूषण दर्शाय निन्दा करि असुरन को छुँड़ाइ दीन्हे ऐसे शुद्धबोध में एकही हैं श्रेष्ठ सघन है ज्ञानगुणन के धाम मंदिर अज जन्मरहित ऐसे बुध अवतार कृपालं वंदे कृपामंदिर तिन्हें वंदना करत हौं ८ कलिकाल के प्रभाव ते जनित उत्पन्न मल जो पाप त्यहि करिकै मलीन भये मन कुमार्गी ताते सब नर मोहरूप निशि रात्री में अंध भये कैसी रात्री जामें यवन म्लेच्छादि निविड सघन अंधकार है ताके नाश हेतु संभल देशमें देवशर्मा विप्र की पुत्री विषे विष्णुयश के पुत्र कल्की अवतार धरि दिवाकर उदित सूर्यन सम उदय है म्लेच्छादि अंधकार नाश करैंगे इत्यादि यथा सदा रक्षा करतरहेउ तथा तुलसीदास को कलिकृत विपत्ति है ताके हरणहार होहु मेरी रक्षा करौ ९ ॥

(५४) सकलसौभाग्यप्रद सर्वतोभद्रनिधि सर्व सर्वेश सर्वाभिरामं। शर्वहृदिकंजमकरन्दमधुकर रुचिररूप भूपालमणि नौमि रामं १ सर्वसुखधाम गुणग्राम विश्रामपद नामसर्वासपदमतिपुनीतं।

निर्मलं शान्त सुविशुद्ध बोधायतन क्रोधमदहरण करुणानिकेतं २
अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।
प्राकृतं प्रगट परमातमा परमहित प्रेरकानन्त वन्दे तुरीयं ३
भूधरं सुन्दरं श्रीवरं मदनमदमथन सौन्दर्यसीमातिरम्यं।
दुष्प्राप्य दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर्क दुष्पार संसारहर सुलभ मृदुभावगम्यं ४
सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदापुष्ट सन्तुष्ट संकष्टहारी।
धर्मवर्मणि ब्रह्मकर्मबोधैक विप्रपूज्य ब्रह्मण्यजनप्रिय मुरारी ५
नित्य निर्मम नित्यमुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानन्दमूलं।
सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गूढार्चि भक्तानुकूलं ६
सिद्धिसाधकसाध्य वाच्यवाचकरूप मन्त्रजापकजाप्य सृष्टिस्रष्टा।
परमकारण कञ्जनाभ जलदाभतनु सगुण निर्गुण सकलदृश्यद्रष्टा ७
व्योमव्यापक विरज ब्रह्मवर देशवैकुण्ठ वामन विमल ब्रह्मचारी।
सिद्धवृन्दारकावृन्दवन्दित सदा खण्डि पाखण्डनिर्मूलकारी ८
पूर्णानन्दसन्दोह अपहरणसम्मोह अज्ञानगुणसन्निपातं।
वचनमनकर्मगतशरण तुलसीदास त्रास पाथोधि इव कुम्भजातं ९

टी०। अब परात्पर साकेतविहारी रामरूपके गुण गावत यथा हे रघुनाथजी! कैसेहौ आप सकल जीवनको सौभाग्यप्रद सुकृति का फल जो सुंदर भाग्य सो देनहारेहौ पुनः सर्वतोभद्र सब प्रकारकी जो कल्याण ताके निधि भरे स्थान हौ पुनः सर्व जो चराचर ताके अरु सर्व ईशनके ईश सर्वेश हौ सर्वजीवमात्रके अभिराम आनंददायक हौ शर्व जो शिवजी तिनको हृदि कंज हृदयरूप जो कमल तामें अनुरागरूप जो मकरंद रस है तामें लुब्ध मधुकर भ्रमर सम वास किहेहौ सोई माधुर्यमें भूपालमणि राजनमें शिरोमणि ऐसा रुचिर सुंदररूप जो श्रीरघुनाथजी तिन्हिं नौमि नमस्कार करताहौं १ लोक परलोकादि सर्वसुखनको प्राप्त करनहारा आपको धाम श्रीअयोध्याजी है कृपा, दया, शील, करुणा, उदारतादि गुणनको धाम कथा सो श्रवणमात्र विश्रामप्रद भवभ्रमित जीवनको थिरसुखदायक है पुनः अतिपुनीतं नाम सर्वआस्पदं अत्यंतपवित्र जो आपको राम ऐसा नाम है सो सर्वसाधन सिद्धादि पदार्थनको आस्पद मंदिर है पुनः आपको रूप कैसा है कि निर्मलं मलरहित अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादि इंद्रिनको विषय पुनः काम क्रोध लोभादि मलते अंतर अमल पुनः शौचादिते बाह्य अमल पुनः शांत सुंदर शांत अर्थात् रज तमादि गुण राग द्वेषरहित सुलभ शुद्ध स्वभावते समता दृष्टि सबपै एकरस राखते हौ तामें सुंदरता यह कि जो जौने भावते सन्मुख होत ताको तैसही प्राप्त होते हौ पुनः विशुद्ध विशेष शुद्ध बोध जो ज्ञान ताके आयतन मंदिर भाव अखंड ज्ञानरूप हौ पुनः करुणागुण के निकेत मंदिर ऐसेहौ कि सेवकनके दुःखदायक जो क्रोध मदादि तिनको हरणहारे सहजहीं सब विकार नाश

करिदेते हौ २ पुनः कैसेहौ अजित काहूके जीतवे योग्य नहीं हौ पुनः निरुपाधि उपाधि धर्मचिंता त्यहि करिकै रहित गोतीत इन्द्रिन करिकै नहीं प्राप्त हौ अव्यक्त प्रकट नहीं हौ, अनवद्यं अजं अद्वितीयं एकं विभुं अनवद्य कहे दूषणरहित अज कहे जन्मरहित अद्वितीय कहे समताको दूसरा रूप नहीं है ताते आप एकही विभु नाम समर्थ हौ कैसे समर्थ हौ सबके प्रेरक पुनः अनंत जाको अंत कोऊ नहीं पावत ऐसे परमात्मा सोई सब जीवनके परमहित सुलभ उद्धार करिवे हेतु राजकुमाररूपते प्राकृत मंडल में प्रकट भयो दर्शमात्र सब जीवनको कृतार्थ करते हौ ऐसे तुरीयरूप सहज कृपालु को मैं वंदना करतहौं ३ कैसे प्रकटभयो कि भूधरं श्रीवरं सुंदरं भू जो पृथ्वी ताको धरणहारे शेष पुनः श्रीजानकीजी तिनके वर श्रीरघुनाथजी अर्थात् शेष लक्ष्मण सुंदररूप पुनः श्रीजानकीजी सुंदरताकी सीमा मर्यादा हैं पुनः श्रीरघुनाथजी अतिरम्य अत्यंत सुंदररूपते प्रकटभये जो अपनी शोभा करिकै मदनकी सुंदरता को जो मद रहा कि मैं बहुत सुंदर हौं तिस मदको मथन तोरिडारे ऐसे सुंदर तीनिहूं रूपते प्रकटभये माधुर्य में पुनः ऐश्वर्यधाम कैसा है दुष्प्राप्य बड़े दुःख करिकै आपके धामकी प्राप्ती होतीहै ताको प्रभाव कैसाहै संसारहर जन्म मरणादि जो संसारदुःख ताको हरिलेनहारा है यथा॥ अवध तजे तन नहिं संसारा। पुनः गुणग्रामलीला कैसा है दुष्प्रेक्ष्य प्रेक्ष नाम बुद्धि तिस बुद्धि करिकै लीला जानिवो दुर्घट है पुनः श्रवण कीर्तन करिवेको सुलभ हैं पुनः नाम कैसा है दुस्तर्क्य जाके प्रभाव को कोऊ तर्कि जावा चहै तौ दुर्घट है पुनः उच्चारणकरिवेमें मृदु कोमल सबसों उच्चारण बनत पुनः रूप कैसा है अपार जाकी महिमाको कोऊ पार नहीं पाइसकत सो भावगम्य है प्रीति करि प्राप्त होत ४ हे प्रभो! आप सत्यव्रत धारण किहेहौ ताते सत्यमें रत सत्यही आचरणमें लगेरहतेहौ इसहेतु सत्यकृत जो कछु कहतेहौ सो सत्यही करते हौ सदा पुनः पुष्ट करिकै संतुष्ट हौ दृढ़ करिकै पूर्णकाम हौ पुनः शरणागतनके संपूर्ण प्रकारके कष्ट हरिलेतेहौ पुनः धर्मरूप वर्मणि कवच धारण किहेहौ पुनः ब्रह्मबोधक जो वेदांत अरु कर्मबोधक मीमांसा तिन दोऊ के बोधमें एक आपही हौ समताको दूसरा नहीं है पुनः द्विजपूज्य आप ब्राह्मणन करिकै पूज्य हौ पुनः आप ब्रह्मण्यदेव हौ ब्राह्मणनको बड़ाकरि मानते हौ पुनः अपने जन सदा प्रिय हैं पुनः मुरआदि दैत्यनके अरि शत्रु नाशकर्ता हौ भाव संतनके विरोधी असुरनको नाश करतेहौ ५ नित्य सदा एकरसरूप हौ निर्मम ममतारहित हौ पुनः नित्यमुक्त माया बंधनरहित हौ पुनः निर्माण अपनी महिमापर चित्त उन्नत नहीं करतेहौ यथा भृगुचरणप्रहार प्रसिद्ध है हे हरि! आपमें ज्ञानघन परिपूर्ण अखंडज्ञान है पुनः सत् त्रिकाल एकरस चित् सदा चैतन्य आनंद सदा सुखरूप इति सच्चिदानंद सबके मूल आदिकारण हौ पुनः सबके रक्षा करनहारे सर्वभक्षक संहारकर्ता काल यम शिवादि यावत् हैं तिनके अध्यक्ष स्वामी हौ पुनः कूटस्थ चराचर में गुप्त बसेहौ कैसे गूढ़अर्चि गुप्तप्रकाशरूप हौ पुनः भक्तनपै अनुकूल सदा प्रसन्न रहतेहौ ताते सुलभ प्राप्त होतेहौ ६ ज्ञानदेश में साध्य ब्रह्मसाधक मुमुक्षु सिद्धब्रह्मकी प्राप्ती कर्मदेशमें साध्य त्रिदेवादि साधक, यज्ञादि कर्मकर्ता सिद्धफलप्राप्ती उपासना में साध्य ईश्वर साधकभक्त सिद्ध भक्ति प्राप्ती

पुनः वाच्य जो साधक तीनौ कहि आये तिनके न्यारे न्यारे वाचक हैं कर्मिनके वाचक यथा स्वर्गादिफलप्राप्तिकामनया यज्ञादिकर्ममहं करिष्ये ॥ पुनः ज्ञानीवाचक यथा गीतायाम् ॥ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः ॥ भक्तनको वाचक सनत्कुमारसंहितायाम् ॥ राजाधिराजरघुनन्दन रामभद्र दासोहमद्य भवतः शरणागतोस्मि ॥ पुनः कर्मी जापकनके मंत्र प्रणवादि-देवनाम चतुर्थ्यंतज्ञानी जापकनको मंत्र सोहं हंसः उपासकन के मंत्र षडक्षरादि कर्म में जाप्यदेवादि ज्ञान में जाप्य ब्रह्मभक्तन के जाप्य ईश्वर इत्यादि सब आप ही को रूप है भाव विना आपुके प्रकाश कछु ह्वै नहीं सक्ता है काहेते सृष्टि जो सं-सार रचना स्रष्टा उपजावनहार सब आपही हौ काहेते कंजनाभ कमल उत्पन्नभया जिनकी नाभिते जलद आभ मेघसरीखे आभा श्यामतनु है जाको अर्थात् चतु-र्भुज रूप इत्यादि यावत् भगवत् रूप सगुण है पुनः निर्गुण जो सबमें व्यापक ब्रह्म पुनः दृश्य यावत् वस्तु देखि परती है त्यहि सकल के द्रष्टा देखनहार अरु सबके परमकारणरूप आपही हौ ७ निर्गुण कैसा व्योम आकाशवत् जो सबमें व्यापक विरज रजोगुणादि रहित ऐसा जो ब्रह्म है पुनः सगुण कैसे जिनके बसिबे को वर उत्तम देश है यथा वैकुण्ठ क्षीरसागर श्वेतद्वीपादि जिनमें नारायण चतुर्भुज बसते हैं पुनः विमल ब्रह्मचारी वामनरूप पुनः जे पाखंडमत को खंडि निर्मूलकारी जरते काटनेवाले बौद्ध इत्यादि यावत् सगुणरूपते सब पुनः सिद्धजन वृन्दारका देवतन के वृन्द इत्यादि सब सो आपुको वन्दना करते हैं ८ सगुण निर्गुण देवादि सब जिन को वन्दत ऐसे परात्पर परब्रह्म साकेतविहारी पूर्ण आनंदसंदोह समूह इत्यादि सर्वोपरि समर्थ जानि मैं तुलसीदास मन वचन कर्मन करिकै आपकी शरणागत हौं किस हेतु कि संपूर्ण प्रकार को जो मोह पुनः काम क्रोध लोभादि अज्ञान के गुण करिकै जो सन्निपात है ताके अपहरण निश्चय नाश करिबे हेतु तहां मेरी त्रास डर पाथोधि इव सिन्धु सम है ताको शोषिबे को आपु अगस्त्य सम हौ ९ ॥

(५५) विश्वविख्यात विश्वेश विश्वायतन विश्वमर्याद व्यालारिगामी।
ब्रह्म वरदेश वागीश व्यापक विमल विपुलबलवान निर्वाणस्वामी १
प्रकृति महत्तत्त्व शब्दादि गुण देवता व्योम मरुदग्नि अमलाम्बु उर्वी।
बुद्धि मन इन्द्रिय प्राण चित्तातमा काल परमाणु चिच्छक्ति गुर्वी २
सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमणि व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्णो।
भुवन भवदंग कामारिवन्दितपदद्वन्द्व मन्दाकिनीजनक जिष्णो ३
आदि मध्यान्त भगवन्त त्वं सर्वगतमीश पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी।
यथा पटतन्तु घटमृत्तिका सर्पस्रग दारुकरि कनककटकांगदादी ४
गूढ गम्भीर गर्वघ्न गूढार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता।
ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुरगरिमागार घोरसंसारकर पारदाता ५
सत्यसंकल्प अतिकल्प कल्पान्तकृत कल्पनातीत अहितल्पवासी।
वनजलोचन वनजनाभ वनदाभवपु वनचरध्वजकोटिलावण्यरासी ६

सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्गदुर्धर्ष दुर्गार्तिहर्ता।
वेदगर्भार्भकादभ्रगुणगर्व अर्वागपर गर्व निर्वापकर्ता ७
भक्तअनुकूल भवशूल निर्मूलकर तूलअघनामपावकसमानं।
तरलतृष्णातमीतरणि धरणीधर शरणभयहरण करुणानिधानं ८
बहुलवन्दारु वृन्दारकावृन्दपदद्वन्द्व मन्दारमालोरधारी।
पाहि मामीश संतापसंकुल सदा दासतुलसी प्रणत रावणारी ९

टी०। जब जलंधर रावण भया ताके वधहेतु जब वैकुण्ठवासी राम रूप धरे तारूप के गुण गावते हैं यथा विश्वविख्यात संसार भरे में आपको नाम प्रसिद्ध है काहेते विश्वके ईश संसार के पालनकर्ता स्वामी हौ पुनः विश्वआयतन सब संसारै आपुको मंदिर है भाव सर्वत्र वास किहे हौ पुनः वर्णाश्रमादि स्वधर्म पर चलनादि जो विश्वकी मर्याद ताके रक्षक पुनः व्याल अरि सर्पन के शत्रु जो गरुड़ तापर चढ़ि गामी चलनेवाले भाव गरुड़गामी करि विख्यात हौ पुनः वरदईश वर देनहारे ब्रह्मा शिवादि तिनके ईश स्वामी हौ पुनः वाक जो परा पश्यंती मध्यमा वैखरी आदि वाणी ताके ईश स्वामी हौ भाव आपकी प्रेरणाते सब बोलिसकते हैं पुनः कामादि मलरहित सदा विमल ऐसे व्यापक ब्रह्म हौ पुनः विपुल बड़े बलवान् हौ भाव कैसहू दुर्घट कार्य करी श्रम नहीं होती है पुनः निर्वाण मुक्ति के स्वामी हौ भाव आपही के कृपा कीन्हेते जीव मुक्त होते हैं १ आदि प्रकृति जो कारणमाया जामें परि भगवत् अंश आत्मदृष्टि भूलि जीव भयो पुनः महातत्त्व अर्थात् जीवमें बुद्धि भई पुनः त्रिगुणात्म अहंकार भयउ तामें तमोगुणी अहंकारते शब्दादि इन्द्रियन की विषय भई सतोगुणी अहंकारते इन्द्रियनके देवता भये राजसी अहंकारते इन्द्रियां भई यथा श्रवण इन्द्रिय के आकाश देवता शब्दविषय त्वचाके पवन देव स्पर्श विषय नेत्र के सूर्यदेवरूप विषय रसना के वरुणदेव रसविषय नासिका के अश्विनीकुमारदेव गन्ध विषय इति ज्ञानेन्द्रिय पुनः पगके यज्ञ विष्णु देव चलन विषय गुदा के यमराज देव मलत्याग विषय लिंग के प्रजापति देव मैथुन विषय मुखके अग्नि देव भक्षणविषय हाथके इन्द्र देव व्यवहारविषय पुनः व्योम जो आकाश मरुत् जो पवन अग्नि अमल अंबु जो जल उर्वी पृथ्वी इति पांच तत्त्वनते ब्रह्मांड रचना है पुनः चित्तकी वृत्ति बुद्धि में अहंकार की वृत्ति मन में इति चारिउ जीव के अंतष्करण है जाकी दिशि जीव आवत ताही अनुकूल व्यापार करत तहां छः छःप्रकार अंश चारिहु में हैं यथा जिज्ञासापंचके ॥ योगो विरागः स्मरणं ज्ञानविज्ञानमेव च। उच्चाटनं तथा ज्ञेयं चित्तस्यांशानि षड् यथा ॥ जपो यज्ञस्तपस्त्याग आचारोध्ययनं तथा। बुद्धेश्चैवं षडंगानि ज्ञातव्यानि मुमुक्षुभिः। कर्माकर्मविकर्मादावनियमेन वर्तते ॥ संकल्पश्च विकल्पश्च मनसो बहुशो यथा। मानः क्रोधश्च ईर्षा च पारुष्यमुपहिंसनम्। दृढवैराग्यहंकारे वर्तन्ते लक्षणानि षट् ॥ पुनः श्रवणादि दशइंद्री पंच प्राणवायु अंतरवास यथा प्रान हृदय में अपान गुदा में समान नाभी में पुनः उदान कंठ में तथा व्यान सर्व शरीर में पुनः आत्मा भगवत् को शुद्ध अंश जाते सब शरीर चैतन्य है पुनः काल यथा तिथि,

वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न, पला, दंड, पक्ष, मास, वर्ष, युग, कल्पादि तामें परमाणु जो अत्यंत सूक्ष्मकाल जो मन्दिरांतर झरोखे रवि किरण में रजकण चमकती है तेतनी चितशक्ति चैतन्यशक्ति आपकी सबमें व्यापक है ताही के प्रभावते देह इंद्री आदि सबकी गुर्वी गरोई है भाव उसीते सबकी चैतन्यता है २ सर्वएव अत्र सर्व कहे सब चराचर जाकी चैतन्यताते चैतन्य हैं सोई सर्वमयरूप एव कहे निश्चय करिकै अत्र कहे इहां प्रकृतिमंडल में भूपालमणि तद्रूप व्यक्त भूपाल राजा तिनमें शिरोमणि जो श्रीरघुनाथजी तिनके रूपके तद्रूप अर्थात् द्विभुज धनुधारी श्यामसुंदर राजकुमाररूपते व्यक्तं नाम प्रकट भयउ पूर्व हौ कैसे अव्यक्त गत भेद विष्णो अव्यक्त जो नहीं प्रकट है अर्थात् अगुणरूप तासों भेदगत नहीं है भेद जिन ते ऐसे विष्णु चतुर्भुज कैसे हौ आपु यावत् भुवन हैं ते सब भवत आपके अंग हैं यथा ॥ पद पाताल शीश अजधामा ॥ इत्यादि पुनः हे जिष्णो! सबको जीतनहार मंदाकिनी जनकपिता गंगाजी को उपजावनहारे द्वंद्व दोऊपद आपुके कामारि शिवजी करिकै वंदित है ३ आदि उत्पत्तिसमय मध्य पालनसमय अंत नाशसमय इत्यादि सब समय भगवत् तत्त्व सर्व वस्तुमें गत नाम व्याप्त है अर्थात् देखावमात्र चराचर अनेकरूपहै परंतु विचार कीन्हेते सब रूप देखनमात्र सब नाम कहनेमात्रहैं सब में सारांश एक ईश्वरै है इति सबमें ईशरूप को जे ब्रह्मवादी वेदतत्त्व जाननेवाले ते पश्यंति नाम देखते हैं कैसे सबमें सारांश ईश्वररूप देखते हैं यथा पट वसनादि नाम कहनेमात्र परंतु वामें तंतु जो सूत सोई सारांश है यथा घट कुंभादि नाम कहनेमात्र तामें मृत्तिका माटी सारांश है यथा दारुकरि काठे को हाथी तहां हाथी देखावमात्र सारांश काठै है यथा कनक सोना ताके कटक कड़ा अंगद बजुल्ला इत्यादि भूषण नाम कहनेमात्र सारांश सोनै है इत्यादि यथा सर्प सांचा ताकी सचाई ते सब संसारी सांचा देखात यथा सर्प सांचा ताकी भ्रमते स्रग दाम माला रस्सी आदि अँधेरे सर्पही सरीखे भासत सो भ्रमैमात्र है ऐसेही संसारव्यवहार भ्रमैमात्र सारांश एक ईश्वरै है ४ कैसे सारांश हौ गूढ़ चराचर में गुप्त हौ स्वाभाविक नहीं मिलिसक्केहौ पुनः ज्ञान बुद्धि सत्त्वादि करि गंभीर हौ आपुकी आशय कोई नहीं जानि पावत पुनः गर्वघ्न गर्विनको गर्व नाश करिदेतेहौ पुनः वचन कर्मन में जो गूढ़ अर्थ ताके वितनाम ज्ञाता हौ भाव कैसहू मीठी सुंदर बनाइकै कहै अरु वाके अंतरभाव भला न होइ तौ भलाकरि न मानौ यथा शूर्पणखा के वचन पुनः जो अंतरभाव भला होइ अरु कहते बिगरिजाइ ताको भला मानते हौ यथा केवट के वचन पुनः सबमें कैसे गुप्त हौ गोतीत इंद्रिन करिकै नहीं प्राप्त होते हौ ज्ञान ज्ञात ज्ञानको जाननेवाले यावत् हैं तिन सबके गुरु हौ ज्ञेय ज्ञान ज्ञान जाननेवाले तेई हैं आपको प्रिय है प्रचुर बहुत गरिमागार गरिमा जो श्रेष्ठता त्यहिके भरे आगार नाम मंदिरै हौ घोर भयंकर जो संसाररूप समुद्र ताके पारदाता हौ उसपार करिदेनवाले हौ ५ आपकी संकल्प सत्य है जो कछु कहते हौ सोई करते हौ जब ब्रह्मा मरते हैं ताको महाकल्प कही पुनः ब्रह्माको एकदिन बीते ताको कल्प कही तिनको अंतकृत प्रलयकर्ता हौ भाव आपकी आज्ञा बिना प्रलय नहीं है सक्ती है पुनः कल्पना जो तर्कना त्यहिते अतीत नाम परे हौ भाव आपमें कोऊ तर्कना नहीं

करिसक्ता है पुनः अहितल्प शेषनाग शय्यापर वास किहे हौ वनजलोचन कमल सरीखे नेत्र कृपारस भरेहैं कमल भया उत्पन्न आपकी नाभीते वनद आभवन जल ताके देनहारे मेघ तद्वत् आभवपु शोभा है श्यामतन में वनचर मकर सोई है ध्वजा में जाके अर्थात् कामदेव ताके कोटिन गुण अधिक लावण्य जो शोभा ताकी राशि ढेरी हौ भाव समूह शोभा है ६ साधुनके हेतु सुकर रक्षादि सुखद कर्म करै वाले हौ यथा प्रह्लाद हेतु पुनः दुष्टनहेतु दुष्करवधादि दुःखद कर्म करनेवाले हौ यथा हिरण्यकशिपु हेतु पुनः दुर आराध्य दुःख करिकै आपकी आराधना सेवा-प्राप्ति होतीहै भाव अनेकन सत्कर्म करि जब शुद्ध होत तब आपकी सेवायोग्य होत पुनः दुर्व्यसन हर मृगया मदपान परस्त्री युवादि जो दुर्व्यसन दुष्ट आचरण हैं तिनको हरिलेनहार हौ दुर्ग कहे दुर्घट हौ आपकी गति सुगम नहीं है दुर्द्धर्ष दुःखौ करि कोऊ धर्षना अनादर को नहीं कोऊ करि सक्ता है दुर्ग कठिन आर्ति जो दुःख ताको हरिलेनहारे भाव नाम लेतही यमसांसति छुड़ाइ देतेहौ वेदगर्भ जो ब्रह्मा तिनके अर्भकबालक जो सनकादि तिनको आपनी ब्रह्मविद्यादि गुणको अदभ्र कहें बड़ाभारी गर्व रहा ताको अर्वाक नाम पूर्ववचन जो सनकादि प्रश्न कीन्हे ताही पर तर्कना करिकै निर्वाप नाम नाशकर्ता भयउ तुरतही गर्व तोरि डारेउ अर्थात् एकसमय ब्रह्माजी सों सनकादि प्रश्न कीन्हे कि आत्मचैतन्य पुनः त्रिगुणात्म कारण माया दोऊ जब एकमें मिले हैं ताते पंचभौतिक तनमें अभिमानी जीव कार्य मायावश इंद्री विषय सुखमें मग्न है तौ जो पूर्व चैतन्य दशा में विषय सुख अधिक मानि ताकी चाहते माया में मिलि देहाभिमानी भया तौ जब विषय सुख में मग्न अज्ञदशा में है तब कैसे ज्ञानकरि आत्मरूप विषयसुख त्यागि माया ते भिन्न ह्वैसक्ताहै इस सूक्ष्म प्रश्न को उत्तर ब्रह्माजी सों न बना तब सनकादिके ज्ञान गुणको गर्व भया तब ब्रह्माजी उदास ह्वै भगवान् को सुमिरे तब हंस अवतार धरि आये भाव नीर क्षीर एकमें मिला होत तामें हम पक्षी है क्षीर ग्रहण करि नीर त्यागि देते हैं तैसेही परमहंस आत्मरूप ग्रहण करि देहभाव त्याग करते हैं यह भाव दर्शाइबे को हंसरूपते आये तिनको देखि सनकादिक पूछे कि आप कौन हैं तब भगवान् बोले कि तुम वृथाही ज्ञानको गर्व किहे हौ अरु हौ महाअज्ञानी काहेते जो आत्मरूप पर दृष्टि करौ तौ चराचर में आत्मा एकही है पुनः जो देहपर दृष्टि करौ तौ सबै देहैं पांचै तत्त्वनकी हैं तहां जो कहतेहौ कि तुम कौन हौ यही तुम्हारी अज्ञानता है काहेते जो सोनेके भूषण बनते हैं तहां कंकण कुंडलादि नाम अल्प-काली वृथाही कहना है आदि मध्यान्त सोना नाम सांचा है ताको त्यागि तुमने कंकणादि यावत् देह के नाम सत्य मानि पूछा यही तुम्हारी अज्ञानता है पुनः ब्रह्माजीते जो तुमने प्रश्न किया कि जो आत्म चैतन्यदशा में विषय सुखहेतु माया में मिला तौ अज्ञदशा में कैसे आत्मा माया ते भिन्न ह्वै सक्ता है यह प्रश्नै तुम्हारा वृथा है काहेते मिलि जाना तौ उसको कहिये जो कबहूं भिन्न न ह्वैसके इहां आत्मा चैतन्य अरु माया जड़ दोऊ कैसे मिलिसक्ते हैं यथा नीर क्षीर मिलाइकै ल्यावउ हम क्षीर भिन्न करिदेई तब मिलना कैसे सांचा है तथा तुम्हारीसी अज्ञानदृष्टिते आत्मा माया में मिला देखाताहै जब ज्ञानदृष्टिते देखो तौ सदा चैतन्य आत्मा

माया ते भिन्न है ताते अज्ञानदृष्टिते मिलना देखात ज्ञानदृष्टिते नहीं मिला है ७ भक्तनपर सदा अनुकूल प्रसन्न रहते हौ ताते भव की शूल पीरा जन्म मरणादि ताको निर्मूल कर्ताहौ जरते मिटाइदेते हौ काहेते भवशूल की मूल हैं पाप सो अघ पाप तूल रुईसम करि ताको भस्म करिबेहेतु आपको नाम पावक अग्नि की समान है अनेक जन्मनके संचित पाप क्षणमें भस्म करिदेताहै तरल चंचल तृष्णा विषय सुख की प्यास सोई तमी रात्री है ताको नाश करिबेको तरणि सूर्यसम हौ हे धरणिधर, पृथ्वी को धारण करनहार ! शरणागतनके जो भय डर हैं ताको हरिलेनहारे आप करुणानिधान हौ भाव सेवकनको दुःख देखि आपहू दुःखितहै शीघ्रही सेवकको दुःख हरिलेतेहौ यही करुणागुणको लक्षण है तिस करुणाके भरे स्थान हौ ८ पुनः वृंदारक जो देवता तिनके वृंद झुंड सोऊ बहुल यथा इंद्रादि उत्तम देववृंद कुबेरादि यक्ष तथा किन्नर चारण गन्धर्वादि बहुतवृंदन करिकै द्वंद्व दोऊपद वंदारु कहे वंदना करिबे योग्य हैं पुनः कल्पवृक्षको भेद जो मंदार ताके फूलनकी माला उरमें धारण किहेहौ हे रावणारि ! अनयरत जो रावण ताके नाशकर्ता हौ तथा मेरी प्रार्थना है कि महाअनयरत जो कलियुग ताके कोपते संपूर्ण प्रकारकी तापन करिकै संकुल परिपूर्ण संतापभरा मैं जो तुलसीदास सो प्रणत आपकी शरणागत हौं हे ईश ! मां पाहि मेरी रक्षा कीजिये ९ ॥

(५६) संतसंतापहर विश्वविश्रामकर राम कामारिअभिरामकारी।
शुद्धबोधायतन सच्चिदानन्दघन सज्जनानन्दवर्धन खरारी १
शीलसमनाभवन विषमतामतिशमन राम रमारमन रावणारी।
खड्ग कर चर्मवर वर्मधर रुचिर कटितूण शर शक्ति शारंग धारी २
सत्यसन्धान निर्वाणप्रद सर्वहित सर्व गुण ज्ञान विज्ञानशाली।
सघनतमघोर संसारभरशर्वरी नाम दिवसेश खरकिरणमाली ३
तपनतीक्षण तरुण तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी।
मानमदमदन मत्सरमनोरथमथन मोहअम्भोधिमन्दर मनस्वी ४
वेदविख्यात वरदेश वामन विरज विमल वागीश वैकुण्ठस्वामी।
कामक्रोधादिमर्दन विवर्धनक्षमा शांतविग्रह विहगराजगामी ५
परमपावन पापपुञ्जमुञ्जाटवी अनलमिव निमिष निर्मूलकर्ता।
भुवनभूषण दूषणारि भुवनेश भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवनभर्ता ६
अमल अविचल अकल सकल संतसकलिविकलताभञ्जनानन्दरासी।
उरगनायकशयन तरुणपङ्कजनयन क्षीरसागरअयन सर्ववासी ७
सिद्धकविकोविदानन्ददायक पदद्वन्द्व मन्दात्ममनुजैर्दुरापं।
यत्र संभूत अतिपूतजल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं ८
नित्यनिर्मुक्त संयुक्तगुण निर्गुणानन्त भगवन्त नियामक नियंता।
विश्वपोषणभरण विश्वकारणकरण शरणतुलसीदासत्रासहंता ९

टी०। हे श्रीरघुनाथजी ! आप संत के संतापहर संपूर्ण प्रकार की तापन के हरणहार हौ पुनः विश्व जो संसार भवभ्रमित जीव तिनको विश्रामकर थिर सुखदायक हौ पुनः काम के अरि शत्रु जो श्रीशिवजी तिनको अभिरामकारी आनंद करनहारे हौ शुद्ध बोध अमल ज्ञान ताके आयतन नाम मंदिरहौ सत् सदा एकरस चित सदा चैतन्य आनंदघन सुखसमूह इति सच्चिदानंदघन सज्जननके आनंद-वर्धन सुख बढ़ावनहार हौ पुनः खरादि दुष्टन के अरि शत्रु हौ १ शील यथा ॥ दोहा ॥ हीनो दीन मलीन खल घिन आवै ज्यहि देखि। सबन आदरै मानदै गुण सौशील्य विशेखि ॥ इति शील पुनः जीवमात्र पर एकदृष्टि राखना ताको समता कही इति शील समताभरे भवन मंदिरे हौ पुनः किसीते प्रीति किसीते बैर इत्यादि जो मति बुद्धि की विषमता ताको शमन नाशकर्ता हौ ऐसे रमारमण लक्ष्मीनाथ सोई रामरूप है रावण के अरि शत्रु अर्थात् जब जलंधर रावण भया ताको नाश कीन्हेउ कैसे वीरतारूप ते कि खड्गकर तरवारि हाथ में पुनः चर्म ढाल वर उत्तम वर्मी पुनः वर्मधर कवच धारण किहे रुचिर तूण कटि सुंदर तरकस कटि में शोभित शक्ति सांग शर वाण शार्ङ्ग धनुष धारण किहे हौ २ पुनः सत्यसंधान सत्य-प्रतिज्ञा जो कहौ सोई करौ निर्वाणप्रद मोक्ष देनेवाले सर्वत्रराचर के हितकर्ता अनहित किसीके नहीं हौ काहेते अनहित तो अज्ञानतते होत अरु आपुतौ ज्ञान विज्ञानादि सर्व उत्तम गुणन के भरे शाली मंदिरै हौ पुनः मोहादि सघनतम महाअंधकार जामें अपना रूप नहीं सूझत पुनः घोर भयानक जाके देखत डर लागत ऐसा तम जामें भरा है ऐसी संसाररूप शर्वरी नाम रात्रि है ताके नाश करिबे हेतु आपको नाम कैसा है कि दिवसेश दिनको ईश स्वामी अर्थात् सूर्य कैसे सूर्य खर किरण माली खर तीक्ष्ण किरणन को माला समूहता धारण कीन्हे ऐसे किरणमाली भाव ग्रीषम के सूर्यवत् ३ तपन तीक्ष्ण तीक्ष्ण नाम अत्यंत गरम है तपन जाकी पुनः तरुण नित नवीन तीव्र नाम अत्यंत करिके ताप अर्थात् अत्यंत नित नई अत्यंत गरम तपनि है जामें ऐसी जो संसार की ताप ताको घ्न कहे नाशकर्ता हौ पुनः भूपतन तपरूप अर्थात् पिता को वचन मानि राजकुमाररूपते तपरूप धरे भाव भूषण वसन त्यागि वल्कलादि वसन धारण कीन्हेउ कैसा तपरूप तम पर तपस्वी तम जो विषयसुख में आसक्ती रूप अंधकार ताके पर विषय सुख त्याग करि तपस्वी भयो चौदहवर्ष तक तपस्या करत रहे अर्थात् वर्षा हिम आतप सहेउ मूलफल भोजन कीन्हेउ भाव तपस्वीरूप ते विचरत में दर्शमात्र जीवन की घोर तापैं हरत फिरेउ कौन भांति सो यथा आपनी बड़ाई पर चित्त उन्नत करना सो मान है पुनः जाति विद्या धनादि पाइ हर्ष बढ़ावना सो मद है मदन कामासक्ती ईर्षा करना मत्सर पुनः विषय सुखहेतु अनेक मनोरथ मनकी चाह इत्यादि सहित मोहरूप अंभोधि जो समुद्र ताके मथन हेतु हे मनस्वी ! आप मंदराचल हौ भाव मोहादि हरि शुद्धकरि देते हौ इति ताप हरते हौ स्वतंत्र थिर प्रसन्न सदा मन जाको इति मनस्वी ४ वरदईश वर के देन हारे जो ब्रह्मादि तिनके ईश स्वामी वेदनमें विख्यात प्रसिद्ध हौ जो देवन के हित करिबे हेतु वामनरूप धारण कीन्हेउ विरज जामें रजोगुण नहीं है ऐसे विमल पुनः वाक् जो वाणी ताके ईश भाव आपकी प्रेरणा ते वाणी प्रकट होती है ऐसे वैकुण्ठ

के स्वामी चतुर्भुज विष्णुरूप जो स्मरणमात्र भक्तन में काम क्रोधादि यावत् विकार होते हैं तिनको मर्दन नाश करिदेते हौ पुनः क्षमा गुण को विवर्धन विशेषि बढ़ावते हौ काहेते विहंगराज गरुड़ तिनपर चढ़ि गामी चलनेवाले शांत विग्रह शांतस्वरूप सतोगुणी रीति राखे हौ ५ नामरूप लीलादि आपको परम पावन अत्यंत पवित्र लोकनको पावनकर्ता है कौन भांति कि पापपुंज अर्थात् लोक जननमें जो बहुत पाप है सो मुंजकी अटवी वन अर्थात् सूखे पतौराके वनसम है ताको निमिष निर्मूलकर्ता अनलमिव अग्निकी समान पलमात्रमें जरसहित भस्मकर्ता हैं भाव आपको नाम लेतही समूहपाप नाश ह्वैजात स्वाभाविकही जीव पावन होते हैं यथा अजामिल पुनः भुवनभूषण रक्षामात्र भुवनन को प्रकाशित कीन्हे हौ काहेते अनीतिरूप अंधकार सम खरदूषणादि जो दुष्ट रहे तिनके अरि शत्रु ह्वै नाश करि दीन्हेउ ऐसे भुवन के ईश भुवनन के पालनहारे वैकुंठनाथ सोई लोकहित हेतु भूनाथ पृथ्वीनाथ राजकुमाररूप प्रकट भयउ अनय अधर्मरत दुष्टनको नाश करि वेदधर्म को स्थापित कीन्हेउ ऐसे श्रुतिमाथ वेदके शीश भाव यथा शीशते देह सजीव तथा आपते वेद सजीव ऐसे भुवनन के भर्ता स्वामी पालनहारे स्वामी की जय होइ ६ रजोगुण तमोगुण कामादि मलरहित अमल शुद्धरूप पुनः अविचल किसी करिकै चलायमान नहीं सदा एकरस थिर क्षीण पीनतादि कलारहित अकल सकल संपूर्णकला करिकै परिपूर्ण कैसे दयासिंधु हौ कि कलियुगकृत संपूर्ण प्रकार की तापन करि तप्त जीवनकी जो विकलता ताको भंजन नाशकर्ता पुनः आनंद की राशि ढेरी सब सुखदायक उरग सर्पन के नायक जो शेष सोई है शयन शय्या तरुण पंकजनयन नवीन फूले हुये कमलसम नेत्र हैं कृपारसभरे क्षीरसागर सोई है अयन वास करिवे को मुख्य मंदिर पुनः अंतर्यामीरूपते सर्वभूत चराचर में वास किहे हौ वा रक्षाहेतु सर्वत्र वास किहे हौ ७ अणिमादि प्राप्तिवाले सिद्ध ग्रन्थकर्ता व्यास वाल्मीक्यादि कवि अर्थप्रकाशक भाष्यकर्ता कोविद पण्डित इत्यादि को आनंदप्रद प्रकर्षकरिकै आनंद देनहारे द्वंद्व दोऊ आपुके पद हैं अर्थात् पदारविन्दनको स्मरणकीर्तन करि आनंद पावते हैं पुनः मंदात्म अर्थात् कामादि चाहते मोहतम पाइ विवेक विराग ज्ञान बुद्धि चैतन्यतादि कलाहीन इत्यादि कारण ते जिनकी आत्मा मन्द प्रकाशहीन है ऐसे विषयी विमुख मनुजै मनुष्यन करिकै आपु दूरि हौ उनको दुःखी करिकै नहीं प्राप्त होते हौ पुनः कैसे पद हैं आपुके यत्र संभूत अतिपुनीत जहां ते उत्पन्न भयो अत्यन्त पावन जल सुरसरी श्रीगंगा जी जो दर्शनात् एव पापं अपहरति दर्शनमात्र ते एव कहे निश्चय करिकै पापन को अपहरत स्वाभाविकही नाश करि देती है ८ जे विषयी विमुख अविद्या माया में बद्ध हैं ते जब मुमुक्षु ह्वै साधन करते हैं तब मुक्त होते हैं अरु आपुमें तौ माया छुई नहीं गई है ताते नित्य निर्मुक्त हौ विना छूटेही छूटे हौ सदा पुनः कृपा दया करुणा वात्सल्यतादि अनेक कल्याण गुणसंयुक्त हौ पुनः निर्गुण हौ रज तमादि गुणनके वश नहीं हौ पुनः अनन्त हौ आपुको अन्त कोऊ नहीं पावत भगवंत हौ भाव ऐश्वर्यरूप धर्मधारी उत्तम यश सत्य शोभादि श्रीवैराग्य युत मोक्षदायक इति षट्भाग सहित ताते भगवंत नियामक भाव रक्षा दण्डादि करिवेको ऐसे

समर्थ हौ कि चराचरको स्वाधीन राखे हौ पुनः नियंता सबमें प्रेरणा करनेवाले अन्तर्यामीरूपते व्यापक हौ विश्वकारण संसारके उत्पत्ति करनहारे पुनः विश्वको जीवन करिकै भरण भरिपूर राखनेवाले पुनः विश्वको पोषण पालन करि पुष्ट राखनेवालेहौ ऐसा जानि तुलसीदास मैं आपुकी शरण हौं मेरी त्रास के हन्ता होहु कलियुग प्रेरित कामादि की भय ताको नाश करौ ६॥

(५७) दनुजसूदन दयासिन्धु दम्भापहन दहनदुर्दोष दुष्पापहर्ता।
दुष्टतादमन दमभवन दुःखौघहर दुर्गदुर्वासनानाशकर्ता १
भूरिभूषण भानुमंत भगवन्त भवभंजनाभयद भुवनेशभारी।
भावनातीत भववंद्य भवभक्तहित भूमिउद्धरण भूधरणधारी २
वरद वनदाभ वागीश विश्वातमा विरज वैकुंठमंदिरविहारी।
व्यापकं व्योम वन्द्यांघ्रिपावन विभो ब्रह्मविद् ब्रह्म चिंतापहारी ३
सहजसुन्दर सुमुख सुमन शुभ सर्वदाशुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी।
सर्वकृत सर्वजित सर्वभृत सर्वहित सत्यसङ्कल्प कल्पांतकारी ४
नित्य निर्मोह निर्गुण निरंजन निजानंद निर्वाणनिर्वाणदाता।
निर्भरानन्द निष्कंप निस्सीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता ५
महामङ्गलमूल मोदमहिमायतन मुग्धमधुमथन मानद अमानी।
मदनमर्दन मदातीत मायारहित मञ्जुमानाथ पाथोजपानी ६
कमललोचन कलाकोश कोदण्डधर कोशलाधीश कल्याणरासी।
यातुधानप्रचुर मत्तकरि केसरी भक्तमनपुण्यआरण्यवासी ७
अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनन्दसिन्धो।
अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारम्भ अम्भोदनादघ्नबन्धो ८
दासतुलसी खेदखिन्न आपन्न इह शोकसम्पन्न अतिशयसभीतं।
प्रणतपालक राम परमकरुणाधाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं ९

टी०। हे दयासिन्धु दनुजसूदन! भाव सुजनन पर दयाकरि दैत्यन को नाश करते हौ पुनः अन्तर दुष्ट बाहेर साधुबाना इत्यादि दंभ ताके अपहन निश्चय नाशकर्ता हौ दुर्दोष दुर्घट दोषन को दहन भस्मकर्ता हौ दुर्घट पापन के हर्ता हौ हिंसा परस्त्री परधनहरणादि जो दुष्टता ताके दमन नाशकर्ता पुनः इंद्री विषय ते रोकादि जो दम गुण ताके भरे भवन मन्दिर हौ वियोग हानि रुज दरिद्रतादि जो दुःख ओघ नाम समूह ताके हरिलेनहारे हौ दुर्ग कठिन जो दुर्वासना यथा परधन परदारहरणादि इच्छा ताके नाशकर्ता इत्यादि शरणागतन के हेतु हौ अर्थात् सब विकार मिटाइ सेवकन को सदा शुद्धकरि राखते हौ १ किरीट कुण्डल माल केयूर किंकिणी आदि भूरि बहुत भूषण धारण किहेहौ पुनः भानुमन्त यथा सूर्यन में समूह किरणैं हैं तैसही तेजकी समूह किरणैं आपुमें हैं पुनः ऐश्वर्य धर्म

यश श्री वैराग्य मोक्ष इति षट्भागयुत भगवन्त हौ भव जो संसार जन्म मरणादि बन्धन ताके भंजन नाशकर्ता हौ शरणागत भय भीतन को अभयद अभय देनहारे यमत्रासति आदि सब डर मिटाइ देतेहौ पुनः भुवन के ईश ब्रह्मा शिवादि भी हैं तिनमें आपु भारी भुवन के ईशहौ भाव आपु के आज्ञावर्ती और सब हैं पुनः भावनातीत मन बुद्धि विचार ते नहीं प्राप्त होतेहौ शुद्ध प्रेम ते प्राप्त होते हौ भव जो शिव तिन करिकै वंद्य सदा वन्दना करते हैं भव शिवके भक्तन के हितकर्ता अर्थात् नारद के शापते शिवगण राक्षस भये तिनको उद्धार किहेउ भूधर पर्वतन को भारणहारी जो भूमि हिरण्याक्ष हरी ताको वाराहरूप ते उद्धार कीन्हेउ थिर थांपे २ वरद अचल वर के देनहारे घनद आभ घन जल ताके देनहारे जो मेघ तद्वत् आभ सुन्दर श्याम शरीर वाक् ईश वाणी के स्वामी विश्व संसार सोई आयतन वासस्थान है भाव सर्वत्र व्यापक हौ विरज रजोगुण तमोगुण रहित हौ वैकुण्ठ मन्दिर विषे सदाविहार करते हौ व्योम आकाशवत् सब में व्यापक हौ वंद्यांघ्रिपावन विभो हे विभो ! समर्थ आपुके अंघ्रि चरण ऐसे पावन पवित्र हैं कि जिनको वंदना करते हैं सुर नर नागादि सर्व आत्मदर्शी जीवन की ब्रह्म संज्ञा है इत्यादि जे ब्रह्मवित् ब्रह्म को जाननेवाले ब्रह्म हैं शुद्ध आत्मदर्शी तिनकी चिन्ता कामादि बाधा की संदेह ताको अपहारी निश्चय नाश करि देते हौ ३ विना भूषणहीं भूषितवत् रूप सहज ही सुन्दर सर्वांग सुठौर बने सुमुख सुन्दर एकरस सदा प्रसन्नमुख तथा सुमनशुभ सुन्दर सदा प्रसन्न मन शुभलोक कल्याण करिबेको दृढ़ानुसंधान राखे सर्वदा सर्वकालविषे शुद्ध बाहर भीतर आत्मरूप सर्वज्ञ सब वस्तु के ज्ञाता तीनिउ काल की बात जाननेवाले स्वच्छन्दचारी स्वतंत्र रहनेवाले भाव काहू के आधीन नहीं हौ सब स्वाधीन राखेहौ कैसे स्वच्छंदचारी हौ सर्वजित् चराचर ब्रह्मांड भरि जीतिकै स्ववश कीन्हे हौ पुनः सर्वभृत सब ब्रह्मांड रचना स्वशक्ति ते धारण किहे हौ सर्वकृत ब्रह्माण्ड रचना ब्रह्मादि यावत् देहधारी युगादिकाल व्यवस्था शुभाशुभ कर्मफल प्राप्तिबद्ध मोक्षादि सब बातके करनेवाले हौ पुनः सर्वहित चराचर के रक्षा करनहारे पालन पोषण करनेवाले हौ पुनः सत्यसंकल्प अर्थात् जो कहते हौ सोई करते हौ कल्प हजार चौयुगी को जो ब्रह्माको दिन ताको अंत प्रलय ताके करनहारे हौ आपुकी आज्ञा ते प्रलय होत ४ नित्य अखण्ड एकरसरूपरहित निर्मोह अवतारहित सदा चैतन्य निर्गुण रजोगुणादि के वश नहीं हौ निरंजन कारणमायारहित निज आपने आनन्दते आनन्द भाव किसी के दीन्हे ते आनन्द नहीं काहेते स्वाभाविक निर्वाण मुक्तरूप हौ पुनः औरन को निर्वाणदाता मुक्ति देनहारेहौ निर्भर आनन्द अर्थात् जो उरमें न अँवाय सकै ऐसा समूह आनन्द है पुनः निष्कंप किसी की भयते काँपि नहीं सक्केही सदा अचल हौ पुनः निस्सीम अर्थात् महिमा ऐश्वर्य की सीमा नहीं अंत नहीं कोई पाइसक्राहै निर्मुक्त अर्थात् मायाबंधन में है ने नहीं ताते विना मुक्तै मुक्त हौ भाव बद्धजीव साधन करि मुक्त होते हैं ते नहीं सदा स्वाभाविक मुक्त हौ धर्मचितादि उपाधिरहित ताते निरुपाधि हौ निर्मम ममता किसीपर नहीं दयादृष्टि ते रक्षा सबकी करते हौ काहेते विधाता हौ सब संसार आपही को उपजाया है ५ महामंगल परमउत्सव उपजावने की मूल जर

अर्थात् नाम लेतही महामंगल होत मोद जो मानसी आनन्द पुनः महिमा ऐश्वर्य की बड़ाई ताके आयतन नाम मंदिर हैं भाव मोद महिमा परिपूर्ण आपही में है मुग्धनाम अज्ञान जो मधु नाम दैत्य ताको मथन नाशकर्ता हौ पुनः औरन को मानद मान बड़ाई देने हौ अरु आपु अमानी हौ कछु मान नहीं राखते हौ सेवकन विषे जो मदन काम विकार होता है ताके मर्दन नाशकर्ता हौ पुनः मद अर्थात् ऐश्वर्यादि पाइ तामें हर्ष बढ़ावना त्यहिते अतीत नाम पर हौ माया विषयरहित मंजु सुन्दर स्वरूप जिनको ऐसी मा जो लक्ष्मीजी तिनके नाथ पाथोज जो कमल सो पाणिनाम हाथ में धारण किहे हौ ६ कमल सम लोचन कृपारस भरे नेत्र हैं चौदहौ विद्यन सहित जो चौंसठिकला सब भांति की कारीगरी ताके भरे कोश खजाना कोदण्ड धनुष धारण कीन्हे कोशलाधीश अयोध्या के महाराज कल्याण राशि लोक कल्याणकर्ता गुणसमूह हैं जिनमें यातुधान प्रचुर राक्षस समूह ते मत्त करि माते हाथी सम हैं तिनके नाशहेतु आप केशरीनाम सिंहरूप हौ सिंह वन में वास करते हैं तथा इहां भक्तनको पुण्यपावन मन सोई आरण्य वन है तामें वास करते हौ ७ अनघ निष्पाप अद्वैत जाकी समता को दूसरा नहीं अनवद्य दूषणरहित अव्यक्त जो प्रकट नहीं अज जाको जन्म किसीते नहीं भया अमित है महिमा जाकी अविकार कामादि विकाररहित शुद्ध आतमरूप सदा सिन्धु सम परिपूर्ण आनन्द है जिनमें अचल किसी करके चलायमान नहीं अनिकेत एकत्र वासस्थान नहीं सर्वत्र वास अविरल सघन सब में परिपूर्ण अनामय रोगादिरहित अनारम्भ आरम्भ किसी कर्म को नहीं करते हैं अंभोदनादघ्न मेघनाद को नाशकर्ता जो लक्ष्मणजी तिनके बंधु बड़े भाई हौ ८ खेद मानसी विकलता करिकै खिन्ननाम दुर्बलता ताको आपन्ननाम प्राप्त हौ इह शोक संपन्न यहि दुःख करिकै परिपूर्ण मैं जो तुलसीदास सो प्रणत आपकी शरणागत हौं कौन भांति अति सभीत अत्यंत कलियुग की भय मानिकै प्रणत हौं अरु आप दुर्विनीत किसीकी भय करिकै नम्र नहीं होते हौ ऐसे सबल उर्वि पृथ्वी के पति महाराज हौ पुनः सेवक के दुःख में आप दुःखित हे शीघ्रही दुःखहर्ता इति करुणा गुण ताके धाम हौ पुनः प्रणतपाल शरणागत को पालनहार हे श्रीरघुनाथजी मां पाहि मेरी रक्षा करौ ९॥

(५८) देहि सतसंग निजअंग श्रीरंग भवभंगकारण शरणशोकहारी।
ये तु भवदंघ्रिपल्लवसमाश्रित सदा भक्तिरत विगतसंशय मुरारी १
असुर सुर नाग नर यक्ष गन्धर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ने।
सन्तसंसर्ग त्रैवर्गपर परमपद प्राप निष्प्राप्यगति त्वयि प्रसन्ने २
वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृध्र द्विजबन्धु निजधर्मत्यागी।
साधुपदसलिल निर्धूतकल्मषसकल श्वपच यवनादि कैवल्यभागी ३
शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुण शब्दब्रह्मैकपर ब्रह्मज्ञानी।
दक्षसमदृकस्वदृक्विगतअतिस्वपरमतिपरमरतिविरतितव चक्रपानी ४
विश्व उपकार हित व्यग्रचित सर्वदा त्यक्त मद मन्यु कृतपुण्यरासी।

यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छन्ति क्षीराब्धिवासी ५
वेदपयसिन्धु सुविचारमन्दरमहा अखिलमुनिवृन्द निर्मथनकर्ता।
सार सतसङ्गमुद्धृत्य इति निश्चितं वदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्ता ६
शोक सन्देह भय हर्ष तम तर्ष गण साधु सद्युक्ति विच्छेदकारी।
यथा रघुनाथशायक निशाचरचमूनिचय निर्दलनपटु वेगभारी ७
यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश भ्रमत जगयोनि सङ्कटअनेकं।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जनसमागम सदा भवतु मे राम विश्राममेकं ८
प्रबल भवजनित त्रैव्याधिभेषज भक्ति भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।
सन्तभगवन्तअन्तरनिरन्तर नहीं किमपिमतिमलिनकहदासतुलसी९

टी०। हे श्रीरंगदेव ! निजअंगकी सेवा मन वचन कर्मते तथा सत्संग में वास दीजै सत्संग कैसाहै भवभंग भवसागर नाशकरिबे को कारण है आपके अंगकी सेवा कैसी है कि शरण शोकहारी शरणागतनके दुःखको हरिलेनहारी है पुनः हे मुरारि ! किन संतनको संग देहु जे संशयविगत सब प्रकारकी संशयरहित श्रवण कीर्त्तनादि भक्तिमें रत सदा लगेरहतेहैं तु पुनः जे भवतअंघ्रि आपके पद पल्लवके संश्राश्रित संपूर्ण प्रकारते शरणागत में सदा प्राप्त हैं तिनको सत्संग देहु १ कैसा सत्संगको प्रभाव है कि असुर जो दैत्य सुर देवता नाग सर्प नर मनुष्य तथा यक्ष गंधर्व खग पक्षी रजनिचर जो निशाचर सिद्ध च पुनः अपि निश्चयकरि जे अवे कहे और यावत् भये ते सब संत संसर्ग कहे संतनको संग करि कैसे भये कि त्रय वर्ग पर अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि जो त्रयवर्ग तीनि फल तिनते परश्रेष्ठ जो परम-पद मुक्ति है ताको प्राप्य प्राप्तभये कैसा परमपद है निःप्राप्य साधनादि करि जो नहीं प्राप्त होता है ऐसी निःप्राप्य गति है सोई त्वयि प्रसन्ने आपके प्रसन्न भये कृपा कटाक्षके प्रभावते सबको सुलभ प्राप्त होत कौनको प्राप्तभई सो आगे कहत २ आपकी प्रसन्नताते कौन कौन को परमपद प्राप्तभया यथा वृत्रासुर बलि बाणासुर प्रह्लाद मय इत्यादि दैत्य हैं पुनः वाल्मीकि व्याधा है गज पशु है गृद्ध नीच पक्षी द्विज बंधु ब्राह्मण को भाई यद्यपि अजामील है परंतु निज धर्म त्यागी अपने वर्णको धर्म त्यागि अधर्ममें रत भया तब ब्राह्मण कहाँ रहा इत्यादि में बहुत तो सत्संग में साधुनके पद धोवन सलिल जल अर्थात् साधुनको चरणामृत पान कीन्हे ताके प्रभावते सकल प्रकारके कल्मष जो पाप ते निर्धूत नाम छूटिजाते हैं उत्तम साधु हैजातेहैं यथा सप्तऋषिनके सत्संग पाइ व्याधाते वाल्मीकि महामुनि भये पुनः अजामील श्वपच यमन इत्यादि नामोच्चार करि आपकी कृपाते कैवल्यभागी मुक्ति के अधिकारी भये ३ सत्संग प्रभावते कैसे साधु होते हैं यथा शांत राग द्वेष रहित समचित्त पुनः निर्प्रेक्ष नृत्यादि देखनेकी बुद्धिको प्रेक्षा कही यथा ॥ प्रेक्षा नृत्येक्षणं प्रज्ञा इत्यमरः ॥ अर्थात् विषय चाहरहित निर्मम ममतारहित निरामय आमय रोगादि अथवा कामादि मानस रोगरहित अगुण रज तमादि गुणरहित शब्द ब्रह्म जो वेद ताको सिद्धांत जानिबे में एक मुख्य हैं परब्रह्मरूप के ज्ञाता आत्म-

ज्ञानी सर्व शास्त्र में दक्षकर्म ज्ञानभक्ति सिद्धान्त ज्ञाता समदृक् चराचर में समदृष्टि राखेहैं स्वदृक् अपनपौ दृष्टी सवमें विशेषगत जातरही है अत्यंत करिकै स्वपरमति सो नहीं राखतेहैं भाव अपनी परारी विशेष त्यागते हैं पुनः हे चक्रपाणि! विरति वैराग्य सहित तत्र परमरति आपमें अत्यंत प्रीति किहेहैं ४ विश्व संसारके उपकार हित व्यग्रचित्त अर्थात् परदुःख देखि दुःखित होतेहैं सर्वदा सदा त्यागे हैं मद पुनः मन्यु नाम क्रोधकृत पुण्यराशि सुकृति कर्मनको ढेर लगाये हैं ऐसे संत यत्र तिष्ठंति जहांवास करते हैं तत्र कहे तहां एवकहे निश्चय करिके अज जो ब्रह्मा शर्व जो शिव तिन सहित हरि गच्छंति नाम जातेहैं कौनहरि क्षीराब्धि क्षीरसमुद्रवासी संतनके ढिग जाते हैं ५ सज्जनको अमर करनहारा सत्संग अमृतकरि कहत सो सिंधुमथे मिला इहां पयसिंधु क्षीरसागर वेद है ताको मथन हेतु सुंदर विचार सोई महाभारी मंदराचल है ताकी मथानी करि अखिल समग्र मुनिनके वृंद सोई देवता तेई निश्चय करिकै मथनकर्ता हैं अर्थात् विचार मथानीते वेदसिंधु को मथिकै वेदको सारांश सत्संग उद्धृत्य उद्धार कीन सब वेदनमें सारभाग सत्संग-रूप अमृत निकारिलीन्हे इति वैदर्भिभर्ता निश्चितं वदत वैदर्भी रुक्मिणी तिनके भर्ता श्रीकृष्णजी इस वातको निस्संदेह कहे हैं अर्थात् वेदको सार सत्संग है इस वात पर भगवत् वचन प्रमाण है यथा भागवते॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः। यथावरुंधेत्सत्संगः सर्वसंगापहोहिमाम् ६ अमृत पान कीन्हेते जराव्याधि मृत्युनाश होत इहां साधुसत् युक्ति साधुनको सत्संग सो कैसा है कि शोक दुःख यथा हानि वियोग व्याधिदरिद्रतादि पुनः राजकोप शत्रु-घात व्याघ्र चौरादिक लौकिक भय डर तथा गर्भवास यम साँसति पारलौकिक भय तथा धनग्राम पुत्रादि लाभते हर्ष अथवा मान बड़ाई स्वर्गादि पाइ हर्ष इत्यादि भय हर्ष मानना जो द्वैत बुद्धी तम नाम अज्ञानता तर्षनाम विषयकी चाहना यथा॥ कामोऽभिलापस्तर्षश्च इत्यमरः॥ संदेहहित हानिकी चिंता इत्यादि शोकसंदेह भयहर्ष तमतर्षादि गणसमूह ताको विच्छेदकारी विशेषि काटिडारनेवाला सत्संग है कौनभांति यथा निशाचरनकी चमू सेना ताको निर्दलन विशेषि नाशकरिवे में रघुनाथजीके शायक वाण पटु नाम प्रवीण हैं पुनः भारी वेग है जिनमें अमोघ तैसेही सत्संग सब विकार नाश करता है ७ हे श्रीरघुनाथजी! निज कर्मवश अपने कीन्हे शुभाशुभ कर्मनके आधीन ताके फल भोगहेतु जगत् विषे योनिन भ्रमत मनुष्यादि अनेक योनिन में जन्मत मरत फिरत संकट अनेक व्याधि वि-योग हानि दरिद्रता दंड बंधनादि अनेक संकट सहत संते यत्र कुत्रापि मम जन्म जहां कहाँ निश्चय करिकै मेरा जन्म होवै तत्र हे राम! एकं विश्रामं मे भवतु अ-र्थात् जहां मेरा जन्म होइ तहां कर्मवश यावत् संकट होवैं सब सहौं और कछु सुख नहीं मांगत हौं हे श्रीरघुनाथजी! आपकी अनुग्रहते एक यही विश्राम जो सुख मेरे अर्थ होवै क्या होवै सदा सज्जन समागम संतन को संग बनारहै पुनः त्वद्भक्ति आपकी भक्ति श्रवण कीर्तनादि बनी रहै ८ कैसा प्रभाव भक्ति में है कैसाप्रभाव स-त्संग में है सो कहत यथा प्रबलभव प्रकर्षकरिके बली जो किसी साधन ते हटिवे

योग्य नहीं ऐसा भव संसार जीवनको कुपथ अर्थात् संसारी सुख हेतु इंद्रीशब्दादि विषयन में आसक्त होना यथा काम वार्ता में श्रवण परस्त्रीरूप में नेत्र षट्रस में रसना इत्यादि कुपथ करि जनितनाम उत्पन्न जो त्रयव्याधि तीनि भांति के रोग यथा ॥ काम वात कफ लोभ अपारा। पित्त क्रोध नित छाती जारा ॥ अर्थात् विषयासक्ती ते कामना बढ़ी कामना हानि ते क्रोध भया ताते मोह जीवको नाशक भया यथा गीतायाम् ॥ ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते । संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृति विभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ इत्यादि जीवको नाशकर्ता काम क्रोध लोभादि जो तीनि व्याधी महारोग हैं तिनके नाश करिवे को भेषज औषध है पुनः चराचर में भगवत् रूप व्यापक मानि सबमें एक दृष्टि राखनेवाले अद्वैतदर्शी भक्त तेई भैषज्यनाम वैद्य हैं भाव भक्तजन कृपा करि श्रवण कीर्तनादि भक्ति दै कामादि व्याधि नाश करिदेते हैं ऐसे संत अरु अनन्त जो भगवान् तिन सों निरंतर अंतर नहीं कबहूं भेद नहीं है सदा एकही रूप हैं ऐसी अगम महिमा संतन की ताको मतिको मलिन तुलसीदास सो कि अपि कैसे निश्चय करि कहै कि संतनकी महिमा एतनी है ६ ॥

(५९) देहिअवलम्बकरकमलकमलारमनदमनदुखशमनसंतापभारी।
अज्ञानराकेशग्रासनविधुंतुद गर्व कामकरिमत्त हरि दूषणारी १
वपुपत्रब्रह्माण्ड सुप्रवृत्तिलङ्कादुर्ग रचित मनदनुज मयरूपधारी।
विविधकोशौघअतिरुचिरमन्दिरनिकरसत्त्वगुणप्रमुखत्रैकटककारी २
कुनपअभिमान सागरभयङ्करघोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल संगसंकल्प वीचीविकारं ३
मोहदशमौलि तद्भ्रातहंकार पाकारिजितकाम विश्रामहारी।
लोभअतिकाय मत्सरमहोदरदुष्ट क्रोधपापिष्ठ विबुधान्तकारी ४
द्वेषदुर्मुख दम्भखर अकम्पनकपट दर्पमनुजाद मदशूलपानी।
अमितवल परमदुर्जय निशाचरनिकर सहितषड्वर्ग गोयातुधानी ५
जीव भवदंघ्रिसेवक विभीषण वसत मध्यदुष्टाटवी ग्रसितचिंता।
नियम यम सकल सुरलोकलोकेश लंकेशवश नाथ अत्यंतभीता ६
ज्ञानअवधेश गृह गेहिनी भक्तिशुभ तत्र अवतार भूभारहर्ता।
भक्तसंकष्टमवलोक्य पितुवाक्यकृत गहनकिय गमन वैदेहिभर्ता ७
कैवल्यसाधन अखिल भालु मर्कट विपुल ज्ञानसुग्रीव कृतजलधिसेतू।
प्रवलवैराग्य दारुणप्रभंजनतनय विषयवनदहनमिव धूमकेतू ८
दुष्ट दनुजेश निर्वंशकृत दासहित विश्वदुखहरण बोधैकरासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी हृदयकमलवासी ९

टी०। यथा रावण करि सब बिकल भये तब लोकहितहेतु देवगण सहित ब्रह्मा वैकुण्ठादि में प्रार्थना कीन्हे तब चतुर्भुज रामरूप अवतीर्ण है रावण को नाश करि सबको सुखी कीन्हे तथा देह ब्रह्माण्ड में मोह रावण है ताके हेतु प्रार्थना करत यथा मैं अज्ञान वश भवसिंधु में गिरता हौं ताते कृपा करि कर कमलको अवलंब देहि हाथसो गहि राखिये कैसे आप कृपासिंधु हौ कि भय व्याधि त्रियोगादि जो दुःख शरणागतन के हैं तिनको दमन दलिदारन हार हौ पुनः दैहिक दैविक भौतिकादि जो संताप संपूर्ण प्रकार की भारी तापैं तिनको शमन नाशकर्त्ता हौ पुनः अज्ञान राकेश राका पूर्णमासी की राति ताको ईश पूर्ण-चंद्र होत तथा अविद्या रात्रीमें काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य्य दशेन्द्री विषय इति षोडशकला पूर्णचंद्र सम अज्ञान है ताको ग्रासन लीलिजाने हेतु विधुन्तुद नाम राहुसम हौ पुनः हे दूषणारि ! गर्व अरु काम सोई मत्तकरि मात्ते हाथिन सम हैं तिनको नाशकर्ता हरिनाम सिंह हौं १ अविद्या रात्री में कैसा पूर्ण चंद्रसम प्रकाशमान अज्ञान है जाकी अनीतिरूप प्रभा सर्वत्रफैली तहां वपुष जो देह सोई ब्रह्मांड है पुनः प्रवृत्ति अर्थात् लौकिक व्यवहार की चाह बढ़ना सोई दुर्ग अटुट गढ़ लंका है जो मन मयदनुज रूपधारी रचित अर्थात् लंकागढ़ को मयदानव ने रचा है तथा इहां देहमें जो मन है सोई मय दैत्य को रूप धरि देह ब्रह्माण्डांतर प्रवृत्ति रूप लंका रचि बनाया है भाव लौकिक सुख हेतु अनेक तर्कणा को प्रवाद बढ़ाया है तामें इन्द्रीविषय सुख चाह सोई गढ़की अगमता है जो विराग विवेकादि देवनसों टूटना दुर्घट है उहां लंकागढ़ में अनेक मन्दिर बने हैं इहां देहान्तर प्रवृत्तिरूप लंका में जो विविध अनेक भांति जो कोश हैं यथा अन्न-मय जामें गये जीव में षट्रस भोजन की चाह होती है पुनः प्राणमय जामें गये जीव को सब पवनन को विलास होता है पुनः मनोमय जामें जीव संकल्प विक-ल्पादि व्यवहार करत पुनः विज्ञानमय जहां गये जीव में चैतन्यता आवत पुनः आनन्दमय सुख स्थान इत्यादि जो कोश हैं तेई ओघनाम समूह तेई अति रुचिर अत्यन्त सुन्दर मन्दिर निकरनाम बहुत हैं लंका में राक्षसी सेना तथा सेनापति रहैं इहां प्रवृत्ति लंका में तीनिउँ गुण यथा ॥ दोहा ॥ सकल वस्तु को ज्ञान अरु बुद्धि विमल जब होइ। तबै सतोगुण जानिये कहत सयाने लोइ ॥ पुनः ॥ लोभ लिये व्यवहार जो सो रजगुण को मान। आलस निद्रा विकलमन मोह तमोगुण जान ॥ इत्यादि तमोगुण रजोगुण तिनमें सत्त्वगुण प्रमुख सतोगुण प्रकर्ष करिकै मुखियाहै इत्यादि तीनोंगुण तेई त्रयकटककारी तीनों सेनापति हैं तहां गुणन प्रति अनेक विकार मनोरथ हैं यथा तीर्थव्रत दान कथादि सतोगुणी है पुनः भोजन वसन वाहन नृत्य गान काम वार्त्तादि रजोगुणी पुनः हिंसा जुवाँ चोरी शत्रुता मद्यादि तमोगुणी इत्यादि राक्षसी सेना है २ लंका में समुद्र घेरे है तथा इहां कुनप जो देह ताको अभिमान यथा हम ब्राह्मण विद्वान् तपस्वी हैं हम क्षत्रिय राजा वीर हैं हम वैश्य धनी प्रामाणिक हैं इत्यादि देहाभिमान सोई भयंकर घोर भयंकरन में महाभयंकर सागर है प्रवृत्ति लंका को घेरे है पुनः विपुल बहुत अव-गाह जामें थाह नहीं पुनः ऐसा अपार चौड़ा फाट है जो दुस्तर दुःखौ करि तरिबे

में दुर्बट है भाव ऐसा भारी अभिमान जो काहू भांतिते मिटनेवाला नहीं पुनः समुद्र में अनेक जलचर अरु समूह लहरी उठती हैं इहां अभिमान सागर में रागादि अर्थात् विषय सुख चाहते प्रीति ताको राग कहीं इत्यादि यावत् मनोरथ हैं यथा सुन्दरि पतिव्रता स्त्री विचित्र वसन नृत्य गान षट्रस भोजन भूषण वाहन धन धाम इत्यादि संकुल सघन परिपूर्ण जो मनोरथ तेई सकल नक्र नाक घरियार मच्छ कच्छादि जलचर हैं पुनः मनोरथन के संग जो संकल्प है यथा यह कार्य में निश्चय करौंगो इत्यादि मनकी चाह रूप पवन अभिमान में लागेते जो मनोरथ प्राप्ती में संकल्प करत सोई वीचिन को विकार लहरिन को उठना है अहंकार अरु मन ये द्वै अन्तःकरण विकारमय हैं येई समुद्रवत् प्रवृत्तिके रक्षक हैं तहां अहंकार के षट्अंग यथा जिज्ञासापंचके ॥ मानः क्रोधश्च ईर्षा च पारुष्यमुपहिंसनम्। दृढ वैराग्यहंकारे वर्त्तते लक्षणानि षट् ॥ तामें मान अरु वैर दोऊ किनारा हैं क्रोध भयंकरता है ईर्षा अगाधता है पारुष्य दुस्तरता है हिंसा अपारता है पुनः मनके अंश यथा ॥ कर्म्माकर्म्म विकर्म्मादावनियमेन वर्त्तते। संकल्पश्च विकल्पश्च मनसो बहुशोयथा ॥ अर्थात् विषय में मन प्रीति किहे देहेन्द्रिय सुख हेतु कर्म्म अर्थात् सुख प्राप्ती के व्यापार करत पुनः अकर्म्म परधन परस्त्री हरणादि पुनः विकर्म्म विशेषि कुत्सितकर्म्म यथा परधनहरण तामें साधुन को लूटना परस्त्री हरना तामें उत्तम कुल की स्त्री तासों वरवश भोग करना पुनः अनियम अर्थात् सत् असत् का विचार नहीं पुनः संकल्प यह कार्य निश्चय करिहौं विकल्प यह न करिहौं तामें कर्म्म अकर्म्म विकर्म्म अनियम इत्यादि मय मनोरथ सोई मगर नाक घरियार मच्छ कच्छादि तरनहारे को त्रासकर्त्ता हैं पुनः संकल्प विकल्पादि लहरिन को समूह है सो तरनहार को बोरि डारनेवाले हैं २ लंका में सुभट मंत्री मित्र परिवार बंधु पुत्रसहित दशमुख राजा वसत रहै इहां प्रवृत्ति लंका में मोह दशमौलि अर्थात् दशौ इंद्रिन की विषयवश आत्मरूप को भुलावनेवाला मोह सोई दशशीशवाला रावण है पुनः प्रकाश प्रकाशी अंश अंशी सेवक सेव्य इत्यादि ईश्वर ते संबंध त्यागि देह व्यवहार में अपनपौ मानि लेना यथा धन धाम स्त्री पुत्र मेरे हैं इत्यादि अहंकार तत् भ्रातृ तिस रावण को भाई कुंभकर्ण जो महाबली है विवेकादि देव जाके सन्मुख नहीं होत पुनः विश्रामहारी जीव को थिरसुख ताको हरिलेनेवाला जो काम सोई पाकारिजित इन्द्रको जीतनेवाला मेघनाद है रावण राजा तथा मोहराजा कुंभकर्ण निश्शंक बली तथा अहंकार बली मोह को बंधु यथा इन्द्रको जीतनेवाला मेघनाद अजितबली वीरकर्तबी तथा विश्राम इन्द्रको जीतनेवाला कामो अजित बली वीर महाकर्तबी अतिकाय बड़ी देहवाला है तथा लोभकी बड़ी विस्तारता ताते लोभ अतिकाय है बड़ा उदर जाके ऐसा महोदर तथा परहित न देखिसकनो जो मत्सर सो बड़ेपेटवाला महोदर दुष्ट है विबुध अंतकारी देवनको नाशकर्त्ता तथा पापै है इष्ट जाके सुकृतिको नाशकर्ता जो क्रोध पापिष्ठी सो देवांतक है ४ दुष्टता भरा है मुख जाको ऐसा दुर्मुख तथा सबसों विरोध करना जो द्वेषसो दुर्मुख है खर पूर्वही प्रभुको वैराहै तथा झूठी साधुता देखावना पूर्वही सत्पथ को बाधक है ताते दंभ सोई खर है जो किसीके डरते न कांपै ऐसा अकंपन तथा

अंतर में दृढ़ जो कपट सोई अकंपन है मनुजनको अदनाम खानेवाला तथा नरन को अनादरि अपनी बड़ाईको मान राखना जो दर्प मनुजादनाम नरांतक है शूल-पानि हाथमें शूलधारी अर्थात् जाके हाथन सुर मुनि नरादि सबके शूल पीड़ा होतीहै तथा जाति विद्यामहत्त्वादिते हर्ष बढ़ावना जो मद है सबको अनादररूप दुःखदायक शूलपाणि है जिनमें अमित संख्यारहित बल है पुनः वीर कैसे हैं परम दुर्जय किसीके जीतवे योग्य नहीं हैं ऐसे निशाचर निकरनाम बहुत हैं पुनः षट्वर्ग सहित गो जो इंद्री तेई यातुधानी राक्षसी हैं अर्थात् यथासुर नर नाग यक्ष गंधर्वन की कन्या शुद्ध स्वभावते स्वरूपवती यथा मंदोदरी सुलोचना आदि तिनहूं सम्बन्ध वश राक्षसनमें रत होनेते राक्षसी कहावती हैं तथा षट्वर्ग सहित अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य इत्यादि षट्वर्गनके सम्बन्धवश गो जो कर्ण नेत्रादि दशौ इन्द्रिय सब कामादि भोगमें रत भई तब राक्षसी भई इत्यादिदेह ब्रह्माण्डभरि मोहरूप रावण के वश परे त्रसित है ५ हे प्रभु भगत अंघ्रि आपके चरणनको सेवक जीव सो विभीषण चिताग्रसित अनेकभाँति संदेहनसों आकुल दुष्ट राक्षसनको अटवी जो वन अर्थात् कामादिके मध्य में वसत पुनः नियम यथायोगशास्त्रे ॥ शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिनियमाः ॥ अर्थात् शौच पावनता संतोष मनतुष्टता तप कायक्लेश स्वध्याय सद्ग्रन्थ अवलोकन ईश्वर प्रणिधान भक्ति इत्यादि नियम सुर देवगण हैं पुनः यमयथा ॥ अहिंसासत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ॥ अर्थात् अहिंसा जीवनपर दया सत्यव्यापार अस्तेय चोरीत्याग ब्रह्मचर्य इन्द्रिय थिरता परिग्रह विषयरोकना इत्यादि यम तेई योगीजन हैं इत्यादि सब मोहरूप लंकेश रावणके वशपरे अत्यंतभीत सडर है सब पुकारते हैं हे मा नाथ! रक्ष मा लक्ष्मी तिनके नाथ, हे प्रभु! सब आपकी शरणागत हैं तिनकी रक्षा कीजिये भाव मोह रावणको मारौ ६ यथा देवनकी पुकार सुनि भगवान् दशरथ कौशल्या द्वारा अवतीर्ण ह्वै पितु आज्ञा व्याजवन को गये सो हेतु कहत इहाँ ज्ञान अवधेश दशरथ महाराज हैं तिनके गृह में गेहनी रानी भक्ति सो कौशल्याजी हैं तत्र अवतार अर्थात् सत्संग अयोध्यापुरी है तामें गये जो आत्मरूपकी सुधि होना इति ज्ञान दशरथ महाराज हैं पुनः ज्ञानरूपा पराभक्ति सो कौशल्या हैं तामें श्रीराम रूप को थिर-ध्यान सोई प्रभुको अवतार है प्रीतिकी उमंग जो प्रेमाभक्ति त्यहि करिकै हरिधर्म सम्बन्धी कामार्थकी प्राप्ती सो लषण शत्रुहन को अवतार है पुनः नवधा श्रवण कीर्तन अर्चनादि जो क्रिया भक्ति त्यहि करिकै जो भगवद्धर्म की प्राप्ती सो भरतको अवतार है उहां भूमिको भार उतारन हेतु इहां सुमति भूथल है तहां कुत्सित वासना भार ताको हर्ता अवतार भया उहां जनक द्वारा भूमिजा आदि चारिकन्यन को विवाह भया इहाँ विवेक विदेह हैं सुमति भूमिते उत्पन्न शुद्धध्यान थिरता जानकी श्रद्धा मांडवी प्रीति उर्मिला उद्योग श्रुति कीर्ति इत्यादि पुनः मोहकी अ-नीति ते जीव विभीषणको संकट है सो भक्त को संकट अवलोक्य देखि कै पितु वाक्यकृत पिताके वचन प्रमाण करि वैदेहि भर्ता जानकीनाथ गहन गवन किय वनको चलेगये अर्थात् जीवको दुःखद जो मोह ताको परिवार सहित नाशकरिवे हेतु ज्ञान क्रिया के अनुकूल ह्वै थिरध्यान को त्याग किया ताते वन जो संसार

तामें जानकीनाथ गये भाव अर्चादि द्वारा प्रतिष्ठित श्रीस्वरूपन में जीवकी वृत्ति लगी अर्थात् षोड्शोपचार पूजन मन्त्र जापादि करनेलगो ७ उहां प्रभु वनको गये तहां रिच्छ वानरनकी सेना सहायक लिये इहां श्रीस्वरूप अर्चनादि व्यापार में जीव लगा तहां सहायक कैवल्य जो मोक्ष ताके साधन यथा शमवासना त्याग पुनः दम इन्द्रिनकी वृत्ति रोकना पुनः उपराम विषय में पीठि देना पुनः तितिक्षा दुःख सुख सम जानना पुनः श्रद्धा गुरु वेद वाक्य में विश्वास पुनः समाधान चित्त थिरता पुनः विवेक संसार असार त्यागि सत्य भगवत्रूपको ग्रहण पुनः वैराग्य स्वर्ग पर्यन्त लोक सुखको त्याग पुनः मुमुक्षुता अवश्य मेरी मुक्ति होयगी इत्यादि मुक्ति के साधन अखिल समग्र तेई विपुल भालु मर्कट बहुत रिच्छ वानर को सेनासहायक है तहां असत् वासना शूर्पणखा की नाक काटे तब दंभ खर चढ़ि आयो सोऊ मरा पुनः इंद्रीसुख कपटमृग देखाय मोह रावण ध्यान फिरता जानकी को हरा तब विराग हनुमान् को मिलि विवेक सुग्रीवते मित्रता किया ताकी स्त्री ब्रह्म विद्या को मान रूप बालि हरा रहै ताको मारि विवेक सुग्रीवको राजा किया तहां शम नल है दम नील है उपराम द्विविद है तितिक्षा मैंद श्रद्धा अंगद है समाधानता जाम्बवान् वैराग्य हनुमान् इत्यादि मिलि विवेक आज्ञाते खबरि हेतु चले तहाँ अभिमान सागर कोऊ न नाँघिसका तब प्रभंजन पवन ताके तनय हनुमान् प्रबल वैराग्य अभिमान सिंधु को फाँदिगये पुनः मुमुक्षुता विभीषण को मिलि थिर ध्यान को धीरज दै पुनः विषय सुखरूप अशोकवन तथा कोश रूप जो भवन तिसको भस्म करिबेहेतु धूमकेतु इव अग्निकी समान है अर्थात् मनोमय कोश में अकर्म संकल्प विकल्पादि अन्नमय कोश में षट्रसकी चाह इत्यादि को भस्मकरि लौटिआइ खबरि सुनाये पुनः सब सेना सजि अभिमान सिंधु के समीप गये पुनः जीव में मुमुक्षुता सोई विभीषण आइमिले पुनः ज्ञान अर्थात् विवेक राज जो सुग्रीव जलधिसेतुकृत अर्थात् विवेकते ? वेद पुराणादि संम्मत जोरि शम दम नल नीलने समुद्रमें सेतु बाँधा भाव विवेक भये देहाभिमान टूटिगया सब सेना जाइ प्रवृत्ति लंकाको घेरिलिया ८ विवेक विराग शम दमादि साधन सहित भगवत्रूप को अर्चादि कीन्हेते ताके प्रभावते कामादि परिवारसहित मोह को नाश किया इत्यादि दास जो मुमुक्षुजीव विभीषण ताके हित हेतु दुष्टदनुजन को ईश जो मोहरूप रावण ताको निर्वंशकृत वंशसहित नाशकरि जीवको थिरतारूप विभीषण को राज्यदै नियम यमादि सुर मुनिनको अभय करि कुमतिरूप भार उतारि सुमति भूमिको सुखीकरि पुनः बोधकी एकराशि शुद्धबोध सोई अनुज पुनः थिर ध्यान जानकी निज आप श्रीरघुनाथजी पराभक्तिरूप राजसिंहासन आसीन इत्यादि हे हरि। श्रीरघुनाथजी तुलसीदास के हृदयकमल में बासी होहु सदा वास करहु ६॥

(६०) दीनउद्धरण रघुवर्य्य करुणाभवन शमनसन्तापपापौघहारी। विमलविज्ञानविग्रह अनुग्रहरूप भूपवर विबुधनर्मद खरारी १ संसारकान्तार अतिघोर गम्भीरघन गहनतरुकर्मसंकुल मुरारी।

वासनावल्लिखरकण्टकाकुल विपुल निविड़विटपाटवी कठिनभारी २
विविधचित्तवृत्ति खग निकर सेनोलूक काक बक गृध्रआमिषअहारी।
अखिलखल निपुणछलछिद्रनिरखतसदा जीवजनपथिकमनखेदकारी ३
क्रोधकरिमत्त मृगराजकन्दर्प्प मददर्प्प वृकभालु अतिउग्रकर्म्मा।
महिषमत्सरक्रूर लोभशूकररूप फेरुछल दम्भमार्जारधर्म्मा ४
कपटमर्कट विकटव्याघ्रपाखण्ड मुख दुखद मृगव्रात उत्पातकर्त्ता।
हृदय अवलोकि यह शोक शरणागतं पाहि मां पाहि भो विश्वभर्त्ता ५
प्रवल अहङ्कार दुर्घटमहीधर महामोहगिरिगुहा निविडांधकारं।
चित्तवेताल मनुजादमन प्रेतगणरोग भोगौघवृश्चिकविकारं ६
विषयसुखलालसा दंशमशकादि खल झिल्लिरूपादि सब सर्प स्वामी।
तत्र आक्षिप्त तव विषयमायानाथ अन्ध मैं मन्द व्यालादगामी ७
घोर अवगाह भवआपगा पापजलपूर दुष्प्रेक्ष दुस्तर अपारा।
मकरषड्वर्ग गोनक्र चक्राकुला कूल शुभ अशुभ दुखतीव्रधारा ८
सकलसंघटपोच शोचवश सर्वदा दासतुलसी विषमगहनग्रस्तं।
त्राहि रघुवंशभूषण कृपाकर कठिनकाल विकराल कलित्रासत्रस्तं ९

टी०। अब परमार्थ पथ में जो विघ्न तिनके निवारणहेतु प्रार्थना करत यथा हे रघुवर्य्य देव! रघुवंश में आप श्रेष्ठ हौ ताते दीनउद्धरण दीनजनको भवसागरते उद्धार करते हौ काहेते सेवक दुःखते दुःखित है दुःख निवारना इति करुणा गुण ताके भरे भवन मन्दिर हौ ताते संताप शमन सेवकन में जो सम्पूर्ण तापै ताके नाशकर्त्ता हौ पुनः ओघसमूह जो पाप ताको हरिलेते हौ ऐश्वर्य में विमल विज्ञान विग्रह अमल विज्ञान शुद्धआत्मरूप हौ देही देह विभाग रहित सोई लोकनपर अनुग्रह दयाकरि वर उत्तम भूपरूप धरि माधुर्य में खरारि खरादि राक्षसन को मारि विबुध नर्मद देवतनको सुखदायक भयउ १ ऐसे समर्थ उदार जानि मैं भयातुर है आपकी शरण हौं कौन भय है कि हे मुरारि! संकुलकर्म परिपूर्ण जो शुभाशुभ कर्म तेई गहन तरु वृक्ष हैं जामें ऐसा गम्भीरघन अतिघोर अत्यन्त भयंकर जो संसाररूप कान्तारवन तामें कर्म रूप वृक्षनकी सघनताते ऐसा गहन है जामें परमार्थ पथ नहीं ढूंढ़े मिलत पुनः गम्भीरता काहेते है जामें विषयकी वासना यथा श्रवण सों रागादि सुनवो नेत्रते सुन्दररूप देखनो जिह्वासों षट्रस भोजन इत्यादि वासना रूप वल्ली लता वृक्षनपर फैली है भाव कर्मन में लगी है सो गम्भीरता है पुनः वृक्षबेलिन में कांटा होते हैं इहां वासना कर्मन में हानि तेई खरतीक्ष्ण कण्टक हैं तिनकरिकै जीव आकुल व्याकुल है पुनः विपुल निबिड़ बहुत सघनवृक्ष हैं ताते अटवी वनभारी कठिन है जामें निर्वाह नहीं होत २ पुनः भयंकरता क्या है वनमें अनेकजीव भयानक होते हैं इहां चित्त की वृत्ति कामते परस्त्री हरण लोभते पर

धनहरण क्रोधते परहानि निन्दादि विविध अनेक भांति चित्त चिन्तवन के व्यापार सोई सेन जो बाज उलूक जो घुघुवा काक बक गृद्धादि आमिष अहारी मांस खानेवाले निकर खग समूह पक्षीहैं पुनः संसार में जे छलविद्या में निपुण अर्थात् मीठीवार्त्ता करि अपना कार्यसाधि पीछे शत्रुता करते हैं पुनः जे छिद्र निरखत पर दोष देखते हैं इत्यादि अखिल यावत् खल हैं तेई चोर ठग बटपार सम तेई जीव जन पथिकन के मन में खेदकारी अर्थात् परमार्थ चलनेवाले जीवनको दुःख दायक हैं भाव थिरता शान्ति सुखरूप धनको हरिलेते हैं ३ क्रोध मनुस्मृतौ ॥ पैशून्य साहसद्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थ दूषणम्। वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोपिगणोष्टकम् ॥ इति क्रोध सोई मत्त करि माताहाथी है पुनः कदर्पकाम यथा ॥ मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादो स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाद्यं च कामजो दशको गणः ॥ इति काम सोई मृगराज सिंह है पुनः विद्या धनादि में हर्ष बढ़ावना जो मद सो वृक भेड़हा है पुनः दर्प अहंकार सो भालु ऋक्ष है इत्यादि उग्रकर्मा कठिन दुःखद कर्म करते हैं भाव जीव को खाइजाते हैं अब उपमान उपमेयको धर्म मिलान यथा हाथी चतुर होता है परन्तु माते पर अनीति करताहै तथा क्रोध भये पर चुगुली सहसा द्रोह ईर्षा असहन वृथा दूषण देना गारी कठोर कहना इत्यादि करता है सिंह सब पशुनते सबल होता है पुनः एक उदरहेतु चारिउ चरण अरु मुख पांचहूं ते चोटकरत तथा कामौ सबसों बली पुनः केवल मैथुनहेतु पांचौ इन्द्री विषयते जीवपर चोट करत पुनः भेड़हा सबलको डरत अबल पर जालिम होत तथा मदौ सबलसों दबा रहत अबलको सतावत पुनः ऋक्ष मांसअहारी नहीं परन्तु क्रोधते चोट करत तैसे दर्पसहज दुःखद नहीं परदुर्भावते दुःखदायी होत ताते उग्रकर्म करनेवाला है पर हित न देखि सकना इति मत्सर सोई क्रूर दुष्टमहिष है जो बे प्रयोजन मारत तथा मात्सर्य बेप्रयोजन परहानि करत पुनः शूकर अभक्षी होत पुनः हानिकर्तापर चोट करत तथा लोभते धान्य कुधान्य ग्रहणकरत पुनः हित हानिकर्ता को शत्रु ह्वै जात ताते लोभ शूकररूप है फेरु शृगाल चोरीते हानिकरत तथा छलौ छिपे कार्य साधत ताते छल सियार है छिपेपर हानिकर्त्ता मार्जार बिलार देखत में शुद्ध अंतर दुष्ट तैसे दंभ को धर्म है कि वेषादि वचन साधुके से अंतर दुष्टता है ४ वानर स्वाभाविक शुद्ध बनेरहत घात पाइ भोजनादि लै भागत पीछाकरनेपर काटिखात तथा कपटी प्रयोजनमात्र वेष छपाइ आवत कार्य साधि शत्रु ह्वै जात ताते कपट विकट मर्कट भयंकर वानर है व्याघ्र स्वाभाविक उत्पात कर्त्ता सबपर चोटकरत पुनः व्रातसमूह मृगनको दुःखदायक है तथा पाखण्ड वेद धर्म निन्दक वचनन ते उत्पातकर्त्ता पुनः वेदकी निंदाते अनेक जनन को दुःखदायक हैं ताते पाखंड को मुख व्याघ्र है यह शोक दुःख अपने हृदय में अवलोक्य देखिकै मैं आपकी शरणागत हौं भो विश्वभर्त्ता, हे संसार के पालक स्वामी! मां पाहि पाहि मेरी बारंबार रक्षा करौ ५ पुनः पुनः रक्षा करने को भाव कि पूर्व जो भय कहि आये तासों रक्षा करहु पुनः आगे औरहू भय है ताहूसों रक्षा करौ आगे क्या भय है कि प्रबल अहंकार सोई नांघने में दुर्घट महीधर नाम पर्वत हैं यथा भूमि मार्ग में पर्वत परत सो दुःखौ करि कोऊ नहीं नांघिसकत तथा परमार्थमार्ग में अहंकार को नांघिबो

दुर्घट है ताते प्रकर्ष करि वली जो अहंकार सो पर्वत है भाव किसी साधन करि अहंकार नहीं टूटत पुनः पर्वतन में गुहा खोह महाअंधकारमय होते हैं तथा परमार्थ में महामोह आतमरूप को विसमरण सोई गिरिगुहा पहार को खोह है जामें निविड़ सघन अंधकार है जामें परे जीवको अपनारूपै नहीं सूझि परत पर्वतन में वैताल रहते हैं ते मुख में अग्निज्वाला वारे डरपावते हैं इहां चित्त सोई वैताल है चिन्तारूप अग्निज्वाला मुख में वारे डरपावता है पहारनमें मनुजअद मनुष्यन को खानेवाले राक्षस रहतेहैं इहां मन विषयासक्त सोई राक्षस जीवको खाइजाने वाला है पुनः पहारनमें प्रेत होत मनुष्यनके लागिकै दुःख देते हैं इहां अनेकन रोग ज्वरातीसारादि तेई प्रेतगणसम लागि जीवको दुःखीकिहेरहत ताते साधनचाल नहीं होत पुनः स्त्री भोजन वसन भूषण वाहन गान गंधादि ओघ नाम समूह जो सुख भोग हैं सोई वृश्चिकविकार वीछिमारे विषकी पीड़ा है भाव विषयभोग परमार्थ में महादुःखरूप है ६ वन में मशाडांस होते हैं ते काटते हैं ताते पथिकन को निद्रादिसुख नहीं होता है तथा इहां विषय सुखकी लालसा परस्त्री आदि मिलनेकी चाह सोई मशकदंशसम जीवकी थिरता सुखको नाश करते हैं पुनः वनमें झिल्ली झींगुरादि जे झंझनाहट शब्द करते हैं ताहू ते निद्रा नहीं आवत तथा इहां कुवचन वोलनेवाले जे खल हैं तेई झिल्लीसम बोलि जीवकी थिरता नाश करते हैं पुनः वनमें सर्प होते हैं तिनके काटेते नर मरिजाते हैं तथा हे स्वामी- रूपादिविषय इहां सर्प सम जीव के नाशकर्त्ता हैं अर्थात् शब्द श्रवण की विषय है स्पर्श त्वचा की रूप नेत्रन की रस जिह्वा की गंध नासिका की इत्यादि विषयन को इंद्रीद्वारा सेवन करतसंते विषयवर्द्धकन को संग होत संगते कामना बढ़त यथा परस्त्रीआदि को मिलन पुनः कामनाहानिभये पर क्रोध होत तब मोह है जीव अचेत होत तब बुद्धि नाश भयेते जीवनाश होत-यथा गीतायां ॥ ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते । संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ पुनः तत्र तहां हे नाथ ! तवविषममाया आक्षिप्त आपकी कठिन जो माया है ताके आक्षिप्त नाम प्रेरणाते हे व्यालादगामी ! व्याल सर्प तिनको अद भक्षणकरनहारे गरुड़ तापर चढ़ि गमन करनेवाले हे प्रभु ! माया प्रेरणाते मैं अंध ज्ञान विरागरूप नेत्ररहित पुनः मतिमंद निर्बुद्धी हौं ताते भागि नहीं सक्ता हौं ७ पुनः जामें पापरूप जल परिपूरभरा है ऐसी भवरूप आपगा नदी घोर अवगाह भयंकर अथाह है पुनः दुःप्रेक्ष प्रेक्ष जो बुद्धि तासों दुःखौकरि विचार में नहीं आवत पुनः अपारा दुस्तर अर्थात् ऐसी अपार चौड़े फाटकी है कि ज्ञान योगादि दुःखौ करिकै तरिवेयोग्य नहीं है पुनः काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य्य इत्यादि जो षट्वर्ग तेई हैं जामें मगर पुनः गो जो इंद्री तेई हैं नक्र नाक तिनके खाइजाने के डर करिकै आकुल व्याकुल हौं पुनः शुभ अशुभ द्वैभांति के जो कर्म यथा यज्ञ दान तप तीर्थ व्रत जप पूजा पाठ संध्या तर्पण परोपकारादि शुभ हैं पुनः हिंसा चोरी जुवा वेश्या परस्त्रीरत परधन हरण अपकारादि अशुभ इति शुभाशुभ कर्म दोऊ कूल किनारा हैं पुनः तीव्र कठिन दुःख सोई है धारा जाकी ८ पोच

शोच सकल संघट्ट पोच नीच शोच दुःखमय तर्कणा सवप्रकार की संघट्टनाम घेरे हैं तिनके वश में परा विषम गहन कठिनवन के बीच में तुलसीदास सर्वदा सदा ग्रस्त लीलिलेने चाहता है कौन लीलने चाहत जाको कठिन है निर्दयी स्वभाव पुनः विकराल विशेषभयंकर जो कलिकाल ताकी त्रास जो डर त्यहि करिकै त्रस्त कहे डरिकै शरणागत हौं हे रघुवंशभूषण कृपागुण के आकर खानि। त्राहि मेरी रक्षा करो भाव संसार वन में कलियुग लीलेलेत तासों वचावो ६॥

(६१) नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यानपारायणं ज्ञानमूलं
अखिलसंसारउपकारकारण सदयहृदय तपनिरत प्रणतानुकूलं १
श्यामनवतामरसदामद्युतिवपुष छविकोटिमदनार्कअगणितप्रकासं।
तरुणरमणीयराजीवलोचनललित वदनराकेश कर निकरहासं २
सकलसौन्दर्यनिधि विपुलगुणधाम विधिवेदबुधशम्भुसेवित अमानं।
अरुणपदकंजमकरन्दमन्दाकिनी मधुपमुनिवृन्द कुर्वन्ति पानं ३
शक्र प्रेरित घोरमारमदभंगकृत क्रोधगत बोधरत ब्रह्मचारी।
मारकण्डेय मुनिवर्य हित कौतुकी बिनहिं कल्पान्त प्रभु प्रलयकारी ४
पुण्य वन शैल सरि बद्रिकाश्रम सदासीनपदमासनं एकरूपं।
सिद्ध योगीन्द्र वृन्दारकानन्दप्रद भद्रदायक दरश अतिअनूपं ५
मान मनभंग चितभंग मद क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवनभर्त्ता।
द्वेष मत्सर राग प्रवल प्रत्यूह प्रति भूरिनिर्दय क्रूरकर्मकर्त्ता ६
विकटतर वक्र क्षुरधारप्रमदातीव्र दर्पकंदर्प खरखड्गधारा।
धीरगम्भीरमनपीरकारक तत्र के वराका वयं विगतसारा ७
परमदुर्घटपंथ खलअसंगतसाथ नाथ नहिं हाथ वरविरतियष्टी।
दर्शनारत दास त्रसित मायापास त्राहि हरि त्राहि हर दासकष्टी ८
दासतुलसी दीन धर्मसम्बलहीन श्रमित अतिखेदमतिमोहनाशी।
देहि अवलम्ब न विलम्ब अम्भोजकर चक्रधर तेजबलशर्मराशी ९

टी०। इस भरतखंड के रक्षक जानि बद्रीवनवासी नरनारायण के गुणगाइ प्रार्थनाकरत यथा नर नारायण देव तिनहिं मैं नमस्कार करतहौं कैसे हैं करुणागुण भरे अयन मंदिर हैं पुनः ध्यान में पारायण आत्मरूप ध्यान में सदा तत्पर हैं पुनः ज्ञान के मूल कारण हैं भाव सव जीवन को ज्ञान उपजावने हेतु ध्यान स्थित रहते हैं काहेते अखिल समग्र संसारके उपकार सव जीवनको भला करने कारण सदय सहित दया हृदय है जाको ताते तप निरत तपस्या में लगे रहते हैं मानो तपधर्म सबको उपदेश करतेहैं पुनः प्रणत जो शरणागत जन तिनपर अनुकूल सदा प्रसन्न रहते हैं १ नव नवीन फूलाहुआ श्यामरंग को तामरस जो कमल ताके दाम माला कैसी द्युति प्रकाशमान वपुष शरीर तामें कोटिन मदन कामकी ऐसी छवि है पुनः

अगणित अर्क सूर्यनकी ऐसी प्रकाश है पुनः तरुण रमणीय राजीवलोचन तुरत के फूले हुये कमलसमनेत्र कृपारस भरे हैं पुनः ललितवदन सुन्दरमुख पूर्णचन्द्रसम ताकी हास प्रसन्नतापूर्वक मुसुकानि कैसी शोभित होत यथा राकेशकरनिकर चन्द्र किरणको समूह ता सरीखि जननको आह्लादकहैं २ सकलप्रकारकी सुन्दरता के निधि स्थान हैं पुनः कृपा दयादि विपुल बहुते गुणभरे धाम पुनः विधि ब्रह्मा वेद बुद्धिमान् यावत् शम्भु इत्यादि करि सेवित अर्थात् सबै सेवाकरते हैं अरु आप अमान रहते हैं पुनः अरुणकंज लाले कमलन सम जो पद तिनको मकरंद रस जो मंदाकिनी गंगाजी ताको मुनिनके वृन्द पानं कुर्वंति पान करतेहैं ३ तपस्या करते देखि इन्द्रने अप्सरन सहित कामदेवको पठाये बद्रीनारायण की तपस्या भंगकरने हेतु तिन अनेककला करि हारि पांयनपरे तब क्रोध रहित प्रसन्नतासहित विदाकिये इति शक्रप्रेरित इन्द्रको पठावा हुआ घोरमार करालकामदेव ताके मद को भंगकृत नाश कीन्हे पुनः गतनाम नहीं है क्रोध जिनके भाव अपराधिहु पर क्रोध नहीं कीन्हे ऐसे बोधरत शुद्ध ज्ञानमें तत्पर ब्रह्मचारी हैं जिनमें कामको वेग न व्यापा पुनः मुनिन में वर्य्य श्रेष्ठ जो मार्कण्डेय मुनि बड़ी तपस्या कीन्हे तापर प्रसन्न ह्वै नरनारायण कहे कि वर मांगो मार्कण्डेय बोले कि अपनी माया देखावो इति मुनिको माया देखावने हित कौतुकी प्रभु क्या मायाको कौतुक देखाया कि विना कल्पांत प्रभु प्रलयकारी भये अर्थात् विना प्रलयकाल आये प्रलय देखाय दिये ४ जहाँ वनशैल जो पर्वत सरि नदी इत्यादि पुण्यमयी हैं ऐसा पवित्र जो बद्रिकाश्रम तहां पद्मासन किहे सदा एकरसरूप ते आसीन विराजमान रहते हैं अथवा तपपूर्वक ध्यान स्थित इस आचरणते एक बद्रीनारायणै रूप हैं पुनः सिद्ध योगीन्द्र सिद्धयोगिन में जे श्रेष्ठ हैं पुनः वृन्दारक जो देवता तिनको आनन्द प्रद पूर्णआनन्द देते हैं पुनः जिनके अत्यन्तअनूप जो दर्शन हैं सो तौ स्वाभाविक जनन को भद्र कल्याणदायक हैं बद्रिकाश्रमका मार्ग महाविषम है ताको सहिकै जो जाइ तब दर्श मिलत ताते उपमा रहित कहे भाव और धामन में ऐसा विषममार्ग नहीं है ५ यथा बद्रिकाश्रम के मार्गमें वन शैल नदी कण्टकादि जो विषमता है तथा ध्यानरूप दर्शन मार्ग में हृदय विषे जो विषमता है सो कहते हैं यथा उहां मनभंग पर्वत है इहां प्रभुता महत्त्वादि में चित्त उन्नत करना जो मान सोई मनभंग पर्वत है पुनः उहां चित्तभंग है इहांरूप धन विद्यादि पाइ जो हर्ष मदहै सोई चितभंग पर्वतहै उहां औरहू दुर्घट पहार हैं इहां परस्त्री रतादि जो काम वृथा ईर्षादि जो क्रोध परधन हरणादि जो लोभ इत्यादि अपर दुर्ग पर्वत हैं पुनः हे भुवनभर्त्ता, स्वामी! यथा उहां व्याघ्र, सिंह, वृक, सर्प, कोल किरातादि अनेक निर्दयी जीव कुटिलकर्म करनेवाले मार्गमें विघ्न हैं तथा इहां जननसों विरोध राखना जो द्वेष सो व्याघ्र है पर भला देखि न सहिसकना जो मत्सर सोई सिंह है दुष्टता वृक है पर अपवाद सर्प है पुनः बहुतनमें स्वार्थी प्रीति जो राग सोई लोलकिरात इत्यादि दयाहीन हिंसा चोरी ठगी इत्यादि क्रूरकर्मकर्त्ता प्रबल तन धनादि प्रति प्रत्यूहनाम विघ्न अनेक भांतिके हैं ६ उहां ठग बटपारादि छूरी तरवारि आदिते पाथिकन को मारते हैं इहां मद क्रोधादि जो ठग बटपार हैं तिनमें क्या अस्त्र हैं यथा प्रमदा

युवती ताकी कुटिल कटाक्ष सोई विकटतर महा भयंकर वक्र टेढ़ी छूरी की धार भुजाली पैनी है पुनः कन्दप जो काम ताको तीव्रदर्प अत्यन्त अभिमान सोई खर खड्गधारा पैनी तरवारि की धार है इत्यादि कैसे हैं कि धीर जे विरागवान् हैं पुनः गंभीर जे ज्ञानवान् हैं तिनहूं के मनमें पीरकारक भयरूप शूल करनेवाले विघ्नबाधक जहां हैं तत्र तहां विगतसारा नहीं है सारा जाकी ऐसा वराका विचारा वयंके मैं काहेमें हौं जो उस पन्थ में चलौं ७ काहेते नहीं चलिसक्ता हौं कि प्रथम तौ पन्थपरम दुर्घट अर्थात् सकंटक भूमि नारा नदी वन पहार व्याघ्रादिकन में चलना पुनः असंगत ठग चोरादि खल साथैमें हैं तिनको हटकिबे हेतु हे नाथ! वर विरति श्रेष्ठ वैराग्यरूप यष्टी लाठी भी हाथ में नहीं तौ कैसे बचिसकौं पुनः दर्शन आर्त्त आपके विना दुःखी अरु मायापाश त्रसित शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि जो माया की फँसरी है तामें बँधा त्रसित पीड़ित ऐसा कष्टी अपने दासको जानि हे हरि!त्राहि वारंवार मेरी रक्षा करौ ८ काहेते वारंवार रक्षा करौ कि आपके दर्शनकी प्यास सहित आवत समय धर्म संवलहीन सत्य शौच तप दानादि धर्म्मरूप संवल खर्चा हीन ऐसा दीन तुलसीदास मार्ग चलिबेते श्रमित थका पुनः मायाफाँस में बँधा ताते अत्यन्त खेद विकल ताहूपर मोहने मेरी मतिको नाश करिदिया ताते हे चक्रधर! आप तेज बल वीर्य प्रतापादि सर्व ऐश्वर्य गुणनकी राशि हौ ताते अंभोज कमलकर की अवलम्ब देहि विलम्ब न करौ अर्थात् कलिप्रेरित कामादिते भयातुर सबको आश भरोसा त्यागि दीन अधीन आपकी शरण हौं अरु आप सबल समर्थ शरणपाल हौ ताते निज करकमलते भुज गहि भय सों उबारि अपनी शरण में करि लीजिये ९ ॥

(६२) सकलसुखकन्द आनन्दवन पुण्यकृत बिंदुमाधव द्वंद्वविपतिहारी।
यस्यांघ्रिपाथोजअजशम्भु सनकादिशुकशेषमुनिवृंदअलिनिलयकारी १
अमलमरकतश्याम कामशतकोटिछवि पीतपटतडितइव जलदनीलं।
अरुणशतपत्रलोचन विलोकनि चारु प्रणतजनसुखद करुणार्द्रशीलं २
कालगजराजमृगराज दनुजेशवनदहन पावक मोहनिशि दिनेसं।
चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर सरसिजोपरि यथा राजहंसं ३
मुकुटकुण्डलतिलकअलकअलिव्रातइवभृकुटिद्विजअधरवरचारुनासा
रुचिरसुकपोल दरग्रीव सुखसीव हरि इन्दुकरकुन्दमिव मधुरहासा ४
उरसि वनमाल सुविशाल नवमञ्जरी भ्राज श्रीवत्सलाञ्छन उदारं।
परमब्रह्मण्य अतिधन्य गतमन्यु अज अमितबल विपुलमहिमा अपारं ५
हार केयूर करकनककंकण रतनजटित मणिमेखला कटि प्रदेशं।
युगलपदनूपुरामुखर कलहंसवत सुभगसर्वांग सौन्दर्यवेशं ६
सकलसौभाग्य संयुक्त त्रैलोक्यश्री दक्षदिशि रुचिर वारीशकन्या।
वसत विबुधापगा निकट तटसदनपर नयन निरखन्ति नर तेऽतिधन्या ७

अखिलमंगलभवन निविडसंशयशमन दमनवृजिनाटवी कष्टहर्त्ता।
विश्वधृतविश्वहितअजित गोतीत शिव विश्वपालनहरणविश्वकर्त्ता ॥
ज्ञान विज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य निधि सिद्धि अणिमादिदे भूरिदानं।
ग्रसित भवव्याल अतित्रास तुलसीदास त्राहि श्रीराम उरगारियानं ६

टी०। अब जो काशीजी में विन्दुमाधव नाम भगवत्रूप हैं तिनके गुण गाइ प्रार्थना करते हैं राग द्वेषादि जो द्वंद्व विपत्ति ताके हारी हरिलेनेवाले हे देव, विन्दुमाधव! आप सकलप्रकार के सुखरूप जल वर्षिवे को कन्दनाम मेघ हौ पुनः आनन्दवन पुण्यकृत पुण्यमय आनन्दवन जो काशी ताको उत्पन्न कीन्हेउ जामें स्वाभाविक जीव कृतार्थ होते हैं पुनः अज जो ब्रह्मा शम्भु महादेव इत्यादि लोककर्ता पुनः सनकादि शुकदेवादि परमहंस शेष नारदादि अपर मुनिवृन्द इत्यादि अलि नाम भ्रमर ह्वै कै यस्य अंघ्रि अम्भोज निलयकारी जिन भगवान् के पद कमलन में निलयनाम मन्दिर किहे सदा अनुरागरस पानकरते हैं १ शतकोटि सौ करोरि कामदेवनकी ऐसी छवि है जामें ऐसा मरकत मणि सम चमकदार अमल श्याम तन तामें पीतपट कैसा शोभित होत यथा जलदनील तड़ित इव श्याम मेघ में बिजुली की समान पुनः अरुण शतपत्र लोचन लाले कमलसम नेत्र जो शील करुणारस ते आर्द्र भीजे तिनकी चारु सुन्दरि चितवनि कैसी है प्रणत जन सुखद शरणागत जनन को सहजै सुख देनहारी है अर्थात् छोटहू जनको बड़ाई देना शीलगुण है पुनः सेवक के दुःखते स्वामि दुःखित ह्वै शीघ्र दुःख हरना करुणा गुण है ते सदा नेत्र में धरे हैं २ कैसे सेवकनको सुखद हौ यथा काल गजराज कलिकालरूप जो हाथिनको राजा मत्तहाथी है सेवकनकी सुकृतिरूप कृषी को नाश करनेवालाहै ताके नाशकर्ता मृगराज सिंह हौ पुनः सेवकनको प्रसिद्ध दुःखद जे दनुजेश दैत्यनमें राजा हिरण्यकशिपु रावणादिते वन समान हैं तिनको दहन पावक भस्म करिवे को दावाग्नि समान हौ पुनः मोहरूप निशि रात्री है ताके नाश करिवे को दिनेश सूर्य समान हौ पुनः बलभरे पुष्ट सुंदर चारिभुजा तिनमें सुदर्शन चक्र कौमोदकी गदा जलज कमल दर शंख इति कैसे शोभित यथा सरसिजोपरि कमल के ऊपर राजहंस है ३ शीश पर मुकुट श्रवण में कुण्डल भालपर तिलक सचिक्कण श्याम घुंघुवारे व्रार समूह इति अलकैं दोऊ दिशि कपोलन पर कैसी शोभित होती हैं यथा अलि भ्रमर तिनको व्रात समूह अर्थात् मुखकमल ढिग यथा भ्रमरन को झुंड इव कहे सम है भृकुटी टेढ़ी द्विजदाँत लसमुधर श्वेत चमकदार अधर ओठ कोमल अरुण इत्यादि वर श्रेष्ठ हैं नासाचारु नाक सुंदरि बनी है रुचिर सुंदरते सुंदर गोल कपोल दरग्रीव शंखसम त्रिरेखायुत सम चढ़ा उतार ग्रीव ऐसे सुखके सीव मर्यादा हरि हैं जिनकी मधुरहासमें इंदुकर चन्द्रमा कैसी किरणैं प्रकाशित होत पुनः अरुण ओष्ठन में दंत कैसे दर्शत यथा लालपल्लव में कुंदकली हैं ४ उरसि छातीपर सुविशाल सुंदर बड़ा लम्बा वनमाला जामें नवीन तुलसीकी मंजरी पारिजातादि फूल गुहे वामछाती ढिग पीतरोमनकी भ्रमरी इति श्रीवत्सलांछन चिह्न उदार सब फलदायक भ्राजत है ब्राह्मण को बड़ाकरि मानना

ब्रह्मण्य अत्यंत बड़ा करिमानते ताते परम ब्रह्मण्य हैं काहेते मन्युगत क्रोध रहित हैं अर्थात् भृगु वृथा लातमारे ताहूपर क्रोधित न भये ताते धन्य हौ अज जन्मरहित अमित संख्या रहित है बल बहुत ऐसी अपार महिमा है जाको कोऊ पार नहीं पावत तिनमें ऐसी शांति ताते धन्य धन्य सब करत ५ मणिनके हार गरेमें केयूर बहूंटा भुज मूलमें कनक सोनाते बने हीरा पन्नादिरत्न जटित कंकण करमूलमें मणिस्वर्णमय मेखला करधनी कटि प्रदेश में शोभित युगलपद दोऊ पांयनमें नूपुर पहूटा कलहंसवत् मुखर कलहंसन कैसो शब्दकरिरहेहैं इत्यादि सर्वांग सुभग शोभा ऐश्वर्य परिपूर्ण सौंदर्य वेशम् सुंदरता अधिक है अर्थात् ऐसी सुंदरता किसी देव में नहीं है ऐसे सर्वांग सुठौर बने हैं ६ सकल सौभाग्य सब प्रकारकी जो सुंदर भाग्य है यथा सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम्। भूषणं वाहनं चेति भोगाष्टकमुदीरितम्॥ इत्यादि जननको देनेहेतु हाथमें धारणकहे हैं इति सकल सौभाग्यसंयुक्त भाव हाथ में लीन्हे सहित पुनः त्रयलोक्यश्री तीनिहूंलोकन की ऐश्वर्यमय शोभा सर्वांग में धारण किहे ताते रुचिर सुंदर स्वरूपवती वारीश कन्या लक्ष्मीजी सो दक्ष दक्षिणदिशि विराजमान हैं भाव इहां भगवान् सदा सुखः-दान पर स्थित हैं ताते पत्नीको दक्षिणदिशि राखे हैं यह स्मृतिको वचन है यथा॥ सीमन्ते च विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने। व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे॥ विबुधआपगा देवनदी श्रीगंगाजी तिनके निकट लगे ताहू पर तट विशेषि कगारपर सदन मंदिर में बसत तिनपर जे नयन निरखंति नेत्रनतें देखते हैं ते नर अतिधन्य बड़े भाग्यवाले हैं ७ अखिल संपूर्ण प्रकार मंगल भरे भवन मंदिर पुनः निविड़ सघन जो संशय ताके शमन नाशकर्ता हौ पुनः वृजिनअटवी पापनको वन ताके दमन दलिडारनेवाले कष्टहर्ता सब दुःखन को हरिलेनहारे विश्वधृत संसार को धारण करनेवाले संसार जीवन के हितकर्ता सब सों अजित गोतीत इंद्रिन करि नहीं प्राप्त शिव कल्याणरूप पुनः विश्वकर्ता संसार को उत्पन्न कर्ता पालनकर्ता हरण संहारकर्ता ८ सदा आत्मरूप पर दृष्टि इति ज्ञान सदा अनुभव सो विज्ञान संसारसुख को त्याग सो वैराग्य पुनः तेज बल शक्ति वीर्य प्रतापादि परिपूर्ण सो ऐश्वर्य इत्यादि के निधि भरे स्थान पुनः अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राकाम्य, वशीकरण, ईशिता इत्यादि सिद्धि आदि भूरि बड़ेभारी दानके देनहार हौ अर्थात् याचकमात्र को परिपूर्ण दान देतेहौ ऐसे उदारजानि महूं प्रार्थना कीन्हेउँ हे श्रीरमण, लक्ष्मीनाथ! भवव्याल ग्रसत भवरूप सर्प लीलेलेत ताते अतित्रास अत्यंत सडर हौं ऐसा मैं जो तुलसीदास ताको त्राहि रक्षा कीजिये भव सर्प है अरु उरगन के अरि सर्पनके नाशकर्ता सो आपके यान सवारी हैं गरुड़ ९॥

राग आसावरी।

(६३) इहै परमफल परमबड़ाई।

नखशिखरुचिर बिन्दुमाधवछबि निरखहिं नयन अघाई १
विशद किशोर पीन सुन्दर वपु श्याम सुरुचि अधिकाई।
नीलकंज वारिद तमाल मणि इन्ह तनु ते द्युतिपाई २

मृदुलचरण शुभचिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई ।
अरुण नील पाथोज प्रसव जनु मणियुत दल समुदाई ३
जातरूप मणि जटित मनोहर नूपुर जन सुखदाई ।
जनु हर उर हरि विविध रूपधरि रहे वरभवन बनाई ४
कटितट रटति चारु किंकिणिरव अनुपम वरणि न जाई ।
हेमजलज कलकलिन मध्य जनु मधुकरमुखर सोहाई ५
उरविशाल भृगुचरण चारु अति सूचत कोमलताई ।
कंकण चारु विविध भूषण विधि रचि निजकर मनलाई ६
गजमणिमाल बीच भ्राजत कहिजात न पदिक निकाई ।
जनु उडुगणमण्डल वारिदपर नवग्रह रची अथाई ७
भुजगभोग भुजदण्ड कंज दर चक्र गदा बनिआई ।
शोभासीव ग्रीव चिबुकाधर वदन अमितछवि छाई ८
कुलिश कुन्द कुड्मल दामिनिद्युति दशनन देखि लजाई ।
नासा नयन कपोल ललित श्रुति कुण्डल भ्रू मोहिं भाई ९
कुञ्चित कच शिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई ।
अलर तड़ित युगरेख इन्दुमहँ रहि तजि चंचलताई १०
निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई ।
बहु मणि युत गिरिनील शिखरपर कनकवसन रुचिराई ११
दक्षभाग अनुराग सहित इन्दिरा अधिक ललिताई ।
हेमलता जनु तरुतमाल ढिग नीलनिचोल उढ़ाई १२
शत शारदा शेष श्रुति मिलि करि शोभा कहि न सिराई ।
तुलसिदास मतिमन्द द्वन्द्वरत कहै कौन विधि गाई १३

टी० । हे मन विंदुमाधव भगवान् के नखते शिखापर्यंत सर्वांग तन में रुचिर सुंदर जो छवि है ताको नेत्रनसों अघाइकै निरखहु सदा देखो तौ यहै परमफल है अर्थात् अर्थ धर्म काम फल हैं तिनमें मोक्ष परमफल है सो हरिध्यान ते सुलभ है पुनः भगवत् भक्ति प्राप्ती सब बड़ाइनते अधिक परम बड़ाई है यथा पद्मपुराणे ॥ कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा भाग्यवती च धन्या । स्वर्गे स्थिता ये पितरोपि धन्या येषां कुले वैष्णवनामधेयम् १ किशोर सदा षोडशवर्षकी अवस्था विशद अमल पीन पुष्ट सुंदर सर्वांग सुठौर बने ऐसा श्यामवर्ण वपु नाम शरीर जाके देखत सुंदर रुचि अधिकाती है कैसा श्याम शरीर है कि नीलकंज श्याम रंग को कमल पुनः वारिद सजल मेघ तमाल वृक्ष इंद्र नीलमणि इत्यादि इसी तनुते द्युति पाई है अर्थात् तन में कोमलता चिक्कणता समूह तन में है त्यहिमा ते किंचित् कमल ने

पाई तथा गंभीरता मेघ श्यामता तमाल मणिचमक इत्यादि तनै तें पाई २ मृदुल कोमलचरण तरवा में वज्र अंकुश ध्वज कमलादि जो शुभ मंगलीक चिह्न हैं ते शोभित पुनः पदज जो अँगुरी नखन सहित में अत्यंत अद्भुत आश्चर्यमय उपमा आवती है ताकी उत्प्रेक्षा करत कि सनख अँगुरी नहीं हैं यथा अरुण नीलपाथोज आधा लाल आधा श्याम कमल तिनते जनु मणिनयुत समुदाई दल प्रसव अर्थात् तरवालालि पदपृष्ठ श्याम कमल तामें नख मणिन सहित अँगुरी समूह दल उत्पन्न भये यह आश्चर्य है ताते अद्भुत उपमा है ३ जातरूप सोना मणिन जटित मनोहर घने नूपुर पहुटा पाँयन में शोभित जो दर्शनमात्र जननको सुखदेनहारे कैसे सोहत यथा हर शिवजीके डरते हरि जो काम सो विविध अनेकभांति के रूप धरिकै वर भवन श्रेष्ठ मन्दिरवनाइ भगवत् पद अभय थल में रहे जामें शिवजी जराइ न सकैं इस हेतुते ४ कटितट चारु किंकिणी सुंदरि करधनी रटति वाजिरही है ताको रव शब्द वरणि नहीं जात उपमा कहत नहीं वनत तथापि कवि स्वभाव ते उत्प्रेक्षा करत सुवर्णकी किंकिणी नहीं है हेम जलज सोनेके कमलन की कल सुंदरी कलिन के मध्य में निशामुख में वन्द भये जे मधुकर भ्रमर तिनको मुखर शब्द सुहाई सुंदर ह्वै रहा है अर्थात् किंकिणी के भीतर दाना परे बोलि रहे सो जनु कमल संपुटिन के मध्य वद भ्रमर बोलिरहे हैं ५ उर विशाल छाती चौंड़ी तापर भृगु मुनिके चरण को चिह्न कैसा सोहत अति चारु अत्यन्त सुन्दर सो कोमलताई सूचत दर्शावत अर्थात् ऐसा कोमल स्वभाव है जे भृगुचरण प्रहार ते सक्रोधित न भये पुनः चारु सुन्दर कंकण आदि विविध अनेक भांति के यावत् भूषण धारण किहेते ऐसे सुन्दर देखात जिनको विधि निजकर ब्रह्मानें अपने हाथन मन लगाइके बनाया है रचिकै विचित्र ६ गजमणि गजमुक्तन को माला उरपर ताके बीच में पदिक अर्थात् बहुरंग मणि जटित चौकी ताकी निकाई जैसी भ्राजत शोभित है सो कहि नहीं जात उपमा देत नहीं वनत परन्तु कविस्वभावते उत्प्रेक्षा करत कि श्यामरूप नहीं हैं वारिद सजल मेघ है तापर गजमुक्तन की माल नहीं है जनु उडुगण नक्षत्रनको मंडल है ताके बीचमें वहुरंगकी मणि जटित चौकी नहीं है जनु सूर्य, चंद्र, भौम, बुध, गुरु, भृगु, शनि, राहु, केतु इत्यादि नव ग्रह मिलि अथाई सभारचे वैठे हैं बहुरंगकी मणी तथा ग्रह अनेकरंग हैं ताते नवग्रह की अथाई कहे ७ भुजग सर्प ताको भोग शरीर तैसे चिकण चढ़ा उतार पुष्ट भुजदण्ड चारि तिनमें कंज जो कमल दर जो शंख चक्र गदा वनिआई अर्थात् चारिहू भुजन में शंख, चक्र, गदा, पद्म भली भांति शोभा प्रकट करते हैं शोभाके सींव मर्याद ग्रीव है पुनः चिबुक जो ठोढ़ी अधर जो ओठ वदन जो मुख इत्यादि में अमित संख्यारहित छवि छाइ रहीहै ८ वज्र जो हीरा तथा कुंद कुंडल कुंदकी कलिनकी मंडलाकार पंक्ति पुनः दामिनी इत्यादि की द्युति झलक सो दशननि दांतनिको देखि लजात समता नहीं करिसकत शुकतुण्डसी नासा कमलसे नयन यमन आरसीसे गोल कपोल इत्यादि ललित सुन्दर बने श्रुति जो कान तिनमें कुंडल भ्रू भौंहैं मोको अति भाई अत्यंत भली लागत भाव भृकुटी के फेरे मेरा कार्य सिद्ध होइगो ताते अत्यंत भावत ९ कुंचित कच टेढ़ेवार शिरमें तापर स्वर्णमणिमय मुकुट प्रकाशमान भाल साथ तापर

केशरि कर्पूर श्रीखंडको तिलक जैसा शोभित होत सो समुझाइकै कहत हौं यथा अल्पतड़ित थोरी विजुली अपनी चंचलताई तजि त्यागिकै युग कहे दुइरेखा हैं इंदुमहँरहि चंद्रमाविषे वासकिहेहैं मुखचंद्र. तिलक युगरेख अल्पतड़ित थिरह्वै वासंकिहे है १० मलीनता रहित निर्मल पीतदुकूल वसनश्याम अंगमें जैसा सोहत तैसी उपमा उरमें नहीं समात ताते अनुपम है तथापि कहत कि श्यामतन सो नीलगिरिको शिखर कंगूरा है तापर बहुमणियुत सहित कनक सुवर्णमय वसन की रुचिराई सुंदराई है भाव मणिमय सोनेको वसन शोभादेत है ११ काशीजीमें सदा मुक्तिदानदेते हैं इसहेतु दक्षभाग दहिनी दिशिमें अनुरागसहित अर्थात् पतिमें थिर प्रीति कीन्हे इंदिरा लक्ष्मीजी शोभित हैं तिनके सर्वांगमें ललिताई शोभा अधिक है सो गौरवर्ण नीलवसन धारण किहे भगवान् के निकट कैसी शोभित होती हैं यथा श्यामतनु नहीं है तमाल को वृक्ष है ताके ढिग लक्ष्मीजी जनु हेम सोनेकी लता हैं.सो नीलरंग को निचोल वसन तासों उठाई हैं १२ शत सैकरन शारदाशेष श्रुति जो वेद इत्यादि सब मिलकरि जिन भगवान् की शोभा कहा चाहैं जो कल्पांतन कहा करैं तबहूं कहि न सिराइ पार न पावैं तहां द्वंद्वरत अर्थात् राग द्वेष हर्ष विषाद इत्यादि में प्रीति किहे मति को मंद निर्बुद्धि तुलसीदास कौनविधि ते गाइकै अर्थात् उपमादि बखानकरि कौन विधिते कहै अनुभवबुद्धि रहित १३ ॥

(६४) मन इतनोई या तनु को परम फल ।

सबअँगसुभगविन्दुमाधवछवि तजिस्वभावअवलोकुएकपल १
तरुण अरुण अम्भोज चरण मृदु नखद्युति हृदयतिमिरहारी ।
कुलिश केतु यव जलज रेखवर अंकुश मनगज वशकारी २
कनकजटित मणि नूपुर मेखल कटितट रटति मधुरबानी ।
त्रिवलीउदर गँभीर नाभिसर जहँ उपजे विरञ्चि ज्ञानी ३
उर वनमाल पदिक अतिशोभित विप्रचरण चित कहँ करषै ।
श्यामतामरसदामवरणवपु पीतवसन शोभा वरषै ४
कर कंकण केयूर मनोहर देति मोद मुद्रिक न्यारी ।
गदा कंज दर चारु चक्रधर नागशुण्डसम भुजचारी ५
कम्बुग्रीव छविसींव चिवुक द्विज अधरअरुण उन्नतनासा ।
नवराजीवनयन शशिआनन सेवकसुखद विशदहासा ६
रुचिर कपोल श्रवणकुण्डल शिरमुकुट सुतिलकभाल भ्राजै ।
ललितभृकुटि सुन्दरचितवनि कच निरखि मधुपअवली लाजै ७
रूप शील गुण खानि दक्षदिशि सिंधुसुता रत पदसेवा ।
जाकी कृपाकटाक्ष चहत शिव विधि मुनि मनुज दनुज देवा ८
तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मति यहि स्वरूप अटकै ।

नाहिंत दीन मलीन हीनसुख कोटिजनम भ्रमि भ्रमि भटकै ६

टी०। हे मन! या मनुष्य तनु धरे को परमफल इतनोई है कि जिनके नख ते शिखापर्यंत सब अंग सुभग शोभा ऐश्वर्य भरे ऐसे बिंदुमाधव भगवान्‌की छवि ताको एक पल भरि चंचलस्वभाव तजिके अवलोकु सावधान ह्वैके देखु भाव चंचलता त्यागि थिरह्वै प्रेम सहित जो एक पल भरि भगवान् के रूप की माधुरी अवलोकन करु तौ देह धरे को फल जो भवबंधनते छूटि जाना सो अवश्यही परिपूर्ण तोको लाभ होइगो १ कैसे सर्वांग सुभग हैं कि तरुण तुरंत को फूला हुआ अरुण अंभोज लालरंग को कमल तद्वत् मृदु कोमल चरण हैं पुनः चरणन में जो नख हैं तिनकी द्युति प्रकाश कैसी है कि ध्यान कीन्हेते हृदय में जो तिमिर मोहांधकार है ताको हरि लेते हैं भाव हृदय में अनुभव प्रकाश करत पुनः तरवन में कुलिश जो वज्र केतु जो ध्वजा यव जलज जो कमल इत्यादि रेखा वर श्रेष्ठ फलदायक हैं तथा अंकुश कैसा है मनगज वशकारी मनरूप जो माताहाथी है ताको वशकरिलेत अर्थात् वज्र को ध्यान कीन्हे पाप नाश होत केतु ते विजय होत यव ते धन होत कमल ते अविद्या नाश अंकुश को ध्यान कीन्हे मनवश होत २ कनक सोने सों रचित तामें मणि जटित नूपुर पाँयन में तथा मेखल करधनी कटितटमें मधुर वाणीते रटति बाजिरही है सुन्दर उदर तापै त्रिवली तीनिरेखा तहां गंभीर गहिरी नाभीरूप सर तड़ाग है जहां विरंचि ब्रह्मा ऐसे ज्ञानी उपजे भाव नाभिते कमल भया तामें ब्रह्मा उपजे जिनके स्वाभाविक अनुभव ज्ञान भया जाते सृष्टिकर्ता लोकनायक भये ३ तुलसी कुंद मंदार पारिजात कमलादि फूलनसों गुहा वनमाला उरपर शोभित ताके बीच में पदिक जड़ाऊ चौकी अत्यंत शोभा देत ताके समीप विप्रचरण भृगुलतासो चितकहँ करषै स्वभावकी कोमलता दर्शाय सुस्वामित्व सूचित करि चित्तको खैंचेलेत भाव सबको चित्त स्ववकाई चाहत श्यामरंग को तामरस जो कमल ताको दाम जो माला ताके वर्णवपु शरीरौ श्याम वर्ण तामें पीतवसन शोभारूप जल वर्षिरहा है ४ करमूल में कंकण भुजन में केयूर बहूटा मनको हरणहारा तथा अँगुरी में मणि जटित मुद्रिका सो न्यारी मोद मन को आनंद देरही है पुनः नाग हाथी के शुंडसम सुधर पुष्ट चारिभुजा तिनमें गदा कंज जो कमल दर जो शंख चारु सुंदर चक्रधारण किहे हैं ५ कंबु शंखसम ग्रीव छविकी भरी सींव मर्यादा है चिबुक जो ठोढ़ी द्विज जो दाँत सुन्दर अरुण अधरलालि ओष्ठ हैं नासा उन्नत ऊंची है नव नवीन फूला हुआ राजीव कमल तद्वत् नयनशशि आननचन्द्रमा सम मुख विशद उज्ज्वलहास जननको सुखदेनहारी है ६ रुचिर सुन्दर कपोल श्रवणन में कुंडल शिरपर मुकुटमणि जटित प्रकाशमान भाल माथपर सुन्दर तिलक भ्राजे विराजमान है ललित सुन्दरी भृकुटी सुन्दरि चितवनि कच बार कपोलनपर शोभित तिनको निरखि देखिके मधुपअवली भ्रमरनकी पाँती लजात ७ रूपादि शोभा के गुणशीलादि स्वभाव के गुण इत्यादि गुणनकी खानि सिंधुसुता श्रीलक्ष्मीजी दक्षिण दिशि विराजत भगवत् पद सेवा में रत सदा तत्पर हैं जाकी कृपाकटाक्ष चाहते हैं शिव ब्रह्मा नारदादि मुनि मनुज मनुष्य ध्रुवादि मनुवंशी दनुज प्रह्लादादि दैत्यवंशी देव इन्द्रादि देवता ८ सबको सिद्धान्त गोसाँईजी

कहत कि भवत्रास अर्थात् गर्भवास जन्म जरा मरणादि भय तब मिटै जब यहि भगवत् स्वरूप में मन अटकै सनेह सहित लागै; नाहीं तौ व्याधि वियोगादि करि दीन दरिद्रता करि मलीन भोजन वसनादि सुख करि हीन इसीदशा ते अनेकन योनिन में कोटि करोरिन जन्म तक भ्रमि भ्रमि भटकत परमार्थ मार्ग भूला फिरै थिरता सुख कबहूं न पाई यह सामान्य लोक शिक्षात्मक है भाव भगवत् पदमें मन लगायेते जीवको कल्याण है यह जानि हरिपद चिन्तवन करौ ६॥

राग वसन्त।

(६५) वन्दौं रघुपति करुणानिधान। जाते छूटै भवभेद ज्ञान॥
रघुवंश कुमुद सुखप्रदनिशेश। सेवित पदपंकज अज महेश॥
निज भक्त हृदय पाथोज भृङ्ग। लावण्यवपुष अगणित अनङ्ग॥
अतिप्रबल मोहतम मारतण्ड। अज्ञानगहन पावकप्रचण्ड॥
अभिमानसिन्धु कुम्भजउदार। सुररंजन भंजनभूमिभार॥
रागादि सर्पगण पन्नगारि। कन्दर्पनाग मृगपति मुरारि॥
भवजलधि पोत चरणारविन्द। जानकीरमण आनन्दकन्द॥
हनुमंत प्रेमवापी मराल। निष्काम कामधुकगो दयाल॥
त्रैलोक्यतिलक गुणगहन राम। कह तुलसिदास विश्रामधाम॥

टी०। करुणा यथा॥ दोहा॥ सेवक दुखते दुखित है, स्वामि विकल ह्वैजाइ। दुःख निवारै शीघ्रही करुणा गुण सो आइ॥ इत्यादि करुणागुण भरे निधान स्थान रघुपतिको वंदौं प्रणाम करतहौं किसहेतु जाते भव भेद ज्ञानछूटै भव जो संसार तामें भेद द्वैत बुद्धी यथा हम ब्राह्मण सबसों ऊंचे स्वामी हैं और सब हमारे सेवक हैं हम राजा और सब हमारे प्रजा हैं इत्यादि देहाभिमानते संसारमें भेद जानना सो भेदज्ञान जाते छूटिजाइ समता दृष्टिते चराचरमें भगवत्रूप व्यापक देखाइ १ जिनके पदपंकज अज महेश सेवित अर्थात् ऐश्वर्य ऐसी कि जिनके पद कमलनकी सेवा ब्रह्मा शिव करतेहैं सोई सुलभ लोकोद्धारहेतु माधुर्यमें रघुवंशरूप जो कुमुद कोकाबेली ताको सुखप्रद प्रफुल्लितकर्ता निशाके ईश चन्द्रमासम उदित है लोकन में सुयशप्रकाशित कीन्हे २ निजभक्त अपने जे अमल अनुरागी भक्त हैं तिनको हृदय रूप पाथोज कमलहै तामें अनुरागरस पान करिबे हेतु भृंगवत् सदा वास करते हैं भाव भक्तन के वश हैं पुनः वपुष देह अर्थात् सजल मेघवत् श्याम शरीर विषे अगणित अनंग कहे संख्यारहित कामदेवनकी ऐसी लावण्य नाम शोभा है भाव यथा भक्तवत्सल स्वभाव तथा स्वरूप में सुन्दरता भी अपूर्व है ३ कारणमाया वशपूर्वरूपको भूलि देहाभिमानी होना सो मोह है जो किसी भाँति नहीं मिटिसक्ता है ऐसा प्रबल अति मोहरूप तम अंधकार ताको सुलभ नाशकरिबे हेतु मार्तंड सूर्यसम हैं भाव यश श्रवण कीर्तन करतही प्रेम उत्पन्न भयेते मोह आपही नाश ह्वैजात पुनः परमार्थमें पीठिदै स्वार्थमें मन देना इति अज्ञान सो गहन

चनकी सम है ताके भस्मकर्ता प्रचंड पावक अग्निसम हैं ४ आपनी बड़ाई पर चित्त उन्नत करना इत्यादि जो अभिमान सो परमार्थ मार्ग में अगाध सिन्धु समुद्र है ताको शोपिबे हेतु कुम्भज अगस्त्य सम उदार हैं अर्थात् परस्वार्थ हेतु अगस्त्य सिन्धु शोपे तथा प्रभु दासन के हित हेतु अभिमान हरते हैं सुररंजन देवतन को आनन्द देनहारे पुनः भूमिको भार पापी राक्षसादि तिनको भंजन नाशकर्ता अर्थात् रावणादि को मारेते भूमिको भार उतरा पुनः देवता स्वतंत्र सुखी भये ५ राग-आदि अर्थात् राग द्वेष हर्ष विषाद मानापमान इत्यादि परमार्थपथ में काटि खाने वाले सर्पगण सर्पनके झुण्ड हैं तिनके नाशकर्ता पन्नग अरि सर्पन के शत्रु गरुड़की समान हैं भाव जिनके सन्मुख होतही रागादि नाश ह्वै जाते हैं कन्दर्प जो काम-देव सोई नाग हाथीसम है भाव परमार्थमार्गमें भयदायक हैं ताके नाश करिबे को मुरारि मृगपति सिंह हैं भाव जिनके सन्मुख होतही सब प्रकार की कामना नाश होत ६ भवरूपी अपार जलधि समुद्र अर्थात् जन्म मरणादि अगाधता है जामें ताको सुलभ तरिबे हेतु जिनके चरणारविन्द पदकमल पोत नाम नौका सम हैं भाव पदकमल सुमिरण करतही भवभय नाश होत पुनः जानकी के रमण आनन्द-रूप जलवर्षिबेको कन्द कहे मेघ हैं यथा मेघ जलवर्षि सबकी रक्षा करत तथा जानकी सहित रघुनाथजी अवतीर्ण ह्वै आनन्द वर्षि सबके रक्षक हैं यथा मंत्रार्थे॥ जानक्या सह देवेशो रघुनाथो जगद्गुरुः। रक्षकः सर्व सिद्धान्तवेदान्तेषु प्रगीयते७ हनुमान्जी को प्रेमरूप जो वापी बावली है तामें मराल हंसवत् सदावास करते हैं पुनः जिनके किसी बात की कामना नहीं है ऐसे जे निःकाम भक्त हैं तिनके हेतु कामधुक् गो कामधेनु गऊके समान दयालु हैं स्वाभाविक दुःख हरि सब सुख देते हैं ८ तीनहू लोकन के तिलक श्रेष्ठ हैं पुनः श्रीरघुनाथजी गुण गहन दया कृपा करुणा शील सुलभ उदारतादि गुणसमूह भरे हैं तिनको तुलसीदास कहत कि विश्राम के धाम हैं अर्थात् अनेक योनिन में भ्रमतसन्ते श्रमित जीव शरण आवतही स्थिर सुखदायक मन्दिर हैं भावभवबन्धन ते छुड़ाइ देते हैं ६॥

राग भैरव।

(६६) राम राम रमु राम राम जपु राम राम रटु जीहा।
रामनाम नवनेह मेह को मन हठि होहि पपीहा १
सब साधन फल कूप सरित सर सागर सलिल निरासा।
राम नाम रति स्वातिसुधाशुभ सीकर प्रेमपियासा २
गरजि तरजि पाषाण बरषि पवि प्रीतिपरखि जियजानै।
अधिक अधिक अनुराग उमँगउर पर परमित पहिचानै ३
रामनामगति रामनाममति रामनाम अनुरागी।
ह्वैगये हैं जे होहिंगे त्रिभुवन तेइ गनियत बड़भागी ४
एकअंग मगअगम गवनकरि बिलँबु न छिन छिन छाहै।
तुलसी हित अपनो अपनी दिशि निरुपधि नेम निबाहै ५

टी०। जब पूर्वरूपकी सुधि रहै तब रामराम रमु अर्थात् शुद्ध आत्मरूपते राम राम की स्मरणक्रीड़ाविलास में आनंद रहु पुनः जब जीवबुद्धि रहै तव रामराम जपु शुद्ध मन लगाइ रामराम मन में स्थित राखु जब देहबुद्धि आवै तब माला लैकै रामराम जिह्वाते रटु उच्चारण करु कौन भांति कि रामनाम नवनेह मेह अर्थात् रामनाम विषे नितनवा नेहको बढ़ना सोई मेह स्वाती के मेघा हैं तिस द्वारा रामरूपमें जो प्रेम ताही बुंद प्राप्तिहेतु हे मन! हठ करिकै पपीहा होइ भाव सबको आश भरोसा त्यागि एक अनन्यता व्रत धारण करु १ कर्मके साधन यथा जिज्ञासापञ्चके ॥ यज्ञो दानं तपो होमं व्रतं स्वाध्यायसंयमः। संध्योपास्ति जपः स्नानं पुण्यदेशाटनालयम् ॥, चान्द्रायणाद्युपवासश्चतुर्मास्यादिकानि च। फलमूलाशनश्चैव समाराधनतर्पणम् ॥ ज्ञानके साधन सम दम उपराम तितिक्षा श्रद्धा समाधान विवेक विराग मुमुक्षुता योगके साधन यम नियम आसन प्रत्याहार प्राणायाम ध्यान धारणा समाधि इत्यादि यावत् साधनको फल है सो कैसा मानु यथा कूप कुवां सरिता नदी सर ताल सागर समुद्र इत्यादिको सलिल जल तासों जाभांति चातक निराश रहत सबको समूहजल त्यागि केवल स्वाती मेघ के बूंदनके प्यासा रहत तैसेही सब साधनफलसों निराश ह्वैकै हे मन! तू चातकवत् ह्वै रामनामविषे रति जो प्रीति है सोई स्वाती को सुधा अमृतमय जल शुभमंगलकारी त्यहिद्वारा सीकर लघुबुन्दमात्र अर्थात् पलमात्र श्रीरामरूप में प्रेम उत्पन्न होनेकी पियास राखु २ पुनः कैसी अविचल प्रीति चातककी है कि चातक तौ सन्मुख मन कीन्हे पीव कहां पीव कहां ऐसा रटत अरु मेघ गरजि पुनः तरजत घोरशब्दते डाटत ताहूपर पाषाण वर्षत आस्मानी पत्थर ताहूपर पवि वज्र अर्थात् गाज डारत ताहू पर चातकको मन नहीं मुरत तब चातककी सांची प्रीति परखि मेघने अपने जीव में जानिलियउ कि मेरे विषे अचल प्रीति राखेहै काहेते ज्यों ज्यों मेघ अनादर शत्रुता करत त्यों त्यों चातकके उरमें अधिक,अधिक अनुराग प्रीतिकी स्थिरता उरते उमँगि सर्वांग में भरिजात इति पर परमिति पराभक्तिकी परिपूर्ण मर्यादा पहिचानि लियउ मेघने भाव चातकमें मेरी पराभक्ति परिपूर्ण है सो उरमें अँटात नहीं तथा कुसंगादि गर्जनि विक्षेप तर्जनि रुजादि पत्थर हित हानि वज्र परै तबहूं स्वामीविषे प्रीति बढ़ती जाइ ऐसा सेवकको चाहिये हे मन! सोई रीति करु दृढ़ अनन्यता धारण करु ३ यावत् देह बुद्धि तावत् रामनामकी गति अर्थात् लौकिक पारलौकिक सत् असत् सब कर्म त्यागि सर्वेन्द्रिय एकत्र करि केवल रामनाम जपते सब भला मानु पुनः जब जीवबुद्धि आवै तब रामनाम में मति स्थिर राखु भाव सबको आश भरोसा त्यागि शुद्ध मन अमल सुबुद्धिते अंतर में रामनाम की स्मरण प्रतिश्वास करु विक्षेप न परै पुनः जब आत्मबुद्धि आवै तब रामनाम को अनुरागी हो यथा ॥ दो० ॥ व्यापकता जो प्रीतिकी ज्यों सुठि वसन सुरंग। दृगनद्वार दरशै चटक सो अनुराग अभंग ॥ अर्थात् शुद्ध आत्मरूप में रामनामकी प्रीति परिपूर्ण बनी रहै इसी आचरण में रत अर्थात् अनन्यरामानुरागी जे भूतकाल में ह्वैगये पुनः वर्तमान में जे हैं पुनः भविष्य में जे होइंगे ते त्रिभुवन में बड़भागी गनियत अर्थात् उनकी जैसी

भाग्य अरु महिमा है सो परिपूर्ण वेद पुराण नहीं कहिसकत तातें तीनिहू लोकन के वासी उनको अहोभागी कहि धन्य कहते हैं ४ यथा स्वाती में पपीहाकी रीति यह एकांगी प्रीति है तथा जनमें अनन्यता सबको सुगम नहीं यह मग अगम रास्ता चलने में दुर्घट है अर्थात् कुसंग वन मान मद पहारद्वेष व्याघ्र मत्सर सिंह अन्यकर्म ठग बटपार अश्रद्धा घाम आलस भुलभुलि ऐसी अगम मग में गवन करु तहां अश्रद्धारूप घामवश लोक सुखादि छांह में परि क्षणक्षण प्रति विलंबु न अर्थात् रुज वियोग दरिद्रतादि मिटावनेकी वासना करि काहू देवादिके आराधना में न लागु पुनः अनेक सिद्धाई महत्त्वादि सुहावने फलादि देखि किसी देवरूप वृक्षतर मंत्रादि छाया में न परु सबको आश भरोसा छांड़ि केवल राम नामकी आधार प्रभुके सन्मुख अनन्यता मार्ग में चला चल. तहां चातककी रीति में अनेक विघ्न हैं तिनमें कैसे निर्वाह होइ तापर कहत कि तुलसीको अपनो हित तौ इसीमें है कि निरुपाधि अपना नेम अनन्यता व्रत निबंहै उपाधि कही धर्मकी चिंता यथा ॥ उपाधिर्नाधर्मचिन्ता इत्यमरः ॥ अर्थात् लौकिक वैदिक यावत् धर्म हैं सबको त्यागि केवल राम नामकी टेक निर्वाहै यथा शिवसंहितायाम् ॥ लौकिका वैदिका धर्मा उक्ता ये गृहवासिनम् । त्यागं तेषां तु पातित्यं सिद्धौ कामविरोधिता ॥ मधुरे भोजने पुंसो विषवद्भोजने मलम् । मलं स्यादन्यदेवानां सेवनं फलवाञ्छया ॥ तस्मादनन्यसेवी सन्सर्वकामपराङ्मुखः । जितेन्द्रियमनः कायो रामं ध्यायेदनन्यधीः ॥ इत्यादि अपनी दिशिते अनन्यता निर्वाह करै इसीमें अपना हित है अरु प्रभु की दिशिके जो विघ्न हैं तिनकी कौन संदेह प्रभु तौ दासन के और विघ्न निवारत तिनकी दिशिते विघ्न अपनी भूल है काहेते प्रभुकी प्रतिज्ञा तौ ऐसी है यथा ॥ सन्मुख होइ जीव म्वहिं जबहीं । कोटि जन्म अघ नाशौं तबहीं ॥ पुनः वाल्मीकीये ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ५ ॥

राग भैरव ।

(६७) राम जपु रामजपु राम जपु बावरे । घोर भवनीरनिधि नाम निजनाव रे १ एकही साधन सब ऋद्धि सिद्धि साधि रे । ग्रसे कलि रोग योग संयम समाधि रे २ भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो वाम रे । राम नामही सों अन्त सबहीको काम रे ३ जग नभवाटिका रही है फलि फूलि रे । धूमा कैसो धौरहर देखि तू न भूलि रे ४ रामनाम छांड़ि जो भरोसो करै और रे । तुलसी परोसो त्यागि मांगै कूर कौर रे ५

टी० । शुद्ध प्रभुकी शरणागती में सुलभ जीवको उद्धार होत यह वेद पुराणद्वारा प्रसिद्ध है ताको त्यागि विषयासक्त अन्य साधनरत इति विचार बुद्धिहीन हे मन-बावरे यावत् देहबुद्धि तावत् माला लैकै राम राम जपु जब जीव बुद्धि आवै तब श्वासद्वारा राम राम जपु जब आत्मबुद्धि आवै तब अन्तरते राम राम जपु काहेते सदा राम राम जपु कि भवनीरनिधि भवरूप जो समुद्र है सो घोर महा भयंकर है ताको सुलभ तरिबे हेतु नाम निज आपनी नाव है अर्थात् रामनामकी

जाप आपनी नाव भाव दूसरेकी नाव आपनी इच्छाते नहीं मिलती पुनः परिश्रमते मिलती है तौ महसूल परत पुनः परतंत्र रहना है तथा कर्मयोग ज्ञानादि पर नावसम है अरु रामनाम आपनी नावसम स्वइच्छित सुलभ जाप परिश्रम मासूल रहित निर्विघ्न स्वतंत्रता है १ विवेक, विराग, शमादि षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता इत्यादि ज्ञानमें चारि साधन दुर्घट हैं पुनः संयम, नियम, आसन, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि इति अष्टांग महादुर्घट योगमें हैं इत्यादि सबको कलि-कालरूप रोगने ग्रसे लीलिलिये भाव पापरत विषयी जीव आलस अश्रद्धाते साधन नहीं करि सकत ताते सुलभ रामनाम की जाप इनि एकही साधन ते ज्ञानके विरागादि सब साधन अरु धनादि ऋद्धि अणिमादि सिद्धि इत्यादि सब साधिले अर्थात् रामनामही की जापते सब प्राप्त होइगी यथा शुकसंहितायाम्॥ आकृष्टः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यंच मुक्तिश्रियः। नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यामनागीक्षते मन्त्रोयं रसनास्पृशेव फलति श्रीरामनामात्मकः २ वर्णाश्रम ऊंचे विद्याधर्म रत इत्यादि जो ऊंचो है पुनः पोच नीच विद्याधर्म रहित जो है पुनः जो दाहिन परमार्थमार्गी हरि सन्मुख पुनः वाम जो कुमार्गी हरिविमुख इत्यादि यावत् जन हैं तिन सबहीको अंत मरणकाल समय एक रामनामहीते काम सिद्ध होता है अर्थात् जन्मभरि सत् असत् चहै सो तौन कर्म करै परंतु मरण समय परिपूर्ण सहायक रामनाम देखात पुनः औरहू सब राम नाममें उपदेश करत पुनः मरण पाछे मृतक साथ सब रामनाम सत्य कहते चलते हैं पुनः काशीजीमें शिवजी रामनामही उपदेश करि मुक्ति देते हैं पुनः पुराणन में प्रसिद्ध है कि मरणकाल जो भूलिहू कै राम नाम आइजाइ तौ कैसहू पापी होइ तौ वाकी मुक्ति है जाइ ताते यह निश्चय है कि जीवन को सुलभ मुक्तिदायक राम नामकी समान कर्म योग ज्ञानादि कोई पदार्थ नहीं है यथा केदारखण्डेशिववाक्यम्॥ रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्। यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोमलाम्॥ अध्यात्मे॥ अहो भवन्नामगृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥ बृहद्विष्णुपुराणे॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं यान्ति रामनामानुकीर्त्तनात्॥ ताते अन्तकाल में सबको राम नामहीते काम है ३ वाटिका बाग सो भूमिविषे होती है अरु नभ जो आकाश तामें वाटिका न भई न है न होइगी कदाचित् देखाइनो सर्वथा वृथा जानिये तथा देहसम्बन्धी लोककी यावत् पदार्थ हैं सो नभ कैसी वाटिका हरित नवीन सघन पल्लवसहित फूलि फलि रहीहै यथा स्त्री पुत्र बंधु सखा परिवार सम्बन्धी धरणी धन धामादि सब वृक्ष हैं तिनको सांचा मानि अपनपौ मानि सनेह राखना सोई हरित दलनकी सघनता है ताकी चाहमें हर्ष सोई फूल है यथा सुस्त्री संग व्याह होनहार पुत्रकी उमेदि व्यापारादि में लाभ जानि इत्यादि पुनः सुंदरि स्त्री पुत्र धनादि प्राप्ति फल हैं इत्यादि लोकपदार्थ नभ कैसी वाटिका हरित फूलि फलि रहीहै सो याकी सँचाई कौन भांति है कि यथा असूखा ईंधनमें अग्नि जरावनेसे धूम उठता है तामें अनेक भांतिके मंदिरनकी आकार चौमंजला पँचमंजला

आदि बनते बिगरते चलेजाते हैं ते सर्वथा झूठे हैं तैसेही धूम कैसो धौरहर सम स्त्री पुत्र धन धामादि लोकके सब पदार्थ हैं ताको सुहावन देखि हे मन ! तू भूलि मतिजा उनमें अपनपौ न मानु काहेते इनको होते जाते बेताल नहीं है ताको कैसे सांचा मानता है ताते सब आशभरोसा त्यागि राम नाम जपु ४ सुलभ जीवको उद्धार कर्ता रामनाम ताको छांड़िके कर्म योग ज्ञानादि और साधन करि भव तरिबेको भरोसा राखे हैं तिनको गोसाईंजी कहत कि ते जन कैसे हैं यथा थारी में परोसा सुअन्न खानेमात्र प्रयोजन ताको स्वटमर्दीते त्यागिके क्रूर नीच निर्बुद्धि कूकुरकीसम कौरा मांगते फिरते हैं को पेट भरी ५ ॥

(६८) रामनाम जपु जिय सदा सानुराग रे। कलि न विराग योग याग तप त्यागरे १ राम सुमिरन सब विधिही को राज रे। राम को बिसारिबो निषेध शिरताज रे २ रामनाम महामणि फणिजगजाल रे। मणिलिये फणिजिये व्याकुल बिहाल रे ३ रामनाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुराण वेद पण्डित पुरारि रे ४ रामनाम प्रेम परमारथ को सार रे। रामनाम तुलसी को जीवन अधार रे ५

टी०। प्रथम सिखावन दे मनको स्वाधीनकरि पुनः कहत हे जीव! सानुराग अनुराग सहित-भाव राम प्रीति अंतरमें स्थिरकरि सदा रामनाम जपु काहेते ज्ञानकरि मुक्ति है परंतु वाके साधन में प्रथम विराग चाहिये भाव स्वर्गपर्यंत लोकसुखको तुच्छ जानि त्यागिदेना सो तौ अब लोभ ऐसा प्रबल है कि कलि-कालमें विरागै नहीं है सक्ता है तब ज्ञान कहां पुनः योगकरि इंद्रिय मन स्थिरकरि भगवत् में लगाइ मुक्ति होती है तामें यम नियमादि आठ अंग हैं तहां काम ऐसा बली जाते नियम निबहते नहीं ताते योगौ नहीं है सकत पुनः लोक सुख त्यागि तपस्या यज्ञादि कर्मकरि मुक्ति होती है सोऊ कलियुग में नहीं हैसक्ते हैं १ हरि धाम वास सत्संग हरियश श्रवणादि विधि कर्म हैं तहां रामनाम को सुमिरण सब विधिनको राजा है पुनः कुसंग परापवाद कामवार्तादि निषेध कर्म हैं तहां रामनाम को बिसारिबो सब निषेधनको शिरताज है २ ऐसा प्रभाव काहेते है कि मोहवश देहाभिमान राग द्वेष मानापमान ममता सुखसाधनादि यावत् भोग सं-योग वियोगादि जहां तक माया को विस्तार जगजाल है सोई फणि नाम सर्प है सर्प में महामणि होती है जगजाल सर्प में रामनाम महामणि है अर्थात् रमुक्रीडा धातु ते रामशब्द होता है ताको ज्ञानमत ते अर्थ यह है कि जो सबमें रमा है ताको कही राम पुनः उपासना मतते अर्थ यह है कि जो अपने रूप में सबको रमावै ताको कही राम तिन दोऊ मतते जगत् के चैतन्यकर्त्ता प्रकाशक जगमें सारांश रघुनाथजी हैं तहां मणिसहित सर्प प्रसन्न बलिष्ठ बनारहत पुनः जब किसी ने मणि लेलिया तब सर्प मरिजाता है अरु जो घरी जीवत तबतक विना मणि को शोच सो विकल दुःख सो बिहाल बनारहत असार किसी काम को नहीं केवल मरिजाना निश्चय है तैसे जगज्जालरूप सर्पके मायाको प्रभाव विषयादि विष है

पुनः भगवत्‌रूप व्यापक सोई मणि है त्यहि सहित सबल वलिष्ठ है तहां जगत् प्रकाशक रामनाम महामणि जिन नहीं लैलिया भाव संसारैको सांचा माने हैं तिन को जगत्‌रूप सर्पने डसा विषय विष व्यापनेते वै जीव नाशभये चौरासी में परे पुनः जिन ऐसा जाना कि जगत् असार है तामें प्रकाशक व्यापक श्रीरघुनाथजी हैं ऐसा निश्चयकरि रामनाम महामणि जिन लैलिये अर्थात् अनुराग सहित राम नाम स्मरण करनेलगे ताके प्रभावते ज्ञान विराग विवेक समता संतोषादि आवत ताते भगवत्‌रूप सार संसार असार देखात इत्यादि रामनाम महामणि लैलेने ते जगज्जालरूप सर्प अवश्यही मरैगो भाव उनको संसार एक दिन अवश्यही छूटैगो सोई संसार सर्प को मरण है पुनः यावत् जीवत हैं तावत् विकल विहाल हैं अर्थात् रामनाम के जाप करनेवाले यावत् संसार व्यवहारहू में रहते हैं तबहूं देहाभिमान रहित संसार को असार माने हैं सोई संसार सर्प विना मणि को मृतकप्राय विकल विहाल सरीखे है ३ देवलोक में जो कल्पवृक्ष है सो अर्थ धर्म काम ये तीनिहीं फल देत है अरु रामनामरूप जो कल्पतरु है सो अर्थ धर्म काम मोक्ष चारिहू फल सकामिनको देत अरु अकामिनके देनेकी प्रमाणै नहीं है ऐसा सुलभ महादानी रामनाम है जाकी महिमा वेद पुराणै पुनः ब्रह्मा शेष शारदादि पण्डित पुनः पुरारि महादेव इत्यादि सब नामको प्रभाव कहते हैं यथा ऋग्वेदे ॥ परं ब्रह्मज्योतिर्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः ॥ यजुर्वेदे ॥ रामनामजपेनैव देवतादर्शनं करोति कलौ नान्येयाम् ॥ सामवेदे ॥ रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति ॥ अथर्वणे ॥ यश्चाण्डालोपि रामेति वाचं वदेत् । तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संभुञ्जीयात् ॥ वाराहपुराणे ॥ दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो हारामेति हतोस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान् । तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥ विष्णुपुराणे ॥ ब्रह्मावाक्यम् ॥ अहं च शंकरो विष्णुस्तथा सर्वे दिवौकसः । रामनामप्रभावेन संप्राप्तास्सिद्धिमुत्तमाम् ॥ भविष्योत्तरे विष्णुवाक्यम् ॥ भजस्व कमले नित्यं रामं सर्वेशपूजितम् । रामेति मधुरं साक्षान्मया संकीर्त्तयेदिति ॥ नारदीयपुराणे ॥ श्रीरामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेशसंक्षयः । मुक्तिं प्रयान्ति विप्रेन्द्र तस्य विघ्नो न वाधते ॥ पद्मपुराणे ॥ ये ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम् । तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं रामनामैव कीर्त्तनात् ॥ केदारखण्डे शिववाक्यम् ॥ रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम् । यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोमलाम् ४ पुनः रामनाम विषे प्रेम को करना परमार्थको सारांश है अर्थात् मुक्तिप्राप्ति हेतु कर्मज्ञान विराग योगादि यावत् साधन हैं ते रामनाम के प्रेमसहित सिद्ध होते हैं नातरु परिश्रम वृथा होत ऐसा विचारि तुलसीदास को जीवन आधार जीवको भव बूड़त में अवलम्बदेनहारा श्रीरामनामही है और भरोसा नहीं ५ ॥

(६९) राम राम राम जीह जौलौं तू न जपिहै । तौलौं तू कहूंही जाय तिहूंताप तपिहै १ सुरसरितीर बिनु नीर दुख पाइहै । सुरतरु तर तोहिं दुख दारिद सताइहै २ जागत वागत सुख सपने न सोइहै ।

जनम जनम युग युग जग रोइहै ३ छूटिबे कि यतन विशेषबांध्यो जायगो। ह्वैहै विष भोजन जो सुधासानि खायगो ४ तुलसी विलोक तिहूँ काल तोसे दीन को। रामनामहीं की गति जैसे जल मीनको ५

टी०। हे जीव! यावत् आत्मबुद्धि रहै तावत् अनुरागसहित परा वाणीते राम राम जपु जब जीव बुद्धि आवै तब पश्यन्ती वाणीते प्रेमसहित राम राम जपु पुनः जब देह बुद्धि आवै तब समचित्त ह्वै श्रद्धा समेत मध्यमा वाणीते अथवा जो विशेषि देहाभिमान आवै तब इन्द्रियन को विषय व्यापार वरवश रोकि करमें माला लैके वैखरी वाणी ते राम राम जपु तहां आत्मप्रति कान्ता सम्यक् प्रियवचन ते उपदेश है जीव प्रति सुहृद् सम्यक् समुझाइकै उपदेश है देहेन्द्रिय प्रति प्रभु सम्यक् रूखा उपदेश है ताते कहत कि हे जीह रसना! जौलौं तू राम नाम न जानिहै तौलौं स्वार्थ सुखसाधन हेतु जहां जाइगो भाव सुखद स्थल दुःखद स्थल सर्वत्र तिहूं ताप दैहिक दैविक भौतिकादि तापनते तपिहै भाव जरा करिहै १ अब तीनिहूं तापन को हाल प्रसिद्ध कहत तहां क्षुधा तृषा ज्वरादि व्याधि दैहिक ताप हैं तहां हरिविमुख ह्वै सुख साधन हेतु तीर्थादिकन में सुलभ फलदायक सुरसरि जो गंगा जी तिनहूं के तीर जो जाइ है तहां विना नीर पाये पियासते दुःख पाइ है अर्थात् अकेले गये उहां ज्वरादि व्याधि भई उहां पानी देनेवाला नहीं है तौ गंगातीरै पियासन मरत पुनः दरिद्र वियोग हानि इत्यादि दैविक ताप हैं तहां जो हरिविमुख अनेक सुकृति करि देवलोकहू को जाइगो तहां सुरतरु जो कल्पवृक्ष ताहू के तरे तोको दुःख दरिद्र सताइ है अर्थात् उहौं दैत्यराक्षसन करि सदा दैवी बनी रहत यथा॥ रावण आवत सुनेउ सकोहा। देवनतके मेरुगिरिखोहा॥ सुरपुर नितहि परावन होई। इत्यादि तहाँकी विपत्ति हरिशरणागतिन ते मिटती है २ पुनः हरिविमुख ताते जागत वैठें हित हानि प्रिय वियोगादि दुःख बना रही पुनः वागत चलत देशान्तर मार्ग में ठग वटपारादि लूटि लेहँगे पुनः पौढ़े पर भी स्वप्नेमें व्याघ्र सर्प हाथी गांसँगे भूत चढ़ि बैठेंगे इत्यादि स्वप्ने के दुःखन करिकै पौढ़े परभी सुखते न सोइ हैं पुनः अनेकन योनिन में जन्मि जन्मि सतयुग त्रेता द्वापर कलियुगादि युग युग प्रति पूर्ववत् दुःख पीड़ित रोवतै वितैगो भाव विना हरि भजे किसी युग में दुःख न छूटैगो न किसी साधन करि दुःख छूटी ३ पुनः हरिविमुखता सहित कर्म योग ज्ञानादि जो दुःख छूटनेकी यत्न करैगो तिनहीं द्वारा विशेषि बांध्यो जाइगो अर्थात् भगवत्शरणागती सहित सब साधन मुक्तिदायक हैं तथा हरिविमुख ताते सबै साधन दुःखरूप हैं यथा यज्ञ करि दक्ष की दुर्दशा दानकरि नृग गिरगिट भये तपकरि राक्षस नरक अधिकारी भये ऐसेही सब साधन विशेषि बन्धन हैं पुनः व्याघ्र सर्प विषादि करि जो बाधा सो भौतिक ताप हैं पुनः हरिविमुख ह्वै जो सुअन्न सोऊ सुधा अमृत ते सानिके खाइगो सोऊ विषमय भोजन ह्वै जाइगो यथा भानु प्रताप अजय अचल अमर होवे हेतु विप्र नेवते तिनहीं के शाप ते परिवार सहित नाश भयो यथा कैकेयी पुत्र को राजसुख हेतु वर मांगे सोई द्वारा अहित्यात गया पुनः पुत्रौ विमुख भया इत्यादि यावत् सुख की उपाइ

करैगो ताही में दुःख होइगो ४ पुनः राम नाम के प्रभाव ते सतयुग में वाल्मीकि व्याधा ते महामुनि भये त्रेता में शबरी भीलिनि सर्वोपरि बड़ाई पाया द्वापर में श्वपच वर्तमान में कबीर रैदासादि अनेक भये तथा भूतकाल में अनेकन होइँगे इत्यादि गोसाईंजी कहत अपने मनते कि राम नाम को प्रभाव वेद पुराणादिद्वारा लोक में प्रसिद्ध है ताको विलोकु देखि ले कि भूत भविष्य वर्तमान काल में तोसे त्वहि ऐसे आलसी अनाथ दीनन को अन्य उपाय नहीं है केवल एक राम नामही की गति है कौन भांति जैसे मीनको जले में चलने की गति है अर्थात् जाके पद पक्ष महीं तथा मेरे कर्मरूप पद ज्ञानरूप पक्ष नहीं एक नाम जल बल है ५ ॥

(७०)सुमिर सनेह सों तू नाम रामराय को। संवर निसंवर को सखा असहायको १ भाग है अभागहू को गुण गुणहीन को। गाहक गरीब को दयालु दानि दीन को २ कुल अकुलीनको सुन्यो है वेद साखि है। पांगुरको हाथपांय आंधरेको आंखिहै ३ माय बाप भूखे को अधार निराधार को। सेतु भवसागर को हेतु सुखसार को ४ पतितपावन रामनाम सों न दूसरो। सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ५

टी० । अन्य साधुन मै विधि परिश्रम अधिक पुनः एकदेशी है भाव कर्मादिने लोक सुखचाहौ तौ परलोक नाशहोत पुनः योग विराग ज्ञानादिकरि लोकनाशकरि परलोक बनत अरु रामनाम लोक परलोक दोऊ बनावत अरु विधि परिश्रम थोरी है सो कहत हे जीव ! सब साधन त्यागि तू सनेहसों रामराय को नाम सुमिरु अर्थात् जिनकी प्राप्ति ब्रह्मादिकनको ध्यानकरि अगम ऐसे परात्पर परब्रह्म तेई सुलभ लोकोद्धारहेतु ऐश्वर्य लोपकरि राजाधिराजरूप ते अवतीर्ण भये पुनः नाम-रूप लीलाधाम द्वारा महापातकी जीवनको सहजै उद्धार करते हैं ऐसे महाराज को नाम कैसा सुलभ हित करता है यथा ॥ विवशहु जासु नाम मुख आवा । अ-अधमहु मुक्तिहोइ श्रुति गावा ॥ पुनः शुकसंहितायाम् ॥ आकृष्टः कृतचेतसां सुमह-तामुच्चाटनं चांहसामाचण्डालममूकलोकसुलभोवश्यं च मुक्तिश्रियाः । नो दीक्षां नच दक्षिणां नच पुरश्चर्यामनागीक्षते मन्त्रोयं रसनास्पृशेव फलति श्रीरामनामा-त्मकः ॥ अर्थात् जो नाम भूलिहू के मुख में आवै तौ महापापी मुक्त होइ ऐसा वेद कहत अरु जो प्रीतिसहित रामनाम जपते हैं ताकी महिमा वेदौ नहीं कहिसकत तौने.रामनाम को सनेहसों सुमिरु कैसा प्रसिद्ध फलदायक है कि निसंवर को अर्थात् लोक परलोक दोऊ मार्गनमें जे खर्चहीन हैं तिनको रामनाम संवरनाम खर्चा है भाव लोक में साधुलोग सर्वत्र उत्तम भोजन पावतेहैं तथा परलोकमें वि-वेक विरागादि विना परमपद पावतेहैं केवल नाम के प्रभावते पुनः जिनके पिता बंधु सखा पुत्रादि कोऊ सहायक नहीं है ऐसे असहायसाधु लोगन को सखासम सहायकर्ता रामनाम है भाव अनेकन शरण ह्वै सेवा करते हैं १ सुगन्धं वनितावस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम् ॥ भूषण वाहनादि भाग हैं इत्यादि हीन ऐसे अभागहू को रामनाम भाग है अर्थात् नाम स्मरण करनेवाले किसी व्यापार को नहीं करतेहैं अरु सर्व ऐश्वर्य पीछे लागी फिरती है पुनः विद्या चातुरी गानकारी गर्व इत्यादि

गुणहीन हैं अरु रामनाम के स्मरणकरनेवाले सबगुणनके खानि ह्वैजाते हैं सब गुण आपही आइजाते हैं पुनः कर्मयोग ज्ञानादि धनकरि जे हीन ऐसेहू गरीबनको रामनाम गाहक है अर्थात् कैसहू पापी पतित है सोऊ नाम स्मरणकरि पावन ह्वै जाई पुनः जिनको मान कोई नहीं करता है ऐसे दीनजननको दयालु दानी है अर्थात् नामस्मरण करतही दुःख नाश ह्वै सबप्रकार को सुख होत २ जिनके कुल अच्छा नहीं है ऐसहू अकुलीन रामनाम को स्मरणकरि बड़े कुलवंतनके पूज्य होते हैं यथा शबरीकरि गौतमी को जलपावन भया पुनः श्वपच करि युधिष्ठिर की यज्ञपूर्ण भई इस वचन को वेदसाखी ताकी प्रमाण मैं भी सुनी है यथा अथर्वणे॥ यश्चाण्डालोपि रामेति वाचं वदेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संभुञ्जीयात्॥ पुनः सुनी बात यथा॥ शृंगी ऋषि मृगीपुत्र कौशिक कुशस्तरणे गौतम शशापृष्ठे वाल्मीकि वल्मीक्यां व्यास केवटकन्याते वशिष्ठ वेश्याते विश्वामित्र क्षत्रीते अगस्ति कलशते मतंग मातंगीते मांडव्य मेडुकी ते पराशर चांडालीते इत्यादि अकुलीने कुलीन भये पुनः जे वर्णाश्रम पांय वेद धर्मरूप हाथकरि हीन ऐसे पंगुन को रामनाम हाथ पांय हैं अर्थात् वेदधर्म कर्म करि नहीं सके ताते उत्तमलोक जानेकी गति नहीं तेई नाम स्मरण करि उत्तम धर्म भक्ति करि हरिधाम जानेकी गति होती है पुनः जे विवेक विराग नेत्रहीन ज्ञानदृष्टि रहित ऐसेजे अंधे हैं तिनको रामनामरूप आंखि है अर्थात् वाल्मीकि सरीखे मूढ़ तेऊ नामस्मरण करि सब तत्त्व के ज्ञाता भये ३ अर्थात् जे जप तपादि बिना कीन्हे देवादिकन सों भिक्षा मांगते हैं तिनकी आश कोऊ नहीं पूर्ण करिसकत ऐसे भूखेको नाम माता पितासम इच्छा भोजन दै लालन पालन करत अर्थात् नाम स्मरण करतमात्र अर्थार्थिन की सब आशा पूर्ण होत पुनः परलोक बनत यथा सुग्रीव पुनः जे दुःखसिंधुमें बूड़त समय कोऊ हाथ पकरनेवाला नहीं ऐसे निराधारको रामनाम आधार है आर्तनाम स्मरण करतमात्रही कुसंकट मिटत पुनः आनन्द होत यथा गजादि आर्त है नाम लीन्हे पुनः महाघोर भवसागर तरिबेहेतु रामनाम सेतु है अर्थात् नामस्मरण करि महापातकी सहजे भवपार भये यथा सरितादि में सेतुपर अंधे पंगु सब पार होते हैं तथा कर्म ज्ञानादि खर्चाहीन अज्ञान करि अंधे पापनकरि पंगु यथा अजामिल यमनादि भ्रम व्याजते नाम लै सुगम भवपार गये हैं पुनः सुखको भरा मन्दिर जो सुखसार हरिशरणागती ताको प्राप्तकरिबे को रामनाम हेतु है नामस्मरणमात्रही जीवको शरणागती में पहुँचाइ देत जहां गये जीवको सब प्रकार के सुख होतेहैं इति सुखसार को कारण है ४ जाति कुलहीन कर्म करि मलीन पापी मतिमंद जिन की छांह कोऊ नहीं छुवत ऐसे पतितन को पावनकर्ता राम नामकी समान दूसरा कोई पदार्थ नहीं है अर्थात् उत्तमवर्णाश्रमन को धर्म कर्म वेद में लिखा है तेतौ अपने धर्म कर्म करि पावन होते हैं पुनः ज्ञानमार्ग ब्रह्मविद्या में केवल ब्राह्मणों को अधिकार पुनः तीर्थादिकन को ऐसा प्रभाव प्रसिद्ध नहीं जाके स्नानादि करि नीच देह ते पावन लोक पूज्य होई अरु रामनामको प्रभाव प्रसिद्ध है कि सतयुग में वाल्मीकि व्याधाते महामुनि भये त्रेता में शबरी द्वापर में श्वपच कलियुग में सधन रैदासादि अनेकन भये इत्यादि पतितनको पावन लोक-

पूज्य करनहारा केवल एक रामनामै है दूसरा नहीं है काहेते जिस रामनाम को सुमिरण करि तुलसीदास ऐसे ऊसर जामें सुधर्म कर्मरूप तृण भी नहीं जामता रहै सोई सुभूमि भये भाव हरियशादि सुपदार्थ उपजन लगीं ५॥

(७१) भलो भलीभांतिहै जो मेरे कहे लागिहै। मन रामनामसों सुभाव अनुरागिहै १ रामनाम को प्रभाव जान जूड़ीआगिहै। सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै २ रामनाम सों विराग योग जप जागिहै। वामविधि भालहून कर्मदाग दागिहै ३ रामनाममोदक सनेहसुधा पागिहै। पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ४ कामतरु रामनाम जोइ जोइ मांगिहै। तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खांगिहै ५

टी०। मन प्रति जीवको उपदेश है कि बहुत कालबीते इंद्रिनके कहे देहसुखहेतु सहजस्वभावते तू विषय व्यापार में लागरहे ताते अनेकन योनिनमें गर्भवास जन्म जरा तीनिउ तापै मरण यम सांसति आदि बुरी भांतिते बुरा होत आयो ताही दुःख की सुधिकरि अब जो मेरे कहे व्यापार में लागिहै अर्थात् विषय व्यापारत्यागि हे मन! सहजस्वभावते जो रामनाम सो अनुरागिहै भावप्रीति स्थिरकरि जो राम नामको स्मरण करिहै तौ भलीभांति ते भलोहै भाव लोक में सुख मान बड़ाई सहित अंत में शुभगति होइगी १ काहेते लोकहू परलोक सुख होइगो कि ज्ञानके साधनमें विराग उष्ण अग्नि है लौकिक सुख सहित शुभाशुभ कर्म भस्म करता है ताकी मूल रहिजाती है सो विषय संगरूप जल पाय पुनः हरियाते हैं ताहूपर विराग शांति देखि कामादि सहाय सहित कलिकालरूप किरात ज्ञान मार्ग में जीवको लूटि लेता है अरु राम नामको प्रभाव ऐसा जान यथा जूड़ी आगि पाला है अर्थात् रामनाम सुमिरत संते रामविरहरूप पालाते पापकर्मनको वन मूलसहित सूखिजाता है विषयसंग जलो पाइ नहीं हरियात पुनः सबल महाराज को नाम सुनि भीरु डराइकै कामादि सहाय सहित कलिकालो भागि जाता है भाव राजदण्डकी भयकरि रामसनेहिन सों नहीं बोलि सक्ता है २ पुनः सूखे वनमें स्वाभाविकही आगि जागत तौ मूल सहित भस्मकरिदेत तथा राम ऐसा नाम सुमिरत संते ताके प्रभावते विरागयोग जप अग्निवत् आपही जागि है तिहिकरिकै विरहको सूखा पापकर्म वनमूल सहित भस्म है जाइगो भाव पूर्व पाप भस्म भये ते पुनः पापकर्म होइँगे नहीं तब जो वामविधिकृत भालमें कर्मदाग हैं तेऊ न दागि हैं अर्थात् पूर्वपापकर्मनको फल भोगनेको जो देहहैकै अज्ञाने तेरे माथ में लिखिदिया रहै सो जब पूर्व पापै नाशभये तब विधि लिखे अंकन को फल न भोगना परैगा ३ मोदक नाम लड्डू सो मूंगके बेसनके खवाके इत्यादि अनेक भांति के बनते हैं तामें बौंदीके विशेषि प्रसिद्ध हैं ताकी विधि यह है कि अधिक बेसन थोरा चौरीठा पानी में घोरि बौंदी छुवाइ घृत में पकाइ चीनी कंदादि को जलाव बनाइ तामें पागि मोदक बनते हैं इहां रकार बेसन अकार चौरीठा मकार

जलमें घोरि श्वासरूप प्याना में चुवावह पुनः बुद्धि चूल्हा में विचार ईंधन विराग अग्नि जराइ चित्त कराह में रामसनेह घृतविरह तप्त में नामोच्चारण धोंदी करै पुनः रामरूपकी उपासना कंद है सो प्रेम सुधा अमृत सम स्वादिष्ठ जलावमें पागि नाममें विश्वासरूप मोदक पाइ परितोष नाम तुष्ट होइगो इत्यादि सनेहके पकप्रेम अमृतके पागे रामनाम मोदक पाइ अघाइ जाइगो तब पुनः द्वारद्वार न वागिहैं भाव अनेक आशावश देवादिकनके द्वारद्वार अनेक मनोरथ रूप कौर मांगत न फिरैगो केवल नामही को आश भरोसा रहिजाइगो ४ काहेते नामैको आश भरोसा रहैगो कि कामतरु नाम कल्पवृक्ष है राम नाम तासों लौकिक पारलौकिक जोई जोइ पदार्थ मांगिहैं सो तुरतही पाइहै यथा पद्मपुराणे॥ ये ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम्।तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं रामनामैव कीर्तनात्॥ इति लौकिक पुनः पारलौकिक यथा वृहद्विष्णुपुराणे॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात्॥ब्रह्मवैवर्ते॥ आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात्। शीघ्रं वै नाशमायान्ति तं वन्दे जानकीपतिम्॥ इत्यादि गोसाईंजी कहत कि सबको आश भरोसा त्यागि केवल रामनामको स्मरण करु इसीके प्रभावते स्वार्थ जो अर्थ धर्म कामादि तथा परमार्थ परलोक में शुभगति इत्यादि एकहू न खांगिहैं सब प्राप्त होइगो ५॥

(७२) ऐसेऊ साहब की सेवा सों होत चोररे। अपनी न बूझ न कहै को राड़रोररे १ मुनिमन अगम सुगम माय बापसो। कृपासिंधु सहज सखा सनेही आपसो २ लोक वेद विदित बड़ो न रघुनाथ सों। सब दिन सब देश सबही के साथ सो ३ स्वामी सर्वज्ञ सों चलै न चोरी चार की। प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की ४ काय न कलेश लेश लेत मान मनकी। सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की ५ रीझे वश होत खीझे देत निज धामरे। फलत सकल फल कामतरु नामरे ६ बेंचे खोटो दाम न मिलै न राखे कामरे। सोऊ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा रामरे ७

टी०। जिनको नामलेत लोक परलोक सब बनत ऐसेहू सुलभ उदार साहेब श्रीरघुनाथजी की सेवाते हे रे मन! तू चोर होताहै सेवा त्यागि अन्य उपायन में लागता है तौ जो तोको आपनी न बूझ है ताते रांड़ होता है अर्थात् जो अपनी लघुमदारीते अपने पतिको त्यागत तौ आपही अनाथ बनताहै तहां व्यभिचार में तेरा क्या स्वार्थ होइगा यामें लोक परलोक दोऊ जातेहैं पुनः जाको अपनी बूझ नहीं होती है सो औरसों बूझिकै वाको कहा सुनि मानि लेताहै सो तू किसीको कहा भी नहीं मानता है ताते तू रोर अर्थात् सांसतिको प्राप्त है दुःख में परि पुनः त्राहि त्राहि करैगो १ कैसे स्वामी श्रीरघुनाथजी हैं मुनिमन अगम अर्थात् जे लोक सुख त्यागिकै शुद्ध मन भगवत् रूप में लगावते हैं ऐसे मननशील मुनिनको मनकरि ध्यानमें पाइबो दुर्घट है ऐसा ऐश्वर्यरूप साकेतविहारी तेई सुलभ लोको-

द्धार हेतु माय बापसों सुगम भये अर्थात् यथा माता पिता बालक को रक्षा करत तैसेही माधुर्यरूपते श्रीरामजानकी अवतीर्ण हैं सब जीवनकी रक्षा करिबे हेतु सुगम सबको प्राप्तभये काहेते कृपासिन्धु हैं कृपा यथा ॥ दोहा ॥ रक्षक सब संसार को हौं समर्थ मैं एक। दृढ़ मन अनुसंधान यह सो गुण कृपाविवेक ॥ भगवद्गुणदर्पणे ॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यसंधानकृपा सा पारमेश्वरी ॥ इत्यादि कृपारूप जलभरे समुद्र हैं अर्थात् कृपा गुणते सुलभ सब जीवन को उद्धार करते हैं कौन भांति कि जे जीव विषय में भूले प्रभुकी सन्मुखता जानत ही नहीं यथा चित्रकूट में कोलकिरातादि ऐसहू जीवनको आपसों अपनी ओर सों सहज सनेह वेप्रयोजन मित्रताकरि सखा मानते हैं यह सौलभ्यता सौशील्य सहित सौहार्दगुण है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ स्वप्रीतेः स्वप्रयत्नेश्च कारणं करुणाम्बुधेः। हेत्वन्तरानपेक्षं हि सौहार्दं शाश्वतं हरेः २ जेतने अवतार भये पुनः चतुर्भुजादि यावत् भगवत्रूप हैं तिनमें श्रीरघुनाथजीसों बड़ा कौनौ रूप नहीं है पुनः चारिहू युगमें यावत् राजा भये तिनमें रघुनाथजी सों बड़ा कोऊ नहीं है यह लोकमें विदित अरु पूर्व जो ऐश्वर्य कहे सो वेदमें विदित है यथा वशिष्ठसंहितायाम् ॥ जय मत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण। ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यश्चरणाम्बुज ॥ स्कन्दपुराणे ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशे लोकसाधकाः। तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥ अथर्वणे ॥ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यः ब्रह्मा विष्णुरीश्वरो यः सर्ववेदात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ इत्यादि वेद में विदित कि रामरूपते बड़ा कौनउ रूप नहीं पुनः माधुर्यरूप में दया, कृपा, अनुकम्पा, अनृशंस्य, वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, कारुण्य, क्षमा, गांभीर्य, औदार्य, स्थैर्य, धैर्य, सौहार्दादि जेतने गुण रामरूपमें हैं त्यतने गुण किसी रूपमें नहीं पुनः सत्य, धर्म, वीरता, नीति, प्रजापालता ऐसी किसी राजा में नहीं पुनः सर्वोपरि बड़ाई यह है कि नामलेत दर्शमात्र असंख्यन जीवनको मुक्ति दीन्हे इत्यादि लोकमें विदित है इत्यादि सबसों बड़े श्रीरघुनाथजी हैं सो सब दिन अर्थात् पला, दण्ड, दिन, मास, वर्ष, कल्प पर्यन्त सब काल में पुनः स्वर्ग, नरक, भूमि, पाताल गर्भवास पर्यंत सब देश में चराचरादि यावत् जीव हैं तिन सबही के साथे रहते हैं ३ अंतर्यामीरूपते सब के उरमें सदा बसत पुनः सर्वज्ञ सबके भीतर बाहेर की जाननेवाले हैं तिनसों चार जो है सेवक ताकी चोरी नहीं चलती है सब जानि लेते हैं ता स्वामीते चोरी करना वृथाही है ताहू पर सेवा सुगम है काहेते देहते परिश्रम बड़ी नहीं चाहते हैं केवल सेवकके उरकी सांची प्रीति पहिचानि सेवकाई मानि अपना करिलेते हैं प्रभुके दरबार की सदा यही रीति चलिआई है ४ कैसे केवल उरकी प्रीति पहिचानते हैं कि कायनकलेश अर्थात् त्याग, तपस्या, होम, यज्ञ, बलि, पूजादि देहसों नेकहू परिश्रम नहींकराबाचाहतेहैं लेश नाम थोरहू पर इनको प्रयोजन नहीं है जो मनकी निश्छल प्रीति है अर्थात् सबको आशभरोसा त्यागि शुद्धमन सनेहसहित सदा शरणागती में लाग रहना इसीमें परिपूर्ण सेवकाई मानिलेतेहैं तब जनकी रुचि जोगवतेहैं अर्थात् विभव, मान, बड़ाई, धरणी, धन, धाम, ऋद्धि, सिद्धि, अर्थ, धर्म, काम, मोक्षपर्यंत जो रुचि सेवककी होतीहै

सो परिपूर्ण शीघ्रही देतेहैं ताहूपर सुमिरे अर्थात् जनकी सेवकाईकी सुधिकरि सकुचिजातेहैं भाव सेवकाई अनुकूल फल हम कुछ नहीं दिया थोरी सेवा अथवा सलूकको बहुतकरि मानना यह कृतज्ञतागुण है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ कृतं जानन् कृतज्ञः स्यात्कृतं सुकृतमीरितम् ५ पुनः कैसे स्वामी हैं कि सेवाइ भलाई के वुराई जिनमें हैनै नहीं है काहेते रीझे वश होत भाव जो निश्छलह्वै परिपूर्ण सेवकाई करत पुनः अकाम है कछु मांगता नहीं यथा हनुमान्जी ताके हाथ आपु विकाइजात सदा रिनिहा बनेरहत पुनः खीझे अर्थात् क्रोध करि जाको वध करतेहैं ताको निजधाम आपना लोक देत मुक्त करत यथा रावणादि राक्षसनको मारि मुक्ति दीन्हे यह कृपागुण है भाव जीवमात्र के रक्षक हैं पुनः देवलोक में जो कल्पवृक्ष है सो अर्थ धर्म काम तीनिही फल देत अरु रघुनाथजी को नाम जो कामतरु कल्पवृक्ष है सो अर्थ धर्म काम मोक्षादि सकल फल फलत स्मरण करनेवाले को देत यह उदारता गुण है ६ प्रसिद्ध प्रमाण देखु मैं ऐसा निकाम रहौं कि बेचेते खोटेहू दाम न मिलते भाव साधन करि कर्म ज्ञान उपासनादि सांचे दामनकी कौन कहै खोटे दामसरीखे पिशाचीआदि झूठिहू सिद्धि मोको न मिलिसक्की पुनः घरमें राखे कृषी वाणिज्य चाकरी आदि किसी कामको नहीं रहौं ताको देखु हे रे नीच मन! ऐसेऊ निकम्मा तुलसी ताहूको शरणमात्र रघुनंदन महाराज निवाज्यो आपनो करि सबभांति बड़ाई दिये ऐसे सुलभ उदार सुस्वामीसों नमकहरामी करता है तौ तेरा ठेकाना कहूं न लागैगा ताते निश्छल सनेह करु ७ ॥

(७३)मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौंतो साईं द्रोही पै सेवक हित साईं १ रामसों बड़ोहै कौन मोसों कौन छोटो। रामसों खरोहै कौन मोसों कौन खोटो २ लोक कहै रामको गुलाम हौं कहावों। एतो बड़ो अपराध भौ न मन बावों ३ पाथ माथे चढ़ै तृण तुलसी जो नीचो। बोरत न वारि ताहि जानि आप सींचो ४

टी०। मेरो मन तौ चाकरीमें चोर है अर्थात् प्रभुकी सन्मुखता त्यागि इंद्रीद्वारा विषयव्यापार में लागता है ताहूपर सुस्वामी ऐसेहैं कि आपनो मानि बड़ाई देते हैं इत्यादि हौं तौ साईं द्रोही ताहू पै साईं सेवकके हितै हैं अर्थात् मैं तौ स्वामी ते विमुख होताहौं ताहूपर स्वामी अपना सेवक जानि मेरा हित करतेहैं ऐसे रघुनाथ जी भले स्वामी हैं ताते अपनी भलाईते मेरा भला किये अर्थात् मेरा मन तौ विषयन में धावत तापर रघुनाथजी बरबस अपना दास बनावत १ झूठेहू दासको सांचाकरि मानत ताते रघुनाथजीसों बड़ा कौन है भाव नीच ऊंच सबको अपना जानि सन्मुख आये मानदेत यह बड़ेन की रीतिहै पुनः ऐसहू सुस्वामी पाइ तासों विमुख होताहौं तौ मोसों छोटा नीच और कौनहै नमकहरामी नीचोंकी रीति है पुनः जे एकबार प्रणाम करत आपनो मानत ऐसे रघुनाथजीसों खरो दूषणहीन कौनहै पुनः थोरी सेवकाईमें बड़ी लाभ ताहूमें खोटाई करताहौं तौ मोसों खोटा कौन है २ स्वामिद्रोही नीच खोटा है ताहूपर वेष बनाइ सबसों कहवावतहौं ताते लोक सब जन मोको रामको गुलाम कहते हैं भाव खोटा है खरा बनाहौं एतो बड़ो

अपराध ताहूपर बांधो नाम टेढ़ो मन रघुनाथजी को न भयो प्रसन्नै बने हैं ३ काहेते प्रसन्न रहते हैं कि यथा पाथ जल ताके माथेपर तृण चढ़त सो आपना सींचा जानिकै वारि जल त्यहि तृणको बोरत नहीं तथा तुलसी को अपना जानि प्रभु पालत ४ ॥

(७४)जागु जागु जीव जड़ जोहै जगयामिनी। देह गेह नेह जान जैसे घनदामिनी १ सोवत सपने सहै संसृति संताप रे। बूड़्यो मृगवारि खायो जेवरी को सांपरे २ कहै वेद बुध तू तो बूझ मन माहिं रे। दोष दुख सपने के जागेही पै जाहिं रे ३ तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहूं तायरे। रामनामशुचि रुचि सहज सुभायरे ४

टी०। जडोऽज्ञ इत्यमरः॥ अस्यार्थः॥ जडः अज्ञः द्वे अत्यन्तमूढस्य यदुक्तम्॥ इष्टं वानिष्टं वा सुखदुःखे वा न चेहयोः। मोहात् विन्दति परवशगः स भवेदिह जडसंज्ञकः पुरुषः॥ अर्थात् अपनी हानि लाभ तथा दुःख सुख तोको नहीं सूझत ताते हे जड़ जीव! अविद्यारात्री में अज्ञ निद्रा वश बहुत सोये ताते अब जागु जब न जागा तब जोरते पुकारि बोध दै कहत कि हे जड़! जागु विवेक विराग नेत्र खोलि ज्ञानदृष्टि फैलाइ जगतरूप यामिनी रात्री जो है देखु तौ कैसी भयानक अँधियारी है अर्थात् रात्री में अन्धकार होत तामें जब मेघ ह्वैआवत तब अधिक अँधेरा होत तामें सोवनहार को धन चोर मूसिलेत इहां मोह जो जीवकी अचेतता सोई जग रात्रीमें अन्धकार है ताहूपर जो देहसंबन्ध स्त्री पुत्रादि तथा गेह घर के पदार्थ अन्न धनादि तामें नेह अपनपौ मानना सोई समूह मेघ है तामें जो क्षण में चैतन्यता क्षणमें भूलिजाना सोई दामिनी है ऐसा जानु कि जो जागि है न तौ कामादि चोर तेरा पूर्वरूप धन सब हरिलेइँगे ताते जागु १ पुनः जगयामिनी में अज्ञतारूप निद्रा में सोवत समय लोक व्यवहाररूपस्वप्ने में संसृति जो जन्म मरणादि संताप दुःख को सहता है भाव स्वप्ने में अनेक दुःख देखात ते यद्यपि वृथाही हैं परन्तु विना जागे सत्यही देखात तथा यावत् लोक व्यवहार है सोऊ त्रिकाल में वृथा है परन्तु विना जागे भाव विना ज्ञानभये संसारको व्यवहार सब सांचा देखिपरत ताहीमें भूला तीनिउ तापैं हानि वियोग जन्म जरा मरण गर्भवास यमसांसति आदि अनेक दुःख सहता है यह स्वप्ने कैसो दुःख अज्ञतामात्र है कौन भांति यथा मृग वारिमें बूड़यउ पुनः जेवरी के सांपने काटिखायो अर्थात् सूर्य किरिणि जो जलकी लहरी सम देखात ताको जलजानि प्यासवश मृगा धावा करताहै इसीते वह मृगजल कहावता है यद्यपि वह सांचा जल नहीं है परन्तु भ्रम नहीं जाती है तैसेही मृगजीवको धरणी, धन, धाम, व्यापार, स्त्री, पुत्र, परिवार, मित्रादि जलवत् देखात ताहीमें आसक्त रहना बूड़िजानाहै पुनः जेवरी रसरी अँधेरे में परी है सो सर्पवत् देखात इति जेवरीको सर्पसरीखे झूठा जो संसार तामें सांचेकी भ्रम मोहरूप अँधेरे में देखात ताहीमें परि पूर्वरूप को नष्ट होना वाको काटिखानाहै विषय विषमें परि चौरासी को जाना मरिजाना है २ जा भांति स्वप्ने में किसीने देखा कि साधुब्राह्मणवा गऊ मैं मारि डाराहै सो दोष मोको लगाहै अथवा किसी

के चोरी किया ताते राजदण्ड करि कारागार में परा अथवा कोऊ प्यारा मरिगया या करालरोग दरिद्रतादि महादुःख परा इत्यादि दोष दुःख विना जागे न मिटैगा ताही भांति लोकव्यवहार आत्माको स्वप्नवत् हैं ताको वेद कहत पुनः बुध पण्डित वेदतत्त्वज्ञ कहत पुनः हे जीव! तू तौ मनमाहिं बूझ भाव पूर्वरूपको सँभारि मनसों विचार करि देखु कि स्वप्ने के यावत् दोष दुःख हैं ते जागेही पर जाइँगे बीच न जाइँगे अर्थात् आत्मरूप दोष दुःखरहित सदा आनंद रहै सोई कारण मायावश निद्रावत् आत्मरूप भूलि जीव बुद्धि किया मानौं सोइ गया पुनः कार्यमायावश इंद्री विषयसुखमें परि देहाभिमानी भया सोई स्वप्नवत् असत् कर्मकरि दोषी बना ताके फल भोगमें नानायोनिन में जन्मत मरत तीनिउ तापैं गर्भवास यमसांसति इत्यादि अनेक दुःख भोगत है सो यावत् देहाभिमानी बनाहै तावत् स्वप्ने कैसे दुःख दोष कैसे मिटैंगे ताते जब जागै अर्थात् पूर्व आत्मरूपको सँभारै तब देहाभिमानी दोष दुःख सब मिटिजाई ३ तहां जागनेका उपाय क्या है सो सुनु हे रे जड़ जीव! जा भांति स्त्री, पुत्र, धन, व्यापारादि में तेरी रुचि है सो वह अशुचि जानि त्यागिके वैसही सहज स्वभावते शुचि पवित्र जो रामनाम है तामें रुचि करु सनेह सहित सुमिरण करु नाम के प्रभाव ते आपही जागैगो सो गोसाईंजी कहत कि जागेते तीनिहू तापन की ताय तपनि सो मिटि जाई ४ ॥

राग विभास।

(७५) जानकीश की कृपा जगावती सुजान जीव जागि त्यागि मूढ़तानुराग श्री हरे। करि विचार तजि विकार भज उदार रामचन्द्र भद्रसिंधु दीनबंधु वेद बदतरे १ मोहमाय कुहूनिशा विशाल काल विपुल सोयो खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जो परे। अब प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकाश वास नाश रोग मोह द्वेष निविडतम टरे २ भागे मद मान चोर भोर जानि यातुधान काम क्रोध लोभ क्षोभ निकर अपडरे। देखत रघुवरप्रताप बीते सन्तापपाप ताप त्रिविध प्रेम आप दूरही करे ३ श्रवण सुनि गिरागँभीर जागे अति धीरवीर वर विराग तोष सकल सन्त आदरे। तुलसिदास प्रभु कृपाल निरखि जीवजन विहाल भंज्यो भवजाल परममंगलाचरे ४

टी०। अज्ञता निद्रा अत्यन्त घेरेहै परन्तु पुकारि बोध देनेते किंचित् चैतन्यतामें जीव संदेह करता है कि रुचिते रामनाम सुमिरण करनेते मोको कौन जगावैगा तापर कहत कि जानकी के ईश स्वामी श्रीरघुनाथजी तिनकी कृपा रक्षा हेतु जीवमात्र के समीप खड़ी जगावती है अर्थात् जीवमात्रके रक्षा करिवेको आपही को समर्थ मानेहै ताते जिनके धामरूप दर्शनते लीला श्रवण नाम उच्चारणमात्र जीवको कल्याण करते हैं यथा यमनादि की कथा लोक में प्रसिद्ध है सोई जगावना है भाव वेद प्रामाणिक रामनामको प्रभाव सुनिकै हे जीव, सुजान! जागु जड़ता त्यागि श्रीहरे! अनुरागु अर्थात् यावत् देहाभिमानी रहा तावत् तू जड़ रहा

भाव संसारैको सांचा माने ताते हित अनहित नहीं सूझा अब तेरी जीवबुद्धि भई भाव अपनाको ईश्वरको अंशकरि जाना तौ अंशअंशी संबन्धते तू अब सुजान भया ताते जागु भाव पूर्वरूप सँभारिकै देहाभिमानते जो जड़ता रही ता मूढ़ता निद्रा को त्यागि श्रीरघुनाथजीको अनुरागी हो कौन भांति ते कि सुमतिते विचारकरि जीवके दुःखदायक जो इन्द्रियविषयकी वासना कामादि विकार तजि विषयते मुख फेरि मन स्थिर करि श्रीरघुनाथजी को भजु सदा सेवामें तत्पर रहु कैसे हैं रघुनाथजी उदार अर्थात् याचकमात्रको परिपूर्ण दान देते हैं पुनः भद्र कल्याणके भरे समुद्र हैं पुनः दीन जनके बन्धुसमान सहायक हैं ऐसा वेद वदत सदा बखान करत अर्थात् कृपा दया करुणा क्षमा शीलादि यावत् जीवनके कल्याणकर्ता गुण हैं तिनके भरे तौ समुद्र हैं परन्तु दीनबन्धुता पुनः उदारता ये गुणविशेष प्रसिद्ध हैं काहेते दीनबन्धुता यह है कि नीच ऊंचा कोऊ सन्मुख हुआ ताको आदरसहित कृतार्थ किये पुनः उदारता यह कि नामरूपलीला धामद्वारा सहजही असंख्यन जीवनको परमपद देते हैं जो वेद वदत सो लोकप्रसिद्ध है १ कुहूनिशि अमावस की राति जामें अन्धकार अधिक होत तामें चारियामकी प्रमाण है तथा मोहरूप अंधकार अधिक है जामें ऐसी अविद्या मयरूप कुहूनिशि अमावस राति विशाल बड़ी भारी है प्रमाण रहित तामें विपुलकाल सोयो अर्थात् जबते जीवनाम पाये तबते अबतक अज्ञतारूप निद्रामें सोवतैरहेउ तबते कल्पान्तन बीतिगये इत्यादि विपुल बहुत काल सोयो तामें देहाभिमानरूप स्वप्नमें जो परेउ ताते पूर्व जो आत्म-रूप अनूप अद्भुत ताको खोये भूलिगयो स्वप्नवत् देहाभिमानते इन्द्रियविषयवशते अनेक दुःख सहतरहे सो अब प्रभात भया अविद्या राति बीती काहेते ज्ञानरूप भानु सूर्य उदय भये तिनकी प्रकाश विवेक विरागादिते मोह जो जीवकी अचेतता द्वेष जीवन में विरोध इत्यादि निविड़तम सघन अंधकार सो टरे भागे पुनः बहुत सोवनेते रोग होते हैं अर्थात् कफवृद्धि ह्वै नथुना कण्ठ मुख में भरि जात लार बहत आलस बढ़त इत्यादि जागे मिटिजात तथा इहां इन्द्रिय विषयादि देहसुख की अनेक वास कहे वासना सोई रोग हैं सो जागे ते नाश भये २ अंधेरी रातिते चोर विचरते हैं तथा यातुधान निशाचर प्रचंड रहते हैं ते भोर होत भागते हैं तथा इहां जाति विद्या धनादि पाइ मनमें हर्ष बढ़ावना सो मद है पुनः अपना को बड़ा जानि चित्त उन्नत करना सो मान है तेई इहां चोर रहे ते भोर जानि भागे भाव जीवके चैतन्य होतही जातरहे पुनः काम मैथुन चाह-क्रोध अपर को दंडकी चाह लोभ परधनकी चाह क्षोभ हर्ष विस्मयवश मनकी स्थिरता इति काम क्रोध लोभ क्षोभ इत्यादि निकर समूह तेई यातुधान निशाचर यद्यपि महाबली हैं किसीके जीतिबे योग्य नहीं परन्तु दिन प्रकाश देखि आपनी ओरते डराइकै भागे केवल ज्ञानके प्रतापको अविद्याको परिवार विशेषि नहीं डरत तहां प्रीतिपूर्वक नाम स्मरण करत संते जब उरमें रूप आइगयो तिन रघुवरको प्रचण्ड प्रताप देखतही संताप हानि वियोगादि सब दुःख तथा पाप जो संचित ते बीते प्रारब्धी पापनको फल दैहिक दैविक भौतिकादि त्रिविध तापैं तिनको राम प्रेमरूप आप नाम जलस-मूह वृष्टि ह्वै दूरिहीं किये बुझाइदिये अर्थात् संचित पाप तौ प्रभुके सन्मुख होतही

नाशभये बाकी जो प्रारब्धी देहकरि ज्वरादि दैवनकरि हानि आदि भूतनकरि सर्प विषादि जो तीनों तापैं प्रचण्ड वरती हैं तहां रघुनाथजीविषे जहां प्रेम उमँगा ताके प्रभावते सब तापैं बुझिगईं जीव आनन्द बनारहत ३ जब जीव जागिकै प्रेमपूर्वक नाम स्मरण करनेलगा ताकी रीति रहस्य देखि रामसनेही जानि सकल संत जन आदरे आदरपूर्वक वचननते प्रशंसा करनेलगे इति संतनकी गंभीरवाणी जाकी लोकवेद में प्रमाण ऐसी गरू वाणी श्रवणते सुनतही वरविराग संतोषादि वीर अत्यंत धैर्यमान ह्वै जागे अंतरमें उत्पन्नभये अर्थात् जो प्रभुकी कृपा है तौ तौ संत जन मोको आदर करते हैं यह संतोष भया पुनः जो संतनमें मेरा आदर है तौ विषय में आशा करना मोको उचित नहीं इति विराग भया वेउपाइ स्वयं उपजे ताते वर श्रेष्ठ हैं इत्यादि विरागादि विवेककी सेनासहित हरिशरणागती को भरोसा राखे चैतन्य ह्वै जीव जब संसारको जीतने हेतु समरमें सन्मुख भया तब जो मोह दल प्रवल ह्वै दबाया जीवको संकट में डारा तापर गोसाईंजी कहत कि प्रभु रघुनाथजी कृपालु कृपा भरे मंदिर अर्थात् जीवमात्र के रक्षक हैं ते जब आपने जन जीवन को विहाल विलोकि देखिकै भवजाल भंज्यो संसार के बंधन तोरिडारे देहाभिमान ममतादि नाश भई शुद्ध प्रेमाभक्ति परममंगल आचरे दृढ़ करि करावनेलगे ४ ॥

राग ललित ।

(७६) खोटो खरो रावरो हौं रावरे सों झूठ क्यों कहौंगो जानौ सबहीके मनकी । करम वचन हिये कहौं न कपट किये ऐसी हठ जैसी गांठि पानी परे सनकी १ दूसरो भरोसो नाहिं वासना उपासना की वासव विरञ्चि सुर नर मुनिगनकी । स्वारथ के साथी मेरे हाथी श्वान लेवा देई काहू तो न पीर रघुवीर दीन जनकी २ सांप सभा सावर लवार भये देव दिव्य दुसह सांसति कीजै आगेही या तनकी । सांचे परौं पावौं पान पञ्चन में पन प्रमाण तुलसी चातक आश रामश्यामघन की ३

टी० । देहेंद्रीसहित मन पुनः मन चित्त बुद्धि अहंकारसहित जीवको प्रभुके सन्मुख करि तब सेवक सेव्यभाव दृढ़ता हेतु प्रार्थना करतेहैं हे श्रीरघुनाथजी ! आपकी सौगंदकरि कहतहौं मैं खोटा हौं वा खरा हौं जो कछु हौं सो रावरो हौं भाव आपही को गुलाम हौं यही निश्चय है काहेते रावरेते भाव आपते झूठी बात क्यों कहौंगो क्योंकि आपतो सबही के मनकी बात जानते हौ तहां झूठी कैसे चलैगी ताते कर्म वचन हियेमें कपट किये नहीं कहत हौं अर्थात् मन वचन कर्मकरिकै ऐसी सांची हठ पकरे हौं जैसे सनकी रस्सी में गांठि तामें पानी परेते ऐसी दृढ़ ह्वैजाती है कि काहूभांतिते छूटती नहीं तैसेही दृढ़ता सहित मैं आप को गुलाम हौं १ कैसे केवल आपहीको हौं कि वासव जो इन्द्र विरंचि जो ब्रह्मा सुर देवगण यावत् नर मनुष्य मुनिगण इत्यादि किसीको इष्ट मानि उपासनाभाव

पूजा पाठ मंत्र जपादि आराधना करिवेकी वासना मेरे नहीं है अरु न दूसरेको भरोसा मोको है कि देवादि कोऊ मेरा कल्याण करेंगे काहेते कि ये सब स्वार्थ के साथी हैं भाव जवतक पूजा पावैं तवैतक साथी हैं जब पूजा न पावैं तवै शत्रु है- जाइँ यथा इन्द्र ब्रजपर कोपकरि बोरिडारे की इच्छा कीन्हे पुनः देवादि कैसेहैं कि मेरी उनकी लेवादेई हाथी श्वानकी है अर्थात् मेरा हाथी लैके श्वान कुत्ता मोको दीन चाहत इहां मन हाथी है लौकिक तुच्छ सुख श्वान है अर्थात् विधिपूर्वक मन लगाइकै उनको पूजापाठ मंत्रजाप जन्मभरि कियाकरौं तब स्त्री पुत्र धन भोजनादि लौकिक सुख वै हमको देइँ तामें क्या है पुनः हे रघुवीर! जिनसों कछु भी कर्म नहीं है सकत हम ऐसे आलसी जे केवल शरणमात्र नाम लै अपना दुःख मिटावा चाहत ऐसे दीनजननकी पीर तौ काहू देवादिकन को नहीं है कि नाममात्रते संकटमें सहा- यक होइ २ हे रघुनाथजी ! कदाचित् मैं झूठ कहत होउँ तापर लोकमें उपखान प्रसिद्ध है कि सांपसभा में सावर लवार जाइ तौ कैसे होइ उवार अर्थात् सर्पको मुख कीलनेवाले जे सावरतंत्रमें मंत्र हैं तिनको जे विधिवत् जानतेहैं ते बांबी ढिग जाइ मंत्र सों कीलि सर्पको पकरि लेतेहैं अरु जे सावर में लवार झूठे हैं मंत्र नहीं पढ़ेहैं वै जो सर्पनके ढिग जाइँगे तौ अवश्यही सर्प काटि खाइँगे वै कैसे बचिसकैंगे इत्यादि यथा सर्पनकी सभामें सावर लवारगये जैसी दशा होती है तैसेही मैं ल- वार भये अर्थात् केवल आपहीकी शरणागती दृढ़ मेरे मनमें न होइ झूठही आपुको वनता होउँ तौ हे देव, श्रीरघुनाथजी ! आपुतौ दिव्यरूप दिव्यदृष्टि हौ मेरे अंतर में देखि लीजै जो मैं झूठा होउँ तौ आपनेही आगे मेरे या तनुकी दुसह सांसति कीजै अर्थात् जो सहि न जाइ ऐसा कराल दंड दीजै भाव यथा सावर लवार को पाइ सर्प काटि खातेहैं वह मरिजाता है तैसेही जो मैं आपकी गुलामी में झूठा परौं तौ मोको यमसांसति में डारिये पुनः यथा सांचे सावरी मंत्रवाले जो सर्पढिग जातेहैं तौ सर्प उनके वशमें रहते हैं तथा मैं भी सांचे परे पर अर्थात् आपुकी गु- लामी जो मेरे उरमें दृढ़ होइ तौ गुलामीपद सांचा प्रसिद्ध करिवे हेतु आर्त अर्थार्थी जिज्ञासु ज्ञानी प्रेमी इति पांचोभक्तरूप पंचन के बीचमें एकवीरा प्रसादी पान पावौं जामें तुलसी चातक को रामरूप श्यामघन स्वाती के मेघकी आश इत्यादि जो मेरा पन दृढ़ अनन्यता सो भक्तन में प्रमाण होइ भक्तन में मेरी अनन्यता सदा सांची बनीरहै यह निर्विघ्न अचल बनीरहै ३॥

(७७) रामके गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम काम यहै नाम द्वैहौं कबहूं कहतहौं। रोटी लूंगा नीके राखै आगेहू की वेद भाखै भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहतहौं १ बांध्योहौं करम जड़ गर्व गूढ़ निगड़े सुनत दुसह हौं तो सांसति सहत हौं। आरत अनाथ नाथ कोशल कृपाल पाल लीन्हौं छीन दीन देख्यो दुरित दहतहौं २ बूझ्यो ज्योंहीं कह्यो मैंहूं चेरो ह्वै हौं रावरोजू मेरो कोऊ कहूं नाहिं चरण गहतहौं। मींजो गुरुपीठ अपनाइ गहि बांह बोलि सेवक सुखद

सदा विरद बहत हौं ३ लोग कहैं पोच सो न शोच न सँकोच मेरे ब्याह न बरेखी जाति पांति न चहत हौं। तुलसी अकाज काज रामही के रीझे खीझे प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ४

टी०। आपने संबन्ध की दृढ़ता कहत कि मैं श्रीरघुनाथजी को गुलाम हौं अरु रामबोला ऐसा मेरा नाम श्रीरघुनाथजी राख्यो पुनः रामगुलामनके काम यथा यश श्रवण कीर्तन नाम स्मरण रूपको सेवन अर्चन वन्दन दास्यता सख्य आत्मनिवेदन इत्यादि तामें मेरा यही काम है कि हौं मैं कबहुं दिनभरे में किसी समय राम राम सीताराम इत्यादि द्वयनाम कहतहौं अर्थात् नामस्मरण मेरा काम है पुनः चाकरी क्या मिलती है कि रोटी लूगा भोजन वसन परिपूर्ण दिये भाव कृपा भोजन पाइ संतोषरूप तुष्टि विरागरूप पुष्टि भई अर्थात् कृपाकरि विषयआशा निवारे पुनः दया वसन पाइ दुःख दरिद्र तापादि शीत उष्णते रक्षा भई लोकमान्यतारूप मर्याद भई इत्यादि भोजन वसन दै नीकी भांति राखे पुनः आगे परलोक की भलाई को सो तो वेदभाषत कि तेरो भलो है है भाव जो नाम मैं स्मरण करतहौं ताको प्रभाव वेद ऐसा कहत यथा ऋग्वेदे॥ परंब्रह्म ज्योतिष्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः॥ सामवेदे॥ रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति॥ बृहद्विष्णुपुराणे॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति रामनामानुकीर्त्तनात्॥ इत्यादि वेद कहत ताते आनन्द लहतहौं नामको प्रभाव सुनि सुख पावतहौं १ अब पूर्वको हाल कहत कि गर्वरूप निगड़ बेड़ीगूढ़ गुप्तडारि जड़कर्मने हौ मोको बांध्यो अर्थात् जबतें आत्मदृष्टि भूलि जीव भयो तबते देहसुखहेतु यज्ञ दान तप तीर्थ व्रत पूजा पाठ जपादि सत्कर्म कीन्हेउँ कामवश वेश्या परस्त्रीरत क्रोधवश पर अपवाद हानि हिंसा दाग दण्डादि लोभवश चोरी ठगी जुवां छलकरि परधन हरणादि अशुभकर्म कीन्हेते जड़ हैं अर्थात् बिना भोगे छूटते नहीं यथा मिताक्षरायाम्॥ नो भुंक्ते क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम्॥ इत्यादि जड़कर्मन ने जीवको बांध्यो कौनभांति कि गर्व जो देहाभिमान अन्तर में दृढ़ अर्थात् मैं ब्राह्मण पण्डित मैं क्षत्री वीर मैं वैश्य धनी इत्यादि गुप्तबेड़ी डारिदिया पुनः कर्मनके भोग मैं जो शुभकर्म को फल सुख भया सो तौ बीतिजात जानी न परा अरु अशुभको फल हानि वियोग दरिद्रता व्याधि आदि ऐसा कराल भया जो सहा न गया तब शास्त्रद्वारा प्रभुको प्रभाव सुनि पुकार कीन्हेउँ कि हे प्रणतपाल, दयालु, प्रभो! हौं तौ मैं तौ कर्मवश दुसह सांसति जो सहि नहीं जात ऐसा दुःख सहत हौं ताके उबारहेतु आपुकी शरण हौं मेरी रक्षा करौ इत्यादि मेरे वचन सुनि सन्मुख दृष्टि कीन्हे तासमय मैं दुरित दहतहौं मैं अपने पापनते जरतारहौं ऐसा आरत दुःखित मोको देखि दया लागि काहेते कोशलपाल कृपालु हैं पुनः जिन के दुःखमों कोऊ सहायक नहीं ऐसे आरत अनाथन के नाथ हैं ताते दयाकरि रघुनाथजी कर्मबन्धन ते मोको बरबश छोंनि लीन्हे अर्थात् पूर्वकर्म नाश करि दीन्हे २ पुनः प्रभु मोसों ज्योंहीं बूझे पूछे कि तू कौन है यह सुनतै त्योंहीं मइं कहौं कि माता पिता बन्धु स्त्री पुत्र बन्धु सखा सनेही स्वामी इत्यादि मेरे कोऊ कहौं

नहीं है अवलम्ब रहित अनाथ अब आपुके चरण गहत हौं भाव आपही के चरण शरण में कल्याण देखता हौं ताते हे स्वामीजू। अब रावरो चेरो अर्थात् आपही को गुलाम हैहौं दूसरा ठेकाना कहूं नहीं है यह सुनि करुणासिंधु शरणपाल प्रभु मेरी पीठिमें गुरु मींजे यह कहनूति लोकविदित उपखान है अर्थात् निर्हेतु मेरा भला कीन्हे क्या भलाई कीन्हे कि प्रभु कहे कि मेरी यह प्रतिज्ञा है कि आपने सेवकनको सदा सुखदेनहारा विरद जोहै बाना ताको वहत हौं सदा धारणकिहे हौं ऐसा वचन बोलि बांह गहि अपनाई भाव मेरा हाथ पकरि आपनो गुलाम बनाये यह गुलाम होने को आदि कारण है ३ जब रघुनाथजी मोको अपना गुलाम बनाये तब लोक के कोऊलोग मोको पोच अर्थात् नीच कहे सो सुनि मोको शोच पछिताव पुनः संकोच लज्जा इत्यादि मेरे एकहू नहीं काहेते जो ब्याह करना होता तौ निचाई को शोच होता तहां ब्याहहेतु बरेखी बरिच्छा तौ किसीते चाहता नहींहौं ताते शोच नहीं पुनः जो किसी जाति की पांति में बैठना होता तौ निचाईते संकोच होता तहां किसी जातिकी पांति बैठा नहीं चाहताहौं ताते संकोच नहीं पुनः तुलसी को अकाज तौ राम के खीझे है तथा काज राम के रीझे है भाव केवल रघुनाथ जीकी प्रसन्ना ते मेरा प्रयोजन है ताते रामनाम में जो मेरी प्रीति है तिस नाम के प्रभाव की मोको प्रतीति है ताते मनमें मुदित आनन्द रहत हौं ४ ॥

(७८) जानकीजीवन जगजीवन जगतहित जगदीश रघुनाथ राजीवलोचन राम। शरदविधुवदन सुखशील श्रीसदन सहज सुन्दरतनु शोभाअगणितकाम १ जगसुपिता सुमातु सुगुरु सुहित सुमीत सबको दाहिनो दीनबन्धु काहूको न बाम। आरतिहरण शरणद अतुलितदानि प्रणतपाल कृपालु पतितपावन नाम २ सकल विश्ववन्दित सकलसुरसेवित आगम निगम कहैं रावरेई गुणग्राम। इहै जानि के तुलसी तिहारो जन भयो न्यारो कै गनिबो जहां गने गरीबगुलाम ३

टी०। जो बात जानिकै मैं आपुको गुलाम भयों सो सुनिये हे प्रभो! ऐश्वर्यरूपते आपु जगदीश जगत्भरेके ईश ईश्वर पालनकर्ता हौ कौन ईश राम अर्थात् सबको अपने रूप में रमावनहारे साकेतविहारी राम राजीवलोचन कमलसमनेत्र कृपरस भरे ताही कृपादृष्टिते सुलभ जगत् के उद्धारहित जगत् के जीवन राजाधिराजरूप प्रगट भयो कैसारूप रघुनाथ अर्थात् धर्मधुरीण वीर धीर उदार दानी इत्यादि में शिरोमणि जो रघुवंश ताके नाथ सबगुण अधिक करि धारण कीन्हेउ पुनः जानकी के जीवन अर्थात् ऐश्वर्यरूपते उत्पत्ति पालन संहारकरनहारी आह्लादिनी शक्ति पुनः माधुर्य में जो धर्म वीरता उदारतादि सहित सब विरक्त परमहंस होते आये ऐसा उत्तम विदेहकुल तामें शिरोमणि जनक महाराज तिनकी पुत्री श्रीजानकीजी करुणा क्षमा कृपा दयादि गुणयुत पतिव्रतन में शिरोमणि तिनके जीवन प्राणप्यारे पति हौ पुनः शरदविधुवदन शरद ऋतुके पूर्णचंद्रसम मुख सो सुख

शील श्रीसदन मन्दिर है अर्थात् सुख सदा एकरस प्रसन्न सो मुखचंद्र में अमलता है पुनः शील सबको सन्मान करना सो शीतलता है पुनः श्रीशोभा सोई प्रकाश है इत्यादि भरा मंदिर है पुनः जो बिना भूषणै भूषितवत् देखाइ ताको रूपगुण कही इति रूपभरा सहजही में सुंदर श्यामतनु तामें अनेकन कामदेवनकी ऐसी शोभा सर्वांगपरिपूर्ण भरी है इति शोभा गुणमय रूप नेत्रद्वारा मनको मोहनहार १ पुनः ऐश्वर्य माधुर्यमिश्रित स्वभावके गुण कौन हैं कि निर्हेतु जगको भरण पालन पोषण करतेहौ ताते जगत् के सुंदर सुखद पिता मातासम हौ यह विभुत्व अरु कृपागुण है पुनः सद्गुरुकी समान सन्मुखजीवन को परमार्थ में लगावते हौ ताते गुरुसम हौ पुनः सनेहीजननके हितकार तासहित सुमीत हौ यह सौहार्दगुण है यथा ॥ मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ॥ पुनः कृपा शील सौलभ्यता गुणकरि जीवमात्र के रक्षक हौ इति सबको दाहिने सबहीके हितकार हौ पुनः दयागुणते दीनजननके दुःख में बंधुसम सहायक हौ पुनः क्षमागुणकरिकै आप काहूको वाम नहीं सबके हितकारैहौ भाव जाको वध करतेहौ ताहूको मुक्ति देतेहौ पुनः हे कृपालु, कृपागुणमंदिर ! आपु प्रणतपाल हौ भाव जो प्रणाममात्र शरण में आवता है ताको पालन करतेहौ कौनभांति शरणद शरणागत दै अभयकरत चाको आरति जो दुःख ताको हरिलेतेहौ पुनः अर्थार्थिन को अतुलित संख्यारहित दानदेनहारे उदारदानी हौ पुनः पतितन को पावनकरनहारा आपको नाम है भाव यमनादि एकबार भ्रमते कहि भव पारभया २ हे श्रीरघुवंशनाथ ! आपुको माधुर्यरूप सकल विश्ववंदित अर्थात् अवतीर्ण है खलनको मारि भूभार उतारेउ धर्म स्थापित करि सुर नर नागादिको अभय कीन्हेउ पुनः नामरूप लीलाधामद्वारा सुलभ जीवनको उद्धार करतेहौ ताते सब संसार आपही को वंदना करिरहाहै सो प्रसिद्धै प्रमाण है यथा सनेही संबंधीजन परस्पर मिले राम राम सीताराम करत पुनः न्यायसभा में रामो राम करि सत्य कहते हैं सन्यनिरवारमें राम दुहाई फेरै पुनः शिष्य करने में मंत्र कोई देवै रामराम सुनावना प्रसिद्ध है पुनः अन्नादि तौलन प्रथम रामराम कष्टसमय हाराम मृत्यु समय रामनाम सत्य है इत्यादि पुनः ऐश्वर्यरूप सकल सुर- सेवित अर्थात् परात्पर परब्रह्म जो साकेतविहारीरूप ताकी ब्रह्मा विष्णु शिवादि सब सेवकाई करते हैं यथा ॥ विधि हरि हर पद वंदित रेणू ॥ वशिष्ठसंहितायाम् ॥ जय मत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण । ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यचरणाम्बुज ॥ सदाशिवसंहितायाम् ॥ महाशम्भुर्महामाया महाविष्णुश्च शक्तयः । कालेन समनु- प्राप्ता राघवं परिचिन्तयत् ॥ पुनः आगम जो शास्त्र पुनः निगम जो वेद इत्यादि सब आपही को गुणग्राम कहते हैं यथा पद्मपुराणे ॥ न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा । सनेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान् नहि यत्र रामः ॥ शास्त्रं न तत्स्याद्यहि यत्र रामस्तीर्थं न तद्यत्र न रामचन्द्रः ॥ पुनः श्रुतिः ॥ यः श्रीरामः सविताशे सर्वेषामीश्वरः यमेवेशः वृणुते सः पुमानस्तु यमेवे तस्माद्भू- र्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव ॥ इति सामवेदे तैत्तिरीयश्रुतिः इत्यादि गुणधाम आपु को जानि तुलसी तिहारो जन भयो अब आपुकी क्या आज्ञा है अर्थात् केवट कोल यमनादि गरीब गुलाम जहां गने गये तहां मोको गनिबो के इनतें न्यारो गनिबो

भाव केवटादिकन को केवल कृपैकरि उद्धार कीन्हेउ उनकी कछु विशेष करणी नहीं है तैसेही सुलभ मेराभी उद्धार करिहौ वा इन सों न्यारा भाव परिपूर्ण सेवकाई करनेवालेन में गना चाहते हौ तिस योग्य मैं नहीं हौं महा गरीब हौं ३॥

राग टोड़ी।

(७९) दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ। जाहि दीनता कहौंहौं देखौं सोऊ १ सुर मुनि नर नाग असुर साहबतौ घनेरे। पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे २ त्रिभुवन तिहुँकाल विदित वदत वेद चारी। आदि अंत मध्य राम साहबी तिहारी ३ दीन तोहिं मांगि मांगनो न मांगनो कहायो। सुनि स्वभाव शील सुयश याचन जन आयो ४ पाहन पशु विटप विहँग अपने कर लीन्हें। महाराज दशरथ के रंक राव कीन्हें ५ तू गरीबको निवाज हौं गरीब तेरो। बारक कहिये कृपालु तुलसिदास मेरो ६

टी०। षट् प्रकारकी जो शरणागती हैं तामें प्रथम गोपतृत्व यथा॥ दो०॥ केवट कपिकुल सख्यता शबरी गीध पखान। सुगति दीन रघुनाथ तजि कृपासिंधु को आन॥ इति गोपतृत्व शरणागती में आपनी दीनता कहत यथा दीनको हे श्रीरघुनाथजी! जिनके कर्म ज्ञानादि धन नहीं है अरु संसारदुःखते छूटा चाहते हैं ऐसे दीनजननपर दयाकरि उनको मनभावत दान देनेवाला दयालु दानी आपु के सेवाइ दूसरो त्रिलोकमें कोई नहीं है काहेते यह बात जान्यउँ कि प्रथम मैं अनेकनते याचना करत फिरेउँ तहां जाही देवादि सों मैं आपनी दीनता कहौं याचना करौं सोई ताहीको मैं दीन देखौं भाव वेद पुराणादिकन में देखता हौं कि दीन हैं है सबै आपुही सों याचना करते हैं तिन सबको ऐश्वर्य देतेही अरु आपु किसी ते नहीं याचते हौ १ सबै याचक आपु एक दानी हौ यह कैसे जानाकि मुनि, देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य इत्यादि साहबतौ घनेरे बहुत प्रभुतावाले हैं पै तौलौ उन लोगनकी प्रभुता है हे रघुनाथजी! जौलौ रावरे नेकु अर्थात् जबतक आप किंचित् नयन नहीं फेरिलेते हैं भाव जबतक आपुकी सीधी दृष्टि है तबै तक प्रभुता है जहां आपुकी थोरिहू दृष्टि टेढ़ी भई तहां प्रभुता नाशभई तामें मुनि यथा परशुराम मरीची मुनिको गुरुकरि षडक्षरमंत्र को जप कीन्हे ताते प्रसन्न ह्वै प्रभु शार्ङ्गपरशु दै ईश्वरी प्रभुता दीन्हे पुनः जब सन्मुख वार्ता करते न बनी तब नेक नेत्र फेरे प्रभुता नाश ह्वैगई पुनः सुर इंद्र वरुण कुवेरादि यावत् देवता हैं जब दीन अधीन ह्वै पुकारे तबै अवतीर्ण ह्वै दुःख हरि प्रभुता दीन्हे पुनः जब ऐश्वर्यमें भूलि मन मोटे भये तब प्रभुकी नेकदृष्टि फिरी तबै कोई बलिष्ठ दैत्य ह्वै पुनः ऐश्वर्य छीनिलिये नर यथा सहस्रबाहु दत्तात्रेय भगवान्की सेवाकरि ऐसी प्रभुता पाई जाको दुसरिहा न मिलै सोई विप्रवध किया तापै प्रभुकी दृष्टि टेढ़ी भई परशुरामद्वारा नाश भया इत्यादि सबहिन में जाना चाहिये २ दूसरे किसीकी साहबी एकरस नहींहै पुनः हे श्रीरघुनाथजी! आपकी जो साहबी प्रभुता ऐश्वर्य कैसी है कि आदि सतयुगमें

मध्य त्रेता द्वापर में अंत कलियुग इत्यादि भूत भविष्य वर्तमान तीनिहूंकाल में पुनः त्रिभुवन स्वर्ग भूमि पातालादि तीनिहूं लोकन में तिहारी साहबी विदित है काहेते चारिउ वेद वदत बखानकरि कहिरहे हैं अर्थात् नाम रूप लीला धाम चारिहु नित्य एकरस हैं इनके द्वारा सदा सर्वत्र जीवको कल्याण होता है यह वेद कहत यथा वशिष्ठसंहितायाम्॥ रामस्य नामरूपं च लीलाधामपरात्परम्। एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहाः॥ इति सदा एकरस आपैकी साहबी है ३ मांगनो याचकजन तोहिं मांगि हे श्रीरघुनाथजी! यावत् आपुसों याचना कीन्हेते पुनः मांगनो नहीं कहाये अर्थात् लौकिक पारलौकिकादि सब सुख ऐसा परिपूर्ण दै दीन्हेउ कि जाते अयाचक है गये पुनः किसीके द्वारपर याचने नहीं गये सुग्रीव विभीषणादिके प्रसंगते आपुको यश प्रसिद्ध तथा केवट किरात गीध शवरी आदि के प्रसंगते शीलमय स्वभाव सुनिकै आपुको जन महूं याचन आयों है ४ क्या सुनिकै याचत हौं कि पतिशापते अहल्या पाहन ह्वैगईरहै तापर कृपाकरि दिव्यदेह बनाइ पतिको संयोग करिदिहेउ पुनः पशु वानर सुग्रीव अनाथ रहे ताको सखा बनाय कपिराज कीन्हेउ पुनः दण्डकवनके विटप मुनिशाप ते भस्मभये तिनपर कृपाकरि सब वृक्षहरित करिदीन्हेउ विहंग पक्षी जटायु मांस अहारी ताको पिता सममानि दिव्य देह बनाइ आपने धामको पठायउ इत्यादि सबै गरीबनपर कृपा करि आपने सनेही सम्बन्धी करिलीन्हेउ इत्यादि हे महाराज! दशरथजी के लाडिले आपु ऐसे सुलभ उदार महादानी हौ कि सुग्रीव विभीषणादि रंकनको राव कीन्हेउ अर्थात् जिनके ऐश्वर्य की को कहै रहवेको ठेकाना सुपास नहीं रहै ऐसे कंगालनको महाराज करि दीन्हेउ इत्यादि गरीबनिवाजी आपकी तीनिउ लोक में प्रसिद्ध है ५ तू गरीबको निवाज अर्थात् हे श्रीरघुवंशशिरोमणि! आपकी समताके उदारदानी दूसरा कोऊ नहीं है काहेते रंकन को राव राजा किसी ने नहीं किया पुनः पतित जीवनको राह राह दर्शनमात्र ते मुक्ति किसी ने नहीं दिया अरु आपु प्रणाममात्र सब मनोरथ नीचनको सफल करि गरीबन को बड़ाई दिया ताते गरीबनको निवाजनेवाले एक आपही हौ अरु मैं गरीब तेरो अर्थात् मैं गरीब आपही को गुलाम हौं ताते हे कृपालु, कृपागुणधाम! वारक एकबार पुनः प्रसिद्ध कहिये कि तुलसीदास मेरो गुलाम है भाव आपकी गुलामी नहीं जानता है ताते आपके यश प्रचार में कलियुग मोको डाटता है ताको दरबार में बुलाइ वाकुदंड दर्शाय वासों कहिदीजिये कि तुलसीदास मेरो गुलाम है ताको तू डाटता है ऐसा काम मति करु ६॥

(८०) तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंजहारी १ नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों। मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसों २ ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो। तात मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो ३ तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै। ज्योंत्यों तुलसी कृपालु चरणशरण पावै ४

टी०। जीव ईश्वरते सम्बन्ध चाहिये तामें प्रथम देह बुद्धिके सम्बन्ध कहत कि

यद्यपि मैं देहाभिमानी विषयासक्त हौं तहां हे श्रीरघुनाथजी ! तू दयालु अरु हौं मैं दीन अर्थात् निर्हेतु जीवनको दुःख मिटावना दयागुण है आपु दयाभरे मंदिर हौ तहां मैं संसारदुःख पीड़ित आपकी शरण आवता हौं तहां कलियुग बाधा करता है ताते दीनदुर्गतिमें परा आपुको पुकारता हौं मोपर दया करो मेरा दुःख हरो पुनः तू दानि अर्थात् सुलभ उदारता प्रसिद्धकरि अवतीर्ण भयउ याचकमात्र को अचाही करिदीन्हेउ ऐसे आपु उदार दानीहौ तहां मैं भिखारि हौं अभय शरण भिक्षा मांगता हौं जो मैं प्रसिद्ध पातकी निश्शंक खुलो पापकर्म करता हौं तहां तू पुंज समूह पापन को हारी हरिलेनेवाले भाव एकवार आपको नामलेनेते जेतना पाप नाश हैसक्ता है तेतने पाप मैं करिवेको समर्थ नहीं हौं ताते जहां मैं पापी हौं तहां आपु समूह पापहर्ता हौ १ पुनः जिन के संकट में कोऊ सहायक नहीं है ऐसे अनाथन के नाथ संकट में सहायक आपु हौ तहां मोसम अनाथ दूसरा कौन है भाव स्त्री पुत्र धन धाम माता पिता रहित लोक में तथा पूजा जपादि रहित ताते किसी देवादिको आश भरोसा नहीं ताहूपर समय को राजा कलियुग कोप किहे कामादिको लगाइ मोको मारा चाहत इत्यादि मैं अनाथ ताके नाथ है सहाय करो पुनः आरतिहर तोसों नहीं अर्थात् दुःखित जीवनको दुःख हरनेवाला आपुकी समान दूसरा कोऊ नहीं है तहां मो समान आरत कौन है अर्थात् धनादिकरि दुःखित भवबन्धनकरि दुःखित कलि क्रोधकरि कामादिकन करि दुःखित ऐसा दुःखित मैं आपु दुःखहरणहार मेरा दुःख हरौ अर्थात् अभयपद शरणागत में राखौ २ पुनः जब मेरा देहाभिमान ना रहै तबौ मैं जीव हौं आपुको अंश अरु आपु ब्रह्म हौ मेरे अंशी अर्थात् आपु सिन्धु हौ तहां आपही को मैं एक बुन्द हौं आपुहीकी आधार में रहिसक्ता हौं अरु बिछुड़े ते अविद्या भूमि में परि नाश है जाउँगो ताते आपनी शरण आधार में राखिये पुनः आत्मबुद्धि आये पर भी आपु ठाकुर हौ अरु मैं आपको चेरो गुलाम हौं भाव तबहूं आपु सिन्धुवत् अरु हम तरंगवत् तहां तरंगन को सिन्धु नहीं है अरु तरंगैं सिन्धु की हैं तथा आपु हमारे नहीं हैं अरु हम आपुके हैं अर्थात् आपु हमारे आज्ञाकार सेवक नहीं हैं अरु हम आपुके आज्ञाकार सेवक हैं कौन भांति यथा माता पिता अरु पुत्र यद्यपि एकही है काहेते जाति वर्ण कुल वही समग्र ऐश्वर्य को अधिकारी पुत्र है परन्तु माता पिता स्वामी आज्ञा देनेवाला है अरु पुत्र सेवक आज्ञा पालने वाला है यह प्रमाण चारिउ वर्ण में प्रसिद्ध है कि माता पिता पुत्र को हितकार हैं अर्थात् बालअवस्था में लालन पालन पोषण करते हैं पुनः विद्या विवाह आपनो ऐश्वर्य देत अरु पुत्र पितु मातुको अनुचर है आज्ञा मानत सेवकाई करत तथा गुरु शिष्य एकही हैं परन्तु गुरु उपदेश आज्ञादेनेवाला स्वामी है शिष्य सेवक है यह आश्रमादि सब वेष में प्रसिद्ध है तथा राजालोगन के सखा होते हैं तिनको वेष आशन वाहन अपनी तुल्य देता है यद्यपि सख्यत्व दोऊ दिशते है तदपि राजा को आज्ञाकार सेवकै है जो सगाभाई होइ तहां तक ॥ जेठ स्वामि सेवक लघु भाई ॥ इत्यादि जो मेरी आत्मबुद्धि होवै तब वहू मेरे माता पिता गुरु सखा इत्यादि सब विधिते हितकर्ता आपही हौ ३ पूर्ववत् तोहिं मोंहि नातो अनेक हे श्रीरघुनाथजी !

आपुसों मोसन अनेक संबंध हैं सो तौ मैं कहिचुका अब आपुके मन में जो भावै सोई करि मोको आपना मानिये हे कृपालो! ज्योंही मानिये त्योंही मोको आनंद है प्रयोजन यह कि तुलसीदास आपुके चरणारविन्दन की शरणागति पावै भाव नीच ऊंच काहूभांति शरण में राखिये ४॥

(८१) और काहि मांगिये को मांगिबो निवारै। अभिमतदातार कौन दुखदरिद्रदारै १ धर्मधाम राम कामकोटिरूपरूरो। साहब सब विधि सुजान दान खड्ग शूरा २ सुसमय दिनद्वैनिशान सबके द्वार बाजै। कुसमय दशरथके दानि तैं गरीबनिवाजै ३ सेवा विन गुण-विहीन दीनता सुनाये। जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये ४ तुलसिदास याचत रुचि जानि दान दीजै। रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहिं कीजै ५

टी०। जो आपु कहौ कि थोरी बातको क्यों हमहीं ते कहते हौ हमारे अंग देवादिकनते क्यों नहीं मांगिलेतेहौ यह रीति है कि चक्रवर्ती महाराजनके सेवकहार एक बात स्वामी ते नहीं कहा करते हैं अमलाते कहिकै काम कराइ लेते हैं यह यद्यपि उचित है परन्तु हे श्रीरघुनाथजी! और काहि कासों मांगिये को ऐसा है जो मांगिबो निवारै मेरी याचकता छुड़ावै काहे ते अभिमतदातार मनभावत देनहार पुनः सबभांति को दुःख दरिद्रता सेवाइ आपुके और कौन टारनेवाला है जासों मांगों ताते याचक भी उदार दानी जानि मांगते हैं सो सब भांतिते आपु समर्थ हौ १ कैसे समर्थ हौ कि धर्मधाम सत्य शौच तप दानादि सर्वांग धर्म ते परिपूर्ण भरे मंदिर हौ अर्थात् स्वभाव ते धर्मवंत पुनः तनुते कैसे हौ हे श्रीराम! कोटिन काम ते अधिक रूरो सुंदर आपुको श्यामस्वरूप है अर्थात् सबको अपने रूप में रमावन हारेहौ पुनः साहेब सब को पालनहार हौ पुनः नीति धर्मशास्त्र वेद वेदान्त व्याकरणादि सब विद्या सब देशनकी भाषा पशु पक्षिनकी भाषा सगुणविद्या इत्यादि सब विधिते सुजान प्रवीण हौ पुनः दान तथा खड्ग में शूरभाव पांचौ वीरताते परिपूर्ण हौ तथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ गीर्वाणवाणीनिपुणो रामस्तैः प्रणतं सदा। कीटपक्षिपतंगानां रुतज्ञो रसिकोपि सः ॥ महाशाकुनिको रामः समुद्रागमपारगः। ग्रामारण्यपशूनां च भाषाभिर्व्यवहारकृत् ॥ त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विच-क्षणः। पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदास्वतः ॥ पञ्चवीराः समाख्याता राम एव स पञ्चधा। रघुवीर इति ख्यातिः सर्ववीरोपि लक्षणः २ पुत्रजन्म विवाह राज्याभिषेक रणमें जयगत वस्तुप्राप्त इत्यादि सुसमय उत्सवादि पाइ द्वै दिन सुर नर नागादि सब के द्वारपर निशान बाजा बाजत दान भोजन देते हैं अरु कुसमय में कोई दानी नहीं है अरु हे दशरथ के दुलारे! आपु कैसे उदार दानी हौ कि कुसमय में भी ग़-रीबनको निवाजते हौ अर्थात् पितुवचन पालनहेतु धर्म वीरता धारण करि तृण-तुल्य राज ऐश्वर्य सुख त्यागि उत्साह सहित वनगमन में प्रथम केवटको निवाज्यउ भाव लोक बड़ाई सहित परधाम को अधिकारी किहेउ पुनः देवन के हितहेतु प्रिय-

वियोग अंगीकार किहेउ तबहूं गीध शबरी को शुभगति दै सुग्रीव को सखाकरि परलोक ते अभय पुनः कपिनायक कीन्हेउ पुनः तीसरे उपास सिन्धुतीर विभीषणको शरण राखि परमधाम को अधिकारी करि अविचल राज दीन्हेउ ३ और साहेब सेवा कीन्हे पर देते हैं पुनः दानी याचक को काव्यादि गुण देखि दान देते हैं अरु आप कैसे सुस्वामी उदार दानी हौ कि बिना सेवा केवल दीनता देखि कृपा कीन्हेउ यथा विल्व गन्धर्व अहल्या दंडकवन इत्यादि पावन कीन्हेउ पुनः गुणविहीन जिनके सेवाइ औगुण कोई गुण नहीं यथा किरात, वानर, रीछ, राक्षस इत्यादि जे याचकता सुनाये तिनहूं को आपना बनाये इत्यादि जे जे याचना कीन्हे तिनको आप निहाल किये ऐसा परिपूर्ण दान दीन्हेउ कि जाको पाइ फूले फिरत लोकहू परलोक ते अभय ह्वै आनन्दभरे विचरते हैं ४ तैसे महूं सेवा गुणरहित याचता हौं सो तुलसीदास याचक की रुचि जानिकै दान दीजै कि हे श्रीरघुनाथजी ! आपु पूर्णचन्द्र हौ मोको चकोर कीजै आपुमें प्रेम एकरस मेरे बनारहै इति गोप्तृत्व ५ ॥

राग भैरव ।

(८२) दीनबन्धु सुखसिन्धु कृपाकर कारुणीक रघुराई ।
सुनहु नाथ मन जरत त्रिविधज्वर करत फिरत बौराई १
कबहुँ योगरत भोगनिरत शठ हठ वियोगवश होई ।
कबहुँ मोहवश द्रोह करत बहु कबहुँ दया अति सोई २
कबहुँ दीन मति हीन रंकरत कबहुँ भूप अभिमानी ।
कबहुँ मूढ़ पण्डित विडम्बरत कबहुँ धर्मरत ज्ञानी ३
कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै ।
संसृति सन्निपात दारुणदुख बिनु हरिकृपा न नासै ४
संयम जप तप नेम धर्म व्रत बहु भेषज समुदाई ।
तुलसिदास भवरोग रामपद प्रेमहीन नहिं जाई ५

टी० । अब कार्पण्यता शरणागती कहते हैं यथा दो० ॥ कायर क्रूर कपूत खल लम्पट मन्द लबार । नीच अघी अतिमूढ़ मैं कीजै नाथ उबार ॥ इत्यादि हे रघुकुलशिरोमणि, महाराज ! आपु दीनजनके बन्धुसम सहायकर्ता हौ पुनः दुःखितजनन को शरण आये पर सुखरूप जलभरे सिन्धुसम हौ पुनः जीवमात्र पालन करिबेको दृढ़ानुसन्धान राखना जो कृपागुण ताके आकर खानि हौ पुनः सेवक के दुःख में आपौ दुःखित ह्वै शीघ्र दुःखहरना सो करुणागुण ताको सदा धारण करनेवाले इति कारुणीक हौ ऐसे महाराज आपु स्वामी हौ अरु मैं आपही को सेवक दुःखित दीन ह्वै शरण हौं हे नाथ ! दुःखीकी अरज सुनिये मेरा मन बौराई करत फिरत अर्थात् यथा पुरुष उन्मादादि भये ते बौराय कै अनुचित अनीति करत फिरत पुनः किसी समय जो सावधान होत तब उचित नीति सत्कर्म करत तथा मेरा मन यावत् सत्संगादि ते सावधान तावत् उचित नीति सत्कर्म करत पुनः कुसंगादि में परि इन्द्रियसुखहेतु विषय उन्मादवश अनुचित अनीति असत्कर्म करत फिरत

ताही को फल दुःख भोगहेतु व्याधिआदि दैहिक हानि विषंशादि दैविक सर्प चौरादि भौतिक इत्यादि त्रिविधज्वर में जरत हैं अथवा कामवात १ लोभकफ २ क्रोधपित्त ३ इति त्रिविध सन्निपातज्वर को कहते हैं १ अब मनके प्रसिद्ध आचरण कहत कबहुं सत्संग पाइ शुद्धता हेतु योगगत नियम यम आसन प्रत्याहार प्राणायाम ध्यान धारणा समाधि इत्यादि अष्टांगयोग पर तत्पर होत कबहुं कुसंग में परि भोग यथा श्लो० ॥ सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम्। भूषणं वाहनं चेति भोगाष्टकमुदीरितम्॥ अर्थात् सुगन्ध, स्त्री, वसन, नृत्य, गान, भोजन, पान, भूषण, वाहनादि सुखभोगन में रत प्रीति करता है ताते ऐसा शठ मूर्ख है कि इत्यादि वस्तुन परस्त्रीआदिकनके वश होत उनकी अप्राप्ति में वियोगदुःख सहत पुनः कबहुं मोहवश ते बहुतनते द्रोह करत अर्थात् उसी स्त्री की प्राप्ति उपाइ करत में जो जो बाधा किया तिनपर क्रोध भया ताते मोह भया चैतन्यता नाश भई इति मोहवश ते उन हानि करनेवालेनसों शत्रुता करनेलगा यथा निद्रा हानि आदि बहुत भांति पुनः सोई मन कबहुं अत्यंत दया करत अर्थात् स्त्रीप्राप्ति की उपाय में जिन सहाय किया तिनकी भरिपूरि रक्षा करते हैं अथवा अन्य कामना हानिकरतन पर क्रोध करत कबहुं कथादि निर्हिंसक उत्तम धर्म सुनि जीवनपर अत्यन्त दया करत २ कबहुं परस्त्रीगमनादि में किसीने देखिलिया वा शत्रुसंघट में परे किसी सबलको भेंट होत है हाहा करत मोको बचावो कबहुं अति हानि भई वा स्वार्थवश भये तब मतिहीन निर्बुद्धी हैजात अर्थात् जिनसों कहना अनुचित तिनहूंसों गाई सुनावत जब पीछे अपमान भया तब आपनी बुद्धिको निन्दत कबहुं धारि धैर्य सर्व करिबेयोग्य धर्म उपाय में परे पर रंकतर अर्थात् अत्यंत कंगाल बनिजाते औरनसों प्रार्थना करत कि यह कार्य करना है हमारा किया नहीं है भगत सबमिलि सहाय करो तो हैजाइ कबहुं शत्रुकी हानि करिबे में वा परधन हरबे में वा परस्त्रीगमन होनेमें किसीने सहाय किया ताके हेतु अभिमानीभूप राजा सम होत अर्थात् तुम हमारा काज करो तुम्हारी दिशि हेरें ताकी में आंखि फाड़ि लेउं कबहुं इंद्रिय सुखहेतु अत्यंत कामनावश भया तब मूढ़ अत्यंत अज्ञानी है स्वार्थसाधनमें लागत नीति अनीति कछु नहीं विचारत कबहुं जगत् में पुजाइबे हेतु पंडित होत अर्थात् कथा इतिहासादि अनेक प्रमाण देदे सबनको सुनावत अथवा मान बढ़ावत कबहुं विडम्बत अर्थात् छलव्यापारते आपु सज्जन बना अरु औरनकी निन्दा करत कबहुं सुसंग पाइ धर्ममें रत होत भाव पूजा पाठ जप तप तीर्थ व्रतादि सत्कर्म करत कबहुं महात्मनको संग पाइ ज्ञानी होत संसारको असार मानि आत्मरूप विचारत २ कबहुं लोभके वश भया द्रव्यके चाहते जगत् धनमय देखत धनी ढूंढत फिरत कबहुं क्रोधवशते रिपुमय सब शत्रुइ देखात अर्थात् जहां किसीते लाभ देखानी ताकी समाज शत्रुवत् भाव भेरे स्वार्थ में बाधा करै यथा नटभाटादि प्रथमही सुगुलकी निन्दा करते हैं कबहुं कामवशते जगत् नारिमय भासत सुंदरी युवती ढूंढत फिरत प्रतिक्षण छिन मनमें बसी रहत यथा लोकमें त्रिदोषते सन्निपात होत तथा इहां काम वात है लोभ कफ है क्रोध पित्त है इति तीनि मिलिके संस्कृत जो संसार ताको सन्निपात है सो जीवको दारुण कठिन

दुःख है सो विना हरि श्रीरघुनाथजीकी कृपा अन्य औषधनते यह असाध्य रोग नाश नहीं होत ४ काहेते नाश नहीं होत कि अहिंसा, सत्य, अचोरी, ब्रह्मचर्य, विषय, त्यागादि संयम, शौच, संतोष, तप, सद्ग्रंथपाठ, हरिभरोस नियम है इति योगके अंग हैं पुनः जप, पूजा, तप, तीर्थ व्रतादि धर्म के अंग इत्यादि भेपज समुदाई औषधैं अनेक हैं तापर गोसाईंजी कहत कि श्रीरघुनाथजी के पदकमल में प्रेमहीन पूर्व औषधी कीन्हेते भवरोग जात नहीं अर्थात् प्रेमाभक्ति करि निर्मूल नाश होत कर्म योगादिते दवारहत नाश नहीं होत जो रीति इस पद में कहे हैं सो हंसोपनिषद् में लिखा है कि उर में अष्टदल कमल में आत्माकी वास है ताके मध्य कर्णिका केशरदलादि जिस स्थान पर जात तैसी आत्मा की मति हैजाती है यथा मध्य में रहत तब वैराग्यमति रहत सोई इहां कबहूं योग रत कहे पुनः उत्तरदल पर जात तब क्रीड़ा करिबे की मति होत सोई यहां भोग निरत कहे जब उत्तर दलपर जात तब रति प्रीति मति होती सो इहां हठि वियोगवश होना कहे जब दक्षिण दलपर जात तब क्रूरमति होत सोई इहां मोहवश द्रोह कहे जब पूर्वदल पर जात तब पुण्यमति होत सो इहां अतिदया कहे जब आग्नेयदल पर जात तब निद्रा आलसमति होत सोई इहां दीन मतिहीन रंकतर कहे जब नैर्ऋत्यदल पर जात तब पापमति होत सोई इहां भूप अभिमानी कहे जब वायव्य दल पर जात तब गमन मति होत सोई इहां मूढ़ पंडित विडंबरत कहे जब ईशानदल पर जात तब द्रव्यदान देनेकी मति होत सोई इहां धर्मरत ज्ञानी कहे पुनः जब केशरमें रहत तबै जाग्रत् अवस्था इन्द्रिय विषयवश लोकव्यवहार में मति रहत सोई इहां धनमय रिपु मय नारिमय जग देखना कहे जब पद्मते भिन्न होत तब आनंदरूप तुरीय है यथा हंसोपनिषदि॥ हृदयेऽष्टदले हंसात्मानं ध्यायेत् येनेदं व्याप्तम् तस्याष्टधा वृत्तिर्भवति पूर्वदले पुण्ये मतिः आग्नेय्यां निद्रालस्यादयो भवन्ति याम्ये क्रूरे मतिः नैर्ऋत्ये पापे मनीषा वारुण्यां क्रीडा वायव्ये गमनादौ बुद्धिः सौम्ये रतिप्रीतिः ईशाने द्रव्यादान मध्ये वैराग्यं केशरे जाग्रदवस्था कर्णिकायां स्वप्नः लिङ्गे सुषुप्तिः पद्मत्यागे तुरीयं इत्यादि जो आत्माकी वृत्ति है सो कर्मयोग ज्ञानसाधनकरि छूटती नहीं यथा धन धाम पुत्र परिवारमें सबकी मति सहजही लगीरहत किसी उपायते सनेह नहीं टूटत अरु जब किसीमें प्रीति लागी तब सबको सनेह टूटिजात केवल उसीको संग सूझत यथा स्त्री परपुरुष में रत तथा पुरुष परस्त्री में रत है घरवार त्यागि निसरि जाते हैं अथवा कन्या आपने पतिमें प्रेम करि माता पितादि को सनेह त्यागिदेती है यथा मृगा महाचंचल सोऊ रागवश बंधन में परता है यथा मक्खी सहत में फँसिजाती है यथा सर्प विषधर क्रोधी सोऊ तोंबरीको नाद सुनि बेसुधि ह्वैजाता है ऐसेही श्रीरघुनाथजी में प्रेम आयेते जीवकी वृत्ति मिटिजाती है केवल रघुनाथैजी सूझते हैं ५॥

(८२) मोहजनित मल लाग विविधविधि कोटिहु यतन न जाई।
जन्म जन्म अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई १।
नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय सँग लागै।

हृदयमलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे २
परनिंदा सुनि श्रवण मलिनभे वचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरण बिसराये ३
तुलसिदास व्रत दान ज्ञान तप शुद्ध हेतु श्रुति गावै।
रामचरण अनुरागनीर बिनु मल अतिनाश न पावै ४

टी०। काहेते और उपायनकरि भवरोग नहीं नाश होताहै सो कहत कि मोह-जनित अर्थात् कारण मायावश अमल आत्मरूप बिसरिगयो इंद्री विषयन में परि अचेत होना इति मोह त्यहि करिकै जनित उत्पन्न विविध अनेक प्रकार को मल जीव में लागि गयो तहां यह रीतिहै कि देहमें जो मैल लागता है तो केवल अमलजल में मज्जन करनेते छूटताहै और उपायते नहीं छुटि सकत तथा इहां रामअनुराग जल है ताके बिना और कोटिन यत्नं कीन्हे ते जीवको मैल नहीं जाता है काहेते जन्म जन्म अनेक जन्मनते मोह व्यापार करते करते जीवको अभ्यास सुभाव परिगया नाते निरत उसी व्यापार में चित्त सदा लागरहत ताते प्रतिजन्म अधिक अधिक मैल अधिक लपटातजात १ कौन मल है सो कहत कि परनारि निरखिकै नयन मलिनभये अर्थात् भूषण वसन सहित सुंदरी स्त्री को देखि मन आसक्त भया वाके मिलनेके व्यापार में लगे काहू समय उसने देखिदिया वा बोलिदिया तब अधिक बावले भये इति साधारण पाप सदा होतही रहत कदाचित् प्राप्ती भई तौ महापाप पुनः अधिक नेत्रनमें चाह बढ़ी इत्यादि नेत्र मलीनभये पुनः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, मैथुनादि इंद्री सुखहेतु लागेते मन मलीन भयो पुनः हृदय अंतःकरण यथा चित्त बुद्धि अहंकार वासना अनेक भांति की चाहैं मान अपना को श्रेष्ठता होना मद, धन, विद्या, महत्त्वादि पाय हर्ष बढ़ावना इत्यादि करि हृदय मलीन भयो तामें परि सहजसुख जो सदा आनन्द आत्मरूप ताको त्यागि जीव देहाभिमानी भया अर्थात् स्त्री पुत्र धन धाम में अपनपौ मानिलिया इति महामल है २ परनिन्दा सुनि श्रवण अर्थात् औरनको पापकर्म अवगुण कथनादि हर्षसहित सुनिबेते कान मलिन हैगये तथा परदोष गाये औरनके पापकर्म हर्षसहित बखानकरि कहेते व-चन मलीन भे अर्थात् जिस पात्र में जो चीज भरी यथा घृत तेल जल मदिरादि ताहीमय पात्र है जाता है तैसेही पर पापादि भरनेते श्रवण वचनादि पापमय हैगये पुनः निजनाथ चरण बिसराये अर्थात् जीवके स्वामी जो श्रीरघुनाथजी तिनको यश श्रवण कीर्तन नाम स्मरण पद सेवन अर्चन वन्दनादि करते महापाप नाश होता है तिनके चरण बिसराये विमुख है विषयन में आसक्त होनेते सब प्रकारके मलको भार लागि गयो भाव सब पाप बटुरिकै जीवको भारी बोझा समान है गयो ३ गोसाईंजी कहत कि एकादशी चान्द्रायणादि व्रततीर्थन में दान पञ्चाग्न्यादि तपस्या तथा विवेक विरागादि ज्ञान साधन इत्यादि उपाय जीवके शुद्ध होनेहेतु श्रुति गावत वेद कहत हैं परन्तु इन उपायन के कीन्हे कछु प्रयोजन नहीं है काहेते श्रीरघुनाथजी के चरणारविंदन को अनुराग रूप जल बिना यथा दोहा॥व्यापकता

जो प्रीतिकी जिमि सुठि वसनसुरंग । दृगनद्वार दरशै चटक सो अनुराग अभंग ॥ इत्यादि अनुरागरूप जल में विना अवगाहन कीन्हे पापरूपी मल सो नाश नहीं पावत अर्थात् और युग में जीव शुद्ध होतेरहैं तब कर्म ज्ञानादि करि कछु शुद्धता होतीरहै सूक्ष्म पापरूप मल छूटि जातारहै अब कराल पापरूप महामैल सो कैसे छूटिसकै काहेते कर्म ज्ञानादि साधन तो परिपूर्ण होइ नहीं सक्तेहैं ४ ॥

राग जैतश्री ।

(८४) कछु ह्वै न आइ गयो जन्म जाय ।

अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन वचन काय १

लरिकाईं बीती अचेत चित चञ्चलता चौगुनी चाय ।

यौवनज्वर युवती कुपथ्यकरि भयो त्रिदोष भरि मदनवाय २

मध्यवयस धनहेतु गँवाई कृषी वनिज नाना उपाय ।

रामविमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निशि वासर तयो तिहूंताय ३

सेये नहिं सीतापतिसेवक साधु सुमति भलि भक्तिभाय ।

सुने न पुलकितन कहे न मुदितमन किये जे चरित रघुवंशराय ४

अब शोचत मणिबिन भुजङ्ग ज्यों विकलअंग दले जरा धाय ।

शिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर कोउ न मीत हित दुसहदाय ५

जिन्हलगि निजपरलोक बिगास्यो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ ।

तुलसी अजहुँ सुमिरु रघुनाथहि तस्यो गयन्द जाके एकनायँ ६

टी० । पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रत, ज्ञान, ध्यान, श्रवण, कीर्तनादि कछु ह्वै न आई बनि न पस्यो ताते मेरा जन्म उत्तम मनुष्यतन जाय नाम वृथाही बीति गयो काहेते देवादिकन को जो अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य उत्तम सब तनु साधनको द्वार सो पाय कपट तजि निश्छल ह्वै मन वचन काय देह कर्मकरि रामको न भजे अर्थात् शुद्धमन चरणारविंदनमें न लगाये वचनकरि नाम स्मरण यश कीर्तन न कीन्हे देह कर्मन करि पूजा पाठादि इत्यादि रघुनाथजीको न भजे १ सब जन्म कैसे वृथा गयो लरिकाई में अचेत अर्थात् शुभाशुभ किसी कर्म को ज्ञान नहीं पूर्व केवल पयपान उछंगमें सुख माने कुमारमें दिनप्रति चौगुनी चंचलता चित्तमें बढ़तगई विविध भांतिकी क्रीड़ा करिबे में चाय सुखमाने इति लरिकाई वृथा बीति-गई पुनः जब यौवन अवस्था आई सोई जीवको ज्वर है तहां कफ पित्त वातादि एक प्रचंडपरे साधारण ज्वर होत अरु द्वै प्रचंड परे तीक्ष्ण ज्वर होत तीनिउ प्र-चंड परे सन्निपात होत इहां काम वात लोभ कफ क्रोध पित्त हैं सो युवावस्था आये पर भूषण, वसन, वाहन, भोजन, गंध, गान, नृत्यादि की अधिक चाह ताते लोभ बढ़ा सो मानो कफ प्रचंडपड़ा पुनः धन लाभमें किसीने हानि किया तब क्रोध भया सो पित्त प्रचंडपरा सोई ज्वर है ताते मनकी जरनि ताप है विषया-सक्ती शीश पीड़ा है और कछु सुहात नहीं सो अंगपीड़ा है ताहीमें युवती कुपथ्य

युवावस्थाकी सुंदर स्त्री शीतल ययारि सम उरमें लगी ताही कुपथ्यकरि मदन वायु कामरूप वात भरिगयो विशेषि कामासक्ती सो त्रिदोष सन्निपात भया तब विचारहीन आचरण बेहोशी है कामवार्ता उन्माद है परस्त्रिन हेतु घूमना उठि भागना है इत्यादि में युवावस्था वृथा वीति गई २ पुनः ज्वर उतरेपर भी कफ वढ़ा रहत तथा यौवन गये पर लोभ वढ़ा ताते कृषी खेती अथवा वनिज यथा चीनी अन्न मसाला घृत वसन रत्नादि खरीदि बेचना अथवा चाकरी भिक्षा दलाली आ- कृति चोरी ठगी वटपारी आदि नाना अनेक भांतिका उपाय करते धन बटोरिवेके हेतु लगेरहे ते मध्य वयस गँवाई युवाके अन्त जराके आदि इति मध्य वयस धनके लोभ में वृथा विताइ दीन्ही वालते मध्य वयसपर्यन्त भजन ध्यान न कीन्हें इति रघुनाथजी सों विमुख रहेते जागतकी को कहै सपनेमें भी सुख न लह्यो सुख न पाये अर्थात् सपने में देखते हैं कि शत्रु, व्याघ्र, सर्प, हाथी, पिशाच घेरे हैं पुनः जागत में निशिवासर रातिउ दिन दैहिक, दैविक, भौतिकादि तीनिहूं तापनमें तपो जरते वीत्यो ३ पुनः प्रभुकी सन्मुखता क्या नहीं कीन्हे कि सुमति साधु सुंदरी मति- वाले साधु जे सदा श्रवण कीर्तन स्मरण सेवन अर्चन वंदनादि साधना में लगे रहते हैं ऐसे साधु सीतापति के सेवक रामोपासक तिनको भलीप्रकार भक्ति अर्थात् ईश्वरतुल्य मानि प्रीतिपूर्वक सेवकभावते सेवा नहीं कीन्हें यह युवावस्था के योग्य रहै तब न कीन्हें पुनः मन तनथिरता योग्य जब मध्य वयस आई रहै तब ऐसा उचित रहै कि रघुवंश शिरोमणि महाराज जो चरित कीन्हें रामायणन में प्रसिद्ध है सो सुनते करुणाशील कृपादि गुण विचारि उरते प्रेम उमँगि रोमांच कण्ठावरोध अश्रुआदि पुलकांग होते पुनः मनमें आनन्दभरे कहिकै औरनको सुना- वते सो न तौ पुलकि तनते सुने न मुदित मन कहे ४ वाल युवा मध्यअवस्था तक वल रहो सो तौ वृथा गयो अव जरा वृद्धावस्था आई ताने सव अंग दले मर्दितकरि डारे यथा शिरकंप नेत्रतिमिर कान बधिर मुख दन्तहीन त्वचाजीर्ण कटि टेढ़ी हाथ पांय अवल सर्वांग में शूल कफभरी ग्रीव इत्यादि घावनकरि विकल यथा विना मणिको सर्प तैसेही वलहीन अव शोचत पश्चात्ताप करत काहेते दुसह दाय जो सहि न जाइ ऐसे दुःखके दाव समय पर हित करनवाला कोऊ मित्र नहीं है ताते कर हाथ मींजि भाव इन हाथोंते भगवत् अर्चनादि न कीन्हेउँ पुनः शिर धुनि शिर पीटि पीटि पछितात कि इस शिरते भगवत् प्रणामादि नहीं कीन्हेउँ तौ यमपुर में कौन सहाय करैगो वहां तौ महादुःख है ५ पुनः वन्धु पुत्र पौत्रादि जिनके हित लागि अपना परलोक विगाख्यो अर्थात् हरिते विमुख है देहसम्वन्धिन के स्वार्थ में लागिरहेउँ ते अव ठांय तेरे निकट जहां तू परा मल मूत्र करता है तिस ठौर पर टाढ़ होत लजाते हैं भाव विचारिकै देखिले तेरा कौनहै ताते सवसों सनेह छांड़ि शुद्धमन करि हे तुलसी ! अजहूं अर्थात् अवहूं कछु नहीं गया ताते अवै श्रीरघुनाथ जी को सुमिरु काहेते जो कहो कि अव आशक्ती में मोसे क्या सुमिरण वनै गीता को संदेह न करु काहेते जिन श्रीरघुनाथजीको नाम एकवार कहिकै गयंद गजराज तस्यो भाव जब सबको आशभरोसा त्यागि नाम लीन्हे तैसही तोहूं सबको सनेह भरोसा त्यागि नाम सुमिरु तेरा भी कल्याण होई ६ ॥

(८५) तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ ।
भयोहै सुगम तोको अमरअगम तनु समुझिधौं कत खोवत अकाथ १
सुखसाधन हरिविमुख वृथा जैसे श्रम फल घृतहित मथे पाथ ।
यह विचारि तजि कुपथ कुसङ्गति चलि सुपन्थ मिलि भलेसाथ २
देखु रामसेवक सुनि कीरति रटहिं नाम करि गान गाथ ।
हृदय आनु धनुबाणपाणि प्रभु लसे मुनिपट कटि कसे भाथ ३
तुलसिदास परिहरि प्रपञ्च सब नाउ रामपदकमल माथ ।
जनि डरपहि तोसे अनेक खल अपनाये जानकीनाथ ४

टी० । हे मन ! जो मेरा कहा न मानैगो तौ अन्तकाल में तू हाथ मींजिकै पछितैहै काहेते जो अमर देवतनको मिलना अगम है ऐसा मनुष्यतन तोको सुगम बेपरिश्रम प्राप्त भयो सो न मालूम धौं क्या समुझिकै अकाथ वृथा मनुष्यतन खोये देता है अथवा मनुष्यतन पाइ सब बात समुझिकै अबधौं काहेको वृथा खोये देता है १ जो कहौ कि हम सुखके हेतु और साधन करैंगे तौ हरिविमुख रामसनेह बिना यावत् सुखके साधन सब वृथा हैं कौनभांति जैसे घृतके हेतु पाथ जल मथेते श्रमफल वृथा जात अर्थात् जल मथेते घृत कबहूं न निसरी तैसनै अन्य साधन कीन्हे जीव को सुख न होई केवल परिश्रमै करना है यह विचारिकै कुपथ जो शुद्ध हरिशरणागती ते भिन्न जे पन्थ हैं (यथा यज्ञसूच्याम्) शाक्ताःकौलकुलात्मचारनिरताः कापालकाः शाम्भवा ये तेन्येतरमन्त्रतन्त्रनिरतास्ते तत्त्वतो वञ्चिताः ।आचार्यावतुक्षितादुतरता नग्नव्रतास्तापसा नानातीर्थनिषेवका जपपरा मौनेस्थिता नित्यशः ॥ नित्यं चानशनादिनात्मदमने दत्तावधानाः परे चार्वाकाश्चतुराः स्वतर्कनिपुणा देहात्मवादे रताः । सर्वे वामनिरस्तदुस्सहमहाद्वैते पराशङ्किताः । कर्त्तारं प्रभजन्ति पापनरता भूतेषु ये निर्दया तेषामादिषु कल्पमेवहि फलं नैवास्ति मोक्षं परम् ॥ इति कुपथ पुनः कुसंग यथा चुगुल साहसी द्रोही निन्दक हिंसक क्रोधी शिकारी कामी जुवारी चोर विवादी इत्यादि कुपथ कुसंग तजि इनसों भिन्नरहि पुनः सुपन्थ (यथा महारामायणे) अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपंकजपदं सततं स्मरन्ति ॥ इति सुपंथ चलु पुनः भले साथी यथा ॥ शान्ताः समानाश्च सुशीलयुक्तास्तोषक्षमागुणदयामृदुबुद्धियुक्ताः २ ॥ अब उपासनारीति व्यापार में इंद्री अंगन को लगावत यथा नेत्रनते रामसेवकन को देखु भाव दर्शनसों नेत्र अंतस शुद्ध होई अरु उनकी रीति रहस्य धारण कर पुनः श्रवणनते राम कीरति सुनु ताते श्रवण पावन होयँ पुनः अन्तरवाणी ते रामनाम रटु वैखरीवाणी ते प्रभुके गुणनकी गाथा कथा गान करु पुनः हृदयध्यानमें प्रभुको श्यामसुन्दर स्वरूप आनु कैसा स्वरूप पाणि हाथन में धनुषबाण लीन्हे कटि में मुनिन कैसो पट लसत सोहत तहां भाथ तरकस कसे इहां कलिप्रेरित कामादि शत्रुनते रक्षाहेतु वनवासी वीररूपको ध्यानकहे (यथा रामरक्षायाम्) ध्यात्वा नीलोत्पलं श्यामं रामं राजीवलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ॥ सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तं न्चरान्तकम्

स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ इत्यादि ३ पुनः गोसाईंजी कहत कि प्रपंच अर्थात् प्रकर्ष करिके बली जो पांचो तत्त्व हैं यथा आकाश ताको सूक्ष्मरूप शब्द तामें श्रवण लागते हैं पुनः वायु ताको सूक्ष्मरूप स्पर्श तामें त्वचा लागत पुनः अग्नि ताको सूक्ष्म तनरूप है तामें नेत्र लागत पुनः जल ताको सूक्ष्मरूप रस तामें जिह्वा लागत पुनः पृथ्वी ताको सूक्ष्मरूप गंध तामें नासिका लागत इत्यादि विषयन में इंद्री आसक्तभये कामना बढ़त कामना हानिते क्रोध ताते मोहते जीवनाश होत इत्यादि सब प्रपंच परिहरि त्यागिके शुद्धमन प्रेमसहित रघुनाथजी के पदकमलन में माथ नाउ जो कही कि पूर्वके अनेक असत्कर्म कैसे मिटैंगे तिनको जनि डरपहि काहेते तोसे त्वहि ऐसे पातकी अनेकन खलन को जानकीनाथ रघुनाथजी अपनाये आपना सेवक बनायलीन्हे यह विश्वास राखु ४ ॥

राग धनाश्री।

(८३) मन माधव को नेकु निहारहि।

सुनु शठ सदा रङ्क के धन ज्यों क्षण क्षण प्रभुहि सँभारहि १
शोभाशील ज्ञानगुणमन्दिर सुन्दर परमउदारहि।
रंजनसन्त अखिल अघगञ्जन भञ्जन विषयविकारहि २
जो बिन योग ज्ञान व्रत संयम गयो चहहि भवपारहि।
तौ जनि तुलसिदास निशि वासर हरिपदकमल बिसारहि ३

टी०। अब रक्षामें विश्वासशरणागती मनको उपदेशते हैं यथा दो० ॥ अंबरीष प्रहलादध्रुव गजद्रौपदि कपिनाथ। भे रक्षक अब मेरहू करि हैं श्रीरघुनाथ ॥ इत्यादि सो कहत हे मन! जहां दिनौराति विषयव्यवहारको निहारताहै तहां नेकु क्षणमात्र माधव श्रीजानकीनाथको निहारहु किंचित्दृष्टि उनहूंके रूपपर करहु जब नेकु सन्मुख मन भया तब कहत हे शठ! सुनु ज्यों रंक कंगाल को धन थोरा होत ताको भलीभांति ते जोगवत रहत तैसेही तेरे रामसनेह थोरा है ताते इसीभांति क्षण क्षण पर प्रभुहि सदा सँभारतरहु भाव जब भूलिभी जाय तबै पुनः सुधिकरि रूप पर दृष्टि किहेरहु १ शरीरविषे द्युति कांति लावण्यता सुंदरता रमणीकता माधुरी सुकुमारतादिरूप परिपूर्ण सर्वांगशोभा को भरा पुनः सुभावमें शील अर्थात् नीच ऊंच सबको आदरसहित बड़ाई देतेहैं पुनः अमल आत्मरूपते ज्ञान गुणके भरे मंदिर सदा एकरस अखण्ड ज्ञानहै इत्यादि अन्तर बाहर सबभांति सुंदर सेवा करिबे योग्य सुसाहब हैं पुनः परमउदार दानी हैं अर्थात् याचकमात्र को अयाचक करि देते हैं भाव लोकहू परलोक को परिपूर्ण सुख देदेते हैं पुनः शुद्ध हृदयके शान्त सुभाववाले जे संत शरण में आवते हैं यथा हनुमानजी तिनको रंजन अर्थात् परिपूर्ण आनंद देते हैं पुनः विमुख किसीभांति सन्मुख आवत यथा रावणादि तिनके अखिल अघगंजन उनके समग्र पापन को नाशकरि आपने धामको पठावते हैं पुनः जे विषयी शरण होते हैं यथा केवट किरातादि तिनके इंद्रीविषयनको विकार भंजन

विषय चाहको तोरि शुद्ध आपना सनेही करिलेते हैं २ विना परिश्रम केवल शुद्ध हृदयते शरण है प्रणाममात्र करतही आपनो करिलेते हैं यह प्रभुकी प्रतिज्ञा है यथा वाल्मीकीये ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येत-द्व्रतं मम ॥ इत्यादि रक्षामें विश्वासराखि संयम नियमादि अष्टांग योग विना कीन्हे विवेक विराग शमदमादि षट् सम्पत्ति मुमुक्षुतादि ज्ञानके साधन विना कहे चान्द्रायणादिव्रत विना कीन्हे जो सहजे भवसागरके पार जावा चहौ तौ हे तुलसीदास ! हरिपदकमल जनि विसारहि अर्थात् शुद्ध हृदयते श्रीरघुनाथजी के चरणारविंदनकी चिन्तवन किसी समय न छूटने पावै इसीमें प्रभु आपना करि-लेयँगे ३ ॥

(८७) इहै कह्यो सुन वेद चहूं।

श्रीरघुवीरचरण चिन्तन तजि नाहिं न ठौर कहूं १
जाके चरण विरञ्चि सेइ सिधि पाई शङ्कर हूं।
शुक सनकादि मुक्त विचरत तेउ भजन करत अजहूं २
यद्यपि परम चपल श्री सन्तत थिर न रहति कतहूं।
हरिपदपङ्कज पाइ अचल भइ कर्म वचन मनहूं ३
करुणासिन्धु भक्तचिन्तामणि शोभा सेवतहूं।
और सकल सुर असुर ईश सब खाये उरग छहूं ४
सुरुचि कह्यो सोइ सत्य तात अतिपरुष वचन जबहूं।
तुलसिदास रघुनाथ विमुख नहिं मिटै विपति कबहूं ५

टी०। याके अन्तर ध्रुवप्रति माताको उपदेश है इहां मनप्रति गोसाईंजी कहत जो पूर्व में कह्यो है यहै वात चारिहूं वेदन कह्योहै सो सुनु मानु क्या वेद कहत कि श्रीरघुनाथजी के चरणारविंदन की चिंतवन नित्य स्मरण ताको तजि त्यागि कै अन्य उपाइन ते जीवके कल्याणको ठौर कहूं नहीं है भाव केवल प्रभुकी शरणा-गती में जीवको कल्याण है (यथा भागवते सुनीतिवाक्यं ध्रुवं प्रति) तमेव वत्सा-श्रय भक्तवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम्। अनन्यभावेनिजधर्मभाविते मनस्य-वस्थाप्य भजस्व पूरुषम् १ जो श्रीरघुनाथजी के चरणारविंदन की सेवाकरि वि-रंचि ब्रह्मा सिद्धि पाई सृष्टिकर्ता भये पुनः जिनकी सेवाकरि शंकरहूं सिद्धि पाई जीवन के कल्याणकर्ता पुनः लोक संहारकर्ता भये पुनः शुकदेव सनकादिक इत्यादि जे जीवन्मुक्त लोक में विचरते हैं ते अवहूँ भजन प्रभुको ध्यान स्मरण करते हैं भाव केवल प्रभुकी शरणैते सवकी शक्ति है पुनः सुनीतिवाक्यम् ॥ नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनात् दुःखच्छिदं ते मृगयामि किंचन। यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरङ्गविमृग्यमाणया २ यद्यपि श्रीलक्ष्मीजी सन्तत सदा परमचपल अत्यन्त चञ्चल हैं अर्थात् रुपैया अशरफ़ी रत्नादिरूप करिकै कहीं

ठहरती नहीं हमेशा चलैं फिराकरती हैं अन्त कहीं थिर नहीं हैसकीं तिनहूं हरि भगवान् के पदकंज की सेवा पाइकै कर्मवचन की को कहै मनहूं करिकै अचल भई भाव मन लगाये सदा चरणसेवा में रहतीं क्षणमात्र विलग नहीं होतीं हैं ऐसी चंचलता को अचल करनहारे पदहैं ३ करुणा यथा ॥ दो० ॥ सेवक दुखते दुखित है स्वामि विकल हैजाइ । दुख हरि सुख साजै तुरत करुणागुण सो आइ ॥ इत्यादि करुणा गुणरूप जल पूर्णसिन्धु है भाव सेवक को दुःख नहीं देखिसक्ते हैं कदाचि महापापकर्मकरि दुःखीपरे पर जहां आर्त है नाम लै पुकारा तहां कैसे धावते हैं यथा लघुवच्छपर धेनु धावती है यथा वेदपादाभिः स्तोत्रे ॥ रामरामेति रामेति वदन्तं विकलं भवान् । यमदूतैरनुक्रान्तं वत्सं गौरिव धावनात् ॥ पुनः अर्थार्थी भक्तनको समग्र मनोरथ देनेको चिन्तामणि है भाव मनोरथ करतही लोक परलोक सब भाँति को सुख भरिपूर देदेते हैं पुनः सेवतहूं शोभा अर्थात् औरनकी सेवकाई में लघुता आवती रघुनाथजीकी सेवकाई के शोभा बढ़तीहै अर्थात् सबके ऊंचे बड़ाई मिलती है यथा शिवसंहितायाम् ॥ रामादन्यः परोध्येयो नास्तीति जगतां प्रभुः । तस्माद्रामस्य ये भक्तास्ते नमस्याः शुभार्थिभिः ॥ पुनः और नरनागादि सकल सुर जो देवता असुर जो दैत्य इत्यादि में यावत् ईश स्वामी कहावते हैं तिन सबको छहूं उरग छइयो सर्प खाये अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुन विषयरूप विषभरे इन्द्री सर्पवत् जीवको लीलें हैं अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इति छहूं सर्प सबनको खातेहैं ४ आदरपूर्वक मनको सम्बोधन है हे तात ! जो सुरुचि कहीं अर्थात् किसी की कानि नहीं राख्यों जो कछु मेरी रुचिमें आवा सोई सुन्दर वचन कहों सो सब वचन सत्य हैं एकहू झूंठ नहीं है यही सबको अंगीकार करना उचित है अरु जो कोऊ मानी मतवादी मेरे वचनन को न मानै भाव कठोरवाणी विचारै तौ जब अतिपरुष अत्यन्त करिकै कठोरहू वचन हैं तापर पुष्ट पक्षधरि तुलसीदास उत्तर देते हैं कि रघुनाथजी सों विमुख ह्वैकै जो अन्य देवादि की सेवा करि कोऊ कल्याण चहै तौ कबहूं उस जीवकी विपत्ति मिटैगी नहीं भाव सब तौ आपनिहीं विपत्ति ते नहीं छुटी पावते हैं औरकी विपत्ति कैसे मेटिसकैंगे पुनः दूसरा अर्थ सुनीति माता को उपदेश ध्रुव प्रति है हे तात ! जो तुम्हारी विमातृ सुरुचिने तुम सों कहेउ सो सत्य है अर्थात् सुरुचि को पति अधिक आदर करत ताते उनके पुत्र को अंक में बैठाये अरु मेरा आदर थोरा है मेरे पुत्र जानि तुमसों बोले नहीं तापर सुरुचि कहा तुमसों कि तपस्या करि जब मेरे उदर में जन्म धरौ तब पिताके अंक आसन पर बैठैकी इच्छा करौ इस वचन में गुप्त अर्थ यह है कि भगवंत्के समीप भक्ति को आदर अरु मायाको अनादर है तहां यावत् जीव मायाको पुत्र बना है तावत् भगवत्पद की इच्छा ना करै जब तपस्याकरि शुद्ध ह्वै भक्तिको पुत्र होय तब भगवत्अंक में बैठैकी इच्छा करै ऐसा विचारि हरिभजन करौ परम ऊंचापद तुमको मिलैगो जो यह न समुझौ जो कठोर वचन समुझौ तौ पिता के अकोरा में क्याहै काहेते रघुनाथजीसों विमुख ह्वैकै जो पिताके अकोरे में बैठौ तौ तुम्हारे जीवकी विपत्ति कबहूं न मिटी ताते मेरा वचन मानि हरिभजन करौ तुम्हारा कल्याण होय ५ ॥

(८८) सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।

हरिपदविमुख काहू न लह्यो सुख शठ यह समुझु सबेरो १
बिछुरे शशि रवि मन नयनन ते पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत श्रमित निशि दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बड़ेरो २
यद्यपि अतिपुनीत सुरसरिता तिहुँपुर सुयश घनेरो।
तजे चरण अजहूं न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ३
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति श्रुति संदेह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छांड़िकरि होहु रामकर चेरो ४

टी०। जब रघुनाथजी की सन्मुख ह्वै पुनः विषयनकी चाह करत सो अज्ञता विचारि कहत हे मूढ़, मन ! मेरो सिखावन सुनु जो तू प्रभुको बिसारि इंद्रीद्वारा विषयको धावता है इस आचरण को फल यह है कि हरिपदविमुख काहू सुख न लह्यो नहीं पायो अर्थात् श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दन की शरणागती त्यागि किसी ने कबहूं नहीं सुख पाया हे शठ ! यह समुझि अबहीं सबेर है प्रभुपद की शरणागती दृढ़ करिकै गहु सबेरो नरतन जीवन पर्यन्त १ विषयी विमुख बद्धजीवनकी विमुखताकी गति कौन कहै जे नित्य मुक्तजीव प्रभुसों बिलग भये तिनकी दशा देखु चंद्रमा प्रभुको मन है तथा सूर्य नेत्र हैं ऐसा वेद कहत यथा ॥ चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत् इति पुरुषसूक्ते श्रुतिः ॥ तहां शशि चन्द्रमा प्रभु के मनते बिछुरे तथा रवि सूर्य प्रभुके नेत्रनते बिछुरे यद्यपि कालात्मक लोकपालक पोषक ऐसहू समर्थ तेऊ प्रभुते बिलग भये बहुत भांति को दुःख पावते हैं चन्द्रमा छीन पीन कलंक क्षयी तथा सूर्यनके विश्वकर्मा बारहखंड करि खरादे हनुमान् ग्रास कीन्हे दैत्यनकी सदाभय पुनः गगनमें निशि बोस भ्रमत आकाशमें रातिउ दिन चलतै बीतता है ताहूपर बड़ेरो रिपु बड़ाभारी शत्रु राहु केतु घेरा करता है मार्गको श्रम शत्रुसंकटको श्रम तातें श्रमित सदा थके बने रहते हैं २ यह लोकमें प्रसिद्ध है कि गंगाजी भगवान्के पायँनते प्रकट भईं ते यद्यपि अतिपुनीत लोकपावनकर्त्ता ऐसी अत्यन्त करिकै पवित्र हैं पुनः सुरसरिता देवनदी करि जिनको नाम प्रसिद्ध है पुनः जिनको सुयश घनेरो नाम बहुत भांति पुराणादि द्वारा तिहूं पुर स्वर्ग भूमि पातालादि तीनिहूं लोकनमें प्रसिद्ध सब गावते हैं कि जिनके दर्शन स्नानते महापापी सुगति पावत हैं ऐसी समर्थ जो गंगाजी तेऊ चरण तजे प्रभुके चरणारविन्दनते बिलग भईं ताहूकेरो नितको बहिबो अजहूं नहीं मिटत सदा चलतै बीतत थिरता कबहूं नहीं पावत अरु शबरी गीधादि नीचजाति ते प्रभुपदकी शरणागती ह्वै अचल ह्वैगये ३ बिना रघुनाथजीको भजे अन्य किसी उपायते जीव की विपत्ति नहीं छूटैगी यह संदेह श्रुतिनिबेरो ऐसा सिद्धांत वेदने संदेहमिटाइकरि कह्यो है यथा सत्योपाख्याने ॥ लोके भवतु चाश्चर्य्यं जलाज्जन्मभृतस्य च । शिलायाश्च तैलं तु यत्ने यातु कथंचन ॥ विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते। यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे ॥ पुनः रुद्रयामले ॥ ये नराधमलोकेषु

रामभक्तिपराङ्मुखाः। जपं तपं दया शौचं शास्त्राणामवगाहनम्। सर्वं वृथा विना येन शृणुध्वं पार्वतिप्रिये॥ पुनः हारीते॥ दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम्। दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं व्रजेत्॥ ब्रह्मवैवर्ते॥ न वै दास्यं परेशस्य वन्धनं परिकीर्तितम्। सर्ववन्धविनिर्मुक्ता हरिदासा निरामयाः। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावृत्तिलक्षणाः। कर्मबन्धमया दुःखमिश्रसौख्यभयप्रदाः। वह्वायासफलादुःख जनिनाशिकहेतवः॥ इत्यादि श्रुति पुराण सिद्धांत ते पुष्ट विश्वास करि लोक व्यवहार सुखकी चाह सब प्रकार के धर्म कर्म देवादि का अर्चन इत्यादि सबकी आश भरोसा छांड़ि कै सबसों निराश ह्वै हे तुलसीदास! राम कर चेरो होहु अनन्य उपासना रीति ते प्रभुकी सेवकाई करु यथा महारामायणे॥ गुरुमन्त्रानुसारेण लयं ध्यानं जपं तथा। पाठं तीर्थं च संस्कारमिष्टं सर्वपरात्परम्॥ इष्टपूजां प्रकुर्यांद्धि तत्कथां शृणुयात्पठेत्। तदिदं व्यापकं विश्वं कथ्यते साप्युपासना॥ न विधिर्न निषेधश्च प्रेमयुक्तं रघूत्तमे। इन्द्रियाणामभावः स्यात्सोनन्योपासकः स्मृतः ४॥

(८९) कबहूं मन विश्राम न मान्यो।

निशि दिन भ्रमन विसारि सहजसुख जहँतहँ इन्द्रिन तान्यो १
यदपि विषय सँग सहै दुसहदुख विषयजाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममतावश जानतहू नहिं जान्यो २
जन्म अनेक किये नानाविधि कर्मकीच चित सान्यो।
होइ न विमल विवेकनीर विनु वेद पुराण बखान्यो ३
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरपि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृपा जाय सर खनतहि जन्म सिरान्यो ४

टी०। हे मन! कबहूं किसी समय विश्राम न मान्यो थिर ह्वै कै श्रमरहित न भयो भाव नाम स्मरण अधार गहि प्रभु के पदकमलन में थिर ह्वैकै न लागि रह्यो करने क्या हौ कि आत्मरूप को जो अखण्ड आनन्द जो सहजसुख सो कारण मायावश ह्वै विसारि जीव भयो पुनः कार्य मायावश निशि दिन भ्रमत हौ रातिउ दिन दौरते बीतत काहेते जहां जहां इन्द्रिय तहां तहां तान्यो आपनी विषय देखाइ अपनी अपनी दिशि तोको खैंचा करती हैं तहां तहां तू धावा करता है है तो वहां महा महादुःख परन्तु सुख मानेहासि १ कैसे दुःख को सुख माने यथा मेलादिकन में स्त्रिन को झुण्ड गान करत जात तिनको शब्द कानद्वार सुनि पगद्वारा निकट गया नेत्रद्वारा रूप देखि आसक्त भया चलत में त्वचाद्वारा स्पर्श भी किया मुखद्वारा वार्ता किया इसमें वृथाही महासुख मानि लिया सनेहरूप कठिन जाल में फँसा जब संग छूटा तब महावियोग दुःख भया बैठे ठाढ़े चैन नहीं। इत्यादि यद्यपि इन्द्रियद्वारा विषय में परि जो सहि न जाय ऐसा दुःख यथा जन्म जरा मरण नरक गर्भवास दरिद्र वियोग रुजादि कर्मनकी अनुहार फल भोगेउ पुनः विषम कठिन जाल में अरुझान्यो जो छूटि नहीं सकत अर्थात् आपना सनेहै

जाल है कैसे छूटै इत्यादि ममता अपनपौ माने ताके वशते जो बात जानतौ है ताहू को नहीं जानत मनमें नहीं लावत ऐसा मूढ़ है कि आपनो दुःख सुख तथा हानि लाभ नहीं सूझि परत ताते यद्यपि दुःख सहत पुनः जाल में अरुझा है तदपि विषयन को संग तजत त्यागत नहीं २ सुखहेतु सवासिक तीर्थ व्रत दानादि सत्कर्म प्रसिद्ध इन्द्रिय सुखहेतु परस्त्रीरत परधनहरण चोरी आदि असत्कर्म कीन्हे इत्यादि नाना कहे अनेक भांति कर्मरूप कीचर में चित सान्यो अर्थात् जल माटी एक में सानेते कीचर होत इहां कर्म माटी है सुख की वासना जल है अर्थात् परोक्ष सुख चाहते सत्कर्म कीन्हे प्रत्यक्ष सुख चाहते असत्कर्म कीन्हेउ इति वासना सहित कर्म चित्त में सानिकै ताको फल भोगरूप कीचर ऐसा जीव में लागि गया कबहूं छूटने योग्य नहीं जैसा स्वभाव परिगया तैसेही कर्म करि फल भोगत तहां अमल जल के धोये कीचर छूटता है तथा यहां राम प्रेमरूप अमल नीर के विना धोये विवेकरूप जो जीवकी विमलता है अर्थात् देह व्यवहार वृथा आत्मरूप सांचा इत्यादि नहीं होती हैं ऐसा वेद पुराण बखानें करि कहत यथा भागवते ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः । न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् । योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ तत्सर्वं भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा । स्वर्गापवर्गमद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति ॥ ३ यथा हितकार जानि मित्रादि में सनेह रक्षक जानि नाथ राजादि में जो सनेह पालक पोषक जानि पितादि में जो सनेह विचित्र स्वार्थी विद्या तंत्रादि सिखबे में गुरू में जैसी प्रीति ऐसेही सनेह हरिसों हर्ष सहित हृदय में न आन्यो भाव सबकी ममता ताग वटोरि दृढ़ सनेह रघुनाथजी में न लगायो जो अचल सुखकी सरिता अहै अरु जो तुच्छ नाशवान् लौकिक सुख ताके हेतु अनेकन साधन में परिश्रम करत शुभ कर्म कीन्हेते होत अशुभ आपही होत ताते लोक सुख में भी दुःख आपही होत तव सुख कहां है सो गोसाईंजी कहत कि सुखरूप जल प्यास ते अनेक साधनरूप सर तड़ाग खनतै जन्म सिरान्यो वीति गयो अचल सुखरूप जलतौ वामें मिली नतौ तृषा प्यास कब जाई ४ ॥

(९०) मेरो मन हरिजू हठ न तजै।

निशि दिन नाथ देउँ सिख बहुविधि करत स्वभाव निजै १
ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति दारुण दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि शूल शठ पुनि खल पतिहिं भजै २
लोलुप भ्रमत गृहपशु ज्यों जहँ तहँ शिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ३
हौं हार्यों करि यतन विविध विध अतिशय प्रबल अजै।
तुलसिदास वश होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ४

टी० । यथा पिता माताको अंश मिलि पुत्र तथा ईश्वर प्रकृति को अंश मिलि जीव

भयो तामें आत्मा ईश्वर के अंशते अरु मन प्रकृतिके अंशते है तहा आत्मरूपकी सँभारभये पर भी मन प्राकृत सुभाव नहीं छाँड़त ताहेतु प्रार्थना करत कि हे हरिजू! मेरा मन हठ नहीं तजत प्राकृतमय जो पूर्व सुभाव सो नहीं छाँड़त हे नाथ! निशि रातिउदिन वहुत विधिके सिखावन देत हौं तवहूं निजे आपनै सुभाव करत अर्थात् विषयनके संगमें परि जब दुःख पावत तब मैं अनेक धिक्कार दै सिखावत हौं कि विषयन में अब न जा परन्तु तवहूं आपना प्राकृतमय जो पूर्व सुभाव ताही आचरण कर्म करता है भाव विषयसुखै हेतु धावा करत १ कैसे धावत ज्यों युवती प्रसव अनुभवति युवाअवस्था की स्त्री जब गर्भवास को बालक प्रकट होत समय अति दारुण अत्यन्त कठिन दुःख उपजता है अर्थात् ऐसी दुःखद पीड़ा होती है कि पतिसों प्रतिकूल ह्वैजाती है भाव यह दुःख मिटै तौ पुनः पतिको मुख न देखौंगी यथा नाँविमें करोई अग्निमें दाह पाला में शीत इनमें ये गुण शठ हैं तथा प्रसवकी शूल शठ है निश्चयकरि कठोर पीड़ा है ऐसेहू शठशूल विसारि अनुकूल ह्वै प्रसन्नता सहित खल पतिको भजै रति करती है तैसे मेरा मन कामवश परस्त्री आदिकनमें लागि तामें अपमान वाग्दण्ड वियोगादि अनेक दुःखसहि प्रतिकूल होत पुनः अनुकूल ह्वै विषयको धावता है जामें निश्चय दुःख होई सो विसारि खल वारवार विषयको धावत २ पुनः ज्यों गृहपशु कुत्तालोलुप अर्थात् अति भूख-वश कौराहेतु घरनमें भ्रमत दौरा दौरा फिरा करता है सो जहां जिस घरमें जाता है तहँ वाके शिरपर पदत्रान वजै अर्थात् शीशपर जूताआदि अनेक भांतिकी चोटैं लोग मारा करते हैं तद्यपि अधम नीच उसी मार्गमें विचरत उन्हीं घरनमें पुनः घूमता फिरता है ऐसा मूढ़ श्वा है कि कबहूं लजात नहीं इसीभांति मेरा मन लोभ-वश द्वारे द्वार फिरत अनादर अपमान सहत ताहूपर नहीं लजात पुनः उनहीं द्वारनपर जात ३ संसारको दुःख देखाइ धिक्कार दै समुझाइ विरागकरि आपुकी सन्मुख लगाइ इत्यादि विविध अनेक विधिकी यत्नै करि हौं कहे मैं हारिगयों किसीभांति मेरे वश में नहीं रहत काहेते अतिशय प्रवल अत्यन्त प्रकर्ष करिकै वली है ताते अजय मेरा मन मेरे जीतिवे योग्य नहीं है इस हेतु मैं तुलसीदास आपुते प्रार्थना करताहौं हे प्रभु! श्रीरघुनाथजी उरमें प्रेरणा करनेवाले जब आपु वरजो रोको तब वश होइ भाव आपु वरवस आपनी दिशि लगाइलेउ तौ आपुमें लागै मेरे मानको नहीं ४॥

(९१) ऐसी मूढ़ता या मन की।

परिहरि रामभक्ति सुरसरिता आश करत ओसन की १
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ शीतलता न वारि पुनि हानि होत लोचन की २
ज्यों गच कांच विलोकि सेन जड़ छांह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार वश क्षति विसारि आनन की ३
कहँलौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानतहौ गति जन की।

तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की ४

टी०। मेरे या मनकी ऐसी मूढ़ता अज्ञानता है कि शीतल अमल पावन प्यास-हर्त्ता पुष्टिकर्त्ता ऐसी श्रीरामभक्तिरूप सुरसरिता गंगाजी भाव लोकहू परलोक की सुखदायक तिनको परिहरि त्यागि कै लोकसुखरूप प्यास हेतु विषयरूप श्रोसन की आश करत जिसमें कबहूं प्यास न जाई भाव हरियश श्रवण त्यागि विषय-वार्त्ता में कान देता है १ धूम समूह धुवांको अधिक गुब्बार आकाश में जाते देखि स्वाती समय में ज्यों चातकपक्षी तृषित प्यास की आतुर ताते धूम गुब्बार में घनकी मति मेघनकी समूहता जानि वामें प्रवेश करिगई तहां न तौ शीतलता है पुनः लोचनकी हानि होत धुवाँके लागे नेत्र पीरा है आँशू परत इसीभांति मेला देखि तीर्थादि को जात उहाँ जीवकी शांती तथा कल्याण तौ कछु भया नहीं स्त्री आदि के रूप देखि नेत्रनमें विषय विकार परेते पाप लागिगया २ पुनः कांचकी गच शीशाकी भूमि वा दीवार में आपने तनकी छांह बिलोकि शीशा के भीतर आपनी परछाहीं देखि दूसरा पक्षी जानि सेन जड़बाज विचारहीन अहारवश भोजनहेतु अतिआतुर टूटत बड़े वेगते परछाहीं पर गिरत आननकी छति बिसारि मुखमें चोट लागनेकी हानि बिसारि अर्थात् वेगते गिरे शीशांकी ठोकर लागेते मुख में चोट लागती है प्रयोजन कछु नहीं इसीभांति बजारादि में जाति कुजाति योग्य भोजन सुन्दर देखि जिह्वाद्वारा मन धावत वह अयोग्यभोजन ताते छाया सम पुनः प्राप्त नहीं भया अयोग्यपर मन चलनेको पश्चात्ताप वृथा चोट लगना है इति रसविषयपर धावता है ३ हे कृपानिधि, कृपागुण भरे समुद्र, श्रीरघुनाथ जी! मैं आपनी कुचाल कहांलौं कहौं इन्द्रियद्वारा अनेक विकारनपर मन धावा करता है तिनको मैं कहांलग गनावों आपु तौ सर्वज्ञ हौ ताते जन जो मैं आपुको दास ताकी सब गति आपु जानते हौ ताते तुलसीदास प्रार्थना करताहै हे प्रभु! कृपाकरिकै मेरे दुसह जो सहा नहीं जात ऐसे मेरे दुःखको हरहु दुख मिटाइ देउ काहेते यद्यपि मैं किसी कामका नहीं हौं तहां आपु अपने पनकी लाज करहु यथा॥ जो नर होइ चराचर द्रोही। आये शरण तजौं नहिं तेही॥ पुनः वाल्मीकीये॥ सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ इस प्रतिज्ञा को पूर्णता करि मोंको भी शरण में राखहु मैं सब आश भरोसा रहित आपकी शरण हौं ४॥

(९२) नाचतही निशि दिवस मर्यो।

तबहीं ते न भयो हरि थिर जबते जिव नाम धर्यो १
बहु वासना विविध कंचुक भूषण लोभादि भर्यो।
चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वांग न कर्यो २
देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं याचत कोउ उबर्यो।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौन हर्यो ३
थके नयन पद पाणि सुमति बल संग सकल बिछुर्यो।

अब रघुनाथ शरण आयो जन भवभय विकल डर्यो ४
जेहि गुण ते वश होहु रीझि कर सो मोहिं सब बिसर्यो।
तुलसिदास निजभवनद्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो ५

टी०। हे हरि, श्रीरघुनाथजी ! जब ते कारण मायावश आत्मरूप बिसारि जीव ऐसा नाम धर्यो गयो तबते निशिदिवस रातिउदिन नाचते मर्यों फिर कबहूं नहीं भयों भाव कल्पांतनते अनेकन योनिन में भ्रमते बीता जीवको सुख कबहूं नहीं भया १ नाचनेवाला भूषण वसन पहिरि बहुत स्वांग करता है सो कहत बहु वासना विविध कञ्चुक अर्थात् जैसी वासना उठती तैसेही जन्म धरत इत्यादि बहुती वासनन करि बहुत भांति के जन्म धर्यो सोई विविध कंचुक अनेक भांति के जामा हैं पुनः काम क्रोध लोभादि सोई अनेक भांतिके भूषण हैं तिनको भर्यो सर्वांग में धारण कियो अर्थात् भूषणते शोभा होती इहां कामादिकनै करिके योनिन में भ्रमने की शोभा है अब अनेक स्वांग चाहिये तहां सुर नर नागादि चर हैं पुनः गिरि तरु तृणादि अचर हैं सो गगन देवादि तनते आकाश में मछरी कछुवादि तनते जल में नर पशु आदि तनते थल पृथ्वी में कौन ऐसा तनरूप स्वांग है चराचरादिकन में जाको मैं नहीं कीन्हेउँ भाव सब योनिन में देह धर्यो २ पूजा जाप व्रत हवनादि नाच में भाव दरशाय देह सुख हेत इंद्रादि यावत् देवता हैं हिरण्याक्षादि यावत् दैत्य हैं कश्यपादि यावत् मुनि हैं अनन्तादि यावत् नाग हैं सहस्रबाहु आदि यावत् मनुज मनुष्य इत्यादि याचत स्वारथ मांगत में कोऊ नहीं उबर्यो मोसे कोऊ बचेउ नहीं तहां लोभवशते दरिद्रता काम क्रोध वशते अनेक दोष तिन को फलभोग दुःख जो सहा न जाइ ऐसा दुसह दरिद्रदोष दुःख में राना को काहू तौ न हर्यो भाव ऐसा दान किसीने न दिया जामें नाचना छूटै ३ यावत् कुमति को बल रहा तावत् रूपविषय देखने में नेत्र चंचल रहे विषयव्यापार में हाथ जानेमें पायँ चंचल रहे अब सुमति केवल करिकै नयन हाथ पद थके पुनः यावत् नाचनेकी चाह तावत् राग द्वेष मानापमान हर्ष शोक इत्यादि सफरदाइन को संग रहा जब अचाह भई तब सकल समाजिनको संगविछुर्यो काहेते भव जो संसार जन्म मरणआदि ताकी भय पुनः चौरासी को जानेके डर करिकै व्याकुल ताते हे रघुनाथजी ! आपको जन जो मैं सो आपकी शरण आयो हौं भाव सभीत जनकी रक्षा कीजिये आप प्रणतपाल हौ ४ तहां जो आप कहौ कि जा भांति बहुत काल नाच स्वांगादि कर देवादिकन को रिझाइ तुम सबसों याचना करत रहे तैसेही जो हमहूं को रिझावौ तबतौ याचना करौं सो इस योग्य मैं नहीं हौं काहेते आपके रीझनेके तौ ये गुण चाहिये यथा ॥चौ०॥ वैर न विग्रह आश नत्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥ अनारम्भ अनिकेत अमानी। अनघ अरोप दक्ष विज्ञानी ॥ प्रीतिसदासज्जनसंसर्गा । तृणसमविषयस्वर्गअपवर्गा ॥ अर्थात् श्रवण कीर्त्तन स्मरण अर्चन सेवन वन्दन दास्यतादि ज्यहि गुणनते रीझिकै आप वश होतेहौ सो तौ अल्पज्ञताते मोको सब बिसरि गयो ताते जे आपके उत्तम सेवक हैं तिनमें मोको न मिलाइये क्योंकि किसी काम को नहीं हौं अब रहाचहौं शरणा-

गतै में ताते हे प्रभु ! निजभवन द्वारपर अर्थात् आपने मन्दिरद्वारके वाहर तुलसीदास को परोरहन दीजे भाव चौरासी को अव न जानेपावौं वचा जूठा एकटुकरा इहैं पावा करौं ऐसी कृपा कीजिये ५॥

(९३) माधवजू मोसम मन्द न कोऊ।
यद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहि ओऊ १
रुचिर रूप आहार वश्य उन्ह पावक लोह न जान्यो।
देखत विपति विषय न तजतहौं ताते अधिक अयान्यो २
महामोहसरिता अपार महँ सन्तत फिरत वह्यो।
श्रीहरिचरणकमल नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो ३
अस्थि पुरातन क्षुधित श्वान अति ज्यों भरिमुख पकर्यो।
निज तालूगत रुधिर पानकरि मन संतोष धर्यो ४
परमकठिन भवव्याल ग्रसितहौं त्रसित भयो अतिभारी।
चाहत अभय भेक शरणागत खगपतिनाथ विसारी ५
जलचर वृन्द जालअन्तरगत होत सिमिटि यकपासा।
एकहि एक खात लालच वश नहिं देखत निज नासा ६
मेरे अघ शारद अनेक युग गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतितपावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ७

टी०। काहेते द्वारे पर परारहन दीजिये हे माधव, जानकीरमणजू ! मोसम मंद मेरी समान मन्दवुद्धी कोऊ संसार में नहीं है काहेते मीनमछरी पतंग पांखी ये दोऊ मतिहीन करिकै लोकमें प्रसिद्ध हैं यद्यपि परन्तु ओऊ मोहि न पूजहि अर्थात् मेरी मति मंदताकी परिपूर्ण समता वै नहीं पाइसक्ती हैं १ काहेते मेरो सम वै नहीं हैं कि दीपशिखा रुचिर सुंदररूप देखि मोहित है वामें गिरि पतंग भस्म ह्वै जाती हैं कछु पावक अग्नि उसने नहीं जाना इस अज्ञान ताते वाकी मंदता विशेषि नहीं है तथा लोहको कांटा तो भीतरहै अरु ऊपर वामें चारा लगाहै ताको देखि भूखी मीन अहारके वश वाको खाइगई ताते कांटा में फँसी कछु उसने लोह को कांटा नहीं जानिपावा ताते वाकी मंदता विशेषि नहीं है इत्यादि अजान उन पावक लोह तो जान्यो नहीं ताते रूपरस में परि मरेते सामान्य अज्ञ हैं अरु मैं शब्द स्पर्श रूप रस गंधादि में इन्द्रिय द्वारा मन लगावने ते जो विपत्ति होती है सो प्रसिद्ध देखताहौं तदपि विषयको न तजत त्यागता नहींहौं जानिकै दुःखदायक पुनः ग्रहण करतहौं ताते पतंग मीनते अधिक अयानो अज्ञान मैं हौं २ आत्मरूप भूलि जीवत्व होना मोह है महामोह वाको कहीं जव इन्द्रिय विषयवश देहाभिमानी है ईश्वरको भूलिजाना अर्थात् संसारैको सांचा मानिलेना इति महामोहरूप अपार सरिता नदीमें संतत सदा वहा फिरत हौं अर्थात् एकइन्द्रिय द्वारा जब मन

विषय को ग्रहण करता है तब सब इन्द्रिय उसी अनुकूल हैं यथा अगाध जलमें पवनप्रेरितसी नाव तथा जीव भ्रमत फिरताहै इति महामोह सरितामें बहा फिरत हौं तहां श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दनको स्मरण सुगम पार जावेकी उपाइ है सो श्रीहरिचरणकमलरूप नौका तजि शरणागती त्यागि फिरि फिरि फेन गह्यो अर्थात् स्वर्गादिसुख प्राप्तिहेतु सवासिक कर्म करि पारजावाचाहत सो जलमें बूड़तरही यथा ॥ पुण्ये क्षीणे मृत्युलोके ॥ यह प्रसिद्ध है ३ अब विषयभोग की असारता देखावत इन्द्रियसुखनको भोग कैसाहै यथा अतिक्षुधित श्वान पुराने अस्थिको अत्यंत भूखा कुत्ता पुराने हाड़को मुखमें भरिकै पकरयो वह तालू में गड़िगया तहांते रक्त निसरि उसमें लागिगया ताको हर्षसहित चाटताहै इति निज आपने तालूते गत उत्पन्न जो रुधिर ताको पानकरि वाको चाटि मनमें संतोष धरत कि इसीमते निसरता है तथा कामादि विकार तौ अपनी इन्द्री में है परन्तु मैथुनादि समय स्त्री आदिकन में सुख मानत अर्थात् आपना में नपुंसकता होइ तौ स्त्री स्वादरहित तथा अजीर्ण में षट्रस स्वादरहित ऐसेही विराग आये विषय स्वाद रहित इंद्रिनको लागत ताते सूखे हाड़ सम कहे ४ परमकठिन भवव्याल अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादि विषयरूप विष जामें भरा गर्भवास यम सांसति जन्म मरण तीनि तापै अतिकरालता जामें प्रसिद्ध ऐसा अत्यंत कराल संसाररूप सर्प त्यहि करिकै ग्रसितहौं अर्थात् मोको लीलेजात ताते अत्यंतभारी भय करिकै त्रसित भयों सडर भयों तहां सर्पनके शत्रु गरुड़ हैं तिनके स्वामी को हृदय में लायनेते गरुड़सहित देखि सर्प आपही भागिजात तिन खगपति गरुड़के नाथको विसारि भेक जो मेढक ताकी शरणमें अभय होन चाहत सो वाको सहित तोको खाइ जाइगो भाव देवादिके सेवनते भवते छूटा चाहत तेतौ आपही भवमें ग्रसित हैं ५ देवादि सब कैसे भवमें ग्रसित हैं यथा ग्वड़िया सरितादिकन में महाजाल डारता है ताके खैंचेपर जलचरवृन्द मछरी आदि जीवनको भारीझुंड सिमिटि बटुरिकै जालके अंतरगत मध्यमें सब जीव एकपास होते हैं तहां यावत् जीव वाके भीतर आये तिन सबको धीमर अंतमें वधकरैगा सो निज आपनी नाश तौ कोई देखता नहीं क्षुधा तृप्तिहेतु लालचवश एकएकनको खात अर्थात् जौन जासों बड़ा है सोई ताको खात ऐसही खाते खाते जे सब ते बड़े मच्छादिरहे तिनको धीमर मारताहै तथा काल मायाजाल फैलाया तामें सुर, मुनि, नर, नाग, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, चराचरादि सबजीव एकत्र सबल अबल को खायेजाता है अन्त महाप्रलयकाल में सबै नाश होते हैं ताते संसार सर्पग्रसित सर्व अथवा मेरे अंतर में विवेक सेना अविवेक सेना दोऊ जाल जलचरवत् एकत्र हैं यथा विचार, धैर्य, संतोष, सत्य, शील, धर्म, वैराग्य, ब्रह्मविद्या, क्षमा, तृप्ति, साधुता, लज्जा, श्रद्धा, थिरता, ज्ञान, आर्जव, आनंद, अभ्यास, असंग, जिज्ञासा, सद्वासना, निराशादि, विवेककीसेना पुनः काम, क्रोध, लोभ, दंभ, गर्व, मद, अधर्म, रति, हिंसा, तृष्णा, आशा, ईर्षा, आलस, अविचार, लालच, पाखंड, द्वेष, झूठ, ममता, लोलुपता, भूलइत्यादि मोहसेना तहां जब जीव हरिसम्मुख भया तब विवेकदल सबल है एकहि एक मोहसेनाको खाइजात जीवको कल्याण होत तासों विमुख है मेरा जीव विषयसुख

के लालचवशते आपनानाश तौ देखता नहीं ताते मोहदल सबल है एकहि एक विवेकसेना कोहिखाये जात ६ जो मेरिहिभूलते मोहसेनाप्रबल है तौ मेरे अघ पापनकी संख्या जो शारदा अनेक युगनलौं गनाकरैं तबहूं न पारपावैं तब मेरे कल्याणको कहां ठेकाना रहै परंतु यथा तुलसीदास पतित है तहां प्रभु आपु पतितपावन हैं यह कल्याण होनेको भरोसा जीवमें आवत है इति पतितपावनको विश्वास ७ ॥

(९४) कृपा सो धौं कहां बिसारी राम।

जेहिं करुणा सुनि श्रवण दीन दुख धावत हौ तजि धाम १
नागराज निजबल विचारि हिय हारि चरण चित दीन्हा।
आरतगिरा सुनत खगपति तजि चलत विलम्ब न कीन्हा २
दितिसुतत्रासत्रसित निशि दिन प्रह्लाद प्रतिज्ञा राखी।
अतुलितबल मृगराजमनुजतनु दनुज हत्यो श्रुति साखी ३
भूपसदसि सब नृप विलोकि प्रभु राखु कह्यो नर नारी।
बसनपूरि अरिदर्प दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ४
एक एकते रिपु त्रासित जन तुम राखे रघुवीर।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भवपीर ५
लोभग्राह दनुजेशक्रोध कुरुराज बन्धु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुण दुख भंजहु राम उदार ६

टी०। दोहा॥ रक्षक सब संसारको हौं समर्थ मैं एक। दृढ़मन अनुसंधान यह सो गुण कृपाविवेक॥ अर्थात् सब जीवमात्रके रक्षक आपहीको मानेहौ सो कृपा हे श्रीरघुनाथजी! अब मेरी बारको कहां बिसारि दीन्हेउ पुनः करुणा॥ दो०॥ सेवक दुखते दुखित है स्वामि विकलहै जाइ। तुरत हरि सुख साजै तुरत करुणा-गुण सो आइ॥ इति ज्यहि करुणागुणते दीन दुःखित जननकी आरतपुकार दुःख श्रवणनते सुनिकै धाम तजि मंदिर त्यागि अति वेगते धावत रहेउ सो करुणागुण अब कहां गया जो मेरी पुकार सुनि नहीं धावतेहौ १ जो कहौ किस पर हम धाये हैं सो सुनिये ग्राह के ग्रसे पर नागराज गजराज निज आपने बल की हानि विचारि भाव ग्राह मोको बोरिलेने चाहता है इति हिये ते हारि मानि आपुके चरण में चित दीन्ह सब आश भरोसा छांड़ि शरण हुै आरत वचनने पुकारा ताकी आरत गिरा दुःखभरी वाणी सुनतही खगपति तजि गरुड़ ऐसा वेगवंत वाहन त्यागि चलतमें विलम्ब न कीन्ह पैदरे वेगते धायो जो गरुड़ौ न पहुंचि सके तुरतही ग्राहको मारि गजराज को उबारि लीन्हेउ २ पुनः दितिके सुत पुत्र जो हिरण्यकशिपु ताकी त्रासते त्रसित दंड देनेते दुःखित है प्रह्लाद जो प्रतिज्ञा कीन्ही कि खंभमें राम हैं इति प्रतिज्ञाराखी भाव खंभे फोरिकै प्रकट भयो कौन स्वरूपते मृगराज सिंह कैसो मुखकरि पुनः मनुज तन उदर पद गहुण्यतन अतुलहै बल जामें ऐसे नृसिंह

रूप धारण करि दनुज दैत्य जो हिरण्यकशिपु ताको हत्यो मार्यो अर्थात् तीक्ष्ण नखनते उदर फारि प्रह्लादकी रक्षा कीन्हेउ ताकी श्रुति साखी वेद वचनते प्रमाण सबै जानतेहैं ३ भूप सदसि राजसभा में जुवाँ खेलत समय पांसा में छलकरि राज्य, कोष, स्त्री इत्यादि युधिष्ठिरते दुर्योधनने जीति लिया तब स्वबंधु दुश्शासनको आज्ञा दिया कि द्रौपदीको चीर खैंचु तब द्रौपदी गर्व सहित पतिनकी ओर देखा उन हारेपदते शीश नवाइलिया तब शेष्ठनको बल राखि भीष्म की ओर देखा कि धर्मधुरीण बली वीर पितामह हैं बचावैंगे सोऊ न बोले तब द्रोणाचार्य गुरु करणकी ओर हेरा ते राजशासन भंग डरते कोऊ न बोला तब सभीत है आपने चीर सँभारनेलगी पुनः विचारा कि अधर्मिनकी सभामें मैं अकेली अबला क्या करिसक्तीहौं तब अधीर है सब की आश भरोसा त्यागि भगवान् को पुकारा हे करुणासिंधु दीनबंधु प्रणतपाल मैं अनाथ हौं इति अवनिप विलोकि राजन की ओर देखि जब सहायक कोऊ न भया तब नर अर्जुन तिनकी नारी द्रौपदी जब आरत है कह्यो कि हे प्रभु ! मेरीपति राखु इत्यादि आरत वचन सुनतहीं धायो ताकी रक्षा कीन्ह्यो कौनभांति रक्षा कीन्हेउ वसन पूरि चीर ऐसा समूह बढ़ावत गयो कि वसननको ढेर लागिगया अरु द्रौपदीके अंग में पूर्ववत् परिपूर्ण वसन बनारहा दुश्शासन थकिकै बैठिगया दुर्योधन लज्जित भया इति अरि जो शत्रु ताको दर्प अभिमान दूरि किह्यो ऐसे भूरिसमूह कृपाके भरे दनुजारि दैत्यनके शत्रु आप हौ ४ एक एक रिपुते त्रासत यथा हिरण्यकशिपु करिकै सांसतिमें प्रह्लाद ग्राहकृत सांसति में गजराज दुर्योधनकृत सांसतिमें द्रौपदी इत्यादि एकही एक शत्रुनके दंडते त्रसित सभीत जननको तुम राखे आपु सबनकी रक्षा कीन्हे हे श्रीरघुनाथजी ! अब बहुरिपु बहुत शत्रु मिलिकै मोको दुःसह जो सहि न जाइ ऐसा दुःख देतेहैं ताते आरत है पुकारत हौं मेरी जो भवपीर संसारकृत दुःख कस नहीं हरनेहौ ५ अब मोको दुःखदायक बहुतशत्रु कौन हैं यथा लोभ सोई ग्राह है सो मनरूप मत्तगजराज को भवसिंधु में बोरने चाहता है भाव पूर्व तो अभिमान मदसों मातारहा अब धनादि बटोरलेकी चाहते लोकव्यवहार में परा अब भयकी भयकरि आरत है आपुसों पुकारता है भाव लोभको घातक मानता है अरु लोभ छोड़ता नहीं तथा क्रोध सोई दनुजनको ईश राजा हिरण्यकशिपु है सो शुद्धचित-रूप प्रह्लाद को साँसति मैं डारेहै अर्थात् चित्ततौ आपुके चिंतवनमें रहत अरु क्रोध अनेकन सों ईर्षा द्वैत उपजाइ चित को संकट मैं डारता है सोऊ दुःखित आपुको पुकारता है पुनः कुरुराज जो दुर्योधन ताको बंधु भाई दुश्शासन सोई खल मार दुष्ट काम है सो बुद्धिरूप द्रौपदी की मर्याद बिगारा चाहत अर्थात् बुद्धि तौ सत् विचार में रहत अरु काम परस्त्री आदिकनमें लगाइ नष्ट कीन चाहत यह तुलसी दास को दारुण दुःख है हे प्रभु, श्रीरघुनाथजी ! आपु उदारदानी हौ मेरे दुःखको सबै मेटो ६॥

(९५) काहेते हरि मोहिं बिसारो।

जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो १

पतितपुनीत दीनहित अशरणशरण कहत श्रुति चारो।
हौं नहिं अधम सभीत दीन किधौं बेदन मृषा पुकारो २
खग गणिका गज व्याध पांति जहँ तहँ हौंहूं बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो फारो ३
जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेशते न्यारो।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुण तेहि भजते तजि गारो ४
मशक विरंचि विरंचि मशक सम करहु प्रभाव तुम्हारो।
यह सामर्थ्य अछत म्वहिं त्यागहु नाथ तहां कछु चारो ५
नाहिन नरक परत मोकहँ डर यद्यपि हौं अतिहारो।
यह बड़िआस दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो ६

टी०। रक्षा विश्वास के अंतरगत मानमर्षता में विनय करत हे हरि, श्रीरघुनाथजी! मोहिं काहेते बिसारो जो कहौ कि तू महापापी है तहां आपुको नाम असंख्यन पापनको एकबार उच्चारते नाश करिदेताहै जो मैं नीच हौं तहां आपु महानीचन को ऊंचा करि देतेहौ इत्यादि निज आपनी महिमा जानतेहौ पुनः मेरे अब पाप सोऊ जानतेहौ भाव जैसी आपुकी महिमा है सो परिपूर्ण कोऊ नहीं जानत वेद नेति नेति करत परंतु वेदद्वारा यह प्रसिद्ध है कि जैसा पाप मेटिडारिबेको ईश्वरको सामर्थ्य है तैसा पाप करिबेको जीव को सामर्थ्य नहीं तो आपुके शरण में मेरे पापन की कौन गनती हैं ऐसा जानि तदपि हे नाथ! आपनी महिमा को नहीं सँभार्यो १ वेदद्वारा आपुकी महिमा ऐसी सुना है कि पतितन को पुनीतकर्त्ता हौ भाव कैसहू पापी नीच शरण आवै ताहूको पवित्र करिदेतेहौ पुनः दीननके हितकर्त्ता हौ भाव कैसहू दुःखित शरण आवै ताको सुखी करिदेतेहौ पुनः अशरण के शरण देनहार हौ अर्थात् जाको कोऊ अभय नहीं करिसकत ताहूको आपनी शरणमें राखि अभय करतेहौ ऐसी आपुकी महिमा श्रुति वेद चारिहू कहतेहैं इति वेदवचनते आपकी महिमा जानि दृढ़ भरोसा राखि मैं कलियुगते भयातुर अशरण पतित महापातकी दीन ह्वै आपुकी शरण आया हौं अब जो आपु मोपर दयादृष्टि नहीं करतेहौ तौ अब मेरे सन्देह होती है कि हौं मैं नहीं अपना को अधम मानि सभीत सडर दीन नहीं हौं ताते दया नहीं करते हौ किधौं वेदने मृषा झूठहीं पुकारो है अर्थात् पतित पुनीतता दीनबन्धुता अशरणको शरणता इत्यादि गुणै आपुमें नहीं हैं ठकुरसुहाती वेद झूठही आपके गुण गावते हैं यह मेरे संदेह है २ काहेते संदेह है कि खग, जो जटायु, गणिका, वेश्या, गजराज, व्याध, वाल्मीकि इत्यादि की जहां पांति है तहां महूंको बैठारो अर्थात् जो आपुकी पतित पावनता है त्यहि रीतिते महूं उनहिनमें गनती भयों कौन भांति यथा गीधमांसाहारी अधम पक्षी है सो किशोरीजी के हेतु रावण करि घायल भया ताको आपना कीन्हेउ तथा महूँ अधम जन्मभरि भक्ष्य अभक्ष्य खायों सो आपुकी कीरति प्रचार हेतु कलियुग करि घायल शरण आया हौं पुनः गणिका देहइन्द्रियद्वारा नृत्यगानादि

अनेक कलाते लोक रिझाइ जीविका करत रही सो सुवाके मुखते उपदेश पाइ आप को नाम स्मरण करी ताको अपनायउ तथा महूं अनेक नाच कला लोक रिझाइ जीविका करत रहेउँ अब गुरुसों उपदेश पाइ आप को नाम लेना हों पुनः गजराज ग्राहके ग्रसे आरत ह्वै पुकारा ताहूको अपनायो तथा मैं महामानी गजसम रहों अब संसाररूप ग्राहग्रसित आरत ह्वै पुकारता हों वाल्मीकि जन्म भरि हिंसा कीन्ह सतऋषिन के सत्संगते उलटा नाम जप ताको अपनायउ तथा महूं जन्म भरि महापाप कीन्हेउँ अब सज्जनके संगते आपको नाम लेता हों इत्यादि पतित अनाथ आरत पूर्वपांति महं उसी पांति में बैठा हों सो आपही को बैठावा हों काहेते यह आपको वचन है यथा वाल्मीकीये ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ इत्यादि आपुके वचन अनुकूल शरणागत महूं उसी पतितनकी पाँति में बैठा हों वही पारस महूँ को चाहिये भाव मोको भी अपनाय शरण में राखिये अरु जो नहीं अपनावते हो तो पूर्वपतितनके अपनावन में तो नहीं लजानेउ हे कृपानिधान! अब आपु को कयहि बातकी लाज आवती है जो मेरे पारस परोसतवार पतवारो फारवो भाव मोको क्यों नहीं अपनावते हो किसहेतु पंक्तिबाहिर करते हो एक यही फरक है कि व्याध गीधादि सतयुग त्रेतादि उत्तम युगन में हैगये अरु मैं कलिकाल में हों सो कलियुगौ आपही को आज्ञाकार है ३ अरु जो कलिकाल अत्यन्त करिकै प्रबल महाबलवान् हो तो तुव निदेश आपुकी आज्ञा ते न्यारो स्वइच्छित कार्य करत होतो तो हम ऐसा करते कि जो आपको भरोसा राखि आपुके गुण गावते हैं तापर कलियुग बाधक भया इस हेतु वापर रोषकरि वाके दोष कहते हैं सो परिहरि त्यागिकै पुनः गारो तजि आपनी गरोई छांड़ि अमान ह्वै त्यहि कलिकालही को भजते फिरि आपुको क्यों भजते उसीको भरोसा राखते ४ मशक, विरंचि, विरंचि, मशक अर्थात् कलियुग तुच्छकी कौन गनती है जो परीक्षित को कोपित देखि पाँयनपरि प्राण बचाया जे सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं तिनको चाहो मसाकी सम तुच्छ करिदेव अरु मसा को चाहो ब्रह्मासम करिदेव ऐसा प्रभाव आपु को है यथा ॥ कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुः इति श्रुतिः ॥ यह सामर्थ्य अछत वर्तमान आपु में वनी है इस सामर्थ्य के रहते प्रणतपाल कहाइ भयातुर शरण में आयो सो मोको त्यागते हो हे नाथ! तहां कछु चारो है अर्थात् जो माता न पालन कीन चाहे तो लघुपुत्र को कछु अख्त्यार है केवल रोदन बल है सोई रीति आगे कहत ५ नाहिंन नरक परत मोकहँ डर ॥ अर्थात् हे रघुवंश,प्रभु! मैं केवल आपने ही प्रयोजन हेतु नहीं कहताहों काहेते मैं ऐसे असंख्यनजीव भवमें परे नरकमें परेहं तथा मेरी कौन बात है अरु मेरे एक तुच्छके त्यागनेते आपुके सुयशचंद्रमें कलंक आइजाइगो अर्थात् अयश प्रसिद्ध होइगो अरु मैं यद्यपि हारो हों अर्थात् वेदधर्मरीति से आपके समीप रहने योग्य नहींहों केवल कृपाबलते शरण चाहताहों सो जो न पावों तो मोको नरक परत में डर नहीं है काहेते जो अनेकन पापकर्म हम हमते किया तो वाके फल भोगनेमें हमको कौन डर आखिर भोग करि होने पर तो शुद्धशरणागती योग्य होइँगे तबतो शरण में राखोगे ताते मेरा कछु जाता नहीं अब तुलसीदास को यह बड़ी

त्रास डर है कि प्रभुको नामहू पापको नहीं जारो भाव अजामिल यमनादिके प्रसंग ते जो नामको प्रभाव प्रसिद्ध है तहां राम राम करते जो मैं नरकको जाऊँगो तो पूर्वप्रशंसा वृथा होइजाइगी ६ ॥

(९६) तऊ न मेरे अघ अवगुण गनि हैं।

जो यमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनि हैं १
चलि हैं छूटि पुञ्जपापिन्ह के असमंजस जिय जनि हैं
देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भनि हैं २
हँसि करि हैं परतीति भक्त की भक्तशिरोमणि मनि हैं।
ज्यों त्यों तुलसिदास कोशलपति अपनायहिपर वनिहैं ३

टी०। हे रघुवंशनाथ ! सदा तौ शरणागतनको पालनरहेउ अब एक मोंको शरणागतनसों त्यागि जो नरकको पठावतेहौ तऊ मेरे अघ पापकर्म पुनः अवगुण मन वचनके विकार इत्यादि एकहू यमराज न गनिहैं काहेते आपुकी वीरता उदारता शरणपालता सत्यप्रतिज्ञा इत्यादि वेद पुराण रामायणादि द्वारा विदित है पुनः अजामिल यमनादि भ्रमते नाम लै भवपार गये तिनके हेतु यमनको दंड सहना परा तथा मरु कांतार देशके पंच महापापी नवमी को अयोध्याजी में स्नान जन्मभूमि दर्शन करि तरे तिनके पाप यमराज को छेकनेको परा तबते अब शरणागत होतेही जानि पाप अवगुणनको खाता गारतकरि देनेहैं पीछे के लिखतहीं नहीं भाव आखिर छेकने तौ परी तौ कौन वृथा परिश्रम करै इति शरणागत जानि मेरा भी पापी गुणन को खाता तौ है नहीं मेरे भले कर्मनको खाता होइगो अब जो आपु मोंको नरक पठावोगे कि याको पाप अनुकूल दंड देउ सो सुनि यमराजको अधिक हैरानगी पैदा होइगी काहेते पूर्व मेरी मिसिल तौ राखे नहीं दंड किस हिसाबते देइँगे पुनः जो यमराज सबकाज परिहरि अर्थात् और सब जीवनको न्यायदंड त्यागि एक यही ख्याल उरमें आनि हैं भाव मेरेही न्यायमें लागैंगे तब कल्पांतनके मेरे असंख्य पाप तिनको रोजनामाते प्रतिदिन ढूंढ़ि ढूंढ़ि खाता लिखते युग वीति जाइँगे तबहूं पूरा होइगो नहीं सो हैरानगी पुनः अन्य जीवनके न्यायदंडकी हानि ताते महाहैरानगी होइगी कछु करते न वनैगो १ यथा करते न वनैगो कि यावत् मेरे हिसाबमें लगेरहैंगे तावत् पापिनके पुंज पापी जीवनके अनेकन झुंड नरकते छूटिके भागि चलैंगे अर्थात् कलियुग के महापापी असंख्यन जीवनको जो विधाता ने पठावा कि तुम इतनेकाल यमपुरमें जाइ वास करौ उहां न्यायदंड तौ होइगो नहीं वैठेही दिन पूरे हैजाइँगे तव वै सब कहैंगे कि हमारे दिन पूरे हैगये ऐसा कहि सब भागैंगे जो यमराज पुनः पकरलेकी इच्छा करैंगे तब सब जीव दादिवंत होइँगे तव आपुके सन्मुख यमराजते कछु कहते न वनैगो तब निरुत्तरते उनसों यमराजीपद आपु छीनि और को देउगे इत्यादि सब काज त्यागि जो एक मेरे पाप लिखने में लागैंगे तौ अनेकन पापी जीव विना दंडे भागैंगे सो असमंजस दुविधा जीवमें आनिहैं ताते आपने नित्य व्यापारमें लगेरहैंगे अरु मेरे पापनको न ढूंढ़ैंगे कदाचित् मेरे हेतु आपु पूछौगे तव हे प्रभु! मेरी भूरि बहुत भलाई भनिहैं

आपुसों बखानकरि कहि हैं अर्थात् जब आपु बूझैंगे कि तुलसीदास महापापी को हमने भेजाहै ताके किस पापपर कौन दंड तुमने दिया तब जो मेरे अनेक जन्मनके सत्कर्मन को खाता है सो लैके परिपूर्ण यमराज सुनावैंगे कि यह तौ बहुते जन्मनते सुकृत करतेआवा पाप तौ इसके नेकहू नहीं हम दंड कैसे देवैं तब जो आपु कहैंगे कि उसने तौ अनेकन जन्म में असंख्यन पाप किया सो तुमने क्यों नहीं लिखा जो वाको निष्पाप बतावतेहौ तब यमराज यह उत्तर देइँगे कि हे महाराज! आपुके नाम को प्रभाव तौ वेद पुराण ऐसा कहत यथा विष्णुपुराणे॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः। पुमान् विमुच्यते सद्यस्सिंहत्रस्तमृगैरपि॥ पाद्मे॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनामपरात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥ पुनः अथर्वणे श्रुतिः॥ तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते सपाप्मानं तरति॥ इति पुनः शरणागतको प्रभाव श्रीमुख कहा है यथा वाल्मीकीये॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ इति आपुके वचनते शरणागती को प्रभाव वेद पुराण द्वारा नामको प्रभाव विदित सोई नाम स्मरण करत संते तुलसीदास आपुकी शरण है तौ आपुको किंकर है आपु चहौ पापी बनाइ दंड देउ चहौ धर्मात्मा बनाइ रक्षा करौ अरु हम वाके पाप के लिखनेवाले कौन हैं पुनः रामदासन को दंड देके हमका बचने को ठौर कहां है कि तौ वेद पुराणन को झूंठ करौ तौ ऐसे दंड हमसों करावो नातरु नामके प्रभावते तुलसीदास निष्पाप है पुनः यावत् सुकृत त्यहिते निर्वासिक ह्वै आपुकी शरण है ताको फलदेने को आपु समर्थ हौ चहौ सो करौ इत्यादि यमराज मेरी भूरि भलाई भनि हैं २ हे रघुनाथजी! जो अब त्यागकरि मोको यमपुरीको पठाइहौ तहां आपुको शरण जानि मोको डंद तौ देइँगे नहीं जब पूछौगे तब आइकै यही कहैंगे कि वेदप्रमाण नाम के प्रभावते तुलसीदास निष्पाप हैं पुनः सुकृति बहुत हैं ताके फलकी चाह नहीं तौ स्वर्गादिकनौको नहीं जाइसक्ता पुनः लोकमें सब नेह नाता रहित ताते उत्तम सुकृती आपहीकी शरणागत योग्य है पुनः आपुको नाम यश प्रचार करता रहा तापर कलियुगने क्रोध किया इस हेतु सभीत है ताते हे प्रणतपाल! याको अवश्य शरणमें राखिये इत्यादि भक्त जो यमराज ताके वचननकी प्रतीति इति भक्तकी प्रतीति अथवा आपुकी आज्ञानुकूल पाप पुण्यके यथार्थन्यायकर्ता यमराज हैं ते जब मेरी बड़ीभारी भलाई वर्णन करैंगे तब आखिर तौ हँसिके मोको जगमें हँसाई तब मोको सांचे भक्तकी प्रतीति आपु करि हैं अर्थात् सांचाभक्त मोको जानि तब भक्तनको शिरोमणि करिकै मोको आपु मनि हैं भाव यथा सतयुगमें व्याधाते वाल्मीकिको भक्तशिरोमणि मान्यो अर्थात् जाकी भविष्य वाणी तीनिहू लोकमें प्रमाण करायो त्रेतामें शबरी भीलिनिको भक्तशिरोमणि मान्यो अर्थात् जो किसी ऋषीश्वरते न ह्वैसका सो गौतमीको जल वाके मज्जनते पावन करायो तथा द्वापरमें श्वपचको भक्तशिरोमणि मान्यो अर्थात् ऋषिनते न भई जाके भोजनते युधिष्ठिर की यज्ञ पूर्णकरायो तथा कलियुगमें मोको मानौगे इत्यादि हे कोशलपति तुलसीदासहूको अपन्यायहिपर बनि है तौ प्रथम त्यागि यमपुरको पठाइ पुनः ज्यों अपन्याइ तौ नाहीं क्याहै नाते ज्यों अंततो अपन्याइ हौ त्यों पूर्वेही अपन्याइये ३॥

(९७) जौं पै जिय धरिहौ अवगुण जन के।
तौ क्यों कटत सुकृत नख ते मोपै विपुलवृन्दअघ वन के १
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत कर्म वचन अरु मन के।
हारहिं अमित शेष शारद श्रुति गिनत एक इक छन के २
जो चित चढ़ै नाममहिमा निज गुणगण पावनपन के।
तौ तुलसिहि तारिहौ विप्र ज्यों दशन तोरि यमगन के ३

टी०। काहेते अपन्यायहि पर वनी कि आपुते याचिकै पुनः याचकता नहीं रहती अरु आपु कीं शरणआइकै पुनः किसीवात की भय नहीं रहिजाती है ऐसे उदार प्रणतपाल जानि महूं आपुकी शरणागत आइ याचना करत हौं सो आपनी प्रणतपालता प्रतिज्ञाते महूं को अपन्यावो तव तौ मेरा निर्वाह है नातरु आपुको जन जो मैं ताके अवगुण जोपै निश्चयकरि जियमें धरिहौ अर्थात् मेरे मन वचन विकार पापकर्मनपर दृष्टि करिहौ भाव अनेकभांति सुकृति करि पूर्वपापनको धोइ डारै अरु मन वचन कर्मकरि शुद्ध हैआवै तव शरणमें राखैंगे ऐसा जो चाहते होउ तौ यह मेरे मानकी नहीं काहेते विपुल विस्तारसहित वृंदसमूह वृक्ष लगेहैं जामें ऐसा अघ पापनकों वन सो नखमात्र सुकृति मेरी त्यहिकरिकै मोपै क्यों कटत कैसे काटिसक्राहौं अर्थात् प्रसिद्धवनको काटनेवाला जब धनी होइ वढ़ईराखै ते कुल्हारीते काटैं पुनः और परिश्रमीजन फरुहा कुदारीते वाकी जरैं खोदि डारैं तव वनरहितभूमि साफ होइ इहां मेरी देहांतररूप भूमिकामें पापवृक्षनको अत्यंत सघन वड़ा भारी वन है अरु मैं पूर्व सुकृतिरूप धनहीन ताते श्रद्धाधर्मरूप वढ़ई सत्कर्मरूप कुल्हारी हीन पुनः विवेक विराग योगादि परिश्रमी शम दम नियम यमादि फरुहा कुदारिहीन केवल सुगमरीति नित्यकर्ममात्र थोरी सुकृति नखधार सम त्यहिकरि समूह पापवन मोसों कैसे कटिसक्राहै १ मेरे मन वचन कर्मन करिकै कृत कियेहुये कलुप पाप तिनको परिपूर्ण कहिहै कौन काहेते जवते मैं जीवभयों तवतें पाप करते कल्पांतौ वीति गये तामें एक एक क्षण के अर्थात् दंड के छठये भाग में जेते पाप मेरे हैं तिनको गिनत संते अनेकन शेषशारदा श्रुति वेद इत्यादि हारि जाइँ संख्या न पाइ सकैं ऐसे समूह २ नामकी महिमा यथा पद्मपुराणे॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तु राम नाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥ ब्रह्मवैवर्त्ते॥ आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नाम कीर्तनात्। शीघ्रं वै नाशमायान्ति तं वन्दे जानकीपतिम्॥ ब्रह्मपुराणे॥ प्रमादादपि संस्पृष्टो यथा नलकणोदहेत्। तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं राम नाम दहेदघम्॥ सामवेदे॥ राम नाम जपादेव मुक्तिर्भवेत्। पुनः पावनपन यथा चौ०॥ सन्मुख होइ जीव म्वहिं जवहीं। कोटि जन्म अघ नाशौं तवहीं॥ पुनः वाल्मीकीये॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ पुनः प्रणके अनुकूल ये कल्याण, गुणन के गण हैं यथा दया, कृपा, शील, वात्सल्य, करुणा, क्षमा, प्रणतपालता, सौलभ्य, उदारता, कृतज्ञता, सौहार्द इत्यादि अनेकन गुण हैं सो कहत हे प्रणतपाल, दयालु, करुणासिन्धु, रघुवंशनाथजी! मेरे अघ अवगुण विचारि जो मोको

शरण तें त्यागते ही तौ अन्त में यमगण क़राल दांतों से नरी पकरि मोको लै च-लैंगे तब आरत है शरणागत सहित आपु. को नामलै त्राहि त्राहि पुकारोंगो तब आरत गिरा सुनि जो नामकी महिमा चित्तमें चढ़ैगी अथवा प्रणतपाल ताको जो पावन पन आपने किया है तामें कृपा, दया, क्षमा, शील, वात्सल्यता, उदारता आदि जे आपने गुणनके गण हैं ते चित्तपर चढ़ैंगे तौ तुलसीदास को भी तारिहौ कौनभांति ज्यों विप्र अजामिल सो महापापी रहा परन्तु मरणसमय पुत्रके हेतु भगवत्‌नाम उच्चारण किया सो सुनि हरिपार्षद धाये इहां वाको यमगण बाँधिकै लैचले तिनसों बरबस छीनिलिये हरिधाम को लैगये तथा यमगण ग्रसित आरत वाणी ते मोको नामोच्चारण सुनि वात्सल्यता गुणते शीघ्र आपु धाइकै छुड़ावने की आतुरताते यमगण के दशन दाँत तोरिकै मोको छीनिलै तब शरण में राखो गे ३ ॥

(९८) जो पै हरि जनके अवगुण गहते।

तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि वैर विसहते १

जो जप यज्ञ योग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते।

तौ कत सुर मुनिवर विहाय व्रज गोपगेह बसि रहते २

जो जहँ तहँ प्रण राखि भक्त को भजन प्रभाव न कहते।

तौ कलि कठिन कर्म मारग जड़ हम केहि भांति निबहते ३

जो सुतहित लिय नाम अजामिल के अघ अमित न दहते।

तौ यमभटसांसतिहर हम से वृषभ खोजि खोजि नहते ४

जो जग विदित पतितपावन अतिबांकुर विरद न बहते।

तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी से सपनेहु सुगति न लहते ५

टी०। आरत अर्थार्थी जिज्ञासु ज्ञानी इत्यादि जो सबको आश भरोसा त्यागि अनन्य उपासना सहित शरण आवता है ऐसे भक्तनके अघ अवगुणन को भगवान् नहीं गहते हैं केवल शरणमात्र ते उनको परिपूर्ण कार्य करते हैं काहेते यह निश्चय होत कि जोपै निश्चय करि हरि अपने जनके अवगुण गहते अर्थात् गुण अवगुण विचारि न्याय उचित कार्य करते होते तौ सुरपति जो इन्द्र कुरुराव जो दुर्योधन बालि कपिराज इन एकहूने भगवान् को कछु विगारा नहीं तिनसों कत काहेको हठिकरि उनको गांसि वैर वेसहते इन्द्र सों वैर करने को यह कारण है कि जब भौमासुर को भगवान् मारि ताके इहां देवमाता दितिके कुण्डल छीने धरेरहैं तिन को देने हेतु कृष्ण इन्द्रपुरी को गये सत्यभामा संग रहैं सो इन्द्राणी के पास गईं तासमय पारिजातके फूलनको माला मँगाइ इन्द्राणीने पहिरा सत्यभामाको न दिया जब सत्यभामाने कहा कि ये माल हमको क्यों नहीं देती हौ तब इन्द्राणीने कहा कि तुम मनुष्यपत्नी हौ तुमको इनफूलन को अधिकार नहीं है तब सत्य-भामाने कहा कि आपने मनुष्यपतिसों तुम्हारे पतिकी देवराजी देखलेतीहौं पति

सो कहाँ पेड़े रखावें नातरु पारिजात को समूल उखराइ लैजाउँगी ऐसा कहि चलीआई कृष्णसों सब हाल कहा तब जो सत्यभामाके गुण अवगुण विचारि न्यायपूर्वक कार्य करते तौ सत्यभामाते ऐसा कहनारहै कि हम तौ मनुष्यरूप धारण किहे हतु ताकी पत्नी तुमको पारिजात फूलों को यथार्थ नहीं अधिकार है तौ तुमने क्यों मांगा पुनः जो हम ईश्वर हैं तौ हमैं सबै देवता याचते हैं तिनकी पत्नी ह्वैकै तुम इन्द्राणी सों क्यों याचना किया जब उन नहीं दिया रहै तब चली आवतीं हमसों कहतीं तब हम गोलोक के दिव्यफूलोंकी माला पहिराइ उनके ढिग पठावते जो इन्द्राणीने आंखिसे न कबहूं देखा होता सो देखतीं जब वे तुम सों याचना करतीं तब तुम कहतीं कि ये गोलोक के फूल यद्यपि तुम देवपत्निनको अधिकार नहीं परन्तु जो मांगती हौ तौ उदारकी पत्नी है हम नाहीं कैसे करें ऐसा कहि नाल दै मानमर्दन करि चलीआवतीं सो तौ न किया अरु दाताकी पत्नी ह्वै जब तुम याचक बनी तब तुम अपना अपमान आपनेही हाथ किया ताते सब लाग तुम्हारी है तुम्हारी याचकता देखि मनुष्य कहा इन्द्राणीको कौन दोष अरु जो इन्द्र ते हम कहते वे इनकार होते तब दोषरहै सो इन्द्रते कहा नहीं तौ उनको भी दोष नहीं तौ बरबस क्यों उनकी बाग उजरावती हौ चलौ धामको इत्यादि तौ नहीं कहा अपनी शरण अर्थार्थी जानि सत्यभामा के कहे देवलोक घेरि इन्द्रको परास्त करि बरबस पारिजात उखारिलै आई सत्यभामा के आंगनमें लगायादिया यह भागवत दशमके उनसठि अध्यायमें है यथा ॥ गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले। पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः॥ नोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति। आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान् निर्जित्योपानयत्पुरम्॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः॥ पुनः दुर्योधनते वैरको कारण यह है कि दुर्योधन के उपहास करने हेतु पाण्डवा ऐसे अद्भुत मन्दिर में बैठि बुलाये जहां जाते में जल नहीं रहै परन्तु शीशा गचते जलवत् देखात तहां दुर्योधन जामा उठायकै चला अरु जहां जलरहै सो वर्णित नहीं भया ताते वसन भीजिगये पुनः जहां दुहाररहै सो तौ देखात नहीं गैरदुहारको दुहारदेखात तामें चलि ठोकर खाया तब भीमादि हँसि कहे कि जाको पिता अन्धा ताको पुत्रौ अन्धाहोत यह सुनि वाके क्रोध भया ताते कपटमय पांसावनाइ जुवां खेलि युधिष्ठिरते राजकोष सर्वस जीतिलिया तब पाण्डवा श्रीकृष्णके शरण है कहे कि हमको कछु खानेको देवाइ देउ तब जो पाण्डवनके गुण अवगुण विचारि न्यायते कार्य करते तौ यही कहते कि प्रथम तौ तुमने छलमन्दिर में बोलाइ वाको उपहास किया पीछे उसने छल-पांसा दे तुम्हारा सर्वस लिया अब तुम्हारा किया होइ सो करौ प्रथम तौ लाग तुम्हारी है तौ हम क्यों तुम्हारे खाने हेतु उससे कहैं सोतौ न किया आपनी शरण अर्थार्थी जानि दुर्योधनते कहे कि पांच गांव खाने को पाण्डवनको देउ जब उसने न माना तब युद्ध में अनेक उपाय करि दुर्योधनकी नाश कराय पाण्डवनको राजा कीन्हे पुनः जब सुग्रीवने कहा कि मायावी पर बालि धाया ताके संग महूं गयउँ दैत्यगुहा में पैठ तब बालि मोसे कहा कि यहां पन्द्रहदिन परखिसु न आवौं तब मराजानिसु तहां एकमास रहेउ अब रुधिरधार निसरी तौ बालिको मराजानि

शिलाद्वार दै मैं चलाआयों मन्त्रिन मोको राज दैदिया जब वालि आया तब शत्रु सम मोको मारा मेरी स्त्री सर्वस हरिलिया इत्यादि सुनि जो सुग्रीवके गुण अवगुण विचारि न्यायते कार्य करते तौ सुग्रीवते यही कहते कि एकतौ वड़ा भाई दूसरे राजा ताको संग छांड़ि रणमें तुम अलग क्यों रहिगये पुनः उसके जीने मरने की शोध तौ न लिया उसकी राज्य स्त्री को ग्रहण करि लिया तो प्रथम तो तुम्हारा दोष तब उसने तुम्हारी स्त्री सर्वस हरा तापर हम कैसे जास्ती करें अथवा वालिते कहते जब न मानता तब खुलिके सुग्रीव के साथी हैं सन्मुख युद्ध करि वालि को मारते इत्यादि कछु न किया सुग्रीव को पठाइ युद्ध कराया वृक्ष ओट ते व्याधा की नाईं वालिको मारे इसमें भी सुग्रीव को अपने शरण आरत जानि वालि को मारि सुग्रीव को राज्य दिया इत्यादि भगवान् अपने सेवक जनन के अवगुणन पर दृष्टि नहीं करते हैं केवल शरणमात्र ते कृपा करि उनकी सहाय करते हैं तथा मेरेभी पाप अवगुण न देखैंगे शरणमात्र ते मोपर कृपा करैंगे इति शेषः १ कौन हेतु भक्तन के अवगुण नहीं देखते हैं ताको हेतु यह है कि धर्म क्रिया योग ज्ञान साधन रहित केवल शुद्ध प्रेम ते वश होते हैं सोई प्रेम देखि भक्तन के अवगुण नहीं ग्रहण करते हैं केवल प्रेम देखि उनके वश ह्वैजाते हैं काहेते यह निश्चय होत कि मन्त्र जप अश्वमेधादि यज्ञ अष्टाङ्ग योग चान्द्रायणादि व्रत इत्यादि क्रिया वर्जित इन क्रियन के विना जो केवल प्रेमै न चाहत होते तो सुर मुनि वरविहाय गोपन के गेह घर में वसिके व्रज में कत काहे को रहते अर्थात् जप योगादि के करनेवाले तौ देवता मुनि हैं तिनहीं के घर में न रहते जो जपादि ते प्रसन्न होते अरु गोपन ते तौ जपादि एकहू नहीं वनत तिनके घर में रहे तो केवल उनको प्रेम देखि सबको त्यागि उनके घर में वास कीन्हे गुण अवगुण कछु न देखे २ यथा प्रह्लाद के वचनमात्र ते खम्भा फारि प्रकट भये हिरण्यकश्यप को मारि रक्षा कीन्हे ध्रुव के वचनपर प्रकट ह्वै अंक में वैठाइ कृतार्थकीन्हे अम्बरीष के एकादशी व्रत पूर्ण हेतु दुर्वासा पै सुदर्शन छांड़े शवरीकी पावनता प्रसिद्ध हेतु वाको मज्जन कराय गौतमी को जल शुद्ध कीन्हे द्रौपदी को वसन वढ़ाये रैदासके वोलायेते शालिग्राम चले आये इत्यादि अनेकन भक्तन की प्रतिज्ञा पूर्णता भक्तमाल में विस्तार है सो कहत कि जो जहां तहां ठौर ठौर न सदा सर्वत्र भगवत् भक्तन को प्रण राखि सबको मान भङ्ग करि सुर मुनि नर नागादि में प्रसिद्धकर्म योग ज्ञानादि के ऊपर भजन को प्रभाव भगवान् न कहते केवल सुकर्म ज्ञान करि उद्धार होता तो कठिन युग कलिकाल जामें कर्मादि को निर्वाहै नहीं तामें कर्ममार्ग पूजा जप तपादि करि हम ऐसे जड़ जीव क्यहि भाँति परलोकमार्ग में निवहते अर्थात् कामादि लूटि लेते भाव कलियुग अनीतिमान् राजा ताकी राज में कैसे सुगति पावते ३ कैसा भजन को प्रभाव सर्वोपरि कहा है कि जो मरणकाल भूलिहू कै भगवत् नाम मुख सों कढ़ै तब वह जीव भवपार ह्वै जाता है ताको प्रमाण देखावत कि अजामिल अपने पुत्रको नारायण नाम लेतसन्ते मरा सो महापातकी रहै ताते यमगण वाँधि लै चले तैसेही भगवत्पार्षद धाय यमगणन सों मारि छीनि लिया कि इसने भगवन् नाम उच्चारण करत प्राण त्यागा ताते याके

पाप भस्म ह्वै गये अब भगवत्धाम को जायगा ऐसा कहि वैकुण्ठ को लेगये यह भागवतषष्ठ में प्रसिद्ध है सो कहत कि जो सुतपुत्र के हित भगवत्नाम लिया अजामिलने ताके अमितअघ संख्यारहित पापनको दहते भस्म न करि देते तो इस काल में यम भट योधा ह्वै यमगण साँसति नरकदण्डरूप हरमें हम ऐसे वृषभ वर्द्धनको खोजि खोजि नहते भाव ढूँढ़ि ढूँढ़ि नरकको लैजाते यथा वृषभपर घृत चीनी लदी है ताकी स्वाद प्रभाव नहीं जानता तथा हम भगवत्नामादि ऊपरहीते कहते हैं अन्तर में वाको प्रभाव नहीं विषयरूप भूसा खाते हैं ऐसे अघ झूँठे भक्तनको ढूँढ़ि ढूँढ़ि पकरि लैजाते सो अजामिल के प्रसंगते डरिगये ताते जो झूँठहू हरि नाम लेत ताके निकट नहीं आवते हैं ४ जो पतित जीवनको पावन करनहारा अति बांकुर विरद अत्यन्त बांकावाना जगविदित न वहते लोक में प्रसिद्धकरि भगवान् न धारण किहे होते तो तुलसी ऐसे कुटिल जीव बहुते कल्पनतरु सपने में भी शुभ गति न पावते ५ ॥

(९९) ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।

निज प्रभुता बिसारि जनके वश होत सदा यह रीति १
जिन बांधे सुर असुर नाग नर प्रबलकर्म की डोरि।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म यशुमति हठि बांध्यो सकत न छोरि २
जाकी मायावश विरंचि शिव नाचत पार न पायो।
करतलताल बजाइ ग्वालयुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ३
विश्वम्भर श्रीपति त्रिभुवनपति वेदविदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता वरु ह्वै द्विज मांगी भीख ४
जाको नाम लिये छूटत भवजन्ममरण दुखभार।
अम्बरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनमे दश बार ५
योग विराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी।
वानर भालु चपल पशु पामर नाथ तहां रति मानी ६
लोकपाल यम काल पवन रवि शशि सब आज्ञाकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार वेंतकर धारी ७

टी०। प्रेमिजनपर कैसी प्रीति करते हैं निजप्रभुता विसारि आपनी ऐश्वर्य महिमा को भुलाय आपने जनके वश होतेहैं अर्थात् जो कहैं सोई करैं यह रीति सदा ते चलिआई है ऐसी प्रीति आपने दासपर हरि श्रीरघुनाथजी करते हैं १ यह रीति भगवान्मात्र में है ताते अवतारन में प्रमाणदेखावत कि जिन भगवत्ने शुभाशुभ कर्मरूप प्रबल पुष्टडोरिमें देवता दैत्य नर नागादि सबको बांधे हैं अर्थात् विना कर्म किहे जीवते रहा नहीं जात अरु कर्म विना भोगे छूटते नहीं यथा मिताक्षरायाम् ॥ नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ऐसी प्रबल कर्मडोरिमें जे सबको बांधे हैं सोई अविच्छिन्न अखण्ड सदा एकरस

परब्रह्म प्रेमवश ह्वै जब व्रजमें अवतीर्ण भये तब यशुमतिने हठकरि अर्थात् खेदि गांसि पकरि बाँधतमें रस्सी छोटिपरत पुनःपुनः जोरतगई विना बांधिलिहे माने नहीं ताको भगवान् छोरि न सके जब खैंचत में ओखरी अड़ी यमलार्जुन वृक्ष गिरे तब भयातुर ह्वै यशुदा धाइ आपही छोरे ऐसे प्रेमके वश हैं विना माताके छोरे आपु न छुड़ाये २ जा भगवान्की माया ऐसी अपार प्रबल है कि जाके वशमें परि विरंचि ब्रह्मा तथा शिव इत्यादि अनेक नाच नाचते हैं यथा ब्रह्मा व्रजते बालक बछवा हरिलैगये तथा शिव कामवश मोहनीपर धाये इत्यादि मायाको पार नहीं पावते आप सब उसीमें डूबे परे हैं ऐसी जाकी माया सोई नाथ कृष्णजीको ग्वालन की युवती युवा वयकी गोपी करतलताल हाथकी तारी बजाइ बजाइ अनेक नाच नचावती हैं इति प्रेमके वश ३ विश्व संसार ताकें भरण उत्पन्न पालन पोषण करनेवाले पुनः जिन करिकै सबको विभव होत ऐसी श्रीलक्ष्मीजी तिनके पतिभाव लक्ष्मी जिनकी आज्ञाकार पुनः त्रिभुवनपति तीनिहूं लोकवासी जिनकी आज्ञा पालत यह प्रभुको प्रभाव वेदमें लिखा है अरु लोक में विदित पुराणादि द्वारा सब जानते हैं अर्थात् विश्वंभर श्रीपति त्रिभुनपति ये प्रभुके नाम लोकमें स्वाभाविक सब जानते हैं ऐसी जो प्रभुता सो बलि सों कछु न चली अर्थात् प्रेमी भक्त जानि वाके सन्मुख सब ऐश्वर्य भुलाय गई बरुकु लचारी दर्जे द्विज ह्वै ब्राह्मणबनि बामनरूपते जाय भीख मांगे भाव लोकोत्तर दानी ह्वै भिक्षुक बने और कछु न करत बनिपरा इति प्रेमके वश हैं ४ जामें जन्म मरण तीनिउँ तापै गर्भवास नरकादि अनेक दुःखनको महाभार जीवपर है ऐसहू सबल भवबन्धन सोऊ जा प्रभु को नाम लेतही छूटि जात सोई प्रभु अम्बरीषके हित लागि आपु दश बार जन्म धरे अर्थात् दुर्वासाको निमन्त्रण करि पुनः एकादशीव्रत भङ्कके भयते जब अम्बरीषने चरणामृत लेलिया तब दुर्वासा पूछे कि विना हमको भोजनकराये कैसे तुम जलपान किया तब अम्बरीष ने कहा कि मेरा व्रत भङ्ग होतारहै तापर दुर्वासा बोले कि तोको यह गरूर है कि मैं इसीजन्ममें भवपार होउँगो सो तोको नर पशु जल चरादि दश जन्म धरना परैगा ऐसा कहि कृत्यानल छाँड़े जब सुदर्शनकी भयते बैकुण्ठ गये तब भगवान् कहा कि जो तुम अम्बरीषको शाप दिया सो उनको तौ एकहू जन्म न धरना पड़ैगा तुम्हारा वचन प्रमाणकरि अंबरीषके बदले हम दश जन्म धरब अरु तुम्हारा बचावा अंबरीषकी शरणमें होइगो यह दुर्वासापुराणमें प्रसिद्ध है इति अंबरीषके हितलागि कृपानिधि समूह कृपागुणभरे भगवान् दश बार जन्म धरे इसीकारण दश अवतार प्रसिद्ध हैं ५ यम नियमादि योग संसार सुखते विरागकरि प्रभुमें ध्यानकरि मन्त्र जप पञ्चाग्नि आदि तपस्या इत्यादि अनेक साधन करि ज्ञानी मुनि ज्यहि प्रभुको खोजत ढूंढ़ते हैं अरु पावना दुर्घट है सोई नाथ जहां चपल पशु बानर रीछ तहां रतिमानी प्रीति कीन्ही अर्थात् जिनको मन शुद्ध ऐसे मुनिनको ध्यानमें मिलना दुर्घट सोई रघुनाथजी प्रेमके वशते जे चञ्चल स्वभाव मूढ़ पशु बानर रीछ तिनसों प्रीतिकरि उनके संग संग भूतलमें विचरे इति प्रेमके वश हैं ६ ब्रह्मा शंभु महाशंभु इत्यादि यावत् लोकनको पालनेवाले उत्पत्ति संहारकर्त्ता हैं पुनः यमराज न्यायपूर्वक जीवनको दण्ड करनेवाले काल सबको भक्षणकर्त्ता

पवन जियावनहारा रविसूर्य लोकमें उष्णता पुनः प्रकाशकर्त्ता शशिचन्द्रमा ताप-हरि शीतलकर्त्ता इत्यादि सब दिग्पालादि जिनके आज्ञाकारी हुकुमको पाइ सब लोकको व्यापार करते हैं सो गोसाईंजी कहत कि जाकी ऐसी प्रभुता सोई प्रभु कृष्णचन्द्र वेतकरधारी हाथमें आसालिहे उग्रसेन जो मथुराके राजा तिनके द्वार-पर वैठे रहते हैं भाव उग्रसेनके द्वारपालक वनेरहत हैं इति प्रेमके वश अपना ऐ-श्वर्य त्यागे हैं ७॥

(१००) विरद गरीबनिवाज राम को।

गावत वेद पुराण शम्भु शुक प्रकट प्रभाव नाम को १
ध्रुव प्रह्लाद विभीषण कपिपति जड़ पतंग पाण्डव सुदामको।
लोक सुयश परलोक सुगति इन्हमें को है राम कामको २
गणिका कोल किरात आदिकवि इनते अधिक बामको।
वाजिमेध कब कियो अजामिल गज गायो कवि साम्को ३
छली मलीन हीन सबही अँग तुलसी सो छीन छामको।
नाम नरेश प्रताप प्रबल जग युग युग चलत चामको ४

टी०। राम को विरद गरीब निवाज है अर्थात् जिनके न कछु धन है न कछु आधार न किसी को भरोसा ऐसे जे गरीब हैं तिनको निवाजनेवाला बाना रघुनाथजी धारण किये हैं भाव शरणमात्र उनको महिमा बड़ाई सुगति देते हैं इत्यादि जो प्रभाव है ताको चारिहु वेद अठारहो पुराण शिव शुकदेवादि मुनि इत्यादि सब गावते हैं बखान करि कहते हैं पुनः प्रभु के नाम को जैसा प्रभाव है सो लोक में प्रकट राहराह सबै जन गावते हैं १ गरीबनिवाजी के विरद को प्रमाण देखावते हैं कि ध्रुव पाँचवर्ष के रहैं तामें माता पिता अनादर किया इति निराधार बरते वहिराने तथा प्रह्लादहू बालक तिनको पिता कालसम कराल मृत्युतुल्य दण्डदायक रहा तथा विभीषण को शत्रु ह्वै रावण निकारि दिया सोऊ अशरण तथा सुग्रीव को महाशत्रु ह्वै बालि मारि निकारि दिया ताको कहीं बैठने को ठौर नहीं मिलता रहै पुनः अहल्या दण्डकवन जड़ रहे जिनको प्रणामौ करिबे की गति नहीं तथा पतङ्ग पक्षी जटायु जन्मभरेको मांस अहारी पुनः पाण्डव युधिष्ठिरादि जिनको धन धाम राज्यादि सब दुर्योधनने लेलिया तेऊ आरत अनाथ वन वन फिरत रहे सुदामा विप्र महादरिद्र पीड़ित रहा इनमें को रघुनाथजी को काम करने योग्य रहा भाव कोऊ किसी काम को नहीं रहे तिनहूं पर कृपाकरि प्रभु लोक में तौ सुंदर यश दिया पुनः परलोक में सुन्दरिगति दियो सो प्रसिद्ध है इन करिकै कछु प्रयोजन नहीं रहा केवल दीन जानि शरणमात्र कृपाकरि सबको कृतार्थ कीन्हे २ अब नामके प्रभावकी प्रमाण देखावत कि गणिकापतुरिया जो जन्मभरि कुकर्म करि जीविका करत रही सोऊ सुवा के मुखते पढ़त सुनि नामको स्मरण करि सुगति पाई पुनः चित्रकूट वनवासी कोल किरातादि महाअधम जे जन्मभरि हिंसादि महापापै करत रहे तेऊ नामको स्मरण

करि सुगति पाये पुनः आदिकवि वाल्मीकि व्याधा रहे हिंसाकरि जिनकी जीविका रही तेऊ नाम स्मरण करि महामुनि ब्रह्मसमान जीवनमुक्त भये इनते अधिक वाम- को अर्थात् सबै कुटिलस्वभाववाले रहे पुनः अजामिल कव वाजिमेधयज्ञ किया अर्थात् जन्मभरि महापापै तौ करत रहा सोऊ मरण समय पुत्रके बहाने भगवत् नाम उच्चारण किया ताके प्रभावते वैकुण्ठवास पाया तथा गजराज कव सामगा- यक सामवेदको गावनेवाला कब रहा अर्थात् बलको अभिमानी पशु सदा अनीति मैं रत सोऊ हरिनाम लेके उद्धार भया ३. जो पूर्व कहे तिनसों अधिक कुटिल मैं कैसा हौं छली भाव सुख ते साधु अन्तर दुष्ट पुनः मलीन अन्तर बाहर अपावन पुनः पूजा जपादि धर्म के अंग विवेक विरागादि ज्ञान के अंग यम निय- मादि योग के अंग हैं श्रवण कीर्त्तनादि भक्तिके अंग हैं इत्यादि सबही अंगनकरि हीन हौं पुनः छीन अर्थात् सुकृति तेजकरि हीन मन्द हौं पुनः छाम दुर्बल ऐसेहूं तुलसी को नामके बलते परलोक को भरोसा है काहेते नरेश महाराज रघुनाथ जीको नाम ताको प्रबल प्रताप है काहेते युग युग प्रति जग मैं नामके प्रतापते चामको सिक्का चलत अर्थात् कर्म ताम को सिक्का ज्ञान चांदीको सिक्का उपासना सोनेको सिक्का इत्यादि वेदप्रमाण सदा चलते हैं अरु कर्म ज्ञान उपासनादिरहित ऊंच नीच कैसहू पापी पतित होइ श्रीरामनाम स्मरण करतही सर्वोपरि ऊंचीगति पावत सोई चाम को सिक्का है सो युगनप्रति प्रभाव प्रसिद्ध है ४॥

(१०१) सुनि सीतापति शील सुभाउ।

मोद न मन तन पुलकि नयनजल सो नर खेहरखाउ १
शिशुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत रामविधु वदन रिसौंहैं सपनेहु लख्यो न काउ २
खेलत संग अनुज बालक नित जुगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ ३
शिला शाप संताप विगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हर्ष हिय चरण छुये पछिताउ ४
भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइगे ताउ।
क्षमि अपराध क्षमाय पांयपरि इतो न अनत समाउ ५
कह्यो राज बन दियो नारि वश गरि गलानिगे राउ।
ता कुमातु को मन जुगवत ज्यों निज तनु मर्म कुघाउ ६
कपि सेवावश भये कनौड़े कह्यो पवनसुत आउ।
दीबे को न कछू ऋणियां हौं धनिक तु पत्र लिखाउ ७
अपनाये सुग्रीव विभीषण तिन न तज्यो छलछाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ ८

निज करुणा करतूति भक्त पर, चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रणाम प्रणत यश वरणत सुनत कहत फिरि गाउ ६
समुझि समुझि गुणग्राम रामके उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पैहै प्रेम पसाउ १०

टी०। जाति कुजाति ऊंच नीच हीन दीन मलीन कैसहू सन्मुख आवै ताको सन्मान सहित बड़ाई देना शीलगुण है इत्यादि सीतापति को शीलमय स्वभाव सुनिकै जाके मन में मोद आनन्द न उतपन्न भयो पुनः प्रेम करिकै तनमें पुलकि रोमांच न उठे नेत्रन में आंसू जल न निसरि आयो सो नर खेहरखाउ गली गली-धूरि फांकत फिरो अर्थात् कर्मन के वश अनेक योनिन में दुःख भोगत फिरो जीव सुखी कबहूं न होई १ कैसा शील स्वभाव है रघुनाथ जीको कि शिशुपन ते बाल अवस्थाते पितु दशरथ महाराज तथा मातु कौशल्याआदि बन्धु भरतादि गुरु वशिष्ठ सेवक टहलुजन सचिव सुमन्तादि सखा प्रतापी आदि इत्यादि लरिकाईते सब संगही रहे देखा कीन्हे तिन सबहिन यही बात कहत रहे कि राम विधुबदन रघुनाथजी को मुखचन्द्र काऊ स्वपनेहूं रिसौंहैं न लख्यो अर्थात् सदा एकरस प्रसन्न बना रहै कि सिवाय कबहूं किसी ने सपनेहूं में रिस को भरा न देखा अर्थात् कबहूं क्रोधवश भैवै नहीं भये २ पुनः अनुज भरत लक्ष्मण शत्रुहन इत्यादि छोटे भाई तथा पुरवासी प्रजा लोगन के बालक इत्यादि रघुनाथजी के संग में नित्यही खेलतेरहे तिस खेलविषे अनट जो अन्याय तथा अपाउ दांव न पावना इत्यादि जुगवत रहत अर्थात् अनय करि वा छलकरि जय चाहैं कि दूसरे गोइयां दांव न पावैं सो प्रभु सों न चलै पावै न्याय उचित खेलखेलते रहे पुनः आप जीति कै भरत के गोइयँन को दांव देते रहे पुनः आप हारिकै आपने गोइयँन कों भरत जी सों दांव देवावत जामें बालकन में किसी को मन उदास न होवै इस हेतु दोऊ दिशि के बालकन को चुचुकारि कै दुलारत प्रिय वचन कहि सबको मानराखत ३ पावनपांव परशत पवित्र पांयन की धूरि लागतही शिला पाषाणरूप अहल्याको जो पतिकी शापरही पुनः परपति रति पापते संताप जो दुःख रहा त्यहि करिकै विगत भई सब छूटिगया दिव्यदेहते पतिधामको गई इत्यादि जो वाको प्रभु सुगति दई सो हेरि देखिकै हियेमें हर्षतौ न भई परन्तु चरणछुये क्षत्री है ब्राह्मणीके शिरमें पांव छुवाये को पछिताउ भयो भाव यह अनुचित करनापरा ४ भूपति निदरि भवधनु भंजि जनकपुरमें व्याह आश्रित यावत् राजा बटुरे रहैं तिनं को निरादर करि शिवजी के धनुष को तोरे अर्थात् जो किसी राजा को उठावा तिलभरि न उठिसका ता धनुषको प्रभु तिनुका समान तोरिडारे तहां भृगुनाथ परशुराम ताव खाइगे यह शब्द संदिग्ध है अर्थात् प्रथम गुरु को धनुष तोरे जानि क्रोधअग्नि करि ताव खाये बेसुधि है प्रभुको अनेक कुवचन कहत रहे पुनः जब निज धनुष दै जानि गये कि परब्रह्म हैं तब पश्चात्ताप करि तावखाइगये भाव हमने बड़ा अपराध किया सो कैसे क्षमा होयगी इति पश्चात्तापते हृदय

अवध होत रहा सो अपराध क्षमि प्रभु माफ करिदीन्हे पुनः इधरते जो लक्ष्मणजी कुवचन कहे ताके हेतु परशुराम के पायँनपरि प्रभु क्षमा कराये कि लक्ष्मण की अपराध क्षमा करो इतौ न अनत समाऊ ऐसी क्षमा अन्त किसीमें नहीं देखि परती है एक रामै रूप में है ५ राज देने को कह्यो पुनः नारि के वश ह्वै वन दियो त्यहि ग्लानि ते राउ मरिगयो अर्थात् प्रथम तौ दशरथजी रघुनन्दन को राज देने को कहा पुनः स्त्री के वशते वरदान हेतुकरि रघुनन्दन को वनवास दिये ताही ग्लानि के वश महाराज प्राणै त्यागिदिया भाव पिताके प्राणलिये अपना को वन दिया ऐसी कुमातु त्यहि कैकेयी को मन कैसे प्रभु जोगवत यथा निजतनु मर्मस्थान में कुघाउ अर्थात् कर्ण नेत्र मुख ग्रीवा कांख उर उदर नाभि ते गुदा पर्यन्त ये मर्मस्थानहैं इनमें वर्छी आदिकारी घाव के दुखउबेको लोग बचावत आपनी देहमें तैसेही कैकेयी को मन कबहू उदास नहीं होने पावत ऐसा प्रभु सन्मान किहे रहत ६ कपि वानर जो हनुमानजी तिनकी अतुलय सेवकाई के वश ते कनौड़े भये भाव सेवकाई योग्य फल न दे सके ताते इन्सानबंद बनेरहे काहेते जब हनुमानजीको कछु इच्छै नहीं तब कौनिउँ पदार्थ प्रभु कैसे देसकैं ताते प्रभु कहे कि हे पवनसुत! मेरे समीप आउ जो तेरे काहू पदार्थकी इच्छा होती तौतो देनेहेतु मेरे सब कछु रहै अरु जो तेरे कछु इच्छै नहीं है तब तोको देबेको मेरे कछु नहीं है ताते मैं ऋणी हौं अरु तू धनी है इसकी प्रमाण हेतु मोसों ऋणपत्र लिखाय राखु याको हेतु यह कि जीवकी वृत्ति अनेक भांति होती है सो जब कबहूं तेरेको इच्छा होइगी तब तोको परिपूर्ण मनोरथ देउँगो यही वचन पत्र अंतरमें राखिसु ७ सुग्रीवको तथा विभीषणको अपन्याये अपना सखासेवक करि माने परन्तु तिन छलछाऊ न तज्यो अर्थात् वानर ऐसा छली होत कि सहज निर्वासते बना रहत अरु नेत्रबदलते खानेकी वस्तु उठाय लै भागत तथा राक्षस महाछली होते हैं कि वेप बदलि परस्त्रीहरणादि अनेक कार्य करते हैं इत्यादि जो छल रहा ताकी छाया भी नहीं त्यागे काहेते सुग्रीव को पूर्व वचन॥ चौ०॥ सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥ पुनः राजसुख पायेपर अपनी स्त्री की को कहै वालिहू की स्त्री ग्रहणकरि विषयसुखमें ऐसा भूले कि प्रभुके कार्य की सुधि न रही तथा विभीषण को पूर्व वचन॥चौ०॥उरकछु प्रथम वासना रही।प्रभुपदप्रीति संरितसों वही॥ पुनः राजसुख पायेपर विना मन्दोदरी अपनी स्त्री में न तृप्त भये इत्यादि मन कमके सांचे छलकी को कहै छायासम वचन छल सोऊ न त्यागे तिन सुग्रीव विभीषण को सन्मानि आदर दै बैठारि जे मन कम वचन करि सांचे छलरहित रामसेवक ऐसे भरतजी तिनकी सभाविषे सराहतसन्ते प्रभुके उरमें अघाउ नहीं होत अर्थात् क्षण क्षण प्रति सदा प्रशंसा कीन्हे करतेहैं तबहूं तृप्त नहीं होत ८ काहेते उरमें अघाउ नहीं होत कि यह प्रभुको कृतज्ञता गुण है सो प्रसिद्ध कहत कि भक्तन पर निज करुणा करतूति की चरचाउ चलत प्रभु चपत सकोच करत अर्थात् प्रतिज्ञा आरतादि संकट देखि जो भक्तन पर करुणा आवतीहै अर्थात् भक्तन के दुःखमें दुःखते दुःखित ह्वै प्रभु जनके दुःखको निवारण कीन चाहत तामें ध्रुव कैसो मनोरथ पूर्ण करना प्रह्लाद कैसी प्रतिज्ञा राखना अंबरीष कैसी रक्षा इत्यादि करुणाकी करतूति

हितमें कर्तव्यता जो प्रभु भक्तन पर करते हैं ताकी चरचा भक्तवात्सल्यतादि की प्रशंसा कोऊ सन्मुख करै लागत तब अपनी बड़ाई जानि प्रभु सकोचकरि शिर झुकाय लेते हैं अरु भक्तनको यश कैसे हर्षते सुनते हैं कि सुग्रीव विभीषण तो सांचे शरण अरु अनेक भांतिकी सेवकाई कीन्हे तिनकी कौन कहिसकै जे सकृत नाम एकहुबार प्रणाम करि प्रणत नाम शरण होत ताको यश जो कोऊ वर्णन करत ताको हर्षते सुनतसन्ते अघाते नहीं ताते प्रभु कहत कि हमारे भक्तको यश फिरि गाउ इत्यादि भक्तनको यश अधिक बढ़ावा चाहतेहैं ६ जब शील होत ताके अन्तरगत अनेक गुण आइजातेहैं इस हेतु पूर्व प्रधान शील गुण कहे पुनः रिसभरा मुख किसीने न देखा यामें अखंड ज्ञानानन्द है खेलमें बालकनको मानराखना यह सौहार्दगुण है अहल्या नारिवेकी हर्ष नहीं पद छुवायेको पछिताउ यह कृपामय अनुक्रोश गुण धनु तोरिवेमें बल परशुरामप्रति क्षमा कैकेयीप्रति आर्यव गुण हनुमान्प्रति कृतज्ञता सुग्रीव विभीषणप्रति जन गुणग्राहकता है इत्यादि श्रीरघुनाथजी के दिव्य गुणनके ग्राम समुझि अर्थात् कृपा दया शील करुणा क्षमा वात्सल्यता सुलभ उदारतादि समूह गुणनकरि अनेकनको प्रभु अपनाये तथा प्रणतपाल मोकोभी अपन्यावेंगे इत्यादि मनते विचारि विचारि क्षणप्रति अनुरागको बढ़ाउ अपने उरमें श्रीरामप्रीति को थिर राखु त्यहिकरिकै क्या लाभ है तापर गोसांईजी कहत कि यहि करिकै रामपद प्रेमपसाउ अर्थात् श्रीरघुनाथजीके चरणारविंदनमें सांचा प्रेम भये ते जो प्रसन्नता होती है यथा सब रामसनेहिन पर होतआई ताहीभांति अनायास अर्थात् जप, तप, योग, विरागादि परिश्रम विना कीन्हे इति अनायास श्रीरघुनाथजीकी समीपता पाइहैं यामें संदेह नेकहू नहीं है १० ॥

(१०२) जाउँ कहां तजि चरण तुम्हारे ।

काको नाम पतितपावन जग केहि अति दीन पियारे १
कौने देव बराइ विरदहित हठि हठि अधम उधारे ।
खग मृग व्याध पषाण विटप जड़ यवन कवन सुर तारे २
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब मायाविवश बिचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ३

टी० । हे पतितपावन, दीनदयालु, श्रीरघुनाथजी ! तुम्हारे चरण तजि अर्थात आपके चरणारविंदन की शरणागती त्यागिकै पतित दीन मैं किसके पास कहां जाउँ काहेते जगमें पतितपावन नाम और काको है पुनः अति दीनजन क्यहिको पियारे हैं अर्थात् आपही को नाम पतितपावन है पुनः अत्यन्त दीनजन भी आप ही को प्यारे हैं ताते मैं भी आपही की शरण रहबे योग्य हौं १ पुनः कौन ऐसा देवता है जो विरदहित अपने बाना के पुष्टता हेतु बरियाई हठि हठि जबरई यमगणन सों छुड़ाइ कै अधमन को उद्धार कीन्हे अर्थात् हठकरि जबरई अधमन को उद्धार करनेवाले एक आपहीहौ दूसरा कोऊ नहीं है काहेते खग, जटायु, मृग, वानर, रीछ, व्याध, वाल्मीकि, पाषाण, अहल्या, विटपदण्डक, वन के वृक्ष, यवन इत्यादि

सबै जड़ रहे भाव अपना हिताहित तथा दुःख सुख किसीको नहीं सूझता रहै ऐसे सब मोहान्ध रहे हैं तिनको हे प्रभु! सिवाय आपके और कौने सुर देवता ने तारा है इत्यादि अधम उद्धार बाना आपही को है दूसरे में नहीं है २ काहेते दूसरे में नहीं है कि देव, दनुज, देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुष्य इत्यादि बिचारे सबै माया के विशेषि वश में परे आपही दुःखित हैं ते औरको दुःख कैसे मिटाइ सक्के हैं इत्यादि गोसांईजी प्रार्थना करत कि हे प्रभु, रघुवंशनाथ! जे देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज आपही माया के विवश हैं तिनके हाथ अपनपौ हारे कहा है अर्थात् उनकी शरणागती गये क्या प्रयोजन है ताते सब को आश भरोसा त्यागि केवल आपकी शरण हौं ३॥

(१०३) हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।

साधनधाम विबुधदुर्लभ तनु मोहिं कृपाकरि दीन्हों १
कोटिहु मुख कहि जाहिं न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और मांगिहौं दीजै परमउदार २
विषयवारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहिय विपति अति दारुण जन्मत योनि अनेक ३
कृपाडोरि बंसीपद अंकुश परम प्रेम मृदुचारो।
यहि विधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तुम्हारो ४
है श्रुति विदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरे।
तुलसिदास यहि जीव मोहरजु जोइ बांध्यो सोइ छोरे ५

टी०। हे हरि, श्रीरघुनाथजी! आपु मोपर बड़ी अनुग्रह सदा एकरस दया कीन्ही अर्थात् कर्मवश अनेक योनिन में गयों तिन गर्भवासनन में सदा रक्षा करत रहेउ पुनः कर्म ज्ञान भक्ति आदि के यावत् साधन हैं तिनको धाम मन्दिर पुनः विबुध जो देवता तिनको दुर्लभ दुःखो करि नहीं पाइ सक्के हैं ऐसा उत्तम चैतन्य मनुष्यतनु मोको कृपाकरि दीन्हेउ १ हे प्रभु! आपुके जो अनेकन जन्मन ते मेरी भलाई है तिसमें एक एक उपकार को जो कहा चहौं तो एक मुख ते क्या कहौं जो कोटिन मुख ते कहा चहौं तबहूं न कहि जाइ यद्यपि आपुने बहुत उपकार कीन्हेउ तदपि हे नाथ! औरहू कछु मांगत हौं सो दीजिये क्योंकि आपु परम उदार हौ भाव याचकमात्र को परिपूर्ण दान देतेहौ ताते मेरी भी आशा पूर्ण करिहौ २ विषय वारि अर्थात् श्रवण की विषय शब्द है त्वचाकी स्पर्श नेत्रन की विषय रूप रसना की विषय रस है नासिका की विषय गन्ध इत्यादि इन्द्रियन की विषय सोई वारि नाम जल है तामें मीन मछरी सम मेरा मन मगन है सो कबहूं एक पलकमात्र भिन्न विलग नहीं होत भाव यथा मीन जलसों भिन्न नहीं होत तैसे मेरा मन विषय ते भिन्न कबहूं नहीं होत ताते अनेकन योनिन में जन्मत सन्ते दारुण कठिन विपत्ति सहियत सहत हौं अर्थात् विषय में मन लागेते अनेक कामना बढ़त कामना हानि भये क्रोध होत क्रोध ते मोह जीव की चैतन्यता नाशते

बुद्धि नष्ट होत ताते कर्मन के वश जन्मत मरत दुसह जो सहि न जाइ ऐसी महा कराल विपति सहत हौं ३ मीन को शिकारी लोग बंसी ते पकरि लेते हैं तथा विषयरूप जल में मनरूप मीन को पकरने का उपाय कहत कृपा डोरि अर्थात् जीवमात्र रक्षा करिवे को जो दृढ़ानुसंधान राखे हौ यह जो कृपादृष्टि मेरेपर किहेरहौ इति डोरि करौ पुनः आपुके पद में जो अंकुश चिह्न है ताकी बंसी कांटा बनावो अर्थात् अंकुश चिह्न को ध्यान किहे परिपूर्ण ज्ञान उत्पन्न होत तेहि प्रभाव ते मत्त हाथी सम मन सन्मार्ग पर आरुढ़ होत यथा महारामायणे ॥ अंकुशाद्ज्ञानसंजातं सर्वलोकमलापहम् । प्रापयत्येव सन्मार्गे मत्तमातङ्गजं मनः ॥ इस प्रभावते अंकुश चिह्न की बंसी करो तामें परम प्रेमरूप मृदु कोमल चारो गूँथौ अर्थात् प्रीति की जो उमंग ताको प्रेम कही याकी विह्वलदृष्टि है यावत् मन बूड़ै उतराइ तावत् प्रेम कही अरु जब एकरस बूड़ा रहै ताको परम प्रेम कही अर्थात् अनुराग यथा ॥ दो० ॥ व्यापकता जो प्रीति की जिमि छुठि वसन सुरंग । दृगनद्वार दरशै चटक सो अनुराग अभंग ॥ यह प्रेमकी बारहौं संतृप्त दशाहै यथा ॥सवैया॥ साधन शून्य लिये शरणागत नैन रँगे अनुराग नसाहै । भूतल व्योम जलानिल पावक भीतर बाहररूप बसा है ॥ चितवना हम बुद्धिमयी मधु ज्यों मखियामन जाइ फँसा है । वैजनाथ सदारस एकहि या विधि सों संतृप्तदसा है ॥ इत्यादि अपनी कृपाकरि वरवस पद अंकुश चिह्न को ध्यान थिर प्रेम सहित कराये राखौ यहि विधि ते मेरे मनरूप मीन को वेधि वरियाइन खैंचि अपना में लगाइ राखौ इस रीति मेरो कराल भव दुःख जन्म मरणादि हरौ यामें कौतुक राम तुम्हारो अर्थात् हे श्रीरघुनाथ जी ! आपु राजकुमार हौ अनेक खेल खेलते हौ तहां यह एक कौतुक अर्थात् आपुको तौ एक खेल तमाशा है त्यहि करिकै मेरा परम हित है सो दीजिये भाव वरवस मन आपुमें लगाइये ४ जीव को भवसागर पारजावे को कर्मयोग ज्ञानभक्ति आदि अनेकउपाय श्रुति जो वेद तामें विदित हैं यथा अर्थपञ्चके ॥ उपायाः कथिताः कर्मज्ञानभक्तिप्रपत्तयः । सदाचार्याभिमानश्चेदित्येवं पञ्चधा मतः ॥ तत्र कर्म परिज्ञेयं वर्णाश्रमानुरूपितम् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रेधा कर्मफलार्थिनाम्॥ यज्ञो दानं तपो होमं व्रतं स्वाध्यायसंयमः । संध्योपास्तिर्जपः स्नानं पुण्यदेशाटनालयम् ॥ चान्द्रायणाद्युपवासश्चातुर्मास्यादिकानि च । फलमूलाशनश्चैव समाराधनतर्पणम् ॥ यमाद्यष्टाङ्गयोगेन क्रमेणाभ्यासपूर्वकम् ॥ पुनः समदमादि विवेक विराग मुमुक्षुता इत्यादि ज्ञानके साधन इत्यादि तथा ब्रह्मा, शिव, देवी, गणेश, सूर्य, अग्नि, पवन, इन्द्रादि अनेक देवतासी फलदायक हैं सो कर्मादिसाधन कलियुग में होना दुर्घट तथा अनेक देवता तिनमें क्यहि क्यहिको दीन दुःखित ह्वै निहोरत कौन फिरै भाव कौन उनते भिक्षा मांगत फिरै ताते तुलसीदासको यही निश्चय है कि मोह रज्जु मोहरूप रस्सी में यहि जीवको ज्यहि बांध्यो सोई छोरै अर्थात् जाकी मायावशते जीव बद्ध भयो सोई श्रीरघुनाथजी जब कृपा करैं तब जीव भयबंधन ते छूटै ५ ॥

(१०४) यह बिनती रघुबीर गोसाईं ।

और आस बिस्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई १

चहौं न सुगति सुमति सम्पति कछु ऋधि सिधि विपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई २
कुटिल कर्म लैजाय मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छांड़िये कमठ अण्डकी नाईं ३
यहि जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभुही सों होहिं सिमिटि इकठाई ४

टी०। अब हरिअनुकूल आचरणको ग्रहण शरणागती कहत यथा॥ दो०॥ नामरूप लीला सुरति धामवाससतसंग। स्वातिसलिल श्रीराममन चातकप्रीतिअभंग॥ इत्यादि सो कहत हे रघुबीर! रघुवंशमें उत्तम वीर! पुनः गोसाईं चराचरके पालनहारे! मेरी यह विनती सुनिये क्या विनती है कि और कर्मादिको आश मन्त्र तन्त्रादि में विश्वास अन्य देवादिको भरोसा इत्यादि जो जीवकी जड़ताई अर्थात् अपना दुःख सुख नहीं विचारत जो भावत सोई करत इत्यादि हरो जीवको शुद्ध करि अपने सन्मुख राखो १ कौनभांति सन्मुख राखौ यथा स्वर्गवास मोक्षादि जो परलोकमें सुगति पुनः लोकमें सुमति अर्थात् सुन्दरि बुद्धि विद्यादि पुनः सम्पति धन धाम राज भूषण वाहनादि पुनः अन्नादि ऋद्धि अणिमादि सिद्धि पुनः शील उदारता गुणादि विपुल बहुतभांति की लोकमें बड़ाई इत्यादि एकहू न चहौं अरु चाहता क्या हौं कि हेतुरहित बेप्रयोजन रामपद अनुराग अनुदिन अधिकाई बढ़ै अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! आपके चरणारविन्दन में सहज स्वभाव ते अनुराग दिनप्रति नित नवा बढ़त जाइ भाव किसी कारणते कबहूं घटै न यह कृपा करि दीजिये २ कैसे कृपा राखिये कि मेरे अनेकन जन्म के कियेहुये जो असंख्यन कुटिल कर्म हैं ते अपनी बरियाई ते मोहिं जहां जौनी योनिमें लैजाइ हे प्रभु! तहां आपु अपनी बरियाई मोपर दयादृष्टि राखिये कौनभांति कमठ अण्डकी नाईं यथा कछुवा जहां रहत तहांते सूरति अपने अण्डने पर राखत तथा मेरा जहां जहां जन्म होय तहां तहां आपु मोपर क्षणमात्र छोह दया मया जनि छांड़िये भाव सदा दयादृष्टि बनी रहै ३ यद्यपि प्रीति प्रतीति सगाई सम्बन्धमात्र में विचारे ते आवती है तथापि किसीमें एकवस्तु की विशेषता होती है यथा स्त्री पुत्र पौत्र लघुबन्धु मित्र इत्यादिमें प्रीति विशेष तथा माता पिता ज्येष्ठबन्धु गुरु राजा इत्यादि में प्रतीति विशेष पुनः फूफू भगिनी पुत्री नाना श्वशुर इत्यादिके परिवार में सगाई विशेष सो कहत कि यहि तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई नाता जहांलगि जगमें हैं ते सब गोसाईंजी कहत कि सर्वत्र सो सिमिटिके एकठाईं प्रभुही सों होय अर्थात् प्रीति रघुनाथैजी सों रहै प्रतीति रघुनाथैजीकी रहै सगाई रघुनाथैजीमें रहै दूसरे में न रहिजाय ४॥

(१०५) जानकी जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै राम सीय पद परिहरि अब न कहूं चलिजैहौं १
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख प्रभुपद विमुख न पैहौं।

मन समेत या तनु के वासिन्ह इहै सिखावन दैहौं २
श्रवणनि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं।
रौंकिहौं नयन विलोकत औरहि शीश ईशही नैहौं ३
नातो नेह नाथ सौं करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह क्षरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ४

टी० । अब हरि प्रतिकूल आचरण त्याग शरणागती कहत यथा ॥ दो० ॥ मद-कुसंगपरदार धन द्रोहमानजनि भूल । धर्म रामप्रतिकूल ये अमीत्यागविषतूल ॥ सो कहत कि जानकीके जीवन प्राणअधार जो श्रीरघुनाथजी तिनकी बलि जैहौं तन मन धन सर्बस प्रभुपर वारन करिहौं कैसे वारन करिहौं तहां अंतःकरणमें चित्त तौ ऐसा कहत कि श्रीरघुनन्दन जनकनन्दिनी तिनके पद परिहरि त्यागिकै अब कहूं न चलि जैहौं अर्थात् सदा पदकमलनै की चिन्तवनमें लागरहिहौं और सब त्याग करिहौं १ काहेते सब त्यागि पदकमलन में लागरहिहौं कि उर में ऐसी प्रतीति उपजी है कि प्रभुके पदकमलनते विमुख भयेते जागतकी कौन कहै सपनेमेंभी सुख न पैहौं यह निश्चय जानिकै सबमें प्रधान जो मन ताको समेत बुद्धि अहंकार सर्वाङ्गइन्द्रिय देवतादि यावत् यातनु के वासी हैं तिनको यही सिखावन देहौं भाव यथा मैं सब त्यागि प्रभुके पदकमलनमें लागरहिहौं तथा मनादि इन्द्रियनको सिखाइहौं कि तुमहूं सब विषय विकार त्यागि प्रभुके पदकमलनमें सदा लागिरहो २ कौनप्रकार सबत्यागि श्रवणन कानन करिकै और कथा न सुनिहौं अर्थात् रघुनाथैजीकी कथा श्रवण करिहौं पुनः रसना जिह्वा करिकै और दूसरेको यश न गैहौं अर्थात् रसनाको सदा श्रीरघुनाथजीके यश गान में लगाये रहिहौं पुनः औरही विलोकत और को रूप देखत सन्ते नयनन को रोकिहौं अर्थात् सबको त्यागि रामैरूप में नेत्र लगैहौं तथा दूसरे को प्रणाम न करिहौं सब को त्यागि ईश जो श्रीरघुनाथजी तिनहीं को शीश नवाइहौं ३ नाता सगो सम्बन्ध तथा नेह जो प्रीति इत्यादि श्रीरघुनाथैजी सों करिहौं अरु माता पिता बन्धु पुत्र पौत्र दार श्वशुर इत्यादि सब नातो तथा नेह सबनसों प्रीति सो सब बहैहौं सब त्यागि देहौं तहां माता पितादि त्यागेते लौकिक धर्म ते दूषण आवत सो छरभार जो कछु पाप पुण्य यश अयश इति छरभार गोसाईंजी कहत कि जाको मैं दास कहैहौं ताही को सब छरभार है भाव मैं तौ अनन्य प्रभु को दासहौं ताते सब छरभार रघुनाथैजी परहै ४॥

(१०६) अबलौं नसानी अब न नसैहौं ।

राम कृपा भवनिशा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं १
पायो नाम चारु चिंतामणि उर कर ते न खसैहौं।
श्यामरूप शुचि रुचिर कसौटी चित कञ्चनहिं कसैहौं २
परवश जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज वश ह्वै न हँसैहौं।
मनमधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं ३

टी०। अनन्यता सहित पद्दशरणागती पूर भई ताको सुख देखि पूर्व भूल को पश्चात्ताप करत कि अबलौं नसानी हरिविमुख रहेते पूर्व आयुर्बल व्यर्थ गई सो तौ नसानी अब न नसैहौं हरिशरणागती पाइके अब आयुर्बल व्यर्थ न खोइहौं काहेते राम श्रीरघुनाथजी की कृपा भये ते भव निशा सिरानी संसाररूप रात्री व्यतीत भई मोहांधकार माया करि भूल मिटिगई जागे फिरि न डसैहौं अर्थात् भवरात्री में देहाभिमानरूप शय्यापर सोवत रह्यौं अब जागे चैतन्य होने पर फिरि न डसैहौं देहाभिमान में न परिहौं १ पूर्व कंगाल रह्यौं अब रामनामरूप चिन्तामणि पायौं जाते सब फल की प्राप्ती है ताको उर करते न खसैहौं अन्तःकरणरूप हाथसों पुष्ट पकरे रहिहौं भूलिके गिरने न पाई नामको स्मरण छूटने न पाई प्रभुको श्यामरूप सोई शुचि रुचिर पवित्र सुन्दर कसौटी है तामें चित्तरूप कंचन को कसैहौं भाव रामरूप में लगे रहने में जो चित्त में विषय की वासना देखि परी सोई दागु बूझब ताको फूंकि जब शुद्ध है रामरूप में लागरही तब चित्त को खरा मानिहौं भाव प्रेमते नामस्मरण सहित शुद्ध चित्त ते रूप को ध्यान किहे रहिहौं २ यथा अबूझ राजा मन्त्री आदिकन के वश रहत तब वे लूटिलूटि खाते हैं अरु निडर ह्वै राजा की कूट करते हैं तथा जीव अचेत ह्वै विषय में पर्यो तब इन्द्रिय विषय सुख को भोगकरि जीव को सहज स्वरूप धन लूटती हैं अरु जीव को अनेक नाच नाचते देखि हँसती हैं सो कहत कि मोको परवश अचेत जानि श्रवण नेत्रादि इन्द्र इन्द्रियन हँस्यो अब निज अपनी वश स्वतन्त्र ह्वै न हँसैहौं विषय ते रोकि अपनी आधीन रखिहौं पुनः मन मधुकर भ्रमर जो चञ्चल रहा वासना गन्ध हेतु अनेक वस्तु फूलों पर धावत रहा ताको गोसांईजी कहत कि प्रणकरि हठ पकरि रघुपति के पदरूप कमलन में बसैहौं निश्चय करि मनको प्रभुके पायँन में लगाये रहिहौं विलग न होने पाई ३॥

राग रामकली।

(१०७) महाराज रामादर्‌यो धन्य सोई।

गरुअ गुणराशि सर्वज्ञ सुकृती शूर शीलनिधि साधु तेहिसम न कोई१

उपल केवट कीश भालु निशिचर शबरि गीध शम दम दया दान हीने।

नामलिये राम किये परमपावन सकल नर तरत तिनके गुणगान कीने २

व्याध अपराध की साध राखी कौन पिङ्गला कौन मति भक्ति भेई।

कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम कौन गजराज धौं बाजपेई ३

पांडुसुत गोपिका विदुर कुबरी सबहि शुद्ध किये शुद्धता लेश कैसो।

प्रेमलखि कृष्ण किये आपने तिनहुँ को सुयश संसार हरिहरको जैसो ४

कोल खस भिल्ल यवनादि खल राम कहि नीचह्वै ऊंच पद को न पायो।

दीनदुखदमन श्रीरमन करुणाभवन पतितपावन विरद वेद गायो ५

मंदमतिकुटिलखलतिलकतुलसीसरिसभौन तिहुँलोकतिहुँकालकोऊ।

नामकीकानिपहिचानिजनआपनोग्रसनकलिव्यालराख्योशरणसोऊ६

टी०। सब त्यागि एक रघुनाथजी में लाग रहेते क्या लाभ है सो कहत कि महाराज, श्रीरघुनाथजी जाको आदर्यो आदर कीन्ह्यो सोई जन धन्य है कैसा धन्य गरुअ अर्थात् सबसों उत्तम पुनः समता शान्त, शील, क्षमा, दया, तोष, विराग, विवेक, बुद्धि, विद्यादि यावत् उत्तम गुण हैं तिनकी राशि ढेरी है पुनः सर्वज्ञ सब तत्त्व भूत भविष्य वर्तमान को जाननेवाला पुनः सुकृती महापुण्यवन्त पुनः शूर निश्शङ्क वीर हैं शीलनिधि शील भरा स्थान ताकी समान साधु दूसरा कोई नहीं है सब सों उत्तम साधु हैं इत्यादि रघुनाथजी के आदरे ते लाभ है १ अब पूर्व वचन की प्रमाण देखावत यथा उपल पाषाणरूप जो अहल्या केवट जो बरबस पग धोइ नाव चढ़ाये कीश सुग्रीवादि भालु जामवन्तादि ऋक्ष निशिचर विभीषण शबरी गीध जटायू इत्यादि कैसे रहे जो कहत शम वासना त्याग दम इन्द्रियन को रोक पुनः दया निर्हेतु जीवनकी रक्षा दान धन भोजनादि देना इत्यादि करि सबै हीन रहे अर्थात् शम दमादि ज्ञानके साधन हैं दया दानादि धर्म के अङ्ग हैं इत्यादि कर्म ज्ञानकरि रहित सब हैं तिनहूं प्रभुको नाम लीन्हे तिन सकल को रघुनाथजी परम पावन किये कैसे पावन हैं कि तिनके गुणन के गान कीन्हे ते नर भवसागर तरि जाते हैं भाव भगवत् यश की समान सब को यश पावन है २ पुनः व्याध्र जो वाल्मीकि तिनके अपराध की साध संख्या विचार कौन राखे कि यह साधु, ब्राह्मण वध करिबे योग्य नहीं है जोई मालधनी पाये ताहीको मारे जब हिंसा ते जीविका तब किसको बरावैं पुनः पिंगला नामे वेश्या जनकपुर में ह्वै गई एकदिन अर्ध रात्रि तक धनी पुरुष के आसरे रही जब कोऊ न आवा तब निरासा ह्वै ईश्वर में मन लगाई ताको कहत पिङ्गला कौन भक्ति में मतिभेई जन्मभरि कुकर्म तौ कीन्ही तथा अजामिल अधम कौनधौं सोमयाजी सोमयज्ञ कीन्ही अर्थात् जन्मभरि पापै तौ करतरहा तथा गजराज धौं कौन वाजपेय यज्ञ करतरहा भाव मदमत्त सदा अनीतिन तौ करतरहा ते सब हरिनाम के प्रभाव ते सुगति पाये ३ पाण्डुसुत युधिष्ठिरादि जे अपने पिताके एकहू नहीं सब औरन के हैं पुनः पांचौभाई एक स्त्री सों भोग कीन्हे तथा गोपिका अपने पतिनको त्यागि परपतिमें रत भई वेदविरुद्ध कीन्ही विदुर दासी के पुत्र हैं कुबरी जाति मालिनि कंसकी दासी ताहूपर कुरूप इत्यादिकनमें शोध विचार कियेते सिवाय अपावनता कि अरु शुद्धताको लेश कैसो भाव अशुद्धताके समुद्र शुद्धता की छींट नहीं ऐसेहू जननमें प्रेम लखि देखिकै कृष्णचन्द्र अपने किये तिनको सुयश संसारमें कैसो विदित है जैसे हरिको यश पुनः हर महादेवको यश तैसेही लोक पावनकर्ता उनको भी यश है ४ कोल खस भिल्ल चित्रकूट वनवासी यवन म्लेच्छ शूकरके धक्का ते गिरा हाराम कहि मरा परमपद पायो इत्यादि सबै खलजीव हिंसक महापापी दुष्ट अपावन जाति रहे ऐसेहू नीच श्रीराम नाम कहिकै कौन नहीं ऊंचपद पावा है भाव सब उत्तम पद पाये इत्यादि दीन जननके दुःख शमन नाशकर्ता श्रीरमण जानकीनाथ, करुणाभवन करुणा गुणभरे मन्दिर हैं जिनको पतितपावन विरद पतित चाण्डाल म्लेच्छादि जीवनको पावन करनहारा बाना है ताको वेद पुराणादि गायो बखान करत हैं यथा विष्णुपुराणे॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।

पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तमृगैरपि ॥ ब्रह्मवैवर्ते ॥ आधयो व्याधयो यस्य स्म-रणान्नामकीर्तनात्। शीघ्रं वै नाशमायान्ति तं वन्दे जानकीपतिम्॥ नन्दीपुराणे ॥ स-र्वदा सर्वकालेषु ये न कुर्वन्ति पातकैः। तेऽपि श्रीरामसन्नाम जपं कृत्वा परं पदम् ५ अब अपनीद्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण देखावत कि मैं कैसा रहौं मतिमन्द अपने हित अनहितको विचारहीन निर्बुद्धि पुनः स्वभाव कुटिल टेढ़ा पुनः नष्टकर्म करनेवाला खल तिलक दुष्टन में राजा ऐसा तुलसीदास जाकी सरिस समतायोग्य स्वर्ग भूमि पातालादि तीनिहूं लोक में भूत-भविष्य-वर्तमानादि तीनिहूं काल में सुर नर ना-गादि कोऊ नहीं भयो ताहू को नामकी कानि अपने नामकी लाजते अपनो जन पहिचानि कलि व्याल ग्रसत कलियुगरूप सर्प लीलेलेत देखिकै मैं ऐसा कुटिल सोऊ प्रभुशरण में राखे अपना बनाये इत्यादि प्रभुकी शरण धन्य है ६ ॥

राग बिलावल।

(१०८) है नीको मेरो देवता कोशलपति राम।
सुभग सरोरुहलोचन सुठि सुन्दर श्याम १
सिय समेत शोभित सदा छवि अमित अनङ्ग।
भुज विशाल शर धनु धरे कटि चारु निषङ्ग २
बलि पूजा चाहत नहीं चाहैं इक प्रीति।
सुमिरतही मानैं भलो पावन सब रीति ३
देहि सकल सुख दुख दहै आरतजन बन्धु।
गुण गहि अघ अवगुण हरै अस करुणासिन्धु ४
देश काल पूरण सदा वद वेद पुरान।
सबको प्रभु सब में बसै सबकी गति जान ५
को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव।
तुलसिदास तेहि सेइये शङ्कर जेहि सेव ६

टी०। कोशलपति राम मेरो देवता नीको है अर्थात् माधुर्य में अवधेश महाराज पुनः ऐश्वर्य में साकेतविहारी सर्वोपरि परब्रह्म इति ऐश्वर्य माधुर्यादि सब विधि ते हमारे इष्टदेव उत्तम हैं प्रथम माधुर्य की उत्तमता कहत सुठि कहे अत्यंत सु-न्दर अर्थात् सर्वांग सुठौर बने पुनः सरोरुहलोचन कमल सम नेत्र कृपारस भरे ऐसा सुभग श्याम तन है १ पुनः जिनके सर्वांग सुठौर बने भूषण वसन विचित्र धारण कोमल शीतल स्वभाव ऐसी श्रीजानकीजी वामभाग में विराजमान तिन सहित सिंहासनपर सदा शोभित विराजमान तहां अमित अनंग असंख्यन काम-देवनकी ऐसी छवि दर्शित होती है पुनः दोऊ भुज विशाल लम्बायमान जानु प-र्यन्त दहिने में शर बाण तथा वामविषे धनुष विचित्र धारण किहे पुनः कटिविषे चारु सुंदर अर्थात् चित्र विचित्र लदाऊ कामदार विचित्र ऐसा निषङ्ग जो तरकस सो कटिमें शोभा देरहा ऐसा वीररूप २ बलि भेट पूजा षोड़शोपचारादि विधि

विधानादि कछु नहीं चाहत केवल एक प्रीति चाहते हैं सांची प्रीतिपूर्वक सुमिरत-मात्रही भलो सेवक करि मानते हैं इत्यादि सब रीति ते पावन हैं स्वार्थादि अपावनताको लेश नहीं है ३ प्रीति ते सुमिरतमात्र भलो सेवक मानि लोक परलोकादि सकलप्रकार को सुख देते हैं पुनः रुज वियोग दरिद्र हानि आदि लौकिक यम सांसृति आदि परलोक में इत्यादि सब भांतिको दुःख दहैं भस्म करि देते हैं पुनः आरत दुःखित जनन के बन्धु समान हितकर्ता हैं पुनः सेवक के दुःखमें आपहू दुःखित है शीघ्रही दुःखहरना इति करुणा गुण है त्यहि करुणारूप जल भरे सिन्धु सम श्रीरघुनाथजी ऐसे हैं कि सेवकन के सुकृत सुलक्षणादि गुण तौ गहते हैं पुनः अघ पाप अरु अलक्षणादि अवगुण हरिलेते हैं ऐसे करुणासिन्धु हैं ४ पुनः ऐश्वर्य में कैसे नीके हैं कि सब देशन में अरु सब काल भूत, भविष्य, वर्तमानादि सदा सब में परिपूर्ण व्यापक हैं ऐसा वेद पुराण वद नाम कहते हैं पुनः सुर नर नागादि चराचरादि सबको प्रभु पालनहार पुनः अन्तर्यामीरूप ते सब में बसते हैं ताते सबके बाहेर भीतर की सबभांति की गति जानते हैं ५ ऐसा सबल समर्थ उदार सुलभ स्वामी पाइके पुनः कोटिन भांति कामना करिकै बहुते देवनको कौन पूजे भाव को वृथा परिश्रम खोवै सो गोसाईंजी कहत कि त्यहि प्रभु को सेइये त्यहि को शंकर सेव भाव जे सब देवन में शिरमौर ऐसे शिवजी जिनको भजते हैं तिन सर्वोपरि प्रभुको भजिये तामें सब लाभ है ६ ॥

(१०६) वीर महा अवराधिये साधे सिधि होय।
सकल काम पूरण करै जानै सब कोय १
वेगि विलम्ब न कीजिये लीजै उपदेश।
महा मंत्र जपिये सोई जो जपत महेश २
प्रेम वारि तर्पण भलो घृत सहज सनेहु।
संशय समिध अगिनि क्षमा ममता बलि देहु ३
अघ उचाटि मन वश करै मारै मद मार।
आकर्षै सुख संपदा संतोष विचार ४
जे यहि भांति भजन कियो मिले रघुपति ताहि।
तुलसिदास प्रभु पद चढ्यो जो लेहु निबाहि ५

टी० १ सत्य, दया, दान, युद्धादि में जाके उत्साह बनी रहै ताको वीर कही तहां अपने प्रयोजनमात्र सुर नर नागादि अनेकन वीर भये हैं पुनः तैंतिस तैंतिस पार्षद वीर ब्रह्मा विष्णु शिवादि के लोक रक्षाहेतु लोकन में विचरा करते हैं ते आराधना ते सिद्ध है षट्प्रयोग सिद्ध करते हैं तिस लौकिक कार्य हेतु तुच्छ वीरन को कौन साधै ताते महावीर आराधिये अर्थात् औरन में एक द्वै वीरता होइँगी अरु रघुवीर में पाँचौ वीरता परिपूर्ण हैं यथा ॥ त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः। पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदास्वतः ॥ पञ्चवीराः समाख्याता राम एव स-

पञ्चधा। रघुवीर इति ख्यातिः सर्ववीरोपलक्षणः॥ ऐसे महावीर रघुवीर को आराधिये जे साधे ते स्वभाविक निर्विघ्न सिद्ध होते हैं पुनः लौकिक पारलौकिक सकल प्रकार की कामना पूर्ण करते हैं ताके शास्त्रद्वारा अनुमान उपमानादि प्रमाण की ज़रूरत नहीं है प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सुर नर नागादि सबै जानत कि अहल्या केवट कोल दण्डकवन शबरी गीधादि को राह चलत सुगति दिये सुग्रीव विभीषण को लोक परलोक दोऊ बनाये अन्त में पुरवासिन को संगही लैगये इत्यादि प्रसिद्ध है पुनः यमनादि द्वारा नामको प्रभाव मार्ग मार्ग सब गावत हैं १ सबल समर्थ उदार वीर सब कामनादायक स्वाभाविक सिद्ध होते हैं ऐसा जानि विलम्ब न कीजिये वेगिही सद्गुरु सों उपदेश लीजिये पुनः यथा तुच्छ वीरन के सिद्ध होने का उपाय उड्डीसादिकन में है तथा रघुवीर के सिद्ध होनेका उपाय अगस्तिसंहिता रामार्चनचन्द्रिका तापिनी आदिकन में प्रसिद्ध हैं ताकी विधि सो महामन्त्र राम नाम सोई जपिये जो महेश शिवजी जपते हैं भाव जो मन्त्रको जपि शिव ऐसे सिद्ध भये जे काशी में चराचर को मुक्ति देते हैं २ मन्त्रजप पूर्णता में तर्पण हवन बलि; प्रदान चाहिये सो कहत यथा प्रेमवारि अर्थात् चित्त में जो प्रीति की उमंग उठती है ताके वेगते रोमाञ्च कण्ठारोध आंशू आदि प्रसिद्ध बुद्धि की विह्वलता यह प्रेम है सोई वारिनाम जल है तामें भलीप्रकार तर्पण करै पुनः सहज स्वभावते जो मनमें रामसनेह बनारहना सोई हवन हेतु घृत करै पुनः भगवत्रूप को भूलि संसार को सांचा जानना यह झूठे से सचाई विचार संशय है सोई समिध ईंधन है ताको जरावने को अग्नि चाहिये तहां कैसहू कोऊ अनादर करै तबहूं क्रोध न करै इत्यादि क्षमा सोई अग्नि करि संशयरूप समिध जरावै सहज सनेह घृतकी आहुति देवै अर्थात् लोकव्यवहार वृथा जानि रागद्वेष त्यागि सदा राम सनेह दृढ़ राखै पुनः मन्त्र भये पर बलिप्रदान चाहिये इहां ममता देह सम्बन्ध में अपनपौ सोई बलि देहु भाव सबकी ममता त्यागि प्रभुके पाँयन में ममता राखु ३ सिद्ध भये पर षट्प्रयोग कहत अब उचाटि भाव ऐश्वर्य प्रभाव विचारि नामोच्चारण करु पाप आपही छोड़ि भागैं पुनः मन वश करै भाव माधुर्यरूप की शोभा में मन लगाइ कृपा दयादि गुण विचारि प्रेमते नामोच्चारण करि मनको वश करिले विद्या धनादि पाइ हर्ष बढ़ावना मद है मार काम है इत्यादि मारै शान्ति धैर्य सहित नामोच्चारण करि मद कामना को नाश करै पुनः संतोषरूप सुख विचाररूप सम्पदा तिनको आकर्षै खैंचि स्वाधीन करै ४ यही विधिते जो भजन कियो आराधो ताही को रघुपति मिले ऐसा जानि ताही पथ पर तुलसीदास चढ़यो है प्रभो! कलिकाल बाधक है जो आपु निवाहिलेउ तौ महूं शरणमें पहुँचिजाउँ नातरु कलि खाइ जाइगो ५॥

(११०) कस न करहु करुणा हरे दुख शमन मुरारि।
त्रिविध ताप संदेह शोक संशय भय हारि १
यह कलिकाल जनित मल मतिमंद मलिन मन।
तेहि पर प्रभु नहिं कर सम्हार केहि भांति जियै जन २
सब प्रकार समरथ प्रभो मैं सब विधि दीन।

यह जिय जानि द्रवहु नहीं मैं कर्म विहीन ३
भ्रमत अनेक योनि रघुपति पति आन न मोरे।
दुख सुख सहौं रहौं सदा शरणागत तोरे ४
तो सम देव न कोउ कृपालु समुझौं मन माहीं।
तुलसिदास हरि तोषिये सो साधन नाहीं ५

टी०। हे हरि, श्रीरघुनाथजी! आपुका स्वाभाविक ही करुणासिंधु नाम है अर्थात् सेवकन के दुःख में आपहू दुःखित हैं शीघ्रही सेवक को दुःख हरिलेत रहेउ है ताकी प्रमाण है कि मुरनामे दैत्य सेवकन को दुःखदायक रहा ताको मारि सेवकन को सुखी कीन्हेउ तथा कलियुगकी भय करिकै मैं दुःखित हौं सो मोपर अब करुणा कस नहीं करते हौ अर्थात् मेरे दुःख को देखि क्यों नहीं दुःखित है कलियुग को दण्डकरि मेरा दुःख शमन नाश करते हौ सदा तो आपुकी ऐसी रीति रही है कि दैहिक दैविक भौतिकादि तीनि विधिकी ताप पापकर्म भोगनेकी संदेह शोक दुःख अर्थात् हानि वियोग रुज दरिद्रतादि तथा संसार की सचाईते ईश्वर की सचाई में निश्चय नहीं इति संशय यमसांसति आदि की भय इत्यादि वाधा दासनकी हरिलेनहारे हौ १ हम ऐसे विषयी जीव रहे सतयुग त्रेता द्वापरमें न तरे अब यह वर्तमान जो कलिकाल ऐसा कराल युगमें परे त्यहि करिकै जनित उत्पन्न मल जो पाप तिनके प्रभावते मैंतिमन्दभाव बुद्धि तो ज्ञान विचारादि प्रकाश-हीन भई तथा मन मलिन है असत्कर्मनमें लग्यो ताको बरबस रोकि जो आपुकी शरण आयों सो जानि कलियुग लीला चाहत त्यहिपर हे प्रभो! जो आपहू सँभार मेरी रक्षा नहीं करतेहौ तौ जन क्यहिभांति जिये जीवन बचैगो भाव ग्रासि कै कलिकाल खाइजाइगो सिवाय आपुकी दया और दूसरा उपाय बचनेका नहीं है २ काल कर्म गुण स्वभाव जीवकी गति अगति सब आपहीके हाथ हैं इत्यादि सबप्रकारते समर्थ प्रभु आपु हौ पुनः सबकी आश भरोसा मानापमान त्याग इत्यादि मैं सबविधि ते दीन आपुकी शरण हौं यह जीवने जानि भाव पतितपावन शरणपाल बानाको सँभारि जो मोपर नहीं द्रवत कृपा नहीं करतेहौ तो मही सत्कर्मन करिकै विशेषि हीनहौं भाव जो सबको मनभावन दान देरहा है अरु अपना को नहीं देताहै तौ दानीको दोष कैसे दीजिये अपनी भाग्यहीको दोष है आपुको कैसे कहौं ३ काल कर्म गुण स्वभावादि वायुमण्डलमें परा वासना अनुकूल अनेकन योनिनमें भ्रमत फिरेउँ तहां सुर नर नागादि आन दूसरा स्वामी मेरे कोऊ कहीं नहीं रहा जब जहां जन्म पायों तहां तहां सर्वत्र एक रघुनाथजी मेरे पति रहेहैं हे प्रभो! अपने पाप, पुण्य, कर्मानुसार दुःख सुख सह्यों दूसरे देवादिको नहीं भज्यों एक आपुहीकी शरणागती में सदा परा रह्यों औरनको द्वार नहीं यांच्यों ४ काहेते आपहीकी शरणागतमें परारह्यों कि श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दन, स्मरण, दास्यता सेवनादि जे उपायकरि हरि तोषिये प्रभुको प्रसन्न करिये सो साधन तुलसीदास में एकहू नहीं केवल प्रभुकी कृपाके भरोसे भवसागर तरा

चाहत हौं तहां हे देव, श्रीरघुनाथजी! आपुकी समताको कृपालु कोऊ नहीं है ऐसा मनमें समुझत हौं सो जो दूसरो कृपालु है नहीं तौ किसकी शरण जाउँ परिपूर्ण कृपागुणमन्दिर एक आपु हौ यह जानि कृपागुण के भरोसे आपहीकी शरणागत में परा हौं कृपा यथा दो०॥ रक्षक सब संसार के हौ समर्थ मैं एक। दृढ़मन अनुसंधान यह सो गुण कृपाविवेक॥ अर्थात् जो जीवमात्रकी रक्षा करते हौ तौ मेरिहू रक्षा करिहौ ५॥

(१११)कहु केहि कहिये कृपानिधे भव जनित विपति अति।
इंद्रिय सकल विकल सदा निज निज स्वभाव रति १
जे सुख संपति स्वर्ग नरक संतत सँग लागी।
हरि परिहरि सोइ यत्न करत मन मोर अभागी २
मैं अति दीन दयालु देव सुनि मन अनुरागे।
जो न द्रवहु रघुवीर धीर काहे न दुख लागे ३
यद्यपि मैं अपराधभवन दुखशमन मुरारे।
तुलसिदास कहँ आश इहै बहु पतित उधारे ४

टी०। हे कृपानिधे, कृपारूप! जल भरे समुद्र भव करिके जनित नाम उत्पन्न जन्म मरणादि जो अत्यन्त विपति महादुःख सो कयहि सों कहिये अर्थात् जीवमात्र रक्षा करिबे को आपही समर्थ हौ तिनको छांड़ि और ऐसा कौन है जासों कहौं और जे हैं ते शुद्ध जीवन के सहायक हैं अरु मैं कैसा हौं सो सुनिये श्रवणादि यावत् इन्द्रिय हैं ते निज निज स्वभाव रति अपनी अपनी विषय में प्रीति किहे हैं तिन करिके जीव विकल है भाव श्रवण शब्द मैं लगे त्वचा स्पर्श में लगी नेत्र रूपमें लगे जिह्वा षट्रस में लगी नासिका गन्ध मैं लगी तिनके द्वारा मन अनुकूल है विषय-सुख में डारत आपुने विमुख करत ताको दुःख विचार जीव विकल बना रहत अनेक इन्द्रिय अपनी अपनी दिशि खैंचा करती हैं ताते जीव थिरता नहीं पावत जो सावधान है आपुकी सन्मुख बना रहै सो तौ मनते होई नहीं पावत १ क्या मन करता है सुख यथा सुगन्ध स्त्री वसन गान पान भोजन वाहन भूषण इत्यादि पुनः सम्पति यथा अन्न, धन, धरणी, धाम, परिवार, पुत्रादि इति जो सुख सम्पति स्वर्ग नरकादि सन्तत नाम सदा जीव के संगही लागि रहत अर्थात् सुकृत करि सुख सम्पति मिलति बड़ी सुकृत करि स्वर्ग मिलत पाप करि दुःख मिलत महापापकरि नरक मिलत सो तौ स्वाभाविकही शुभाशुभ कर्मकरि जीव को दुःख सुख, स्वर्ग, नरक हूने करत ताकी उपाय क्या करना उपाय करि हरि शरणागत होना चाहिये जामें कल्याण है तहां मेरा मन ऐसा अभागी है जो हरि परिहरि रघुनाथजी को त्यागि जामें लौकिक सुख संपति स्वर्गादि होवै सोई यत्न उपाय सदा करत रहत हैं ताहीमें दुःख यतै अधिक होत २ हे देव, श्रीरघुनाथजी! वेद पुराण द्वारा सज्जनन के मुख ते आपको सुन्यों कि दयालु हौ भाव बेप्रयोजन दीनन को दुःख हरते हौ यह सुनि मैं अतिदीन ह्वै मन अनुरागयों अनुराग सहित आपुके पदकमलन में

मन लगायों हे रघुवीर, धीर! ताहूपर जो न द्रवहु मोपर दया न करहु तौ काहे न दुःख लागै अर्थात् रघुवंशशिरोमणि उदार दानी धीर्यवान् वीर हैं जो मोपर दया नहीं करते हौ तौ मैं काहे न दुःखित होउँ भाव दानी के द्वारते याचक खाली हाथ फिरै वाके दुःख होतही है यह सदा की रीति है ताते क्यों अपनी उदारता में दागु लगावते हौ जो मोपर दया नहीं करते हौ ताते दया करि मोको भी शरण में राखना योग्य है सो अवश्य शरण में राखिये ३ हे प्रभो ! कदाचित् जो आप कहौ कि तैं बड़ा अपराधी है हमारी शरण योग्य नहींहै तौ कैसे शरण राखें तिस पर कहत कि यद्यपि मैं अपराधभवन अपराध कर्मन को भरा मन्दिर हौं तदपि हे मुरारे! आप दुःखशमनहैं अर्थात् शरणागतन को दुःख नाशकरनहारे हौ यही समुझि तुलसीदास को भी यह आश है कि केवट, कोल, शवरी, गीध, यमनादि बहुते पतितनको उद्धारे पाप नाश करि अपनो धाम दीन्हे तथा मेराभी उद्धार करौगे यही विचारि हठि करि शरण में परा हौं ४ ॥

(११२)केशव कहि न जाइ का कहिये।

देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये १
शून्य भीति पर चित्र रंग नहिं विन तनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे २
रविकरनीर वसै अति दारुण मकर रूप तेहि माहीं।
वदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ३
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रवल करि माने।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचाने ४

टी०। अब विचारना भूमिकाते विनय करते हैं यथा हे केशव, भगवन्! कछु कहा नहीं जात पदार्थ की निश्चय नहीं होत झूंठा है वा सांचा है ताको का कहिये क्या नहीं कहाजात हे श्रीरघुनाथजी! आपकी जो अत्यन्त विचित्र रचना है सो कहत तौ बनत नहीं है मनैमन समुझिकै रहियत है तहां सुर, नर, नाग, पशु, पक्षी, वेलि, वृक्षादि की प्रतिमा भीति में रंगन ते वनी होय ताको चित्र कहिये पुनः जो शीशा के आवरण में दिखात अरु किसीकी समुझ में नहीं आवत कि कहा वनी हैं ताको विचित्र कहिये अरु यह हरिकी रचना अति विचित्र है अर्थात् भीति शीशा आदि आधार तौ कछु देखात नहीं निराधार अन्तरिक्ष में अनेक प्रतिमा देखाती हैं तामें निश्चय नहीं होत कि यह रचना सांची है वा झूंठी है काहेते तन,धन, धाम, स्त्री, पुत्र, राज्यादि यावत् पदार्थ हैं कवहूं होत कवहूं जात वा सब वना प्राण निसरे साथ कछु नहीं ऐसेही होतजात ताको सांचु कैसे मानिये पुनः ध्रुव, प्रह्लाद, पृथु, अम्बरीषादि सब संसारै में भये तिनकी सब कर्तव्यता सांची है पुनः संसारही में अनेकरूप धरि भगवत् अनेक लीला कीन्हे पुनः संसारही को विराट्रूप करि वेद कहत ताको झूंठा कैसे कहिये इत्यादि समुझि मनहि में राखियत कछु झूंठ सांच कहि नहीं जात है १ कैसी अति विचित्र रचना

है कि शून्य तो भीति है तापर रंग तो नहीं है परन्तु चित्रसारी बनी है पुनः जिस चित्रकार ने लिखा है सो विना तनको है वाके देह नहीं है प्रथम कर्ता ईंट गाराते भीति उठाइ अस्तरकारी घोटि साफ़ करत तापर चित्रसारी बनाई जाती है तिस हेतु आदिकर्ता हरि श्रीरघुनाथजीको कहे यथा विना प्रजा राजा की शोभा नहीं तथा विना जीव ईश्वर की शोभा नहीं इसहेतु संसार उत्पन्न की इच्छा किया यथा पिता को अंश माता में मिलि पुत्र होता है तथा ईश्वर को अंश प्रकृति में मिलि जीव भया तब बुद्धि भई चैतन्य भया तब त्रिगुणात्म अहंकार भया अपना को कछु जाना इत्यादि प्रकृति भूमि है बुद्धि गारा है अहंकार ईंटै मिलि भीति भई प्रकृति में भेद कारण माया जो आत्मदृष्टि खैंचि जीवत्व कियो ताने अस्तरकारी करि साफ़ कियो यहां त्रिगुणात्म अहंकारते क्रमते पांचौतत्त्व भये तामें प्रथम आकाश भयो सोई शून्य भीति है ताही में पांचौतत्त्व मिलिकै जो चौरासीलक्ष योनि में असंख्य देहधारी सृष्टि रचना है सोई चित्रसारी है तामें रंग नहीं है काहेते स्थूलशरीर पञ्चभौतिक है कारण शरीर भगवत् मायामय है पुनः पञ्चप्राण मन बुद्धि दशेन्द्रिययुत सूक्ष्मशरीर तीनिहू एक में मिले हैं तहां कौनौ रंगकी निश्चय नहीं ताते रंग नहीं है पुनः सृष्टि रचना सब कामै करिकै होती है सोई विना तन को कामदेव चित्रकार तहां चित्रसारी ऐसी भयानक है कि यातन हेरे दुःख पाइयत अर्थात् चौरासीकी सुधि आवतै महादुःख होत तब इच्छाकरितहैं कि याको धोइडारिये सो कर्मादि जलते धोये चौरासीरूप चित्रसारी मिटती नहीं ताते मरैं भीति अर्थात् भीतिनाम है भयको सो भय करिकै मरेजाते हैं भाव कैसे यासों बचेंगे यामें भयंकरता क्या है प्रथम तो मोह अंधकार है तामें अपनाही रूप नहीं सूझि परत तामें पांचौभूत महाभयानक हैं ते लागिकै अधिक अचेत करिदेते हैं पुनः चिन्ता सांपिनि ग्रसत पुनः पांचौ विषय पिशाचिनी अपनी अपनी दिशि खैंचती हैं पांचौ कर्म इन्द्रिय शत्रुवत् पकरि कर्म फंदन में बांधते हैं मनरूप पक्षी उड़ाये फिरत जहां भयदायक थल तहैं लैडारत पुनः कर्मसुभाव मिलि अनेकन वेष बनाइ बहुत नाच नचावत इति देखि महाभय लागती है २ पुनः तहां जानेको कारण कहत अर्थात् जो कहौ कि जो भय लागत तौ वाके निकट क्यों जाते हौ ताको हेतु यह है कि यथा मृगा प्यासा सूर्यकिरणि में जो लहरी उठत ताको देखि धावा करता है न वहां जल है जो पानकरि तृप्त होवै अरु न सन्तोष होइ प्यासते धावते धावते कालवश हैजाता है तैसेही संसार के पदार्थ रविकर नीरहै सूर्य किरणि कैसो जल स्त्री, पुत्र, धन, धाम, राज्य, वाहनादि में जीव वृथाही सुख माने हैं यथा भागवते ॥ प्रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा महीकुञ्जरकोशभूतयः। सर्वेऽर्थकामाःक्षणभंगुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः॥इत्यादि रविकर नीरहै त्यहि माहीं दारुण कठिन कराल काल मगररूप बसतहै सोहै तौ वदनहीन विना मुखं को भाव कालमुख देखि नहीं परताहै परन्तु चराचर को ग्रसत खायेजात तामें भेद यह है कि जे उस जलको पान करने हेतु जाते हैं तिनको खाता है अर्थात् काकभुशुण्डि लोमशादि संसारहीमें हैं तिनके ढिग काल नहीं जात काहेते वे संसार सुखको वृथा मानि त्यागि सदा एकरस अखण्डवृत्ति मनको ईश्वर में लगाये हैं तिनके

ढिग काल कैसे जाइ सक्ता है अरु जे विषय की प्यासने संसार सुखै में आसक्त हैं तिनको काल खाइजाताहै पुनः चौरासी में हगिदेताहै इत्यादि न विषयते विरक्त होइ न चौरासी छूटै अरु चौरासी को विचित्र चित्रसारी याने कहे कि चित्रसारी जड़ होतीहै तैसेही मायावश सब जीव जड़ ह्वैरहेहैं तामें विचित्रता यह है कि यथा चित्र प्रतिमा अथवा काठ धातु पाषाणादि की प्रतिमा बनती हैं पूर्व यद्यपि जड़हैं परंतु जिस देवादि की प्रतिमा हैं ताको अंश वामें व्याप्त होता है काहेते प्राणप्रतिष्ठादि करि पूजने ते वही देवता प्रसन्न ह्वै फलदायक होता है पुनः जगन्नाथ रंगदेवादि प्रतिमाद्वारा प्रसिद्ध हुक्म लगावते हैं औरहू बहुते स्वरुपनकरि सेवकनको मनोरथ सफल भया तैसेही मनुष्यादि तन यद्यपि जड़ देखात परंतु मंत्रोपदेशादि संस्कारकरि पुनः षडंगन्यास प्राणायाम भूतशुद्धी मन्त्र जपादि करनेते जीवको पूर्वरूप दर्शित ह्वै आवत है अनेक सिद्धाई शक्ति दर्शित होत पुनः ज्ञान ध्यान प्रेमादिकरि वाही के अन्तरमें भगवत्रूप प्रकट ह्वै आवताहै इत्यादि सब प्रसिद्ध है परंतु सहसा किसीकी समुझमें नहीं आवत यही विचित्रता है ३ अब जगत् रचना की विचित्रताई को विवाद अविचल करि देखावत यथा पिता माता पुत्र तथा ब्रह्म माया जीव तामें कोऊ तौ कहत कि यथा पिता तथा माता तैसेही पुत्र तीनिहू सांचे हैं तैसेही कोऊ कहत कि ब्रह्म जीव माया तीनिहूं अनादि कालते सदा एकरस बने रहते हैं तौ झूंठ कैसे मानिये ताते संहारहू सत्य है यह सिद्धान्त धर्म कर्मप्रचारक जे आचार्य हैं यथा मनु दक्ष याज्ञवल्क्य वशिष्ठ गौतमादि जिनकी स्मृति धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध है तिनको सम्मत है कि संसार जीवनको कर्म प्रधान है यथा मनुस्मृतौ ॥ शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम्। कर्मजागतयोर्नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥ पुनः मिताक्षरायाम् ॥ नोऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ पुनः कोऊ कहै संसार झूंठहै यथा स्त्री पुरुषकी अर्द्धाङ्गी है तामें परि पुत्र पितैको अंश है तौ स्त्री पुत्र कहना वृथा है पितैपद सांचा है तथा माया के आवरणते ब्रह्म जीव भया सो माया जीव वृथाहै एक ब्रह्मै सांचा है ताते लोकव्यवहार झूंठा है यह वेदांतमत वेदव्यास सनकादि को मत है यथा परमहंसोपनिषदि।आशाम्बरो न नमस्कारो न स्वधाकारो न निंदास्तुतिर्न वषट्कारो याहच्छिकं भवेद्भिक्षुः नावाहनं न विसर्जनं च मन्त्रो न ध्यानं नोपासनं च न लक्ष्यं नालक्ष्यं न पृथक् नापृथक् नाहं न त्वम् सर्वेषामिन्द्रियाणां गतिरुपरमते ज्ञाने स्थिरस्थः य आत्मन्येवावस्थीयते यत्पूर्णानन्दैकरसबोधः तद्ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति॥ पुनः कोऊ युगल ईश्वर संसार दोउनको प्रबल करि मानते हैं यह पातञ्जलि आदि योगशास्त्र को मतहै अर्थात् लोक प्रबल याते है कि इंद्रीद्वारा विषयनमें मन लागेते अनेक असत्कर्मकरि जीव मलीन ह्वै जाताहै ताते भवबन्धनते छूटता नहीं पुनः भवबन्धनैं छोड़ायबेको ईश्वर प्रबल है ताते यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायामादि कर्म करि इंद्री मनादिको थिरकरि ईश्वरको ध्यानकरि जीव शुद्ध ह्वै मुक्त होइगो इत्यादि कर्ममतवादी संसारको सांचु कहत ज्ञान मतवादी संसारको झूंठा कहत योगी दोऊको प्रबल कहत तापर गोसाईंजी कहत कि कर्म ज्ञान योगादिके भरोसे जे पूर्वरूपकी प्राप्ति चाहते हैं सो भ्रममात्र है कछु प्रयोजन नहींहै इत्यादि तीनिहूं भ्रम

परिहरै त्यागकरै शुद्ध रघुनाथजीकी शरणागती गहै तब आपन पूर्वरूप पहिचानै अर्थात् रामसनेह सहित सब सिद्ध है पुनः बिना रामसनेह भये कर्म ज्ञान योगादि न मुक्ति होना दुर्घट है काहेते हरिसम्बन्धी यज्ञ करि पृथु परधाम गये स्वा. मिक यज्ञ करि दक्षकी दुर्दशा भई हरिसंबन्धी तपकरि ध्रुव अचल भये हरिविमुख तप करि रावण का नाश भया हरिसम्बन्धी कर्मकरि अम्बरीष परधाम गये स्वा. मिककर्म करि नृग गिरगिट भये हरिसम्बन्ध सहित कपिलदेव माताको ज्ञान उपदेशकरि भागवत करिदीन्हे हरिविमुख ज्ञान उपदेश हिरण्यकशिपु माताको करके नाश भयो माता ज्योंका त्योंरही अरु योगक्रिया है तामें ईश्वरकी भक्तिप्रधान है अरु हरिसनेह बिना योगी वृथा है ताते सब भरोसा त्यागि एक रामसनेह में जीव को कल्याण है यथा अध्यात्मे ॥ धर्माधर्मपरित्यज्य त्वामेव भजतेऽनिशम् । निर्द्वन्द्वो निस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥ गीतायाम् ॥ सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥ रुद्रयामले ॥ ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः । जपं तपं दया शौचं शास्त्राणामवगाहनम् ॥ सर्वं वृथा बिना येन शृणु त्वं पार्वतिप्रिये ॥ सत्योपाख्याने ॥ लोके भवतु चाश्चर्यं जलाज्जन्म घृतस्य च । सिकतायां तु नत्तैलं यत्ने यातु कदाचन ॥ बिना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते । यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे ॥ ताते बिना भक्ति जीवको कल्याण नहीं है ४ ॥

(११३) केशव कारण कौन गुसाईं ।

जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेहु अज्ञ की नाईं १
परमपुनीत संत कोमलचित तिन्हहिं तुमहिं बनिआईं ।
तौ कत विप्र व्याध गणिकहि तारयो कछु रही सगाई २
काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे ।
सोइ कछु करहु हरहु ममता मम फिरहुँ न तुमहिं बिसारे ३
जो तुम तजहु भजौं न आन प्रभु यह प्रमान पन मोरे ।
मन वच कर्म नरक सुर पुर जहँ तहँ रघुबीर निहोरे ४
यद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई ।
तुलसिदास सीदत निशि दिन देखत तुम्हारि निठुराई ५

टी० । हे केशव, भगवन्! जगत् के भरण पोषण कारेहौ अब मेरे हेतु कौन कारण भया जो गोसाईं अर्थात् जीवमात्रके स्वामी सुजान शरणपालहैंके अब कौन अपराधमें असाधु जानि अर्थात् कौन विमुखता पापकर्म मैंने किया जाते दुष्टजानि मोको अज्ञ की नाईं तज्यो भाव शील सुजानता छांड़ि कुशीले अजान बनि काहेते मोको त्याग करतेहौ १ जो कहौ कि तैं अपावन है दुष्ट कठोर चित्त है त्यहिते तोको त्यागते हैं तू हमारी शरणयोग्य नहीं है तापर सुनिये जो परमपुनीत अत्यन्त पवित्र कोमल चित्तवाले जे सन्त हैं तिनहीते तुमते बनिआई अर्थात् उत्तमे साधुन को अपनावतेहौ तौ विप्र अजामिल महाखल पापी रहा पुनः व्याध वाल्मीकि ऐसा

कठोरचित्त को दुष्ट रहा जाकी हिंसा करि जीविका रही पुनः गणिका महाअपावन पापमय रही तिनको कत काहेको तारयो इनते कछु सगाई नातेदारी रही भाव यथा उनको तारयो तैसेही कृपा करि मोहूंको तारो २ पल, दण्ड, लग्न, करण, योग, नक्षत्र, दिन, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्, युगादि जो शुभाशुभ कर्ता सबको भक्षणहार काल है पुनः परधन परध्यान परहानि चाह नास्तिकता ये तीनि मानसीकर्म हैं कठोर झूंठ परदोष वेप्रयोजन बकना ये चारि वचनके कर्म हैं चोरी हिंसा परस्त्रीरत ये तीनि देहके कर्म हैं ये दश असत्कर्म हैं यथा मनुस्मृतौ ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः । असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानता । परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ पुनः शुभकर्म अर्थपंचकं ॥ यज्ञो दानं तपो होमं व्रतं स्वाध्यायसंयमः । संध्योपास्तिर्जपः स्नानं पुण्यदेशाटनालयम् ॥ चान्द्रायणाद्युपवासश्चातुर्मास्यादिकानि च । फल मूलाशनश्चैव समाराधनतर्पणम् ॥ इत्यादि शुभाशुभ कर्मानुसार देहधरि जीव सुख दुःख भोगता हैं पुनः जीवकी गति मुक्ति होना अगति नरकादि जाना इत्यादि हे हरि, श्रीरघुनाथजी ! काल कर्म जीवकी गति अगति सब आपही के हाथ है भाव दुर्गति होनेवाले जीवनको काल कर्मको प्रभाव मेटि शुभगति करि देतेहौ यथा विप्रको बालक अकालमृत्यु मरा ताको जियाइ दिहेउ पुनः रावण तपस्यादि ऐसे सबल कर्म किहे रहा जाके निकट कालौ नहीं जाइसका रहै तिन कर्मनको नाशकरि रावणको कालवश कीन्हेउ पुनः वाके पापकर्म ऐसे सबल रहैं जाते कल्पान्तन नरक में सांसति पावता तिन कर्मनको मेटि वाको मुक्ति कीन्हेउ पुनः केवट कोलादिके पापकर्म मेटेउ जटायुके पापकर्म मेटि सबके देखत मुक्त कीन्हेउ ऐसा ऐश्वर्यप्रभाव आपको है तहां मैं कलिकालग्रसित यद्यपि महापापी हौं परन्तु आपकी शरण हौं ताते अपनी ऐश्वर्य विरदावली सँभारि कृपा करि सोई कछु करौ जामें मम कहे मेरी ममता हरहु जाते तुमहिं बिसारि न फिरहुँ भाव जो संसारैको सत्य जानि देहाभिमानते देहसंबंधिनमें अपनपौ मानि प्रीति किहे आपुको बिसारे देहसुखसाधन में परा लोकमें भ्रमत फिरत हौं सो लौकिकसंबंधिनमें जो मेरी ममता ठौर ठौर लगी है ताको हरिलेउ एकै दृढ़ सनेह अपनामें लगाइ लेउ जामें मेरा मन सदा आपुके पदारविंदनमें लगारहै सो कीजै ३ जो तुम तजहु हे श्रीरघुनाथजी ! जो आपु मोको त्याग करोगे न शरणमें राखोगे तबहूं सुर, मुनि, नर, नागादि आन दूसरे प्रभुको मैं नहीं सेवन भजन करौंगो केवल एक आपहीको भजिहौं यह मोरे प्रमाण पन है अर्थात् सांची प्रतिज्ञा किहेहौं यथा दो० ॥ बनै तौ रघुवरसे बनै जो बिगरै भरिपूरि । तुलसी औरनते बनै ताबनिबेमें धूरि ॥ इति प्रमाणप्रण है ताते जो दूसरो भरोसै नहीं एक आपहीको भरोसा है तौ चहौं नरक में रहौं चहौं सुरपुर देवलोकमें रहौं भाव चहौं दुःख पावौं चहौं सुख पावौं तामें दूसरेकी कर्त्तव्यता कछु न मानौंगो कि नरक में यमराज दुःख देते हैं वा देवलोकमें इंद्रादि सुख देतेहैं सो न मानिहौं एक यही मन वचन कर्म करिके निश्चय किहेहौं नरक स्वर्गादि जो कछु दुःख सुख होवै सो एक रघुनाथै

जीके निहोरे है अर्थात् जब कोऊ पूछैगो कि तू कौन है तब कहौंगो कि मैं रघुनन्दनको चेरा हौं पुनः जो पूछै कि नरकको कैसे आया तब कहौंगो कि रामरजायते इत्यादि जो कछु नाम कुनाम होइ सो आपही को होइगो ४ हे नाथ! यद्यपि करिकै जो मैं आपुते वार्त्ता करतहौं अस वार्त्ता स्वामीके सन्मुख उचित नहीं होत काहेते मैं गुलाम हौं कै प्रभुसों ढिठाई करत हौं अथवा हे नाथ! यद्यपि ऐसी वार्त्ता उचित नहीं है परंतु कारणपाइकै सेवक स्वामीसों असवार्त्ता होती भी है यथा कृष्णप्रण किये कि हम महाभारतमें अस्त्र न लेइँगे तापर भीष्मपितामह कहे कि हम हठिते अस्त्र उठवाइ लेइँगे तथा जब देवनके सहायहेतु भगवान् बलि के सन्मुख आये तब प्रह्लाद अस्त्र ले भगवान् ते युद्ध करनेको खड़े भये तब भगवान् लौटिगये तब वामनह्वै आइ भीख मांगे तैसेही महूं प्रभुसों ढिठाई करत हौं काहेते रघुवंशनाथ सुलभ उदार करुणामय कोमल शील स्वभाव सदा अधमनको उद्धार करत आये अब मैं सभीत ह्वै शरण आयों सो शरणते त्याग करते हौ इत्यादि आपकी निठुराई देखत संते तुलसीदास निशि रातिउदिन सीदत अत्यन्त दुःखपीड़ित होत त्यहि शोकते ढीठे वचन कहत हौं ५॥

(११४)माधव अब न द्रवहु केहि लेखे।

प्रणतपाल प्रण तोर मोर प्रण जिअउँ कमलपद देखे १
जब लगि मैं न दीन दयालु तैं मैं न दास तैं स्वामी।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं यद्यपि अन्तर्यामी २
तैं उदार मैं कृपण पतित मैं तैं पुनीत श्रुति गावै।
बहुत नात रघुनाथ तोहिं मोहिं अब न तजे बनिआवै ३
जनक जननि गुरु बन्धु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी।
द्वैतरूप तम कूप परौं नहिं अस कछु यतन विचारी ४
सुन अदभ्रकरुणा वारिजलोचन मोचन भयभारी।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकाश बिन संशय टरत न टारी ५

टी०। हे माधव! अब कयहि लेखे द्रवत नहीं हौ भाव हे श्रीरघुनाथजी! अब कौन हिसाबते मोपर करुणा दया नहीं करते हौ सो आप कहौ नातरु मेरी सुनो हे प्रभु! आपुको तो प्रण है प्रणतपाल अर्थात् एकहू बार प्रणाम करि कहै कि मैं शरण हौं ताको सर्वभूतनते अभय करिदेउ यह प्रण आपको है यथा वाल्मीकीये॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ यह तौ प्रण आपको है पुनः मेरा प्रण यह है कि आपके पदकमल देखेते जियौं भाव चरण शरणागती मेरे जीवन की आधार है तो अब कौने लेखेते शरण में नहीं राखते हौ क्या आपकी प्रतिज्ञाते मेरी प्रतिज्ञा में मिजा नहीं बैठती है जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते हौ १ पुनः कल्पान्तनते भ्रमत फिरत आयों सो जबलग मैं दीन नहीं भयौं अरु आपको दयालु करि नहीं जान्यों पुनः जबलगि

मैं दास नहीं भयों अरु आपको स्वामी करि नहीं जान्यों तबलगि नीनिउँ तापै जरा मरणादि जो कछु दुःख परा सो सब सह्यों परन्तु आपते कबहूँ नहीं कह्यों भाव जो आपते कहतूं तौ कैसे दुःखी रहतूं अर्थात् आपते कहे कोऊ कबहूं दुःखी रहा नहीं है इस अनुमानते सूचित होत कि पूर्व आपते कबहूं नहीं कह्यो यद्यपि आप अन्तर्यामीरूप ते चराचर में व्यापक हौ ताते सबहीको दुःख सुख जानते हौ परन्तु मैं तौ कबहूं नहीं कह्यों अब आपको कैसे कहत हौं २ कैसे आपको हौं कहतो आप प्रणतपाल मैं शरणागत आपु दीनदयालु मैं दीन आपु स्वामी मैं दास पुनः आपु उदार याचकमात्र को परिपूर्ण दान देते हौ अरु मैं कृपण कंगाल ह्वै याचना करता हौं पुनः मैं पतित हौं अरु आपु पुनीत पतितन को पावनकर्त्ता हौ इत्यादि हे श्रीरघुनाथजी! तोहिं म्वहिं आपसों मोसों बहुत नात हैं सो मेरे मानि लेनेते नहीं हैं यह जीव ईश्वरके अनेक सम्बन्ध हैं सो अनादि कालते चले आवत हैं ताको श्रुति गावै वेद बखान करि रहा है यथा ॥ रामानुजमन्त्रार्थे ॥ रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधिर्मकारार्थो जीवः सकलविधिकैङ्कर्यनिपुणः। तयोर्मध्याकारो युगलमथ सम्बन्धमनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगममुसारोयमतुलः ॥ तत् यथा शेषशेषीभावं पितापुत्रभावं भार्यास्वामिभावं नियम्यनियामिकभावं आधाराधेयभावं सेवकसेव्यभावं शरीरशरीरीभावं धर्म्मधर्म्मीभावं रक्ष्यरक्षकभावं प्रकाशप्रकाशीभावं अंशअंशीभावं इत्यादयो अनेकः सो अपने सम्बन्ध यावत मैं भूलारहेउँ तावत् आपको त्याग बनि परत रहै अब अपने सम्बन्ध जानि आपके शरण आयों ताते अब जो मोको त्याग करौगे तौ न बनिआवैगो भाव विरदावली में दागु लागिजाई ताते शरण में राखिये ३ काहेते शरण में राखिये मेरे जनक पिता जननी माता गुरु बन्धु जो भाई सुहृद् जो मित्र पति स्वामी इत्यादि यावत् सम्बन्ध हैं सो सब प्रकारते हितकार आपही हौ मेरे हितकर्त्ता दूसरा कोऊ नहीं है एक आपही हौ तहां अद्वैतरूप तौ किसी भांति सिद्ध है नहीं सका है काहेते बिना ईश्वरकी कृपा भये जीवबुद्धि तौ मिटै न कपीं क्योंकि सनकादिते अधिक अद्वैतवादी कोऊ नहीं तिनहूंके वे द्वारद्वारपे जय विजय पर कोप है आत्मा तब आत्मबुद्धि कहां रही इसीते सनकादि सदा हरियश श्रवण करते हैं ताते जो काकभुशुण्डि को वचन है यथा दोहा ॥ सेवकसेव्यभाव बिनु, भव न तरिय उरगारि। भजिय रामपदपंकज, यह सिद्धान्त विचारि ॥ इत्यादि सेवक सेव्य जो भाव है यही द्वैतरूप भवसागर तरिबेको सुगम उपाय है तहां जो देहाभिमानी है इन्द्रिय विषयसुखमें भूलि जीव भवसागरमें परत तथा जे इन्द्रिय विषय सुख लौकिक सम्बन्ध सुख त्यागि प्रभु की दिशि मन लगावत ते भवसागर में नहीं परत हैं सो हरिकृपा साध्य है इत्यादि कहत कि हे प्रभु! सेवकसेव्यभाव यह जो द्वैतरूप है सो जामें भवकूप में न परै सो विचारिकै कछु यत्न कीजिये भाव बरबश इन्द्रिय विषयनते मन खैंचि अपनी दिशि लगाये रहिये यह आपकी कृपते है सका है जीव की गति नहीं है ४ काहेते जीवकी गति नहीं है सो सुनिये हे अदभ्रकरुणा! यथा दोहा ॥ सेवकदुखते दुखित ह्वै स्वामि विकल ह्वै जाइ। दुखहरि सुख साजै तुरत करुणागुण सो आइ ॥ इति करुणागुण अदभ्रनाम बहुत है आप में यथा ॥ प्रभूतं

प्रचुरं प्राज्यमदभ्रं बहुलं बहुः ॥ इत्यमरः ॥ इतिसमूह करुणा भरे वारिजलोचन कमलनयन कृपारस पूर्ण हौ तातें भवसागर की जो भारी भय है ताको मोचन छोड़ावनहारे आपही हौ भाव जब कामादि पीड़ित सेवकन को दुःखित देखते हौ तब आपुके करुणा आवती है तातें कृपाकटाक्ष करि कामादि बाधा मिटाइ मनको शुद्ध करि अपनी दिशि लगाइलेते हौ जब शुद्धमन आपके स्मरण में लगा तब अन्तस में अपने रूप को प्रकाश करि देतेही तब जीवको अपना पूर्वरूप सूझता है तब यावत् संसारी पदार्थ की सचाई माने है सो सब संशय नाश ह्वैजाती है तब जीव भवबन्धनते छूटिजाता है सोई गोसाईंजी कहत कि हे प्रभु! तव प्रकाश बिनु अर्थात् बिना आपुके रूपको प्रकाश उरमें भये संसार के सचाईकी जो संशय है सो कर्मयोग ज्ञानादि बल करिके किसी की टारी टरती नहीं है यथा भागवते ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः । न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह इत्यादि ५ ॥

(११५)माधव मो समान जग माहीं ।
सबविधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं १
तुम सम हेतु रहित कृपालु आरतहित ईश न त्यागी ।
मैं दुख शोक विकल कृपालु केहि कारण दया न लागी २
नाहिंन कछु अवगुण तुम्हार अपराध मोर मैं माना ।
ज्ञानभवन तनु दियहु नाथ सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ३
वेणु करील श्रीखंड वसंतहि दूषण मृषा लगावै ।
साररहित हत भाग्य सुरभि पल्लव सो कहु कहँ पावै ४
सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि दृढ़ विचार जिय मोरे ।
तुलसिदास प्रभु मोहशृङ्खला छुटिहि तुम्हारे छोरे ५

टी० । हे माधव, भगवन्! अपनी विरदावली पर दृष्टि करो मेरे कर्म न विचारो काहेते मैं कैसाहौं कि पूर्व सुकृति पुनः वर्तमान सब विधिके साधन आदि करिके हीन पुनः दीन अर्थात् पुरुषार्थरहित पुनः पाप मलभरा मलीन अति इन्द्रिय विषयनमें मनलीन सदा आसक्त ऐसा मेरी समान जगमें दूसरा कोऊ नहीं है ऐसा नष्ट एक मही हौं १ यथा मेरी समान मन्दबुद्धिवाला कोऊ नहीं है तैसेही आपुकी समान हेतुरहित कृपालु बेप्रयोजन जीवमात्र को पालनहार आर्त्त जो दुःखित जन तिनके हितकर्ता ऐसे ईश आपुको त्यागि देहसम्बन्ध में मनलगाइ कै मैं दुःख जो रुज पीड़ादि शोक जो हानि वियोग दरिद्रता भयादि इति दुःख शोक करिके विकल शरण है बारबार पुकारत हौं हे कृपालु! कृपागुणमन्दिर हैं कै कयहि कारण ते आपु के दया नहीं लागी भाव मैं तो मायावश मतिमन्द ते आपुको भुला यह कारण है अरु अब मैं शरण हौं तबहूं कृपालु ह्वैके आपु के दया नहीं आवत तौ क्या कारण है २ जो दयालु ह्वैके आप के दया नहीं आवती है ताहूको कारण मैं

जानि लिया यामें आपुको अवगुण कुछ नहीं है सब अपराध मेरही है सो मैं माना शशिधरा क्या अपराध है कि हे नाथ ! ज्ञानभवन तनु अर्थात् भरतखण्ड में मध्यदेश पावनभूमिमें ब्राह्मणकुल मनुष्य तनु ज्ञान को भरा मन्दिर ऐसा तनु आपनेदिया ताहू को पाइ हे प्रभु ! मैं आपको नहीं जाना भाव आपते विमुख है इन्द्रिय विषयन में परि संसारसुख में मन लगाइ अनेकन में अपनपौ मानिलिया यह अपराध है ३ पुनः कौन प्रकार आपको अवगुण नहीं हैं यथा वेणु बांस पुनः करील विना पाता को वृक्ष व्रज में विशेष वाको वन है ये दोऊ क्रम ते श्रीखण्ड जो है चंदन पुनः वसंत ऋतु इनको मृषा वृथाही दूषण लगावें काहेते मलयाचल पर जो चंदन के वृक्ष हैं ताकी सुगन्ध पवनद्वारा लागेते समीप यावत् वृक्ष हैं ते सब सुगन्धित ह्वै जाते हैं एक बांस में सुगन्ध नहीं व्यापत काहे ते साररहित है अर्थात् बकलैमात्र होत अंतर पोपला होता है तौ सुरभी सुगन्ध कहाँ कैसे पावै तामें चन्दन को कौन दोष है तैसेही जिनके उर में रामसनेहरूप सारांश नहीं है तिन पर प्रभु की कृपा कैसे व्यापै तथा वसन्त ऋतुपाइ वन बागादि में यावत् वृक्ष होते हैं ते सब पल्लव लेते हैं एक करील में नहीं पल्लव आवता है काहे ते हतभाग्य भाग्यहीन है अर्थात् वाकी भाग्य में पत्ता ब्रह्मा लिखवै नहीं किये तौ वसंत आये पर पल्लव कहाँ कैसे पावै तामें वसन्त को कौन दूषण है तैसे जो जन्मान्तरते जे सुकृतहीन सदा पापैकर्म करते आये ऐसे अभागिन में रामरङ्ग कैसे व्यापै कथा श्रवणादिकन में उनको मनुइ न लागी तौ रामसनेह कैसे उपजै ताते प्रभु को दोष नहीं है सब जीवे को लाग है ४ पूर्व पाप कर्मन करि कलिकाल के प्रभावकरि इन्द्रिय विषय में मन लागेते कुसंग करि इत्यादि सब प्रकार ते मैं कठिन मेरा स्वभाव कठोर है ताते कल्याण होवे में संदेह रहे परन्तु हरि मृदुल हे श्रीरघुनाथजी ! करुणा, क्षमा, दया, शील, सुलभ, उदारतादि सब प्रकार आपको स्वभाव कोमल है ताते यह विचार मेरे जीवमें दृढ़ पुष्ट करिकै है सो गोसाईंजी कहत हे प्रभु ! मोहरूप शृंखला जंजीर जीवको बन्धन है सो आपहीके छोरे छूटी भाव अन्य साधनकरि मोह बन्धन नहीं छूटि सक्ता है केवल आपकी कृपा साध्य है ५ ॥

(११६)माधव मोहफाँस क्यों टूटै ।

बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै १
घृतपूरण कराह अन्तरगत शशि प्रतिविम्ब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाइ कल्पशत औटत नाश न पावै २
तरु कोटर महँ बस विहंग तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय विचारहीन मन शुद्ध होइ नहिं तैसे ३
अन्तर मलिन विषय मन अति तनु पावन करिय पखारे ।
मरइ न उरग अनेक यत्न बल्मीकि विविध विधि मारे ४
तुलसिदास हरि गुरु करुणा विन विमल विवेक न होई ।

बिन विवेक संसार घोरनिधि पार न पावै कोई ५॥

टी० । हे माधव, भगवन् ! मोहरूप फांस जो अन्तर जीवको बन्धनहै सो अन्य साधन उपाइ करि क्योंकर टूटिसक्काहै काहेते बाहेर पूजा जप आदि कोटिन उपाय ऊपरते कीन करौ परन्तु अभिअन्तर ग्रंथि न छूटै अर्थात् जो लोकको सांचा मानै देह संबन्धमें प्रीति किहे इंद्रिय विषय सुखमें मन फँसाहै सो कैसे छूटि सकत है ऊपरके साधन कीन्हेते १ कौन भांति नहीं छूटि सकत यथा कराह में घृत पूर्ण भराहै ताके अंतर्गत भीतर शशि चंद्रमा अथवा प्रतिबिंब देखावत है ताके जराइ देबे हेतु नीचे चूल्हा में अनल अग्नि बारि ईंधन लगावत सन्ते शत सौकल्पै बीति जाइँ या भांति औटत सन्ते नाश न पावै वह चंद्रप्रतिबिंब जरि नहीं सक्ता है तथा देहरूप कराहमें मनादि अंतःकरण घृतवत् पूर्णतामें कारण मायाचंद्र ताकी प्रतिबिंबवत् जो आत्मदृष्टि भुलाइ जीवत्व कीन्हे है ताके नाशहेतु योग कर्मादि साधन अग्नि जराइ पूजा पाठ जप यम नियमादि ईंधन लाइ या कर्म औटत कल्पांतन लौं जीवबुद्धि न नाश होइगी २ पुनः यथा तरुकोटर वृक्षके विवर में विहंग पक्षी बसता है ताके मारिबे हेतु जो वृक्ष काटौ तौ पक्षी यथा नहीं मरिसक्ता है भाव जब तुम वृक्षकाटने लगोगे तब पक्षी उड़ा उड़ा फिरैगा ताते जब ऐसा विचार करौ कि विवरके भीतरही वाको पकरि स्वाधीन करौ तब तुम्हारे वशमें होइगो तथा देहरूप वृक्षके कोटर में मनरूप विहंग बसता है ताके मारिबे हेतु अन्तरको विवेक विचारहीन कर्मयोग ज्ञानादि के साधन यथा जप, तप, यम, नियम, शम, दमादि करि देहको क्लेश देतसन्ते मन शुद्ध नहीं होता है अर्थात् देह ते साधन कीनकरौगे अंतर मन विषयनमें धावा करैगा सो कैसे शुद्ध ह्वै सक्ता है ३ काहेते शुद्ध नहीं ह्वै सक्ता है कि श्रवणद्वारा राग तान विषयवार्ता सुनिबेमें धावत नेत्र द्वारा परस्त्री आदि के सुंदर रूप देखैमें धावत रसनाद्वारा षट्रस भोजनमें धावत त्वचाद्वारा कोमलवसन शय्यादि स्पर्श में धावत नासिकाद्वारा सुगन्धमें धावत लिङ्गद्वारा मैथुनमें धावत इत्यादि मन तौ विषयनमें अत्यन्त आसक्त रहत ताते पाप मल करिकै अंतर तौ मलीन ह्वैरहा है अरु तनु पखारेते पावन करिये अर्थात् देह धोयेते अंतर पवित्र कीन चाहत सो कबहूं पावन न होई श्रम वृथा है कौन भांति यथा बिलके अंतर सर्प बैठा है ताके मारिबे हेतु लाठी दंड बरछी आदि विविध अनेक भांति की यत्न करि ऊपर बल्मीक जोहै बिबौर अर्थात् देवार भूमि के अंतर खोदि ठौर करिदेती है ऊपर माटीको भिडबांधि देती है ताको मारनेते भीतर बैठा उरग जो सर्प सो नहीं मरिसक्ता है तथा देह क्लेशते मन पर चोट नहीं आवती है ४ फिर कैसे मन शुद्ध होई तापर गोसाईंजी कहत कि विना हरि गुरु करुणा विमल विवेक नहीं होताहै अर्थात् जब जीव दीन ह्वै सद्गुरु की शरण होइ गुरुकृपा करि उपदेश करि प्रभुकी सन्मुख करै तब आर्त ह्वै शरण होवै ताको दुःखित देखि प्रभुके करुणा आवै विषय कामादि शत्रुनको रोकि मन अपनामें लगावै तब अमल विवेक होइ संसार असार हरिरूप सारांश देखै तब भवसागरको पार होइ अरु विना विवेक भये संसाररूप घोरानिधि भयंकर समुद्र ताको कोऊ पार नहीं पाइ सकत है ५ ॥

(११७)माधव अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जबलगि करहु न दाया१
सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दशा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिन मोह जनित भव दारुण विपति सतावै २
ब्रह्मपियूष मधुर शीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृग जलरूप विषय कारण निशि वासर धावै ३
जेहि के भवन विमल चिन्तामणि सो कत कांच बटोरै।
सपने परवश पर्यो जागि देखत केहि जाय निहोरै ४
ज्ञान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ५

टी०। हे माधव, भगवन्! आपकी यह जो माया है सो ऐसी अपार है कि जाके पारजावे हेतु कर्म योग ज्ञानादि अनेक उपाइनमें परिश्रम करि पचि मरिये श्रमकरि करि मरेजाइयत है परन्तु हे प्रभु! जबलग आप दया नहीं करतेहौ तबलगि माया को तरि नहीं सकियत है पार पावना दुर्घट है १ काहेते दुर्घट है कि वेद शास्त्रद्वारा सुनियत है कि जीव माया के वश में परि भवसागर को जाता है ताको गुनियत है लेखा लगाइयत है यथा आत्मरूप कारण माया ते भूलि जीव-बुद्धि भई पुनः त्रिगुणात्म अहंकार भया तामें सात्त्विकते दिशादि देवता भये राज-सते इन्द्रिय भई तामस ते स्थूलरूप पांचौ तत्त्व भये ताने पिंड ब्रह्मांडादि सब रचना हैं सूक्ष्मरूपते शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि इंद्रियनकी विषय भई तिनही के वशपरि जीव विषयी भया सोई भवकी मूल है इनको त्यागि पूर्वरूपको सँभारना सोई क-ल्याण की मूल है इत्यादि गुनौ पुनः जीवते समुझौ पुनः मनादि अन्तःकरण अरु इन्द्रियनको समुझाइयत है अर्थात् समुझ यह कि जो विषयवासना त्यागि पूर्व-रूपको सँभारौं तो मैं सदा आनंदरूपहौं पुनः इन्द्रियनको समुझावौं कि हे श्रवण! विषयवार्ता त्यागि हरियश श्रवण करौ हे नेत्र! परस्त्री त्यागि रामरूप अवलोकन करो हे रसना! हरियश गान करो हे मन! लोकसुखकी वासना त्यागि हरिपद कमलन में लागो इत्यादि समुझावत हौं परन्तु दशा हृदय में नहीं आवती जेहि अनुभव विना रुज वियोग हानि दरिद्रतादि दारुणदुःख पुनः मोह करिकै जनित नाम उत्पन्न भवकी विपति गर्भवास जन्म मरणादि सो जीव को सतावता है वह अनुभवदशा कौन है अर्थात् इन्द्रिय मनादि एकाग्र करि शुद्ध जीव की आत्मवृत्ति सदा अखंड ब्रह्मरूप में लगी रहै यही अनुभवदशा है सोतो रहत नहीं समुझि बूझिकै पुनः विषयसुखमें मन धावा करता है इसीते यह अनुमान में आवत कि विन हरिकी दया भये जीव में शुद्धता नहीं आवत २ काहेते निश्चय होत कि बिना हरिदया जीव शुद्ध नहीं होत कि घटघटव्यापक ब्रह्मजीवके समीपहीहै पुनः पियूष अमृत तुल्य जीवको अचल अमरकर्त्ता पुनः मधुर मीठी स्वाद पुनः शीतल ताप-हारक है सो ब्रह्म अमृतरस ताको जोपै हर्षसहित मन पावै अमृतरस को पान करै

तौ सूर्यकिरणि झूठा मृगाको भ्रममात्र जलकैसो रूप विषयसुख वृथा ताके कारण निशिवासर रातिउ दिन कत धावै अर्थात् जो सांचे ब्रह्मसुखकी स्वाद पावत तौ काहे को झूठे विषयसुख हेतु सदा मन धावाकरता इस विचारते जीव की स्वयं-शक्ति नहीं है ईश्वर के आधीन जीवकी गति है ३ काहेते जीवकी स्वयंशक्ति नहीं है सो कहत कि जाके भवन जिस जनके मंदिर विषे विमल चिन्तामणि है अर्थात् मलबाधा रहित स्वयं सहज प्रकाशमान तमहारक पुनः मनचिंतित फलदायक दरिद्रहर्त्ता ऐसी चिन्तामणि पाइ जो जीवको स्वयंशक्ति होती तौ मणि के गुण विचारि संतोष न करिलेता सो कत कांच बटोरै अर्थात् जो ब्रह्मरूप चिन्तामणि को जानिवे की शक्ति होती तौ विषयसुख कांच के झूठे नगनपर क्यों मन लगावता यह केवल जीवकी भ्रम है कौनभांति यथा कोऊ सपने में शत्रु आदि के बन्धन में परवश पस्यो ताते छूटनेहेतु अनेकनते निहोरा करत पुनः जब जागिकै देख्यो कि यह तौ झूंठही बन्धन है इस बोधते फिर किसको निहोरा जाइ करै तैसेही मोह-रूप निद्रा में जीवको सपनेकैसी भ्रम संसार को सांचा माने बन्धन में परा जब विवेकरूप जीव जागा तब संसारबन्धन झूठा देखात सो विना हरिकृपा स्वयं जीव जागिवे की शक्ति नहीं है ४ यद्यपि करिकै जीवके कल्याणहेतु कर्मयोग ज्ञान भक्ति आदि अनेक साधन हैं ते सब सत्य वेद प्रमाणिक हैं यथा कर्म स्मृत्यादि धर्मशास्त्र ते प्रसिद्ध योगपातञ्जलिते प्रसिद्ध ज्ञान वेदान्तते प्रसिद्ध भक्ति शाण्डिल्य नारद सूत्रनते भागवत पद्मादिपुराण संहिता रामायणते प्रसिद्ध ताते सब सत्य है परंतु सबन में जीवके परिश्रम को काम है अरु कलियुगी जीव महापापी विषयासक्त हरिविमुखनते परिश्रम ह्वै नहीं सक्ता है ताते किसी साधनको भरोसा नहीं है काहेते पापी विमुख जीव अश्रद्धा ते साधन में मनुद न लागी कदाचित् बरवश मन लगौत्री करै तौ विषयासक्त जीवन की जो संसार के सचाई की भ्रम है सो न मिटी तापर गोसाईंजी कहत कि हरिकी कृपाते संसार सचाई की भ्रम मिटि जाती है यथा अजामिल यमन महापापी विषयासक्त विमुख रहे तिन भ्रमते हरिनाम ले शुद्ध ह्वै परमपद पाये पुनः केवट किरात अधम जीव तेऊ प्रभुकी कृपाते तत्कालही शुद्ध भये पुनः जटायू अधमपक्षी प्रभुकी कृपाते तत्कालही शुद्ध भया पुनः रावणादि राक्षस अधम महापापी विमुख तिनहूं प्रभु कृपाते मुक्त भये पुनः अवधवासी चराचर को कृपाकरि परमधाम लेगये इत्यादि प्रसंग सुनिकै मेरे मनमें यह दृढ़ भरोसा है कि कैसहू पतित जीव होइ जापर प्रभु कृपा करैं ताकी तुरतही भ्रम मिटिजाइ तुरतही परमपद को अधिकारी होत ५॥

(११८) हे हरि कवन दोष तोहिं दीजै।

जेहि उपाय सपनेहु दुर्लभ गति सोइ निशि वासर कीजै १

जानत अर्थ अनर्थ रूप तम कूप परब यहिं लागे।

तदपि न तजत श्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे २

भूतद्रोहकृत मोहवश्य हित आपन मैं न विचारा।

मद मत्सर अभिमान ज्ञान रिपु इनमहँ रहनि अपारा ३

वेद पुराण सुनत समुझत रघुनाथ सकल जग व्यापी।
बेधत नहिं श्रीखंड बेणु इव सारहीन मन पापी ४
मैं अपराधसिन्धु करुणाकर जानत अन्तर्यामी।
तुलसिदास भवव्यालग्रसित तव शरण उरगारिपुगामी ५

टी०। अपनी मन्दता की कसरि विचारि कहत कि सब तौ दोष मेरे हैं ताते हे हरि, श्रीरघुनाथजी! आपुको कौन दोष दीजिये भाव जो कृपाको पात्र मैं नहीं होता हौं तौ प्रभु कृपा कैसे करैं कैसे कृपाको पात्र नहीं हौं कि जौने उपायन ते जीव की कुगति सिवाय सुगति होना सपनेहुं में दुर्लभ है सोई निशिवासर कीजै सोई भवसागर जावेको उपाय दिनौराति करते हैं १ क्या कुगतिको उपाय दिनौराति करते हैं कि अर्थ जो जीवकी सुगति अरु अनर्थ जो जीवकी कुगति होना तहां लोक सुखको त्यागि इन्द्रिय विषयन ते विमुख है जो शुद्धमन ईश्वरमें लगावैंगे तौ जीव को कल्याण होइगो पुनः इंद्रिय विषयन द्वारा यहि संसार सुखमें मन लागेते तम अन्धकूप भवसागर में परब जीवकी दुर्गति होइगी इत्यादि अर्थ अरु अनर्थ दोऊ को रूप जानत हौं तदपि न तजत अर्थात् विषय में लागे ते जो दुःख होत सो जानत हौं ताहूपर विषयसुख को मन त्यागत नहीं सदा उसीमें लागरहत कौन भांति ज्यों श्वान अज खर त्यों विषयन में अनुरागे अनुरागते मन लगाये फिरत हौं अर्थात् प्रयोजनमात्र अनुकूल पाइ स्त्रीमें सबै जीव रत होते हैं परन्तु ये तीनि जीव प्रतिकूलता में महादुःखौ सहि स्त्रीके पाछे लगे फिरते हैं अर्थात् कार्त्तिकमें कुत्ता जिस कुत्तीके पाछे जाता है सोऊ काटिखाती है पुनः औरहू कुत्ता काटिखाते हैं अरु जो रतिमें फँसे तौ बालक महादण्ड देते हैं इत्यादि दुःखौ सहत तयौं भूंखा प्यासा कुत्ता कुत्तीके पाछेही धावा करता है तथा परस्त्री सुन्दर देखि मन आसक्त है वाको अवलोकन पुनः सनेहते वार्त्ता करता है अरु वह विमुख है कुवचन कहती है सो सुनि औरहू लोग कुवचन कहते हैं कदापि वाके संग रतभये तब अपमानादि अनेक दण्ड होतेहैं सो सब सहिकै श्वानकी नाईं अनुराग ते मन लगाये परस्त्रिनके पाछे फिरता हौं पुनः छेरीतौ विमुख रहती है अरु अज जो खसी सो वाको मूत्रस्थल सूंघा करता अरु अनुरागते मन लगाये सदा वाके पाछेही फिरता है तथा आपनी स्त्री तौ विमुख रहती है अरु मैं रतिवासनाते अनुराग किहे वाके पाछे फिरता हौं वाके कठोर वचननको दुःख नहीं मानता हौं पुनः गदही तौ लातन मारती है अरु खर जो गदहा वाके मारनेकी चोट सहत ताको नहीं मानत अनुरागते वाके पाछे लागरहत तथा वेश्या स्वाधीन देखि जूतन मारती हैं अरु मैं उस दुःखको सहत अनुरागते उनके पाछे फिरता हौं स्त्रीमें आसक्त भये सब विषय वाहीमें आइजाते हैं यथा श्रवणते कामवार्त्ता नेत्रते वाको रूप देखना जिह्वाते ओठरस पान त्वचाते अंगस्पर्श नासिकाते वाको गन्ध करते कुचमर्दन इत्यादि सब इंद्रियविषय वाही में आईं ता स्त्री में विषयासक्ती कहे २ यथा कामवश सब विषयकी मूल स्त्रीमें आसक्त तथा क्रोधवशते भूतद्रोहकृत सब जीवन सों वैरविरोध किहे रहताहौं अर्थात् विषयसेवनते अनेक कामना बढ़तीहै तामें जोई हानि

करत ताहीते द्रोह करता हौं पुनः क्रोधते मोह उत्पन्न होताहै अर्थात् चैतन्यता नाश ह्वै जाती है त्यहि मोहवश ते आपना हित नहीं विचारता हौं जामें अनहित होत सोई कार्य करता हौं पुनः मद धन विद्यादि पाइ हर्ष बढ़ावना पुनः मत्सर अर्थात् परभला देखि न सहिसकना पुनः अभिमान अर्थात् महत्त्व बड़ाई मानि चित्त ऊंचा करना पुनः ज्ञानके रिपु सबै कामादि हैं परन्तु बुद्धिकी नष्टता विशेषि ज्ञानको शत्रु है इन आचरण में मनकी रहनि लगन अपार बहुत है ३ वेदनमें तथा पुराणादिकन में सुनत ताको समुझत हौं अर्थात् सबको सिद्धान्त यहीहै कि रघुनाथजी सकल जगत् चराचरमें व्यापक हैं ताते न किसी जीवको सतावा चाहिये न किसीते विरोध कीन चाहिये विषमता त्यागि समतादृष्टिते सर्वत्र रामरूप देखा चाहियें इत्यादि दृढ़ विचार बेधत नहीं मेरे अन्तर समात नहीं कौनभांति यथा श्रीखण्डचन्दन मलयाचलपर चन्दन की सुगन्ध सब वृक्षनमें व्यापिजात एक वेणु जो बांस तामें नहीं व्यापत इति श्रीखण्ड वेणुइव अर्थात् चंदन बांसनकी नाईं वेद पुराणनको सिद्धान्त वचन अर्थात् चराचरमें रामरूप व्यापक है यह वचन मेरे उरमें नहीं समात काहेते बांसकी नाईं मेरा मन पापी सारांश हीनहै ताते नहीं व्यापताहै ४ काम करिकै विषयासक्त क्रोध करि भूतद्रोही मोहकरि अज्ञ निर्बुद्धी विवेक विचार-हीन इत्यादि में तौ अपराधरूप जलभरा समुद्र हौं हे करुणाकर ! अर्थात् सेवकके दुःखमें दुःखी ह्वै शीघ्रही मिटावनेवाले इति करुणागुणके आकरखानि आप अन्त-र्यामीहौ भाव सबके अन्तर की जानते हौ अर्थात् मेरे अपराधै सब जानते हौ पुनः गोसाईंजी प्रार्थना करत कि हे उरगारिपुगामी ! अर्थात् उरग सर्प ताके रिपु नाशकर्त्ता जो गरुड़ तापर चढ़ि गमन करनेवाले भावआपुको वाहनै सर्पनको नाश-कर्त्ताहै अरु मैं भवव्यालग्रसित अर्थात् संसाररूपसर्प मोको लीले जातहै ताके रक्षा हेतु तव शरण आपुकी शरणागत ह्वै पुकारता हौं करुणा करि मेरी रक्षा करौ ५ ॥

(११९) हे हरि कवन यतन सुख मानहुँ ।

ज्यों गजदशन तथा मम करणी सब प्रकार तुम जानहु १
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय बच्छपद जैसे ।
रहनि आन विधि करिय आन हरिपद सुख पाइय कैसे २
देखत चारु मयूरवचन शुभ बोल सुधा इव सानी ।
सविष उरग आहार निठुर अस यह करनी वह बानी ३
अखिलजीववत्सल निर्मत्सर चरणकमल अनुरागी ।
ते तव प्रिय रघुवीर धीरमति अतिशय निज पर त्यागी ४
यद्यपि मम अवगुण अपार संसारयोग रघुराया ।
तुलसिदास निजगुण विचारि करुणानिधान करु दाया ५

टी० । हे हरि, श्रीरघुनाथजी! कौन यत्न करि सुख मानौं सुखी होउँ भाव उपाय तौ सब दुःख के कर्त्ता हैं तो कैसे सुखी होउँगो काहेते ज्यों गजदशन अर्थात् हाथीके दांत यथा देखनेमात्र हैं उन करिकै चारा पागुरि आदि कछु कार्य नहीं

हैसक्ता हैं तथा ममकरणी अर्थात् वेष आचार सुमिरण ध्यानादि सब कर्त्तव्यता मेरी ऊपरहीते देखाउमात्र हैं भीतर एकहू नहीं विशेष कुटिलताभरी भाव यथा गजदन्त देखावनेको और खानेको और तथा मैं देखावनेको रामगुलाम बनाहौं अरु अंतरते विषयकामादिकनको गुलाम हौं इत्यादि सब प्रकारके मेरे आचरण आपु जानतेहौ क्योंकि अन्तर्यामीरूपते सबके अंतर बसेहौ तौ आपुते क्या कहना जरूर है १ जो कछु वचन मुखते कहिये सोई अंतर सांचेभावते कर्त्तव्यता करिये तौ यथा बछुवाके पदचिह्नमें भरा जल पार जावेको सुगम होत तैसेही भवसागर तरिये बेपरिश्रम अर्थात् यथा वेष बनाय झूठा प्रेम दर्शाय सुधर्म कर्म ज्ञान विरागसहित उपासक बनि नवधा प्रेमापरादि भक्तिकी वार्त्ता करत हौं तैसेही सांची जो कर्त्तव्यता करौं तौ भवसागर तरि जाना सुगम है परंतु रहनि आनविधि भाव देखाव में रीति रहस्य और भांतिकी है पुनः करिय आन भाव अंतरवासनाते कर्म औरही विधिके करते हैं अर्थात् वेषते साधु अन्तरते कुटिलवचन कोमलमन कठोरमुख सों वैराग्य अन्तर में लोभ मुखते ज्ञान अन्तर अज्ञानवार्त्ता भक्तिकी कर्म चोरी ठगी परहानि परस्त्रीरत इतिरहनि और विधि करणी और विधि त्यहि करिके हरिपदप्राप्तिको सुख कैसे पाइये अर्थात् नहीं मिलिसक्ता है २ कैसे मेरी रहनि करणी और और भांति हैं यथा मयूर देखत में चारु सुन्दर स्वरूप मांगलिक पुनः सुधाइव सानि अर्थात् अमृत समसानि वचन शुभ मङ्गलमय बोलता है इत्यादि वेष वचन तौ मधुर है पुनः सविष उरग आहार अर्थात् सर्पविषे कराल विष होता है त्यहि विषसहित सर्पको खाइ जाता है ऐसा निठुर कठोर हृदयको है जामें विष भरा सर्प पचाइ जाता है यह तौ कठोर करणी अरु वह कोमलवाणी है तैसे मेरा वचन तौ मधुर अरु विषयरूप विषभरा संसारसुखरूप सर्पको खाइ पचाइ जाता हौं ऐसा हृदय को कठोर मैंहौं ३ पुनः आपकी शरण योग्य कैसे जनः होतेहैं जे अखिलजीववत्सल समग्र जीवनपर दया राखते हैं पुनः निर्मत्सर अर्थात् परहित देखि न सकना इति मत्सर त्यहि करिके रहित भाव सबको भला चाहते हैं पुनः निज परत्यागी अर्थात् न किसी को अपना मानि प्रीति करैं न किसी को पराए मानि उदासीन रहैं सबमें समदृष्टि राखते हैं मतिके धीर्यमान भाव काम क्रोधके वेग में जिनको मन नहीं परताहै पुनः आपके चरणकमलनके अनुरागी ते तव प्रिय हे रघुनाथजी! ऐसे जन आपको प्यारेहैं तिनकी प्रतिकूल मैंहौं तौ कैसे आपको प्रिय होउँ ४ यद्यपि मम मेरे अवगुण अपार हैं संख्याकरि पार कोऊ नहीं पाइ सक्ताहै ताते संसार चौरासी भोगिवे योग्य हौं उद्धार करिवे योग्य नहीं हौं यह मेरे कर्मनकी बात है हे रघुनाथजी! आप करुणानिधान हौ सेवक को दुःख नहीं देखिसक्तेहौ इति निज आपने गुण विचारि पतितपावनतादि विरद सँभारि तुलसीदास पतितपर दया करहु भवभय मेटहु ५॥

(१२०) हे हरि कवन यतन भ्रम भागै।

देखत सुनत विचारत यह मन निज स्वभाव नहिं त्यागै १
भक्ति ज्ञान वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई

कोउ भल कहहु देउ कछु कोउ अस वासना हृदयते न जाई २
जेहि निशि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै।
निज करनी विपरीत देखि मोहिं समुझि महाभय लागै ३
यद्यपि भग्नमनोरथ विधिवश सुख इच्छित दुख पावै।
चित्रकार करहीन यथा स्वारथ विन चित्र बनावै ४
हृषीकेश सुनि नाम जाउँ बलि अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इंद्रियसंभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे ५

टी०। यथा सर्पकी सँचाईते अँधेरे में रसरी परी ताहूमें सर्पकी भ्रम होती है तथा ईश्वर सांचा ताकी सत्यता ते मोह अन्धकारते झूंठे संसारमें सांचेको भ्रम होता है सो कहत हे हरि, श्रीरघुनाथजी! कवन यत्न करिये जामें भ्रम भागै संसारकी सँचाई मिटै सो मिटती नहीं है काहेते संसारकी ऐश्वर्य बादर कैसी छांह होतजात विलम्ब नहीं अथवा सब ऐश्वर्य वनोहैं जब मरिगये सब जहांको तहँ रहो इत्यादि देखत हौं पुनः पुराणनमें सुनत हौं कि हिरण्यकशिपु रावणादि अचल है बैठे तेऊ क्षणै में नाश भये औरकी कौन गनती पुनः विचारत हौं कि एकदिन संसारै न रहिंजाई तामें सँचाई मानना वृथा हैं इति देखत सुनत विचारती सन्ते विषयासक्त मन निज आपना स्वभाव लोलुपता चञ्चलता नहीं त्यागता है १ भक्ति के साधन यथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि ज्ञान के साधन यथा विराग, विवेक, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुता इत्यादि सकल साधन यहि लागि यहि मनके शुद्धता हेतु अनेक उपाय करियत है ताहूपर मनकी चाह यही बनी रहती है कि कोऊ भल कहहु अर्थात् ज्ञानभक्ति आदि मेरे आचरण देखि लोग मेरी प्रशंसा करैं कि बड़ा महात्मा सज्जन है पुनः सज्जनजानि लोग मोको कोऊ कछु देउ अर्थात् मोको सब पूजा चढ़ावैं ऐसी वासना हृदयते नहीं जाती है अर्थात् मान बड़ाई तथा लोभ यथा पूजा पावनेकी कामना ये मनोरथ सदा बनें रहते हैं किसी भांति नहीं मिटत तौ भ्रम कैसे जाई २ ज्यहिनिशि जौनी अविद्यारूप रात्रिमें सकल जीव मोहरूप निद्रावश सोवते हैं अर्थात् पूर्व आत्मरूपकी सुधि भूलिगई सपने कैसो सुख दुःख लोकव्यवहार को सांचा माने हैं यही सोवनाहै पुनः हे प्रभो! जे आपुके कृपापात्र जन हैं ते जागते हैं अर्थात् जिनपर आपु कृपाकरि पूर्वरूप को बोध कराइ दिहेउ ते चैतन्य है लोकसुख स्वप्नवत् वृथा जानि सदा प्रभुपद में अनुराग किहे रहते हैं अर्थात् विषयवश लोकसुख में न भूलना यही जागना है तामें कृपापात्र कहवे को भाव कि विना प्रभुकी कृपाभये स्वयंसाधन करि जीव नहीं जागि सक्ता है तहां जे कृपापात्र जन जागते हैं तिनकी जो करणी रीति रहस्य होती है त्यहिते प्रतिकूल उलटी निज आपनी करणी देखता हौं अर्थात् कृपापात्र जन इन्द्रिय विषयनते विमुख लोकसुख त्यागि प्रभुपद में अनुरागी रहते हैं अरु मैं प्रभुते विमुख है इन्द्रिय विषयन में मन आसक्त संसारी सुख में परा हौं इति आपने आचरण देखि ताको फल चौरासी भोग सो समुझि मोको महाभय डर लागत है ३ यद्यपि

करिकै मन में यावत् मनोरथ उठते हैं ते विधिवश विधाता के लिखे अनुकूल तौ होता है अधिक मनोरथ भग्ननाम नाश होते हैं ताते मन तौ सुख होने की इच्छा करता है ताही में दुःख पावता है अर्थात् जो कमाता है सोई खाता है तहां सत्कर्म तौ होतही नहीं कदापि कछु भया तौ राजस तामस मिला ताको अल्पफल सोऊ सवासिक है वाको फल पूर्वहीं लै लीन्हे ताते सुकृत तौ रहो नहीं अरु पापकर्म जन्मान्तर ते करतआये ताहीको फल दुःख ब्रह्माने लिखिदिया इत्यादि दुःख की मूल जो पापकर्म्मनमें रुचि सोतौ स्वाभाविकही मन किया करता है पुनः सुख की मूल सुकृति में रुचि सोतौ करता नहीं अरु सुख होनेकी इच्छा करताहै सोतौ भाग्य में है नहीं कैसे होइ पापनको फल भाग्य में है सोई दुःख होता है इति मनोरथ यद्यपि नाश होते हैं परन्तु नतौ सुख के साधन करै अरु न सुखको मनोरथ त्यागै यह मनकी एक अद्भुतगति है कौनभांति यथा करहीन विना हाथों को चित्रकार विना स्वार्थ चित्र वनावै अर्थात् पूर्व चित्रकारी करि जीविका स्वार्थ होतारहा पाछे रुजादि कारणते हाथ बेकाम ह्वैगये अथवा हाथ बने हैं परन्तु म्वटमर्दी करि आलस अश्रद्धा करि काम नहीं करता है सोऊ विना हाथने कोहै इत्यादि तहां जो हाथन ते चित्र वनावै तौ जीविका स्वार्थ है अरु विना हाथोंको चित्रकार मनते वा वचनमात्र अनेकन चित्र वनावै सो बेप्रयोजनहै तथा म्वटमर्दी आलस अश्रद्धा करि मनते सत्कर्म तौ होता नहीं जाते सुख स्वार्थ होवे बेप्रयोजन सुखको मनोरथ करता है ४ हिरण्यगर्भ हृषीकेश ये रघुनन्दन के राशि के नाम हैं काहेते पुनर्वसु चौथे चरणको जन्म है सो होडाचक्रानुसार करिकै के कोहाही पुनर्वसु इति हकाराक्षरे इकारस्वरते हिरण्यगर्भ वर्णपर्यायते हृषीकेश इति राशिको नाम है सो सुनि वलिजाउँ भाव इस नामपर अपनपौ वारण करताहौं काहेते हृषीकनाम इंद्रिय ताके ईश नाम स्वामी ताको कही हृषीकेश तौ जो इन्द्रियन के स्वामी हौ तौ इन्द्री आपु की आज्ञापाल होइँगी यह अत्यन्त करिकै भरोसा मेरे जीव में है काहेते तुलसीदासको इन्द्रियसम्भव दुःख है अर्थात् इन्द्रियविषय में मन आसक्तहै अनेक पापकर्म करत ताहीको फल दुःख उत्पन्न होत जो आपु रोकिदेउ तौ इन्द्रियविषय त्यागिदेवैं तव मन स्थिर है आपु में लागै इत्यादि हे प्रभो! यह दुःख आपुहीके हरे वनी भाव समर्थ आपुही हौ ५॥

(१२१) हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।

यद्यपि मृषा सत्य भासै जवलगि नहिं कृपा तुम्हारी १
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
विन वांधे निज हठ शठ परवश पर्यो कीर की नाईं २
सपने व्याधि विविधवाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई।
वैद्य अनेक उपाय करहिं जागे विन पीर न जाई ३
श्रुति गुरु साधु स्मृति संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि विन तजे भजे विन रघुपति विपति सकै को टारी ४

बहु उपाय संसारतरन कहँ विमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसिदास मैं मोर गये बिन जिय सुख कबहुँ न पावै ५

टी०। इंद्रियद्वारा विषयमें मन आसक्त ह्वै झूंठे संसारी सुखको सांचा मानै है ते इंद्रिय आपके आधीन हैं ताते हे हरि, श्रीरघुनाथजी ! झूंठ संसार को सांचा मानै हौं यह जो भारी भ्रम है ताको समर्थ ह्वैकै आप कस नहीं हरिलेते हौ कैसो भ्रम है यथा रसरी अँधेरेमें सर्पवत् भासत तैसेही संसारी व्यवहार यद्यपि मृषा झूंठही है परंतु मोहरूप अंधकार ते सत्य भासत सांचा देखाता है कबलगि जबलगि जीव पर आपकी कृपा नहीं होतीहै भाव जब आप कृपा करौ तबै सब भ्रम मिटिजाइ १ अर्थ जो जीवको स्वार्थ है सो संसार में अविद्यमान भाव नहीं विद्यमान है अर्थात् संसार विषे किसी जीव को स्वार्थ प्रसिद्ध है नहीं काहे ते राज धन धाम स्त्री पुत्र वाहन भूषणादि की निश्चय नहीं कि कछु किसी के अचल रहै पुनः क्षणभंगी शरीर तौ सब वृथा हैं इति निज स्वार्थ किसी को प्रसिद्ध नहीं देखात यह जानियत है ताहूपर हे गोसाईं ! जीवमात्र के पालनहारे यह संसृति जो संसार ताकी सँचाई नहीं जाती है भाव झूंठा देखत हौं तबहूं सांचुइ मानेहौं अरु बिना बांधे अर्थात् किसी ने बांधा नहीं परंतु ऐसा शठ महाअज्ञानी है कि हठवश कीर शुग्गा कीं नाईं परवश पर्यो अर्थात् खेत में दुइ लकड़ी गाड़ि तापर बेंड़ी एक लकड़ी धरि तामें चोंगली पहनि देते हैं तापर आइ शुग्गा बैठा चोंगली घूमिगई शुग्गा उलटा टांगि गया यह जानत मोको कोऊ पकरि लिया तावत् व्याधा पकरि लिया तथा जगत् खेत में शुभाशुभ कर्म द्वै लकड़ी हैं स्वभाव बीच की लकड़ी वासना चोंगली तापर बैठि जीव की वासना घूमि गई तावत् कालफांस में परो इत्यादि हठिकरि शुग्गा की नाईं माया के वश में परो २ पुनः कैसे संसार को भ्रम है यथा कोऊ जन आनन्दसहित सोइ गया ताको सपने में विविध व्याध की बाधा भई अर्थात् प्रथम ज्वर भया तामें शिरपीड़ा खांसी तामें उदरशूल भया पुनः तृषा बढ़ी तामें कछु शीतल वस्तु खाइगया ताते सन्निपात भया इत्यादि बहुती व्याधि बाधाकरि जनु मृत्यु उपस्थित नाम समीप आई भाव मरणकाल आइगया ऐसा रुज बाधा देखात ताके मिटने हेतु वैद्यलोग लेप अंजन त्रिपुरभैरव कालारि ब्रह्मास्त्र इति रस खवावन धूराकरन इत्यादि अनेक उपाय करैं परंतु बिना जागे वह पीर न जाई तथा चैतन्य आत्मरूप मोह निद्रा में सोइ स्वप्नवत् रूप देहाभिमानी भया तहां कामासक्ती वातज्वर भया लोभ कफते धावना सोई खांसी है क्रोधवश ते सब सों वैर शिरपीड़ा है तृष्णा प्यासते परधन परस्त्री आदि शीतल वस्तु ग्रहणते काम क्रोध लोभ तीनिउँ की प्रबलताते बुद्धिनाश रूप सन्निपात भया तहां वैद्य सम आचार्य पुराण कथा श्रवणादि अनेक औषधै करनेते यावत् जीव पूर्वरूप नहीं सँभारत है तावत् दुःख मिटैगो नहीं भाव यावत् लोकव्यवहार सांचा मानै है तावत् कामादि विकारते अनेक असत् कर्म करि दुःख बनै रहैगा ताते बिना पूर्वरूप सँभारे कैसे दुःख मिट सक्ता है ३ पूर्व जो कहा है सो मेरही वचन नहीं है काहेते श्रुति जो चारिउ वेद तिनको सम्मत है स्मृति जो धर्मशास्त्र तिनको सम्मत है पुनः

सब साधुन को सम्मत अरु गुरु को सम्मत है भाव सबके मतते यही सिद्धान्त है कि यह दृश्य देखनेमात्र को जो संसारी पदार्थ है तामें मन लगाये जीवन को सदा दुःखकारी है अनेक दुःख देनहारी है त्यहि दुःखद संसारी पदार्थ को विना तजे अरु शुद्ध है विना रघुनाथजी को भजे को ऐसा समर्थ है जो जन्म मरणादि जीवकी विपत्ति टारिसकै अर्थात् जब मिथ्या जानि संसारी पदार्थ ते मन खैंचि कामादि विकाररहित शुद्धह्वैकै जीव रघुनाथजी को भजै तब जीव को कल्याणहोइ दूसरो उपाय नहींहै यथा सत्योपाख्याने ॥ लोके भवतु चाश्चर्यं जलाज्जन्म घृतस्य च । सिकतायां तु तत्तैलं यत्ने यातु कथंचन ॥ विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते । यूयं धन्या महाभागाः येषां प्रीतिस्तु राघवे ४ जीवनको संसारसागर तारिवे हेतु बहुत उपाय हैं तिन उपायनको विमल गिरा श्रुति गावै भाव शुद्ध-वाणीते वेद बखान करिरहाहै यथा अर्थपंचके ॥ उपायः कथितः कर्मज्ञानभक्ति-प्रपत्तयः । सदाचार्याभिमानश्चेदित्येवं पञ्चधा मताः ॥ तामें स्नान, तर्पण, संध्या, पूजा, पाठ, जप, होम, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, दान, तपस्यादि कर्म हैं विवेक, विराग, शम, दमादि ज्ञानके साधन, श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि, भक्ति इत्यादि अनेकन उपाय वेद कहत हैं विमलवाणीको भाव यह कि जो कछु करै सो वासनारहित निर्विकार ह्वै करै इस हेतु गोसाईंजी कहत मैं मोर गये बिन अर्थात् मैं ब्राह्मण विद्वान् तपस्वी आचार्य जगत्पूज्य हौं पुनः मैं क्षत्रिय वीर नीतिमान् राजा जगत्को स्वामी हौं मैं वैश्य धनी दानी जगको सहायक हौं पुनः धन, धाम, धरणी, स्त्री, पुत्र, परिवारादि मेराहै इत्यादि मैं मोर जो देहाभिमान है ताके विना मिटिगये चहै सो उपाय करै जीव सुख कबहूं न पावैगो भाव लोकव्यवहार त्यागि रघुनाथजी को भजेते जीवको कल्याण होइगो ५ ॥

(१२२) हे हरि यह भ्रम की अधिकाई ।

देखत सुनत कहत समुझत संशय संदेह न जाई १
जो जग मृषा ताप त्रय अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।
कहि न जाइ मृगवारि सत्य भ्रमते दुखहोइ विशेखे २
सुभग सेज सोवत सपने वारिधि बूड़त भय लागै ।
कोटिहु नाव न पार पाव सो जबलगि आपु न जागै ३
अनविचार रमणीय सदा संसार भयङ्कर भारी ।
शम संतोष दया विवेक ते व्यवहारी सुखकारी ४
तुलसिदास सबविधि प्रपंच जग यदपि झूंठ सति गावै ।
रघुपतिभक्ति संतसंगति विनु को भवत्रास नशावै ५

टी० । हे हरि, श्रीरघुनाथजी ! यह जो भ्रम की अधिकाई है सो कैसी दृढ़ है कि देखत हौं कि संसारकी वस्तु आवते जाते विलम्ब नहीं लागती है पुनः पुरा-

गादिते सुनत हौं सो औरनेते कहत हौं पुनः बुद्धिविचार ते समुझत हौं ताहूपर संशय अर्थात् झूंठे संसार में सचाई मानि लेना इति संशय ताहू में संसार सांचा है या झूंठा है यह संदेह किसी भांति नहीं मिटता है १ क्या संदेह होत कि जो जग मृषा अर्थात् जो संसार झूंठा है तौ तापत्रय अर्थात् ज्वर शूलादि दैहिक हैं पुनः हानि वियोग दरिद्रादि दैविक हैं सर्प चौर शत्रु आदि बाधा भौतिक हैं इत्यादि तीनिउ तापैं तिनको अनुभव अर्थात् तापन के दुःख को जीवमें तदाकार होना सो कहौ कपदि लेखेते होताहै अर्थात् जो संसार झूंठा है तौ संसारी सुखते उत्पन्न जो असत्कर्म तिनको फल जो दुःख सो सांचे आत्मरूपमें कैसे व्यापि जाता है अर्थात् जो संसार झूंठाहै तौ सदा चैतन्य एकरस ज्ञान अखण्ड आनन्द आत्मरूप सो पूर्व क्यों संसार में परि तीनिउ तापैं सहता है ताते संसार झूंठा कहि नहीं जात कौन भांति यथा मृगवारि सत्यभ्रम अर्थात् सूर्यन की किरणन में जो लहरी देखाती हैं तामें मृगा को सत्यकरि जलका भ्रम होता है अर्थात् वाको सत्यकरि जल देखात यद्यपि इस भ्रम ते पीछे विशेष दुःख होताहै अर्थात् प्यासते धावत धावत मरण तुल्य दुःख होताहै श्रमवश गिरिजाता है परन्तु किरणन में जलको सत्यता मिटती नहीं तैसेही संसार सत्य भासत २ पुनः कैसो सत्यभ्रम है यथा कोऊ जन सुभगसुंदरी सेजपर आनन्द ते सोवता है परंतु सपने में देखा कि वारिधि समुद्र में मैं बूड़ता हौं त्यहि करिकै अतिभय लागै बूड़िमरने को अत्यन्त डरता है सो जबलगि वह आप न जागैगा तबलगि कोटिन नावन करि कोऊ बचावा चहै तौ सो सपने सिंधु को बूड़नेवाला पार नहीं पावैगा जब जागी तबै भ्रम मिटी तैसे चैतन्यआत्मा मोह निद्रावश स्वप्नवत् देहाभिमानी है भवसागर में बूड़ता सो जबतक पूर्वरूप नहीं सँभारत तबतक कर्म ज्ञानादि अनेक नावन करिकै पार नहीं पाइसक्ता है जब आत्मरूप सँभारी तब आपही संसार स्वप्नवत् देखाई ३ अनविचार रमणीय अर्थात् विना विवेक विचार कीन्हे संसारी पदार्थ सुंदर सुखदायक देखि परते हैं यथा श्रवणन ते कामिनिकी वार्त्ता गानादि सुन्दर लागत नेत्रनतें बाज़ार मेला कौतुक नाच रंग युवती इत्यादि सुन्दर लागत जिह्वाते षट्रस सुन्दर लागत सो विना विचारे सुखद सुन्दरता है अरु विवेक विचार करनेते भारी भयंकर है भाव विषयवश संसारिन सुख में भूलि जीव भवबन्धन में परि गर्भवास जन्म तीनिउ तापैं मरण यमसाँसति आदि कराल दुख पावत है पुनः सभवासना त्यागि संतोष लोभ त्यागि दया जीवमात्र पर राखि विवेक लोकव्यवहार वृथा जानि सारांश हरिरूप को ग्रहण इस आचार ते रहें लोकव्यवहारो सुखकारी है यथा ध्रुव प्रह्लाद अंबरीषादि लोकव्यवहारही में रहे तिनकी कौन हानि भई ४ गोसाईंजी कहत कि जगत् विषे धन, धाम, स्त्री, पुत्र, भोजन, वसन, वाहन, भूषण, गन्ध, गानादि, भोग, सुखादि यावत् मायाको प्रपंच है ताको यद्यपि सब विधिते झूंठा करि वेद गावत हैं सो सब जानते हैं परन्तु ऐसा अगम है कि विना सन्तनकी संगति पुनः विना रघुनाथजी की भक्ति कीन्हे को भवत्रासभय नाश करि सक्ता है ५ ॥

(१२३) मैं हरि साधन करै न जानी।

जस आमय भेषज न कीन्ह तस दोष कहा चरयानी १
सपने नृप कहँ घटै विप्रवध विकल फिरै अघलागे।
वाजिमेध शतकोटि करै नहिं शुद्ध होइ बिनु जागे २
स्रगमहँ सर्प विपुल भयदायक प्रकटहोइ अविचारे।
बहु आयुध धरि बल अनेक करि हारहि मरइ न मारे ३
निज भ्रम ते रविकर संभव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत वोहित नौका चढ़ि कबहूं पार न पावै ४
तुलसिदास जग आपु सहित जबलगि निर्मूल न जाई।
तबलगि कोटि कल्प उपाय करि मरिय तरिय नहिं भाई ५

टी०। हे हरि, श्रीरघुनाथजी! भवनाशहेतु जैसो उपाय वेद कहत तैसे साधन उपाय मैं नहीं करै जाना यथार्थ न ह्वैसके काहेते जस आमय नाम रोग तस भेषज औषध नहीं कीन तौ वर श्रेष्ठ वेद वाणी को कैसे दोष दीजिये अर्थात् तत्काली वातज्वर सोंठि पिपरामूरि ते जाता है पित्तज्वर यवके काढ़ा ते जाता है श्लेष्मज्वर कागदीनींबूकी सिकंजवीं ते जाता है द्वन्द्वज्वर पञ्चभद्रकादि ते जाता है सन्निपातज्वर चिंतामणि रसादिते जाता है विषमज्वर षोडशांगादि ते जाता है जीर्णज्वर वसंतमालिनी लाक्षादि तेल ते जाता है तपेदिक पूर्वते तीनि वर्षतक अरहरि मूंग की दालि रोटी खाइ और सब वस्तुकी परहेज राखै तौ साधारणै औषधते आराम होइ नाहीं तो किसी दवा ते न आराम होइगो यह कफज्वर ते उत्पन्न होती है इत्यादि जैसा रोग होवै ताही अनुकूल परहेज सहित औषधकरै तव रोगनाशै अरु जो ज्वरतौ सन्निपात है अरु गुर्च चिरायता पिआवता है तौ कैसे रोगजाई तैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यादिरोग कराल हैं पुनः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि कुपथ तापर स्नान, तर्पण, सन्ध्या, पूजामात्र करि जीव शुद्ध कैसे ह्वैसकै तामें वैद्यक वेदवाणी को कौन दोष दीजिये १. विना अन्तर की शुद्धता देह ते साधन करनेते क्या ह्वैसक्ता है कौन भांति यथा नृप कोऊ राजा सोवत सपने में विप्रवध घटै हाथों से ब्राह्मण मरिगया त्यहि अघ पाप लागेते विकल फिरता है त्यहिके उद्धार हेतु सौ करोरि अश्वमेध यज्ञ करै परंतु विना जागे शुद्ध न होई अर्थात् जागे निश्चय ह्वै जाई कि झूंठही पाप है तैसे आत्मरूप मोहनिद्राते स्वप्नवत् रूप देहाभिमानी ह्वै अनेक पापकर्मन को भागी भया सो यावत् कामादि विकार लिहे विषयासक्त बना है तावत् अनेकन कर्मकरि शुद्ध नहीं ह्वै सक्ता है यावत् आत्मरूप को न संभारी तावत् देहाभिमानी कर्म कैसे छूटि सक्तै हैं जब पूर्वरूपको बोध होई तबै शुद्ध होई २ स्रगमहँ सर्प अर्थात् अंधेरे में रस्सी माला आदि परा है ताको सर्प मानि विपुल भयदायक देखाता है अर्थात् बड़ा डर लागतहै इति विना विचारे भ्रम प्रकट होताहै अर्थात् जो किसी कारणते विचारिकै जानिलेइ तौ भ्रम मिटिजाइ तब भय काहेको लागै सो विचार तौ करते नहीं वाको सर्प मानै बहु आयुध धरि बरछी, वाण, गदा, शूल, लाठी, दण्डादि

अनेकन हथियार लैके अनेक भांति को बल करिकै मारतसंते मरैगो नहीं अर्थात् मरैती तब जब सर्प होइ रसरी मालमें क्या मरै श्रम वृथा तथा झूंठो संसार को पदार्थ ताको सांचेको भ्रम माने वाके नाशहेतु अनेक साधन करत सो कैसे नाश है सकत ३ कौन भांति संसार नहीं नाश है सकत कि जहां तीनिकाल में जल नहीं है परन्तु निज आपनही भ्रमते रविकरसंभव सूर्यकिरण ते उत्पन्न जो सागर समुद्र देखि परता है सो अतिभय उपजावै देखत सन्ते अत्यन्त डर उत्पन्न करता है अर्थात् यावत् लोक पदार्थ को सांचा माने सनेह किहे है तावत् संसारसागर सम भयानक देखि परताहै तामें अवगाहत बूड़त सन्ते बोहित जहाज़ तथा नौका पर चढ़िके पार जावा चाहै तौ कबहूं पार न पावै इहां वेद वेदान्त जहाज़ ज्ञान साधन आरूढ़ता तथा पुराण धर्मशास्त्र नौका है कर्म साधन आरूढ़ता है यावत् आत्मरूपको बोध नहीं तावत् साधन करि पार न पाई ४ गोसाईंजी कहत कि आप सहित जग जबलगि जगत् निर्मूल जरसहित नाश न है जाई अर्थात् याके अंतर्गत ज्ञान के चारिउ साधन देखावत यथा जो जीव देहाभिमानी है ताकी मूल इन्द्रिय विषयासक्ती है पुनः जगत् को जो सांचा माने हैं तहां लोकसुखकी चाह मूल है तहां समकरि वासना त्यागै दम करि इन्द्रिय विषयते रोकै उपराम करि विषयते पीठि देवै तितिक्षाकरि दुःख सुख सम मानै श्रद्धाकरि वेद गुरु वचन में विश्वास राखै समाधान करि मनादि थिर राखै पुनः विराग करि संसारसुखको त्यागै अरु विवेक करि संसार को असार जानि त्यागै सारांश आत्मरूपको ग्रहण करै इस भांति आपसहित संसार निर्मूल है जबतक नहीं नाश हैजाता है तबतक करोरिन कल्पतक जो अनेकन उपाय करि पचि मरिये हे भाई, लोकजनौ! तब तक तरौगे नहीं ५ ॥

(१२४) अस कछु समुझि परत रघुराया।

बिन तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया १
वाक्यज्ञान अत्यन्तनिपुण भवपार न पावै कोई।
निशि गृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त नहिं होई २
जैसे कोउ इक दीन दुखित अति अशनहीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नशावै ३
षटरस बहुप्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिन बोले सन्तोषजनित सुख खाइ सोइ पै जानै ४
जब लागि नहिं निज हृदि प्रकाश अरु विषय आश मनमाहीं।
तुलसिदास तबलगि जग योनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ५

टी०। दयालु दयागुणमन्दिर भाव बेप्रयोजन जीवनको दुःख हरनेवाले पुनः दासनके विशेष हितकार हे श्रीरघुनाथ जी ! अस कछु मोको समुझि परता है कि विना आपुकी कृपा भये और साधन करि मोह देहाभिमान पुनः माया विषय सुखकी चाह इत्यादि छूटती नहीं है भाव जब जीव आपकी शरण होइ तब आपकी

कृपा बनी रहै ताको बल राखे अन्य साधन करै तब जीव शुद्ध होवै अरु विना आपुकी कृपा खाली साधन कैसे हैं सो आगे कहत १ जो अंतर में रामकृपाको बल नहीं है तौ निर्बलजीव अर्थात् अंतरमें तौ आत्मरूपकी दृढ़ता है नहीं ताते साधन क्रिया तौ यथार्थ करि नहीं सक्के हैं अरु वाक्यज्ञान में अत्यन्त निपुण हैं वचनमात्र ज्ञानवार्त्ता करिवेमें परमप्रवीण हैं तिन बातनते कोई जन भवसागरको पार न पाई ऐसेही शंकराचार्यको वचन है यथा ॥ वाक्योच्चार्यसमुत्साहात्तत्कर्म कर्तुमक्षमा। कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव ॥ इत्यादि वेदान्त सूत्रार्थ तौ भलीभांति वखान करि कहते हैं अरु वाकी क्रिया करिवेको समर्थ नहीं हैं तौ वचन ज्ञानते प्रयोजन क्या होइगो यथा निशि गृह रात्री विषे घरके मध्यमें बैठे हैं तहां यथार्थ दीपक तो है नहीं दीप बरनेकी बातैं करते हैं तिन बातनते तमनिवृत्त नहीं होइ घरको अन्धकार किसीभांति न मिटैगो तैसेही विना ज्ञान दीपक के प्रकाश ज्ञान-वार्त्ता करि अविद्या रात्री विषे हृदयरूप घरको मोहरूप अन्धकार कैसे नाश होई २ पुनः जैसे कोऊ एकदीन पौरुषरहित पुनः दरिद्रता करि अत्यन्त दुःखित पुनः अशनहीन अर्थात् कोऊ एक जन विना भोजन पाये भूखते दुःख पावता है तहां जो दीन दुःखित है सो दरिद्र मिटावने हेतु भी तिनमें कल्पवृक्ष तथा कामधेनुकी चित्रसारी अनेकन लिखाकरै भाव इनते अर्थ, धर्म, कामादि, फललाभ होइँगे इत्यादि वृथा परिश्रम चहै तबलगि करै यावत् सांचा कल्पवृक्ष कामधेनु न प्राप्त होइगो तावत् गृहविषेभी तिनमें लिखे हुये कल्पवृक्ष कामधेनु करिकै विपत्ति नहीं नाश है सक्की है यह कर्ममार्गपर तर्कनाहै अर्थात् जे मनकी शुद्धता श्रद्धारूप पुरु-षार्थहीन आलस अश्रद्धाते दीन है पुनः इंद्रिय विषयासक्त ताते दुःखी है तिस दुःख मिटावने हेतु विष्णु शिव सूर्य गणेशादि देवनकी प्रतिमा तथा लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती आदिकी प्रतिमा पूजते हैं सो मनकी शुद्धता श्रद्धा विधिविधान आदि तौ कछु बनता नहीं अरु मनोरथचारिउ फल चहते हैं सो वर्त्तमान प्रसिद्ध है कि किसी उपायते काहूको स्वार्थ होता नहीं ३ जे भोजनहीन भूंख करिकै दुःखित हैं ताके हेतु षट्रस यथा ॥ दोहा ॥ कटुतिक्ताम्लकषायअरु, मधुरलोनषट जान। कुटकुंठिचिचाभयागुड़सैंधादिवखान ॥ इत्यादि छैयोरसन में अनेकभांति के भोजन यथा पूरी, कचौरी, पुआ, मालपुवा, पेराक, मठरी, समोसा, लड्डू, जलेबी, अमिरती, खाझादि पुनः रोटी, दालि, भातु, बरा, कढ़ी, सालन, तरकारी इत्यादि भोजन कोऊ भूंखा रातिउदिन वखान कीन करै परन्तु वार्त्तामात्र न स्वादु मिली न भूंख जाई अरु जो खाता है सोईपै निश्चय करिकै भोजन का स्वादु जानताहै अरु विना बोले भोजन रसादि विनावखान किहे भूंखते संतोष अर्थात् तृप्त होत पुनः संतोष करिकै जनितनाम उत्पन्न जो पुष्टता सबलतादि सुख हैं सो होता है तैसे जे शृंगार, सख्य, दास्य, वात्सल्य, शांतादि रसन में भावनको सुमि-रन ध्यानभावना भजन इत्यादिकी वार्त्ता दिनौराति मुखते कीनकरै अन्तर में कछु नहीं है तौ वाको स्वादु संतोष आनन्दादि कैसे पावै अरु जिनको भाव, भावना, सुमिरन, भजन, ध्यानादि परिपक्व है ते विना कहे न वाको स्वादु संतोष आनन्द पावते हैं अर्थात् जब सनेहसहित शरणागत को भरोसा राखे रहै जब

प्रभुकी कृपाते अन्तर शुद्ध होइ तब पूजा भजन ध्यान सब सिद्ध होई ४ पुनः जबलगि प्रभुकी कृपाते हृदय में आत्मरूप को प्रकाश नहीं है अरु मन में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि विषयन की आशा बनी है गोसाईंजी कहत कि तबलगि जगत्‌विषे चौरासी लक्षयोनिनमें भ्रमत संते जागतकी कौन कहै सपनेहूं विषे जीव सुखी न रही अर्थात् जागत में तौ तीनिउ तापैं बनी हैं सपनेहू में व्याघ्र, सर्प, हाथी, भूत गांसे हैं ५ ॥

(१२५) जो निज मन परिहरै विकारा।

तौ कत द्वैतजनित संसृति दुख संशय शोक अपारा १
शत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हे बरिआई।
त्यागब गहब उपेक्षनीय अहि हाटकतृण की नाई २
अशन वसन पशु वस्तु विविध विधि सब मणिमहँ रह जैसे।
स्वर्ग नरक चर अचर लोक वहु बसत मध्य मन तैसे ३
विटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ कञ्चुकि विनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नानातनु प्रगटत अवसर पाये ४
रघुपति भक्ति वारिछालित चित विनप्रयासही सूझै।
तुलसिदास कह चिदविलास जग बूझत बूझत बूझै ५

टी०। अब जीवके बन्धन मोक्षको कारण मनते देखावते हैं कि जो निज अपना मन इन्द्रियन के विषयसहित कामादि विकार परिहरै त्यागकरै निर्विकार शुद्ध रामसनेहमें लागै तौ जो देहाभिमानते लोक व्यवहार सांचा मानि रागद्वेषादि जो द्वैतबुद्धि त्यहि करिकै जनित उत्पन्न जो संसृत संसारदुःख तामें संशय अर्थात् झूंठे संसारमें सँचाई की निश्चय वा नरक जाउ वा स्वर्ग जाउ इति संशय तथा जन्म, जरा, मरणादि, शोक अपार जाको पार नहीं पावत इत्यादि कत कहे काहे को होवै भाव मनके विकारते सब दुःख उत्पन्न होताहै जो मन विकार त्यागै तौ कछु दुःख न होवै १ काहेते सबकारण मनेते हैं कि शत्रु जो अनहितकर्त्ता मित्र जो हित-कर्त्ता मध्यस्थ जो शत्रुता मित्रतारहित उदासीन ये जो तीनिउ भाव हैं सो बरि-आई जबरदस्ती हठिकरि मनै ने किया है अर्थात् स्वार्थमें हानिकर्त्ता जानि क्रोध वश शत्रु बनाया हितकर्त्ता जानि सनेहवश मित्र बनाये जो हित हानि कछु नहीं करत ताको उदासीनता ते मध्यस्थ बनाया तहां शत्रु को त्यागब मित्रको गहब मध्यस्थको उपेक्षणीय अर्थात् प्रयोजन पाइ ग्रहण बेप्रयोजन वापर दृष्टि न देना इत्यादि कौनभांति आचरण हैं यथा अहि सर्प हाटक सोना तृण कास कुश पतौरा घासादि ई आचरण लोक में प्रसिद्ध हैं यथा मग में सर्प देखान सो प्राणहानि-कर्त्ता जानि शत्रुवत् मानि वाको त्यागि लोग भागते हैं पुनः जो सोना पराहै सो धन लाभ हितकार जानि मित्रवत् मानि वाको गहि उठाइ गाँठि बाँधि लेते हैं लोग पुनः तृणकी जब जरूरत भई तब ग्रहण करतेहैं बिना जरूरत नहीं ऐसेही स्वार्थ में हानि लाभ विचारि मन शत्रु मित्र मध्यस्थ बनाय द्वैतबुद्धिते दुःखको पात्र बना २ पुनः कैसे

सबको कारण मन है यथा अशन भोजन अर्थात् मिठाई घृत अन्नादि वसन दुशाला जामा उरमाल पागादि पशु हाथी घोड़ा वृषभ महिषी गाय शुतरादि पुनः मन्दिर सजावट भूषणादि विविध अनेक भांतिकी वस्तु इत्यादि सब वस्तु जैसे मणि हीरा जवाहिरादि में रहत अर्थात् मणिको स्वरूप तौ छोटा अरु मोल वामें बड़ा त्यहि धन करिकै सबै पदार्थ होते हैं परन्तु जब मणि परहाथ विकिजाइगी त्यहिधनते सब विभव होइगो तहां मणि तौ गवैभई अरु अशन वसन वाहनादि भोग करनेते सब वस्तु भी नाश ह्वै जाइगी तैसे स्वर्ग नरक चराचर तन भूमि पातालादि सबलोक बहुत मनके मध्य में वसते हैं अर्थात् जब मन संसारके हाथ विकाइगया विषय धन पाइ शुभाशुभ कर्म व्यापारकरि स्वर्गनरक बहुते लोकनमें अनेक योनिनमें तन धरि सुख दुःख जीव भोगता है तहां पूर्व तौ मन हाथते गया पुनः सत्कर्म भोगते चुके ताते जीव शोकको पात्र भया तथा जो मनरूपमणि जीव हाथमें राखै तौ सदा धनी बनारहै ३ पुनः कौनभाँति सबको कारण मनै है यथा विटप मध्य पुत्रिका अर्थात् वृक्षमध्य काठ में पुतरी हैं पुनः रुईके सूत महाकञ्चुक जामाआदि अनेक वसन हैं तहां वृक्षमें अनेक पुतरी अरु सूत में अनेक वसन इत्यादि विना बनायन विचारि करि देखौ तौ वामें व्याप्त है अर्थात् काठको काटि बढ़ई अनेक पुतरी आदि वस्तु बनावैगौ पुनः सूत वीनेपर अनेक वसन दरजी बनावैगा तैसेही मनमहँ नाना अनेक भांति के तनु यथा सुर, मुनि, नर, नाग, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, तृण, तरु आदि हैं ते मनांतर गुप्तव्यापक हैं ते अवसर समय पाइके प्रकट होते हैं अर्थात् कालकर्म स्वभाव वासना अनुकूल शरीर पावत है यह मनैको कारण है अर्थात् कालस्वभावते जैसे कर्म करताहै ताही अनुकूल शरीरधरि दुःख सुख भोग करता है इत्यादि सबको कारण मनै है ४ स्थूल सूक्ष्म कारणादि तीनिहु शरीरन में मनको विकार नहीं छूटता है सो विकार कौनभांति छूटै सो कहत कि रघुपतिभक्तिवारि छालित चित्त अर्थात् श्रीरघुनाथजीकी प्रेमाभक्तिरूप जो अमल जल है तामें स्नानकरि धोयेते मन चित्तादिको मल छूटिजाता है भाव रामयश श्रवण कीर्त्तन करि वा कृपा दयादि गुण विचारि प्रेमप्रवाह उमँगा त्यहि सहित सुमिरण भजन ध्यान भावना करनेते विषयवासना कामादि विकार सब मल सहजही नाश होइजाइगो तब विनु प्रयासही सूझैंगे भाव कर्म योग ज्ञान साधनादि परिश्रम विना किहे केवल प्रेम प्रभावते आत्म परमात्मरूप देखि परैंगे कौनभाँति तापर गोसांईंजी कहत कि चिद् विलास सदा चैतन्य अखण्ड आनन्दरूप सच्चिदानन्द सो जगमें जीव बूझत बूझत बूझै समुझत समुझत समुझि पाइ हैं कौनभांति कि यावत् देह बुद्धि है तावत् प्रेम सहित श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि प्रभुकी कैंकर्यता करि देहाभिमान मिटावै जीव ईश्वरको किंकर बूझिपरै पुनः यावत्जीव बुद्धिरहै तावत् शुद्ध प्रेमसहित भजन ध्यान भावनाकरै तब जीवबुद्धि मिटै आत्मरूप बूझै पुनः आत्मरूप ते शुद्ध अनुराग किहेरहै तौ परमात्मरूप सूझै इत्यादि क्रम क्रमते रामरूप समुझि परताहै५॥

(१२६) मैं केहिकहौं विपति अतिभारी। श्रीरघुवीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ वसे आइ वहु चोरा॥

अतिकठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं विनय निहोरा २
तम मोह लोभ अहँकारा। मद क्रोध बोध रिपु मारा॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहिं जानि अनाथा ३
मैं एक अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा॥
भागेहु नहिं नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा ४
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तस्कर तव धामा॥
चिंता यह मोहिं अपारा। अपयश नहिं होइ तुम्हारा ५

टी०। मैं अपनी भारी विपत्ति कयहि सों कहौं भाव पुकारमात्र विपत्तिहर्त्ता दयावीर कोऊ देखात नहीं ताते हे श्रीरघुवीर, धीर! अर्थात् दयावन्त वीर दीन जनन के हितकर्त्ता एक आपहीहौ ताते आपते प्रार्थना करताहौं १ हे प्रभो! मम हृदय भवन आपुको है अर्थात् जीव प्रार्थना करत कि मेरा अन्तःकरणरूप जो मन्दिर है सो आपके वसिवेको स्थान है भाव मेरी इच्छा है कि इहां आपु बसौ परंतु कारण कार्य मायाके प्रभावते मन विषयासक्त है अनेक कामना बढ़ाया ताकी चाहनाते तहां तिस मन्दिरमें बहुभांति के चोर आइ बसे अर्थात् चोर डाकू ठग बरुवारादि ते अति कठिन अत्यन्त कठोर स्वभाव हैं ताते बरजोरा जबरदस्ती मोंको लूटते हैं अरु कुटिल स्वभाव हैं ताते विनय नम्रतापूर्वक विनती सुनि जो सतोगुणी होइँ तौ छांड़िदेवें पुनः निहोरा अर्थात् हम सदा अहसानमन्दरहैंगे यह सुनि जो रजोगुणीहोइँ तौ अपने स्वारथ को भरोसा राखि छांड़िदेवें येतौ तमोगुणी हैं ताते विनय निहोरा कछु नहीं मानते हैं २ ते कौन कौन हैं तम अर्थात् प्रथम अविद्यारूप अंधकार घेरिलेताहै पुनः मोह जो आत्मरूप भुलाइ जीव को अचेत करिदेताहै पुनः लोभ परधन लेनेपर ध्यान राखना पुनः अहंकार अपना को बड़ामानि चित्त उन्नत करना पुनः मदजाति विद्या महत्त्व पाइ हर्ष बढ़ावना पुनः क्रोध सबसों वैर विरोध राखना पुनः बोध को रिपु जड़ता अज्ञता मन्दता पुनः मार जो काम इत्यादि अत्यन्त उपद्रव करते हैं अर्थात् विवेक विराग ज्ञानादि धन बरबस लूटि लेते हैं पुनः हे नाथ! अनाथ असहायक जानि मोंको मर्दत भांति भांति चोटन मारते हैं ३ जीवको वचन है कि मैं तौ एक अकेला अरु बटपार मोहादि अमित अनेकन हैं तिनके कोलाहल में मेरा पुकारा हुआ वचन कोऊ सुनता नहीं अथवा सबल डाकू जानि सुर मुनि आदि आदि आपही डरतेहैं मेरी पुकार कौन सुनै पुनः एक बटपार एकही देशमें लूटते हैं जो और देशको भागिजाउँ तहां नहीं जाते हैं अरु ये बटपार कैसेहैं कि हे नाथ! इनते भागेउ ते उबारा बचाव नहीं है जहां तहां को जाउ ये सर्वत्र संगही रहते हैं ताते भागेउ बचाव नहीं है हे रघुनायक! भाव आप रघुवंशकुल के नाथ उदारवीर हौ यह जानि आपकी शरण आया हौं आप दयावीरता को सँभार करहु अर्थात् दयाकरि शत्रुन को हटकि मेरी रक्षा करहु तबै मैं बचिसक्ता हौं अन्य उपाय नहीं बचिसकौंगो यह जानि अपने प्रणतपाल बानाको सँभारकरहु ४ गोसाईंजी कहत कि हे राम! सुनहु अर्थात् चराचर

को अपने रूप में रमावनहारे पुनः सबमें आपु रमे हौ ताते मेरेहू उरमें बसेहौ तौ मेरा तनु आपहीको मन्दिर है ताते आपुते प्रार्थना करता हौं सो कृपाकरि सुनिये तव धाम तस्कर लूटते हैं अर्थात् मेरा हृदयरूप जो आपु को मन्दिरहै तहां समता, संतोष, विवेक, विराग, ज्ञान, विज्ञान, कोमलता, दीनता, शान्ति इत्यादि धन ताको काम, क्रोध, लोभ, मोह, मदादि चोर लूटे लेते हैं तिनको हटकौ अपना घर बचावो जो कहौ कि घर हमारा लूटा जाता है तुम क्यों बारबार कहते हौ तहां मोहिं यह अपार बड़ी भारी चिन्ता है कि सदा आपको सुयश होत आया तामें मेरे हेतु आप को अयश न होइ जामें प्रणतपालता में दागु न लागै ५॥

(१२७)मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निज भक्तिचहैहरि केरी १
उर आनहि प्रभुकृत हित जेते। सेवहि तजे अपनपौ चेते २
दुखसुख अरु अपमानबड़ाई। सबसमलेखहि विपतिविहाई ३
सुनु शठ कालग्रसितयह देही।जनितेहिलागिविदूषहि केही ४
तुलसिदासबिनअसमतिआये। मिलहिं न रामकपटलयलाये५

टी०। जीवके दुःख सुखको कारण मनै तासों सिखावन देत हे मेरे मन! मेरी सिखावन मानहि भाव जो मैं कहौं ताही मारग चलु जो निज अपना में हरि केरी भक्ति चहहि अर्थात् जो भवसागर को जावा चहु तौ जो इच्छा होइ सो करु अरु जो रघुनाथजीकी शरणागती चहु तौ मेरी सिखावन सुनु १ प्रथम तौ प्रभुके कृत किये हुये जो हित हैं यथा गर्भवास में रक्षा कीन्हे उत्तम मनुष्य तनु दीन्हे बालग्रह पूतनादि ते रक्षा करि तरुण कीन्हे ज्ञान,बुद्धि,विद्यादि दीन्हे पुनः सत्संग सद्गुरु मिलाये इत्यादि उरमें आनहि भाव निर्हेतु जो अनेक भांति रक्षा कीन्हे तौ शरण में क्यों न रक्षा करैंगे यह भरोसा दृढ़ करि उर में राखु पुनः अपनपौ तजे अर्थात् इन्द्रिन में विषय विकार देहाभिमान बिसारि पुनः चेते मोहादि भ्रमते चैतन्य ह्वैकै प्रेम सहित प्रभु को सेवन करु अर्थात् मन पायँन रहै शिरते प्रणाम, कानन ते यश श्रवण, मुखते कीर्त्तन, नेत्रन ते रूप अवलोकन, करसों अर्चनादि इत्यादि सेवनकरु २ पुनः दुःख यथा रुजहानि, वियोग, भय, दरिद्रता आदि सुख यथा वनिता, पुत्र, भोजन, वसन, राग, नृत्य, पान, गन्ध, वाहन, भूषण, धन, धाम, मान, बड़ाई इत्यादि की प्राप्ति पुनः अपमान अर्थात् कोऊ अनादर करै कुवचन कहै अथवा बड़ाई अर्थात् कोऊ आदर ते स्तुति इत्यादि यथा दुःख तथा सुख पुनः यथा अपमान तथा बड़ाई इन सबको सम लेखहि अर्थात् न दुःख में दुःखी हो न सुखमें सुखी न अपमान में क्रोध करु न बड़ाईमें प्रसन्न हो इस भांति सबको बराबरि मानु पुनः विपत्ति विहाइ अर्थात् कैसेहू संकट समय परै ताको वेग त्यागे प्रभु परिचर्या में लागरहु ३ हे शठ, अज्ञ, मन ! सुनु मेरे वचन मानु शठता त्यागि दे कौनभांति कि यह देही कालग्रसित है अर्थात् सदा काल के मुखै में जानु जाको क्षण भरे को ठेकाना नहीं ऐसी क्षणभंगी देह त्यहि के सुख लागि काहू जनन को जनि विदूषहि अर्थात् अपनी देह के सुखहेतु कुवचन गारी दण्डादि किसीको न अपमान करु भाव सबमें ईश्वर व्यापक जानि समता दृष्टिते

अपनी परारी देह एकही सम सदा जाने रहा करु ४ गोसाईंजी कहत कि जब देहाभिमान त्यागि दुःख सुख मानापमान बराबरि मानि जीवमात्र पर एकदृष्टि राखि चैतन्य है परम हित मानि सनेहसहित जो प्रभुको सेवन करिहै तव रघुनाथ जी प्राप्त होइँगे अरु जैसी पूर्व कहे हैं ऐसी मति विना आये जो देहाभिमान विषमता कामादि विकार भीतर अरु ऊपर ते साधु बना इत्यादि कपट लय लायेते रघुनाथजी कबहूं न मिलेंगे यह निश्चय जानु ५ ॥

(१२८) मैं जानी हरिपद रति नाहीं। सपनेहु नहिं विराग मनमाहीं १
जे रघुवीर चरण अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोगसम त्यागे २
कामभुजंग डसत जब जाही। विषयनींब कटु लगत न ताही ३
असमंजसअसहृदय विचारी। बढ़त शोच नित नूतन भारी ४
जब कब रामकृपा दुख जाई। तुलसिदास नहिं आन उपाई ५

टी०। जो आचरण चाहिये सो नहीं है ताते मैं यह निश्चय जानि लई कि मेरे मन में हरिपदरति नाहीं अर्थात् रघुनाथजी के पदकमलन में प्रीति नहीं है पुनः मनमाहीं विराग सपनेहू में नहीं है अर्थात् संसारी सुख को तौ मन त्यागता नहीं तौ जो संसारी सुख में मन लाग है तौ रामसनेह कैसे होइ अर्थात् एक मन है टेकाने कैसे लागि सक्ता है ताते हरिपद में प्रीति नहीं है १ काहेते हरिपदरति नहीं है कि जे जन रघुनाथजी के चरणारविन्दन के अनुरागी होते हैं अर्थात् जे प्रभुपद में अचल प्रीति राखते हैं तिन जनन सब भोग यथा सुगन्ध, वनिता, वसन, गति, ताम्बूल, भोजन, वाहन, भूषणादि तिन सबनको रोगसम दुःखद जानि त्यागि देते हैं २ काहेते रामानुरागी जन सब भोग को रोगसम जानि त्यागते हैं कि जब रामानुराग होता है तब विषयसुख करू लागता है यथा भले जननको नींवि पुनः जब जाहि जनको काम भुजंग डसत ताको विषयरूप नींबि नहीं करू लागती है अर्थात् लोक में जाके सर्प काटत विष देह में व्यापि जात ताको जो नींबि की पाती खवावैं तौ करू नहीं लागत तैसेही परमार्थ में यह विचार है कि कामरूप सर्प जाके काटता है सुन्दर युवती की प्राप्ति चाहादि महाविष नाश करनहारा जब जीव में व्यापता हैं तब वाको विषयरूप नींबि नहीं करू लागति है तब यह निश्चय जानिये कि यह जीव नाश होनहार है अर्थात् भवसागर को जाइगा ३ जब रामसनेह में हानि अरु विषयसुख में चाह बढ़त सोई भवकी मूल है यह बात हृदय में विचारि असमञ्जस दुविधाते जीव में स्थिरता नहीं काहेते ज्यों ज्यों विषय में मन आसक्त होत त्यों त्यों नित नूतन प्रतिदिन नित नवा शोच बढ़तजात भाव अन्य तनु में जो बिगरी ताको अंदेशा नहीं है अब जो उत्तम मनुष्य तनु पाइ पुनः मन विषयमें आसक्त है अब भवसागर को जाइँगे यह शोच बढ़तजात ४ गोसाईंजी कहत कि इस विषयासक्ती में कर्म योग ज्ञानादि दूसरी उपाय ते तौ जीव को कल्याण होनेवाला नहीं देखाता है परंतु जहां बड़ा शोच होता है तहां एक बातते जीवको कल्याण होने को भरोसा दृढ़ करिकै आवता है कि जीव को कल्याण निश्चय होइगो कब जब कबहूं श्रीरघुनाथजी कृपा करैंगे तबै दुःख जाई

अर्थात् जो हम विषयासक्त हैं तहां रघुनाथजी पतितपावन हैं कृपा करि मेरा उद्धार अवश्य करैंगे ५ ॥

(१२९) सुमिरु सनेहसहित सीतापति। रामचरण तजि नहिंन आनगति १
जपतप तीरथ योग समाधी। कलिमति विकल न कछु निरुपाधी २
करतहुँ सुकृत न पापसिराहीं। रक्तबीज सम बाढ़त जाहीं ३
हरणिएक अघ असुरजालिका। तुलसिदासप्रभु कृपाकालिका ४

टी०। केवल प्रभु की कृपाते जीवको कल्याण है यह विचारि हे मन ! सनेह सहित सीतापति को सदा सुमिरु भाव नाम स्मरणसहित रूप को ध्यान किहेरहु काहेते रामचरण तजि अर्थात् रघुनाथजीके चरणारविन्द बिसारि आन गति नहीं है अर्थात् सतयुगमें ध्यान औरत्रेतामें यज्ञ करि द्वापरमें हरिअर्चा करि इत्यादि उपायकरि अन्ययुगनमें भवसागर तरैको जीवकी गति रहै अब अधर्मकी प्रचारते कलियुग विषे सेवाय रघुनाथजी की सुमिरण और उपायनते भव तरिबेकी गति नहींहै जीवनको १ काहेते आनउपायते गति नहीं है कि जप तपस्या तीर्थाटन योगकरि समाधि इत्यादि एकहू साधन निरुपाधि नहीं है सबके करत में उपाधि लागत काहेते कलियुग के प्रभाव ते स्वभाव कुटिल कर्म नष्ट ताते मति जीवनकी बुद्धि तौ आपही विकल तब जप, तप, योग, समाधि कैसे बनै ताते कछु नहीं पार जात २ अरु जो मंत्र, जप, पूजा, तपस्या, तीर्थ, व्रतादि, सुकृत करतहू में ऐसे असंख्य पाप होतेहैं जे गनत में सिराते नहीं गने नहीं चुकते हैं कौन भांति यथा रक्तबीज दैत्यको वरदान रहा कि एक बुन्द रक्त गिरे सहस्र रक्तबीज पैदा होते रहैं यह दुर्गा में प्रसिद्ध है यथा ॥ पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा। ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जातास्सहस्रशः ॥ तथा जो एक पाप छोड़ावनेहेतु जप, तप, तीर्थादि करौ तहां लोभ, क्रोध, कामादि विकार करि असंख्यन नये पाप पैदा होतेहैं तिन को सुकृतरूप देवगण कैसे नाश करिसक्ते हैं ३ गोसाईंजी कहत कि अघ असुर-जालिका पापरूप जो रक्तबीज दैत्यनको जालसमूह झुंड तिनको हरणि नाशकर्ता एक प्रभु की कृपारूप कालिका सबल हैं अर्थात् जब भय मानि देवगण हारि बैठे तब रक्तबीजते कालिका युद्ध कीन्हा जब वाके रक्तबुन्द ते रक्तबीज बढ़त देखे तब कालिका मुख बढ़ाय जिह्वा फैलाइ दिया जो रक्तबुन्द गिरै सो खाइजाएँ इस भांति वाको मारे तथा कलियुग में सत्कर्म करने ते पाप अधिक बाढ़ते हैं तहां प्रभु की कृपारूप जो कालिका हैं सो सुमिरण, श्रवण, कीर्तनादि, मुख बढ़ाइ प्रेम-रूप जिह्वा फैलाइ देती हैं ताते काम, क्रोध, लोभादि विकारनको खाइ जाती हैं तौ नये पाप होतही नहीं अरु जोहैं तिनको नाश करि देती हैं ४ ॥

(१३०) रुचि रसना तू राम राम क्यों न रटत।
सुमिरत शुभ सुकृत बढ़त अघ अमंगल घटत १
बिन श्रम कलिकलुषजाल कटु कराल कटत।
दिनकर के उदय जैसे तिमिर तोम फटत २

योग याग जप विराग तप सुतीर्थ अटत।
बांधिबे को भवगयन्द रेणु की रजु बटत ३
परिहरि सुमिरण सुनाम गुंजा लखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहिं हटत ४

टी०। ज्यहि करिकै जीव को कल्याण सुगम त्यहि प्रभुकी कृपा उत्पन्न होनेकी सुगम उपाय कहत कि जो मनेन्द्रिय आदि न स्थिर ह्वैकै लागैं तौ सुचिर रसना सुंदरी जिह्वा तू राम राम क्यों नहीं रटत जिससे जीवको कल्याण है काहेते राम नाम सुमिरत सन्ते शुभ मङ्गलानन्द पुनः सुकृत जो पुण्याय इत्यादि तौ बढ़त हैं पुनः अघ जो पाप अरु अमंगल विघ्नादि ते घटत नाश होत यह स्वाभाविकही रामनाम में प्रभाव है यथा शुकसंहितायाम्॥ आकृष्टः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचाण्डालमनुष्यलोकसुलभो वश्यं च मुक्तिश्रियः। नो दीक्षां न च दक्षिणां नच पुरश्चर्या मनागीक्षते मन्त्रोयं रसनास्पृशेव फलति श्रीरामनामात्मकः १ पुनः कलियुग के कलुष जो पाप तिनको जालसमूह अर्थात् कलियुग के जो महापापन को वन है तिनको फल कटु नाम करू कराल भयंकर अर्थात् गर्भवास जन्म तीनिउ तापै जरा मरण यमसांसति आदिते बिनु श्रम कटत अर्थात् योग तपस्यादि परि-श्रम विना किहे केवल रामनाम के स्मरण ते पाप दुःखादि सब कटिजाते हैं कौन भांति जैसे दिनकर सूर्यन के उदय होतही प्रबल तेज के प्रकाश भयेते तोम नाम समूह तिमिर जो अन्धकार सो फाटिजाता है तैसेही रामनाम के प्रभाव ते पाप दुःखादि नाश ह्वैजाते हैं जीव सुखी होता है यथा पाद्मे॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तुराम-नाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति २ यम नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यष्टाङ्ग योग अश्वमेधादियज्ञ, मन्त्र, जप, विराग, संसारसुख को त्याग, पञ्चाग्नि आदि तपस्या, सुन्दर तीर्थ में जाना इत्यादि जो उपाय करत कल्याण के हेतु सो कौन भांति हैं कि भवगयन्द संसाररूप मत्त हाथी ताके बांधबे हेतु रेणुकी रजु बटत धूरिकी बाधी बरता है अर्थात् हाथी जँजीर में बांधे रहत अरु धूरिकी बाधी किसी भांति नहीं ह्वै सक्ती है ताको बटना श्रम वृथा है ताही भांति भवसागर तरिबे को योग, यज्ञ, जप, विराग, तपस्या, तीर्थादि करताहै सो धूरि कैसी बाधी वृथा श्रमहै इन करिकै भव ते नहीं पार पाइ सक्ता है ३ भव तरिबे हेतु योगादि परिश्रम कैसे वृथा है यथा धनको तौ चाह कीन्हे अरु चिन्तामणि त्यागि घुँघुची ग्रहण करै तैसेही सुप्तमणि चिन्तामणि सम रघुनाथजी को नाम अर्थात् तेजते मोह तमहर्ता प्रताप ते भव रोग तथा विषय आश दरिद्रहर्ता पुनः ज्ञान, विज्ञान, शान्त, संतोष, भक्ति इत्यादि समग्र धनको बोध ऐसी चिन्तामणि सम रामनाम ताको परिहरि नाम त्यागिकै गुञ्जालखि लटत कर्मरूप घुँघुची को सुहावनी देखि लट्टू होताहै लोभाताहै इत्यादि लघु तुच्छ लालच तेरो लखि-देखिकै हे मन! तुलसी तोहिं हटत इस छोटे लालच ते तोको हटावते हैं कि कर्म त्यागि नाम में लागु ४॥

(१३१) राम राम राम राम राम राम जपत।

मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत १
कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत।
हारहिं जनि जन्म जाइ गाल गूल गपत २
काल कर्म गुण स्वभाव सब के शीश तपत।
रामनाम महिमा की चरचा चले चपत ३
साधन बिन सिद्धि सकल बिकल लोग लपत।
कलियुग वर बनिज विपुल नाम नगर खपत ४
नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत।
पावन किय रावणरिपु तुलसिहु से अपत ५

टी०। इहां षट्वार रामनाम कहे ताको भाव रामनाम विषे षट्वस्तु प्रसिद्ध कहेहैं यथा रामतापिनीये ॥ अकारःप्रथमाक्षरो भवति उकारो द्वितीयाक्षरो भवति मकारस्तृतीयाक्षरो भवति अर्द्धमात्राश्चतुर्थाक्षरो भवति बिंदुः पञ्चमाक्षरो भवति नादः षष्ठाक्षरो भवति तारकत्वात्तारको भवति तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि तदेवोपास्यमिति ज्ञेयं गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात्संतारयति तस्मादुच्यते तारकमिति य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीयते स पाप्मानन्तरति समृत्युंतरति सभ्रूणहत्यां तरति स ब्रह्महत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स संसारं तरति स सर्वं तरति सो विमुक्तमाश्रितो भवति स महान् भवति सोऽमृतत्वं गच्छति ॥ इसी हेतु राम तारकमन्त्र में षडक्षरहैं ताते षट्वार कहे अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुन इति षडिन्द्रिय विषय पुनः काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, मात्सर्य्य ये षट् विकारहैं तिनके निरोधहेतु षट्वार कहे अथवा श्वासप्रति षट्वार उच्चारण को नेम बांधे इत्यादि राम राम जपत संते मङ्गल जो उत्सवादि पुनः मुदमानसी आनन्द इत्यादि उदित होत प्रतिदिन नित नये प्रकाशित रहत पुनः कलिमल कलियुग के कराल पाप तथा कलिकृत छल यथा परीक्षित सों छल करि मुकुट में वैठि बुद्धि को बदलि दिया इत्यादि छपत अर्थात् जो रामनाम जपत ताको देखि कलिकृत छल अरु पाप लुकि रहते हैं १ रामनाम को प्रभाव तौ सर्वथा प्रसिद्ध है अरु अन्य कर्मन करिकै कलियुग में किसको कल्याण भया है काहेते बबूरबीज बपत में रसालफल के लहे अर्थात् बबूर के बिया बोयेते किसने आंबे के फल पाया बबूर में कांटा विशेष फल किसी काम के नहीं तथा कुटिल जीव काम, क्रोधमय वासनासहित जे कर्म करते हैं तेई बबूरबीज सम बोवत तामें कांटा सम अनेक विघ्न तथा वाके फल बेप्रयोजन यथा परहानि परस्त्रीप्राप्तिआदि देखनेमात्र अन्त में अनहित अरु रामनाम आंबवृक्ष सम सेवत में फलसम रामरूप की प्राप्ति है ताको त्यागि गाल जो गरूर अरु गूल कही जामें समूह अग्नि जरती है तथा कामाग्नि उर में जरावना गपत नाम वृथा अर्थात् गरूर कामनाभरे स्वभाव ते झूंठही कर्मादिकनमें जाइ नाम वृथाही जन्म जनि हारहि जन्म वृथा नगँवाइदे २ काल यथा लग्न, मुहूर्त, करण, वार, योग, नक्षत्र, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, संवर्त्त

युगादि याको प्रभाव जासमय में जो बात होत सो निश्चय होत यथा जाड़, घाम वर्षा पुनः सतयुग में धर्मवृद्धि कलियुग में अधर्म पुनः शुभ मुहूर्त में कीन्हें कार्य की लाभ अशुभ में हानि इति काल तथा शुभाशुभ जैसे कर्म जीव करत ताको फल अवश्य भोगना परत पुनः सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये सब में रहते हैं परन्तु जौन गुण अधिक होता है ताहीं अनुकूल जीव को स्वभाव होता है अरु स्वभाव अनुकूल कर्म करता इत्यादि कालकर्म गुण स्वभावको प्रताप ऐसा प्रचण्ड है कि मसाते ब्रह्मापर्यन्त यावत् जीवमात्र हैं तिन सबके शीश पर तपत भाव इनकी आंचते सबतप्त होते हैं ऐसे सबल काल कर्म गुण स्वभाव तेऊ रामनाम की महिमा प्रभाव तेज बलकी बड़ाई ताकी चरचा चलत सब चपत कालकर्मादि डराइ जाते हैं सो प्रसिद्धही प्रमाण है यथा कलिकाल ऐसा कराल है जामें जप योग विरागादि सब भागि गये तामें नाम को प्रभाव प्रबल बना है पुनः यमन भ्रमते नाम लिया ताके सब कर्म नाश भये वाल्मीकि तमोगुणी हिंसक स्वभाव रहा ते नाम जपि महामुनि भये गुण स्वभाव नाश ह्वै गया इत्यादि ३ धर्म के साधन, सत्य, शौच, तप, दान, योग में साधन, यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि ज्ञानके साधन शम, दमादि, विवेक, विराग मुमुक्षुता भक्ति के साधन श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दनादि इत्यादि श्रद्धा विश्वाससहित विधिवत् जाही के साधन परिपूर्ण करै सोई कार्य सिद्ध होइ अरु विना साधन किहे कैसे सिद्धी ह्वैसक्ती है अरु कलियुग में लोग कैसे हैं कि साधन में परिश्रम विना कीन्हे सकल लोग सिद्धिप्राप्ती हेतु विकल ह्वैकै लपत सिद्धि पकरिलेने हेतु लपकते हैं अर्थात् विना जोते बोये लुना चाहते हैं अरु विना दामन अनेक भांति के अन्न वसन भूषण चांदी सोना मोती विद्रुम पुखराज हीरादि ज-वाहिरात खरीदार ऐसे वर बनिज विपुल इस रीति के उत्तम बैपारी बहु हैं कलियुग विषे काहेते औरे युगन में जैसे साधन में परिश्रमरूप धन अपना में देखैं तैसेही वस्तु के गाहक होते रहैं ताते उत्तम गाहक बहुत नहीं होते रहैं अरु या काल में साधन परिश्रमरूप धन तौ किसीके पास है नहीं अरु सब सिद्धीरूप रत्नन के गाहक हैं याते इस युग में उत्तम बैपारी बहुत हैं ते नाम नगर खपत अर्थात् विना साधनरूप धन पास भये न धर्म कर्मनगर में सिद्धीरूप सौदा पावैं न योगनगर में न ज्ञाननगर में न भक्तिनगर में अर्थात् विना साधन कैसे सिद्धि ह्वैसक्ती है तिन गाहकन को नामनगर में सौदा मिलता है काहेते महापापी दुष्ट अजामिल यमनादि भ्रमते नाम लै मुक्ति पाये तौ जो किसी भांति नाम लेइगा ताको सब सिद्धी प्राप्त होइँगी ४ काहेते नामावलम्ब ते सब सिद्धि प्राप्त ह्वैसक्ती हैं कि नाम सों प्रतीति सहित जो प्रीति है सो ऐसी सबल है कि चंचल हृदय को गहिकै सुन्दरी भांति स्थिर करिकै थापत शुद्धता सहित मनादिको अचल करिदेत अर्थात् कैसहू कुटिल स्वभाव पापकर्मी नष्ट जीव होइ जो नाम माहात्म्य में विश्वास राखि प्रीतिसहित रामनामको जपै तौ मनादि अन्तःकरण थिरता सहित शुद्ध ह्वै आपही सब साधन करने लागते हैं तब सबै सिद्धी सुलभ ह्वै जाती हैं अथवा रामनाम सों प्रतीति प्रीति सुन्दरी भांति थिरकरि हृदय में थपत अचल राखत सन्ते तुलसीदासहू ऐसे अपत अशुद्ध तिनहूंको रावण के रिपु श्रीरघुनाथजी

पावन पवित्र किये इस प्रमाण ते प्रभु की ऐश्वर्य अरु पतितपावनता दर्शाये काहेते जो ग्वहिं ऐसेन को पावन किये ताके पाप कहांतक सबल रहे होइँगे रावण ऐसा महाबली ताको नाश कीन्हे वाके असंख्यन पाप तिनको नाश कीन्हे आपने धाम को पठाये ५॥

(१३२) पावन प्रेम रामचरण जन्म लाहु परम।
रामनाम लेत होत सुलभ सकल धरम १
योग मख विवेक विरति वेद विदित करम।
करिबे कह कटु कठोर सुनत मधुर नरम २
तुलसी सुनि जानि बूझि भूलहि जनि भरम।
तेहि प्रभु को तू होहि जेहि सबही की शरम ३

टी० । पूर्वपद में जो रामनाम की अवलम्ब करि पतित जीवन की पावनता कहे ताको हेतु प्रसिद्ध कहत कि रामचरण पावन प्रेमभाव चैतन्य देहधारी जीव में निर्वासिक प्रेम श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दन में होना जन्म धरेको परम लाभ है भाव याके समान दूसरा लाभ नहीं है काहेते कर्मयोग विवेक विराग ज्ञानादि यावत् लाभ हैं तिनको फल रामपद प्रेम है पुनः जीव में धर्मबुद्धि होना सब साधन की मूल हैं पुनः हजारन मनुष्यन में एक काहूमें धर्मबुद्धि होती है तिन कोटिन में एक विषय ते विरक्त होता है विरक्त कोटिन में एक ज्ञानी होता कोटिन ज्ञानिन में एक जीवन्मुक्त होता है हजारन जीवन्मुक्तन में एक विज्ञानी ब्रह्मलीन होता है कोटिन ब्रह्मलीन विज्ञानिन में कोऊ प्रेमी रामभक्त होता है यथा महारामायणे ॥ शृणु श्रृणुष्व मनुजोपि सहस्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशीलाः। तेष्वेव कोटिषु भवेद्विषये विरक्तः सज्ञानको भवति कोटिविरक्तमध्ये ॥ विज्ञानरूपविमलोप्यथ ब्रह्मलीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत्खलु रामभक्तः ॥ इत्यादि सबकी मूल धर्म है सो रामनाम लेत संते सकल धर्म सुलभ ह्वैजाते हैं ताते रामनाम सर्वोपरि जीव को कल्याणकर्ता है १ रामनाम जपत में सुलभ अर्थात् विधि साधनादि में कठिनता नहीं केवल प्रीतिपूर्वक उच्चारण किया करना पुनः स्वादु भी मीठी अर्थात् प्रभु के कृपा, दया, करुणा, क्षमा, शील, सुलभ, उदारतादि गुण विचारि सनेह आवत ताते प्रिय लागत पुनः नाम के प्रभाव ते पाप नाश होत ताते सब धर्म उपजत पुनः धर्मबुद्धि ते विवेक विराग ज्ञान विज्ञानादि सब गुण आपही है आवैंगे पुनः रामप्रेम दृढ़ होनेते जीव कृतार्थरूप ह्वैजाइगा विशेषि परिश्रम कबहूं नहीं अरु न कोऊ बाधा करि सकै यथा नारदीयपुराणे ॥ श्रीरामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेशसंक्षयः । मुक्तिं प्रयान्ति विप्रेन्द्र तस्य विघ्नो न बाधते ॥ अरु नाम स्मरण रहित जे अन्य साधन हैं यथा अष्टांग योग मख अश्वमेधादि यज्ञ पुनः विवेक सारासार को विचार राखना विरति संसारी सुख को त्याग पुनः जप, तप पूजा, तीर्थ, दान, व्रतादि यावत् कर्म वेद में विदित प्रसिद्ध सब जानते हैं इत्यादि साधन के नाम सुनत मधुर मीठे लागते हैं पुनः नर्म अर्थात् करनी सुलभ देखि परती है अर्थात् स्वाभाविकही सब लोग वार्ता किया करते हैं वचनमात्र धर्मात्मा

योगी ज्ञानी बहुतेरे बने रहते हैं परन्तु उनके साधन करिबे कहँ कटुक करु कछु स्वाद नहीं जाते मन लगे पुनः कठोर ऐसी परिश्रम जो किसीकी की होती नहीं पुनः अनेक विघ्न जीव के घातक ताको कैसे भरोसा राखौं कि इनते कल्याण होई २ गोसाईंजी कहत कि वेद पुराण सज्जननते सब हाल सुनि समुझि बूझिकै भर्म में जनि भूलहि कि काहू साधन ते कल्याण होई यह आशा त्यागि हे मन! तू अब त्यहि प्रभुकों गुलाम होहि जाहि सबही की शर्म जाको जीवमात्र के रक्षा करिबे की लाज है ३॥

(१३३) राम से प्रीतम की प्रीति रहित जीव जाय जियत।
जेहि सुख सुख मानिलेत सुख सो समुझ कियत १
जहँ जहँ जेहि योनि जनम महि पताल वियत।
तहँ तहँ तू विषय सुखहि चहत लहत नियत २
कन विमोह लख्यो फट्यो गगन मगन सियत।
तुलसी प्रभु सुयश गाइ क्यों न सुधा पियत ३

टी०। राम ऐसे प्रीतम अर्थात् जे निषाद वानर रीछ राक्षसन को सखा बनाय लोक में सुख सुयश दीन्हे परलोक में निजधाम पठाये पुनः जीवमात्रपर जिनकी कृपादृष्टि सेवामें सुलभ रक्षामें सबल दयालु दान में उदार इत्यादि गुण भरे रघुनाथजी ऐसे प्रीतम जीवमात्र को प्यारे तिनकी प्रीति ते रहित विमुख उदासीन जीव जियत में जाय नाम वृथाही देह धरे हैं काहेते इन्द्रिय विषयन में आसक्त सुगंध पान भूषण वसन वाहन भोजन युवती नृत्यगान कौतुक मन्दिर शय्या इत्यादि ज्यहि सुख को तू सुख करि मानिलेता है ताको अंतफल तौ समुझ कियत नाम क्या होइगा भाव यामें आसक्त रहे नरक चौरासी अंतमें हैं तामें क्यों मन देता है १ महि भूमिलोक पाताललोक वियत नाम स्वर्गलोक इत्यादिकन में जहां जहां सुर, नर, नाग, पशु, पक्षी आदि ज्यहि योनि में जन्म धरे तहां तहां तू जिस सुखको चाहता सो सर्वत्र लहत नाम पावतरहा कौन कारणते नियत नाम भाग्याधीन यथा॥ "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः" (इत्यमरः)॥ अर्थात् शुभाशुभ जैसे कर्म कीन्हे तिनहीं को फल जौनी देहमें आसमय जैसी भाग्य उदय भई तैसाही दुःख सुख भोगत रहे ताते भोजन स्त्री पुत्र धामादि तौ सबै योनिन में हैं तिस विषयसुखहेतु सुन्दर उत्तम मनुष्यतनु पाइकै व्यर्थ आयु क्यों वितावताहै २ पूर्व आत्मरूप सबल पुष्टांग रहा अरु आकाशसम अखंडसमूह आनन्द रहा अब विमोह विशेषि मोहकरि लख्यो अर्थात् कारण मायाते आत्मरूप भूलि जीव देहाभिमानी ह्वै क्षीण परिगयो विषयसुखमें परि गगन आकाश सम अखण्ड आनन्दसों फाट्यो नाश भयो ताको मगन सियत भाव देह सुखकी उपाय करि सुखकी परिपूर्णता चाहताहै सो कैसे ह्वैसकत ताते विषयविष त्यागि यथा लोक व्यवहारमें मनु लगाये है तैसेही मनु लगाइ प्रभुको सुयश गाइ क्यों न सुधा पियत अर्थात् रघुनाथजीको सुंदर यशकीर्तन करि प्रेमरूप अमृत काहे नहीं पान करता है जाके प्रभावते जीव अमर होइगो ३॥

(१३४) तोसेहौं फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत ।
सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत १
छोटो बड़ो खोटो खरो जग जो जहँ रहत ।
अपने अपने को भलो कहु सो को जो न चहत २
विधिलगि लघु कीट अवधि सुख सुखी दुख दहत ।
पशुलौं पशुपाल ईश बांधत छोरत नहत ३
विषय मुद निहार भार शिर को कांधे ज्यों वहत ।
योंहीं जिय जानि मानि शठ तू सांसति सहत ४
पायो केहि घृत विचार हरिणवारि महत
तुलसी तकु ताहि शरण जाते सब लहत ५

टी० । हे जीव ! जामें तेरा परम हितहै पुनः पुनीत जामें कछु असत् बात नहीं है पुनः सत्य वेद सिद्धान्त प्रामाणिक ऐसे प्रियवचन श्रवणरोचक तोसे हौं मैं वारंबार कहत हौं तिनको सुनि मनमें गुनि विचार करि समुझि सुगम जामें सहज निर्वाह पुनः सुमग सुन्दर रास्ता ताको क्यों नहीं गहत सुन्दरी सुखद मारग पर काहे नहीं चलता है भाव शरण पथ चले प्रभु तेरे सहायक हितकार बने रहैंगे१ कैसे हितकार बने रहैंगे यथा सुर, नर, मुनि, नागादि यावत् देहधारी हैं ते सब आप आपने स्वामीके आश्रित रहतेहैं तिनमें छोटे पशु पक्षी आदि मध्यम सुरासुर मनुष्यादि बड़े ऋषि मुनि ब्रह्मादि तिनमें खोटे तमोगुणी अधर्मी मध्यम रजोगुणी धर्माधर्म दोऊ के.कर्ता खरे सतोगुणी सुधर्मी इत्यादि जगमें जो जहां जिस लोक में रहत तहां अपने अपने आश्रितनको भलो होनो सो कहौ को ऐसा है जो नहीं चहत भाव अपनेको भला सब चहते हैं तैसे शरणागत को भला रघुनाथीजी चाहते हैं अरु साधारण कर्माधीन फलदायक हैं २ कैसे कर्माधीन फलदायक हैं यथा विधि ब्रह्मालगि बड़े जीव पुनः लघु छोटेनकी अवधि हद्द कीटपर्यंत यावत् जीव हैं ते सब सुख पाइ सुखी शीतल होते हैं तथा दुःख पाइ दहत तप्त होते हैं सो दोऊ कर्मन को फल है ईश्वर देनहारा है कौन भांति यथा छेरी, ऊंट, गौ, महिषी, वृषभादि यावत् पशु हैं तिनको पालनेवाला जो पशुपाल है सो पशुनके स्वभाव कर्मअनुसार रक्षा दण्डादि करता है पुनः काल पाइ यथा रात्रीको विशेषि सबको बांधत पुनः प्रभातकाल विशेषि छोरत किसीको कार्य हेतु गाड़ी वहल हर मड़नी आदिमें नहत बहुतनको चरै हेतु वनको पठवत पुनः जो जो जैसा कार्य करत ताको तैसी जीविका देत तैसेही ब्रह्मादि कीटपर्यंत जीव पशु समान अरु ईश्वर पशुपालसम है सो अविद्यारात्री में मोहादि बन्धनसों बांधता है ज्ञानभोर में छोरता है जो जैसे कर्मको अधिकारी तासों तैसाही कार्य करावताहै बहुतनको संसारवनमें विषय तृणादि चरावता है कर्मानुसार फल देताहै ३ जाकी आधीन सब हैं तिस ईश्वर सों विमुख है जो विषयसुखमें मुद आनन्द मानेहैं ताको फल निहारु विचारि देखु कैसा असहन दुःख परैगो यथा शिरको भार ज्यों कांधे वहत

अत्यंत बोझा जो शिरपर न चलिसक्यो तब कांधेपर लेचलना परत भाव महा-दुःख भोगना परत योंही जीवते जानिकै मानि ले विश्वास करु हे शठ, महाअज्ञ! इसी विषयसुख में सुखी ह्वैके तू सांसति महादुःख सहता है अस विचारि विषय-सुख त्यागि ईश्वर में प्रीति करु४ काहेते विषय त्यागु कि यह विचारि देखु हरिण धारि मृगको भ्रममात्र जो सूर्यकिरण में जल देखाता है ताको महत मथत संते क्यहि पुरुषने घृत पायो भाव जलमें घृत होनही नहीं ताहूपर झूठा जल तहां घृत कैसे भाव देहाभिमानमें सुख हई नहीं सोऊ विषयासक्ती तहां सुख कैसा काहूको मिलिसक्ताहै ताते विषय त्यागि हे तुलसी! ताहि शरण तकु जा प्रभुते सब जीव-मात्र सुख लहत पावत अर्थात् जिनकी कृपाते चराचर जीवमात्र सुख पावते हैं तिन रघुनाथजीकी शरणागती में आपना कल्याण देखु अंते सुख नहीं है ५॥

(१३५) ताते हौं बार बार देवद्वार परि पुकार करत।
आरति नति दीनता कहे प्रभु सङ्कट हरत १
लोक पाल शोक विकल रावण डर डरत।
का सुनि सकुचे कृपालु नर शरीर धरत २
कौशिक मुनितीय जनक शोच अनल जरत।
साधन केहि शीतल भये सो न समुझि परत ३
केवट खग शबरि सहज चरणकमल न रत।
संमुख तोहिं होत नाथ कुतरू सुफल फरत ४
बन्धुबैर कपि विभीषण गुरुगलानि गरत।
सेवा केहि रीझि राम किये सरिस भरत ५
सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत।
ताको लिये रामनाम सब को सुढर ढरत ६
जाने बिनु राम रीति पचि पचि जग मरत।
परिहरि छल शरण गये तुलसिहु से तरत ७

टी०। प्रभुकी शरणागतिन में कल्याण देखिपरत तातेहौं मैं देवद्वार परि श्रीरघुनाथजीके मन्दिर के द्वार भाव दीन याचक ह्वैकै वारवार पुकार करतहौं काहेते आरति जो दुःख ताके भरे जे जन नत नमस्कार करि दीनता कहे आपना दुःख रघुनाथजीसों सुनाये ते तुरतही प्रभु संकट हरि लेतेहैं ताको प्रमाण आगे कहत १ काहेते जानिये कि दीननको संकट तुरतही हरते हैं कि देखिये इन्द्रादि लोकपाल शोक दुःख करिकै विकल रहैं काहेते रावणके डर करिकै डरत रहैं तहां ब्रह्मादि सब मिलि पुकार कीन्हे तहां का सुनि अर्थात् दीनतै तौ सुनिकै कृपालु सकुचे विनय सुनि संकोचवशमें परे ताते ऐश्वर्य त्यागि नरशरीर धरत भाव बाल, कुमार, पौगण्ड, किशोरादि अवस्था मनुष्यनकी नाईं ग्रहण कीन्हे २ राक्षसनते वध नहीं होने पावतरहै ताते कौशिक विश्वामित्र पुनः परपतिरत पापा पतिकी शापते गौतम

मुनि की तीय अहल्या पुनः बिना धनुष टूटेते जनक इत्यादि शोच अनल जरत शोचरूप अग्नि ते हृदय जरा जातरहै ते सब क्यहि साधन उपाइ करिकै शीतल भये उरकी शोच अग्नि बुभी आनन्द भये सो कारण समुझि नहीं परत कि क्या उपाय इन लोगोंने किया भाव सब शक्तिमान् समर्थ रहे परंतु शक्तिकरि शोच नहीं मिटिसका केवल आरत देखि प्रभु दया करि उनके शोच मेटे ३ केवट तथा खग जटायु शवरी इत्यादि सहजस्वभाव ते चरण कमलनमें रत नहीं रहे अर्थात् दर्शन भये पर जैसी प्रीति प्रकट भई है तैसी प्रभुपदकमलन में प्रीति पूर्व नहीं रही है हे नाथ! श्रीरघुनाथजीते सब आपुके सन्मुख शरण होतही सब कैसे भये यथा कुतरु अर्थात् सेउँढ़ा, थूहर, अकुहर, सिहोर, बबूर, बहेरा आदि कुत्सित वृक्ष तेऊ सुफल फलत अर्थात् पूर्व कहे वृक्षनमें आंब, अनार, नासपाती, सेब, अँबरूत, नारंगी, सरीफा इत्यादि सुंदर फल फले भाव केवट कुजाति हिंसारत धर्म कर्म-रहित रहा सोऊ सन्मुख है चरणोदक पान करि कुलसमेत पावन यशी है परधाम को अधिकारी भया पुनः जटायु अधम पक्षी मांसअहारी रहा सोऊ सन्मुख है प्रसिद्धही दिव्य देह पाइ परधामको गया तथा शवरी स्त्री भीलिनि महानीच सोऊ सन्मुख है प्रभुसों माता तुल्य आदर पाइ प्रभुपद में लीन भई इन सबपर प्रभुकी कृपै को प्रभाव है साधन उपाइ किसी की नहीं महाअपावनते परमपावन भये इति कुतरु सुफल फरे ४ कपि सुग्रीव आपने बन्धु बालिके वैरकरि ऐसे दुःखित रहैं जिनको कहीं बैठैको ठेकाना न रहै औरे सुखकी कौन बात तथा बिभीषण आपने बन्धु रावण के वैरकरि अत्यन्त अधीर भये जिनका शरण राखनेवाला कोऊ कहीं नहीं देखि परा ताते सुग्रीव विभीषण दोऊ गुरुगलानि गरत अर्थात् बड़ी भारी गलानिते मरे जातिरहैं तिनकी क्यहि सेवाते रीझि अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! सुग्रीव बिभीषण कौन ऐसी सेवा आपुकी कीन्हे जाते रीझि प्रसन्न ह्वैके पूर्वही भरतजीकी सरिस किये भाव बंधुसम सनेह राखि सखा प्रथमही बनाय लिये अरु सेवा उन पीछे को कीन्हे यहौ कृपै दृष्टि है उपाइ कछु नहीं ५ जहां आरत अनाथ शरण है दीनता सुनाये तिनके संकट हरिकै आनंद सहित कृतार्थ कीन्हे जे अर्थार्थी शरण आये तिनको अर्थ मान बड़ाईदै कृतार्थ कीन्हे जे पतित अपावन शरण आये तिनको पावनकरि कृतार्थ कीन्हे तहां यह जानना चाहिये कि जो पावन निष्काम उत्तम रीति ते सेवकाई करै ताको प्रभु क्या देते हैं तापर कहत कि साहिब अनुहरत भाव स्वामी की योग्य सेवकाई में सब आचरण उत्तम दर्शावनेवाले पवन के पूत एक हनुमान्जी सेवक भये हैं काहेते ऐश्वर्य में यथा साकेतविहारी परात्पर परब्रह्म रघुनाथजी हैं तथा महाशंभु हनुमान्जी हैं यथा अयोध्यामाहात्म्ये ॥ महाशंभुः स्वयं सोपि कपिरूपो दुरासदः ॥ पुनः यथा उत्तम उदार दानी रघुवंशकुल में दशरथनन्दन भये तथा लोक के उपकारकर्ता पवन के पुत्र हनुमान्जी भये पुनः रघुनाथजी एकपत्नीव्रत हैं हनुमान्जी स्त्री को जानबै नहीं भये पुनः रघुनाथजी परिपूर्ण वीर हैं हनुमान्जी को नामै महावीर है यथा रघुनाथजी सुशील उत्तम उदार स्वामी तथा हनुमान्जी सदा अकाम मन वचन कर्मते प्रेमसहित सेवा में सदा तत्पर ऐसे उत्तम सेवक हनुमान्जी हैं तिनके आधीन है आपनी बराबरि

ऐश्वर्य प्रभु दिये सो कहत कि स्वामी की अनुहारि सेवक हनुमान्‌जी भये तिनकी कैसी ऐश्वर्य प्रकट किये कि तिन हनुमान्‌जी को नाम लेत चहै जो जौने संकट में होइ सबको रघुनाथजी सुढर ह्वैके ढरते हैं भाव वाको सब काम पूरण करिदेतेहैं ६ ऐसे रघुनाथजी की रीति यथा करुणा, शील, कृपा, दया, सुलभ, उदारतादि बिन जाने जग पचि पचि मरत अर्थात् कल्याणहेतु अनेक साधनमें परिश्रम करि करि लोग मरेजाते हैं प्रयोजन कछु नहीं होताहै अरु रघुनाथजी की कैसी रीति है कि छलछांड़ि शरण गये तुलसीदास हू ऐसे तरिजाते हैं भाव सुकृतिनकी कौन कहै शरण गये प्रभु पात की जीवन को कल्याण करते हैं ताते जो जीवको कल्याण चहै सो रघुनाथजी की शरण गहै ७॥

राग सूहो बिलावल।

(१३६)राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।

अगम जो अमरनहूं सो तनु तोहिं दियो १
दियो सुकुलजन्म शरीरसुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को २
यह भरतखण्ड समीप सुरसरि थल भलो सङ्गति भली।
तेरी कुमति कायर कल्पवल्ली चहति है विषफल फली ३
अजहूं समुझि चितदै सुनो परमारथ।
है हित सो जगहूं जाहि ते स्वारथ ४
स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो का तैं कौन वेद बखानई।
देखु खल अहिखेल परिहरि सो प्रभुहि पहिचानई ५
पितु मातु गुरु स्वामी अपनपो तिय तनय सेवक सखा।
प्रिय लगत जाके प्रेम सों बिन हेतु हित नहिं तैं लखा ६
दूरि न सो हितू हेरु हियेही है।
छलहि छांड़ि सुमिरे छोह कियेही है ७
किये छोह छाया कमलकर की भक्तपर भज तेहि भजै।
जगदीश जीवन जीव को जो साज सब सबको सजै ८
हरिहि हरिता विधिहि विधिता शिवहि शिवता जो दई।
सोइ जानकीपति मधुरमूरति मोदमय मङ्गलमई ९
ठाकुर अतिहि बड़ो शील सरल सुठि।
ध्यान अगम शिवहूं भेंट्यो केवट उठि १०
भरि अङ्क भेंट्यो सजल नयन सनेह शिथिल शरीर सों।
सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुवीर सों ११

खग शबरि निशिचर भालु कपि किये आपुने बन्दित बड़े।
तापर तिन्हकि सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े १२
स्वामी को स्वभाव कह्यो सो जब उर आनिहैं।
शोच सकल मिटिहैं राम भलो मन मानिहैं १३
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै।
ततकाल तुलसीदास जीवन जन्मको फल पाइहै १४
जपि नाम करहि प्रणाम कहि गुणग्राम रामहिं धरि हिये।
बिचरहि अवनि अवनीश चरणसरोज मनमधुकर किये १५

टी०। सनेही स्नेह को निबाहनेवाला अर्थात् जिन केवट, कोल, वानर, ऋक्ष, राक्षसनते परिपूर्ण स्नेह निर्वाह कीन्हे ऐसे स्नेही रघुनाथजी तिनसों हे जीव! तैं स्नेह न कियो भाव प्रभु के पदकमलन में प्रीति न कीन्ही तामें कल्याण तौ गावै भया एक कृतघ्नता तेरी यह है कि जो अमरनिको अगम देवतनको प्राप्त होना सुगम नहीं सो उत्तम मनुष्यतन तोहि रघुनाथजीने दियो ऐसे कृपासिन्धुते विमुख होता है १ कैसे कृपासिंधु हैं जिन्होंने सुकुल सुंदर उत्तम कुल में जन्म दियो ताहूपर खण्डितांग रुजादि अधिकांग कुरूपतादि रहित सर्वांग सुठौर बने ऐसा सुन्दर शरीर पुनः जो शरीर विद्या बुद्धि कर्मादि करि चारिफल को हेतु कारण है अर्थात् चातुरी आदि उद्यमते अर्थ फलकी प्राप्ति विधिपूर्वक अनुष्ठानते धर्म फलकी प्राप्ति प्रीति ते कामफलकी प्राप्ति भक्तिकरि मोक्षकी प्राप्ति इत्यादि मनुष्य तन चारिउ फल को कारण है पुनः जो मनुष्यतन पाइकै पण्डित वेद सिद्धांत के जाननेवाले ते उपासना अनुकूल भक्ति करि पुरारि त्रिपुरासुरके शत्रु जो शिवजी पुनः मुरारि मुर दैत्यके शत्रु जो भगवान् इत्यादि को परमपद पावतेहैं अर्थात् शैव हैं जे प्रीति-पूर्वक श्रवण, कीर्तन, सेवन, अर्चन, वंदनादि जे शिवजी की करते हैं ते शिवरूप को प्राप्त होतेहैं तथा वैष्णव हैं जे विष्णुकी परिपूर्ण भक्ति करते हैं ते विष्णुरूप को प्राप्त होते हैं ऐसा मनुष्यतन है २ पुनः देह के साथ सहायता कैसी दीन्हे कि यह भरतखण्ड सबमें उत्तम ताहू में सुरसरी गंगाजी के समीप जिनके दर्शन ते पाप नाश होत सुकृतिमें मनु लागत इत्यादि थल भलो अर्थात् सुकृति उपजावनेवाली भूमिका उत्तम पुनः संगति भली रामोपासक संत महात्मनको संग जाके प्रभावते श्रद्धा सुमति संतोष स्थिरता पाइ मन रामस्नेह में लागता है इत्यादि जीवके कल्याण होनेको सांगोपांग पाइकै तामें हे जीव! कायर कादर तेरी कुमति कुबुद्धि कैसी है कि कल्पवल्ली कल्पलता को विषफलनते फली चाहत है अर्थात् उत्तम कुल सब धर्म को अधिकारी सुंदर शरीर सब साधन करिसक्ता है भले थल में निर्विघ्न अधिकफल सिद्धि सत्संगते सदा श्रद्धा नवीन ऐसी उत्तम देह चारिउ फल विशेषि मुक्ति प्राप्त करनेवाली तामें कुबुद्धि जीवको नाशकरनेहारे विषयसुख को चाहती है ३ जो आयुर्व्यर्थ गई सो जानेदे अजहूं अवहूं सबेरहै ताते विचार करि समुझि के चित देके परमार्थ की बात सुन पुनः केवल परमार्थ नहीं है जगत् के विषे हितु सो यथा बन्धु पिता मित्र राजादि हितकार होनाहै सब कार्यकी सहायता करता है

ताहीं समान जाहिते स्वारथ भी है भाव लोक परलोक दोऊ सुखके देनहार वचन मैं कहौंगो ४ पुनः जो तोको परमार्थ की चाह नहीं है केवल स्वार्थ प्रिय है स्त्री, भोजन, पान, गन्ध, भूषण, गान, वाहन, धन, धाम की चाह है तौ सो स्वार्थ काते होताहै कौन स्वार्थ को देनहारा है जाको वेद बखान करत अर्थात् स्वार्थ परमार्थ सब वस्तु के देनहारे रघुनाथजीहैं रघुनाथजीकी आज्ञाप्रतिकूल कोऊ कछु नहीं देसक्ताहै ऐसा वेद गावत सो विचारि देखु ताते अहि सर्पको खेल परिहरि त्यागिकै अर्थात् सर्पके संग खेले विना काटिखाये बचैगो नहीं सो अपने हाथै मृत्यु बिसाहना है तथा संसार सर्पसम है तामें विषयरूप विष भरा है संसारीसुख में आनन्द रहना खेलना है अतिआसक्त होना काटिखाना है विषयासक्ती विष व्यापि जाना है तामें काम, क्रोध, मोहादि लहरिनते जीव नाश होता है ऐसा जानि वाको त्यागिकै जो स्वार्थ परमार्थ दोऊ को देनहारा है सो प्रभुहि पहिचानई तिन रघुनाथजी सों प्रीति करौ जो लोक परलोकादि सब सुखदेनहार हैं यथा विभीषण को दोऊ सुख दीन्हे ऐसा जानि संसार ते सम्बन्ध त्यागि प्रभु सों स्नेह लगाउ ५ कौन संसार के सम्बन्धी हैं यथा माता, पिता, गुरु, स्वामी इत्यादि जिनको पुत्र, शिष्य, सेवक बना है पुनः तिय स्त्री तनय पुत्र सेवक सखा मित्रादि जिनको आपना आज्ञाकार जानि अपनपौ राखे है इत्यादि छोटे बड़े यावत् देहसम्बन्धी हैं ते सब जा प्रभु के प्रेम ते प्रिय लागते हैं अर्थात् अनादिकाल ते जीव ईश्वर को संबंधी सेवक प्रेमी है ताही ते कृपा करि ईश्वर पालन करत ताही की शक्ति ते जीव में चैतन्यता है ताते सब में स्नेह करिबे की गति है ऐसे बिनहेतु पूजा भेंटादि प्रयोजनरहित हितू हित पालनकर्ता जो रघुनाथजी तिनको हे जीव ! तू न लखा संबंधी स्नेही न भया जे सदा तेरे समीपही बैठे रक्षा करते हैं ६ कैसे निकट कहां हैं सो कहत कि सो हितकर्ता श्रीरघुनाथजी तोसों दूरि नहीं हैं ताते हेरु मनु लगाइकै ढूंढु तौ हियेही में हैं भाव अन्तर्यामीरूप ते तेरे अंतरे में बसे हैं जो मिलता नहीं ताको कारण यहहै कि पूर्व को संबंधीहै जीव सो ईश्वरते छल करि विषयन में आसक्त है ईश्वर को भूलि गया सोई विषयासक्ती छलहि छोड़िकै सेवक सेव्यभावते प्रीतिपूर्वक सुमिरेते छोह कियेही देखि परैगा भाव कृपा दयासहित तोको प्राप्त होइगो ७ कैसे प्राप्त होइगो छोह कृपासहित प्रभु आपने करकमलकी छाया भक्तजन पर किये हुये प्राप्त होइँगे अर्थात् कृपासहित प्रभु भक्त के शीशपर हाथ धरे सदा रक्षा करते हैं पुनः भज तेहि भजै जो प्रभु को भजता है ताहूको प्रभु आपु भजते हैं भाव जो भक्त कहै सोई करैं यथा मनु शतरूपा के कहेते पुत्र भये प्रह्लाद के कहेते खंभ फोरि प्रकटे भीष्म के कहेते निज प्रतिज्ञा छांड़ि अस्त्र उठाये हनुमान् के हाथ मानौ बिकायही गये पुनः ऐश्वर्य में कैसे हैं सब जगत् के ईश ईश्वरन के ईश्वर हैं पुनः जीव के जीवन हैं अर्थात् अंतर्यामीरूप ते जीवमात्र के अंतर चैतन्यता प्रकाशित कीन्हे हैं अथवा ताही की आधार गहिकै जीव जीता है अरु विमुख भये मृतक है पुनः जो प्रभु सबके साज सजै अर्थात् जाको जौनी योग्य देखता है ताको तैसा अधिकार देता है ८ क्या अधिकार किसको दिया है सो कहत हरिहि हरिता हरि जो विष्णु

तिनको ब्रह्मांड की पालनशक्ति यह अधिकार दिया पुनः विधि जो ब्रह्मा तिनको विधिता जो उत्पत्ति शक्ति यह अधिकार दिया शिवजी को शिवता ब्रह्मांड की संहारशक्ति यह अधिकार दिया तथा महाविष्णु महाशंभु आदिकन को यथा योग्य अधिकार ज्यहि साकेतविहारी परात्पर परब्रह्म ने दिया सोई जानकीजी के पति श्रीरघुनाथजी माधुर्य में मधुरमूर्ति अर्थात् जिनको देखत संते नेत्र तृप्त नहीं होते हैं पुनः मोदमय अर्थात् ध्यान कीन्हे ते अत्यन्त आनन्द उर में होता है पुनः मंगलमयी अर्थात् दर्शनमात्र ते अनेक उत्सव उत्पन्न होते हैं अर्थात् ऐश्वर्य में जीवमात्र के पालक सब में व्यापक सब ईश्वरन को शक्तिदायक हैं यथा सुंदरीतंत्रे ॥ महाविष्णुर्महाशम्भुर्महामाया जलेशया । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो ऋषयस्तथा ॥ एते तावत्कला योगिन्मम रामस्स्वयं हरिः ॥ पुनः स्कन्दपुराणे विष्णुरुवाच ॥ नमो रामाय विभवे तुभ्यं विश्वैकसाक्षिणे।अहं ते हृदयं राम त्वं नाभिश्च पितामहः ॥ कण्ठस्ते नीलकण्ठोयं भ्रूमध्यं च तवेश्वरः । सदा शिवो ललाटस्ते तदूर्ध्वं च परः शिवः ॥ भूषणानि च तत्त्वानि विश्वाकारस्य ते प्रभो । अनन्ताः शक्तयो राम प्रदृश्यन्ते तव प्रभो ॥ अहं चादृष्टपूर्वांश्च पश्याम्यद्य पितामहान् । विष्णूनसंख्यान् पश्यामि त्वयि रुद्राननेकशः ॥ बहुरूपान् बहुभुजान् बहुचर्णान्महोदयान् । वर्त्तमानानतीतांश्च सुरानिति भविष्यति॥ नाहमन्तं प्रपश्यामि विभूतीनां तव प्रभो ॥ पुनः रुद्रयामले शिववाक्यम्॥यत्प्रभावेन हर्ताहं त्राता विष्णुरमापतिः। यत्प्रभावेन कर्ताभूद्देवो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥ रामतापिनीये ॥ यो वै श्रीरामचन्द्रः सभगवान् यः ब्रह्माविष्णुरीश्वरो यः सर्ववेदात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः ॥ पुनः श्रुतिः ॥ सः श्रीरामः सवितारी सर्वेषामीश्वरः यमेवेशः वृणुते सः पुमानस्तु यमवेदस्माद्भूर्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव इति यं नरहरिः स्तौतीयं गन्धमादनः स्तौतीयं यज्ञतनुः स्तौतीयं महाविष्णुः स्तौतीयं विष्णुःस्तौतीयं महाशम्भुः स्तौतीयं द्वैतं मण्डलं तपति तत्पुरुषं दक्षिणाक्षं मण्डलो वै मण्डलाव्यः मण्डलस्यामिति ॥ सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम् । पुनः माधुर्यरूपमें सुंदरता रमणीकता स्वरूपता माधुरी ऐसी है जिनको देखि पशु राक्षसादि जड़ सुर मुनि नरादि चैतन्य जो देखा रघुनाथजीको सोई मोहिगया पुनः दर्शनमात्र ते आनन्द मङ्गल उत्पन्न होतेहैं शील सुलभ उदार स्वभाव है ६ अतिही बड़ो ठाकुर अर्थात् ऐश्वर्य में सर्वोपरि परब्रह्म साकेतविहारी जिनकी आज्ञाते अनेकन ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि अनेकन ब्रह्माण्डन को कार्य करि रहे हैं सोई माधुर्य में सुठि कहे अत्यन्त सरल शीलमय स्वभाव अर्थात् सन्मुख भये नीचनैको आदर मान बड़ाई देते हैं सो प्रसिद्ध प्रमाण है कि जे ऐश्वर्यरूपते शिवादिकन को ध्यानमें पावना अगम है सोई माधुर्यरूपते ऐसे सहज स्वभाव हैं जे नीच जाति केवट को उठिकै अंकभरि भेंटे १० कैसे अंकभरि भेंटे कि अधिक स्नेह वशते शरीर शिथिल सर्वांग ढीले परिगये ऐसा प्रेम उमगा कि नयन सजल नेत्रनमें आंसु जल भरि आयो सो दशा देखि सुर जो देवगण सिद्ध योगी अणिमादि प्राप्तिवाले मुनि मननशील कवि रामायणादि ग्रन्थकर्ता इत्यादि सब कहते हैं कि रघुवीर सों प्रेम प्रिय कोऊ नहीं है अर्थात् जैसा रघुनाथजीको प्रेम प्यारा है ऐसा प्रेम प्यारा किसीको नहीं है काहेते औरन को तप, जप, यज्ञ, पूजादि

विधिवत् वनना प्यारा अरु रघुनाथजी को केवल प्रेमै प्यारा है और कछु नहीं चाहते हैं ११ काहेते जानियत कि और कछु पूजा तपादि नहीं चाहते हैं कि खग जटायु अधमपक्षी शवरी भीलिनि विभीषण निशाचर भालु जे रीछ कपि वानर इनते धर्म कर्म कछु नहीं वनिसक्ता रहै केवल प्रेम देखि उनको प्रभु आपते वड़े वन्दितलोक के वन्दना करिवे योग्य किये अपनाते अधिक तौ वड़ाई दिये ताहू पर तिन लोगन की सेवा सुमिरि सेवकाई की सुधिकरि प्रभु जनु सकुचनि में गड़े जाते हैं भाव इनकी सेवायोग्य उपकार हमसे नहीं हैसकी इति अधिक संकोच करते हैं अधिक वड़ाई देना रामतापिनी अरु रामार्चनचन्द्रिकादि में प्रसिद्ध है जहां यन्त्रराज पर प्रभु को पूजन लिखा है तहां हनुमान् सुग्रीव विभीषणादि की पूजा पहिले हैके पीछे प्रभु की पूजा होती है इति अधिक १२ जो रघुनन्दन स्वामी को शीलमय सरलस्वभाव कह्यो कि सेवकको अपनाने अधिक वड़ाई देते हैं तिस स्वभावको हे जीव ! जवं तू अपने उरमें आनि है दृढ़भरोसा राखि है तव चौरासी गर्भवास जन्म जरा मरण नरकादि भोगके जे शोच हैं ते सकल मिटि जाइँगे अरु रघुनाथौजी अपने मनमें तोको भला सेवककरि मानि हैं १३ कव रघुनाथजी भला सेवक करिमानि हैं हे जीव ! जव शुद्धस्नेह सहित हाथ जोरि माथो नाइहै दीनता सहित प्रणाम करिहै हे तुलसीदास ! मनुष्यतनु धरि जीवनको फल हरिपदप्राप्ति सो तत्काल प्रणाम करतही समय पाइ है जन्मांतरादि वार न लागी यह निश्चय विश्वास राखु १४ प्रभुकी कृपा भये पर आयुर्वल कैसे विताउ सो सुनु जपि नाम रसना कण्ठश्वासप्रति हृदय में निरंतर रामनाम जपु पुनः साष्टांग प्रभुको प्रणाम करु पुनः हृदयमें रघुनाथजीको धरि ध्यान राखे कृपा, दया, करुणा, शील,उदारतादि गुणनके ग्राम रामायणादि मुखसों कहि कीर्तन करतसंते अवनीश जो राजाधिराज श्रीरघुनाथजी तिनके चरणसरोज कमलरूपी पदनमें निज मन मधुकर किये अर्थात् अपने मनको प्रेमरस लोभी भ्रमर बनाय रघुनाथजीके पदकमलनमें वसाये या रीतिते अवनी जो पृथ्वी विषे विचरहि स्वइच्छित जहां चहु तहांरहु १५॥

(१३७)जिय जब ते हरि ते विलगान्यो। तब ते देह गेह निज जान्यो १
मायावश स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुणदुख पायो २
पायो जो दारुण दुसह दुख सुख लेश सपनेहु नहिं मिल्यो।
भवशूल शोक अनेक जेहि तेहि पन्थ तू हठि हठि चल्यो ३
बहु योनि जन्म जरा विपति मतिमन्द हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु विश्राम मूढ़ विचार लखि पायो कहीं ४
आनँदसिन्धु मध्य तव वासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा ५
मृगभ्रमवारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी ६
तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहां।
निज सहज अनुभव रूप तू खल भूलि अब आयो तहां ७

निर्मल निरञ्जन निर्विकार उदार सुख तैं परिहस्यो।
निष्काज राज विहाय नृप इव स्वप्नकारागृह पस्यो ८
तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करनि गांठ गहि दीन्ही ९
ताते परवश पस्यो अभागे। ता फल गर्भवास दुख आगे १०
आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ।
शिर हेठ ऊपर चरण संकट बात नहिं पूछै कोऊ ११
शोणित पुरीष जो मूत्र मल क्रिमि कर्दमावृत सोवही।
कोमल शरीर गँभीर वेदन शीश धुनि धुनि रोवही १२
तू निज कर्म जाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो १३
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो। परमकृपालु ज्ञान तोहिं दीन्हो १४
तोहिं दियो ज्ञान विवेक जन्म अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईश की हौं शरण जाकी विषममाया गुणमई १५
जेहि किये जीवनिकाय वश रसहीन दिन दिन अतिनई।
सो करै बेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जिन मति मई १६
पुनि बहु विधि गलानि जिय मानी। अब जग जाय भजौं चक्रपानी १७
ऐसहि करि विचार चुप साधी। प्रसवपवन प्रेस्यो अपराधी १८
प्रेस्यो जो परम प्रचण्ड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ज्ञान ध्यान विराग अनुभव यातना पावक दह्यो १९
अतिखेदव्याकुल अल्पबल क्षण एक बोलि न आवई।
तब तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हर्षित गावई २०
बालदशा जेते दुख पाये। अति असीम नहिं जाहिं गनाये २१
क्षुधा व्याधि बाधा भइ भारी। वेदन नहिं जानै महतारी २२
जननी न जानै पीर सो केहि हेतु शिशु रोदन करै।
सोइ करै विविध उपाय जाते अधिक तुव छाती जरै २३
कौमार शैशव अरु किशोर अपार अघ को कहिसकै।
व्यतिरेक तोहिं निर्दय महाखल आन कहु को सहिसकै २४
यौवन युवति संग रँगरात्यो। तब तू महामोह मदमात्यो २५
ताते तजी धर्म मर्यादा। बिसरे तब सब प्रथम विषादा २६
बिसरे विषाद निकाय संकट समुझि नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगत आवर्त संसृतिचक्र जेहि होइ सोइ कियो २७

क्रिमि भस्म विट परिणाम तनु तेहि लागि जग वैरी भयो।
परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो २८
देखतही आई बिरधाई। जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई २९
तांके गुण कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रकट देखु जग माहीं ३०
सो प्रकट तनु जर्जर जरावश व्याधि शूल सतावई।
शिर कम्प इन्द्रियशक्तिप्रतिहत वचन काहु न भावई ३१
गृहपालहू ते अति निरादर खान पान न पावई।
ऐसेहु दशा वैराग्य नहिं तृष्णा तरङ्ग बढ़ावई ३२
कहि को सकै महाभव तेरे। जन्म एक के कछुक गनेरे ३३
खानि चारि सन्तत अवगाहीं। अजहुँ न करु विचार मनमाहीं ३४
अजहूँ विचारु विकार तजि भजु राम जनसुखदायकं।
भवसिन्धुदुस्तर जलरथं भजु चक्रधर सुरनायकं ३५
विनु हेतु करुणाकर उदार अपारमायातारणं।
कैवल्यपति जगपति रमापति प्राणपति गति कारणं ३६
रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप शोक भय हारी ३७
विनु सतसंग भक्ति नहिं होई। ते तब मिलैं द्रवैं जब सोई ३८
जब द्रवैं दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।
जेहि दरश परश समागमादिक पापराशि नशाइये ३९
जिनके मिले दुख सुख समान अमानतादिक गुण भये।
मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोध ते सहजहि गये ४०
सेवत साधु द्वैत भय भागै। श्रीरघुवीर चरण लय लागै ४१
देहजनित विकार सब त्यागै। तब फिरि निजस्वरूप अनुरागै ४२
अनुराग सो निजरूप जो जग ते विलक्षण देखिये।
संतोष शम शीतल सदा हम देहवन्त न लेखिये ४३
निर्मल निरामय एकरस तेहि हर्ष शोक न व्यापई।
त्रैलोक्यपावन सो सदा जाकी दशा ऐसी भई ४४
जो तेहि पन्थ चलै मनलाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई ४५
जो मारग श्रुति साधु देखावैं। तेहि पथ चलत सबै सुख पावैं ४६
पावैं सदा सुख हरिकृपा संसार आशा तजि रहै।
सपनेहु नहीं दुख द्वैत दरशन बात कोटिक को कहै ४७

द्विज देव गुरु हरि सन्त विनु संसार पार न पावई।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरं रमापति गावई ४८

टी०। जवते कारण मायावश आत्मरूप भुलाइ जीव है हरिते विलगान्यो ईश्वर ते अलग भयो तवते देह तथा गेह घरको निज अपना करि जान्यो अर्थात् कार्य माया वश ईश्वर ते अपनपौ त्यागि इन्द्रिय विषयिनमें परि देहाभिमानी भयो देहके सुखहेतु स्त्री धनादि यावत् घरकी वस्तु तिनको अपना मानि लियो इत्यादि माया के वशते सत्य जो आत्मस्वरूप अथवा ईश्वरकी शरणागती योग्य जो शुद्ध किंकर स्वरूप ताको तौ विसरायो ईश्वरते विमुख भयो ताते सुख तौ गयो अरु जो झूंठा संसारी सुख ताको सांचा मानिलियो त्यहि भ्रमते चौरासी में जन्म मरणादि दारुण कठिन दुःख पायो यामें संदेह होत कि सदा निर्विकार सच्चिदानन्द ईश्वर सो कैसे माया में वद्ध है शुद्ध आत्मरूप भुलाइ जीव कहाय हरिरूप ते विलग भयो ऐसा तौ है नहीं सङ्का है कि स्वइच्छित कोऊ राजपद त्यागि रंक होवे पुनः माया तौ ईश्वर की आज्ञाकार है पुनः ऐसी शक्तिभी नहीं कि ईश्वरको वरवस वद्ध करिसकै पुनः ईश्वर अनेक रूप धरि प्रकृतिमण्डल में अनेक लीला करि पुनः जैसे आये तैसेही चलेगये ताते ईश्वर कवहूं मायामें वद्ध नहीं है सङ्का है यथा तुलसीकृत सतसैयाको ॥दोहा॥ और भेद सिद्धान्त यह, निरखु सुमति करु सोय। तुलसी सुत भव योग विनु, पितुसंज्ञा नहिं होय ॥ पुनः ॥ होत पिताते पुत्र जिमि, जानत को कछु नाहि। जवलग सुत परसो नहीं, पितुपद लहै न ताहि॥ अर्थात् यथा लोक में विना पुत्र उत्पन्न भये पितापद नहीं होत इसीहेतु पुरुष स्त्रिनमें रत होते हैं सो पुरुषको वीर्य स्त्री के उदरमें जाइ रजमें मिलि पुत्र है प्रकट्यो यद्यपि वह है पितैको अंश परंतु पुत्र भयेते पिताको सेवक भयो अर्थात् पिता है स्वामी कहायो पुत्रहै सेवक कहायो सो वर्तमान सवै पुत्र पिताकी सेवा करत आज्ञा मानत अरु जे नहीं मानते हैं ते अधर्मी कहावत यमपुर में दण्ड पावत ताही भांति परमपुरुष आदि प्रकृतिमें रत भयो तहां भगवत्को अंश आत्मतत्त्व चैतन्य वीजवत् है माया को अंश त्रिगुणात्म अहंकार रजवत् जड़ हैं दोऊ मिलि जीव है प्रकट्यो यद्यपि अंश एकही है परन्तु ईश्वर स्वामीहै जीव सेवक है भक्तिकरि ईश्वर को समीपी है तुल्य ऐश्वर्य पावत सोई विमुख विषयी है चौरासी भोगत जन्म मरणादि महा-दुःख पावत इत्यादि शरणागती त्यागि जवते जीव हरिते विलगान्यो विषय में रत है संसार सुखमें परि दुःखपात्र भयो १। २ ईश्वर ते विमुख है विषय सुखमें परि ऐसा दारुण कठिन दुःख पायो जो दुसह सहिलेवे योग्य नहीं अर्थात् गर्भवास में तथा जन्म होत मरत यम सांसति आदि जे असहन दुःख हैं ते तौ अनेक भांति पाये अरु सुखको लेश छींटमात्र सपनेमें भी नहीं पायो पुनः भव जो संसार तामें शूल यथा गर्भवास जन्मव्याधि जरामरण यमसांसति आदि पुनः शोक यथा हितहानि प्रियवियोग शत्रुको भय दरिद्रता आदि इति भवशूल शोक पीड़ादुःख अनेक भांति यथा चोरी भई पुनः अग्नि लगी ताते दरिद्रता आई वहुत शत्रु भये पुनः वन्धु पुत्रादि मरा इत्यादि ज्यहि मार्ग में अनेक होते हैं ताही पन्थमें

तू हठि जबरई चल्यो यथा अकारण विरोध परधन स्त्रीहरण परअपवाद हिंसा इत्यादि ३ अनेक पापकर्म कीन्हे ताके फलभोग हेतु नर नाग पशु पक्षी कीट पतंगादि अनेक योनिनमें जन्म पायो तहां जरावृद्ध अवस्था व्याधि हानि वियोग दरिद्रतादि अनेक विपत्ति पाये काहेते हे जीव! मतिमंद कुबुद्धी हरि श्रीरघुनाथजी को हित स्वामी करि नहीं मान्यो ताहीते विपत्तिबन्धनमें पर्यो हे मूढ़! विचार करि लखि देखिले श्रीरघुनाथजी सों विमुख ह्वैके किसी जीवने कहीं किसी ठौर विश्राम सुख पाया है अर्थात् कहीं किसीने नहीं पाया है ४ तव तेरे मध्य में आनन्दसिन्धुको वास हे जीव! तेरे अन्तरमें सुखको समुद्र सरीखे ईश्वररूप को वास है ताको विनों जानेते तू प्यासन मरता है अर्थात् ईश्वरको भुलाइ क्यों तृष्णा में विकल है भाव जो ईश्वर रूप में स्नेह करु तौ तृष्णादि दुःख नाश है जाइँगे ५ काहेते प्यासन मरता है कि आनन्दसिन्धु भगवत्रूप ताको भूलि यथा सूर्यकिरणि में मृगको वारि जलकी भ्रम होतीहै लहरिनको जल जानि धावा करता है तैसेही स्त्री, पुत्र, अन्न, धन, धामादि संसारके झूठे पदार्थ तिनको सत्य तू जीवते जानि लीन्हा तहां ताही संसार में तू सुख मानिके मग्न भया संसारी सुख में बूड़ा परारहा भाव शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि सुख में भूला परा रहा ६ जहां त्रयकाल में जल नहीं है तहां मग्न बूड़ा परा पुनः मज्जित स्नान करताहे पुनः पान करि वही जल पीताहै अर्थात् जिस संसार में न भूतकाल में सुख रहा है न वर्तमान में काहूको सुख है न आगे होयगा इति जहां तीनिहुँ कालमें सुख रूप जल नहींहै तहां इन्द्रिय विषयनमें आसक्त मगन है पुनः धन, धाम, स्त्री, पुत्र, परिवार, मित्रादि में अपनपौ माने प्रीति किहे सोई मज्जन करताहै पुनः सुगन्ध, युवती, वसन, गीत, भोजन, पान, नृत्य, भूषण, वाहन इत्यादि सुखभोग पान करता है अरु निज अपना आत्मरूप जामें सहजही वे उपाय अनुभव आनन्द तदाकार प्राप्त रहता है ताको भूलि हे खल, दुष्ट! अब आइ तहां संसार वृथा सुखमें परि दुःखको पात्र भया ७ निर्मल आवरणरहित अर्थात् जामें रज तमआदि कछु असत् पदार्थरूप मल नहीं मिला है पुनः निरञ्जन कारण मायारहित अर्थात् विषयवासना जामें नहीं पुनः निर्विकार जामें कामादि विकार नहीं है ऐसा उदार सहजसुख ताको तौ तू परिहर्यो त्यागि दीन्हेउ कौन भांति कि नृपइव राजाकी नाईं निष्काम राज विहाय कामनारहित परिपूर्ण राज छांड़ि स्वप्नसम कारागृह बंदीखाने में परो अर्थात् शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्द जामें ऐसा पूर्वरूप ताको भुलाइ देहाभिमानी ह्वै संसारसुख में परि बद्ध भयो ८ हे जीव! तैं निज अपनेही हाथन कर्मरूप डोरि बटिके दृढ़ पुष्ट कीन्ही पुनः अपने करन अपनेही हाथनसों गहि माया अरु अपनारूप एकमें पकरि तापर कर्मडोरि लपेटि गांठि दीन्ही अर्थात् अनादिते त्रिगुणात्मकसहित यावत् कर्म कीन्हे तामें लोकसुखकी वासना सोई पुष्ट डोरिहै संसारकी चाह गांठि है विना भोगे न छूटी सोई पुष्टता है ९ हे अभागे! जो कर्मनमें बँध्यो ताते मायाके वश पर्यो ताको फल आगे गर्भवास को दुःख है १० आगे गर्भवास में अनेक भांति के समूह बहुतभारी संसृत दुःखहैं जो माता के उदर में गत प्राप्त भये सन्ते जो दुःख होता है सोऊ जान्यो काहेते उदर गर्भ-

वासमें शिर तौ नीचे अरु हेठ गुदा इन्द्रिय ऊपर तापर चरण है अर्थात् मल मूत्र रक्त में झिल्ली में बांधा उलटा टँगाहै ऐसा तौ संकट तहां बात कोऊ नहीं पूछत अर्थात् उस समय दुःख सुखका पूछनेवाला हितकार कोऊ नहीं देखाताहै ११ तिस गर्भवास मैं शोणित जो रक्त पुरीष जो विष्ठा मूत्र मल यथा श्लोक। वसाशुक्रमसृङ्मज्जाकर्णविण्मूत्रविंणनखाः। श्लेष्माश्रुदूषिकाः स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ अर्थात् आम कफादि जो मल है इत्यादिको कर्दम कीच ताहूमें क्रिमि भेर इत्यादि आवृत सब दिशि घेरे तामें सोवता है अर्थात् ऐसी शय्यामें पराहै तबहूं खाटा खार करू आदि जो माता खाती है सो जाइ देहमें लागत इत्यादि कोमल तौ शरीर पुनः वेदन पीड़ा दुःख सो बड़ागम्भीर है ताते शिरधुनि पीटि पीटि अधीर है रोवता है १२ हे जीव ! जहां गर्भवास में तू अपने कर्मरूप जाल में घेरो बन्धनमें परा है तहां श्रीहरि अर्थात् माता पितासम उत्तम पालनकर्ता भगवत् तेरा संग नहीं तज्यो यथा बालक क्रीड़ा में अनेक व्याधी घिसाहता है तहां माता रक्षाहेतु संगही रहत तैसे प्रभु तेरे संग रक्षक रहते हैं १३ मल मूत्र क्रिमिकर्दमादि जो जो शूल भये तिनते रक्षा राखे इत्यादि बहुत विधि के जो दुःख परे तिनप्रति प्रभु पालन कीन्हे दुःख निवारे पुनः परम कृपालु अत्यन्त पालनहारे हैं ताते हे जीव ! तोको प्रभु ज्ञान दीन्हे मोह मायादि हटाये अरु उधर संकट में है ताते जीव शुद्ध भया भवबन्धनको दुःख सूझा प्रभुकी शरणागती को सुख देखाना १४ जब प्रभु तोको ज्ञान दीन्हा तब विवेक आया अर्थात् संसार असार अरु हरिरूप सार देखिपरा तब गर्भवास, जन्म, जरा, मरणादि अनेक जन्मनकी सुधिभई प्रभुकी रक्षा देखि अधीर ह्वै बोल्यो कि तेहि ईश्वर की मैं शरण हौं जाकी त्रिगुणमयी माया विषम कठिन दुःखदायक है ताते उबारौ १५ कैसी वह त्रिगुणात्म मायाहै ज्यहिते निकाय समूह जीवनको अपने वश करिकै रसहीन कियो अर्थात् शृंगार सख्य दास वात्सल्य शांत इन रस में जो जीव ईश्वरको स्नेही है सो सम्बन्ध स्नेह मिटाय ईश्वरते विमुख करि विषयी देहाभिमानी बनाय संसार सुख चारा देखाइ बन्धनमें डारा या भांति जीवनको अमित बिहाल करती है अरु आपु दिन दिन प्रति अत्यन्त नई होत जात पुनः जीव प्रार्थना करत कि सो श्रीपति भगवान् वेगि सँभार करौ जिन ऐसी विपत्ति मैं मति सुन्दरि बुद्धि दई सो कृपा करि विपत्ति हरौ मैं शरण हौं आपु प्रणतपालता गुण सँभारि दया करौ १६ पुनः आपनी पूर्व की विमुखता विचारि जीव अन्तर में बहुत विधि की ग्लानि मानी कि मैं हरिते विमुखता करि महादुःख पायों अब जग में आइकै चक्रपाणि भगवान् को अवश्य भजिहौं अब ना विमुख ह्वै संसार में परिहौं १७ विषय त्यागि निश्चय प्रभुको भजिहौं ऐसाही विचारकरि चुपसाधी भाव इंद्रिनकी वृत्ति बटोरि हरिरूप में ध्यान लगाइ स्थिर रहिगयो ताही समय गर्भ को बहिराइ देनेवाली प्रसव पवन प्रेरयो हरि विमुख ह्वै अनेक अपराध करनेवाले अपराधी जीवको बाहर लैचल्यो १८ योनिको मण्डल बारहअंगुलको प्रमाण अरु शरीर को मण्डल चौदह अंगुलको प्रमाण ताको परम प्रचण्ड जो मारुत प्रेरयो अर्थात् अत्यन्त तेजवंत प्रसव पवन बरबस जब गर्भ को बाहर निकारने लग्यो तब हे जीव ! नाना कष्ट अनेक भांति के दुःख तैं सह्यो यथा

यंतामें तार खैंचेते होताहै तैसेही तेरी देहकी दुर्दशा भई जन्म होत समय सो जो गर्भवास में प्रभुको दिया ज्ञान भया रहै ताते विवेक आयो संसार असार जानि तेहिते विराग भयो अपने रूप को अनुभव भयो ताते हरिरूप में ध्यान लगायो इत्यादि सब सूखे ईंधनसम भयो ताको यातना जन्म समय को दुःखरूप पावक अग्नि ने दह्यो सबको भस्म करि दियो अर्थात् महादुःख ते सब भूलि गयो १६ तासमय एक तौ अल्पनाम थोरा बल पुनः अति खेद अत्यन्त दुःखते ऐसा विकल ह्वै गयो कि एक क्षणभरि बोल नहीं आवता है ऐसा मूर्च्छित ह्वै गयो तब तासमय को तीव्र अत्यन्त कष्ट है ताको तौ कोऊ नहीं जानत परिवार जन सब हर्षित आनन्द सहित गावतेहैं भाव जीव के संकट को साथी कोऊ नहीं सब स्वार्थ के साथी हैं विपत्तिमें साथी एक ईश्वरै देखि परत २० जन्मते पञ्चवर्ष पर्यन्त बाल अवस्थामें जैसी दुर्दशा रही सो कहते नहीं बनत काहेते बालदशा में जेते दुःख पाये हैं तेते अति अनीश ते गनाये नहीं जाते अर्थात् ईश कही ईश्वर भाव सब विधि समर्थ तथा अनीश कही जीव जो सब विधि असमर्थ सोऊ अति अनीश अत्यन्त पुरुषार्थ रहित तिनते असंख्य वस्तु कहां गने चुकि सकत ताते स्वमति अनुसार कछु कहत हैं २१ बाल दशामें कैसे दुःख होते हैं सो यथा एक तौ क्षुधा भूख अधिक पुनः व्याधि रोग अनेक विधि के यथा तालुकंटक, महापद्म, कुकुणक, अजगल्ली, पारिगर्भिक, अहिपूतना, बालग्रह, ज्वर, शूल, अफरा, संग्रहणी, खांसी आदिते भारी बाधा जीवको दुःखदायक हैं पुनः महतारी वेदना दुःख नहीं जानत २२ कछु कहिबे की तौ गति नहीं जब कछु दुःख भया तब रोवता सो बिना कहे जननी माता तौ जानती नहीं कि कौने हेतु शिशु बालक रोदन करता अर्थात् जो जानै तौ वाकी अनुकूल उपाय करै अरु बिना जाने ते माता विविध अनेक भांतिकी सोई उपाय करती है जामें हे जीव! तेरी छाती अधिक जरै यथा भूखते रोवता है माता अजीर्ण जानि चूर्ण घूंटी देती है अथवा पेटमें अफरा शूलते बालक रोवत है माता भूखा जानि दूध पियावत इत्यादि अधिक दुःख बढ़नेवाला उपाय करती है २३ शैशव जो बालअवस्था पञ्चवर्षतक अति अज्ञ पुनः कुमार दशवर्ष तक चञ्चलस्वभाव अरु सोरहवर्ष तक किशोर अवस्था अति चञ्चल अनय अधर्म हिंसा निर्दयाते अपार अघ समुद्र सम अपार असंख्य तेरे पाप तिनको कौन कहि सकै ऐसे महापाप असंख्यन हर्ष सहित कीन्हे तिनको फल महादुःख सो रोइ रोइ भोगे हे निर्दयी, महाखल, जीव! अर्थात् यथा दयाहीन महादुष्ट जैसे समूह पाप तू कीन्हे तैसेही फल दुःख पाये ताते त्वहिं वितरेक तोको बराइ आन दूसरा कोऊ कहु को ऐसाहै जो ऐसे कराल दुःख सहिकै अर्थात् जे परलोक को डरते हैं ते न संसारीसुखमें भूलैं न असत् कर्म करैं शुद्ध मन भगवत् में लगाये रहते हैं तिनको गर्भवासादि दुःख नहीं परत अरु तू ऐसे हरिविमुख विषयसुख में परे अनेक पापकरि गर्भवासादि दुःख भोगते हैं २४ पुनः जब यौवन अवस्था आई काम प्रचण्ड परो तब युवती, यौवना स्त्रीके प्रीतिरंग में रात्यो मन रँगिगयो भाव एकहु क्षण स्त्री चित्त ते नहीं उतरती है तब हे जीव! तू महामोहरूप मदिरा में मात्यो चैतन्यता गई बुद्धि नाश भई २५ जब महामोह मद में मात्यो तब धर्मकी

जो मर्यादा यथा धर्मशास्त्रे ॥ पात्रे दानं मतिः कृष्णे मातापित्रोर्निषेवणम् । शुद्ध-वाणी गवांग्रासः पड्विधो धर्मइत्यपि ॥ पुनः ॥ इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा । अक्षोभ इति मार्गोऽयं धर्मश्चाष्टविधः स्मृतः ॥ इत्यादि धर्मकी मर्यादा त्यागि अधर्मपर रुचि भई ताते माता, पिता, साधु, ब्राह्मणको मान्यता त्यागि पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, दान, कथादि की निन्दा करनेलगे परधन, परस्त्री, पर अपवाद, परहानि इत्यादि में मन लाग तव प्रथम जो गर्भवास में ज्ञान भये पर जो संसारसुख में भूलनेको विषाद पश्चात्ताप भयो रहै सो सब विसरि गयो २६ संसारसुख में परि पूर्व विषाद दुःख भूलिगये जिस सुख में भूला है ताको फल निकाय नाम वहुत संकट होयँगे तिनको समुझिके तेरो हियो छाती नहीं फाटि जाती है जिस जिस कारणते पूर्व दुःख भया सोई कर्म पुनः करताहै ताते संसार घूमता हुआ चक्र में परि पुनः गर्भवास को जायगा क्यों मिथ्या सुख में मन लगाइ नित्य सुख त्यागि महादुःखको पात्र बनता है २७ खायेते विट्नाम विष्ठा भया पुनः गाड़ि दीन्हेते क्रिमि खाइ जायँगे फूंकिदेने ते भस्म खाक ह्वैजायगो ऐसा जाको परिणाम नाम अंत है त्यहि पञ्चभौतिक तनु त्यहिलागि ताके हेतु जगत्भरे को वैरीभये सब सौं विरोध मानिलियो पुनः परदार परारी स्त्री में रतभयो परधन हरनेमें लगे परारा द्रोह इत्यादि करत में नित नवा संसार बाढ़ेउ विशेषि संसार को सांचा मानत गयो २८ हे जीव ! संसारी सुख देहाभिमान में भूलारह्या तेरे देखतेही वरवस आई बुढ़ापाअवस्था आइगई जाको तू सपनेहुमें नहीं बुलाई जाकी इच्छा नहीं राखा विना बुलाये जबरदन तोको दबाइवैठी २९ ता वृद्धावस्था के जो गुण हैं अर्थात् देहकी क्या दशा होती है सो कछु कही नहीं जात परंतु सो बुढ़ापा के गुण अवहूं देहधारिन में प्रकट हैं तिनको अपनी आंखिनसों देखिले जगमें लोगन की क्या दुर्दशा होती है ३० सो वृद्धादशा प्रकट जगमें देखु तनु तौ जर्जर देह अतिदुर्वल वलहीन सर्वाङ्गशिथिल पुनः जराके वश कफादिव्याधि यथा खांसी श्वास पुनः वायु करि शूल यथा शिर, नेत्र, दन्त, उदर, कटि, कर, पदादि में पीड़ा, इत्यादि सतावत है पुनः शिरकंप शीश हालत तथा प्रतिइन्द्रिय शक्तिहत अर्थात् नेत्र, कर्ण, मुख, कर, पदादि निर्वल ह्वैगये पुनः जो कछु किसीते कहत सो वचन काहूको भावता नहीं अर्थात् इधर तौ देहते आसक्त पुनः सब अनादर करिरहेहैं इति सवभांतिते दुर्दशा रहती हैं ३१ कैसी दुर्दशा होतीहै कि गृहपालहू ते घरके मालिकहू ते अति निरादर अर्थात् घरको मालिक अत्यन्त करिकै निरादर किहे रहत भाव न वाको वचन सुनै अरु न आपु कछु पूछै जब गृहपालनेही अनादर किया तब सबै अनादर करत ताते खान भोजनादि पान जलादि इत्यादि नहीं पावत अर्थात् समय पर खान पान नहीं पावत ताहूपर रुचि अनुकूल नहीं मिलत ऐसीहू कुदशामें संसार ते वैराग्य तौ आवता नहीं लोभवश ते तृष्णा धनादिकी वासना सो मन में तरंगैं बढ़ती हैं मनोरथपर मनोरथ होत ३२ महाभव अत्यंत संसार में बहुतकाल जो आसक्त रहा तामें असंख्यन जन्म पाये सो सब को कहि सकै किसके कहे चुकिसकते हैं ताते हे नीच, जीव ! एक जन्म के कछु गने वर्णन कीन्हे अर्थात् चौरासी लक्ष योनिन में जो जन्म पाये तिनको छांड़ि एक मनुष्य

जन्म के हाल कहे ३३ अण्डज जरायुज स्वेदज उद्भिज इत्यादि जो चारि खानि हैं तिनमें समुद्रवत् जो चौरासी लक्ष योनि हैं तिनमें संतत अवगाहत सदा बूड़त उतरातरहे अब मनुष्यतनु पायो तब अजहूं मनमें विचार नहीं करताहै भाव संसार को त्यागिकै क्यों नहीं प्रभुको भजता है ३४ अबहूं सबेरहै विचार करि संसारते विमुख ह्वैके भाव इन्द्रियविषय त्यागिके पुनः मन ते कामादिविकार तजि शुद्ध ह्वैके जननके सुखदेनहारे जो श्रीरघुनाथजी तिनको भजौ कैसे हैं दुस्तर जो भव-सिन्धु दुःखों करिके तरिवे योग्य नहीं ऐसा अपार, भवसागर ताको तरिवे हेतु जनको रथ अर्थात् नौका जहाज़आदि हैं भाव जिनकी अवलम्बकरि सहजही भव पार जाना है ऐसे चक्रको धारणकरनेवाले भाव महासबल हैं पुनः सुरनायक ब्रह्मा शिवादिके स्वामी हैं ३५ बिनु हेतु बेप्रयोजन करुणाकर जनके दुःखमें दुःखित है शीघ्रही दुःख मिटावनेवाले इति करुणागुण के आकर खानि हैं पुनः उदार याचकमात्र को परिपूर्ण दान देनेवाले हैं पुनः जामें पार जानेकी किसी जीवकी सामर्थ्य नहीं ऐसी अपार माया तामें तारनेवालेहैं पुनः कैवल्य मुक्ति ताके पति मुक्ति जिनके आधीन जगत्के पति चराचर पालनहारे रमा लक्ष्मीके पति सबको विभव ऐश्वर्य देनेवाले प्राणपति चैतन्यता प्रकाश करनेवाले पुनः जीवनकी मुक्ति के कारण हैं ३६ रघुनाथजी की भक्ति करिबेमें, सुलभ अर्थात् योग तपस्यादि परि-श्रमरहित केवल प्रेमसहित श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवनादि सुलभ साधन हैं पुनः लोकहू परलोक में सबभांतिको सुख करनहारी है पुनः सो भक्ति कैसीहै दैहिक, दैविक, भौतिकादि तीनिउँ तापैं पुनः हानि, वियोग, दरिद्रतादि शोक पुनः शत्रुभूत यमगणादिकी भय डर इत्यादिकी हरिलेनहारीहै ३७ पुनः विना सन्तनके संग भये भक्ति होती नहीं अर्थात् जब सन्तनकी संगतिमें रहै उनकी रीति रहस्य देखि वैसा स्वभाव आवै सेवाकरनेते प्रसन्नह्वै सन्त उपदेशकरैं तब रामस्नेह उपजै सोई भक्तिकी मूल है पुनः ते सन्त तब मिलैं जब सोई रघुनाथजी द्रवैं प्रसन्न होयँ ताते प्रभुकी शरण होना अवश्य चाहिये ३८ जब जीव प्रभुकी शरण गहै सो देखि जब दीनदयालु राघव द्रवैं निर्हेतु दीननपर दया करनेवाले रघुनाथजी प्रसन्न होयँ तिनकी दयाते जब साधुनकी संगति पाइये ज्यहि साधुन के समागम अकारण भेट ह्वै जाने ते पुनः दरशहितपूर्वक नेत्रनभरि देखने ते परस अर्थात् प्रणाम ते पद छुइ जाने ते कृपा करि हाथ धरि देने ते इत्यादि करि पापन की राशि नशाइये अनेकन पाप नाश है जीव शुद्ध ह्वैजाता है ३९ पुनः जिनके मिले संग रहे उनकी रीति रहस्य देखि वैसाही स्वभाव होने ते दुःख सुखसमान भाव न दुःख में दुःखी न सुख में सुखी दोऊ बराबरि ही लागत पुनः अमानता, समता, शान्त, संतोष, विराग, क्षमा, दया इत्यादि उत्तम गुण उत्पन्न भये पुनः सुबोध शुद्धपूर्वरूप को ज्ञान भया ताके प्रभावते देह स्नेहादि मिटा ताते देह सम्बन्धी विकार यथा मदभाव विद्या धनादि पाइ दर्प बढ़ावना पुनः मोह पूर्वरूप को भूलि संसार को सत्य मानना पुनः लोभ परधन लेने में ध्यान रखना पुनः विषाद हानि वियोगादि में पश्चा-त्ताप करना पुनः क्रोध ईर्षा ते वैर उपजावना इत्यादि यावत् विकार रहे ते सब सहज ही बिन उपायन मिटि गये ४० साधुन की सेवाकरत सन्ते रामस्नेह की

वृद्धि भई ताते द्वैतभय भागो अर्थात् जीव देहाभिमानी है संसारी सुख में परि भवसागर को जाता है इत्यादि द्वैत रूप की जो भय है सो भागी अन्तरते निसरि गई ताते श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दन में जीवकी लय लागी हर्ष सहित स्नेह स्थिर भया उर में रामसनेह स्थिर रहेते देहाभिमान मिटा ४१ देहाभिमान गयेते देह करिकै जनित उत्पन्न जोई दिन में विषय चाहा मन में कामादि इत्यादि सब विकारन को जीव त्यागि दियो तब फिरि निज आपने पूर्वस्वरूप में अनुरागो भाव जो प्रीति देह इन्द्रियन में रहै सोई जीवकी प्रीति आत्मरूप में स्थिर भई ४२ सो निज अपना आत्मरूप कैसा है जामें जीव अनुराग कीन्हो जो जगते विलक्षण देखिये अर्थात् जगत् देहधारिन में जो सुलक्षण कहावते हैं तिनते विशेषि सुलक्षण वा रूप में देखि परते हैं कौन भांति के हैं यथा सदा सन्तोष लोभ रहित सदा सम वासनारहित सदा शीतल क्रोधरहित दम इन्द्रियन की विषयरहित इत्यादि जो देहवन्त लेखिये अर्थात् जो आत्मरूपमें लक्षण हैं सो लक्षण देहधारिन में सदा एकरस नहीं रहि सक्के हैं ४३ पुनः निर्मल रज तमआदि मल जामें नहीं हैं पुनः निरामय आमय जो रोग अर्थात् कामादि रोग जामें नहीं हैं पुनः हर्ष जो खुशी शोक जो दुःख सो सुख दुःख त्यहि रूप में नहीं व्यापता है सदा एकरस आनन्द रहता है ऐसी दशा जाकी भई अर्थात् देहाभिमान जीवत्व बुद्धी त्यागि आत्मबुद्धी जाकी सदा एकरस बनी रहती है सो तीनिहु लोक में सदा पावन पवित्र है इति जीवको ईश्वर के समीप प्राप्त होने का मार्ग देखाये ताते लोक शिक्षात्मक जानना चाहिये ४४ हे जीव ! जो पूर्व कहि आये हैं त्यहि पन्थ पर जो मन लगाइकै जीव चलै तौ हरि श्रीरघुनाथजी काहे न सहाय होयँ भाव अवश्य रक्षक ह्वै सब विघ्न बाधा हरैंगे ४५ कैसे हरि सहाय करते हैं यथा राजाकी चलाई नीति मार्ग अमलदार सुनाइ देतेहैं ताही पथ जो प्रजालोग चलते हैं तिनकी राजा सब बातते रक्षा राखत अरु जे प्रतिकूल चलते हैं तिनको दण्ड होत तैसेही प्रभु की नीतिमार्ग वेद हैं ताको सिद्धान्त साधुजन सबको देखावते हैं त्यहि पथ ताही मार्गपर चलत सन्ते सबै जीव सुख पावत भाव ईश्वर रक्षा करत हैं अरु जे प्रतिकूल चलत तेई दुःख पावते हैं ४६ कैसे दुःख पावते हैं जे ईश्वरको भुलाइ संसार की आशा राखि विषयसुख में परे हैं तेई दुःख पावते हैं अरु जे विषयसुख संसार की आशा त्यागि हरि शरणागती में रहैं सो हरि श्रीरघुनाथजी की कृपा ते सदा सुख पावैं कैसे सुख पावैं कि जन्म मरणादि जो भवको दुःख है पुनः संसार की सचाई देहाभिमान इत्यादि जो जीव में द्वैत है इति दुःख द्वैतके दर्शन सपनेउ में न होइ जागत की को कहै ताते कोटियात को कहै भाव करोरिन बातकी एक बात यही है कि सदा जीवन्मुक्त दशा बनी रहैगी लोकव्यवहार वामें छुइ न जाइगो ४७ संसारी जीव प्रथम तौ द्विज ब्राह्मण की सेवा करै तिनके मुखते वेद धर्म अरु हरियश श्रवण करैं ताके प्रभावते जब मन धर्म में लागै तब देवनकी सेवा करैं अर्थात् निर्वासिक तीर्थ, व्रत, पूजा, पाठ, संध्या, तर्पण, दान, होमादि करै ताके प्रभावते जब देहाभिमान छूटै शुद्ध जीव होइ तब गुरुके शरण ह्वै सेवा करै तिनकी कृपा उपदेश प्रभावते रामसनेह जब उपजै तब दृढ़ह्वै प्रभुकी शरणागती गहै ताके

प्रभाव ते जब जीवत्व बुद्धि मिटै अर्थात् कामना पूर्ण पाइ हर्ष हानि भये पर विषाद सुसंग में ज्ञान कुसंग में अज्ञान देहाभिमान देहसंबंध में अपनपौ इत्यादि न उठै इति जीवबुद्धि छूटै तब श्रीरघुनाथजी के पदकमलन को अनुराग सदा एकरस अन्तर में बनाये रहै ताके रक्षा हेतु सहायक जो हरिजन तिनकी संगति में सदा रामयश श्रवण कीर्तन कीन करै सोई कमलदलवत् है वामें संसाररूप जल छुइ न जाइगो इस क्रमते द्विज ब्राह्मण वेद तत्त्वज्ञाता देवता गुरु हरि सन्तजन इनकी सेवा बिनु संसारसागर को पार कोऊ जीव नहीं पाइ सक्ता है सो सब हरिकृपा ते हैसक्ता है यथा जब द्रवहिं दीनदयालु राघव साधुसंगति पाइये यह जानि गोसाईंजी कहत कि त्रास भवदुःख के हरणहार जो रमापति भगवान् तिनको यश सदा गाइये श्रवण कीर्तन कीजिये ४८ ॥

इति पूर्वार्द्धः समाप्तः ॥

विनयपत्रिका सटीक का उत्तरार्द्ध ॥

राग बिलावल ।

(१३८) जो पै कृपा रघुपति कृपालुकी बैर और के कहा सरै।
होय न बांको बार भक्तको जो कोउ कोटि उपाय करै १
तकै नीच जो मीच साधु की सो पामर तेहि मीच मरै।
वेदविदित प्रह्लाद कथा सुनि को न भक्तिपथ पाउँ धरै २
गज उधारि हरि थप्यो विभीषण ध्रुव अविचल कबहूं न टरै।
अम्बरीषकी शाप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ३
सो धौं कहा जु न कियो सुयोधन अबुध आपने मान जरै।
प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय यश पाण्डवने बरिआइ वरै ४
जो जो कूप खनैगो पर कहँ सो शठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहु सुख न सन्तद्रोही कहँ सुरतरु सोउ विषफरनि फरै ५
हैं काके द्वै शीश ईश के जो हठि जन की सीम चरै।
तुलसिदास रघुवीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै ६

टी०। यश श्रवण, कीर्तन करनेते प्रभुकी कृपा बनी रहैगी ताते कोई बाधा न व्यापिसकैगी काहेते कृपालु कृपागुणमन्दिर जो रघुनाथजी तिनकी कृपा जोपै निश्चय करिकै बनीहै तौ औरके बैरते कहा सरै अर्थात् जो रघुनाथजी जापै रक्षक बने हैं तौ जो और कोऊ सुर, मुनि, नर, नागादि वैरीह्वै बाधा करैगा तौ वाको क्या कार्य सिद्ध ह्वै सक्ता है भाव वह बाधा घूमिकै उसी पर परैगी काहेते एक दुइकी कौन गनती जो चाटक, नाटक, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, प्रयोग, अस्त्र, शस्त्र, हानि, शापादि कोई कोटिन उपाय करि जो विघ्न बाधा करै तिन करिकै भक्तको बार कबहूं न वांका होई भाव देह मनआदिकी कौन कहै वाको एक रोम न टेढ़ा होइगो सब उपाय व्यर्थ जायँगे, १ ऊंच उत्तम पुरुषनते तौ ऐसा काम होई नहीं सक्ताहै ताते नीच दुष्ट दैत्य राक्षसादि जो साधुकी मीचु तकै अर्थात् दुष्टता स्वभावते जो साधुको मारिडारिवेका उपाय करै सो पामर नीच जो उपायकर्ता है त्यहि मीचु ताही मृत्यु ते आपहीं मरै अर्थात् साधुके मारबेका जो उपायकर्ता है सोई उपाय घूमिकै उसी करनेवाले दुष्टको मारिडारैगी काहेते रघुनाथजी की रक्षा को प्रभाव ही ऐसा है ताकी प्रमाण देखावत कि हिरण्यकशिपु दुष्ट ताते जो भक्तद्रोह किया सो वेदद्वारा लोक में विदित सब जानते हैं तामें प्रह्लादजी पर जो प्रभु की भक्त-वत्सलता है यथा पहारते डारे जलमें बोरे अग्निमें फूंके एकहू न व्यापी तब शिर काटने पर खड़ा भया तैसेही नृसिंहजी प्रकट ह्वै तुरतही दुष्ट को पेट फारे इति

प्रह्लादकी कथा सुनिके को ऐसा अज्ञान है जो भक्तिपथपर पांव न धरै अर्थात् प्रह्लादजीको हाल सुनिकै भक्तवात्सल्यता को प्रभाव विचारि भक्ति करिवेकी इच्छा सबके होतीहै काहेते दीन अधीन ह्वै प्रभुकी शरण होना यही भक्ति की मूल है सो तो जबै जिसको अत्यन्त संकट परत तब यही पुकारत कि हे करुणासिन्धु, प्रणत-पाल, दीनदयालु, आरतहरण ! यथा प्रह्लादको उबार्यो तैसेही दया करि मोको उबारो ऐसी वाणी संकटपरे किसके मुखते नहीं निसरती है इति को भक्तिपथपर पांव नहीं देताहै २ गज उधारि अर्थात् जब ग्राहने ग्रसा तब पूर्ववत् वाणी गज-राजने पुकारा कि हे आरतहरण ! मैं आपकी शरण हौं मोको उबारो सो सुनि तुरत ही प्रभु वाको उबारा गज ग्राह दोऊको उद्धार किया पुनः हरि विभीषण को थाप्यो अर्थात् रावण जब पुरते निकारि दियो जब विभीषणो ऐसही पुकारा यथा दोहा ॥ श्रवण सुयश सुनि आयों, प्रभु भञ्जन भवभीर । त्राहि त्राहि आरतहरण, शरण सुखद रघुवीर ॥ यही वचन सुनि रघुनाथजी परलोकते अभयकरि विभीषण को अचल राज्य दिया तथा ध्रुव ऐसे अचल थलपर वास पाये जे कबहूं ठौरते टरते नहीं अर्थात् दूसरी माता के अनादरते जब घर त्यागि बनको गये तब यही कहा कि जो कृपासिन्धु सबको विपत्ति में संकटहर्ता है ताही प्रभु की मैं शरण हौं ताहीपर प्रभु प्रसन्न ह्वै दर्शन दै कृतार्थ कीन्हे पुनः राज्यसुख भोग कराय पीछे अचल थल वास दीन्हे पुनः इन्द्र के पठाये व्रतभंग करनेहेतु दुर्वासा अम्बरीष को शाप दै कृत्यानल छांड़े तिनपै सुदर्शन छूट सो कहीं न बचिसके तब अम्बरीषै की शरण में बचे सोई अम्बरीष की शाप देने की सुरति करि सुधि आये पर महामुनि दुर्वासा अजहूं ग्लानिगरे लज्जाकरि मरेजाते हैं भक्तिको प्रभाव ऐसा है ३ सो ऐसी करणी संसार में धौं कहां है जो पाण्डवन के विगारिवे हेतु सुयोधन ने नहीं किया भाव कपट पांसाते राज्य जीति लिया द्रौपदी को चीर [illegible] घरते निकारि दिया लाक्षाभवन में फूंकि दिया देशान्तर किया दुर्वासा को शाप देने हेतु पठाया इत्यादि ऐसी कोई उपाय संसार में नहीं है जो दुर्योधन ने नहीं किया अर्थात् सब उपायते चाहा कि पाण्डवन को विगारिडारों काहेते ऐसा किया कि अबुध निर्बुद्धि रहा ताते आपने मान जरै अर्थात् राज्य, कोष, सेना, सुभट, बल, प्रताप, वीरता इत्यादि परिपूर्ण पाइ ताके अभिमानरूप अग्नि में सदा जरा करता रहै अर्थात् मान, क्रोध, ईर्षा, कठोर वचन, दृढ़ वैर, हिंसा इति षट्अंश अहंकार के हैं यथा जिज्ञासापञ्चके ॥ मानः क्रोधश्च ईर्षा च पारुष्यमुपहिंसनम् । दृढवैराद्य-हंकारे वर्त्तन्ते लक्षणानि षट् ॥ तौ जो अभिमाने परिपूर्ण है तौ ईर्षा, वैर, हिंसा, क्रोधादि आपही अग्निवत् उरमें जरत रहते हैं सो सबै अनुचित करिसक्ता है ताते दुर्योधन पाण्डवन के विगारे की वंदिसि में सदा लागेरहा अन्त में सब परि-श्रम व्यर्थ गया काहेते कि हरिभक्तनते विरोध करता रहा ताते एकहू उपाय न चली अरु युधिष्ठिर सदा अमान शुद्ध स्वभावते धर्मधारण किहे हरिशरणागती को भरोसा राखे चुप बैठिरहे कछु उपाय नहीं किये तिनको प्रभुप्रसाद भगवान् की प्रसन्नताते सौभाग्य सुन्दरभाग्य अर्थात् राज्य विभव ऐश्वर्यादि पुनः संग्राम में विजय अरु लोक में सुन्दर यश इत्यादि सब बरिआई. जबरदस्त पाण्डवनै को

वरै अङ्गीकार कीन्हीं अर्थात् युद्ध करिवे योग्य नहीं रहे तिनको वरवस भगवान् जिताये यश योग्य नहीं रहे तिनको हरिकृपाते यश प्रसिद्धहै पुनः छूटी राज्य पुनः हरिकृपाते प्राप्तभई ४ हरि इच्छाते स्वाभाविक जीवन में परस्पर यह बात प्रसिद्ध है कि जो कोऊ पर नाम दूसरेको गिरिवेहेतु कूप खनैगो सो शठ महाअघ आपही उस कूप में गिरि परैगो अर्थात् निर्हेतु जो दुष्ट दूसरे को दुःख देवेकी उपाय करत सो आपही दुःख पावत यह तौ स्वाभाविक जीवन में ऐसा होताहै अरु सन्तद्रोही कहँ सन्तनते जो वैर करताहै ताको जागतकी को कहैवाको सपनेमेंभी सुख नहीं सपनेउ में व्याघ्र, सर्प, हाथी, भूतादि गांसे देखात पुनः जागत में सुरतरु जो कल्पवृक्षौ तरजाइ सोऊ विषफरनि फरै अर्थात् उहौ दुःखदायक फल पावैगो यथा दुर्वासा भगवानौकी शरणजाइ बचि न सके जो हरिशरणागती सर्वथा अभयदायक है परन्तु सन्तद्रोह कीन्हेते उहौं भय बनी रही तौ कल्पवृक्ष की कौन गनती है ५ प्रह्लाद, अम्बरीष, सुग्रीव, विभीषणादि के चरित ते लोक में प्रसिद्धहैं ताते कोऊ सन्तनते द्रोह कहाँ करतही नहीं काहेते काके द्वै शीश हैं जो हठि करि वरवस ईशके जनकी सीम चरै हरिभक्तन की मर्यादा नाश करै अर्थात् सन्त ता किसीसों विरोध करतहि नहीं ताते उनते कोऊ विरोध कैसे करै अरु योग लागिगये पर भी भगवत् के डरते सब डरते हैं अरु जो दुष्ट हठिकरि हरिदासन की हानि कीन चहैं तौ एक शिर तौ सुदर्शन प्रथमही काटिडारैगो जो दूसर होई तौ कछु व्यापार साइति बनि- जाइ यह लोक कहनूति है कि द्वै शिर काके हैं जो हरिभक्तनसों विरोध करै ताते गोसाईंजी कहत कि रघुनाथजी के बाहुनको बल राखे सदा अभय बनारहै काहू को न डरै अर्थात् सबको आश भरोसा वैरविरोध त्यागि प्रभु के भरोसे निडर रहै ६॥

(१३९) कबहूं सो करसरोज रघुनायक धरिहौ नाथ शीश मेरे ।
जेहिकर अभय किये जन आरत वारक विवश नाम टेरे १
जेहि करकमल कठोर शम्भुधनु भञ्जि जनक संशय मेट्यो ।
जेहि करकमल उठाइ बन्धु ज्यों परमप्रीति केवट भेट्यो २
जेहि करकमल कृपालु गीध कहँ पिण्ड देइ निज लोक दियो ।
जेहि कर वालि विदारि दासहित कपिकुलपति सुग्रीव कियो ३
आयो शरण सभीत विभीषण जेहि करकमल तिलक कीन्हों ।
जेहिकर गहि शरचाप असुर हति अभय दान देवन्ह दीन्हों ४
शीतल सुखद छांह जेहि कर की मेटति ताप पाप माया ।
निशि वासर तेहि करसरोजकी चाहत तुलसिदास छाया ५

टी० । ज्यहि रघुनाथजी के बाहुबल ते भक्तजन सदा निडर रहते हैं ताही को आसरा राखि प्रभु सों प्रार्थना करते हैं हे रघुनायक ! ज्यहि करसरोज सों सदा भक्त की रक्षा करते हौ सोई हस्तकमल कबहूं नाथ मेरे शीश पर धरिहौ अर्थात् कबहूं जन जानि मेरी रक्षा करिहौ कौन भांति यथा पूर्व आरत

दुःखित जन विवश वारंक वेसुधिह्वै एकहू वार आपको नाम लै टेरा पुकारा ताको ज्यहि कर हाथते अभय कीन्हेउ भय वाधा तुरतही हरि वाको सुखी कीन्हेउ १ आरतजनन को सुखी करने को प्रमाण देखावत कि जनकपुर में विना धनुष टूटे समाज सहित विदेह आरत रहे तहां शंभुधनु पिनाक महाकठोर रहा ताको ज्यहि कर हाथ कमलन सों भंजि तूरिकै जनक संशय मेटेउ अर्थात् प्रतिज्ञाभंग कन्या कुमारी रहने की संशय सो मेटि दीन्हेउ पुनः केवट जाति निषादराज को प्रीतिवन्त आरत देखि दण्डवत् करत समय ज्यहि करकमल सों उठाइ परम अत्यन्त प्रीतिपूर्वक हृदय में लगाइ केवट को भेट्यो अर्थात् जाति कुजाति को विवेक नहीं कीन्हेउ वाके अन्तर की प्रीति देखि आपना जन मानि प्रीति ते हृदय में लगाइ मिलि वाको लोक विदित पावन करि कृतार्थ कीन्हेउ २ पुनः हे कृपालु, कृपागुणमन्दिर! ज्यहि करकमलन सों गीधको पिण्ड-दान दैकै पुनः सवके देखत निज आपने धाम का वास दीन्हेउ अर्थात् मांसाहारी अधम पक्षी परन्तु किशोरीजी के हेतु रावण सों युद्ध करि घायल भया ताको पिता तुल्य मानि पिण्डदानादि कृपाकरि पुनः दिव्यरूप ते विमान पर वैठाइ अपने लोक को पठाइ दिहेउ पुनः दास जो सुग्रीव ताके हेतु महावली वालि को ज्यहि कर हाथन सों विदारि मारिकै पुनः कपि कुलपति वानर कुलभरे को राजा सुग्रीव को कीन्हेउ अर्थात् कछु सेवकाई नहीं किया केवल शरणमात्र ते सहायक भयो ३ पुनः रावण की भय करिकै सभीत सडर है विभीषण अभय थल जानि आपकी शरण आयो ताके शीश में ज्यहि करकमल सों लङ्का की राज्य को तिलक कीन्हेउ भाव केवल शरणमात्रते दीनजन जानि तुरतही महाराज वनायो पुनः रावण की भयते विकल देवगण आपकी शरण ह्वै पुकारे तिनको आरत देखि दया करि ज्यहि करकमलन सों चाप शर धनुषवाण गहिकै असुरहति रावणादि राक्षसन को मारि देवन को अभयदान दीन्हेउ अकण्टक करि स्ववश वसायो ४ ज्यहि कर-कमल की छांह शीतल है ताते दैहिक-दैविक-भौतिकादि तापैं मेटत है पुनः सुखद है ताते पाप अरु माया मेटत अर्थात् लोक में दुःखदायक पाप तिनको मेटि लोक में सुख देत पुनः माया परलोक में दुःखद ताको मेटि परलोक में सुख देत ऐसा प्रभाव जामें त्यहि करसरोज हस्तकमल की छाया तुलसीदास निशिवासर रातिउ दिन चाहत अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! यथा जनकजीपर कृपा कीन्हेउ यथा केवट पर कृपा कीन्हेउ यथा सुग्रीव विभीषणपर कृपा कीन्हेउ यथा देवनपै कृपा कीन्हेउ सब के संकट मिटाय सुखी कीन्हेउ तैसेही कलियुग की भय करि सभीत शरण हौं मोहू पर कृपा करौ ५॥

(१४०) दीनदयालु दुरित दारिद दुखदुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुवार पुकारत आरत सब की सब सुखहानि भई है १
प्रभु के वचन वेद वुध सम्मत मम मूरति महिदेवमई है।
तिनकी मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलिलई है २
राजसमाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।

नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है ३
आश्रम वर्ण धर्म विरहित जग लोक वेद मर्याद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने अपने रंगरई है ४
शान्ति सत्य शुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता शोचति खल विलसत हुलसनि खलई है ५
परमारथ स्वारथ साधन भये अफल सकल नहिं सिद्धि शई है।
कामधेनु धरणी कलि गोमर विवश विकल जामति न वई है ६
कलिकरणी वरणिये कहां लौं करत फिरत विनु टहल टई है।
तापर दांत पीसि कर मींजत को जाने चित काह ठई है ७
त्यों त्यों नीच चढ़त शिर ऊपर ज्यों ज्यों शीलवश ढीलदई है।
सरुष वरजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है ८
दीजै दादि देखि नातौ वलि मही मोद मङ्गल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवधि चितवनि चितई है ९
विनती सुनि सानंद हेरि हँसि करुणावारि भूमि भिजई है।
रामराज भयो काज शकुन शुभ राजा राम जगत विजई है १०
समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृतसैन हारत जितई है।
सुजन स्वभाव सराहत सादर अनायास सांसति वितई है ११
उथपे थपन उजारि बसावन गई वहोरि विरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत आरतिहर अभय बांह केहिकेहि न दई है १२

टी०। पूर्व प्रार्थना कीन्हे कि कलियुग करिकै सभीत हौं कृपा करि मेरी रक्षा करो तापर कहत कि केवल मही नहीं भयातुर हौं कलियुग की करालतातें जीवमात्र भयातुर हैं इत्यादि कहत कि हे दीनदयालु, रघुनाथजी! कलियुग के प्रभाव ते दुरित जो पाप तिनकी वृद्धि भई त्यहि करिकै दरिद्र बढ़ो पुनः हानि वियोग रुज दण्ड इत्यादि दुःखनते दुःखित पुनः दैहिक ज्वरादि दैविक अकालादि भौतिक व्याघ्र चौर सर्प राजदण्डादि दुसह तीनिहु तापन करिकै दुनी संसार तई है सब दुनिया तप्त ह्वैरही है ताते सबकी सब वर्णाश्रमन की सब भांति के सुखन की हानि भई सब दुःखन करिकै आरत दुःखित है हे देव, श्रीरघुनाथजी! सब संसारै आपुके द्वार पर पुकार करिरहे हैं १ कैसे सब तप्त दुःखित हैं सो कहत कि वेदप्रमाण बुध विद्वानन को सम्मत सहित प्रभु के वचन हैं कि मम मूरति महिदेवमई है अर्थात् रघुनाथजी ऐसे वचन वारंवार कहा है कि ब्राह्मण सब मेरही रूप हैं ताते सुरासुर नर नागादि सबते उत्तम ब्राह्मण हैं तिनके धर्म कर्म ये चाहिये यथा शम वासना त्याग पुनः दम इन्द्रिय विषय त्याग पुनः शौच पवित्रता पुनः शान्ति सतोगुणी स्वभाव पुनः दया पुनः ज्ञान विज्ञान शापाशीर्वाद को

समर्थ अर्थात् तपोधनी इत्यादि स्वाभाविक चाहिये सो अब कलियुग ने बरबस तिन ब्राह्मणों की मति को कैसा करि दिया कि जहां शान्ति चाहिये तहां रिस उपजी अकारण क्रोध करने लगे जहां शम दम चाहिये तहां राग उपजा इन्द्रिय विषय द्वारा अनेकन ते प्रीति मन में मनोरथ उठने लगे सत् असत् ग्रहणते अपावन भये जहां ज्ञान चाहिये आत्मरूप की पहिचान तहां मोह उपजा देहाभिमानी भये जहां विज्ञान चाहिये अनुभव आनन्द तहां मद उपजा जाति विद्या महत्त्व में हर्ष बढ़ावते हैं जहां दया चाहिये अकारण परोपकार तहां लोभ उपजा ताते लालची भये परधन हरने हेतु उचित अनुचित विचार रहित अनेक नाच नाचने लगे इति लोभ लालच ने मतिको लील लिया बुद्धिनाश करि दिया तब स्वधर्म क्रिया आचाररहित पशुवत् ब्राह्मण ह्वैगये हैं १। २ पुनः अन्य जातिन में क्षत्रिय उत्तम हैं तिनके धर्म कर्म ये चाहिये यथा खड्ग दान तपमें शूर पुनः तेजस्वी तपोधनी ऐसे होयँ जो अकेले सबको परास्त करिसकैं पुनः प्रतापी यथा ॥ दोहा ॥ होत जु अस्तुति दानते, कीरति कहिये ताहि । होत बाहुबल ते सुयश, सज्जन पढ़त सराहि ॥ कीरति सों अरु सुयश सुनि, होत शत्रु उर ताप । जग डरात सब आपदी, कहिये ताहि प्रताप ॥ पुनः धैर्यवान् अर्थात् काम क्रोध के वेग में मन न परै पुनः ज्ञान ते सावधान रहै पुनः विद्या में दक्ष पुनः नीति में प्रवीण युद्ध में अचल तिन क्षत्रिन में राजा शिरमौर हैं ते कलियुग के प्रभाव करिकै कैसे ह्वै गये कि जिनके मन्त्री, मित्र, पुरोहित, सेनप, सुभट, कामदारादि राजसमाज सब कैसे अधर्मी भये कि कलुष जो पाप त्यहि कर्मनमई नई नई कुचालै चलावत यथा वृथा दोष लगाइ दण्ड देना परस्त्री हरिलेना थोरे अपराध में सर्वस हरिलेना मारि डारना अनुचित दान लेना वेश्यन को मान साधुन को अपमान चोर ठगन सों धन लै अभय राखना इत्यादि पुनः कोटिन भांति के कटुवचन कल्पत बनाइ बनाइ कहत यथा गारी दै बात कहत सत्पुरुषन को कुवचन कहत झूंठी को सांची सांची को झूंठी करत दुष्टन के हेतु सज्जनन को कठोर वचन कहत इत्यादि कुसाज साजे रहत अधर्म को प्रचार किया करते हैं पुनः वेदधर्म अनुकूल प्रजा को पालन जो राजनीति है पुनः मंत्री मित्रादि की विश्वास अथवा साधु, गुरु, वेद, नीति,धर्म, शास्त्र में विश्वास इति प्रतीति पुनः राजा प्रजा राजसमाजादि सब स्वधर्म अनुकूल पर सनेहपूर्वक रहना अथवा राजा परस्पर साम राखना अथवा नीति धर्मशास्त्र साधु ब्राह्मण गुरु ईश्वर में प्रतीति पुनः परमिति जो परम्परा रीति पर सबको चलना इत्यादिकी पति जो प्रतिष्ठा ताको हेतुवाद जो नास्तिकमत ताने हेरि ढूंढ़ि ढूंढ़ि हठकरि बरबसई नाश करिदई अर्थात् लोग नास्तिकमत धारण करि वेदधर्म में निषेध तर्कणा करि करि सत्पन्थ को मिटाइ दीन्हे ताते सर्वत्र अनीति अधर्म की राह सब लोग चलने लगे ३ कैसे अधर्म पर चलने लगे कि आश्रम यथा ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास इति चारि आश्रम तामें गृहस्थकर्म यथा जो धन लाभ होइ तामें सत्रहौं अंश तुरत पुण्य करै अतिथि कुटुम्ब सेवन करै तर्पण श्राद्ध करि पितृऋण ते उद्धार तीर्थव्रत दानते ऋषिऋणते उद्धार इन्द्र, वरुण, कुबेर, धर्मराज, अग्नि ये पंचदेवन को बलिदै देवऋणते उद्धार विष्णु,

शिव, देवी, गणेश, सूर्य पूजि विष्णुते मुक्ति मांगे पुनः ब्रह्मचारी विद्याध्ययन स्वयं. पाकी इन्द्रियजित् गुरुसेवक वानप्रस्थ यथा ब्रह्मचर्य स्त्रीयुत वन में तप करै संन्यास यथा दण्डधारी ग्रामवास निशिभोजन धातुपात्र वाहन त्यागि दिनहिं कहीं न बसै पुनः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारि वर्ण हैं तामें ब्राह्मण क्षत्रिय के कर्म ऊपर कहि आये वैश्य, कृषी, वाणिज्य, गोरक्षा करै शूद्र तीनि वर्ण की सेवा करै तहां सबमें ऊंचे ब्राह्मण, क्षत्रिय तिनही को धर्म कर्म कलियुगने छोड़ायदिया तब औरन को धर्म आपही छूटिगया ताते वर्णाश्रम सब धर्म करिके विरहित विशेष रहित भये आपने आपने धर्मकर्मनको सब छांड़िदिये ताते लोकवेद की मर्याद गई है लोक-मर्याद यथा छोटा बड़े के सम्मुख ढिठाई न करै समूह पुरुषन में स्त्री न जाइ कुल की उत्तम रीति न छांड़ै गुरुजननके सम्मुख स्त्री पुरुष प्रीतिपूर्वक वार्ता न करैं इत्यादि यावत् लोकरीति है पुनः वेदमर्याद यथा पुत्र पिता को सेवक बनारहै कन्या पाणिग्रहण बिना पतिको न ग्रहण करै विवाहिता पति की अनुकूल रहै शिष्य सेवक गुरु स्वामी के अनुकूल रहै वर्णाश्रम के धर्म पूर्व कहिआये इत्यादि लोक वेद की मर्याद देखनेमात्र जहां तहां ऊपरहीते हैं अरु अन्तरते सचाईगई जब लोक वेदकी मर्याद गई तब प्रजा पतित भये सबके धर्म छूटिगये तांत पाखण्ड वेदविरुद्ध मत धारणकरि पापरत हिंसा चोरी जुवा परस्त्रीरत परहानि परअपवाद इत्यादि पापकर्मन में सबकी प्रीति भई ताते आपने आपने रंगरई मनभावत कर्मरूप रँग में सबकी मति रँगि गई ताते मनभावत कार्य करते हैं ४ शान्ति सत्य शुभ कल्याणकर्ता रीति घटि गई अर्थात् ब्राह्मण में शान्ति घटिगई अकारणै क्रोध करनेलगे तथा क्षत्रिनमें सत्य घटिगई कहते कछु और करते कछु औरही हैं तथा वैश्यनमें शुभ रीति दानादि क्रिया घटिगई सूम भये ताते साधु ब्राह्मणको भोजन तीर्थादिकन में दान देते तौ नहीं हैं अरु व्यापार में छल ठगी करते हैं इत्यादि कल्याणकर्ता रीति तौ घटि गई अर्थात् देखावमात्र रही पुनः अधमता अनीति अधर्मादि कुरीति बढ़ी सर्वत्र अंतर में परिपूर्ण है अरु शान्ति, सत्य, दानादि जो शुभरीति किंचित् है सो सबन में ऊपरही है यथा तांबपात्रपर चांदी कैसी कलई सबमें ऊपरही देखाती है धर्मसाधनि का रूप अग्निपर धरतही उड़िजायगी इस आचरणको देखि कुसंग की भय करि जे साधुजन हैं ते दुःखित होते हैं अर्थात् सत्संग तौ दुर्लभ कुसंग सर्वत्र ताते चित्तमें खेद बना रहता है अथवा कलि प्रेरित कामादि सदा बाधा करतेहैं सो जब साधु सीदत तब साधुता अर्थात् समता शान्ति संतोष क्षमा दया कोमलता इत्यादि सतोगुणी प्रकीर्ति शोच दुःखपूर्वक विचार करती है कि मेरे वासको स्थान तौ कहीं हैही नहीं तौ मैं कहां रहौंगी. पुनः खल विलसत अर्थात् स्वभाव अनुकूल कलियुग सहायक तथा अनीतिरत अधर्मी राजा तैसेही समूह साथी इसहेतु दुष्ट आनन्द भोग करते हैं ताते खलई अर्थात् हिंसा फैलसूफी कुटिलता परहानि इत्यादि दुष्टता प्रकीर्ति हुलसत वासस्थान बहुत पाइ आनन्दपूर्वक बढ़त जाती है ५ परमारथ परलोक तहां मुक्ति सिद्ध होनेके साधन कर्मयोग ज्ञानभक्ति इत्यादि उपाय करना यथा मन्त्रजाप, तपस्या, पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, दानादि, निर्वासिक कर्म हरिप्रीत्यर्थ

करना अथवा यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायामादि योगकरि इन्द्रिय मनआदि थिर करि ईश्वर को ध्यान करना अथवा विवेक विरागादि ज्ञान करि आत्मरूप को जानना अथवा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दनादि नवधा भक्ति करना इत्यादि जो परमार्थ हेतु करना चाहिये सो स्वार्थ के साधन भये अर्थात् जो कछु क्रिया करते हैं सो देखावमात्र पुजावने हेतु जीविका हेतु करते हैं ताते सकल साधन अफल भये जो फल चाहिये सो नहीं प्राप्त होते हैं काहेते उन साधन में सिद्धि की शय वरकति रहवै नहीं भई पूर्वही स्वार्थ लैलियो ताते पुनः फल कहांते लागे अरु लोक व्यापार में भी जीविका नहीं है काहेते धरणी जो पृथ्वी सो लोक जनको कामधेनु सम सब फलदायक है तहां यह रीति है कि जब खानि अघानि सुखपूर्वक गऊ रहती है तब बछवा पाइ पन्हाइ तब दूध देती है अरु जो वह आप ही दुःखित है तौ दूध कैसे देवै तथा जो पुण्य धर्मनीति आदि चारा पाइ खाइके अघाइ अरु उत्तम धर्मात्मा राजा बछवा पावै तब पन्हाय अन्न, ऊख, फलादि सबपदार्थ रूप दूध देवै सो तौ एकहू नहीं तहां एकतौ बछवाहीन पुनः भूखी ताहू पर कलिगोमर विवश कलियुगरूप कसाई के विशेषि वश में परी आपही दुःखित ताते वई जामती नहीं अर्थात् सतयुग में एकवार वोये इकइसवार उपजतारहा अब जो वीज वोये जातेहैं सोई नहीं जामत तौ उपराज की कौन कहै ताते जीविका तौ किसीके रही नहीं इसहेतु जो कछु साधन करते हैं सो जीविके अर्थ हैं ६ कलि करणी कलियुगकी नष्ट कर्तव्यता जैसी करिरहा है तिनको कहांलौं वरणिये वखान करि कहि सुनाइये अर्थात् असंख्यनहै तिनको कौन कहिसक्ताहै कैसा उपाय वांधता है कि एकतौ कलि प्रेरित काम, क्रोध, लोभादि प्रचण्ड परे तिनके प्रभावते सर्वथा लोग पाप वृक्ष बाढ़ने की सब टहलैं करिरहे हैं कदाचित् कोऊ लाखन पुरुषन में एक धर्मपर दृष्टि राखता है पापहोने की टहल नहीं करता है अरु पूर्वपापरूप वृक्ष काटने हेतु श्रद्धा विश्वाससहित सत्कर्म करताहै सो पापरूप वृक्ष गिरते देखि कलियुग विन पाप टहलवाले धर्मात्मनके पाप वृक्ष गिरत समय टई करत फिरताहै टैया लगाइ देताहै तौ पापवृक्ष कैसे गिरैं इति विन टहल टई करत फिरता है यथा नियम सहित उत्तम तीर्थ में गये विधिवत् व्रत किये स्नान करि दान देनेलगे ताही समय कलियुग ने कोई विभूषित युवती मधुरवचन कटाक्षयुत आनि सम्मुख करिदिया इधर मन में काम वलिष्ठ करि दिया जहां मन में विकार उठा पापदृष्टि परी सोई टैया लागि गई तो कैसे पाप वृक्ष गिरै ऐसेही सब सत्कर्मन में वाधा लगावता है ताहूपर संतोष नहीं है काहेते सबको तौ अधर्मी बनाय दिया जहां एकाधन को धर्मवन्त देखता है तापर दांत पीसि हाथ मींजता है भाव अब हीं मेरा परिपूर्ण प्रताप नहीं उदय भया तबतौ एकाधे मेरे प्रतिकूल आचरण करते हैं भाव धर्मपथ चलते हैं ऐसा दुष्ट वली कराल कोप किहे है ताको कौन जानै चित काह ठई है कलियुग के चित्त में क्या वात ठनी है भाव अबहीं कुशल है धर्मको नाम तौ लोग जानते हैं आगे न मालुम काह कीन चाहत अर्थात् धर्म को नामौ लोप करिदीन चाहता है ७ हे श्रीरघुनाथजी! वेदधर्म आपकी आज्ञा है ताको लोप किहे देत अरु आपुके दासनसौं विरोध माने अनेक वाधा करता है

सदा अरु आपु शीलवन्त हौ ताते भक्तापराध पर दण्ड नहीं किहेउ शीलमय स्वभावते ढीलि दिहेउ तहां शीलवश ते ज्यों ज्यों आपुने याको ढीलि दई त्यों त्यों नीच कलियुग शिर के ऊपर चढ़ता है भाव उत्तमजन काम बिरै याको ढीलि देउ तौ इन्सान मानि संकोच करै अरु नीच को ढीलो तौ अधिक ढीट है मूड़े चढ़त अधिक काम बिगारत तहां कलियुग तो महानीच है ताते याको सरुप बरजि रोष सहित बरजि रोकिकै तरजिये डाटि दीजिये तौ यथा अँगूठा समीप की अँगुरी तर्जनी देखायेते कुम्हड़ा की जई लघु कोमल बतिया कुम्हिलाइ जाती है तैसेही आपुके डाटेते कलियुग कुम्हिलाइ जाइगो अर्थात् सभीत है फिरि ना भक्तनते द्रोह करैगो ८ हे श्रीरघुनाथजी ! धर्म की हानि भक्तनको संकट देखिकै दादि दीजे भाव न्यायपूर्वक रक्षा दण्ड कीजे नातो बलि मैं बलिहारीहौं जो दादि ना देउगे तौ ऐसा हाल है रहा है कि कलियुग ने मही जो पृथ्वी ताको मोद मङ्गल करिकै रितई खाली करिदई भाव न किसीके मन में आनन्दरही न कहीं प्रसिद्ध उत्सव होता है सबलोग दुःख दरिद्र में पीड़ित हैं तौ आगे न मालूम क्या करैगा ताते शीघ्रही दादि दीजिये दादि देनेते जब कलियुग दबि जाइगो संसार सब आनन्द होइगो तब आपुको अमल यश सब गावहिंगे कौन भांति जब सब संसार सुखी होई तब भाग्य भरे आपुके अनुरागवश लोग यहै कहैंगे कि राम चितवनि ताकी अवधि जो हद तेहि चितवनि चितईहै अर्थात् रघुनाथजी आपनी पूर्ण कृपादृष्टिते संसार पर चितये ६ कैसे चितये कि लोकोपकारी किसी जनकी बिनती सुनि यह जाने कि कलि कुचालरूप अग्नि करिकै सब वसुंधा तप्त है रही है तापर प्रभु के मन में दया वीरता परिपूर्ण आई ताकी स्थायी है उत्साह त्यहि आनन्द सहित विश्वद्रोही दुष्ट जानि बध करिबे की इच्छा कीन्हे पुनः कलियुग की दिशि हेरि तुच्छ जानि हँसे कि याको निर्बल को हम क्या मारैं यह विचारि हँसिकै करुणारूप वारि जो जल त्यहि करिकै भूमि भिजइ भूमि पर तप्त जनन को शीतल करिदीन्हे करुणागुणके प्रभावते कलियुग को हटकि लोगन के दुःख तुरतही मिटाये ताते रामराज भयो अर्थात् यथा रघुनाथजी की राज्य में काहू जीव को किसी बात की भय नहीं रहै तथा अबौ पृथ्वी पर रघुनाथजी की राज्य की नाईं सर्वत्र आनन्द परिपूर्ण है ताते सब लोगन के स्वार्थ परमार्थादि सब भांति के काज परिपूर्ण भयो सबको शुभ मंगलकारी सगुन होते हैं तौ ऐसा क्यों न होइ काहेते राजा रामतौ जगत्‌विजयी हैं तिनकी कृपा भई तौ क्यों न जगत् सुखी होय जगविजयी को भाव कि सत्यव्रत करिकै सबलोक जीते ब्राह्मणन को दान करि जीते गुरुजनन को सेवाकरि जीते वीरन को धनुषबाणन ते शत्रुन को युद्ध करि जीते यथा वाल्मीकीये ॥ सत्येन लोकान् जयति द्विजान्दानेन राघवः । गुरून् शुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान् ॥ सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् । विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे १० पुनः समरथ हैं अर्थात् शक्ति, बल, तेज, वीर्य, शौर्यादि गुणन ते परिपूर्ण हैं पुनः बड़ो सुजान भाव चातुर्यगुण परिपूर्ण हैं पुनः सुसाहेब सेवा करिबे योग्य भाव शीलवंत सुलभ उदार हैं ऐसे समरथ हैं कि कलियुग में पुण्यादि सुकृत की सेना पापनते हारी जात रहै क्षीण परिगई रहै

ताको जितई कृपा करि वलिष्ठ करि दिये ताते जननकी सांसति जो दुःख सो अनायास पितई अर्थात् अधर्म की वृद्धि ते लोगन को दुःख रहै तहां धर्म की वृद्धि करि वेपरिश्रमै प्रभु सांसति मिटाइ दिये ऐसा तौ प्रभुको स्वभाव ही है ऐसा सुजन जन सदा सराहते हैं क्या नई बात है यह रीति सदाते चलि आई है ११ कौन रीति चलि आई है उखरे को थपन अर्थात् जिनको सवल शत्रु करिकै स्थान छूटिगया यथा सुग्रीव विभीषणादि तिनको परिपूर्ण ऐश्वर्य सहित थिर करि थापे पुनः उजारि भयेको वसावनहारे यथा रावण की भय करि देवता उजरिगये रहैं तिनको वसाइ दिये पुनः गई वस्तुको वहोरि मिलाय देनेवाले यथा अहल्या दण्डकवन पावन नवीन किये गोसाईंजी कहत कि हे प्रभु! दादि देनेपर ऐसा यश आपको सव गावैंगे कि आरत जो दुःखित जन तिनको आरत जो दुःख ताके हरणहारे रघुनाथ जी क्यहिको क्यहिको अभय वांह नहीं दई भाव सवको भयरहित करतही आये काहेते यह विरद सदई है अर्थात् गई वहोरादि वाना रघुनाथजी सदैव धारण किहे हैं यह अर्थार्थिन के स्वार्थ मांगने की युक्ति है कि हे दीनदयालु, प्रभु! कलियुग पीड़ित सव संसार मेरी द्वारा आपके द्वारे पुकार करिरहेहैं आप शरणपाल हौ शीघ्रही दादि दै लोक सुखी करौ जामें सव आपको यश गावैं क्योंकि प्रणतपाल आपको वाना है ताहीको पूर राखौ नातरु मेरोही हानि नहीं आपको अयश होइगो यह कहि प्रौढ़ोक्ति है अनेक नवीन उक्ति कहि स्वार्थ लेना १२॥

(१४१)ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजनपदविमुख अभागी।
निशिवासररुचिपापअशुचिमनखलमतिमलिननिगमपथत्यागी१
नहिं सतसङ्ग भजन नहिं हरिको श्रवण न रामकथा अनुरागी।
सुतवितदार भवनममतानिशि सोवतअति न कवहुँमतिजागी २
तुलसिदास हरिनामसुधातजि शठहठिपियत विषयविषमांगी।
शूकर श्वान शृगालसरिसजन जन्मतजगतजननिदुखलागी ३

टी०। भवभंजन चौरासीमें जन्म मरणादि जो दुःख ताको छुड़ावनेवाले रघुनाथ जी के पद तिनते जे अभागी विमुख हैं भाव शरणागती त्यागि विषयवश संसारी सुखं में परे हैं ते नर नरकरूप जग में जीवते हैं भाव जीवतही मानो नरकै में परे हैं अथवा निश्चय नरक को जाइँगे काहेते निशिवासर रातिउदिन पाप कर्मन में रुचि अर्थात् राति को चोरी परहानि परस्त्रीगमनादि दिनको पर अपवाद मृषा स्त्री देखन हिंसादि कर्मन ते देह अपावन पुनः काम, क्रोध, लोभादिते अनेक विषय मनोरथ होते हैं ताते मन अशुचि अपावन रहत पुनः मोहते मतिमलिन वुद्धि नष्ट भई ताते खल दुष्ट निगमपथ वेदधर्म त्यागि अधर्म पर चलते हैं ताते निश्चय नरक को जाइँगे १ हरि पद विमुख काहेते हैं कि शरणागत के आचरण एकहू नहीं काहेते भक्ति की मूल सत्संग सो नहीं पुनः जासों निश्चय जीव को कल्याण सो अंतस में रघुनाथजी को भजन नहीं पुनः ज्यहि करिके भजन में मन लागत सो रामकथा श्रवण के अनुरागी नहीं हैं इति हरिपदते विमुख पुनः प्रीति

काहेमें किहे हैं यथा सुत जो पुत्र वित्त जो धन दार जो स्त्री भवन जो घर इत्यादि में अपनपो जो ममतारूप निशि रात्रि में अत्यन्त मोहनिद्रा में सोवत कवहूं मति नहीं जागती है भाव मोहवश ते पूर्वरूप भुलाइ देहाभिमानी है विषयसुख हेतु देह संवन्धिन में अपनपो मानि भूला परा रहा तहां कवहूं बुद्धि चैतन्य न भई कि एकहू वार तौ ईश्वर की सुधि करिलेवै सो कवहूं नहीं होती ताते निश्चय करिकै नरक जाने के अधिकारी हैं २ हरिपद सम्मुखता कैसी भवभञ्जनहारी है कि प्रभु को रूप लीला धाम नाम इत्यादि चारिहू कल्याणकर्ता हैं परन्तु धाम देशान्तर ते जाने में परिश्रम रूप की प्राप्ति में परिश्रम लीला श्रवण में आचार्य कीर्तन में विद्या इत्यादि परिश्रम अरु राम नाम सुमिरण को सवको सब भांति सुलभ है पुनः प्रभाव कैसा कि एकवार उच्चारण करने ते जीव को अविचल अमरपद देता है यथा पद्मपुराणे॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥ बृहद्विष्णुपुराणे॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति राम नामानुकीर्तनात्॥ सोई गोसाईंजी कहत कि पानमात्र ते अमरपददायक अमृत सम रामनाम इति हरि नाम सुधा अमृत को त्यागि ऐसे शठ महाअज्ञान हैं कि विषय रूप विष हठि करि वरवस मांगिकै पियत हैं अर्थात् विषयसुख में परि काम क्रोध मोहादि प्रवल परि जीव को नाश करिदेत ऐसे विषयसुख को जबरदस्त ग्रहण कर्ता है हानि लाभ नहीं विचारत ताते सुवर कुत्ता सियार की समान केवल माता को दुःख देवे हेतु जगत् में जन्म लेते हैं अर्थात् यथा शूकर हित सहित विष्ठा खात पुष्टांग रहत पीछे तलफाइ मारा जात तैसे विषयी कामवश परस्त्री आदि गमन करि आनन्द रहत पीछे गरमी सुज़ाकआदिते महादण्ड पाय मरिजाते हैं पुनः श्वान अकारण जीवन को काटि खाता है पुनः कौरा हेतु घर घर मारा जाता है तथा विषयी क्रोधवश सवसों विरोध करते हैं औ स्वारथ हेतु अपमान पावत पुनः शृगाल जीविका हेतु फल ऊख अन्नादि छिपिकै खाइजाता है तथा विषयी लोभवश चोरी छलादि ते परधन हरत इत्यादि माता को शूल देने हेतु देह धरे जन्म धरे को फल कछु न भया मनुष्यतन वृथा गया ३॥

(१४२)रामचन्द्र रघुनायक तुमसों हौं विनती केहि भांति करौं।
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं १
परदुखदुखी सुखी परसुख ते सन्तशील नहिं हृदय धरौं।
देखि आन की विपति परमसुख सुनि संपति विनु आगि जरौं२
भक्ति विराग ज्ञान साधन कहि वहु विधि डहँकत लोक फिरौं।
शिव सरवस सुखधाम नाम तव वेंचि नरकप्रद उदर भरौं ३
जानतहूं निज पापजलधि जिय जलसीकर सम सुनत लरौं।
रजसम पर अवगुण सुमेरु करि गुण गिरिसम रज ते निदरौं ४
नाना वेष बनाइ दिवस निशि परवित जेहि तेहि युक्ति हरौं।

एको पल न कबहुँ अलोल चित हित दै पदसरोज सुमिरौं ५
जो आचरण विचारहु मेरो कल्पकोटि लगि औटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु कृपाविलोकनि गोपद ज्यों भवसिन्धु तरौं ६

टी०। जहां ईश्वर के पद सुगम भवहर्ता हैं तथा जीव अपने कर्मन ते हठि करि भवबन्धन में परता है सो कहत कि हे रामचन्द्र ! रघुनायक हौ अर्थात् मैं तुमसों क्यहि भांति विनती करौं काहेते यथा गुणवान् स्वामी तैसेही गुणी सेवक चाहिये यथा राजा तैसेही प्रजा चाहिये जैसे गुणवन्त दानी तैसेही गुणवान् याचक चाहिये इति योग्यता पाइ दोऊ दिशिते प्रसन्नतापूर्वक कार्य होता है अरु अयोग्यता में प्रतिकूल होने की भय रहती है यथा नीतिमान् राजा के सम्मुख अनीतिकर्ता प्रजा दादि हेतु जाय तौ आश्चर्य नहीं कि आपहू दण्ड में परे तथा मैं अपने अनेक भांति के अघ जो पाप तिनको अवलोकि आंखिन देखिं पुनः आपको अनघ पापरहित नाम वेद पुराणन द्वारा श्रवण ते सुनि अयोग्यता अनुमानि सम्मुख आवत डरत हौं कि महीं न दण्ड में परौं अर्थात् आप कैसे स्वामी हौ कि ऐश्वर्यरूप ते रामचन्द्र अर्थात् परात्पर परब्रह्म साकेतविहारी जिनको प्रभाव ब्रह्मादिक नहीं जानत सोई कृपा करि सुलभ लोकोद्धार हेतु उत्तम धर्मवन्त जो रघुवंश तामें अवतीर्ण ह्वै ऐसा शुद्ध धर्म धारण किह्यो कि रघुवंशनायक कहावते हौ ऐसे निष्पाप पावन उत्तम स्वामी आप हौ अरु मैं कल्पान्तन ते अनेक भांति के असंख्यन पाप करत आयों अवहूं करता हौं इति महापापी अपावन अपना को देखता हौं अरु सदा परमपावन उत्तम स्वामी हौ तिनसों दादि करत मोको भय लागत काहेते जो कहौं कि कलियुग मोको सतावता है न्यायपूर्वक याको दण्ड दीजे जब कलियुग आइ मेरे असंख्यन पाप गनावे सो सुनि जो मेरे पापनपर दृष्टि करौ तौ उलटे महीं दण्ड पावौं इस हेतु डरता हौं १ काहेते डरता हौं कि पूर्वजन्मन की को कहै वर्तमान में ऐसे कर्म करता हौं जो साधुरीतिते प्रतिकूल काहेते साधुनको शीलमय कोमल दयावन्त स्वभाव होत प्रिय वचन ते सबको एकरस सम्मान करते हैं अरु जो किसीको दुःखित देखते हैं तब आपहू दुःखी होते हैं अरु औरन को सुखी देखि आपहू सुखी होते हैं अरु मैं न परारे दुःख ते दुःखी होउँ अरु न परारे सुख ते सुखी होउँ काहेते सन्तन कैसो शीलमय स्वभाव हृदय में नहीं धरता हौं काहेते निर्दय कुटिल कठोरस्वभाव ते रुज वियोग दरिद्र हानि आदि आनकी विपत्ति देखि परम सुख मानो सर्वांग भोग को सुख मोको मिला भाव जामें सुख होत सोऊ पाप की मूल है तथा धरणी, धाम, पुत्र, वाहन, भूषण, वसन, अन्न धनादि सम्पत्ति जो औरन को पावत देखत हौं तौ विन आगि जरौं भाव सुखौ में बिना दुःखे को दुःख होता है २ हरि यश श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यतादि भक्ति के साधन विराग, विवेक, मुमुक्षुता, शम, दमादि ज्ञानके साधन इत्यादि अनेक आचार्यन के मत लैके बहु विधि कहिके मान भरा लोक में डहँकत प्रचारत फिरत हौं भाव मोसम विरागवान् ज्ञानी भक्त कोऊ नहीं है जो कोऊ होय तौ मोसों वार्ता करै ऐसा वचनमात्र बना फिरत हौं अरु अन्तरते

कैसा अधम छली ठग हौं कि जो शिवको सर्वस धन है यथा ॥ कूर्मपुराणे शिव-वाक्यम् ॥ गोप्याद्गोप्यतमं भद्रे सर्वस्वं जीवनं मम । रामनाम परं ब्रह्म कारणानां च कारणम् ॥ पुनः सुखधाम अर्थात् स्मरणमात्र सब कामना पूर्ण करत यथा पद्म-पुराणे ॥ ये ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम् । तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं रामनामैव कीर्तनात् ॥ हे प्रभु ! ऐसा जो आपको नाम ताको बेचिकै अर्थात् रामनाम को प्रभाव सुनाय लोगन को रिझाय पुजावता हौं त्यहि धन करिकै नरकप्रद प्रकर्ष करिकै नरक देनेवाला जो उदर ताको भरत हौं भाव पेटके निमित्त अनेक कर्म लोग करते हैं ताते नरकप्रद उदर कहे ३ पुनः निज आपने पापन को जीवते जानत हौं कि जलधि अगाध समुद्र सम अपार हैं परन्तु ऊपर ते कैसा निष्पाप पावन बना हौं कि अपने पाप जो और के मुखते जलसीकर छींटसम सुनि वासों लरौं अनेकवाद विवाद करि वाको परास्त करत हौं वचन वरजोरी पावन बना हौं अर्थात् असंख्यन आपने पाप अन्तर में छपाये मुख ते पावन धर्मात्मा सज्जन बना हौं पुनः पर कहे औरन को जो अवगुण रजधूरि के कण सम देखत सुनत हौं ताको सुमेरु गिरि सम बनाइकै कहत हौं भाव यथा आपने पाप छिपावबे में प्रवीण तथा पर अवगुण प्रसिद्ध बढ़ावने में परम प्रवीण हौं पुनः औरन के गुण जो गिरि पर्वतसम भारी होयँ तौ रजते निदरौं अर्थात् अनेक भाँति ते निन्दाकरि रजधूरि कणते लघु बनाइकै कहत हौं पर अवगुण बढ़ावने में प्रवीण तथा परगुण छपावने में परम प्रवीण हौं ४ नानाविध यथा आचार्य बनि धर्म उपदेश करता हौं पण्डित बनि कथा सुनावता हौं सज्जन बनि भक्ति के अंग सुनावता हौं कवि बनि नवीनउक्ति सुनावता हौं इत्यादि अनेक भांति के वेष बनाय दिनौ राति जेही विधि ते पावौं तेही युक्ति करि परचित्तहरौं परायो धन लैलेत हौं इत्यादि आचरण ते सदा लोल चञ्चल बना रहता हौं तहां दिनौ राति में एकहू पल अलोल अचञ्चल अर्थात् कबहूं पलकौ भरि थिर नहीं होत हौं जामें हितपूर्वक चित्तदै पदसरोज पदकमल सुमिरौं भाव पलकौ भरि चित्त थिर ह्वैकै हित सहित आपुके पदकमलन में नहीं लागत है अरु असत्कर्मन में सदा लगा रहत हौं ५ हे प्रभु ! आपुते विमुख ह्वै कल्पान्तन ते असत् कर्मन में लाग चला आयों सो मेरे आचरण पाप कर्मन को विचारहु भाव यथा इसने असत् कर्म करि पाप बढ़ाया तैसेही सुकृत करि अपनी करणी ते उद्धार होय यह विचारों तौ कर्म योग ज्ञानादि अग्नि में अपने जीव को औटि मरौं सब साधन करते करते पचि मरौं तबहूं उद्धार न ह्वै सकौंगो भाव कुटिल स्वभावते विधिवत् सत्कर्म होते नहीं अरु विना चित्त शुद्ध भये जो कर्म करबौ करौं तौ परिश्रम वृथा जाइ पुनः कुसंग ते अरु जन्मान्तर में विक्षेप परिजात ताते विना हरिकृपा अल्पज्ञ जीव को स्वयं शक्ति किसी जीव को नहीं है कि भवसागर ते पार जायं सकै पुनः हरिकृपा को प्रभाव कैसा है सो गोसाईंजी कहत कि हे प्रभु ! श्रीरघुनाथजी आपकी कृपा विलोकनि अर्थात् जो कृपाकरि मेरी दिशि देखौ तौ कैसे भवसिन्धु तरौं ज्यों गोपद यथा गाई को खुर भूमि में बनि जात है ताको नांघि जाने में मनुष्य को कछु परिश्रम नहीं परत तैसेही जन्म मरणादि संसारसागर ते सुगम पार ह्वैजैहौं यह दृढ़ता अजामिल

श्रवनादि प्रसंग ते सयके है कि भ्रम ते नाम लै भवपार भये तौ कृपादृष्टि को प्रभाव कौन कहिसकै ६ ॥

(१४३) सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्यों करि विनय सुनावों ।
सकल धर्म विपरीत करत केहि भांति नाथ मन भावों १
जानतहौं हरिरूप चराचर मैं हठि नयन न लावों ।
अंजनकेशशिखा युवती तहँ लोचनशलभ पठावों २
श्रवणनि को फल कथा तुम्हारी यह समुझौं समुझावों ।
तिन श्रवणनि परदोष निरन्तर सुनि सुनि भरि भरि तावों ३
जेहि रसना गुण गाइ तिहारे विनु प्रयास सुख पावों ।
तेहि मुख परअपवाद भेक ज्यों रटि रटि जन्म नशावों ४
करहु हृदय अतिविमल बसहिं हरि कहि कहि सबहिं सिखावों ।
हौं निज उर अभिमान मोह मद खलमण्डली बसावों ५
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन सो विनु काज गँवावों ।
हाटकघट भरि धरयो सुधागृह तजि नभ कूप खनावों ६
मन क्रम वचन लाइ कीन्हे अघ ते करि यतन दुरावों ।
पर प्रेरित ईर्षा वश कबहुँक किय कछु शुभ सो जनावों ७
विप्रद्रोह जनु बांट परयो हठि सब सों वैर बढ़ावों ।
ताहू पर निज मति विलास सब सन्तन मांझ गनावों ८
निगम शेष शारद निहोरि जो अपने दोष कहावों ।
तौ न सिराहिं कल्प शत लगि प्रभु कहा एक मुख गावों ९
जो करनी आपनी विचारौं तौ कि शरण हौं आवों ।
मृदुल स्वभाव शील रघुपति को सो बल मनहिं दिखावों १०
तुलसिदास प्रभु सो गुण नहिं जेहि सपनेहु तुमहिं रिझावों ।
नाथकृपा भवसिन्धु धेनु पद सम जो समुझि नियरावों ११

टी० । कृपानिधि समुद्रवत् कृपारूप जलभरे हे श्रीरघुनाथजी ! अपने आचरण विचारि आपके सम्मुख आवत अति सकुचत हौं तौ विनय क्योंकरि सुनावौं भाव आप परमपावन स्वामी अरु मैं महाअपावन ताते आपके सम्मुख होत वार्ता करत लज्जा आवत तौ विनती कैसे करौं ? काहेते आपकी शरणागति में जो धर्म चाहिये तिनते विपरीत उलटे सकल कर्म करता हौं तौ हे नाथ ! क्यहि भांति ते आपके मन भावोंगो यह विचारि विनय सुनावत लाज लागत १ शरणागति धर्म ते विपरीत क्या आचरण करता हौं कि वेद शास्त्रद्वारा जानता हौं कि चराचर जीवमात्र में हरिरूप व्यापक है यह जानि सबसों समभाव ते सदा एकरस प्रीति

राखना चाहिये यह तौ शरणागति को धर्म है ताके प्रतिकूल में क्या करता हौं कि व्यापक हरिरूप में हठि करिकै नेत्र नहीं लगावत हौं अर्थात् जो अन्तर में प्रभुरूप है तापर जो दृष्टि लगीरहै तौ सर्वत्र समतादृष्टि रहै तौ काहू जीवते राग द्वेष न होवै ताकी प्रतिकूल मेरी दृष्टि कहां रहती है अञ्जन हैं केश वार जामें ऐसा जो दीपक ताकी शिखा टेम जामें परि पाँखी जरिजाती हैं तथा दीपशिखासम युवती युवास्त्री जहां होती हैं तहां लोचन शलभ नेत्ररूप पांखी पठावत हौं भाव युवतिन में दृष्टि लगाय आसक्त है जीव को नाश करता हौं इति नेत्र प्रतिकूल २ पुनः शरणागति धर्म में श्रवण कानन को फल क्या है कि हे प्रभु ! आपकी कथा रामायणादि ताको मन लगायकै सुना चाहिये यह मैं समुझत हौं अरु औरहू लोगनको समुझावत हौं यह शरणागति को धर्म हरि यश श्रवण प्रथम भक्ति है ताकी प्रतिकूल तिन श्रवणनसों परारे पापदोष निरन्तर सदा सुनि सुनि अन्तस में भरि भरि तावों भाव जो सुनत हौं सो दृढ़करि हृदय में धरे रहत हौं त्यहि करिकै श्रवण हृदय मलीन है ३ पुनः हे प्रभु ! त्यहि रसना तिहारे गुण गाइ कृपा, दया, करुणा, शील, सुलभ, उदारता आदि आपके गुणानुवाद गानकरि जो प्रेम उत्पन्न होवै ताके प्रभावते विन प्रयास कर्म योग ज्ञानादिसाधन परिश्रम विना कीन्हे केवल प्रेमै करि परमसुख जीवकी शुद्धता पावों यह शरणागति को धर्म है ताकी प्रतिकूल त्यहिमुख ते यथा भेक मेढकजाके जिह्वा होतही नहीं ताकी समान पर अपवाद पराये पाप दोष रटि रटि जन्म नशावों मनुष्यतन वृथा नाश करता हौं भक्तिअनुकूल पक्ष हरिगुणगान में रसना कहे प्रतिकूल पर अपवादगान में केवल मुख कहे ताको भाव जो हरियशगान न करै ताके मुख में मानो जिह्वा हई नहीं इसहेतु विना जिह्वावाले मेढक सम मुख कहे जाको कर्कश वृथा शब्द है ४ जब विषयवासनारहित अमल अंतस होवै तब ध्यान में हरिरूप आवै यह जानत हौं सो औरनते कहत हौं हे लोगो ! जो विषयवासना मल धोय हृदयको अत्यन्त विमल करो तब तुम्हारे ध्यान में हरि भगवान् वसहिं यह कहि कहि वारम्बार सवहिन को सिखावत हौं यह धर्म है ताकी प्रतिकूल हौं कहे मैं क्या करत हौं कि आपने उरमें अभिमान अर्थात् अपनी वड़ाई पर चित्त उन्नत राखना पुनः मोह पूर्वरूप भुलाइ देहाभिमानी ह्वै लोकसुख सांचु मानिलेना पुनः मद, जाति, विद्या, महत्त्वपर हर्ष चढ़ावना इत्यादि यावत् जीव के नाशकर्ता खल हैं तिनकी मण्डली समूह दुष्टनकी पुरी वसावत हौं ५ जो मनुष्यतन धरिकै साधुजन हरिपद साधहिं अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यतादि नवधाभक्ति साधनकरि हरिपद को प्राप्त होते हैं सो विनु काज गँवावों सो मनुष्यतन वेप्रयोजन विताये देत हौं अर्थात् श्रद्धासहित सुकृत करनेते अर्थ धर्म कामादि लोक में सुख होत भक्तिकरि परलोक में मुक्ति होती है सो विषयसुख में परे कौन्यो ओर को न भयों ताते विन काज तन वृथा जात है काहेते गृह जो घर तामें हाटक जो सोना ताके घट में सुधा अमृत भरा धरा है जाके पानते स्वाद संतोष पुष्टता आदि सुख पुनः अमरपददायक ताको त्यागि न भजो आकाश जहां तीनि काल में जल नहीं है तहां जलपानहेतु कूप खनावत हौं तहां कैसे जल मिलै तथा देह-

रूप घर में शुद्ध हरिसम्बन्धी जीव सो सोनेको घट ताके अन्तर हरिरूप अमृत भरा है ताको मन पान करै तो प्रेम, स्वाद, आनन्द, सुख अभय, पुष्टता, मुक्ति, अमरपद है ताको त्यागि संसार आकाश जामें तीनिउकाल सुखरूप जल नहीं तहां सुखरूप जलके हेतु अनेक उपायरूप कूप खनावत सो कैसे सुख मिलै ६ मनके पाप यथा परधन पै ध्यान परहानि चिन्तवन नास्तिकता ये तीनि हैं पुनः कठोर, झूंठ, परदोष, वृथा वकना ये चारि वचन के पाप हैं पुनः परधन हरिलेना वृथा जीव मारना परस्त्रीगमन ये तीनि कायिक पाप हैं इत्यादि मनके लागि कर्मन के लागि वचन लागि अर्थात् मन कर्म वचनते हर्षसहित जे अघ पाप कीन्हे तिन को तौ अनेक यत्न करि दुरावौं कहे छिपाता हौं पुनः परप्रेरित अर्थात् अपनाको तो श्रद्धा नहीं किसी और के कहे शील सकोच दवाव में परि कछु सत्कर्म किया अथवा ईर्षावश अर्थात् किसीको करते देखि वाको नाम होना सहि न सके वाते अधिक अपना नाम होनेहेतु जो सत्कर्म किया इत्यादि कारण लागे जो कछु कबहूं शुभ कर्म कियो सो वारम्वार कहि कहि सबको जनावत हौं ७ पुनः धर्म की रीति यह है कि सब सों समभाव प्रीति राखै अरु ब्राह्मणनको अधिक करि मानै ताके प्रतिकूल मैं क्या करता हूं कि विप्रद्रोह ब्राह्मणन सों वैर करना जनु मेरे वांटे परो अर्थात् हठि हठि ब्राह्मणनकी निन्दा निरादर अपमान कीनै करता हौं अरु साधारण तौ सब वरणमात्र सों हठि करि बरवस वैर बढ़ावता हौं भाव काहू की निन्दा काहूकी हानि काहूके संकट की उपाय इत्यादि कीनै करत हौं ताहूपर निजमति विलास बुद्धि की प्रवीणता अर्थात् झूंठी छल चातुरीते धर्म, कर्म, विराग, ज्ञान, भक्ति की अनेक वार्ता करि सन्तन मांझ गनावौं सन्तन के वीच में उत्तम सन्तन में अपनी गिनती करावत हौं भाव दम्भी हौं ८ कैसे समूह दोष मेरे हैं कि जिनको समग्र कहुवावत्रे हेतु वड़े शक्तिवन्त जो निगम वेद पुनः शेष अरु शारदा को निहोरि हाहा विनतीकरि जा अपने दोष कहावौं हे प्रभु! जो शेष शारदा वेदौ कहा करैं तबहूं सौ कल्प लगि न सिराहिं हज़ार चौयुगी को एककल्प ऐसे सौ कल्पलगि कहा करैं तबहूं मेरे दोष कहे न चुकैं तिनको कहिबेमें एक तौ मैं अल्पज्ञ दूसरे मेरे एक मुख सोऊ बुद्धिहीन तासों कहांतक गावौं कहिसकौं ९ जो मैं आपनी करनी विचारौं अर्थात् जिनको शेष, शारदा, वेद न कहिसकैं ऐसे संख्या रहित मेरे पाप दोष हैं तिनपर जो दृष्टि करौं तोकि हौं कहे मैं आपकी शरण आवौं कैसे आयसकौं भाव आपकी शरण में तौ सुकृती पावन जीव जाते हैं तहां मैं महापापी कैसे आइसकतों परन्तु हे रघुपति! आपको मृदुल कोमल स्वभाव है अर्थात् कैसेहू अपराध करि सन्मुख आवै ताहूकी क्षमा करि कछु कहते नहीं हौ पुनः शील आपुमें कैसा है कि कैसहू दीन मलीन हीन शरण आवै ताहूको सन्मान करि बड़ाई देतेहौ सो बल मनहि देखावौं अर्थात् जब मन पछुरता है तब मैं आप के शील कोमल स्वभाव को सुनावता हौं कि त्वहिते अधिक पापी पतित शरण में गये तिन सबको प्रभु पावन करि अपनाइलिये तहां तू क्यों डरता है इत्यादि बल भरोसा मनको देखावत हौं तब मन सन्मुख होता है १० मन सन्मुख भये पर गोसाईंजी कहत कि हे प्रभु! सो गुण मेरे एकहू नहीं जिहिते सपनेहूमें मैं आपको

रिझावों प्रसन्न करौं अर्थात् समता, शान्ति, संतोष, विराग, विवेक, शम, दम, विचार, श्रद्धा, विश्वास इत्यादि गुण होइँ तब श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दनादि करि प्रभुको प्रसन्न करौं सो तौ एकहू नहीं केवल यमनादि को प्रसंग सुनि मेरो मन में यह भरोसा है कि जो रघुनाथजीकी कृपा ते भवसागर धेनुपद गायके खुरभरि ह्वैजाय तौ महूं सुगम पार ह्वै जाउँ यह समुझि चरणशरण में मनको नियरावत हौं अर्थात् पूर्वको महापातकी अरु वर्तमान शरण योग्यगुण नहीं केवल आपकी कृपा के भरोसे शरण में आया हौं ११॥

(१४४) सुनहु राम रघुवीर गुसाईं मन अनीतिरत मेरो।
चरण सरोज बिसारि तिहारे निशि दिन फिरत अनेरो १
मानत नाहिं निगम अनुशासन त्रास न काहू केरो।
भूल्यो शूल कर्म कोल्हुन तिल ज्यों वहु वारनि पेरो २
जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहु करत न फेरो।
लोभ मोह मद काम क्रोधरत तिन्ह सों प्रेम घनेरो ३
परगुण सुनत दाह परदूषण सुनत हर्ष बहुतेरो।
आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत परखेरो ४
साधन फल श्रुतिसार नाम तव भवसरिता कहँ बेरो।
सो परकर काकिनी लागि शठ बेंचि होत हठि चेरो ५
कबहुँक हौं संगति स्वभावते जाउँ सुमारग नेरो।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो ६
इक हौं दीन मलीन हीनमति विपतिजाल अति घेरो।
तापर सहि न जाय करुणानिधि मनको दुसह दरेरो ७
हारि पर्यो करि यत्न बहुत विधि ताते कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ८

टी०। हे राम! अर्थात् परात्पर परब्रह्म साकेतविहारी जिनकी ऐश्वर्य ब्रह्मादिक नहीं जानते हैं सोई सुलभ लोकोद्धार हेतु उत्तम रघुवंश में धर्मवन्त उदार वीररूप ते अवतीर्ण भयो सब की आश पूरण करते हौ न्यायपूर्वक सबकी रक्षा करते हौ सुलभ जीवको उद्धार करते हौ ऐसे उत्तम स्वामी हौ इत्यादि भावते कहत हे राम, रघुवीर, गोसाईं सबको पालनहारे, स्वामी! मेरा मन अनीति में रत है ताके निवारण हेतु मैं अर्ज करत हौं ताको सुनहु कैसी अनीति में प्रीति किहे है कि तिहारे चरणसरोज अर्थात् सब सुख देनहारे आपके पदकमल तिनको विसारि निशि दिन रातिउ दिवस अनेरो फिरत अर्थात् चरण के नेरे नहीं आवत दूरि दूरि भाग भाग फिरत १ कौने स्वभावते भाग भाग फिरत कि सबल ऐसा है कि निगम जो वेद ताको अनुशासन आज्ञा नहीं मानत भाव

वेदधर्मते प्रतिकूल चलत है ताहूपर निर्भय कैसा है कि काहू केरो त्रास डर नहीं मानत है अर्थात् वेद धर्म प्रतिकूल जो चलत है ताको यमसांसति आदि दण्ड होत है सो किसीको डर नहीं मानत है हर्षसहित अधर्म मारग में चलत है जो कहो कि याको कबहूं दण्ड नहीं भया जो निर्भय है तहां दण्ड तौ अनेकन वार भया कौन भांति यथा कोल्हू में डारि तिल पेरि खरी मैल निकारि शुद्ध तेल लै लेते हैं तथा जब जीव में अधिक पाप बढ़त तब यमपुर में सांसति आदि जो कर्मन को भोग है इति कर्मरूप कोल्हू में डारि ज्यों तिल तैसही पेरि पापखरी अवगुण मैलसम निकारि तेल सम जीवको शुद्ध करि देते हैं इत्यादि अनेकवार पेरा गयो परन्तु लोक में जन्म पाय पूर्व शूल पीरा अब भूलि गयो २ जहां सत्संग अर्थात् सन्तन की सभा में जहां वेद धर्म सत्कर्म ज्ञान भक्ति की वार्ता होत अथवा माधव भगवान् की जहां कथा होत तहां जागत की कौन कहै सपने में भी फेरा नहीं करता है पुनः लोभ में जे रत परधन हरने की वार्ता करत मोह में जे रत संसार के सुख की वार्ता करत मद में जे रत औरन की निन्दा करत काम में जे रत परस्त्रीकी वार्ता करत क्रोध में जे रत परअपवाद परहानि की वार्ता करत तिनसों घनेरो बहुत प्रेम राखत भाव कामी, क्रोधी, लोभी, आदिकन के संग में हर्षित रहत अर्थात् सत्संग हरिपद की समीपता ताको त्यागि कुसंग में रहत यही हरिपद ते दूरि भागना है ३ पुनः परगुण पराये गुणानुवाद जो कोऊ कहै लागत ताको सुनत उर में दाह उठत ईर्षा ते सहि नहीं जात पुनः परदूषण पराये पापकर्म अवगुण जो कोऊ कहत ताको सुनत बहुत हर्ष मन में आनन्द बढ़त भाव साधुता रीतिरहित दुष्टता स्वभाव है ताते आपतौ पापन को नगर बसावत अर्थात् सदा पापै मन में बसा रहत ताते हिंसा, चोरी, ठगी, परस्त्री, परहानि इत्यादि असंख्यन पाप करत इति पापन को समूह अन्तर में बसाये हौं अरु परखेरो पुरवा नहीं सहि सकत अर्थात् औरनको थोरहू पाप देखत हौं ताको हजार भर बनायके कहत हौं ४ जप, तप, पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रतादि धर्मके साधन, यम, नियम, आसन प्राणायामादि योग के साधन विवेक, विरागादि ज्ञान के साधन इत्यादि करने को फल पुनः श्रुति वेद को सारांश पुनः जीवके कल्याण हेतु भवरूप सरिता नदी को निर्विघ्न सुगम पार उतारि देवे हेतु बेरा है अर्थात् लट्ठा दश बीस एकमें बांधिलेत ताको बेरा कहत सो वामें न कारीगरको काम अरु न बूड़ि सकै तैसे रामनाम में न विधि विधान को काम न वाकी आधार भवमें बूड़ि सकै ऐसा जो आपको नाम है ताको काकिणी नाम छदाम की कौड़ी ॥ यथा ॥ काकिणी पणतुर्यांशे इति मेदिनी ॥ अर्थात् पण कही पैसा ताको तुर्य नाम चौथा अंश इति छदाम की कौड़ी लागि पावनेहेत परकर कहे पराये हाथ आपको नाम बेंचि पुनः शठ महाअज्ञ आपहू हठ करि उसीको चेरो गुलाम होत अर्थात् कौड़ी पावबेके लालच वश सबको नाम माहात्म्य सुनावत फिरत पुनः बरवस गांसि गांसि उन लोगन की अनेकभांति खुशामद करत हौं ५ पुनः कबहूं किसीसमय भाग्य उदय भई तब साधुनको संग ह्वैगयो त्यहि संगति स्वभावते अर्थात् सत्संग प्रभावते मेरहू स्वभाव बदलि सन्मार्गी भयो नवहीं कहे मैं सुमारगके नेरे गयों अर्थात् जहां सन्तन की सभा

है धर्म, कर्म, ज्ञान, भक्ति की वार्ता होत अथवा हरियश कथा होत वा हरितीरथ वा रामलीला होत इत्यादि के समीप जात हौं तब संग जो इन्द्रिय तिनकी विषय द्वारा कुत्सित मनोरथ यथा परस्त्री परधन परहानि इत्यादि प्रबल है उठते हैं तब काम, क्रोध, लोभ, मोहादि जे कठिन भट कराल योधा ते क्रोध करि मेरो धक्का देते हैं यथा कामवश परस्त्री की चाह लोभवश परधन हरण क्रोधवश परहानि इत्यादि सुमारग छुड़ाइ देते हैं ६ प्रकृती मैं दीन भाव पौरुषरहित पुनः पापन करिकै मलीन पुनः मतिहीन निर्बुद्धि ताते हानिरुज दरिद्रतादि जो विपत्ति जाल सो घेरे हैं संकट में परा हौं अर्थात् पौरुष होत तौ सत्कर्म करत्यों सुकृती उज्ज्वल होत्यों तौ सहजही सुख होत सुबुद्धी होत तौ विचार विवेक संतोष आदि शुभगुण होते इत्यादि एकहू नहीं ताते महाविपत्ति है ताहूपर हे करुणानिधि, करुणारूप, जलभरे समुद्र, हे रघुनाथजी ! भाव सेवक के दुःखते दुःखित है दुःख हरनेवाले हौ इस हेतु आपते प्रार्थना करत हौं इति हे करुणानिधि ! एक तौ विपत्ति ते स्वाभाविक ही दुःखित ताहूपर दुसह जो सहवेयोग्य नहीं ऐसा मनको दरेरा अर्थात् कुत्सित मनोरथ ते कामादिकन की प्रहार कठिन चोट सो नहीं सहिजात भाव जीव की थिरता आनन्द सर्वथा नाश किहे रहत ७ विवेक, विराग, संतोष, विचार, समता, शान्ति, ज्ञानादि बहुती विधिकी यत्न उपाइ करि हारि पर्यों एकहू कर्तव्यता मेरी नहीं चलती तब अधीर भयों ताते कहतहौं आपते प्रार्थना सवेरे करत हौं भाव अबहीं कछु गया नहीं आपकी कृपाते सब काम बनिसक्ता है कौन भांति कि जो पूर्व कहि आये हैं मनकी कुटिलता यह जो तुलसीदास को त्रास है अर्थात् प्रभुपद त्यागि मन कुमारग में रत ताते कामादि मोको भवसागर में डारेंगे यह जो डर है सो तब मिटै जब आप मेरे हृदय में डेरा करौ सदा बसे रहौ तब आपके डरते कामादि ठग चोर बटपार आपही भागि जाइँगे शुद्धमन कैद करि आपनी परिचर्या में लगाये रहौ तौ सब बात बनी ८ ॥

(१४५) सो धौं को जो नाम लाज ते नहिं राख्यो रघुबीर।
कारुणीक बिनु कारणही हरि हरहु विषम भवभीर १
वेद विदित जग विदित अजामिल विप्रबन्धु अघधाम।
घोर यमालय जात निवार्यो सुनतहि सुमिरत नाम २
पशु पामर अभिमान सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सुकृत सपदि आये प्रभु हरेउ दुसह उरदाह ३
व्याध निषाद गृध्र गणिकादिक अगणित अवगुण मूल।
नाम ओट ते राम सबनको दूरि करेउ सबशूल ४
केहि आचरण घाटि हौं तिनते रघुकुलभूषण भूप।
सीदत तुलसिदास निशिवासर पर्यो भीम तमकूप ५

टी०। जो आप कहौ कि तू अपावन है तेरे उर में हम कैसे डेरा करैं तौ जो आप वास करौगे तौ हृदय पावन करिलेउगे काहेते यथा महीं एक अपावन

आपको मिला हौं यह तौ सनातन ते आपकी रीति है कि एकबार नाम लेत महापापिन को पावन करत आयो है जो कहौ किसको पावन किया तापर मैं आपते पूछता हौं हे रघुवीर! अर्थात् रघुवंश में उत्तम उदार वीर है अपने नाम की लाजते कोध्यौं ऐसा है जाको शरण में नहीं राख्यो भाव ऐसा कोऊ संसार में न ठहरो जो आपके सन्मुख आइ पवित्र न भया होइ अर्थात् सब पावन है गये काहेते हे हरि, करुणा के करनेवाले! आप कारुणीक हौ अर्थात् शरणमात्रते सेवक मानि वाके दुःख में दुःख करि विकल है शीघ्रही दुःख हरि लेते हौ इति करुणागुण के प्रभाव ते विनु कारण ही भाव सेवा, पूजा, बलि, भेटादि कछु नहीं चाहते हौ वे प्रयोजनही सन्मुख होत देखि विपम जो भवभीर जन्म मरणादि दुःख को कठिन जो भार ताको हरहु तुरतही हरिलेतेहौ १ जो कहौ शरण आया सो तौ अपना है चुका ताकी सहायता तौ उचितै है अरु वेप्रयोजन हम किसकी भवभीर हराई जाके भरोसे तुम सेंतिही पार होन चाहतेहौ सोऊ हाल सुनिये कछु छपा नहीं वेद में विदित जाकी प्रमाण है भागवतआदि पुराणद्वारा जगत् में विदित सबै जानते हैं कि अजामिल, विप्रवन्धु जातिमात्र ब्राह्मण है अरु धर्म कर्म करि पतित रहा अघधाम पापनको भरा मन्दिर सो कब शरण भया वेप्रयोजन यही है कि सुतहित पुत्रको देखने हेतु नारायणनाम सुमिरतसन्ते घोर यमालय भयंकर जो यमधाम नरकलोक तहां को जात समय निवारेउ यमगणनते छिनवाइ आपने लोकमें वास दीन्हेउ अर्थात् जानिकै आपको नाम नहीं लिया पुत्रको नारायण नाम रहै ताको देखनेहेतु नाम लै पुकारा तिस महापापी को भवभीर ते उबारेउ इति वेप्रयोजन नामकी लाजते भवते उबाख्यो २ पुनः एकतौ पशु मनुष्यौ नहीं पुनः पांवर महामूढ़ काहेते अभिमान सिन्धु बलके अभिमानरूप जलको भरा समुद्र ऐसा जो गजराज ताको जब ग्राह आइ ग्रस्यो पकरिलीन्हेउ भाव सुखमें नहीं महा-संकट में आपको नाम लै पुकाख्यो ताको सकृत नाम एकबार नामसुमिरतमात्र सपदि शीघ्रही वाके समीप आयो पुनः हे प्रभु! दुसह जो सहि न जाइ ऐसी वाके उरमें दाह तपनि रही अर्थात् प्राणत्याग को दण्ड रहा ताको हरेउ तुरतही मिटाइ दिहेउ अर्थात् ग्राहको मारि गजराज को उबारि दोउनको सुगति दीन्हेउ भाव उसने तौ लौकिक दुःख छूटनेहेतु पुकारा रहै ताको परलोकौते अभय कीन्हेउ इति वेप्रयोजन उद्धार कीन्हेउ है ३ पुनः वाल्मीकि व्याधा रहे हिंसा करि जीविका रही सो सप्तऋषिनके संगते उलटा नाम जपेउ तिनको पावन कीन्हेउ पुनः निषाद नीचजाति, हिंसकी क्रिया ताको पावन कीन्हेउ पुनः गृद्ध जटायू मांसअहारी ताको पावन किहेउ पुनः गणिका म्लेच्छजाति जन्मभरि पापै कर्म करत रही केवल नाम लेतही वाहूको उद्धार कीन्हेउ इत्यादिक अगणित असंख्यन अवगुण मूल अवगुण वृक्ष करियेकी जर अर्थात् महाअवगुणी रहे तिन सबनिको हे रघुनाथ जी! अपने नामके ओटते सबन को भवशूल दूरि करेउ अर्थात् सब अवगुणी महा-पापी रहे तिनहुं नाम लीन्हे ताहीते पावन करि परधाम पठायो इति नामकी लाज ते वे प्रयोजन अनेक अधमनको पावन करते रहेउ ४ अजामिल आदि यावत् अधमन को निरंतु आप तास्यो है तिनते अवगुण पाप अधमता आदि सबहि

आचरणते मैं बाढि हौं अर्थात् पापदोष, कुटिलता, नीचतादि सब रीति ते मैं उनते अधिक हौं भाव वे सतयुग त्रेतामें भये जब धर्म का अधिक प्रचार रहै तब कहां तक पापी है सक्के हैं काहेते अब के धर्मात्मन के तुल्य तबके अधर्मी रहे होइँगे त्यहि कलियुग में मैं महाअधर्मी हौं इस हेतु मैं उनते अधिक हौं हे रघुकुलके प्रकाशक, भूपणभूप, भूमिको पालनहारे, हे रघुनन्दन, महाराज! अजामीलादिकन को वे प्रयोजन तास्यो अरु मैं तुलसीदास भीम तमकूप भयंकर अन्धकार है जामें ऐसे संसाररूप कुवां में परा निशिदिन रातिउ दिन सीदत महादुःख पावत हौं मोपर क्यों नहीं कृपा करते हौ यथा सबको तास्यो तथा मोको तारो ५॥

(१४६) कृपासिन्धु जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे।
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे १
गज प्रह्लाद पाण्डुसुत कपि सबके रिपु संकट मेट्यो।
प्रणत बन्धुभय विकल विभीषण उठि सो भरत ज्यों भेंट्यो २
मैं तुम्हरो लै नाम ग्राम यक उर आपने बसावों।
भजन विवेक विराग लोग भले मैं क्रम क्रम करि ल्यावों ३
सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक करहिं जोर बरिआईं।
तिन्हहिं उजारि नारि अरिधन पुर राखहिं राम गुसाईं ४
सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हास्यो।
बिनु कारण के कलह बड़ो दुख प्रभु सों प्रकटि पुकास्यो ५
सुर स्वारथी अनीश अलायक निठुर दया चित नाहीं।
जाउँ कहां को विपति निवारक भवतारक जग माहीं ६
तुलसी यदपि पोच तौ तुम्हरो और न काहू केरो।
दीजै भक्ति बांह बारक ज्यों सुवश बसै अब खेरो ७

टी०। कृपालक्षण ॥ दो० ॥ रक्षकसबसंसारको हौं समर्थ मैं एक। दृढ़ मन अनुसंधान यह सो गुण कृपाविवेक ॥ अर्थात् सब संसार के रक्षाकरिबेको समर्थ मानना यह जो कृपागुणरूप जलभरे समुद्र हे श्रीरघुनाथजी! सबकी तौ रक्षा करते हौ अरु मैं दीन दुःखितजन आपुके द्वारपर वारम्वार पुकारिरहा हौं सो काहेते कौन कारण दादि नहीं पावता हौं मेरी अर्ज क्यों नहीं सुनते हौ अरु और आरतजन जब कोऊ जहां आपुको पुकारा तबै तिनके दुःख दाहे सबभांति के दुःख नाश करिदीन्हेउ अर्थात् गजादिक और न जो जहां एकहूवार नाम लै पुकारा तहँ जाइ ताकी सहाय कीन्हेउ अरु मैं तो आपके द्वारपर बारबार पुकारत हौं सो दादि नहीं पावतहौं तौ क्या कारण है? जो कहौ किसकी कहां दादिदिया सो चित्रकूट में गजराज पुकारा तहां जाइ ग्राहको मारि गजको उद्धास्यो सिन्धुदेश में प्रह्लाद पुकारा तहां नृसिंह ह्वै हिरण्यकशिपु को मारि रक्षाकीन्हेउ पाण्डुसुत हस्तिनापुर

में पुकारे तहां दुर्योधनको नाश कराइ युधिष्ठिरादि की रक्षा कीन्हेउ ऋष्यमूकपर सुग्रीव पुकारा तहां वालिको मारि रक्षा कीन्हेउ इत्यादि सवके रिपुशत्रुन को अरु संकट मिटाइ दिहेउ पुनः वन्धु रावण ताकी भय डरकरिकै विकल विभीषण प्रणत शरण आयो तहां आप उठिकै ज्यों भरत मिले त्योंही प्रीतिसहित सो जो विभीषण ताको उर में लगाइ भेंटेउ इत्यादि सवकी दादिदीन्हेउ २ अव मेरी अर्ज सुनिये हे श्रीरघुनाथजी ! मैं अपने उररूप भूमिका में आपको नाम लै अर्थात् रामखेरा ऐसा नामधरि एक ग्राम वसावत हौं तहां सुमति को परिखाकरि शरणागती को भरोसा रउनीकरि ताके भीतर मोद, विश्वास, समता, शान्ति, कोमलता, अमानता, दैन्य, दया, थिरतादि सुन्दर मन्दिर वनाई तिनमें श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि जो भजन भक्ति को परिवार पुनः निर्वृतिको परिवार विवेकादि जे भले लोग हैं यथा विवेक, विचार, धीर्य, संतोप, सत्य, शीलधर्म वैराग्य तिनकी स्त्री क्रमते ब्रह्मविद्या, क्षमा, तृप्ति, साधुता, लज्जा, श्रद्धा, उदासीनता तिनके पुत्र क्रमते ज्ञान, आर्ज्जव, आनन्द, निष्कपट, सुयश, प्रकाश, अभ्यास, तिनहूं की स्त्री क्रमते असंग, मुदिता, करुणा, जिज्ञासा, कीरति, सत्वासना, निराशा इत्यादि वंधु स्त्री पुत्र पतोहनयुत विवेक राजको परिवार तिनको क्रम क्रम ल्यावों धीरा धीरा एक एक को लैलै आनि उसी ग्राम में वसावतरहौं ३ इत्यादि ग्रामको वसत सुनि हे रामगोसाईं, रघुनन्दनस्वामी ! मोहकी जो सेना है यथा काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, गर्व, मद, अधर्म, अहंकार, लालच, अविचार, पाप, पाखण्ड, अयश, विरोध, असत्य इत्यादि स्वभाव के कुटिलताते रिसभरे पुरमें आइ वरिआई जोर करहिं अर्थात् जवरद्दन घरन में पैठि वल करिकै सवको पकरि सर्वस लूटिकै पुनः विवेकादि जे वासी रहे तिन्हिं उजारि उसी ग्राम में नारि अरि धन राखते हैं अर्थात् कामवशते अश्रद्धा भूल लोलुपता, मिथ्यादृष्टि, परनारि में रति पुनः क्रोधवश ते परअपवाद, परहानि, निन्दा, ईर्पा, कुवचन, हिंसा इत्यादि अरि शत्रुता भई पुनः लोभवश ते भूल, आशा, तृष्णा, ममता, चिन्ता इत्यादि परधन में प्रीति भई इत्यादिकन को उस पुर में आनि राखते हैं ४ इहां सेनासमेत मोह, विवेक दोऊ राजनको विवाद है तहां राजनीति के उपायनते निर्वलराजा सवलसों मिलि लेते हैं सो उपाय सात विधि है यथाग्निपुराणे ॥ साम दानं च भेदं च दण्डोपेक्षेन्द्रजालकम्। मायोपायाः सप्त-परेनिक्षिपेत्साधनायतान् ॥ साम प्रीतिकरना, दान कछुदेना, भेद वाके वन्धुआदि को मिलाइ लेना, दण्ड धनहरना मारना पुनः उपेक्षा अर्थात् अन्यायते वा युद्धते वाको कछु व्यसन वढ़ाइ वढ़ती मिटाइदेना पुनः इन्द्रजाल मन्त्र यन्त्र चलावना पुनः माया देवी पिशाची आदि चलावना इत्यादि जो उपाय हैं सो कहत कि सम जो मित्रता हेत कामादिकनकी सेवा कीन्हेउँ भाव विनती करि समुझायों कि मोपर क्षमा राखौ जव न मानै तव छल अर्थात् यामें चारि उपयौ आइजाती हैं प्रथम भेद अर्थात् क्रोध को मिलाइ काम लोभादि को हटावा चह्यों तवौ न मानै तव उपेक्षा अर्थात् व्यसन वढ़ायो जामें अपमान पाइ कामादि की वृद्धि मिटै तवौ न मानै तव इन्द्रजाल विचाररूप मन्त्र चलाये पुनः माया सुबुद्धि देवी चलाये तवौ

न माने तव कामादि की रुचि अनुकूल कर्मरूप दान दीन्हे तवौ न माने तव शम, दम, उपराम, तितिक्षादि दण्ड दीन्हेउ इत्यादि नीति उपाय रचि पचि अमित भयो ताते हारिपरेउ इत्यादि विन कारण की वेप्रयोजनकी कलह युद्ध वढ़ो भाव मैं तौ कछु कामादिकनको नशावा नहीं वे वेप्रयोजन मेरे वसे हुये ग्रामको उजारि आपने प्रजा वसाये इत्यादि कलहते वड़ो दुःख भयो भाव मेरा परमार्थ धन हरि कै चौरासीरूप कारागार में डारैंगे इत्यादि अधीर है हे प्रभु ! आपुसों प्रकट पुकार कीन्हेउँ अर्थात् यथा सवल राजा किसी निर्वल राजा को जीति वाकी प्रजा उजारै लागत तव प्रजा लोग जाइ मण्डलेश्वर राजाते पुकार करते हैं तथा विवेकको जीति मोको सतावत है अरु देवादि कोऊ सहाय करवेयोग्य देखात नहीं ताते मैं आपुसों कहे ५ हे प्रभु ! जो कहौ अनेकन दिग्पालादि समर्थ हैं तिनसों क्यों नहीं कहेउ तापर कहत कि जो परमारथी ईश लायक वाला कोमलचित्त दयावन्त होत तासों याचना करि आशा पूरण होत अरु सुर देवता सव कैसे हैं स्वारथी अर्थात् पूजा जाप यज्ञादि विधिवत् पाय यथा योग्यफल देते हैं सोतौ मोसों कछु है नहीं सक्राहे तौ कैसे उनके ढिग जाउँ पुनः अनीश अर्थात् ईश्वरकोटी में नहीं हैं उनहू जीवकोटी में हैं तौ आपही कामादि सों पीड़ित हैं ते मेरी रक्षा कैसे करिसकैंग अर्थात् मोहदल जीतिवे को समर्थ नहीं हैं पुनः अलायक अर्थात् उत्तम उदार परोपकारी नहीं हैं तहां मेरी दीनजनकी पुकार कौन सुनैगा पुनः चित्तमें दया नहीं ताते निठुर कठोर स्वभाव हैं तव कैसे आरतजनकी पीर उन के मन में व्यापैगी तहां जाना वृथा है ताते विपति निवारकभाव कामादिकन करिकै जो जीव को संकट है ताको मिटाइदेनेवाला पुनः भवतारक भाव सहजही दया करि भवसागर ते पार करि देनेवाला ऐसा सवल समर्थ दयावन्त उत्तम सुलभ उदार जगत् में दूसरा को है अर्थात् कोऊ नहीं है ताते अन्त कहां किसके पास जाउँ सव भांति सवल समर्थ दयासिन्धु सुलभ उत्तम उदार स्वामी एक आपही हौ यह जानि आपके समीप आइ दादि करत हौं ताको दया दृष्टि ते सुनिकै कृपा करि मोको अभय कीजिये ६ जो कहौ कि तू नीच है कैसे कृपा करि अभय करौ तापर गोसाईंजी कहत कि हे रघुनाथजी ! यद्यपि मैं पोच अर्थात् नीच हौं तौ और काहू केरो नहीं तुम्हरे हौं अर्थात् औरन को आश भरोसा नहीं केवल आप ही को गुलाम हौं इति अपनो जानि वारक एक वार भक्ति वाँह दीजिये भाव उर में अचल भक्ति करिदीजिये जाके प्रभाव ते यह राम खेरो अव सुवस सुखपूर्वक वसै अर्थात् ज्ञान विरागादिकन को कामादि नाश करि देते हैं अरु भक्ति को नाश काहू को किया नहीं है सक्ता है यथा गीतायाम् ॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति । कौन्तेय प्रतिजानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति ॥ इत्यादि जो भक्ति हृदय में वनी रहै ताके प्रभावते विवेक विरागादिको वने रहैंगे कामादि न वाधा करैंगे ७ ॥

(१४७) हौं सव विधि राम रावरो चाहत भयो चेरो।
ठौर ठौर साहवी होत है ख्याल कालकलि केरो १

काल कर्म इन्द्रिय विषय गाहक गण घेरो।
हौं न कबूलत बांधि कै मोल करत करेरो २
बन्दिछोर तेरो नाम है विरुदैत बड़ेरो।
मैं कह्यों तब छल प्रीति कै मांगे उर डेरो ३
नाम ओट अब लगि बच्यों मलयुग जग जेरो
अब गरीब जन पोषिये पाइबो न हेरो ४
जेहि कौतुक खग श्वान को प्रभु न्याव निबेरो।
तेहि हेतुक कहिये कृपालु तुलसी है मेरो ५

टी० । काहेते भक्ति बांहदै अभय कीजिये हे श्रीरघुनाथजी ! हौं मैं सब विधिते रावरो चेरो भयो चाहत अर्थात् भली जीविका दै मान राखौ वा सामान्य जीविका दै उदासीन रहौ वा लघु जीविका दै अनादर राखौ वा कछु न देउ द्वार पै पराहने देउ इत्यादि सबै विधिते मैं आपही को गुलाम बनारहा चाहत हौं तहां अन्य युगनको यह ख्याल रहै कि जब कोऊ बड़े स्वामी को सेवक होनेहेत जातारहै तब छोटे स्वामी वाको नहीं बुलाइ सक्तेरहैं काहेते उन युगन की चाह जीवन को ऊंचापद देनेकी रहै अरु अब कलिकाल कलियुग को ख्याल कैसाहै कि जीवन को नीचापद देनेकी चाह राखैहै ताते ठौर ठौर साहिबी होतहै भाव मैं तौ आपकी गुलामी कीन चाहत हौं ताते चुपचाप चलाजात तहां मार्ग मैं अनेकन साहेब बने ठौर ठौर घेरि घेरि बुलावत कि आइ हमारही चेरो हो उहां जाइ कै कौन सुख पावैगा हम तोको बड़ा सुख अधिक जीविका देइँगे १ कौन कौन साहिब हैं सो कहत यथाकाल जो कलियुग कर्म जो पूर्वशुभाशुभ संचित हैं इन्द्रिय यथा श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिका, मुख, हाथ, पद, गुदा, लिङ्ग तिनकी विषय क्रमते यथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वचन, व्यापार, चलन, मलत्याग, मैथुन इत्यादि गाहकगण मोल लेनेवाले बहुत मोको घेरे हैं कि हमारही गुलाम हो जब हौं न कबूलत अर्थात् उनकी गुलामी जब मैं नहीं मंजूर करता हौं तब बरबस मोको बांधिकै करेरो बड़ाभारी मोल करत अधिक लालच देखावत यथा कलियुग कहत जो मेरे अनुकूल तेई सुखी हैं मेरे प्रतिकूल ते दुखी हैं कर्म कहत बिना हमारे आधीन रहे कौन सुख देसक्ता है जो सुख चाहौ तौ कलियुगी कर्म करौ अर्थात् चोरी ठगी छलते बेपरिश्रम धनलाभ ताते सब सुख होते हैं पुनः अकारण क्रोध परहानि अपवाद करौगे तौ सब तुमको डराइँगे परस्त्री मैं प्रीति ते सुन्दर भोग इत्यादि पुनः कान कहत हमारीद्वारा शब्द विषयते काम गीत स्त्रिन की वार्ता ते आनन्द नेत्र कहत हमारीद्वारा रूप विषय ते नृत्य कौतुक सुन्दरी स्त्री देखे आनन्द रसना कहत हमारी द्वारा षट्रस भोजनते आनन्द लिङ्ग कहत मैथुनते महा-आनन्द इत्यादि गुलाम बनावने हेत बड़ाभारी मोल सुनावते हैं २ हे प्रभु ! तेरो आपुको जो बन्दीछोर नाम है अर्थात् नाम लेतही यमसांसति आदि जो महासंकट तिनको छुँड़ाइ देतेहौ सोई बड़ेरो विरद बड़ाभारी बाना धारण किहेहौ सोई जब

मैं उन गाहकन सों कहत हौं भाव जिनको नाम बन्दीछोरकरि बड़ीभारी बिरदा-वली लोक में प्रसिद्ध है ऐसे रघुनन्दन को गुलाम होने हेत जाता हौं भाव मैं भवबन्धनते छूटा चाहता हौं अरु तुम लोग तौ अधिक बन्धन दृढ़ करोगे तब उन कहा कि तुम ऐसे सुकृती नहीं तब मैं कहा स्वामी तौ अधमउद्धार हैं इत्यादि जब मैं कहेउँ तब उन काल कर्म इन्द्रिय विषय छल प्रीति अन्तरते शत्रुमुख ते सनेही बनिकै मेरे उरमें अपना डेरा मांगे भाव अन्तसमें बसे रहने देउ हम तुम्हारी सदा सहायता करेंगे अर्थात् श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दनादि, इन्द्रियनकरि बनैगा सोई कर्मकरि कलिमें शीघ्र कार्य सिद्ध होता है इति मुखते हितकार पुनः कारण पाइ संसार को खैंचि लैजाते हैं इति छल प्रीति ते उरमें बसेरहे ३ जिस मलयुग कलियुगने जगजेरो जेर किहेहै अर्थात् धर्म, कर्म, योग, विराग, ज्ञानादि भारी भारी किला तूरि सब वर्णाश्रमादि को कमजोर करि सब जगत् को अपने हुक्म के नीचे किहेहै सोई कलियुग समाज सहित उर में बसा है ताके दरेरा में बचना मुश्किल है परन्तु नाम ओट अबलगि बच्यों अर्थात् प्रबलप्रतापवन्त जो आपुको नाम ताको अवलम्ब लिहेहौं ताते कलियुग बाधा नहीं करिसका इति नाम ओट अबलगि तौ बच्यों परन्तु समीपही सबल शत्रु तौ कहां लगि बचिहौं ताते हे प्रभु! दीन दुखितजन जो मैं ताको अब न जमोगिये कलियुग की अमलदारी में मोको न राखिये जो कहौ कि जमोगमें न राखैं तौ कलियुग ते नजर भेट पूजा कैसे पावैंगे सो पाइबो न हेरो भाव मेरी गरीबी पर दयादृष्टिते भेट पूजादि पाइबे पर दृष्टि न करौ अर्थात् वाकी अमलदारी ते निकारि मोको अपनी गुलामी में राखो नातरु कलियुग मोपर कराल कोप किहेहै एकदिन खाइ जाइगो ४ खग पक्षिन को न्याय अर्थात् उलूक का घर गृध्र ने छीनि लियारहै ते विवाद करत आये प्रभु पूछे तुम्हारा घर कबते है तब गृध्र बोला जब पृथ्वी में मनुष्य परिपूर्ण भये तब ते मेरा घर है उलूक बोला जब पृथ्वीपर केवल वृक्ष रहे तब ते मेरा घर है तब प्रभु बोले कि पर्वत वृक्ष पहिलेही भये मनुष्य पीछे भये ताते आदि घर उलूक कोहै गृध्र ने अनीति किया याको दंड चाहिये यथा वाल्मीकीये ॥ अथोलूकस्य भवनं गृध्रः प्राप विनिश्चयः । ममेदमिति कृत्वासौ कलहं तेन चाकरोत् ॥ रामं प्रपद्य तौ शीघ्रं कलिव्याकुलचेतसौ । तावाहूय च धर्मात्मा पुष्पकादवतीर्य च ॥ गृध्रोलूक-विवादन्तं पृच्छतिस्म रघूत्तमः । कति वर्षाणि वै गृध्र तवेदं निलयं कृतम् ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वै गृध्रो भाषते राघवं स तम् । इयं वसुमती राम मनुष्यैः परितो यदा ॥ उत्थितैराघृता सर्वा तदा प्रभृति मे गृहम् । उलूकश्चाब्रवीद्रामं पादपैरुपशोभिता ॥ यदेयं पृथिवी राजंस्तदा प्रभृति मे गृहम् । एतच्छ्रुत्वा तु वै रामः सभासदमुवाच ह ॥ सिसृक्षुः पृथिवीं वायुं पर्वतान्समहीरुहान् । तदन्तरे प्रजाः सर्वाः समनुष्यसरी-सृपाः ॥ तस्मान्न गृध्रस्य गृहमुलूकस्येति मे मतिः । तस्माद्गृध्रस्तु दण्ड्यो वै पापो हर्ता परालयम् ॥ पुनः श्वान अर्थात् कुत्ता के एक विप्र ने लाठी मारा शिर फाटि गया सो आइ प्रभु सों दादि किया प्रभु विप्र को बुलाइ कसूर साबित करि श्वान के कहे विप्र को यती बनाय हाथी पर चढ़ाइ पुर घुमाय शिवमन्दिर को अधिकारी बनाया यथा वाल्मीकीये ॥ अथापश्यत तत्रस्थं रामं श्वा भिन्नमस्तकः ।

ततो दृष्ट्वा स राजानं सारमेयोऽब्रवीद्वचः ॥ भिक्षुः सर्वार्थसिद्धश्च ब्राह्मणावसथेवसन् । तेन दत्तः प्रहारो मे निष्कारणमनागसः ॥ एतच्छ्रुत्वा तु रामेण द्वास्थः संप्रेषितस्तदा । आनीतश्च द्विजस्तेन सर्वसिद्धार्थकोविदः ॥ अथ द्विजवरस्तत्र रामं दृष्ट्वा महाद्युतिः । किं ते कार्यं मया राम तद् ब्रूहि त्वं ममानघ ॥ एवमुक्तस्तु विप्रेण रामो वचनमब्रवीत् । त्वया दत्तः प्रहारोऽयं सारमेयस्य वै द्विज ॥ किं तवापकृतं विप्र दण्डेनाभिहतो यतः । अथ रामेण संपृष्टाः सर्व एव सभासदः ॥ ब्रुवते राघवं सर्वे राजधर्मेषु निष्ठिताः । राजा शास्ता हि सर्वस्य त्वं विशेषेण राघव ॥ एवमुक्ते तु तैः सर्वैः श्वा वै वचनमब्रवीत् । यदि तुष्टोऽसि मे राम यदि देयो वरो मम ॥ कालंजरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम् । एतच्छ्रुत्वा तु रामेण कौलपत्येऽभिषेचितः ॥ इति हे प्रभु ! ज्यहि कौतुक खग श्वान अर्थात् जौने लीला ते पक्षिन को अरु श्वान को न्याय निवेरो विचारपूर्वक यथोचित रक्षादण्ड कीन्हेउ त्यहि हेतुक तैसही कारण विचारि हे कृपालु ! कलियुग समाज सो कहिये कि तुलसीदास मेरो गुलाम है भाव जीव ईश्वर को सम्बन्ध अनादि काल ते चला आवता है ताते पूर्व मेरा गुलाम है ताको हे कामादिकौ ! तुम कौन हौ जो आपना गुलाम बनावते हौ अरु मेरा गुलाम मेरे नाम, यश की प्रचार करता है तहां हे कलियुग ! तू क्यों वाको बेअपराध सतावता है ताते जो जबरई करैगा सो दण्ड पावैगा इत्यादि आपना गुलाम कहि सब को निवारिये मोको गुलामी में राखिये ५ ॥

(१४८) कृपासिन्धु ताते रहौं निशि दिन मन मारे ।

महाराज लाज आपुहि निज जांघ उघारे १
मिल्यो रहै माखो चहै कामादि सँघाती ।
मो बिनु रहै न मेरि ये जारैं छल छाती २
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली ।
कियो कथिक को दण्ड हौं जड़ कर्म कुचाली ३
देखी सुनी न आजु लौं अपनायति ऐसी ।
करहिं सबै शिर मेरही फिरि परै अनैसी ४
बड़े अलेखी लखि परे परिहरे न जाहीं ।
असमंजस में मगन हौं लीजै गहि बाहीं ५
बारक बलि अवलोकिये कौतुक जन जीको ।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ६

टी० । हे रघुनन्दन, महाराज ! भाव आप सबभांति समर्थ हौ ताते आपते दादि करत हौं अपना हाल कासों कहौं काहेते निज अपनी जांघ उघारेते आपही को लाज लागती है भाव अपना पाप दोष अपने मुख ते कहत लाज लागत ताते हे कृपासिन्धु ! निशि दिन रातिउ दिवस मन मारे रहत सदा शोच ते उदासीन रहता हौं कृपासिन्धु को भाव राव रंराय के रक्षा करे को आपही समर्थ हौ

ताते मेरी भी रक्षा करौ कामादिकन ते बचावो १ किस कारण बचावो कि मेरे जे संघाती अर्थात् जिनको हितकार मानि आदि ते संगही राख्यौं ऐसे जे कामादिक साथी हैं ते ऊपर ते प्रिय बानी ते हितवार्ता करिमिले रहत अरु अन्तर ते मोको मारि डारना चाहते हैं पुनः जो मैं कामादिकन ते बिलग रहा चाहत हौं तब वै मोबिन न रहैं भाव जो मैं संग छांड़ि भी देता हौं तब कामादि मेरा संग नहीं छांड़ते हैं प्रीति तौ ऐसी देखावते हैं अरु छल करि मेरिही छाती जारते हैं अर्थात् देहाभिमान के सहायक हैं इति मिले रहत लोक सुख को फल भव में परना इति मखो चहत पुनः इन्द्रिय विषय में लागी रहत तेहिते ये संग नहीं छांड़त पुनः काम, क्रोध, लोभादि बैठे स्वाभाविकही छाती जारते हैं २ हृदय में सदा बसते हैं ताते हितकार जानि मैं सबकी रुचि पाली उनकी इच्छा अनुकूल कार्य कीन्हेउँ अर्थात् काम की रुचि ते परत्रिन में रत भयौं क्रोधवश ते अनेकन ते बैर कीन्हेउँ लोभ ते चोरी ठगी बटपारी आदि परधनहरण में लागेउँ इत्यादि उनकी रुचि अनुकूल जे असत्कर्म कीन्हेउँ ते मोको कथिक को ऐसो दण्ड जड़ कुचाली करिदिये दण्ड में जड़ता स्वाभाविकही होत कथिक संग ते कुचाली को भाव किन तीर्थयात्रा में संग लगे न दया वीरता में किसी जीवरक्षा में लगे न सन्तसभा में थिर रहे इन्द्रियसुख जीविकाहेत द्वार द्वार नाचत में फिरे देहेन्द्रिय कथिक समाज विषयसुख जीविकाहेत देहसंग दण्डसम जीव फिरता है कामादि व्यापार ते कुचाली है ३ संग में रहि खाइ बिगारैं अन्याय तौ सब संगवाले करैं अरु वाको दण्ड केवल एक पर परै ताहूपर साथ छूटता नहीं ऐसी अपनायति और किसी में न आजुलै देखा है न किसीते सुना है यथा कर्म तौ साथी सबै करते हैं ताको फल अनैसी कसूर एक मेरे शिर परत अर्थात् कामादि प्रेरणा करत मन प्रधान है हाथ, पद, मुख, लिङ्गादिते सुख के व्यापार करावत पुनः श्रवण, नेत्र, रसना, त्वचा, नासिकादि विषय सुख भोगत ताको फल दुःख जीव को भोगना परत ४ बड़े अलेखी कामादि बड़ी अनीति के करने लखि नहीं परते स्वाभाविक अवगुणी करि नहीं जाने जाते हैं पुनः जो लखिपरे भाव विवेक विचार ते परखि मिलते हैं कि अवगुणी हैं इनको संग त्यागौं तब परिहरे न जाहीं त्याग किहे भी नहीं जाते हैं यही असमञ्जस दुविधा में मगन बूड़ा परा हौं भाव न संग राखना मंजूर है अरु न छूटि सकैं ताते हे प्रभु ! बांहीं गहि लीजे कृपाकरि बरबस कामादिके बीचते निकारि लीजे ५ हे प्रभु ! मैं बलिजाउँ जन जीको कौतुक मेरे जीमें जो कामादिकृत तमाशा है ताको बारक अवलोकिये एक बार दयादृष्टि हेरिये तौ तुलसी को संकट अनायास बेपरिश्रम मिटि जाइगो भाव दयादृष्टि ते मेरा संकट मिटावो अन्य उपाय नहीं ६॥

(१४६) कहौं कौन मुहँ लाइकै रघुवीर गुसाईं।
सकुचत समुझत आपनी सब साँइ दुहाईं १
सेवत वश सुमिरत सखा शरणागत सौंहौं।
गुणगण सीतानाथ के चित करत न हौं हौं २

कृपासिन्धु बन्धु दीन के आरतहितकारी।
प्रणतपाल विरुदावली सुनि जानि बिसारी ३
सेइ न धेइ न सुमिरि कै पदप्रीति सुधारी।
पाइ सुसाहिब राम सों भरि पेट बिगारी ४
नाथ गरीबनिवाज हैं मैं गही न गरीबी।
तुलसी प्रभु निज ओर ते बनिपरै सो कीबी ५

टी०। हे रघुबीर, गोसाईं! मैं कौन मुहँ लाइकै अपनी गर्ज आपसों कहौं काहेते हे स्वामी! आपकी दुहाई करि सत्य कहत हौं कि अपनी कुटिल करणी यावत् कीन्हेउँ सो सब समुझत हौं ताते आपके सन्मुख होत सकुचत हौं भाव आप दयासिन्धु अरु जीव के हितकर्ता अरु मैं विमुख कुटिल करणी विचारि सामने मुख करत लाज लागत है १ हे रघुनाथजी! आप कैसे उत्तम स्वामी हौ कि सेवत सेवा करत सन्ते सेवक के वश होते हौ जो कहै सोई करौ यह प्रीतिपाल सौलभ्यता गुण है पुनः सुमिरत सखा अर्थात् जो मन ते स्मरण करता है ताको मित्र करि मानते हौ यह सौहार्द गुण है पुनः शरणागत होत सन्ते सौहौं कहे सम्मुख होत आदर करते हैं यह सौशील्यता गुण है पुनः कृपा, क्षमा, दया, उदारतादि सीतानाथ के गुणन के गण तिनको हौं मैं अपने चित्त में नहीं करत हौं २ कैसे चित्त नहीं करत हौं कि कृपासिन्धु अर्थात् भूतमात्रनको पालन करिबेको आपहीको समर्थ माने हैं ताहूपर जे दीनजन हैं तिनको बन्धुसमान सहायक सुखदेनहारे हैं पुनः आरतहितकारी अर्थात् संकटपरे पर जो पुकारत ताको हितकर्ता सम धायकै संकट हरि सुखी करतेहैं यथा गज द्रौपदी आदिको संकट हरे पुनः प्रणतपाल अर्थात् दीन अधीन ह्वै जो शरण में आवत ताको भलीभांति पालन करते हैं ताकी विरदावली अर्थात् प्रणतपाल- ताको जो बाना बांधे ताके कर्तव्यतनकी अवली जो पंक्ति जो पुराणन में सुनत हौं सो जानि बूझिकै बिसराइ दिहेउँ चित्तमें नहीं लावत हौं यही बिसरावना है ३ कैसे बिसरायेहौं कि सेये नहीं अर्थात् देहबुद्धिते सेवक सेव्यभावते प्रेमपूर्वक षोड़शोपचारादि सेवन पूजन प्रभु को नहीं कीन्हे पुनः जीवबुद्धि करि अंशअंशीभावते धेये नहीं अर्थात् इन्द्रिय मनादि बटोरि शुद्धजीवकी अचलप्रीति प्रभुके पायनमें न लगायेरहे पुनः सुमिरे नहीं अर्थात् आत्मबुद्धिकरि सिन्धु तरंगवत् भावते स्मरण न कीन्हे भाव आत्मरूप की प्रत्यय प्रवाह परमात्मरूप में लै न किहेरहे इत्यादि सेवा ध्यान स्मरण करि प्रभु के पायनकी प्रीति न सुधारी दृढ़ न करिलीन्ही पुनः रामसों सुसाहिब कृपा, दया, करुणा, शीलादि गुणभरे सुलभ उदार ऐसे सुन्दर स्वामी रघुनाथजी को पाइ तबहूं विमुख ह्वै अघाइकै बिगारी भाव असत्कर्म करते करते परिपूर्ण जीव नाश होने की उपाय बांधि लीन्ही पाप कर्मनते पेटभरिगयो सुकृतको ठौरै नहीं रहा तौ शरणागती के आचरण कैसे बनिसक्के हैं कुटिल स्वभावते मान, मद, वैर, विरोध भरा है ४ राम गरीबनिवाज हैं रघुनाथजी तौ गरीबनको निवाजते हैं कृपा करते हैं अर्थात् जो छल छांड़ि अमान दीन अधीन ह्वै शरण आवत ताको मान बड़ाई सहित लोक परलोकादि सबभांति

को सुख देते हैं ऐसे गरीबनिवाज रघुनाथजीको पाइ मैं गरीबी नहीं गही मान मदते विमुख बनारह्यों दीन अधीन अमान रह्यो छलछांड़ि शरण न भयो इस विमुखता कुटिलकर्मनकी लाजते कौन मुहँ लैके अर्ज करौं ताते हे प्रभु ! मैं तौ कछु कहि नहीं सक्ता हौं अब मेरे कर्मनपर दृष्टि न करौ दयालुता स्वभावते निज अपनी ओरते जो कछु बनिपरै सो तुलसीदासपर कीबो कीजिये ५ ॥

(१५०) कहां जाउँ कासों कहौं और ठौर न मेरे ।
जन्म गँवायों तेरे ही द्वार किंकर तेरे १
मैं तो बिगरा नाथ सों आरति के लीन्हे ।
तोहिं कृपानिधि क्यों बने मेरी सी कीन्हे २
दिन दुर्दिन दिन दुर्दशा दिन दुख दिन दूषण ।
जब लौं तू न बिलोकि है रघुवंशविभूषण ३
दई पीठि बिनु दीठ मैं तुम विश्वविलोचन ।
तोसों तुही न दूसरो नतशोचविमोचन ४
पराधीन देव दीन हौं स्वाधीन गुसाईं ।
बोलनिहारे सों करे बलि विनय कि झाईं ५
आपु देखि मोहिं देखिये जन मानिय सांचो ।
बड़ी ओट राम नाम की जेहि लयो सो बांचो ६
रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है ।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ७

टी० । काहेते जो कछु बनिपरै सो अपनी ओरते कीजिये हे श्रीरघुनाथजी ! यद्यपि मोसों कछु बनि नहीं पर्यो परन्तु आपहीको किंकर कहाय आपही के द्वार पर जन्म गँवायों भाव तुलसीदास रामसेवक है यह नाम प्रसिद्ध है पुनः अन्तर ते दूसरे स्वामी को आश भरोसा नहीं राखेहौं एक आपहीको आश भरोसा है इति आपुहीके द्वारपर जन्म बीति गयो ताते और तो ठौर मेरे कहीं है नहीं तौ अन्ते कहांजाउँ कासों अपना हाल कहौं ताते जो कछु कहौंगो सो आपहीते कहौंगो १ काहेते आपहीते कहौंगो हे नाथ ! मैंतौ जो बिगारी अर्थात् आपसों विमुख है कुटिलकर्म कीन्हेउँ सो आरति के लीन्हे दुःख के वशरहौं अर्थात् एकतौ पूर्व कर्मन ते स्वभाव नष्ट पुनः कलियुग की प्रेरणाते कामादि शत्रु घेरे पुनः मनसहित इन्द्रियन को विषय घेरे ऐसी विपत्ति में परा अल्पज्ञ जीव बने बिगरे की सुधि मोको कैसेरहै इस अज्ञानदशा में बिगार्यो सो अनुचित नहीं है अरु आप कृपानिधि हौ अर्थात् जीवमात्र पालनेको दृढ़ानुसंधान राखना कृपागुण है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः । इति सामर्थ्यसन्धानं कृपा सा पारमेश्वरी ॥ इति कृपा जलभरे समुद्र तौ आपको मेरीसो कीन्हे क्यों

बनै भाव यथा मैं विमुख हौं तथा आपौ मोपर कृपा न करौ सो अनुचित है क्योंकि प्रणतपाल विरदावली में दागु लागिजाई २ हे रघुवंशविभूषण, रघुकुलप्रकाशकर्ता! जबलगि तू न विलोकिहै अर्थात् हे रघुनाथजी! जबलगि आप कृपादृष्टि मोपर न चितैहौ तबलगि मेरे दुरदिन दुर्घट दिन आये काहे ते एक तौ कुटिलस्वभाव पुनः पूर्व के पाप सहायक ताते दिन प्रति दूषण पापै कर्म होयँगे ताके फल दिन प्रति दुःख ताते दिन दिन प्रति दुर्दशा होयगी ताते अपने बानाकी लाज करि कृपादृष्टि हेरौ ३ जो कहौ कि तूतौ हमको पीठि दिहे विषयनके वश असत्कर्म करिरहाहै अरु हमसे जबरदस्त कृपादृष्टि करावता है तहां हे प्रभो! मैं जो आपको पीठिदई तौ विन डीठि को हौं भाव बुधिविवेक नेत्रन में जो ज्ञानदृष्टि सो मोहतमते मूंदि गई ताते मोको तौ सूझि नहीं परो कि आपु कहां हौ अरु कामादि साथी टेकाये लिहे संसार सागर में डारा चाहते हैं तौ अन्धे को कौन कसूर ताते मोपरकृपादृष्टि करौ काहेते आपु तौ विश्वविलोचन संसार भरे के नेत्र हौ सबके बाहर भीतर प्रकाश करने वाले हौ पुनः नतशोचविमोचनहार तोसों तुही है अर्थात् शरणागत को शोच संकट छोड़ावनेवाला आपुकी समान आपुही हौ दूसरा कोऊ नहीं है इसहेतु आपुते प्रार्थना करत हौं ४ पुनः ॥चौपाई॥ परवश जीव स्ववश भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥ इत्यादि हे देव, श्रीरघुनाथजी! मैं तो परारी आधीन अर्थात् आपुके वश पुनः आपुकी मायाप्रेरित इन्द्रियविषय कामादि घेरे ताते दीन पुरुषार्थहीन हौं इति पराधीन दीन जीव अल्पज्ञ तौ विना आपुकी प्रेरणा मैं क्या करिसक्ता हौं पुनः हे गोसाईं! भाव इन्द्रिय मन जीव सबके प्रेरक स्वामी आपु स्वाधीन स्वतन्त्र हौ जो चहौ सो करौ इस न्यायते जो आपु प्रेरणा करौ सोई करिसक्ता हौं स्वइच्छित कछु करनेको मैं समर्थ नहीं हौं काहेते मैं बलिहारी भाव धर्म कर्म सहित आतम आपुपर वारन करतहौं मेरी अर्ज सुनिये बोल निहारे चैतन्यपुरुष सो वाकी झाईं परछाहीं सो कि विनय करिसकै अर्थात् नहीं करिसकत काहेते परछाहीं तौ देह को आधीन है ताते जो चेष्टा बोलता देह की करताहै सोई आचरण परछाहीं में होते हैं अरु परछाहीं को स्वयंशक्ति नहींहै कि कछु क्रिया करिसकै तैसेही ईश्वर की प्रतिबिम्ब जीव है सो विना ईश्वर की प्रेरणा जीव क्या करिसक्ता है इस न्यायसे आपु कृपादृष्टि प्रेरणाकरि मोसे उचित आचरण करावो५ कैसे उचित आचरण करावो यथा सिद्धजन मन्त्र प्रेरणा करिकै छायापुरुषते सब कार्य कराय लेतेहैं इस न्यायते प्रथम आपु कृपादृष्टि मोपर देखि तब मोहिं देखिये भाव तब जो मेरे में शरणागतिके सब आचरण देखिपरैं तब मोको आपना सांचो जन मानिये काहेते यह भरोसा है कि आपुके नाम की बड़ी भारी ओटहै काहेते जिन जिन रामनाम लिये ते ते सब भवबन्धन ते बचे अर्थात् अजामिल यमनादि महापापी ते भ्रमवश एक बार नाम कहि परधाम को गये तथा व्याध गणिका आदि असंख्यन तरे ऐसा प्रबल प्रताप नामको ताकी तौ अवलम्ब लिहेहौं ६ एक तौ आपुके नामकी ओट हौं पुनः राम रावरी रीति रहनि नित हियेमें हुलसीहै अर्थात् उज्ज्वलता गुरुता धर्मनीति आदि जिस आचरण पर आपु रहैं ताको रहनि कही पुनः जिस व्यवहारते मन्त्री मित्र सेवक प्रजादि पर बर्तैं ताको रीति

कही तामें रघुनाथजीकी रहनि कैसी है यथा वाल्मीकीये ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥ बुद्धिमान्नी-तिमान् वाग्मी श्रीमच्छत्रुनिबर्हणः । धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हितेरतः ॥ यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥ इत्यादि पुनः रीति यथा । प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः । रक्षितः जीवलोकस्य धर्मस्य परि-रक्षितः ॥ रक्षितः स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षितः । इत्यादि जो रहनि रीति आपकी है हे रघुनाथजी ! सो मेरे हृदय में हुलसत आनन्द को बढ़ाइ रही है कैसे आनन्द बढ़ावत । यथा कवित्तरामायणे ॥ मीत वालि बंधु पूत दूत दशकंध बंधु सचिव शराध कियो शवरी जटायको । लंक जरी जोहैं जिय शोच सो विभीषणको कही ऐसे साहब की सेवा न खटायको ॥ बड़े एक एकते अनेक लोक लोकपाल-आपने आपने को तौ कहैंगे घटायको । सांकरे को सेइवो सराहिये सुमिरिये को रामसों न साहब न कुमति कटायको ॥ इत्यादि भरोसा राखे तुलसीदास आपही को गुलाम है अरु हे कृपालु ! अब आपुके मनते ज्यों भावै त्यों कृपा कीजे ७ ॥

(१५१) रामभद्र मोहिं आपनो सोच है अरु नाहीं ।
जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं १
नातो बड़े समर्थ सों यक ओर किधौं हूं ।
तोको मोसे अति घने मोको इक तोहूं २
बड़ि गलानि हानि है हिये सर्वज्ञ गुसाईं ।
कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं ३
भलो पोच राम को कहैं मोहिं सब नर नारी ।
बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब शिर गारी ४
असमंजस मन को मिटै सो उपाउ न सूझै ।
दीनबन्धु कीजै सोई बनिपरे जो बूझै ५
बिरदावली विलोकिये तिन्ह में कोइ हौं हौं ।
तुलसी प्रभु को परिहस्यो शरणागत सोहौं ६

टी० । हे रामभद्र, कल्याणरूप ! अर्थात् आपुको नाम लेत महापापिन को कल्याण होत ऐसे आपु कल्याणरूप तिनको गुलाम है मैं भवसागर में परो यह विचारि मोको आपनो शोच है अरु आपने कर्म विचारि कछु शोच नहीं जो बवत सोई तौ लुनत इति आपने कर्मनते जग में सकल जीव संताप के भाजन समग्रताप दुःखन के पात्र ह्वै रहेहैं सोई जीव मोहूं हौं कर्मफल दुःखभोग को कौन शोच है १ शोच क्या है कि बड़ो समर्थ तिनसों नातो सो किधौं एकही ओरते है भाव मई गुलाम बनाहौं अरु आपु मोको आपना करि नहीं जानेहौ यह शोच को कारण है कि मोहिं ऐसे गुलाम आपुको अतिघने अत्यन्त बहुत हैं अरु मोको स्वामी एक आपही हौ इति एकांगी प्रीति को शोच है २ क्या शोच है कि मैंतौ गुलाम बना

स्वामी समर्थ के भरोसे हौं अरु स्वामी मोको गुलाम करि न माने होयँ तौ कैसे बनी इति आगे हानि है सोई विचारि मेरे हिये में बड़ी ग्लानि है कि स्वामी तौ सर्वज्ञ सबै बाहर भीतर की बात जानतेहैं अरु मैं क्रूर कुसेवक छली निमकहराम हौं अरु बातैं उत्तम सेवक की ऐसी मुखते बनाइ बनाइ कहत हौं तौ सर्वज्ञ ते कछु छुपता नहीं यह शोच है कैसे बनि परी ३ अरु मैं भलो हौं वा पोच नीच हौं सो और कौन जानत सब नर नारी मोको रामही को गुलाम कहते हैं तामें मेरी बुराई ते आपुको कुनाम है कौन भांति ज्यों श्वान कुत्ता काहूको काम बिगारता है तब वाको पालनेवाला गारी पावता है तैसेही सेवकते जब काम बिगरैगा तब स्वामी के शिर गारी आवैगी अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! मैं भला बुरा जो कछु हौं सो तौ केवल आपु जानतेहौ परंतु संसार तौ आपुको उत्तम गुलाम करि माने है तौ जो मोसे बुराई होई तौ आपही को कुनाम है यह विचारि कृपा करौ ४ जो कहौ कि शुद्ध होने का उपाय क्यों नहीं करता है तहां अनेक साधन क्रियाकरि ढूंढ़ि हारि गयों मोको सो उपाय नहीं सूझि परत है जाते मेरे मनको असमंजस दुविधा मिटै ताते मेरी बूझ विचारते तौ यही आवत है कि जब आपु कृपा करिहौ तबै सब बात बनी अन्य उपाय कछु नहीं है पुनः हे दीनबन्धु, दीनजननके बंधु समान हितकर्ता! अब जो आपुके बूझे विचारेते बनि परै सो कीजै ५ जो कहौ तू तौ आपही क्रूर कुसेवक बनता है तौ हम किस सम्बन्धते कृपा करैं तहां विरदावली विलोकिये तिनमें हौं कहे महूं एक कोई हौं अर्थात् भक्तवत्सल प्रणतपाल दीनबन्धु पतितपावन अधमोद्धारण इत्यादि विरद बाना जो धारण किहेहौ ताकी अवली पंक्ति में विचारि देखिये भक्त होउँ वा शरण होउँ वा दीन होउँ वा पतित होउँ व अधम होउँ इत्यादिकनमें कोई तौ होवे करौंगो तिस सम्बन्ध ते कृपा कीजिये कदाचित् ये सम्बन्धन मैं न होउँ सो विचारि जो आपु त्यागौ करौ इति प्रभुको परिहस्यो त्यागा हुआ तबहूं तुलसीदास शरणागत सौं हौं भाव आपुकी सम्मुखै शरणागत रहौंगो अंते न जाउँगो ताते कृपा करनै परैगो ६॥

(१५२) जोपै चेराई राम की करते न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो १
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो।
बाजीगर के सूम ज्यों खल खेह न खातो २
जो तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो।
सीतापति सम्मुख सुखी सब ठांव समातो ३
राम सुहाते तोहिं जो तू सबहि सुहातो।
काल कर्म कुल कारनी कोऊ न कुहातो ४
राम नाम अनुरागही जिय जो रति आतो।
स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतिआतो ५
सेइ साधु सुनि समुझि कै परपीर पिरातो।

जन्म कोटि को कांदलो हृद हृदय थिरानो ६
भवमग अगम अनन्त है बिनु श्रमहि सिरातो।
महिमा उलटे नाम को मुनि कियो किरातो ७
अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाइ न जातो।
होतो मंगलमूल तू अनुकूल विधानो ८
जो मन प्रीति प्रतीति सों रामनामहि रातो।
तुलसी रामप्रसाद सो तिहुँ ताप न नातो ९

टी०। जो पै रामकी चेराई हे जीव! जो निश्चय करिके रघुनाथजी की गुलामी करते लजातो न अर्थात् जो निश्चय करिके रामगुलामी किया करता तौ तू ज्यों दाम कुदाम अर्थात् खरे माल को टकसार बाहर रुपैया की नाई कर करन हाथन न विकातो भाव जापर राजा को नामांकित टकसारी सिक्का नहीं है सो जो खरो माल है तौ वाको लोग बट्टा देकै बेचि डारते हैं कोई राखता नहीं है तैसेही तेरा सर्वत्र निरादर है यह प्रभु सों छल करने को फल है मारा मारा फिरता है भाव जो निश्छल प्रभु की कैंकर्यता करता तौ सब तेरो मान करने १ जिह्वा करिके रघुनाथजी को नाम जपत में जो अलसाते न सनेहते जपा करने तौ हे खल! ज्यों बाजीगर को सूम अर्थात् तमाशा करनेवाले जिस ठाकुर को सूम देखते हैं ताको पुतरा बनाइ द्वार द्वार भूमि में डारि अनेक भांति अनादर करते हैं ताहीसम तू खेह धूरि जो खाता है सो जो रामनाम जपतो तौ ठौर ठौर धूरि न फांकत फिरतो भाव बिना नाम जपे तेरी दुर्दशा है २ पुनः हे मन! जो तू मेरे कहेते रामनाम कमातो प्रीतिपूर्वक जाप करि राम नाम समूह धन सम बटोरतो तौ सीतापति को आपने नाम की ऐसी लाज है कि एक बार उच्चारण करने ते यमनादि को तारे तिनकी सम्मुख भये ते लोक में सुखी है परलोकमें सब साकेतादि सब ठाँव समातो वास पावतो ३ पुनः जो तोहिं राम सुहाते तब तूभी सबदिन को सुहातो अर्थात् जो तोको श्रीरघुनाथजी प्रिय लागते तौ तू सुर, मुनि, नर, नागादि सब को प्रिय लागता रघुनाथजी तोको नहीं सुहाने ताते सर्वत्र तेरो अनादर होता है पुनः कलियुग अरु पूर्वके कर्म तथा काम क्रोधादि जो कोप किहे तोको नाश कीन चाहते हैं सोऊ जो तोको रघुनाथजी सुहाते तौ काल कर्मादि कुलि विपत्ति के कारनी कोऊ न कहाते क्रोध ना करिसक्ते ४॥ दोहा ॥ व्यापकता जो प्रीति की, जिमि खुठि बसन सुरंग। दृगनद्वार दरशै चटक, सो अनुराग अभंग ॥ अर्थात् हृदय कण्ठ मुखादि सर्वाङ्ग में रामनाम की प्रीति व्यापक रहती इति रामनाम के अनुराग करिके जिय जो रति आतो इस भांति जो जीवमें रामनाम विषे प्रीति उपजावतो तौ स्वार्थ जो अर्थ, धर्म, काम, परमार्थ जो मुक्ति इत्यादि सब तोहिं पतियातो हितपूर्वक तेरे संगी होते भाव स्वाभाविकही लोक परलोक को सुख प्राप्त रहतो अथवा स्वार्थपथ के साथी यथा माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्र, धन, धामादि तथा परमार्थ पथ के संगी यथा सत्संग साधु, गुरु, विराग, विवेक,

श्रद्धा, विश्वास, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यतादि ये सब हितपूर्वक तेरा साथ देते ५ पुनः नाम के प्रभावते श्रद्धा होती ताते साधुन की सेवा करतो तिनके मुख ते अनेक उपदेश सत्वार्ता सुनि ताको सिद्धान्त समुझि शान्ति दया आवती ताते परपीर पिरातो औरको दुःख देखि आपने दुःख आवतो ताते कोटिन जन्म को कांदलो किंदये मैल जल सम भरा हृदयरूप हृद तड़ाग सो थिराता अमल होतो भाव वासना मल जातो ६ जामें बारबार जन्म मरणादि अनेक दुःख ताते अगम सुगम नहीं है पुनः चौरासी लक्ष योनिन में भ्रमण ताको अन्त पार नहीं मिलत ताते अनन्त ऐसी जो भवमग रास्ता सो बिनु श्रमहिं सिरातो अर्थात् कर्मयोग ज्ञानादि साधन परिश्रम बिना किहे केवल रामनाम के प्रभावते भव को पार पाइ जातो काहेते किरात जीवहिंसक वाल्मीकि उलटा नाम जपि महामुनि भये इत्यादि महिमा सुनि विश्वास लावतो ७ अमर अगम जो देवतन को सुगम नहीं ऐसा साधन धाम मनुष्यतनु पाइके हे जड़, जीव! सो तनु जाय न जातो वृथा न बिनावतो अर्थात् नाम स्मरण करि जन्म सफल करतो तौ तू मङ्गल उपजावने की मूल होतो भाव अनेक उत्सव स्वाभाविकहीहू न करतो पुनः विधाता अनुकूल ब्रह्मा प्रसन्न बने रहने भाव सुभाग्य उदय बनी रहती ८ इन्द्रिय मनादि की सब विषय वासना बहुरि अनुकूल है ज्यहिं रसकी अत्यन्त भोगी है सर्वांग परिपूर्ण है जाइ ताको प्रीति कही यथा भगवद्गुणदर्पणे॥ अत्यन्तभोग्यताबुद्धिरानुकूल्यादिशालिनी। अपरिपूर्णस्वरूपा या सा स्यात् प्रीतिरनुत्तमा॥ इति प्रीति सहित जो प्रतीति सो अर्थात् माहात्म्य में विश्वास राखि यथा हराम कहि यमन को राम धाम प्राप्त भयो तौ प्रीति सहित नाम जपे को प्रभाव कौन कहि सक्ता है ऐसी प्रीति सो राम नामहि रातो अर्थात् रामनाम के प्रीति रंग में जो तन, मन, वचन रँगि जातो तौ हे तुलसीदास के मन! सुनु रामप्रसाद सों रघुनाथजी की कृपा ते तिहुँ तापन तातो भाव ज्वरादि दैहिक दरिद्रादि दैविक शत्रु आदि भौतिक इत्यादि तीनिहुँ तापन की आंच ते तप्त न होतो सदा आनन्द रहतो ६॥

(१५३) राम भलाई आपनी भल कियो न काको।
युग युग जानकिनाथ को जग जागत साको १
ब्रह्मादिक विनती करी कहि दुख वसुधा को।
रविकुल कैरवचन्द भो आनन्द सुधा को २
कौशिक गरत तुपार ज्यों तकि तेज तिया को।
प्रभु अनहित हित को दियो फल कोपकृपाको ३
हरयो पाप आप जायकै संताप शिला को।
शोचमगन काढ्यो सही साहब मिथिला को ४
रोपराशि भृगुपति धनी अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करलियो उपशम समताको ५

मुदित मानि आयसु चले वन मातु पिता को।
धर्मधुरंधर धीर सो गुण शील जिता को ६
गुह गरीब गत ज्ञातिहू जेहि जिउ न भखा को।
पायो पावन प्रेम ते सनमान सखा को ७
सद्गति शबरी गृध्र की सादर करता को।
शोचसींव सुग्रीव के संकट हरता को ८
राखि विभीषण को सकै तेहि काल कहां को।
आज विराजत राजहो दशकंठ जहां को ६
वालि सवासी अवध के बूझिये न खाको।
ते पांवर पहुँचे तहां जहँ मुनिमन थाको १०
गति न लहै रामनाम सों विधि सो सिरजा को।
सुमिरत कहत प्रचारिकै वल्लभ गिरिजा को ११
अकनि अजामिल की कथा सानन्द न भा को।
नाम लेत कलिकालहूं हरिपुरहि न गा को १२
रामनाम महिमा करै काम भूरुह आको।
साक्षी वेद पुराण हैं तुलसी तन ताको १३

टी०। पूर्व नाम रूपकी महिमा कहि आये ताकी प्रमाण देखावत कि आपनी भलाई ते श्रीरघुनाथजी किसको भला नहीं किये अर्थात् सबको सदा ते भला करत आये हैं काहेते जानकीनाथ को शाको जग में युग युग प्रति जागता है अर्थात् सतयुग त्रेता द्वापर कलियुगादि सब युगन में नाम रूप लीला धामादि को प्रताप प्रतिदिन नित नवीन प्रकाशमान होत जात है १ पूर्व रावणादि जीवमात्र को सताये इति वसुधा पृथिवी को दुःख कहि ब्रह्मादिक सब देवतन प्रभु सों विनती कीन्ही भाव दुष्टन करिकै सब लोक विकल हैं कृपा करि दुःख हरौ इत्यादि सुनि रविकुल कैरव सूर्यवंशरूप जो कोकी वन ताके प्रफुल्लितकर्ता आनन्दरूप सुधा अमृत को भरो अमल पूर्णचन्द्र सम अवतीर्ण भयो भाव आनन्द सुधा वर्षि संसार को सुखी कीन्हे सुन्दर अमल यश प्रकाश कीन्हे तप्त देवादिकन को शीतल कीन्हे २ पुनः यथा सूर्यन को तेज देखि ज्यों तुषार पाला गलि जात तैसेही तिया जो ताड़का ताको तेज बल साहस देखि कौशिक जो विश्वामित्र ऋषि ते गरत संताप करिकै पीड़ित रहैं तिनको परिपूर्ण सुख दै शीतल कियो अर्थात् पुत्रन सहित ताड़का को मारि यज्ञ पूर्ण कराये पुनः ताड़का के प्रभु अनहित भये शत्रु बनि वध कीन्हे ताहूके संग हितको कीन्हे काहेते वाके संग कोपको फल चाहियत रहै भाव मारिकै यमलोक देते ताको कृपाको फल दीन्हे भाव मारिकै तामसी तन छुड़ाये पुनः मुक्ति दीन्हे इति कृपा ३ पुनः शिला अर्थात् पतिकी शापते अहल्या

पापाण भई रहे ताको परपतिरतको पाप पुनः पतिवियोग पापाण भये को जो संताप दुःख रहे सो रघुनाथजी आपही जाइ हरे भाव कृपा करि पदरज दै पाप शाप मिटाय दिव्य देह बनाय नवीन पल्लीवत् पतिको संयोग कराय दीन्हे पुनः विना धनुप टूटे प्रण जावे को कन्या कुमारी रहवे को शोच समुद्रवत् रहे तामें मग्न बूड़े परे जो मिथिला को साहब जनक महाराज को सही काढ़्यो सत्यही बूड़तते बचाये धनुप तोरि शोच हरे व्याह में पूर्व चाहते अधिक आनन्द दीन्हे भाव चारिउ कन्या योग्य वर पाये आगेहूको शोच नाश कीन्हे तौ सत्यकरि शोचते काढ़्यो ४ रोपराशि भृगुपति परशुराम क्रोध की ढेरी रहे अर्थात् महाक्रोधी रहे पुनः अहमिति यथा मैं बली वीर अजित लोकविजयी हौं मेरी समता को दूसरा कोऊ नहीं इति अहंकार पुनः ममता यथा माता पिता मेरे हैं देह मेरी है पृथिवी मेरी जीती है इत्यादि देहसम्बन्ध में अपनपौ इति अहमिति तथा ममता के धनी रहे ये ब्रह्मचारी में दूपण हैं अर्थात् दूपणन के पात्ररहे तिनको प्रभु कृपादृष्टि चितवत सन्ते उपशम अर्थात् लोकसुख की वासना त्याग पुनः समता अर्थात् रागद्वेष रहित भूतमात्र में एकदृष्टि राखना इत्यादि के भाजनपात्र कर लियो अर्थात् क्रोध अहंकार ममतादि दूपण नाश करि विराग, संतोप, समतादि उत्पन्न करि दिये ५ पुनः मातु कैकेयी पिता दशरथ तिनको आयसु आज्ञा मानि मुदित आनन्द मन ते वन को चले भाव सत्यपालन करिवे को अयोध्या की राज्य तिनको भरि न माने ऐसे धर्मधुरंधर धर्म की धुरी बोझा धारण करिवे में धीर्यमान सो रघुनाथजी में शीलादि गुण ऐसे सबल हैं कि जिता को अर्थात् गुणन करिकै जीतनेवाला रघुनाथजी की समता को दूसरा कौन है ६ गुहा गरीव अर्थात् यद्यपि निपादन को राजा रहा तौ तौंभी चक्रवर्ती महाराजन में याकी कौन गनती जो काहू भांति समता पावै इति गरीव पुनः ज्ञाति बन्धुवर्ग सो गतपतित अर्थात् नीच जातिहू है ताहूपर कर्म कैसे कि जगत् में ऐसा नीच ऊंच को जीवहै ज्यहिको भखा खाया नहीं अर्थात् सर्वभक्षी जो छाया छुइवे योग्य नहीं ऐसा अपावन नीच गरीव सोऊ गुहा पावन प्रेम के प्रभावते प्रभु के निकट सखा को सम्मान पायो अर्थात् प्रभु हृदय लगाय लगाय भेंटे निकट बैठारि कुशल पूछे इति वामें पावन प्रेम देखि सम्मान कीन्हे ७ शबरी जाति भीलिनि ताको पावन प्रेम देखि माताकी तुल्य मानि जूठे फल खाये पुनः शुभगति दीन्हें पुनः गृद्ध जटायु को पिता की तुल्य मानि तिलोदक पिण्डदान दीन्हे पुनः सबके देखत निज धाम को पठाये इत्यादि शबरी भीलिनि गृद्ध मांसाहारी तिनको सादर सद्गतिकर्ता सहित आदर सुंदर गति मुक्ति करनेवाला सिवाय रघुनाथजी के और दूसरा को रहै तथा वालि वैरते भयातुर सुग्रीव शोच को सींव हद रहा भाव जाको बैठेको ठेकान नहीं मिलै ताके हेतु वालि को मारि वही राज्य दिया इति सुग्रीव को संकटहर्ता सबल शत्रु की भय मिटावनेवाला सिवाय रघुनाथजी के और दूसरा को है ८ ज्यहि काल में मारिकै रावण ने निकारिदिया त्यहिकाल में कहां कौने लोक में को ऐसा सबल रहै जो विभीपण को शरण में राखि सकै अर्थात् केवल रघुनाथजी रहें जे शरण में राखि अभय किये पुनः जहांको राजा रावण रहा ताको परिवारसहित मारि तहां

को राजा विभीषण को किये सो अजहुं विराजत हैं भाव अचल राज्य दिये अरु परलोकौ ते अभय कीन्हे ६ अवध के वासी कोऊ कोऊ महानष्ट रहे हैं कैसे नष्ट रहैं कि उनको हाल न बूझिये न पूछिये काहेते उनको चरित्र कौन कहै जिनको नाम लेनेवाला नहीं संज्ञा ते जानि लीजै खाको खाक नाम में है अर्थात् खाक रज धूरि को नाम है इस परजाय ते रजक अर्थात् धोबी सो ऐसा नष्ट रहा जाने किशोरीजी की निन्दा किया ऐसा बालिश महाअज्ञानी ऐसे ऐसे पामर नीच अवधवासी तेऊ प्रभुकी कृपाते तहां पहुँचे जहां मुनिमन थाको अर्थात् ध्यान करत में मुनिन को मन थकि जात जहां पहुँचि नहीं सकत त्यहि परधाम को सब गये ऐसे प्रभु कृपासिन्धु अधमउद्धारण हैं १० विधि को सिरजा ऐसा को जीव है जो रामनाम सों शुभगति न लहै न पाइसकै अर्थात् ब्रह्मा की रची सृष्टि में उत्तम मध्यम अधम पतित पापी चाण्डालादि यावत् जीव हैं ते रामनाम को स्मरण करि सबको सुगति प्राप्त है सही है । यथा नन्दीपुराणे ॥ सर्वदा सर्वकालेषु ये न कुर्वन्ति पातकैः । तेपि श्रीरामसन्नाम-जपं कृत्वा परं पदम् ॥ बृहद्विष्णुपुराणे ॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः । परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥ पुनः गिरिजा को वल्लभ पार्वतीको प्यारा पति अर्थात् शिवजी आप सदा रामनाम सुमिरत पुनः प्रचारि ललकारिकै राम-नाम को प्रभाव कहत यथा अध्यात्मे शिववाक्यम् ॥ अहोभवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या । मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम । ऐसेही रामतापिन्यादि अनेक ग्रन्थन में है ११ अजामिल महापापी रहा सो पुत्रहेतु भगवत्नाम लिया सो हरिधाम पाया इति भागवतादि पुराणन ते अजामिल की कथा अकनि जानिकै सानन्द आनन्दसहित को नहीं भया भाव एकवार नाम लेनेते महापापी गति पावत थोरी श्रम बड़ी लाभ सुनि उस बात करने को सबको मन ललकत पुनः कलिकालहू में हरिनाम लेत सन्ते हरिपुरहि को नहीं गया अर्थात् जामें धर्म, कर्म, योग, ज्ञानादि एकहू साधन नहीं है सके हैं ऐसेहू कराल कलियुग में रामनाम स्मरण करि अनेकन जीव भगवद्धाम को जाते हैं १२ पुनः रामनाम की ऐसी महिमा है कि जाको स्मरण करत सन्ते आक जो मदार ताहूको कामभूरुह कल्पवृक्ष करता है अर्थात् मदारके डार पात फूल फल एकहू में स्वाद नहीं ताते कोऊ पूछता नहीं है ताहूको रामनाम सब फलदायक कल्पवृक्ष करिदेत जाको सुरासुर नर नागादि सबै चाहना करते हैं याको भाव कि अधम पतित पातकी कुटिल जीव आलसी जिनते धर्म कर्म कछु नहीं होता है जिनके लगे कोऊ नहीं ठाढ़ होत ऐसे निकम्मे तेऊ रामनाम को स्मरण करि उत्तमपावन धर्म कर्म ज्ञान भक्ति प्रचारक होते हैं इस बातको साखी वेद पुराणैं हैं यथा ऋग्वेदे । परब्रह्मज्योतिर्मयंनाम उपास्यं मुमुक्षुभिः ॥ यजुर्वेदे ॥ रामनामजपे-नैव देवतादर्शनं करोति ॥ सामवेदे ॥ रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति ॥ अथर्वणे ॥ यश्चाण्डालोपि रामेति वाचं वदेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संभुञ्जीयात् ॥ पुनः पद्मपुराणे ॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनामपरात्परम् । शुद्धान्तः-करणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥ विष्णुपुराणे ॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः । पुमान्विमुच्यते सद्यस्सिंहत्रस्तमृगैरिव ॥ पुनः वर्तमान में तुलसीतन

ताको गोसाईंजी कहत कलियुग में प्रत्यक्ष प्रमाण मेरी दिशि देखौ भाव मैं किसी कामको नहीं रहीं सोऊ रामनाम के प्रतापते ऐसा भयों जाको महात्मा लोग प्रशंसा करते हैं यथा भक्तमाल में नाभाजी लिखे ॥ कलि कुटिल जीवनिस्ताररहित वाल्मीकि तुलसी भये १३ ॥

(१५४) मेरे रावरियै गति है रघुपति बलिजाउँ।
निलज नीच निर्धन निर्गुण कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ १
हैं घर घर भव भरे सुसाहिब सूझत सबनि आपनो दाउँ।
बानर बन्धु विभीषण हित बिनु कोशलपाल कहूं न समाउँ २
प्रणतारति भंजन जनरंजन शरणागत पविपंजर नाउँ।
कीजै दास दासतुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ ३

टी०। हे रघुपति ! मैं बलि जाउँ मेरे एक रावरियै आपहीकी गति है अर्थात् धर्म कर्म सहित आत्म आपपर वारण करत हौं मेरे आश भरोसा एक आपही को है काहेते एकतो मैं निलज अर्थात् जो कर्म करि दुःख पावत हौं सोई कर्म पुनः करत हौं पुनः नीच धर्म कर्मरहित कुकर्मी पुनः निर्धन सुकृत धनरहित पुनः निर्गुण समता शान्ति विवेक विरागादि गुणरहित ऐसे कहँ न कोऊ दूसरो ठाकुर है जो सेवकाई में राखै अरु न जग में कहीं सुपास बैठने को ठाउँ है १ लोकन में घर घर सुर नर नागादि बहुत सुसाहब भले स्वामी भरे हैं परन्तु सबनि को आपनही दाउँ सूझत भाव सेवा पूजा मन्त्र जप बलिदान सब विधिवत् पाइ तब सेवा अनुकूल फल देते हैं परन्तु बानर बालिको बन्धु सुग्रीव भाव चञ्चल पशु पुनः विभीषण जो राक्षस तामसी इत्यादि को हित मित्र करि माननेवाला विना कोशलपाल रघुनाथजी के सिवाय कहूं समाव नहीं रहै और कोऊ साहब शरण राखनेवाला नहीं रहै २ प्रणत जो दुःखित है प्रणाम करत ताके आरतिभंजन दुःखको हरणहार पुनः जग आपने दासन को रंजन आनन्ददायक पुनः सभीत है जे शरणागत आवते हैं तिनकी रक्षाहेतु पविपंजरनाउँ आपुको नाम वज्र के पिंजरासम है अर्थात् रघुनाथजी के नाम में प्रणवादि बीज आदि दै अरु नामको चतुर्थ्यन्त नमः सहित उच्चारण करि शिरते लै पदपर्यन्त सर्वांग की रक्षा करत जाइ तौ देह पर मानौ वज्र को पिंजरा आवरण है ताते देव, दैत्य, ब्रह्मराक्षस, भैरव, कूष्माण्डादि किसीकी बाधा नहीं व्यापत ताकी प्रमाण विश्वामित्रजी को किया रामरक्षा प्रसिद्ध है यथा ॥ शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः। कौशल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ॥ घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रवत्सलः । जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ॥ स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः । करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्निजित् ॥ मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः । सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः॥ ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् । जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः॥ पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः । एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती

पठेत् ॥ स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् । पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मकारिणः ॥ न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः । वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत् ॥ अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् । यह श्लोकबद्ध में है। परन्तु पढ़ना इस विधि ते चाहिये यथा ॥ ॐ रां राघवाय नमो मे शिरः पातु रां ॐ १ ॐ क्लीं दशरथात्मजाय नमो मे भालं पातु क्लीं ॐ २ ॐ ह्रीं कौशल्येयाय नमो मे दृशौ पातु ह्रीं ॐ ३ ॐ ऐं विश्वामित्रप्रियाय नमो मे श्रुतिं पातु ऐं ॐ ४ ॐ क्षौं मखत्राताय नमो मे घ्राणं पातु क्षौं ॐ ५ ॐ श्रीं सौमित्रवत्सलाय नमो मे मुखं पातु श्रीं ॐ ६ ॐ श्रां विद्यानिधये नमो मे जिह्वां पातु श्रां ॐ ७ ॐ क्रौं भरतवन्दिताय नमो मे कण्ठं पातु क्रौं ॐ ८ ॐ हुं दिव्यायुधाय नमो मे स्कन्धौ पातु हुं ॐ ९ ॐ फट् भग्नेशकार्मुकाय नमो मे भुजौ पातु फट् ॐ १० ॐ फट् सीतापतये नमो मे करौ पातु फट् ॐ ११ ॐ हुं जामदग्निजिते नमो मे हृदयं पातु हुं ॐ १२ ॐ क्रौं खरध्वंसिने नमो मे मध्यं पातु क्रौं ॐ १३ ॐ श्रां जाम्बवदाश्रयाय नमो मे नाभिं पातु श्रां ॐ १४ ॐ श्रीं सुग्रीवेशाय नमो मे कटिं पातु श्रीं ॐ १५ ॐ क्षौं हनुमत्प्रभवे नमो मे सक्थिनी पातु क्षौं ॐ १६ ॐ ऐं राक्षसकुलविनाशकृते रघूत्तमाय नमो मे ऊरू पातु ऐं ॐ १७ ॐ ह्रीं सेतुकृते नमो मे जानुनी पातु ह्रीं ॐ १८ ॐ क्लीं दशमुखान्तकाय नमो मे जङ्घयोः पातु क्लीं ॐ १९ ॐ रां विभीषणश्रीदाय नमो मे पादौ पातु रां ॐ २० ॐ रां रामाय नमो मेऽखिलं वपुः पातु रां ॐ २१ इस भांति रघुनाथजी के नाम पढ़त प्रत्यङ्गन न्यास करने ते सबल देवादि नहीं कछु बाधा करि सक्के हैं और तुच्छ देव जादू टोनादि की कौन गनती है इति शरणागत के रक्षाहेतु वज्रको पंजर आपुको नाम है हे कृपासिन्धु! अर्थात् जीवमात्र रक्षा करिबे को आपही समर्थ हौ ताते अब तुलसीदास को भी आपना दास कीजै जामें बिन मोल बिकाउँ भाव स्वार्थ चाहरहित गुलामीको कार्य करौं ३॥

(१५५) देव दूसरो कौन दीन को दयाल ।

शीलनिधान सुजानशिरोमणि शरणागत प्रिय प्रणतपाल १
को समर्थ सर्वज्ञ सकल प्रभु शिवसनेह मानस मराल ।
को साहिब कियै मीत प्रीतिवश खग निशिचर कपि भीलभाल २
नाथ हाथ माया प्रपंच सब जीव दोष गुण कर्म काल ।
तुलसिदास भलो पोच रावरो नेकु निरखि कीजिये निहाल ३

टी० । हे देव, रघुनाथजी! दीनको दयाल दीनजन पर परिपूर्ण दयाको करनेवाला सिवाय आपुके दूसरा कौन है अर्थात् नहीं है काहेते विन प्रयोजन दीन जनन को दुःख मिटावना दया है सो सिवाय आपुमें और ऐसी दया किसमें है ऐसे दयाल पुनः शीलनिधान यथा ॥ दोहा ॥ हीनोदीन मलीन खल, घिन आवै ज्यहि देखि । सबन आदरै मान दै, गुण सौशील्य विशेखि ॥ भगवद्गुणदर्पणे ॥ हीनैर्दीनैर्मलीनैश्च बीभत्सैः कुत्सितैरपि । महतोऽच्छिद्रसंश्लेषं सौशील्यं विदुरीश्वराः ॥ ऐसे शीलगुणस्थान हौ पुनः सुजान शिरोमणि अर्थात् सब विद्या देशनकी

भाषा पशु पक्षी आदि जीवन की भाषा सब पढ़े जाको समय पावत ताही व्यवहार अनुकूल वार्ता करत यह चातुर्यता गुण है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ सर्वांगवार्त्तानिपुणो रामस्तैः प्रणतः सदा। देवदानवनागानां भाषाभिज्ञो रघूद्वहः॥ भूतप्रेतपिशाचानां भाषाविद्राघवः प्रभुः ॥ अन्योन्यदेशभाषाभिस्तत्रैव व्यवहारकः । ग्रामारण्यपशूनां च भाषाभिर्व्यवहारकृत् ॥ अर्थात् जो जैसा आवत तासों तैसेही वार्ता करते हौ इति सुजानन में शिरोमणि हौ पुनः शरणागत जन आपुको प्यारा है पुनः प्रणत आरत है प्रणाम करत ताको पालन करते हौ तौ आपुकी शरण त्यागि कहां जाऊं १ ब्रह्मादिक यावत् ऐश्वर्यवन्त हैं तिन सकल प्रभुन के आपु प्रभु हौ भाव सबको ऐश्वर्य आपुही की दई ६ पुनः सर्वज्ञ सर्ववस्तु के जानने वाले ऐसा समर्थ ऐश्वर्यवाला और को है पुनः शिवजी को सनेहरूप जल जामें भरा ऐसा मनरूप मानसर तामें मराल हंससम सदा वास किहे हौ ऐसे समर्थ स्वामी हौ तिनको छांड़ि मैं किसकी शरण जाऊं काहेते और ऐसा को साहब है जो खग जटायु निशाचर विभीषण कपि सुग्रीवादि वानर भील वनवासी किरात बाल जामवन्तादि ऋक्ष इत्यादिकनको प्रीतिवश ते मीत किया सखा बनाया इस योग्य एक आपही हौ जो नीच ऊंच पतित पावन सबको प्रतिपाल करते हौ ताते मैं आपही की शरण गहों २ माया प्रपञ्च मायाकृत प्रकर्ष करिकै सबल जो पांचौ तत्त्व हैं तिनहीं करिकै पिण्ड ब्रह्माण्डादि सब रचना है अथवा प्रकर्षकरिकै बली जो पञ्चप्रकार की माया है अर्थात् अविद्या जो जीवको भुलावत १ विद्या जो जीवको चैतन्य करत २ संधिनी जो जीव ईश्वरकी सन्धि मिलावत ३ सन्दीपिनी जो जीवके अन्तर ईश्वर की दीप्ति प्रकाशत ४ आह्लादिनी जो जीवके अन्तर परब्रह्म को आनन्द उपजावत अथवा देहाभिमानते यावत् लोक व्यवहार हैं इति माया को प्रपञ्च सब पुनः जीवके दोष यथा मोह, काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, गर्व, मद, अधर्म, अहंकार, व्यभिचार, पाप, पाखण्ड, विरोध, असत्य, मिथ्यादृष्टि, रति, हिंसा, तृष्णा, आशा, निन्दा, ईर्षा, आलस, ममता, लोलुपता, भूलचिन्तादि पुनः जीवके गुण यथा विवेक, विचार, धैर्य, संतोष, सत्य, शील, धर्म, वैराग्य, ज्ञान, आनन्द, अभ्यास, क्षमा, दया, साधुता, लज्जा, श्रद्धा, असंग, निराशा, सद्वासना इत्यादि पुनः कर्म मानस वाचक कायिक यावत् कर्म शुभाशुभ जीव करता है तामें क्रियमाण संचित प्रारब्धादि पुनः काल यथा पल, दण्ड, दिन, मास, वर्ष तामें तिथि, नक्षत्र, योग, करण, लग्नादि यथा कर्म बिना भोगे छूटना नहीं तथा जौने काल में जो बात होनहार सो निश्चय होत ये सब जीवनको स्ववश किहे हैं ऐसे सबल हैं परन्तु हे नाथ, रघुनाथजी ! मायाप्रपञ्च सब जीवनके दोष गुण काल कर्मादि सब आपहीके हाथ हैं भाव दुःख में सुख सुखमें दुःख गुणी को अवगुणी अवगुणी को गुणी शुभको फल अशुभ अशुभ को फल शुभ कुकाल में सुकाल सुकाल में कुकाल इत्यादि इच्छामात्र तिनका है ऐसे सबल समर्थ हौ ताते हे रघुनाथजी ! तुलसीदास भलो पोच रावरो अर्थात् नीक जबून जो कछु हौं सो आपहीको गुलाम हौं यह जानि नेकु निरखि थोरीहू कृपादृष्टि देखि मोको भी निहाल कीजिये भवभयते अभय कीजे आपको नेक दृष्टि करते मेरा परिपूर्ण कार्य ३॥

राग सारंग।

(१५६) विश्वास एक राम नाम को।

मानत नहीं प्रतीत अनत ऐसोइ स्वभाव मन वाम को १
पढ़िबो पर्यो न छठी छमत ऋग यजुर अथर्वण साम को।
व्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचिमरै करै तनु क्षाम को २
कर्मजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दामको।
ज्ञान विराग योग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को ३
सबदिन सबलायक भवगायक रघुनायक गुणग्राम को।
बैठे नामकामतरु तर डर कौन घोरघन घाम को ४
को जानै को जैहै यमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जंग जीवन रामगुलाम को ५

टी०। काहेते एक आपही को गुलाम हौं कि एक रामनाम को विश्वास है भाव मेरा भला एक रामनामही ते होयगो अरु नामते बिलग अनत कर्मयोग ज्ञानादि दूसरी बात की महिमा कोऊ कैसहू कहै वा प्रभाव देखावै ताकी प्रतीति नहीं मानत भाव और उपायते कछु कार्य न होई सब श्रम वृथा है इति सबकी त्यागि आपनी राखना इति मन वाम टेढ़े मेरे मन को ऐसोई सहज स्वभाव है १ काहेते मनको टेढ़ा स्वभाव है कि जो वेद शास्त्रादि पढ़ता तौ कछु स्वभाव सीधा भी ह्वै जाता तहां छः मत छैयो शास्त्रनको मत यथा मीमांसा को धर्म ज्ञानमत वैशेषिकको पदार्थ तत्त्वज्ञान मत न्याय को प्रमाणादि सोरहपदार्थ ज्ञानमत योग को चित्तवृत्ति रोकि समाधिमत सांख्य को प्रकृत पुरुषको विवेक मत वेदान्त को जीव ब्रह्मकी एकता मत है इति छैयो शास्त्रनके मत तथा ऋग, यजुर, अथर्वण,सामादि चारिहू वेद इत्यादिकन को पढ़िबो मेरी छठी में नहीं पर्यो अर्थात् मेरी भाग्य में ब्रह्मा लिखबै नहीं भये भाव मेरा मन वेद शास्त्रादि को मत नहीं धारण किहे है पुनः व्रत हरिशयनी चान्द्रायणादि तीर्थ प्रयागादिमें वास स्नान दान तप पञ्चाग्नि जलशय-नादि इनको सुनतही मन सहमत डराइजात काहेते को पचिमरै तनको छाम करै अर्थात् श्रमरूप अग्निते को अन्तस ते चुरिमरै तनको दुर्बल करै २ कर्मजाल॥ यथा अर्थपञ्चके॥ तत्र कर्म परिज्ञेयं वर्णाश्रमानुरूपतः। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रेधा कर्म फलार्थिनाम्॥ यज्ञो दानं तपो होमं व्रतं स्वाध्यायसंयमः। संध्योपास्तिजपः स्नानं पुण्यदेशाटनालयम्॥ चान्द्रायणाद्युपवासश्चातुर्मास्यादिकानि च। फलमूलाशन-श्चैव समाराधनतर्पणम्॥ इत्यादि समूह कर्मन की क्रिया करना कलिकाल कठिन कलियुग विषे निर्वाह दुर्घट है पुनः दाम को आधीन सुसाधित है अर्थात् जब पैसा खर्च करौ तब कर्म साधना ह्वै सक्ती है परिश्रम पैसा खर्च श्रद्धा कलिमें दुर्घट है पुनः ज्ञान को मोह की भय अर्थात् आत्मरूप में देहाभिमान बाधक पुनः विराग को लोभकी भय भाव संसारसुख त्याग करतमें परधनपर मन लगावना

बाधक है योगको क्रोध की भय भाव मन की थिरता में ईर्षा वैराग्यादि बाधक हैं पुनः मन्त्रजप को कामकी भय भाव मन्त्रअनुष्ठानविधि में परस्त्री पर मन जाना बाधक तहां साधक अबल बाधक सबल कैसे निर्वाह है सक्ता है करालकलियुग में कुटिल जीवोंते ३ पुनः रघुनायक के कृपा, दया, करुणा, शील, सुलभ, उदारनादि जो समूह कल्याण गुण हैं तिनको ग्राम रामायणादि कथा ताको गाग्रक होना सो सब दिन सब प्राणिन के लायक है अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुगादि पुनः सब मास सब तिथि योग करण सब लग्नैं इत्यादि सब दिनमें तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, पतित, चण्डालादि सब प्राणी जब चाहैं तब नामस्मरण रामयश श्रवण कीर्तन करैं काहूको कछु हानि बाधा नहीं है कौन भांति यथा कामतरु कल्पवृक्ष ताके तर सघन छांह में बैठे घाम तौ लागता नहीं अरु सब फल सुलभ लाभ हैं तथा रामनाम जो कामतरु है ताके तर छाया में बैठेते संसाररूप सूर्यनकृत जन्म मरण त्रितापादि घोर भयंकर सघन जो घाम है ताको कौन डर क्या बाधा करि सक्ता है यथा महोदधौ। तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चन्द्रवलं तदेव। विद्यावलं दैववलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥४ कर्म योग ज्ञानादिकै साधन में महापरिश्रम देह को क्लेश तौ देखते हैं पुनः अन्तकी कौन जानता है कि को यमलोक को जैहै को देवलोक को जैहै को भगवत् के परधाम को जैहै यह तौ निश्चय नहीं अरु कायक्लेश निश्चय देखते हैं ताते सब साधन मेरे मनते भले नहीं हैं अरु रामगुलामन को जीवन जग में तुलसीदास को बहुत भलो लागत काहेते प्रह्लाद पर पिता क्रोध किया ताको नृसिंह है मारि प्रह्लाद को स्त्री पुत्र धन धाम सर्वाङ्ग राज्यसुख दीन्हे पुनः उनकी मुक्ति की कौन कहै बहुत पुश्ती मुक्त भई ध्रुवको राज्यसुख भोग कराइ अचलपद दीन्हे अम्बरीषो महाराज रहे तहां दुर्वासा की गति प्रसिद्ध तिनकी मुक्ति में कौन संदेह तथा विभीषणादि अनेक दोऊ लोक में सुखी सबते ऊंचे बड़ाई पाये इत्यादि जानि रामदासन को जीवन मोको भला लागत ताते केवल रामनामही को विश्वास राखे है अन्य साधन की प्रतीति नहीं है ५ ॥

(१५७) कलि नाम कामतरु राम को।

दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को १
नाम लेत दाहिनो होत मन वाम विधाता वाम को।
कहत मुनीश महेश महातम उलटे सूधे नाम को २
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते शोच न कूच मुकाम को ३

टी०। अन्य साधन कलियुग में फलदायक नहीं हैं अरु रघुनाथजी को नाम कलिकालहू में कामतरु कल्पवृक्ष है अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि सब फलदायक हैं पुनः दारिद भोजन वसन की संकीर्णता पुनः दुकाल दुर्घट समय आवना यथा अतिवृष्टि अनावृष्टि महँगी आदि पुनः दुःख यथा हानि वियोग रुज शत्रुसङ्कट

बन्धनादि पुनः घोर दोष वेदप्रतिकूल चलना यथा हिंसा चोरी परअपवाद पर-स्त्रीरत परहानि इत्यादि पुनः संसारसूर्यकृत जन्म मरण तीनिउँ तापँ इत्यादि सघन घाम तिनको दलनिहार नाशकर्ता रामनाम है १ दारिद्र दुकाल दुःखादि तौ पूर्वपाप वृक्षों को फल है देनहारे ब्रह्मा हैं तहां नाम लेत पाप नाश होजाते हैं अरु सुकृत की वृद्धि होती है तहां पापन को फल देनहार वाम नाम टेढ़ जो विधाता ताको टेढ़ा जो मन सोऊ दाहिनो होत वाम को अर्थात् टेढ़ा जो जीव पूर्व कुमार्ग करनेवाला ताको रामनाम लेत सीधा है विधाता सुखदायक होत पुनः नाम को यथार्थ माहात्म्य कौन कहिसक्ता है काहेते उलटा नाम मुनीश वाल्मीकि कहत अर्थात् उलटा नाम जपिकै व्याधा ते वाल्मीकि महामुनि रामचरित भवि-ष्यवक्ता भये पुनः सीधा नाम महेश कहत सीधी रीति ते शिवजी जपत ते अजर अमर भये हलाहल को पचे गये प्रलय करिबे को समर्थ भये रामनाम के प्रभाव ते काशी में चराचर को मुक्ति देत सो शिवजी आपही कहे यथा अध्यात्मे ॥ अहो भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या । मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥ केदारखण्डे शिववाक्यम् ॥ रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम् । यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोऽमलाम् २ प्रथम वाल्मीकि शिवजी की प्रमाण देखाय पुनः साधारणरीति कहत ललित नाम सुन्दर ललाम नाम भूषण सोई ललितललाम सुन्दर भूषणसम जीव को सुख शोभा प्रकाशकर्ता जो रामनाम है ताको जाके बल भरोसा है ताको लोकसहित परलोक में भलो है यथा ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, सुग्रीव, विभीषणादि को लोकहू परलोक में सब भांति भला भया सो प्रसिद्ध है पुनः तुलसी जग जानियत गोसाईंजी कहत कि अजामिल यमनादि को प्रसंग वेद पुराणद्वारा सब जगत् जानत है कि नाम ते अर्थात् श्रीरामनाम स्मरण करतसन्ते जीव को कूच तनत्याग पुनः मुकाम गर्भवास अथवा यमपुरवास इत्यादि को शोच नहीं रहत अर्थात् नाम को प्रभाव प्रसिद्ध है यथा विष्णुपुराणे ॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः । पुमान्वि-मुच्यते सद्यस्सिंहत्रस्तमृगैरिव ॥ पाद्मे ॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम् । शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥ बृहद्विष्णुपुराणे ॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः । परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ३ ॥

(१५८) सेइये सुसाहब रामसो ।

सुखद सुशीलसुजान शूर शुचि सुंदर कोटिक काम सो १
शारद शेष साधु महिमा कहैं गुणगणगायक साम सो ।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति चाहत चंद्रललाम सो २
गमन विदेश न लेश क्लेशको सकुचत सकृतप्रणाम सो ।
साक्षी ताको विदित विभीषण बैठोहै अविचलधाम सो ३
टहल सहज जन महल महल जागत चारो युग याम सो ।
देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुणग्राम सो ४

जाका भजे तिलोकतिलक भये त्रिजगयोनि तनु तामसो।
तुलसी ऐसे प्रभुहि भजै जो न ताहि विधाता वाम सो ५

टी०। राम सो सुसाहब सेइये कैसे हैं सुखद सेवत में सुलभ सेवक को सब भांति को सुख देनहारे हैं काहेते सुशील हैं अर्थात् नीच ऊंच कोऊ सम्मुख आवै सबको मान बड़ाई देत पुनः सुजान हैं अर्थात् सुरासुर, मुनि, नर, नाग, पशु, पक्षी जौने देश को होइ सम्मुख आवै ताहीकी भाषा में प्रीतिपूर्वक वार्ता करि वाको सनेहवश करिलेते हैं पुनः शूर हैं अर्थात् कैसहू सबल वीर सम्मुख आवै तासों अभय युद्ध करैं पुनः शुचि अन्तर बाहरते पवित्र पुनः कोटिन कामसों अधिक सुन्दर सर्वाङ्ग सुठौर बने इत्यादि सबभांति ते सुन्दर स्वामी रघुनाथजी हैं तिन को वचन मन कर्म प्रीतिपूर्वक सेवा कीजे १ पुनः ऐश्वर्य में कैसे हैं कि शारदसी विद्वान् शेष से कवि शुद्ध अन्तसवाले सांधु जिनकी महिमा कहते हैं सदा वर्णन करत पुनः सामवेद ऐसो जिनके गुणगणगायक कृपा, दया, शील, करुणा, सुलभ, उदारतादि गुणसमूहन को सदा गान करते हैं पुनः चन्द्रमा ललाम भूषण माथ में है जिनके ऐसे शिवजी ऐसे जाको नाम प्रेम सहित सुमिरण करि जा प्रभुसों रति प्रीति चाहत ऐसे परात्पर परब्रह्म हैं २ पुनः धर्मधुरीण ऐसे हैं कि पिताको वचन मानि विदेशगमन वनको चले तहां कलेशको लेश न नेकहू दुःख जिनमें न देखि परा सदा एकरस प्रसन्न रहे पुनः प्रणतपाल कृतज्ञ कैसे हैं कि सकृत एकबार प्रणाम ते सकुचन भाव प्रणाम की योग्य फल यथा देवैं भाव लोक परलोक सर्व सुख दैके तबहूँ सकोच नहीं जात ताकी साक्षी लोकविदित है विभीषण अविचल धाम सो लंकामें बैठे हैं अर्थात् परलोक ते अभयकरि अचल राज्य लंकाकी दीन्हे तबहू सकोच बनारहा ३ कृतज्ञता तौ ऐसी स्वामीमें है कि एकबार प्रणाम किहेते ऐसी सेवा मानत जामें सर्व सुख दै ताहूपर कछु दीन नहीं मानत ऐसी तौ टहल सहल स्वामी की सेवा सुलभ जो प्रणाममात्र आपनो मानि कैसी रक्षा राखत कि आपने जनन के महल घर घर वा घट घट में चारि याम सो चारिउ पहर रात्रि-सम चारिउ युगन में जागत सेवक की रक्षा राखत तहां सेवक को जो दोष देखत तामें खीझत नहीं भाव अवगुण अपराध देखि क्रोध नहीं करते हैं अरु सेवकन के गुणनके ग्रामसमूह गुण जो औरके मुखते सुनत तौ रीझत प्रसन्न होते हैं भाव अवगुण तजि गुण ग्रहण करते हैं पुनः जासमय सेवक को कछु संकट परत तब आपही रक्षा करते हैं यथा प्रह्लाद अम्बरीषादि को ४ त्रिजगयोनि जे उदर नीचे करि चलते हैं यथा वानर ऋक्षादि पशु जटायू आदि पक्षी पुनः तामस तनवाले यथा कोल किरात राक्षसादि तेऊ जाप्रभु को भजेते तिलोक तिलकमय अर्थात् तीनिहूं लोकन में यावत् उत्तम जन रहैं तिनमें शिरोमणि गने गये ऐसे पतितपावन दीनबन्धु अधमउद्धार प्रणतपाल हैं सो गोसाईंजी कहत कि ऐसे प्रभुहि जो न भजै अर्थात् सब भांति ते उत्तम स्वामी श्रीरघुनाथजी जिनको भजिकै पशु पक्षी राक्षसादि उत्तम भये तिनको भजन जो नहीं करता है ताहि विधाता वाम सो याको ब्रह्मा टेढ़ाहै अर्थात् अनेकन जन्मके पापसमूह तिनको फल महादुःख ब्रह्मा ने लिखिदिया त्यहि अभाग्यते हरिभजन में मन नहीं लागता है ५॥

राग नट ।

(१५६) कैसे देउँ नाथहि खोरि ।

कामलोलुप भ्रमत मन हरि भक्ति परिहरि तोरि १
बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि ।
देत सिख सिखयो न मानत मूढ़ता असि मोरि २
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संगवश किये शुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ३
करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृतशिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि दम्भ लेत अजोरि ४
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आशाडोरि ।
बात कहौं बनाय बुध ज्यों बरबिराग निचोरि ५
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि ।
निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहि छोरि ६

टी० । पूर्व स्वामी के गुण कहि अब आपने अवगुण दर्शाय प्रार्थना करत नाथहि कैसे खोरि देउँ अर्थात् हे रघुनाथजी ! आपुको दोष कैसे लगावौं आपु तौ कृपासिन्धु प्रणतपाल हौ सब दोष मेरही हैं काहेते हे हरि ! आपुकी भक्ति परिहरि भजन ध्यानादि त्यागिकै मेरा मन कामलोलुप भ्रमत अर्थात् कामवश परस्त्रिन में धावत लोलुप, लोभ वश धन पाइबेहेतु सब संसार में धावा फिरत १ कैसे भ्रमत अन्तर लोभ बाहेर साधुवेष बनाये ताके मान ते आपना को पुजाइबे पर तौ बहुत प्रीति है पुनः साधुजनन को अथवा हरि प्रतिमादि पूजिबे पर थोरी प्रीति है भाव पूजा भजन ध्यानादि करने में शुद्ध राम प्रीत्यर्थ नहीं है अन्तस में यही वासना रहती है कि मोको देखि लोग महात्मा जानि सब पूजै इस हेतु तौ बहुत पूजादि करत हौं जहां कोऊ देखनेवाला नहीं तहां पूजादि थोरा करत हौं पुनः औरन को तौ सिखावन देता हौं अर्थात् सद्ग्रन्थन में आचार्यन के उपदेश वचन हैं तिनको पढ़ि औरन को तौ सिखावत हौं कि मोहादिरहित विवेकादिसहित हरिपद में प्रीति करौ अरु सोई ग्रन्थाचार्यन को सिखायो उपदेश सो नहीं मन मानता है असि मोरि मूढ़ता महाअज्ञानता है २ जे अघ पाप सनेहसहित मन लगाइकै कीन्हेउँ तिनको हृदय में चोरि राखेउँ भाव जे पाप कर्म प्रीतिपूर्वक कीन्हेउँ यथा परस्त्रीरत परधनहरण हिंसादि तेतउ अन्तर में छपाये हौं पुनः जे किसी सज्जन के संगवश ते तीर्थ व्रत दान पूजा जपादि शुभ कर्म किये तिन सकलन को लोक जनन को निहोरा दै बोलाय भली भांति सुनाये ३ पुनः जो कछु किंचित्सत्कर्म करता भी हौं सो यथा खेत कटिगये पर परा गिरा दाना एक एक शीला सम बीनि बटोरि सचि संचित यथा डहरी को अन्न पुनः पचि पचित किया यथा पिसान चावल दालि यहां तीर्थ व्रत दान पूजा पाठ जपादि जिनको फल पीछे

मिलता है तैसे संचित अन्नसम है पुनः रामलीला अवलोकन गुणगण श्रवण कीर्तनादि जिनमें प्रेमानन्द तुरतही लाभ है ते पचितसम है इत्यादि किंचित् सुकृत शीलासम बटोरि सचि पचिकै जो हृदयरूप मन्दिर में धरत हौं तब हे दयानिधि ! अकारण जनदुःखहरता हे रघुनाथ ! मेरी अर्ज सुनिये अन्तरमें जो सुकृत बटोरि धरत हौं ताको डाकूसम दम्भ उरमें बरबस जबरइन पैठिकै अजोरि छीनिलेता है अर्थात् अन्तर में काम, क्रोध, लोभादि भरे ऊपर वेष बनाये साधुन की ऐसी वार्ता करत हौं इति दम्भ ते सब सुकृत नाश ह्वै जात ४ अब दम्भ को रूप देखावत यथा नट गरेमें डोरि बांधे ज्यों कपि वानर को नचावता है तथा धनादि पाइबे की आशारूप डोरि बांधे लोभरूप नट मनहिं नचावता है भाव लोभवश वेष बनाये पुजाइबे हेतु द्वार द्वार अनेक कला देखावत फिरता हौं कौनभांति कि ज्यों बुध वर विराग निचोरि यथा विद्वान् उत्तम वैराग्य को सारांश खैंचि खैंचि मुख ते बनाय बनाय अनेक बातैं कहत हौं ५ मन तौ लोभादि के वश मुख ते विरागवान् बना हौं येतेहू पर तुम्हारो हे प्रभु ! ऐसेहू कर्मन पर आपुको गुलाम कहावत हौं इति लाज घोरि अचई लज्जा घोय पियें अर्थात् निमकहरामी करि परिपूर्ण तनखाह अरु इनाम मांगता हौं इति ऐसी निर्लज्जता पर रीझि प्रसन्न ह्वैकै हे रघुवर ! तुलसी को भवबन्धन ते छोरि लेहु भाव मैं तौ लोभादि फन्दन ते दृढ़ करि जीव को बांधता हौं अरु आपुते कहता हौं कि मोको छोरि देउ तौ कैसे आपु छोरैं ६ ॥

(१६०) है प्रभु मेरोई सब दोषु।

शीलसिंधु कृपालु नाथ अनाथ आरतपोषु १
वेष वचन विराग मन अघ अवगुणनि को कोसु।
रामप्रीति प्रतीति पोलो कपट करतब ठोसु २
राग रंग कुसंग ही सों साधु संगति रोसु।
चहत केहरि यशहि सेइ शृगाल ज्यों खरगोसु ३
शम्भु सिखवन रसनहू नित रामनामहिं घोषु।
दम्भहूं कलि नामकुम्भज शोचसागर सोषु ४
मोद मंगलमूल अति अनुकूल निज निरजोषु।
रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोषु ५

टी०। हे प्रभु ! सब भांति ते मेरही दोष है आपुको नहीं काहेते आप तौ शीलसिन्धु हौ अर्थात् दीन हीन मलीन पापी अपावनादि कैसहू सम्मुख आवै ताहूको मान बड़ाई देना इति शील गुणरूप जलभरे समुद्र हौ पुनः कृपाल अर्थात् जीवमात्र पालने को हमहीं समर्थ हैं यह दृढ़ानुसंधान राखना कृपागुण है ताके भरे मन्दिर हौ पुनः जाके कहीं कोऊ नाथ नहीं ऐसे अनाथके नाथ हौ शरण में राखते हौ पुनः आरत जो दुःखित जन ताके पोषु नाम पालन करनहारे हौ १ काठ कमण्डलु कोपीनमात्र इति तनमें वेष पुनः संसारसुख वृथा है इति मुखते वचन तौ वैरागवान् कैसे पुनः मन कैसा है अघ यथा हिंसा, चोरी परस्त्रीरत परापवा-

दादि जो पाप पुनः अवगुण यथा काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्षा, कठोर, दुर्वाद, आलस, निद्रादि अलक्षण इति अघ अवगुणन को कोसु नाम खजाना अर्थात् पाप अवगुणन ते मन भरा है पुनः सब इन्द्रिय मनादि की वृत्ति बटुरि रामसनेह रस की भोगी रहैं सो रामप्रीति है पुनः । शरण गये नहिं त्यागिहैं, म्वहिं रघुवीर भरोस। इति रामप्रतीति इत्यादि रामप्रीति प्रतीति करिकै मन पोलो खाली है काहेते मुखते रामसनेही बना अन्तर ते विमुख हौं इत्यादि जो कपट सो ठौस है २ रंग यथा मेला तमाशा नाच खेलादि कुसंग यथा चोर जुवांरी हिंसक लम्पट लबारादि संग वैठना इति रंग कुसंगही सों राग नाम प्रीति किहे हौं अर्थात् कुसंग को वैठक रंग को देखना इत्यादि मन को आनन्ददायक देखात पुनः साधुन के संग जात रोष अर्थात् जब वै कुसंग रंग को निरादर करते हैं तब उनपर मेरे क्रोध होता है इन आचरण ते भवफन्द ते छूटा चाहत हौं कौनभांति ज्यों शृगाल स्यार को सेइ सेवन करि खरगोश शशा अर्थात् चौगड़ा सो केहरि सिंहकेोयशहि चाहत अर्थात् स्यार के बलते चौगड़ा गजराज को पछारा चाहत है भाव स्यार तौ खरगोश को आपही खाइ जानेवाला है ताके सेवनते गजराजको कैसे पछारि सक्ता है तथा कामादि तौ खल जीव के नाश करतै हैं तिनके सेवनते भव ते पार पावा चाहत सो कैसे पार होई ३ शंभु सिखवन शिवजी सदा जीवन को यही वचन सिखावते हैं कि रसनहू निरन्तर रामनामहि घोसु घोषु अर्थात् रसनहू कहवे को भाव केवल अन्तर के भरोसे न रहौ जिह्वा करिकै नित रामनाम को रटौ जो कहौ कि विना अन्तर स्मरण मुख के रटे क्या होइगा तापर कहत दंभहू दंभौ करिकै अर्थात् अन्तर में औरहू वासना है देखावमात्र जो मुखै ते राम राम कहा करै तबहूं कलियुग में रामनाम कुंभज शोचसागर सोसु शोचरूप समुद्र शोषि लेवे हेतु रामनाम अगस्त्य है अर्थात् लोक परलोक सब भांति को शोच मिटि जाता है यथा नृसिंहपुराणे प्रह्लादवाक्यम् ॥ रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् । पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ४ मोद जो मानसी आनन्द मङ्गल प्रसिद्ध उत्सव इत्यादि को उत्पन्न करिवे हेतु मूल जर है पुनः अति अनुकूल निज अपने भक्तन पर अत्यन्त प्रसन्न रहत ऐसा रामनाम को प्रताप निरयोसु जोख तौलरहित अतुल प्रताप है ऐसा रामनाम को प्रताप है ताको वेद पुराणनते सुनिकै अर्थात् भाव कुभाव किसी भांति जो मुखौ ते उच्चारण करै तौ पाप विकारादि सब नाश ह्वै जाते हैं पुनः लोक परलोकादि सब प्रकार को सुख परिपूरण देत यथा शुकसंहितायाम् ॥ आकृष्टः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचाण्डालमनुकलोकसुलभो वश्यं च मुक्तिश्रियः। नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यामनागीक्षते मन्त्रोयं रसनास्पृशेव फलति श्रीरामनामात्मकः ॥ इत्यादि रामनाम को प्रभाव सुनि तुलसिहु के मन में परमसंतोष है भाव हे रघुनाथजी ! आपुके नाम के आधार हौं मेरा भी उद्धार करौगे ५ ॥

(१६१) मैं हरि पतितपावन सुने।

मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने १

व्याध गणिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात का पै गने २
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक यमपुर मने।
दासतुलसी शरण आयो राखिये अपने ३

टी०। काहेते परम संतोष है कि हे हरि, श्रीरघुनाथजी! वेद पुराणन ते यह मैं सुनेउँ है कि आपु पतितपावन हौ भाव धर्म कर्म रहित महापापिन को पवित्र करते हौ तहां मैं पतित हौं नाते पतितनको पावन करनेवाले स्वामी को गाहक हौं अरु आपु पतितपावन हौ पतितनके गाहक हौ ताते दोउ वानिक बने भाव दोऊ दिशि के व्यापारिन को व्यापार में परिपूर्ण लाभ होयगा १ क्या मैं सुनेउँ कि व्याध जीवहिंसक उलटा नाम जपि वाल्मीकि महामुनि भयो गणिका पतुरिया जो व्यभिचार ते जीविका करै सोऊ सुवा ते सुनि रामनाम लै तरी गजराज वल को मानी पशु ग्राह ते संकट में परि नाम लै तरा अजामिल महापापी पुत्रहेतु हरि नाम लै मरा सोऊ तरि गयो इत्यादि की साखी निगमनि भने वेद कहि रहे हैं पुनः यवनादि औरहू अनेक अधम महापापिन को तारयो सो कापै गने जाहिं असंख्य हैं तिनको कौन गनि सका है २ जानिकै नाम लीन्हे अर्थात् माहात्म्य सुनि प्रभाव विचारि नाम स्मरण करै अथवा अजानि किसी कारणते भूलिकै रामनाम उच्चारण करै ताको यमपुर में नरक वास मने है अर्थात् महापापी यमपुर पहुँचे पर भी रामनाम उच्चारण करै तौ नरक सांसति वाकी छूटिजाती है काहेते नामोच्चारण सुनतहीं प्रभु धाय छोड़ाय लेत हैं यथा भरद्वाज वेदपादाभिस्तोत्रे ॥ राम रामेति रामेति वदन्तं विकलं भयात् । यमदूतैरनुक्रान्तं वत्सं गौरिव धावति ॥ ऐसा हाल सुनि तुलसीदास आपकी शरण आयो ताको हे श्रीरघुनाथजी! अपनी शरण राखिये ३ ॥

राग मलार।

(१६२) तोसों प्रभु जोपै कहूं कोउ होतो।
तौ सहि निपट निरादर निशिदिन रटि लटि ऐसो घटिको तो १
कृपासुधा जलदान मांगिबो कहौं सो सांच निसोतो।
स्वाति सनेह सलिल सुख चाहत चितचातक सो पोतो २
काल कर्म वश मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कछु भो तो।
ज्यों मुदमय बसि मीन वारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ३
जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो।
तेरे राज राय दशरथ के लयो बयो बिनु जोतो ४

टी०। काहेते निश्चय करि आपही की शरण आयो हौं हे प्रभु! तोसों आपु समान स्वामी जो पै निश्चय करि कहीं किसी लोक में कोऊ प्रभु दूसरा होतो तौ क्यों आपही के द्वार पर निपट निरादर सहि धका खाय सब के कुवचन

सुनि ताहूपर भूखा प्यासा द्वारपर परारहि निशि दिन रातिउ दिवस निरन्तर आपको नाम रटि रटि लटि दुर्बल है द्वार न छोड़तो ऐसो पटिको तो ऐसा नीच कोऊ तो न ठहरतो अर्थात् आपसम अधम उद्धार जो औरहु कोऊ कहीं प्रभु होतो तौ ऐसा नीच याचक कोऊ न ठहरता जो निरादर सहि आपही के द्वार परा नाम रटि रटि मरता भाव अधम उद्धार एक आपही हौ ताते आपही के द्वार परा पुकारता हौं विना दान दीन्हे छुट्टी न पावैगे १ काहेते न छुट्टी पावौगे कि भूतमात्र रक्षा करिबे को हमहीं समर्थ हैं यह जो दृढ़ानुसंधान राखे सबकी रक्षा राखे हौ यह जो आप में कृपागुण है सोई मैं चाहत हौं भाव मेरी भी रक्षा करौ भवते उबारौ इति कृपारूप सुधा अमृत सम जल ताको दान मांगिबो जो मेरा प्रयोजन है सोई वचन जो मैं कहे सो निसोते झूंठ मेलरहित सांचे वचन हैं अर्थात् सत्य सत्य भवपार होनेकी इच्छा है ताते मेरा चितचातक सो पोतो पपीहा कैसो बच्चा भाव भूख प्यास सहिबे में अब सो स्वाति सलिल जल तैसो सनेह आपसों चाहत अर्थात् यथा चातक सब जल त्यागि एक स्वाती मेघ जल में सनेह राखत तैसेही सबको आशा भरोसा त्यागि अनन्य है मेरा चित्त आपकी कृपै जलमें सनेह चाहत सो चातक बालक सो कोमल जानि कृपाजल दान में विलम्ब न करौ २ काल कलियुग कराल है सत्कर्म में बाधा करत विषय वासना बढ़ाइ मन कुमार्गी करि देत तथा पूर्वके असत् कर्म अपनीहि राह में लगावत इति काल कर्म के वश में परेते कुमनोरथ परस्त्री परधन परलोभ परहानि कुत्सित मनोरथ कबहूं कबहूं कछु भये तौ कैसे मन विकल है भागत यथा वारि तजि मीन उछरि मछरी जल में आनन्द कबहूं उछरी जल त्यागि भूरी भुइं में गिरी ताको दुख देखि लोगनको पकरि लेने की भय मानि भभरि गड़बड़ाइकै उछरि पुनः जल में गोता लेत त्योंही मेरा मन मीनसम मोदमय वारि वसि अर्थात् प्रेमानन्दरूप जल में मेरा मन मछरी सम बसा है कबहूं कामादि मनोरथ करि विषय सुख में गया तहां कामादि की भय करि गड़बड़ाइकै भागि फिरि उसी प्रेमानन्द में है रहत भाव मन में विकार आवतो है तौ पुनः त्यागि आपही के सम्मुख होत ३ जितो दुराव जेतो छल तुलसीदास के उर में है ओतो क्यों कहिजात ओतरा कहत नहीं बनत ताते भव तरिबो संदेह रहे परन्तु हे रायदशरथ के लाड़िले, तेरे राज है रघुनाथजी ! आप के राज विषे विना जोते विना बये खेत में परिपूर्ण लूनिलये अर्थात् जोते विन कहीं पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, तप, दानादि सुकृत विना किहे पुनः बोये विन कहे भजन ध्यानादि विना किहे परिपूर्ण लोकसुख सहित परलोक में मुक्ति इति परिपूर्ण लूनिलये केवल आपकी कृपा ते सोई नेक कृपादृष्टि मोपर कीजै ४ ॥

राग सोरठ।

(१६३) ऐसो को उदार जग माहीं।

विनु सेवा जो द्रवै दीन पर रामसरिस कोउ नाहीं १

जो गति योग विराग यतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।

सो गति देत गीध शबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी २

जो सम्पति दशशीश अर्पि करि रावण शिव पहँ लीन्हीं।
सो सम्पदा बिभीषण कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं ३
तुलसिदास सब भांति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरण करैं कृपानिधि तेरो ४

टी०। उदारता गुण को लक्षण यथा पात्र कुपात्र देश काल कछु न बिचारै याचकमात्र को परिपूर्ण दान देना यही उदारता है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ पात्रापात्रविवेकेन देशकालाद्यपेक्षणात्। वदान्यत्वं विदुर्वेदा औदार्य्यवचसा हरे ॥ सो जब रघुनाथजी अवतीर्ण भये तब परिपूर्ण उदारता प्रकट करि कहे कि जीवमात्र को भवसागर पार करिदेवैं यह सुनि वेद पुराण ब्रह्मादि आइ बिनती कीन्हे कि हे महाराज! वेद धर्म की मर्यादा आपही को बनाई है ताको नाश न कीजै जो एकहू बार नाम लेवै वा सम्मुख आवै ताको तारिये यही सुनि प्रभु प्रमाण राखे यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ दिरसाकुलमनारामः कीर्त्याकृपसदुत्तरः। सर्वांश्च जीवानम्भोधिं तारयेयमिति प्रभुः ॥ चिन्तयन्नवतारस्य कार्य्ये तस्थौ महीतले। ततो वेदैः पुराणैश्च सेतिहासैः सहेश्वरैः ॥आगत्य याचितो रामः पूर्वां वार्तां दिरक्षुभिः। धर्माधर्मादिविपर्ययं कर्तुं तेनोचितं प्रभो ॥ सनातनीं च मर्यादां सकृतां रक्ष राघव। नैर्घृण्यं विषमत्वं च रागद्वयाभिधे उभे। न स्यातां ते यथा कुर्यास्तथा देवेति राघव॥ तव भक्तिप्रपत्तिभ्यां ये ये सेत्स्यन्ति राघव। कृतार्थीकुरुतां तांश्च लीला नैवं विच्छिद्यते ॥ इत्यादि उदारता धारण करि सम्मुखमात्र नाम लेत परिपूर्ण सुख दै अन्त में मुक्ति दीन्हे कैसौ पापी पतित अधम सम्मुख आवै ताहूको पावन करि दिये इति याचकमात्र को परिपूर्ण दान देनेवाला ऐसो उदार सेवाय रघुनाथजी के और दूसरा जग माहिं को है काहेते जो दीनजन पर द्रवै निर्हेतु प्रसन्न ह्वै सर्वस देवै ऐसा उदार रामसरिस रघुनाथजीकी समान नर नाग इन्द्रादि सब देवता, ब्रह्मा, शिव, वैकुण्ठनाथ, मच्छ, कच्छ, बाराह, नृसिंह, बामन, परशुराम, कृष्ण, बलदेव, बौद्ध, कल्कि इत्यादि सब अवतार उदारता में रघुनाथजीकी समान जग में दूसरा कोऊ नहीं है ताते एक श्रीरघुनाथैजी अद्वैत उदार हैं १ अब उदारता की प्रसिद्ध प्रमाण देखावत यथा यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यष्टाङ्गयोग पुनः विराग, विवेक, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुता इति ज्ञान के साधन इत्यादि यत्न करि ज्ञानी आत्मदर्शी मुनि जो गति मुक्ति नहीं पावते हैं अर्थात् कामादि बाधा ते मुक्ति होना दुर्घट है सोई गति सारूप्य मुक्ति रघुनाथजी अधम पक्षी गीध नीच भीलिनि शबरी तिनको दीन्हीं सोऊ प्रभु कछु अधिक करिकै नहीं जीवते जानी भाव हम कछु दीन नहीं यह उदारता है परलोक सुख देने की २ पुनः लोक में जो सम्पति लंका की ऐश्वर्य सो रावण अपने दशौ शीश अर्पि काटि काटि शिवजी को चढ़ाइकै लीन्हीं शिवके दीन्हे पाई सोई संपदा लङ्का की समग्र ऐश्वर्य रावण को मारिकै रघुनाथजी सकुच सहित विभीषण को दीन्ही भाव विभीषण तौ रावण को भाई है तौ लङ्का की ऐश्वर्य तौ याको हक्कै है हम तौ याको कछु देवै नहीं भये

पुनः शरणागती को फल कल्प भरि ऐश्वर्यसहित जीवन अन्त में मुक्ति दीन्हे ३ ऐसी सुलभ उदारता प्रभु की देखाय गोसाईंजी मनको सम्बोधन दै लोक शिक्षात्मक कहत कि सुख, भोजन, वसन, पान, गन्ध, गान, भूषण, वाहन, स्त्री, पुत्र, पौत्र, धन, धाम, मान, बड़ाई, आरोग्य सुख जीवनादि लौकिक सुख पुनः सत्संग श्रवण कीर्तन प्रेम सहित हरिसेवन सुखपूर्वक मरण शुभगति इत्यादि परलोक सुख इति सब भांति सकल सुख जो चाहसि तौ हे मेरे मन ! श्रीरघुनाथजी को भजु सब वासना आश भरोसा त्यागि शुद्ध हृदय में राम सनेह दृढ़ करु तौ रघुनाथजी तेरी सब मनोकामना पूर्ण करैंगे काहेते कृपानिधान हैं अर्थात् सब जीवमात्र को पालन करते हैं तौ तेरा पालन क्यों न करैंगे ४ ॥

(१६४) एकै दानि शिरोमणि सांचो ।

जिहि याच्यो सोइ याचकतावश फिरि बहु नाचन नाचो १
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिनु पाये ।
कोशलपाल कृपालु कल्पतरु द्रवत सकृत शिरनाये २
हरिहुँ और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई ।
लै तण्डुल निधि दई सुदामहिं यद्यपि बालमिताई ३
कपि शवरी सुग्रीव विभीषण को नहिं कियो अयाची ।
अब तुलसिहि दुख देत दयानिधि दारुण आश पिशाची ४

टी० । रन्तिदेव, वैरोचन, बलि, शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र इत्यादि यावत् दानी जगत् में भये तिनमें शिरोमणि साँचे दानी एक श्रीरघुनाथजी हैं समतायोग्य दूसरा कोऊ नहीं है काहेते ज्यहि याच्यो ज्यहि जीव ने श्रीरघुनाथजी सों याचना कीन्ही सोई पुनः याचकता के वश ह्वैकै फिरि बहु नाचन नाचे वेषादि बनाय अनेक कला देखाय द्वार द्वार मांगत नहीं फिरे भाव एक बार याचे ते रघुनाथजी लोकहु परलोक को परिपूर्ण सुख संपदा दैके याचकता छुड़ाय दिये अर्थात् रघुनाथजी सों याचना करि वाकी याचकता तौ छूटि ही जाती है वह आपु ऐसा दानी होता है कि औरन की याचकता छुड़ाय देता है यथा हनुमान्जी राम कृपापात्र सब फल के दाता हैं सब लोक पूजता है १ यह साधारण कहि अब विशेषि कहत यथा असुर हिरण्यकशिपु आदि यावत् दैत्य हैं पुनः सुर इन्द्रादि यावत् देवता हैं नर सहस्रबाहु आदि यावत् मनुष्य हैं लोमशादि यावत् मुनि हैं इति असुर, सुर, नर, मुनि सब स्वारथी हैं अर्थात् पूजा बलिदान भेंटादि बिना पाये स्वाभाविक कोऊ देवादिक किसीको कछु फल नहीं देता है जब पूजादि विधिवत् पावते हैं तब यथायोग्य फल देते हैं अरु कोशल जो अयोध्याजी ताके पालन करता अर्थात् यावत् भूतल में रहे तावत् सब भांति सुख दै पुत्रवत् प्रजापाले पुनः अन्तसमय चराचर पुरवासिनको संगही परधाम को लै गये इति कोशलपाल श्रीरघुनाथजी कैसे कृपालु कृपागुण भरे मन्दिर हैं कि कल्पतरु कल्पवृक्ष की समान निर्हेतु सब फलदायक हैं ताते सकृत् शिर नाये द्रवत अर्थात् एकबार

माथ नावत ही अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि सब फल परिपूर्ण दै देते हैं २ अब और विशेषि कहत कि देवादि की कौन गनती है रघुनाथजी की ऐसी उदारता औरे भगवत् रूपै में नहीं है काहेते चतुर्भुजरूप जो हरि हैं तिनहूं अपने औरे अवतारन में वेद की वड़ाई राखे अर्थात् अपना चलावा हुआ जो पन्थ वेदधर्म है ताकी रक्षा कीन्हे अर्थात् शंखासुर वेदै हरिलिया ताके हेतु मच्छरूप धरि वाको मारि वेद लाये दुर्वासा की प्रौढ़तापर कोपकरि लक्ष्मीजी सिन्धु में लोप भई तिनके प्रकट होने हेतु सिन्धुमथत में कच्छप ह्वै पीठिपै मंदर धरे वाराह ह्वै पृथिवी लाये नृसिंह ह्वै भक्त की रक्षा कीन्हे इत्यादि सब अवतार प्रयोजनमात्र भये तुरतही लोप ह्वै गये कृष्णचन्द्र कछुकाल प्रसिद्ध रहे तिनहूं निर्हेतु दर्शनमात्र ते ऐश्वर्य मुक्ति किसीको नहीं दिये केवल सुदामा को ऐश्वर्य दिये ताहू में वेद की वड़ाई राखि अर्थात् वेदको वचन है कि जो देत है सोई पावत है ताही अनुकूल करे काहेते कृष्ण ते सुदामा ते बाल अवस्थामें मित्रता रही तब कछु न दिये जब याचनाहेतु द्वारकाको गये तब तण्डुल लैके निधि दई अर्थात् प्रथम उनके चावल चबाय पीछे ऐश्वर्य दीन्हे यामें उदारता नहीं है ऐसे तौ शिवादि देवता भी हैं अरु मुक्ति तौ आपने संगी उद्धवादिकनौ को नहीं दीन्हे दर्शनमात्र को कहै ३ पुनः रघुनाथजी कैसे उदार हैं कि परिवार प्रजादि सबको संगही लैगये तिनकी को कहै जे संगती रहे कपि सब वानर चंचलपशु पुनः शवरी भीलिनि पुनः सुग्रीव सोभी वानर विभीषण राक्षस ऐसेन को रघुनाथजी लोक परलोक सुख दैके को ऐसा है जाको अयाची नहीं करिदिये अर्थात् अहल्या, केवट, कोल, किरात, दण्डकवनादि निर्हेतु अनेकनको दुःख हरि सुखी कीन्हेउ हे दयानिधि! निर्हेतु परदुःख हरनेवाले हे श्रीरघुनाथजी! अब, लोक सुख की आशारूप पिशाची चुरैल दारुण कठिन दुःख मोको देती है सो दुःख हरौ आपु दयानिधि हौ वेप्रयोजन परदुःख हरतेहौ ताते मेरी प्रार्थना है ४॥

(१६५) जानत प्रीतिरीति रघुराई।

नाते सब हाते करिराखत राम सनेह सगाई १
नेह निबाहि देह तजि दशरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर ममता गुण गरुआई २
तियविरही सुग्रीव सखा लखि प्राणप्रिया बिसराई।
रण पर्यो बन्धु बिभीषणही को शोच हृदय अधिकाई ३
घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहे शवरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई ४
सहज स्वरूप कथा मुनि वर्णत रहत सकुचि शिरनाई।
केवट मीत कहे सुख मानत वानरबंधु बड़ाई ५
प्रेमकनौड़ो राम सों प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।

ऋणी तोर हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानिहि को सेवकाई ६
तुलसी राम सनेह शील लखि जो न भक्ति उर आई।
तौ तोहिं जन्मि जाय जननी जड़ तनु तरुणता गँवाई ७

टी०। प्रीतिको लक्षण यह है कि इन्द्रियनकी विषय मनआदि वासना एकत्र है त्यहि रसकी भोगी होइ पुनः सनेहीके सुखहेतु लाखन अभिलाप भांति भांति उठते सन्ते अवच्छिन्न प्रवाह चित्त की वृत्ति वनी रहना ताको प्रीति कही यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ अत्यन्तभोग्यतांबुद्धिरानुकूल्यादिशालिनी । परिपूर्णस्वरूपा या सा स्यात्प्रीतिरनुत्तमा ॥ इत्यादि प्रीतिकी जो रीति है सो छा भांति यथा अपनी वस्तु हर्ष सहित देना वाकी वस्तु अशंकलेना खाना खवावना गुप्तकहना पूछना उक्तं च ॥ ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति । भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥ इत्यादि एकरस निर्वाहना इति प्रीति की रीतिको जो निर्वाहना है सो एक रघुनाथैजी जानते ह दूसरा नहीं है काहेते देहसम्बन्धी यावत् नाते हैं तिन सबको हातेकरि त्यागिकै रघुनाथजी सनेह की जो सगाई अर्थात् प्रीतिको जो नाता है ताहीको राखते हैं भाव देहसम्बन्ध त्यागि प्रीति को सम्बन्ध अधिक मानते हैं ताको प्रमाण आगे देखावत १ दशरथ महाराज पिता हैं पुनः नेह निबाहिकै देह तजे अर्थात् जीवन भरि रघुनाथजीको मुख अवलोकत रहे रघुनाथजी के बिछुरतही प्राण त्याग कीन्हे इत्यादि प्रसंग रामायणद्वारा अचल कीरति लोक में चलाई ऐसेहू पिता देहसम्बन्धी त्यहिते अधिक सनेह सम्बन्धी जो गृध्र तापर ममता अपनपौ तथा गुण वाके कर्तव्यताको सलूक गरुवाई पिताते अधिक वाको गरूकरि माने ताको भाव यह कि जिस धर्म ते ईश्वर ते विरोध आवै ताको अधर्म मानि त्यागि देना चाहिये यथा रुद्रयामले ॥ ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः । जपस्तपो दया शौचं शास्त्राणामवगाहनम् ॥ सर्वं वृथा विना येन शृणुध्वं पार्वति प्रिये ॥ इति जब अन्यधर्म ग्रहण करि अरु ईश्वरको त्यागिदिये तब भक्ति धर्म कहाँ रहा पुनः जब रामानुरागी ह्वै कैकेयी में आसक्तभये तब राम सनेह शुद्ध कहां रहा ताते प्रभु ममता हलुक माने ताते मरणकाल दया नहीं कीन्हे पुनः धर्म को अधिक मानि ईश्वर को त्यागे ताते गुण हलुक माने त्यहि कारण स्वर्गमें राखे अरु गृध्र सब धर्म कर्म त्यागि एक भक्ति धर्म अधिक मानि दृढ़ करि ग्रहण किये ताते सदा किशोरीजी की रक्षा पर दृष्टि किहेरहैं ताते गृध्र पर ममता गरू माने ताते प्रभु वाकी क्रिया तिलाञ्जलि पिण्डदान अपने हाथनै किये पुनः सब सनेह त्यागि गृध्रने शुद्धरामसनेह दृढ़ राखा ताते किशोरीजी के हेतु प्राण त्यागि दिये ताते वाके गुण प्रभु गरू करि माने इस कारण गृध्रको सबके देखत दिव्यदेह बनाइ विमान पर बैठाइ अपने धाम को पठाय दिये २ किशोरीजी के वियोग के महादुःख रहे ताही समय प्रीति करि जब सुग्रीव को सखाकरि माने तिनहूं की स्त्री बालि हरेरहे ताते तियके वियोगते विरही सुग्रीव को लखि देखिकै प्राणसमप्रिया श्रीजानकीजी को बिसराय दिये भाव अपने दुःखते मित्र को दुःख अधिक मानि बालिको मारि राज्यसहित स्त्री को संयोग कराय चारिमास प्रव-

पंपापर चले गऐ जब अघायके भोग कराय लिये तब आपनी प्रिया ढुँढ़ायबेको उद्यम कराये यह मित्र को अधिक सुख देना प्रीति की रीति है पुनः शक्ति लागेते बन्धु लक्ष्मण रणमें घायलपरे तिनको मरण आगम विचारि और किसी बातको शोच न कीन्हे एक विभीषणही को शोच हृदय में अधिक भयो भाव बन्धु के संग मेरे प्राण मेरे संग किशोरीजी के प्राण जायँगे वानर भालु अपने घरनको जायँगे तब विभीषण किसके घर को जायँगे यह मित्र को दुःख न सहिसकना प्रीतिकी रीति है ३ घर अपने मन्दिर में जहां पर ऋद्धि सिद्धि सब दासी हैं तहां औरे की कौन गनती कौशल्या आदि माता जब भोजन कराये पुनः गुरु गृह वशिष्ठजी के मंदिर में जहां कामधेनु कल्पवृक्ष सब सिद्धि जाके हाथ में आत्मदर्शी पराभक्ति के अधिकारी ऐसे वशिष्ठजी जब भोजन कराये पुनः प्रियसदन किशोरीजी के मन्दिर में जिनकी ऋद्धि सिद्धि उपजाई हैं पुनः उत्तम पतिव्रता तिहू जब भोजन कराये पुनः ससुरारिमें जहां पहुनाई की हद्द है विदेह योगिराज सब सिद्धी जिन के इच्छा में हैं तहाँ जब भोजन किये इत्यादि जब जहां प्रभु की पहुनाई भई तब काहू के भोजन पदार्थ की प्रशंसा न कीन्हे जहां गये तहां यही कहे कि शबरी के फलन की माधुरी अपूर्व स्वाद पुनः जिह्वाकी रुचि जैसी पावा तैसी अन्यत्र किसी पदार्थ में नहीं पावा भाव औरनमें अपनी श्रेष्ठताको मान रहा सो सनेह में दागु है अरु शबरी नीचि अमान ताते वाको प्रेम सर्वोपरि शुद्धरहा ४ सहजस्वरूप सच्चिदानन्द परात्पर परब्रह्म साकेतविहारी सनातन स्वरूप ताकी कथा यथा॥ सोरठा॥ रामस्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धिपर। अविगति अगम अपार, नेति नेति नित निगम कह॥ इत्यादि कथा मुनि वर्णन करत ताको सुनि सकुचिकै प्रभु शिर नवाइलेत भाव हम तौ अपना ऐश्वर्य छपाये मनुष्यन में मिले सबको आनन्द देरहेहैं सो मुनि क्यों प्रकट करते हैं यह विचारि शिर नावत जामें ऐश्वर्य न प्रकट करैं पुनः जो कोऊ कहत कि रघुनाथजी नीच केवट ताको मित्रकरि हृदय में लगाये यह सुनि सुख मानत पुनः जो कोऊ वानरके बन्धु कहत अर्थात् सुग्रीवादि वानरन को सखा कीन्हे यह सुनि बड़ाई मानत पुनि शबरी केवट वानरन के प्रसंग में अपनाते अधिक सेवकको बड़ाई देना प्रीति की रीति है केवट कपिनते मित्रता माधुर्य को भूषण है ताते प्रसन्न होत ५ प्रेम कनौड़े राम सो प्रभु प्रेमीजनन को दबाव माननेवाला स्वामी त्रिभुवन में विचारि देखौ हे भाई! तीनिहू लोकन में भूत-भविष्य-वर्त्तमानादि तीनिहू काल में समता योग्य कोऊ नहीं है काहेते कपीश जो हनुमान्‌जी सो प्रभु आपही कह्यो कि मैं तेरो ऋणी हौं ऐसी सेवक की सेवकाई को और स्वामी मानि है ऐसे प्रेम को कनौड़े स्वामी को है केवल रघुनाथैजी हैं ६ गोसाईंजी कहत कि रामसनेह रघुनाथजी में प्रीति पालकता पुनः शील स्वभाव अर्थात् नीचउ को बड़ाई देना इत्यादि लखि देखिकै जो भक्ति न आई तौ हे जीव! जड़ जाइ नाम वृथाही जन्मि नरतनु धरिकै जननी जो माता ताके तनकी तरुणता युवा अवस्था गँवाई नाशकरिदीन्ही भाव वृथाही जन्म धरे ७॥

(१६६) रघुवर रावरि यहै बड़ाई।

निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई १

थके देव साधन अनेक करि सपनेहु नहिं दई दिखाई।

केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकुल सँग भाई २

मिलि मुनिवृन्द फिरत दण्डकवन सो चरचौ न चलाई।

बारहि बार गीध शवरी की वर्णत प्रीति सुहाई ३

श्वान कहे ते किये पुर बाहर यती गयन्द चढ़ाई।

सियनिन्दक मतिमन्द प्रजा रज निज नय नगर बसाई ४.

यह दरबार दीन को आदर रीति सदा चलिआई।

दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई ५

टी०। हे रघुवर, रघुवंश कुल में श्रेष्ठ! रावरि आपुकी यहै बड़ाई लोक में विदित है कि गनी जो गनतीवाले धनवन्त मानी तिनको निदरि मान मद देखि उनको नहीं आदर करते हौ पुनः जे गरीब अमान हैं तिनपर सब जीवनते अधिक कृपा करि उनको आदर करते हौ अर्थात् कृपा गुणते तौ चराचर को पालन करते हौ तिनते अधिक गरीबनको पालतेहौ १ गनी सब देवता इन्द्र वरुण कुबेरादि ते तपस्यादि अनेक साधनकरि थकिगये तिनको प्रसिद्ध दर्शन को कहै सपनेमें भी नहीं देखाय दीन्हेउ अर्थात् उनमें रूपमद धनमद राजमद पुनः जाति ऊंचे पद को मान देखि इन्द्रादिकनको अनादर करि उनके निकट नहीं गयो पुनः केवट नीच जाति ताते गरीब अमान रहा पुनः कुटिल भालु कपि टेढ़े स्वभाव के रीछ वानर चञ्चलपशु कहावते हैं ताते गरीब अमान रहे पुनः कौनप राक्षस अधम कहावतेहैं ताते विभीषण गरीब अमानरहा इत्यादि को कुलसहित भाई की समान मानि उनको संग कियो साथही राख्यो अन्तमें संगही परधाम को लैगयो इति गरीब पर अधिक कृपा संग राखे लोक में रहे यह आदर है २ पुनः गनी सब मुनिवृन्द तिनके संग मिलिकै अनेक विलास करत सन्ते दण्डकवन में फिरत रह्यो सबके आश्रमन में गयो अनेक वार्त्ता भई तिनकी प्रशंसा को कहै सो मुनि समागम की कबहूं चर्चा तक नहीं चलायो अर्थात् उनमें धर्म, कर्म, योग, तप, ज्ञानादि क्रिया को मद रहा पुनः आपनी श्रेष्ठताको मान रहा ताते मुनिनको अनादर करि उनकी प्रीति आदर सन्मानादि को कबहूं नामतक नहीं लिहेउ पुनः गीध अधमपक्षी कहावता है तासो गरीब अमानरहा पुनः शवरी भीलिनि सोऊ नीच अधम कहावत ताते गरीब अमानरही ताते उनपर अधिक कृपाकरि तुरतही मुक्ति दीन्हेउ पुनः आदर ऐसा कि शवरी गीध की सुहाई सुन्दर प्रीति ताको प्रभु बारहुबार वर्णन करते रहेउ ३ पुनः गनी ब्राह्मण लोग जाति विद्यादि को मान मद तिनको अनादर कीन्हेउ पुनः कुत्ता महानीच ताते अमान है प्रभुते दादि किया अर्थात् ब्राह्मण ने कुत्ता को अकारण लाठी मारा ताकी गरीबता देखि प्रभु आदर किहेउ

काहेते श्वान कुत्ता के कहेते ब्राह्मण को यती बनाये गयन्द हाथी पर चढ़ाय अवधपुर ते बाहर कियो अन्य देश में शिव मन्दिर को अधिकारी कीन्हो पुनः जानकीजी को निन्दा करनेवाला ऐसा मतिमन्द निर्बुद्धि प्रजारज कहे रजक धोबी यद्यपि औरन के मतते दण्ड योग्य रहा तिनके वचनन को निरादरकरि वाको वे गुनाह विचारि नय कहे नित नवा नगर जो साकेत तामें बसाये भाव दीन अमान देखि आदर किये ४ हे रघुनाथजी ! यही आपके दरबार में अमान दीन जननको आदर होता है यह गरीबनिवाजी रीति सदा सनातनते चलिआई कछु नई बात नहीं है हे दीनदयालु, निर्हेतु दीननपर दया करनेवाले ! अब मैं दीनजन तुलसी-दास बहुत कालते द्वारपर पुकारता हौं ताकी खबरि नहीं लिहेउ तामें आपुको दोष नहीं है मेरी सुरति आपुते काहुने कराई नहीं कोऊ सुधि नहीं देवाई ५ ॥

(१६७) ऐसे राम दीनहितकारी ।

अतिकोमल करुणानिधान बिनु कारण पर उपकारी १
साधनहीन दीन निजअघवश शिला भई मुनिनारी ।
गृह ते गवनि परसि पद पावन घोरशाप ते तारी २
हिंसारत निषाद तामस वपु पशुसमान वनचारी ।
भेंट्यो हृदय लगाय प्रेमवश नहिं कुल जाति विचारी ३
यद्यपि द्रोह कियो सुरपतिसुत कहि न जाय अतिभारी ।
सकल लोक अवलोकि शोक हत शरण गये भय टारी ४
विहँगयोनि आमिष अहारपर गीध कौन व्रतधारी ।
जनकसमान क्रिया ताकी निज कर सब भांति सँवारी ५
अधमजाति शबरी योषित शठ लोक वेद ते न्यारी ।
जानि प्रीति दै दरश कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ६
कपि सुग्रीव बंधुभय व्याकुल आयो शरण पुकारी ।
सहि न सके दारुण दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी ७
रिपु को बंधु विभीषण निशिचर कौन भजन अधिकारी ।
शरण गये आगे है लीन्हो भेंट्यो भुजा पसारी ८
अशुभ होइ जिनके सुमिरे ते वानर ऋच्छ विकारी ।
वेदविदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ९
कहँ लगि कहौं दीन अगणित जिनकी तुम विपति निवारी ।
कलिमलग्रसित दासतुलसी पर काहे कृपा बिसारी १०

टी० । कैसे प्रभु दीनदयालु हैं अति कोमल स्वभाव है अर्थात् शरणागत को दुःख देखि तुरतही दया करि दुःख हरते हैं पुनः करुणा अर्थात् सेवक के दुःख ते

आप दुःखित ह्वै शीघ्रही दुःख हरि सुखी करना यह जो करुणागुण ताके भरे निधान मन्दिर हैं पुनः बिन कारण वे प्रयोजन पर उपकारी परार भला करते हैं ऐसे रघुनाथजी दीनजनन के हितकर्ता हैं १ प्रथम बिन कारण पर उपकारता देखावते हैं कि जो कर्म योग ज्ञान भक्ति इत्यादि साधन करनेवाला ईश्वर को सम्बन्धी कहावता है इत्यादि साधनहीन पुनः दीन पौरुषहीन काहेते निज अघ आपने पापवश अर्थात् पर पुरुष रति करिकै गौतममुनि की नारी अहल्या पति-शापते पाषाण शिला भई रहैं ताके उद्धार करिबे में प्रभु को क्या प्रयोजन रहै ताहेतु गृह ते गवनि पावनपद परसि घोर शापते तारी अर्थात् घरते चलिकै आप गये पवित्र पांयन की रज लगाय भयंकर शाप ते उद्धार करि दिव्यदेह ते पति को संयोग कराये इति वे प्रयोजन पर उपकारी हैं २ पुनः निषाद नीचजाति ताहू पर तामस वपु तमोगुण भरी देह ताते हिंसारत जीव मारिबे पर प्रीति पुनः स्वभाव संग कैसा है कि पशुन के समान अज्ञान वनचारी वन में बसनेवाला अर्थात् वनमानुष ताकी भेंट में प्रभु को क्या प्रयोजन रहै ताके ग्राम निकट जाइ उतरे जब निषाद आइ दण्डवत् किया वामें प्रेम देखि ताके वश ह्वैकै प्रभु नीच जाति अपावनकुल इत्यादि तौ नहीं विचारे निषाद को उठाइ अंक भरि हृदय छाती में लगाइ भेंट्यो इति अकारण परोपकारता है ३ अब प्रभु की अति कोमलता देखावत कि यद्यपि सुरपतिसुत इन्द्र को पुत्र जयन्त ने अत्यन्त भारी द्रोह कियो जो कहि नहीं जात प्रभु को बल देखने हेतु किशोरीजी के पांयन में चोंच प्रहार किया ताको बल देखावने हेतु प्रभु सींक को बाण छांड़े ताको वेग देखि भयातुर ह्वै भाग इन्द्रलोक गया इन्द्र ने न राखा तथा शिवलोक ब्रह्मलोक इत्यादि सकल लोक अवलोकि देखि लिया कहीं बचि न सका तब शोकरत दुःख करिकै धैर्य तेज बल नष्ट ह्वै गया अर्थात् अधीर भया तब नारद के उपदेशते त्राहि त्राहि करि प्रभु के पांयनपरा इति शरण गये पर ऐसे कोमलचित्त हैं कि जयन्त की भय टारी एक नेत्रहीन करि छांड़ि दिये वध नहीं किये यह प्रभुकी कोमलता है काहेते प्रभुको अमोघ बाण छूटे पर वृथा नहीं जात ताके हेतु एक नेत्रहीन किया भागवतापराध नहीं क्षमा करते हैं तिस हेतु नेत्रहीन किया ४ अब करुणानिधानता प्रभु में देखावत यथा गीध जटायु कौन धर्म व्रतधारी रहा काहेते विहँग पक्षी योनि ताहूपर आमिष मांसआहार पर जाकी रुचि अर्थात् जो मांस आहार करता है तौ विशेषि निर्दयी हिंसक होता है ताते निश्चय अधम अपावन रहा परन्तु किशोरीजी के हेतु रावण ते युद्ध करि मरणयोग्य घायल भया ताको दुःख देखि करुणा आई अर्थात् प्रभु आपु दुःखित भये जियावने को कहे जब अङ्गीकार न किया तब दिव्य देहते विमान पर चढ़ाइ निज लोक को पठाये पुनः जनक पिता की समान तेहि गृध्र की क्रिया निज कर आपने हाथन तिलाञ्जलि पिण्डदानादि करि वाकी सब भांति सँवारी लोकहू परलोक सब भांति बनाइ दीन्ही ५ पुनः शबरी योषित सामान्य स्त्री ताहूपर अधमजाति भीलिनि ताहूपर शठ महाअज्ञान पुनः लोक वेद ते न्यारी अर्थात् लोक में जाति कुल वर्ण नहीं अरु वेद में धर्म कर्म आचरण नहीं ऐसी सब भांति दीन ताहू में प्रीति देखि सनेही जानिकै कृपा-

निधि दरश दिये वाके दिये फल जलादि सेवा अङ्गीकार कीन्हे पुनः रघुनाथजी सोऊ शबरी को उद्धारी नीच देह देखि करुणा भई ताते तुरतही मुक्ति दई ६ पुनः सुग्रीव कपि वानर अर्थात् चञ्चल पशु सोऊ बन्धु भये आपने भाई वालि के डरते विकल रहे अर्थात् जाको बैठेको ठौर कहीं नहीं मिलता रहै सोऊ शरण आइ पुकारी आपना दुःख प्रसिद्ध कहे अर्थात् मेरी स्त्री सर्वस वालिने हरिलिया ताहूपर मेरे मारने की फिकिरि किहे है तहां एक तो धनधाम वियोग को दुःख दूसरे स्त्री-वियोग को दुःख तीसरे प्राण बचाइबे को महादुःख इत्यादि दारुण महाकठिन जनके दुःख सुनि सहि न सके ताते करुणागुणके अन्तर बरबस प्रवेश करि दया वीरता आपनी प्रकाश किया काहेते करुणा गुण को लक्षण यथा भगवद्गुण-दर्पणे ॥ आश्रितार्त्यग्निना हेम्नो रक्षितुर्हृदयद्रवः । अत्यन्तमृदुचित्तत्वमश्रुपातादि-कृद्रवत् ॥ कथं कुर्यां कदा कुर्यामाश्रितार्तिनिवारणम् । इतीच्छादुःखदुःखित्वमार्तानां रक्षणे त्वरा ॥ परदुःखानुसन्धानाद्विह्वलीभवनं विभोः । कारुण्यात्मगुणस्त्वेष आर्तानां भीतिवारकः ॥ अर्थात् आपने अनुरागिन के दुःखरूप अग्निते हेमसरीखे टघिलि उठनो आंशु निकरनो कोमल मन विह्वल है विचारनो कि कहां जाउँ क्या उपाय करौं जामें सेवक सुखी होइ इति सेवक के दुःखते स्वामी विकल है उपाय विचारि तब दुःख हरिबेको उपाय यथा चौपाई ॥ सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना । भरि आयो जल राजिवनयना ॥ यामें शुद्ध करुणा गुण है अरु सुग्रीव सेवक को दारुण दुःख सुनि करुणावश ते जैसा दुःख भया सो प्रभु ते सहि न गया तहां करुणारस में सहायक है वीररस ताते दया वीररस प्रभु में आइगया यथा चौपाई ॥ सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरकि उठे द्वउ भुजा विशाला ॥ इहां सेवक को दुःख विभाव भुज फरकन अनुभाव मैं वालि को एकै बाण ते मरिहौं इति आमर्ष संचारी उत्साह स्थायी इति दयावीर ताते साम, दाम, भेद, दण्डादि नीति की सुधि भूलि गई ताते विना विचारही वालि को हत्यो वृक्ष ओटते तुरतही वालिको मारे तामें पीछे गारी सहे अर्थात् धर्मधुरीण सत्यव्रत धारी रघुवीर कहाइ वृक्ष की ओटते व्याधा की नाईं मारेउ इति वालि के वचन गारीगर्भित हैं सो प्रभुको सहिलेना परा उत्तर न बना वचन में क्या गारी है यथा वीर कहाइ विना सन्मुख भये मारना वीरता में दूषण कादरन को काम किहेउ इति गारी पुनः छपिकै मारना सत्यव्रत में दूषण है भाव छलिन को काम किहेउ इत्यादि गारी सहिकै वालि को मारि सुग्रीव की रक्षा कीन्हे ७ रिपु को बन्धु शत्रु रावण ताको भाई ताते स्वाभाविकही विमुख पुनः निशाचर तामसी तनु तौ समता शान्ति को विरोधी ऐसा विभीषण कौन भजन को अधिकारी रहै सब आचरण ते प्रतिकूल सोऊ रावण के त्यागेते जब प्रभुकी शरण गयो ताको दुःखित देखि प्रभु के करुणा भई ताते उठि जाइ आगे है लीन्हेउ दण्डवत् करते देखि उठाइकै भुजा पसारि उर में लगाइकै भेंटे पुनः कुशल पूछि तुरतही लङ्का राज्य को तिलक कीन्हे रावण को मारि कल्प भरि राज करने को कहे अन्त में निजधाम को बोलाये ऐसे करुणानिधान विन कारण परोपकारी हैं ८ पुनः वानर रीछ चंचल पशु विकारी विकार कर्म करनेवाले जिनके सुमिरे ते अशुभ होत

अर्थात् ऐसे कुमार्गी हैं कि जिनको नाम लेत संते मंगलकार्य में अमंगल होत भाव जिनको नाम लेने लायक नहीं अरु दर्शन संगति कैसी ऐसे पांवर पशु वानर ऋच्छादि रहे ते सब आपुने पावन किये अर्थात् जिनको नाम लेत मंगल होत अरु जिनको यश श्रवण कीर्तन करनेते जीवन की मुक्ति होत इति पावनता वेद में विदित अर्थात् वेद पुराण गावते हैं हे नाथ, श्रीरघुनाथजी ! ऐसी माहिमा बड़ाई आपुकी है कि ऐसे ऐसे अधमन पर कृपा करि कृतार्थ कीन्हेउ ६ पुनः हे श्री-रघुनाथजी ! अजामिल, यमन, गणिका, व्याध, गजराजादि जिन जिनकी तुम विपति निवारी कृपा करि सब संकट मिटाइ लोकहु परलोकते अभय कीन्हेउ ऐसे तौ दीनजन अगणित हैं गनिवे योग्य नहीं तिन असंख्यन को कहांतक कहौं तिन सब पर तौ कृपा करि विपति हर्यो अरु अब कालिमल ग्रसित अर्थात् कलियुग प्रेरित मल जो समूह पाप सो सर्प सम मोको खाइ जाने चाहते हैं ऐसा दुःखित द्वारपर पुकारता हौं मैं जो तुलसीदास तापर काहेते कृपा विसारी भाव कृपाकरि मेरी विपति क्यों नहीं हरि लेते हौ मेरी भी रक्षा करौ १० ॥

(१६८) रघुपति भक्ति करत कठिनाई ।

कहत सुगम करनी अपार जाने सोइ जेहि बनिआई १
जो जेहि कला कुशल ता कहँ सोइ सुलभ सदासुखकारी ।
शफरी सम्मुख जलप्रवाह सुरसरी बहै गज भारी २
ज्यों शर्करा मिलै सिकता महँ बल ते न कोउ बिलगावै ।
अतिरसज्ञ सूक्ष्म पिपीलिका विनु प्रयासही पावै ३
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि योगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिशय द्वैत वियोगी ४
शोक मोह भय हर्ष दिवस निशि देश काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दशाहीन संशय निर्मूल न जाहीं ५

टी० । हे प्रभु ! जो कहौ कि तुम विना कमाई को खाना मांगते हौ कि निर्हेतु कृपा करौं अरु जासों स्वाभाविक कृपा होवै सो श्रवण कीर्तनादि भक्ति के साधन क्यों नहीं करते हौ तापर कहत हे रघुपति ! आपुकी भक्ति करत में बड़ी कठिनाई है जो कहौ कि योग, जप, तप, यज्ञ, व्रतादि कठिन साधन तौ हैं नहीं तौ कवन कठिनाई है यथा चौ० ॥ सरल स्वभाव न मन कुटिलाई । यथालाभ संतोष सदाई ॥ वैर न विग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥ अनारम्भ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी ॥ प्रीति सदा सज्जनसंसर्गा । तृणसम विषय स्वर्ग अपवर्गा ॥ दो० ॥ मम गुणग्रामनामरत, गतममता मदमोह ॥ इत्यादि कहत में तौ सुगम वेपरिश्रम देखात परन्तु करणी भक्ति की कर्तव्यता समुद्रवत् अपार हैं अर्थात् करणी करनेवालेनको पार जाना दुर्घट है तौ फिरि भक्ति होती कैसेहै तापर कहत कि हे प्रभु ! आपुकी कृपाते ज्यहि जीवते बनि आई भक्तिकी

करणी करत बनै लगी सोई भक्तिपथ निर्वाह की रीति जानै अरु सबको सुलभ नहीं है १ काहेते सबको सुलभ नहीं है कि जो ज्यहि कला में कुशल है अर्थात् जो कर्तव्यता ज्यहिते करत बनती है सोई कला ता जीव कहँ सुलभ है सुखपूर्वक लाभ होती है पुनः सुखकारी है उस कला की कर्तव्यता करते में वाको किसी प्रकार ते दुःख नहीं होत कौन भांति यथा सफरी चेल्हिया आदि छोटी मछरी सो जलतरण कलामें कुशल है सो गङ्गाजीके जल प्रवाह भदई वेगवन्त धारा में सन्मुखे चलीजात पुनः गज हाथी भारी देह को अरु वली होत परन्तु जलतरण कला में कुशल नहीं है सो सुरसरी गङ्गाजीकी प्रवाह धार में परै तौ वहिजाइ वल करिके पार नहीं जाइसक्केहैं भाव रामप्रेम प्रवाह में जिनके मन मीन हैं तिनहिनको भक्ति की करणी सुलभ सुखकारी है अरु कर्म योग विरागादि साधन करनेवालेन को भक्ति की करणी अपार है साधन वल ते नहीं पार पाइसक्के हैं २ पुनः ज्यों शर्करा मिलै सिकतामहँ अर्थात् शक्कर चीनी जो वारू में मिलिजाइ तौ जो कोऊ वलकरि अनेक उपायनते विलगावा चहै तौ किसी भांति अलग नहीं ह्वैसक्ती है अरु सूक्ष्म छोटे तनवाली पिपीलिका जो चिउँटी सो अतिरसज्ञ रस की ज्ञाता जाननेवाली अर्थात् मीठे रस की अत्यन्त भोक्ता है ताते विन प्रयासही पावै अर्थात् विना परिश्रम शक्कर को बीनि बीनि खाइलेती है अरु वारू को परी रहै देती है तथा साधन वलकरि रामभक्ति लोक में दुर्घट है अरु जे विरागादि वल करि हीन छोटेऊ जीव हैं अरु रामानुरागी रसिक हैं ते लोकव्यवहारही में वने विषय ते निरस अरु श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दनादि भक्तिरस के भोक्ता वने रहत यथा कुण्डलिका ॥ भगवत श्यामाश्याम को, पावकरूप विहार। नहिं समर्थ खगराजकी, करत चकोर अहार॥ करत चकोर अहार, किलकिला जलचर लावै। स्याहसीख मृगराज, वदनते आमिप पावै॥ ऐसे रसिक अनन्य, और सब जानहु खगवत। तजौ पराई सैन्य, भजहु वितमाफिक भगवत ३ अब भक्तिरस भोग को सुख अरु रीति कहत यथा सकल दृश्य अर्थात् माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्र, तन, धन, धाम, राज्य, ऐश्वर्य, परिवार, मित्रसम्बन्धी इत्यादि सकल लौकिक पदार्थ जो नेत्रन को सांची देखि परती है सो निज हृदय मेलि अर्थात् सबकी ममता खैंचि अपने उर में अन्तःकरण थिर करै पुनः योगी ह्वै निद्रा तजि सोवै अर्थात् यथा योगीजन योग क्रिया करि इन्द्रिय बटोरि मन थिर करि समाधि लगावते हैं तैसेही हरिसनेह क्रिया करि इन्द्रिय मनादि थिर करि पुनः मोह निद्रा त्यागि अर्थात् जो मोहवश आत्मरूप भूलि स्वप्नवत् संसार सुख को सांचा मानि लिया सो मोहनिद्रा त्यागि आत्मरूप में चैतन्य है संसार स्वप्नवत् वृथा जानै इत्यादि जो द्वैतरूप देहाभिमान त्यहिते अतिशय परम वियोगी होइ देहाभिमान सर्वथा त्याग करै इति द्वैत वियोगी योगी जीव मोहनिद्रा तजि पुनः रामानुरागरूप निद्रा में सोवै शुद्ध आत्मरूप की प्रत्यय प्रवाह रामरूप में लय बनी रहै जाकी सोई हरिपदप्राप्ति को परमसुख अनुभवै तदाकार रहै इहां जीवको योगी कहे योगयुक्ति जाननेवाला अर्थात् यावत् देहाभिमान है तावत् लोकसम्बन्ध ते ममता खैंचि पुनः श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन,

दास्यतादि सप्ताङ्ग भक्ति योग करि देहाभिमान जीते पुनः जब जीवबुद्धि आवै तब प्रेम ते सख्यता सहित अष्टांगभक्ति योग करि मोहनिद्रा तजि द्वैतरूप ते वियोगी होइ जीवत्व त्यागि आत्मरूप को सँभारै तब आत्मसमर्पण करि अनुरागनिद्रा में सोवै अर्थात् आत्मरूप को अवल अनुराग रामरूप में तदाकार रहै तब रामरूप प्राप्ति को परम सुख पावै परिपूर्ण पराभक्ति प्राप्त होई इत्यादि रामभक्तिकी करणी करिवे में जीव को कठिनाई यथा महारामायणे॥ ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहोरतब्रह्मज्ञानात्। ते देवि धन्यमनुजा हृदि वाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादे॥ इत्यादि साधनवल ते भक्तिकरणी कठिन है अरु जिनपर प्रभुकी कृपा भई तिनहीं को भक्ति करणी करिवो सुलभ सुखकारी है ताते मैं बार बार कृपा करावा चाहत हौं ४ परा भक्तिकी दशा कैसी है कि जाके प्राप्त भये पर पुनः संसारी बाधा एकहू नहीं व्यापती हैं कौन बाधा यथा शोक अर्थात् हानि रुज वियोगादि दुःख पुनः मोह संसार सचाई की भ्रम पुनः भय अर्थात् सर्प व्याघ्र शत्रु यमयातनादि दुःख पुनः हर्ष राजधन पुत्रादि लाभ ते खुशी दिवसप्रकाश में व्यापार राति अन्धकार में शयन देश कहां पर हौं काल कौन समय अब है इत्यादि तहां नहीं है यथा सवैया॥ साधन शून्य लिये शरणागत नैन रँगे अनुराग नसा है। भूतल व्योम जलानिल पावक भीतर बाहर रूप बसा है॥ चित्त बना हम बुद्धिमयी मधु ज्यों मखिया मन जाइ फसा है। वैजनाथ सदा रस एकहि या विधि सों संतृप्त दसा है॥ यथा महारामायणे॥ श्रीरामनामरसनाग्रपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽथ हृष्टलोमाः। सीतायुतं रघुपतिं च किशोरमूर्तिं पश्यन्त्यहर्निशि मुदा परमेण रम्यम्॥ भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु। पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं रामस्य ते भुवि तले समुपासकाश्च॥ शान्ताः समानमनसा च सुशीलयुक्तास्तोषक्षमागुणदयाऋजुबुद्धियुक्ताः। विज्ञानज्ञानविरतिः परमार्थवेत्ता निर्धामकोभयमनाः स च रामभक्तः॥ चौपाई॥ सावधान मद मान विहीना। धीर भक्ति गति परम प्रवीना॥ दोहा॥ गुणागार संसार दुख, रहित विगत संदेह। तजि मम चरणसरोज प्रिय, तिनकहँ देह न गेह॥ इत्यादि गोसाईंजी कहत कि यहि भक्तिकी दशा करिकै हीन जे और किसी साधन में हैं तिनकी संशय निर्मूल नहीं जाती है संसार सत्यता की वासना नहीं मिटती है ५॥

(१६६) जोपै रामचरण रति होती।

तौ कत त्रिविध शूल निशि वासर सहते विपति निसोती १

जो संतोषसुधा निशि वासर सपनेहु कबहुँक पावै।

तौ कत विषय बिलोकि झूठ जल मन कुरंग ज्यों धावै २

जो श्रीपति महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाये।

तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाये ३

जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेरे।

प्रभु विश्वास आस जीती जिन ते सेवक हरि केरे ४
नहिं एकौ आचरण भजन को विनय करत हौं ताते।
कीजै कृपा दासतुलसी पर नाथ नाम के नाते ५

टी०। श्रीरामपद प्रीति भक्ति की मूल है सो तौ मेरे हृदय में है नहीं इसीते बारबार कृपा भीख मांगता हौं काहेते जोपै रामचरणरति होती हे श्रीरघुनाथजी! जो निश्चय करिकै आपुके पदकमलों की प्रीति मेरे उर में होती तौ कत त्रिविध शूल अर्थात् रामपद प्रीति तौ सब सुख की मूल है सो जो होती तौ काम करिकै वियोग पीर क्रोध करिकै जरनि लोभ करिकै धनकी चाह इति तीनि विधि की पीरा रातिउ दिन जो बनी रहती हैं जामें पलमात्र सुख को लेश नहीं ऐसी निसोती शुद्ध विपति कत काहे को सहते १ पुनः जो संतोषरूप सुधानिधि अमृत भरा समुद्र ताको निशिवासर राति दिन में कवहूं किसी समय सपनेहू में पावै संतोष आवै तौ ज्यों रविकिरण में दर्शित झूंठे जल को देखि मृगा धावता है त्यों हीं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि विषय विलोकि इन्द्रिय द्वारा देखिकै यथा नेत्रन सों सुन्दरि स्त्री देखि कानन द्वारा कामिनी वार्ता रागादि देखि त्वचा द्वारा कोमल वसनादि देखि जिह्वा द्वारा षट्रस देखि नासिका द्वारा सुगन्ध देखि इत्यादि झूंठा विषयसुख ताके हेतु सदा मन धावा करता है सो जो संतोष होता तौ काहे को धावता ताते संतोषौ नाहीं है २ जो श्रीपति की महिमा विचारि उर में प्रीतिभाव बढ़ाये भजते अर्थात् शोभा सुख ऐश्वर्यादि लक्ष्मीजी को रूप है तिनके पति भाव शोभा सुख ऐश्वर्यादि जिनकी कृपाकटाक्षमात्र होती है ऐसे स्वामी श्रीरघुनाथजी हैं इति महिमा बड़ाई विचारि प्रतिदिन अन्तर में प्रीति बढ़ावत सन्ते प्रभुको भजन भावना ध्यान कीन करते तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों अर्थात् यथा कुत्ता कौरा हेतु अनादर सहि घर घर फिरता है त्योंहीं पेट खलाये सदा भूखा आशावश द्वार द्वार मांगत फिरता हौं सो कत काहेको फिरता जो प्रीति ते भजन करता होत्यों ताते उर में प्रीतिपूर्वक भजन भी प्रभु को नहीं है ३ जे लोलुप धनादि के लोभी आशा के दास भये धन पाइबे की आशावश अनेक नीच कर्म करते हैं ते सबही के चेरे सब जाति की गुलामी करते हैं पुनः प्रभु विश्वास यथा चौपाई॥ मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहा विश्वासा॥ पुनः भारते॥ भोजने छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः। योऽसौ विश्वंभरो देवो स भक्तं किमुपेक्षते॥ इत्यादि श्रीरघुनाथजी को विश्वास राखे जे जन आशाको जीति लीन्हे अर्थात् ऐसी निराशा धारण किहे हैं कि काहूको आसरा नहीं राखे हैं ते हरि के सेवक रघुनाथजी के सांचे दास हैं ४ संतोष विषय त्याग निराशा विश्वास रामसनेह सुमिरण ध्यानादि भगवद्भजन के आचरण एकौ नहीं हैं जाको भरोसा राखौं ताते बारबार विनय करता हौं नाथ नाम के नाते हे श्रीरघुनाथजी! आपुको आपने नामकी बड़ी लाज है सोई रामनाम की आधार मैं गहे हौं इति हे नाथ, रघुनाथजी! नामके नाते तुलसीदास पर कृपा कीजिये अर्थात् कलिप्रेरित पापकर्मन की सहायता ते कामादि घेरे मोको नाश कीन

चाहत सो कृपा करि मेरी भी रक्षा कीजिये आपु कृपासिन्धु हौ जीवमात्र को पालन करते हौ ५ ॥

(१७०) जो मोहिं राम लागते मीठे।

तौ नवरस षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे १
बंचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे सुने अरु दीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाय उबीठे २
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल वचन कहत अतिढीठे।
नामकि लाज राम करुणा करि केहि न दिये करि चीठे ३

टी०। रघुनाथजी मोको करू लागते हैं ताते इन्द्रियन को विषय स्वादु मीठी लागती है अरु जो रघुनाथजी मोको मीठे लागते तौ नव रस षट्रस इत्यादि जो सरस मानि मीठे लागते हैं ते अनरस निरस मानि मीठे अर्थात् करू ह्वैजाते नवरस यथा श्रृङ्गार अर्थात् युवती अवलोकनादि मदन प्रसंग पुनः हास्य प्रतिकूल वस्तु देखि हँसी आवना पुनः करुणा प्रियवियोगते दुःखित होना पुनः बीभत्स बुरी वस्तु देखि घिन लागना पुनः भयानक करालुता देखि डरना पुनः रौद्र शत्रु देखि क्रोध होना पुनः वीर युद्ध में उत्साह होना पुनः अद्भुत आश्चर्य होना पुनः शान्त, राग, द्वेष रहित उदासीन रहना इत्यादि लोक व्यवहार ते कारण विभाव पाइ लोगन में अनुभवित ह्वै आवते हैं पुनः संचारी पाइ सरस देखात पुनः स्थायी पाइ मीठे लागत सो जब राम मीठे लागते तब नवौ रस निरस देखाते अरु करू ह्वैजाते यथा श्रृङ्गार में स्त्री देखि परना विभाव भया अरु जब अन्तर में रामसनेह सबल है तौ रोमाञ्च नेत्रासक्ति आदि अनुभाव होवै न करी तब हर्षादि संचारी नहीं तब निरस देखि परी तब वाको भोगरति स्थायी भी करू लागी इत्यादि नवौ में जानौ तथा षट्रस यथा मधुर मिठाई दूधादि, खार लवण, अम्ल अँवरादि, कटु अदरखादि, तिक्त मिरचादि,कषाय मांसादि इति भोजन में सबको मीठे लागतेहैं अर्थात् जब मन विषय के वश है तब जिह्वा षट्रसन में आसक्त रहती है अरु जब मनमें रामसनेह है तब विषयन ते विमुख भया तब सब इन्द्रिय आपनी विषय त्यागि देती हैं तब षट्रसौ निरस देखात ताते जिह्वा को करू ह्वैजाते हैं केवल भोजनमात्रते प्रयोजन है १ राम करू विषय मीठी ताको कारण चाह आचरण कहते हैं यथा बंचक नाम छली अर्थात् आत्मरूप तौ भगवत्सों छल करि कारण मायावश जीव भया, पुनः जीव विषयी भया इन्द्रियन के विषय में आसक्त भया ताकी वासनावश विविध अनेक भांति के तनु धारण करि देहाभिमानी ह्वै लौकिक सुख हेतु अनेक भांति के पापकर्म करता है इत्यादि आत्मरूप को बञ्चकता कारण अनुभवे अर्थात् सत्संगादि कारण पाइ आत्मरूप को आनन्द तदाकार ह्वै आवता है इति अनुभव ते जानि लेता हौं कि आत्मा ईश्वर ते छल करि कारणवश जीव भया पुनः जीवकी जो विषय चाह है सो पुराणनते सुनेउँ पुनः देह के जे आचरण हैं अनेक कर्म सो दीठे प्रसिद्ध देखता हौं यह सब बात

आपने हृदय ते जानत हौं तबहूं लौकिक सुख जो सुगन्धमानि वनिता, भूषण, वसन, वाहनादि ते अघायके उविठे नहीं भाव विषय चाहते कबहूं मन निरस नहीं भया प्रतिदिन चाह अधिकाती जात है ताते जानत हौं कि रघुनाथजी करू लागते हैं २ तहां भवबन्धन छूटिवे का और उपाय तौ एकौ है नहीं है प्रभु! तुलसीदास को एक आपुकी कृपे को बल है ताते अत्यन्त ढीठे वचन आपुसों कहत हौं हे रघुनाथजी! आपने नाम की लाजते करुणा करिकै चीठे भवबन्धन छूटने को परवाना क्यहिको नहीं करिदिये अर्थात् जो किसी कारणते भूलिहूकै नाम लेलिया ताको नाम की लाज भाव नाम लेचुका अब जो याको दुःख भया तौ हमारा कुनाम होइगो इति नामकी लाजते वाको आपना मानि लिहेउ ताते वाके दुःख में आपहू दुःखित भयो इति करुणा करि गणिका अजामिल यमनादि अनेकनको भव पार करि दियो येसेही नामकी लाजते मेरे ऊपर कृपा करौ ३॥

(१७१) यों मन कबहूं तुमहिं न लाग्यो।

ज्यों छल छांड़ि स्वभाव निरन्तर रहत विषय अनुराग्यो १
ज्यों चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घर के।
त्यों न साधु सुरसरि तरंग निरमल गुणगण रघुवर के २
ज्यों नासा सुगन्धरस वश रसना षटरस रति मानी।
रामप्रसाद माल जूठन लगि त्यों न ललकि ललचानी ३
चन्दन चन्द्रवदनि भूषण पट ज्यों चह पामर परस्यो।
त्यों रघुपतिपदपद्म परस को तनु पातकी न तरस्यो ४
ज्यों सब भांति कुदेव कुठाकुर सेये वपु वचन हियेहूं।
त्यों न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रणाम कियेहूं ५
चंचल चरण लाभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे।
राम सीय आश्रमनि चलत त्यों भये न श्रमित अभागे ६
सकल अंग पदविमुख नाथ मुख नाम की ओट लयी है।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु मूरति कृपामयी है ७

टी०। अब मनके विकार देह की कर्तव्यता प्रसिद्ध कहत ज्यों छल छांड़ि विना उपाय कीन्हे सहज स्वभाव ते जामें अंतर बीच नहीं परत इति निरंतर सदा एक-रस विषयमें अनुराग्यो रहत भाव शब्द रूप रसादि विषयन में ज्यों मन रँग्यो रहत यौंहीं हे रघुनाथजी! निश्छल है मन कबहूं आपुमें न लाग्यो भाव आपुकी प्रीतिको रंग मनमें न चढ़िगयो इति विमुख मनके विकार कहे १ अब देह कर्तव्यता इन्द्रियनके विकार कहत यथा ज्यों परनारि चितई अर्थात् नेत्रन का विषय है रूप सोई रूपवंत परस्त्री पाइ जिस भांति नेत्र वाको देखते हैं त्योंहीं ललक सों साधु जननको अरु सुरसरि गंगा निर्मल तरंगन को कबहूं न चितये इति नेत्रनसों विषय

विकार पुनः कानन का विषय है शब्द तावश पातक पापवार्ता परस्त्री परहानि आदि पुनः घर घर के प्रपंच विवादादि वृथा वार्ता जा भांति सुने तैसेही ललकते रघुनाथजीके गुणनके गण रामायणादि कवहूं न सुने इति कान विषयी हैं २ ज्यों नासा आपने विषय अतर पुष्प वाटिकादि पाइ सुगन्धरस के वश रहत ताहीं ललकते रघुनाथजीके प्रसाद मालादि में न लागी ताते नासिकौ विषयी है पुनः रसना जिह्वा यथा आपने विषय मधुरादि षट्रस में रति मानी प्रीति किहे है त्योंहीं रघुनाथजीकी जूठनिमें न ललकिकै ललचानी इति रसना विषयी है ३ चंदन, युवती, भूषण, वसन स्पर्शों चाहत वा चन्दन अंग में चर्चित कीन्हे चंद्रमा सम मुख है जाको पुनः टीका, वंदी, वेसरि, ताटंक, केयूर, कंकण, मालादि भूषण तथा जरी रेशमादि दिव्य वसन धारण किहे ऐसी चंद्रवदनी युवतीको ज्यों पामर परस्यो चाहत नीच तनु उरमें लगावा चाहत है त्योंहीं रघुनाथजीके पदकमलन को स्पर्श करिवेको पापी तनु कवहूं न तरस्यो अर्थात् जैसी चाह युवती को उरमें लगावनेको होती है तैसी चाह रामपदकमल लगावनेको कवहूं न भई ४ मारण, मोहन, उच्चाटन, आकर्षण, वशीकरणादि षट्प्रयोगादिकी चाहते कूष्माण्ड यक्ष वैनायक मसानी आदि कुदेवन को वपु हियेते ध्यान करि वचनते मन्त्र स्तोत्र पढ़ि षोड़शोपचारादि सव भांति ज्यों सेये तथा धन पाइवेके हेतु कुठाकुर कुमार्गी राजादि तिनको हियेते भला मनाइ वचनते प्रशंसा करि अनेक खुशामद वार्तादि सब भांति ज्यों सेये त्यों रघुनाथजीको नमन वचन कर्म करि सेये जे ऐसे सुंदर कृतज्ञ हैं जे थोरी सेवा को वहुत करि मानि लेते हैं कि सकृत् नाम एकहीं वार प्रणाम कियेहूको देखि सकुचत हैं भाव याको हम क्या देवैं ऐसे स्वामी को न सेवन कीन्हे ५ पांवनका विषय चलन है ताके वश चंचल चरण क्या करते हैं कि लोभी लोलुप मन लाभ लगि भाव जहां जहां पैसा पावत देखत तहां जग में द्वारे द्वारे वागत चलाकरत ताही भांति चित्रकूट पंचवटी मिथिला अवधादि रामसीय श्रीरघुनंदन जनकनंदिनीजीके धाम आश्रमनिको चलत संते श्रमित थकित अभागे न भये भाव रामधामनको न गये ६ सकल अंग पदविमुख अर्थात् कर्म योग ज्ञान भक्ति आदि साधन जो प्रभुपद सन्मुख होनेके उपाय हैं तिन करिकै रहित पुनः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि विषयनके वशते कामी, क्रोधी, लोभी, मानी विशेषि हौं इति सब अंगन करिकै प्रभुके पदकमलन ते विमुख हौं अरु नाथ-मुख श्रीरघुनाथजीके सन्मुख होनेका एक यही उपाय है कि नाम की ओट लई है श्रीरामनामको पाछा पकरेहौं काहेते तुलसीदास को एक प्रतीति है भाव निश्चय भवसागरते पार होउँगो कौन भांति कि प्रभु मूरति कृपामयी है रघुनाथजी में समूह कृपा परिपूर्ण है अर्थात् सव भूतकी रक्षा करते हैं तौ आपने नामकी लाजते मेरिहू रक्षा करिहैं ७॥

(१७२) कीजै मोको जग यातनामयी।

राम तुम से शुचि सुहृद साहिबहि मैं शठ पीठि दयी १
गर्भवास दशमास पालि पितु मातु रूप हित कीन्हो।

जड़हि विवेक सुशील खलहि अपराधिहि आदर दीन्हो २
कपट करौं अन्तर्यामिहुँ सों अघ व्यापकहि दुरावों।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावों ३
उदर भरौं किंकर कहाइ बेंच्यों विषयनि हाथ हियो है।
मोसे बंचक को कृपालु छल छांड़िकै छोह कियो है ४
पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
भिद्यो न कुलिशहु ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सियपीके ५
स्वामी की सेवकहितता सब कछु निज साइँ दोहाई।
मैं मतितुला तौलि देखी भइ मेरिहि दिशि गरुआई ६
एतेहु पर हित करन नाथ मेरो करिआयो अरु करिहैं।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ोइ भरिहैं ७

टी०। अपराधी मनपर क्षोभसहित प्रार्थना करत हैं रघुनाथजी! आपु कैसे हौ शुचि सुहृद् पवित्र मित्र अर्थात् बेप्रयोजन हितकार ऐसे कृपालु सुलभ उदार साहिबहि मैं शठ पीठि दई भाव मैं ऐसा अज्ञान हौं कि आपु ऐसे स्वामी सों विमुख भयों नातै मोको जग यातनामयी कीजै जगकी यातना अनेकन योनिन मैं जन्म मरणादि सांसति कीजे १ आपु कैसे स्वामी हौ कि जहां महादुःख ऐसे गर्भवास मैं दश महीना तक पालिकै जन्म दीन्हेउ पुनः पितु मातुरूप है बालसमय लालन पालन आदि सब भांतिने हित कीन्हेउ पुनः बालसमय हानि लाभादि नहीं जानत ऐसे जड़यों विवेक दीन्हेउ भाव किशोरअवस्था मैं भला बुरा जानिबेयोग्य बुद्धि दीन्हेउ पुनः खलहि सुशील अर्थात् परस्त्री परहानि कुटिलतादि असत्कर्म युवै अवस्थामैं होते हैं ऐसे खल को सुन्दर शीलस्वभाव दीन्हेउ सबसों प्रीतिपूर्वक वार्ता करिबेकी बुद्धि दीन्हेउ पुनः अपराधिहि आदर दीन्हेउ अर्थात् बाल किशोर युवादि मैं विमुख रहि जब जरा अवस्था मैं सन्मुख भया तबहूं कृपा करि आपनो बनायो २ अरु मैं कैसा हौं कि सबके अन्तरकी बात जाननेवाले ऐसे अन्तर्यामी आपु तिनहूँसों कपट करौं भाव आपको कहाय स्वारथ हेतु ध्यावता हौं पुनः घट घट व्यापक आप तिनसों अघ दुरावौं पाप छुपावता हौं भाव आपकी शरणागति को वेष बनाये अरु मन विषय मैं लगाये हौं ऐसेहू कुमति कुबुद्धि सेवकपर रघुपति मन बावों न कियो मन फेरे नहीं भाव कृपा नहीं बिसारे ३ अरु मैं कैसा कपटी पापी हौं कि किंकर कहाइ उदर भरौं अर्थात् वेषवार्ता ते आपको सेवक कहावता हौं अरु अनेक कला करि लोगन को रिझाइ धन लै खान पान करि पेट भरता हौं इति कायिक वाचक छली हौं पुनः हियो विषयन हाथ बेंच्यों अर्थात् मन श्रवणद्वारा शब्द हाथ बिका त्वचा द्वारा स्पर्श हाथ बिका नेत्रद्वारा रूप हाथ बिका रसना द्वारा षट्रस हाथ बिका नासिकाद्वारा सुगन्ध हाथ बिका भाव इन्द्रियद्वारा मन विषयन मैं सदा आसक्त हाते मनते छली

इत्यादि मोसे वंचक छली सेवक को कृपालु छल छांड़िके छोह कियो अर्थात् कृपा-गुणमन्दिर श्रीरघुनाथजी आपना सांचा सेवक जानि मोहिं ऐसे छली पर कृपा मया दया कीन्हे ४ रावरे पल पल के उपकार हे श्रीरघुनाथजी ! गर्भवास ते अब तक आपके जो उपकार हैं तिनको पुराणनते सुनिकै तथा सज्जननते वूझिकै आपने मनते नीकी भांति जानिलियो कि विना रघुनाथजीकी कृपा जीव में किसी भांति चैतन्यता नहीं है सक्ो है ताहू पर सियपीके प्रेम भिद्यो न जानकीनाथ को प्रेम अन्तरमें प्रवेश न करिगयो कबहूं क्षणौमात्र ताते मेरा चित्त कुलिश वज्रहूते अधिक कठोर है ऐसा कुसेवक मैं हौं ५ सेवकहितता अर्थात् जो कृपा करि सदा सेवक को हितै करते हैं इत्यादि स्वामी को गुण सो तौ सब लीन्हेउ अरु निज कछु अर्थात् मैं जो स्वामी ते विमुख ह्वैकै कुटिलता पापकर्म करत रहेउँ इति निज आपने अवगुणते कछु थोरा लिहेउ यह वृथा नहीं है स्वामी की दुहाई आपको सौगन्द करि सांची कहत हौं मैं मतितुला आपनी बुद्धिरूप तराजूमें तौलि देखी तौ मेरिही दिशि गरुआई भई अर्थात् मोपर जो आप सदा कृपा किहेउ सो सब मिलि हलुकी भई अरु मेरी क्षणभरेकी विमुखता गरू ठहरी भाव ईश्वर सनातनरूप एकै रस रहत अरु जीवनपर सदा कृपादृष्टि ते हित करत रहत सो कछु काम नहीं करत अरु जीव देहधारी अल्प काल जीवन सों विमुख है एकही जन्मके पापकर्मन ते भवसागर को चला जाता है इति गरुआई है अर्थात् जो जीव सन्मुख होते नहीं तौ प्रभु की कृपा क्या करै जीव तौ सदा विमुखै रहत ६ एतेहु पर नाथ हे रघुनाथ जी ! आप सदा हितै करते हौ सबको तथा मेरा भी हित करिआयो अरु आगेहू हित करिहैं अर्थात् जो निर्हेतु मेरा हित पूर्व करिआये इस न्यायते अनुमान करता हौं कि आगेभी मेरा हित करैंगे कौन प्रकार कि तुलसी प्रभुहि जानियत है कि अपनी ओरते कनौड़ोई भरिहैं अर्थात् तुलसीदास प्रभु को स्वभाव जानत है कि जो एकहू बार प्रणाम करि कहता है कि मैं शरण हौं ताको लोक परलोक सब भांतिको सुख दै सब भूतनते अभय करिदेत यह प्रभुकी प्रतिज्ञा है ॥ यथा वाल्मीकीये ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्ये-तद्व्रतं मम ॥ इत्यादि सर्वस दै तबहूं कनौड़े बने रहत भाव याको कछु दिया नहीं ऐसा मानि सदा वाके आधीन बने रहते हैं ॥ यथा भागवते ॥ अहं भक्तपरा-धीनो दारुयन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ऐसा प्रभु को स्वभाव है ताते आपनी ओरते कनौड़ोई भरिहैं अर्थात् यद्यपि मैं विमुख कुटिल कुमार्गी हौं परंतु नाम लेत संते प्रणाममात्र शरण हौं ताको देखि आपनो जानि आपने नाम की लाजते मोपर भी परिपूर्ण कृपा करि मेरेहू ओरकी कनाउड़ी आपने उरमें भरेरहिहैं ७ ॥

(१७३) कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा ते सन्तस्वभाव गहौंगो १
यथालाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो २

परुपवचन अतिदुसह श्रवण सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगतमान सम शीतल मन पर गुण नहिं दोष कहौंगो ३
परिहरि देहजनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहिअविचल हरिभक्ति लहौंगो४

टी०। अब प्रार्थनापूर्वक मनोराज करत यथा हौं मैं कबहुँक किसी समय यहि रहनि यहि रीति रहस्यते रहौंगो कौन रहनि कि कृपालु कृपागुणमन्दिर श्रीरघुनाथजी की कृपाते संतन कैसो स्वभाव गहौंगो दृढ़ करि धारण करौंगो कैसा संतस्वभाव यथा॥ महारामायणे। शान्ताः समानमनसश्च सुशीलयुक्ता-स्तोपक्षमागुणदयामृजुबुद्धियुक्ताः॥ विज्ञानज्ञानविरतिः परमार्थवेत्ता निर्धाम-कोऽभयमनः स च रामभक्तः॥ इत्यादि १ कैसी रहनि यथा लाभ सहज स्वभाव जो कछु जीविका पावों ताहीमें संतोष तुष्टि मानौं सदा अरु काहूसों कछु चाह न करौंगो भाव लोभरहित रहिहौं पुनः निरन्तर पलमात्र में अंतर न परै सदा एकरस परहितनिरत पराये भलो करिबे में प्रीति किहे यह नियम मन वचन कर्मते जन्म भरि निबहौंगो अर्थात् परहित में हित मानौंगो २ पुनः दूसरेको कहा परुष कठोर वचन जो किसी भांति सहि न जाइ यथा इष्ट गुरु मित्रादि निन्दा इत्यादि अत्यन्त दुसह सोऊ श्रवण कानौंते सुनि त्यहि पावक न दहौंगो भाव क्रोधरूप अग्निते हृदय दग्ध न होइगो भाव क्षमाशांति कबहूं होई पुनः विगतमान अर्थात् आपनी बड़ाई मानि चित्त उन्नत करना इत्यादि जो मान सो विशेषि गत नाश कै समशीतलमन अर्थात् रागद्वेषरहित समतादृष्टिते सबसों सहज सनेह राखि किसीके गुण दोष न कहौंगो अर्थात् जब काहूको गुण देखी तब अवश्यही अवगुण देखि परैगे ताते दोऊ न देखना कोमल उदासीन स्वभावते सबसों प्रिय वचन बोलना ३ देहाभिमानते इन्द्रिय विषयन में आसक्त मन ताते देहके सुख पावने की कामना बढ़ी ताको बिना पाये शोकसहित ध्यान बनारहना ताको चिन्ता कही यथा कानोंते किसी स्त्रीकी प्रशंसा सुनि देखनेकी कामना जब नेत्रनते देखा तब वासों वार्ता करने की कामना जब वार्ता भई तब वाके भोग की कामना सो यावत् मिलती नहीं तावत् दुःखसहित उसीको ध्यान बनारहत इति देह करिकै जनित उत्पन्न जो चिन्ता ताको परिहरि त्यागिकै न दुःखते दुःखी न सुखते सुखी दोऊ को एकतुल्य जानना इति तितिक्षा बुद्धि ते दुःख सुख सम मानि कबहूं सहौंगो यहि पथ पर आरूढ़ रहिकै हे प्रभु, श्रीरघुनाथजी! आपुकी कृपाते अविचल भक्ति लहौंगो अर्थात् जो कबहूं चलायमान न होइ ऐसी भक्ति कबहूं पावौंगो ४॥

(१७४) नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरोसो १
जप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करो सो।

पायहिंपै जानिबो कर्मफल भरि भरि वेद परोसो २
आगम विधि जप योग करत नर सरत न काज खरोसो।
सुख सपनेहुँ न योग सिधि साधन रोग वियोग धरोसो ३
काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरोसो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरोसो ४
बहुमत सुनि बहुपंथ पुराणनि जहां तहां झगरोसो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं रामराज डगरोसो ५
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचिमरै मरोसो।
रामनामबोहित भवसागर चाहै तरन तरो सो ६

टी०। भवसागर तरिबे हेतु केवल रामनाम की आधार सेवाइ आन साधन को भरोसा मोको नहीं आवत कि कर्म योग ज्ञानादि साधन भवपार करिसकैंगे काहेते नेक अशुभ मुहूर्त में प्रारम्भ करनेते कार्य सिद्ध नहीं होता है अरु कलियुग तौ सब अशुभन को राजा है तामें सकल साधनरूप तरु वृक्ष ते सिद्धिरहित श्रम फलनि फरोसो अर्थात् कर्म योग ज्ञानादि साधन करने ते केवल परिश्रमै लाभ है कार्य सिद्ध न होई तिनको करना वृथा है १ काहेते वृथा है कि तप पंचाग्नि जलशयनादि तीरथ प्रयागादि उपवासव्रत चान्द्रायणादि दान भोजन धनादि देना मख अश्वमेधादि यज्ञ इत्यादि जो कर्म ज्यहिको रुचै सो करै वेदने तौ भरिभरि पनवारा परोसा है अर्थात् यज्ञ व्रत तीर्थादि जाही को माहात्म्य वेद में देखौ ताही में लिखा है कि इसीके करने ते अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि सब फल लाभ होइँगे परन्तु कर्म करने को फल पायहिपै जानिबो अर्थात् फल सिद्धि पायन पर मालुम होइ भाव कलियुग में विधि तौ एकौ बनवै न करी तो कैसे फल मिलै २ पुनः आगम जो शास्त्र पातञ्जलि ताकी कही हुई विधिते नर मनुष्य मन्त्र जप सहित यम, नियम, आसन,प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि अष्टांग योग करते हैं ताहू करिकै खरोसो शुद्ध कार्य नहीं सरत पूरा नहीं परत काहेते कलि प्रेरित पापकर्मन करिकै रोग वियोग धरो ऐसो अर्थात् ज्वरातीसार, गुल्म, बाउसीरादि रोग तथा बन्धु, पुत्र, मित्रादि को वियोग, हित हानि इत्यादि दुःख आपने धरे ऐसे स्वाभाविकही मिलते हैं ताते सुख तौ सपने में भी नहीं है तौ योग साधन करि सिद्ध कैसे होइ ताते योगौ में परिश्रम वृथा है ३ पुनः विरागादि जो ज्ञान के साधन हैं सो तौ कलि प्रेरित काम क्रोध मद लोभ मोहादि मिलिकै ज्ञान विरागादि को हरिलेते हैं काहेते ज्ञान के साधन में प्रथम विराग है भाव स्वर्गपर्यन्त संसारसुख को त्याग ताको नाशकर्ता काम है ताके विकार यथा॥ मनुस्मृतौ॥ मृगयाक्षा दिवास्वप्नः परवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ अर्थात् शिकार १ जुवां २ दिन को सोवन ३ परदोष कहनो ४ स्त्रीसेवन ५ सुरापान ६ नाच ७ गान ८

याजा ६ वृथा घूमना १० इति काम के दश विकार उपजे ते विराग हरिलेते हैं पुनः ज्ञान में दूसरा साधन विवेक है भाव लोकव्यवहार को असार जानि त्याग करि सारांश भगवत्रूप को ग्रहण करै ताको नाशकर्ता लोभ है अर्थात् जव धन पाइबेके लालच द्वार द्वार फिरत तव संसार असार कैसे भया पुनः ज्ञान में तीसर साधन है पट् सम्पत्ति अर्थात् सम वासना त्याग पुनः दम इन्द्रियन की वृत्ति रोकना पुनः उपराम विषयते पीठि दिहे रहना पुनः तितीक्षा दुःख सुख सम जानना पुनः श्रद्धा गुरु वेदान्त वचन में विश्वास राखना पुनः समाधान मनादि स्थिर राखना इत्यादि को नाशकर्ता क्रोध है ताके विकार यथा ॥ मनुस्मृतौ ॥ पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् । वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोपि गणोऽष्टकः ॥ अर्थात् चुगुली, सहसा, द्रोह, परगुण न सहना, परदोष गारी कुवचन इत्यादि ते शम दमादि नाश होते हैं पुनः इस काल में संन्यास लेत संन्यास धर्म ग्रहण करत सन्ते मन बिगरत है कौन भांति यथा जल नावत आमवरोसो अर्थात् माटी कोउँकच्चा घड़ा तापर जल नावत सन्ते पघिलिके फूटिजाता है तैसे संन्यास धर्म ग्रहण करतही मन विहरत तहां संन्यासधर्म मनुस्मृति छठवें अध्याय में पैंतिस श्लोक ते छियासी तक लिखा है तामें किंचित् लिखत हौं माटी को पात्र वृक्ष तरवास कुवसन सब में समदृष्टि मरण जीवन को संशय नहीं जीवन पर रक्षा सत्य वचन निन्दास्तुति सम अक्रोध वासनारहित आत्मदृष्टि यथा ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्धार्थमसहायवान् । अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता ॥ इत्यादि बहुत हैं तिनको ग्रहण करत सन्ते मन के जो षडंश हैं यथा ॥ जिज्ञासापञ्चके ॥ कर्माकर्मविकर्मादावनियमेन वर्तते । संकल्पश्च विकल्पश्च मनसो बहुशो यथा ॥ ये सब भिन्न है आपना व्यवहार करै लागते हैं यथा संन्यास में अकर्म चाहिये तहां मन अनेक कर्म करै लागत सो अकर्म जो वर्जित है यथा राग भोगादि ताहूमें विशेषि कुकर्म यथा वेश्यागमनादि पुनः नियम त्यागि देताहै पुनः संकल्पविकल्पादि ते थिरतारहित तव संन्यासधर्म कैसे निवहि सक्ताहै ४ पुनः वेदधर्म पर चलनेवाले मुनिन के कल्पित कियेहुये बहुत मत हैं यथा जैमिनि को मीमांसामत, कणाद मुनिको वैशेषिकमत, गौतमको न्यायमत, पातंजलिको योगमत, कपिलको सांख्यमत, व्यास को वेदान्तमत, पुनः शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपती इत्यादि अनेक हैं पुनः वेदबाह्य बहुत पन्थ हैं यथा दादूपन्थ उदासी महाराजी निरञ्जनी आपा तपा एकनामी पराग्नाथी कबीरिहा सतनामी चार्वाक कपाली कौल इत्यादि अनेकन हैं पुनः अठारह जो पुराणें हैं सो उनमें जहां तहां झगराहै अर्थात् कहीं वैष्णव धर्म उत्तम कहीं शैव धर्मउत्तम कहीं शक्ति धर्मउत्तम पुनः ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, वामन, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्यादि षट् पुराणें राजसी हैं नारदीय, विष्णु, वाराह, गरुड़, पद्म, भागवतादि षट्पुराणें सात्त्विकी हैं मीन, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्न्यादि षट् पुराणें तामसीहैं तिनमें कहां कहां चित लगावै ताते सबको सारांशपद रघुनाथजी को भजन है इति गुरुने कह्यो यथा ॥ पद्मपुराणे ॥ न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा । स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः ॥ स्थानं भयस्थानमरामकीर्ति

रामेति नामामृतशून्यमास्यम्। सर्पालयं प्रेतगृहं गृहं तद्यत्रार्च्यते नैव महेन्द्रपूजा॥ सर्वेषां वेदसाराणां रहस्यान्ते प्रकाशिते। एको देवो रामचन्द्रो व्रतमन्यं न तत्समम्॥ शिवसंहितायाम्॥ रामादन्यः परो ध्येयो नास्तीति जगतां प्रभुः। तस्माद्रामस्य ये भक्तास्ते नमस्याः शुभार्थिभिः॥ इति सबको सिद्धान्त विचारि गुरुने उपदेश दिया कि श्रीरघुनाथजीके भजन करौ कौन रीति यथा॥ महारामायणे॥ अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति। श्रीरामनामरसना अपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गद्गिरोप्यथ हृष्टलोमाः॥ सीतायुतं रघुपतिं च किशोरमूर्तिं पश्यन्त्यहर्निशमुदा परमेण रम्यम्। शान्ताः समानमनसश्च सुशील युक्तास्तोषक्षमागुणदयामृजुबुद्धियुक्ताः॥ विज्ञानज्ञानविरतिः परमार्थवेत्ता निर्धाम कोऽभयमनः स च रामभक्तः॥ इस रीति से भजन करने को गुरुने उपदेश दिया सो रीतिशुद्ध निर्वाह करना तौ महामुनिन को अगम है तहां मैं कलियुगी अल्पग्य तुच्छ जीव कैसे उस मारगपर पांउ धरिसक्ता हौं ताते जो रामराज डगर है अर्थात् महाराज रघुनाथजीकी चलाई हुई राजमार्ग है सो मोहिं भावतहै अर्थात् उदारता गुणकरि जे प्रभुने प्रतिज्ञा किया कि जो एकहूवार धाम को आवै वा एकहूवार लीला देखै वा एकहू बार रूप को देखै अथवा भूलिहू कै एक बार नाम लेवै सो जीव स्वाभाविक ही भवपार ह्वै जाइ इति चारिहू में सुगम जानि रामनामका आधार मोको भलो लागत है ५ तुलसीदास कहते हैं कि बिना प्रतीति और प्रीति फिरि फिरि कै पचि मरै परन्तु भवसागर के तरिबे को रामनामही नौका है जो चाहै तरै ६॥

(१७५) जाके प्रिय न राम बैदेही।

सो छांड़िये कोटि बैरी सम यद्यपि परमसनेही १
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रजबनितनि भये जग मंगलकारी २
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहांलौं।
अंजन कहा आंखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहांलौं ३
तुलसी सो सबभांति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद येतो मतो हमारो ४

टी०। यह पद मीराजीके प्रश्न को उत्तर है यथा तुलसीचरित्रे मीराप्रसंग॥ छप्पय॥ लागे गुरु उपदेश करन कुलकानि जनाई। करौ भजन निरुपाधि सदन अपने सुख पाई॥ पुरुषजननकी भीर उचित नहिं यह कर्मा। होत लाज कुलहानि गवन जनि कर परिशर्मा॥ राजाधिराजकी वधू तुम तुमको तौ शोभित नहीं। सब जान अजान अनीतिहित सुनौ राजमन्दिर कहीं॥ इमि गुरु दियो निदेश न मानौं तौ बड़पातक। साधुनहूं सों विमुखकर्म मम प्राणन घातक॥ दोऊ विधि हैं दुखद कछू नहिं अब बनिआवै। कासों बूझौं जाइ कवन यह कष्ट मिटावै॥ इमि कठिन धर्मसंकट पर्यो तब चित में इमि आयऊ। निज सकलअवस्था लिखि तबै काशिहि

प्रकट पठायऊ ॥ तोमरछन्द ॥ सो पढ़ि गोसाईं समाचार। जिमि लिखी हुती निज गति विचार ॥ सतसंगतिविमुख भयो न जाइ। गुरुवचन तजे पातक बनाइ ॥ अब महाराज सम को सुजान। आज्ञा दीजो सोई प्रमान ॥ तब लिख्यो एक प्रभु पद बनाइ। ज्यहि समुझि ज्ञान संशय बिलाइ ॥ इत्यादि मीराजीके प्रश्न को उत्तर लिखे कि हे मीराजी! आपुने जो लिखा कि सत्संग त्यागैं कि गुरुको वचन त्यागैं तहां वेद पुराणसंमत ते यह मर्याद है कि भगवत्सनेह में जो वाधा करै ताको शत्रु जानना चाहिये वह मित्रसम्बन्धी नहीं है यथा भागवते ॥ गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्। दैवं न तत् स्यान्नृपतिर्न स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ इस प्रमाण विचारते सत्संग तौ भगवत्सनेहको बढ़ावने वाला है ताते सन्तन को तौ भगवत्सनेही जानि सदा संग करौ भूलिहूके त्यागना उचित नहीं ताही सत्संग को जो कोऊ त्याग करनेको कहत तिनको भगवद्विमुख जानना चाहिये ताते जाके रघुनन्दन जनकनन्दिनी प्रिय नहीं लोकव्यवहारही प्रिय है सो लोक वेदरीतिते सनेही अथवा यद्यपि परम सनेही होइ सो वैरीसम त्यागिये पुनः कोटिवैरीसम त्यागिये अर्थात् माता,पिता, बन्धु आदि जो भगवत्सनेहमें बाधा करैं तौ वैरीसम त्यागिये काहेते ये सब एकही जन्म के सम्बन्धी हैं पुनः लोकैसुख के साधक हैं ते जो हरिसनेह में बाधक भये तौ इनमें सनेह त्यागि वैरी जानि इनसों बिलग बसिये यह स्वाभाविक साधुन की रीति है अरु गुरु तथा पति ये परलोक सुखके साधक अनेक जन्म के सम्बन्धी हैं इस हेतु ये परमसनेही हैं ते जो हरिसनेह के बाधक भये तौ उनको करोरि वैरी सम मानि त्यागियें भाव वचन मन कमते विमुख रहिये १ अब हरिसनेह विरोधिनको त्याग को प्रमाण देखावत यथा पिता को प्रह्लाद तज्यो अर्थात् सतयुग में जब धर्म चारिहू चरण परिपूर्ण ऐसा तौ समय पुनः एक तौ राजा जाकी आज्ञा सबको मानना उचित दूसरे सबल प्रतापी जाकी आज्ञा भङ्ग करनेवाला कोऊ नहीं तीसरे पिता जाकी आज्ञापालन धर्ममूल है ताहू पर कछु अनीति नहीं सिखावै आपने कुल के धर्म अनुकूल विद्या पढ़ने को कहतारहै परंतु भगवत् सनेह में बाधा करिवे हेतु साम, दाम, दण्ड, भेदादि अनेक उपाय करि कहा कि राम राम न कहु ताते हरिविरोधी जानि प्रह्लादने पिता को वचन किसी भांति न माना अन्त में प्राणघातकी युक्ति बांधिदिया तिनको कौन दोष लगाइ सक्ता है तथा विभीषण बन्धु भाई को तज्यो सोऊ प्रतापी राजा बड़ा भाई है अरु कछु कहता भी नहीं रहै परन्तु रघुनाथजीको विरोधी जानि विभीषण बड़े भाई को त्यागि प्रभु की शरण आये तथा भरत महतारी को तज्यो अर्थात् एक तौ महाराज की प्रिय रानी दूसरे माता तीसरे पुत्रैके राज्यसुखहेतु लोक में अयश पायो सोऊ प्रभुसों विमुख जानि माता सों भरतजी जन्म भरि विमुखेरहे तिन्हैं कौन अयश भया पुनः बलि गुरुको तजे अर्थात् एकतौ मुनि दूसरे पुरोहित तीसरे राजसुखसाधक हितकार परन्तु हरिसों विमुख होनेको कहे तिनकी आज्ञा भङ्ग करि बलि महाराज बामनजीको पृथ्वी संकल्पिदिया तिन्हैं कौन अयश भया पुनः वेदधर्मते पतिको त्याग किसीभांति उचित नहीं है सोऊ ब्रजकी वनिता गोपिन

पतिन को त्यागि ईश्वर में रत भई तिनको कौन अयश भया जगमें सव मंगलकारी भये भाव जिनको मंगलिक यश श्रवण ते मुक्ति होती है ताते कैसहू सम्बन्धी हितकार होइ अरु हरिसनेह में बाधा करै तौ हर्ष सहित निस्संदेह वाको त्यागिये २ काहेते त्याग कीजिये कि सुहृद जो मित्रवर्ग अर्थात् बन्धु, पुत्र, मित्र, हितकारादि पुनः सुसेव्य सुन्दर सेवा करिवे योग्य यथा माता, पिता, जेठ बन्धु, गुरु,पति इत्यादि जहां लौं पूज्य सनेहीसम्बन्धी हैं ते जो तौ रघुनाथजीके सनेही होइँ तौ तौ उनसों नेहनाता मानिये नातरु सर्वथा त्यागिवे योग्य हैं काहेते अञ्जन तौ वह चाहिये जाके लगावनेते नेत्र निरुज होइँ दृष्टि अमल होइ अरु ज्यहि के लगावनेते निरुजताकी कौन कहै जो आँखिन फूटि जाइ तौ वह अञ्जन कहाहै वाको विष जानि फेंकि दीजिये भाव सनेही तौ वाको कहिये जाकी सहायताते जीव को कल्याण होइ अरु जाके सनेहते ईश्वरते विमुख ह्वै भवसागर को जाना परै सो सनेही नहीं है वाको शत्रु मानि त्यागि देना चाहिये इतनेही में निश्चय करौ और बहुत बनाइकै कहांतक कहौं ३ सिद्धान्त गोसाईंजी कहत कि हमारो मत तौ यतनोई है कि जाकी सहायताते श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दनमें सनेह वृद्धि होइ सोई सब भांति ते हितकार है अरु सोई प्राणनते अधिक प्यारा पूज्य सेवा पूजा करिवे योग्य है याते प्रतिकूल त्यागिवे योग्य है ४ ॥

(१७६) जो पै रहनि राम सों नाहीं।

तौ नर खर कूकर शूकर सों जाय जियत जग माहीं १

काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबहीके।

मनुजदेह सुर साधु सराहत सो सनेह सियपीके २

शूर सुजान सुपूत सुलक्षण गणियत गुण गरुआई।

बिनु हरिभजन इँदारुण के फल तजत नहीं करुआई ३

कीरति कुल करतूति भूति भलि शील स्वरूप सलोने।

तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने ४

टी०। जोपै रामसों रहनि नहीं अर्थात् मनुष्यतन पाइकै जो निश्चय करिकै रघुनाथजीसों सनेह न किया तौ वै नर गदहा, कूकर, शूकर अर्थात् अपावन पशु सम हैं वृथाही जगमें जीवते हैं तहां जे विद्या पढ़े ते गदहा सम भारवाहक हैं जिनको कलहप्रिय ते कुत्तासम अकारण भूंकनेवाले हैं जे भक्ष्य अभक्ष्य खानेवाले ते शूकरसम तनपोषक हैं १ काहेते अपावन पशुवत् वृथा जीवन है कि जब मनुष्यतन पाइ कामवश स्त्रीन में आसक्त रहे क्रोधवश सबसों कलह करते हैं मदान्ध ह्वै किसीको मानते नहीं लोभवश नीच ऊँच अनेक कर्म करत नींदवश सोवा करत भयवश डरत रहत भूख प्यासवश भक्ष्याभक्ष्य खाते हैं इति कामादि विकार तौ सवही जीवनके होत ताही में परारहा तौ मनुष्यतन वृथाही धरा काहेते मनुजदेह सुर साधु सराहत अर्थात् जा मनुष्य तनको देवता अरु साधु-जन प्रशंसा करते हैं सो सिय पिय के सनेहते अर्थात् जो नरतनपाइ रामानुरागी

भक्त भयाताकी प्रशंसा करत ब्रह्मादिक सकुचाते हैं यथा ॥ चौपाई ॥ विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥ पुनः महारामायणे शिव-वाक्यम् ॥ अहं विधाता गरुडध्वजश्च रामस्य वाले समुपासकानाम् । गुणाननन्तान् कथितुं न शक्ताः सर्वेषु भूतेष्वपि पावनास्ते ॥ ऐसी प्रशंसा रामसनेहते होती है नातरु जन्म वृथा है २ पुनः रामभक्तिरहित जो शूरवीर भया अर्थात् रण में अभय युद्ध करनेवाला अथवा सुजान सब विद्या बुद्धिते प्रवीन अर्थात् सभाजीतनेवाला अथवा सपूत अर्थात् माता पिता की सेवा करनेवाला आज्ञापाल मरे पर गया श्राद्धादि करनेवाला अथवा सुलक्षणयुत होय यथा ॥ दो० ॥ शुक्करूप अरु शील गुण सत्यपराक्रमजान । सुचितआतमअभ्यास गनि वर विचार परिमान ॥ शास्त्र-ज्ञान ज्ञानी परम पूरण परतिय त्याग । मानी पुनि लोकेश गनि औदासत्य विभाग ॥ विद्यापुष्टि बखानिये प्रियवादी शुभअंग । आत्मकाम सूक्षम बहुत गुण परिपूरणअंग ॥ मातुपितागुरुभक्त है मनवचकर्महिजान । रूपकर्णजितइंद्रियो दाता धर्मनिधान ॥ सुरपूजन निद्रा अलप स्वल्पअहारी होइ। ये बत्तिसलक्षणनयुत विरले युगमें कोइ ॥ अथवा गुणन की गरुवाई गनियत अर्थात् शान्ति, दया, धीर्य, क्षमा, सुलभ, अमानादि गुणनते गरुवाई उत्तमता गनिवेयोग्य इत्यादि सब गुण स्वरूपतादि मनुष्य में हैं परंतु बिना हरिके भजन कीन्हे सब शोभा कैसी वृथा है यथा इंद्रा-यण के फल देखने में बहुत सुंदर भीतर वाके करुवाई है तथा जीव में सबगुण रामसनेह बिना जीवकी विषमता नहीं जाती है सबगुण देखनेमात्र सुन्दर हैं ३ कीरति जो दान सन्मान ते बड़ाई पुनः ऊँचा कुल करतूति उत्तम कर्म भूति जो ऐश्वर्य अर्थात् राज्य, धन, वाहन, हुकूमति आदि भलीप्रकार होवे पुनः शीलमय स्वभाव तन में स्वरूपता करि सलोने सब भांति सुन्दर इत्यादि सब हैं अरु रघुनाथजी में अचल प्रीति नहीं किहेहैं तापर गोसाईंजी कहत कि प्रभु अनुराग रहित अर्थात् रघुनाथजी की प्रीति रंग में अन्तर नहीं रँगा है तौ सबगुण कैसेहैं यथा अलोने सालन साग अर्थात् बरा, रसाज, मसरंगी, बरी, सहिंड़ा, पकौरी इत्यादि सालन कहावते हैं तरकारी सब सागन में कहावत इत्यादि घृत मसाला लगाइ बहुत विधि ते बनै वामें लोन न परै तौ सब निरस फीके हैं तथा बिना रामसनेह सब गुण निरस हैं ४ ॥

१७७राख्योरामसुस्वामीसोंनीचनेहननातो।एतेअनादरहोतहूंतैंनहातो जोरे नयेनाते नेह फोकट के फीके । देह के दाहक गाहक जीके २ अपने अपने को सब चाहत नीको । मूलदुहूं को दयालु दूलह सीको ३ जीव के जीवन प्राण के प्यारे । सुखहू को सुख राम सो बिसारे ४ कियो करैगो तोसेखलकोभलो।ऐसेसुसाहिबसोंतूकुचालक्योंचलो५ तुलसी तेरी भलाई अजहूं बूझै । राड़उ राउत होत फिरिकै जूझै ६

टी० । हे नीच जीव ! रघुनाथजी ऐसे सुन्दर स्वामी सों नेह नातो न राख्यो सेवक स्वामी भाव ते प्रीति न कीन्हेउ भाव ईश्वर ते विमुख भयो अनेक असत् कर्म

करि दुखके भाजन संसार में अनादर होता है जहां जात तहँ अपमान होत कुटुम्ब के लोग कुवचन कहत ऐसेहू अनादर होत ताहूपर हीयते हातो नहीं लोकसम्ब-न्धिनते नेह नाता त्याग नहीं करता है १ ईश्वर ते विमुख ह्वै नये नेह नाता जोरे ते फोकट फीके हैं नेह फोकट वृथा है कछु प्रयोजन नहीं तथा नाते सब फीके हैं तेरा हितकार कोऊ नहीं है अर्थात् जब जब जन्म धरे तब तब देहाभिमानते माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्र, पौत्रादिकन को सम्बन्धी मानि प्रीति किहे ते सब देहके दाहक जरावनेवाले भाव संयोगमें अनीति प्रौढ़ता देखि क्रोध अग्निते जरैगो तथा वियोग भये पर विरह अग्निते जरैगो सबकी जीविका हेतु फिकिरि ते जरैगो इति देहके दाहक हैं पुनः सब जीव के गाहक नाशकर्त्ता हैं अर्थात् सबसों नेह नाता मानेते विषय में आसक्त है ताते कामना बढ़तीहै कामनाहानि ते क्रोध, क्रोध ते मोह, मोह ते चैतन्यता नाश बुद्धिनाश ताते जीवनाश होत यथा ॥ गीतायाम् ॥ संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृति-विभ्रमः ॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ इति सबजीव के गाहक हैं २ सुर, नर, नागादि अन्य भगवत्रूपादि सबै प्रभुन की यह रीति है कि अपने अपने सेवकन को नीको सब चाहत भाव अपने जन को दुःख तौ सबै हरते हैं अरु अपने परारे दुहूं को दुःखहर्त्ता मूल सब को उत्पन्न पालनकर्त्ता एक जानकी-नाथै दयालु दयागुण मन्दिर निर्हेतु दुःखहर्त्ता हैं ३ पुनः रघुनाथजी कैसे हैं जीव के जीवन हैं अर्थात् आत्मरूप ते जीव के अन्तर प्रकाश किहे हैं पुनः प्राणन के प्यारे अर्थात् प्राण अपानादि जो वायु सर्वांग में चैतन्यता किहे हैं यथा ॥ जिज्ञासापञ्चके ॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः । उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥ इति जो पांचौ प्राण हैं तिनके प्यारे प्रकाशक अन्त-र्यामीरूप ते सर्वे इन्द्रिय पवन चैतन्य किहे प्राणन के अवलम्ब हैं पुनः सुख अर्थात् अर्थ काम को भोग यथा ॥ श्लोक ॥ सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम् । भूषणं वाहनं चेति भोगाष्टकमुदीरितम् ॥ इत्यादि जो सर्वांग सुख ताहू के सुख भाव सेवकन को अखण्ड सुख देते हैं अथवा सुख जो आत्मरूप ताहू के सुखद परमात्मरूप ऐसे जो श्रीरघुनाथजी सो विसारे भाव जीव के कल्याणकर्त्ता प्राणन के पालनहार देहके सुखदायक ऐसे रघुनाथजी सों विमुख ह्वै विषयासक्त भये इसीते शोक भाजन भया ४ पुनः रघुनाथजी कैसे कृपासिन्धु हैं कि भूत वर्त्तमान में अनेकन को भलो किया करैं करि आये करते हैं पुनः भविष्यकाल मों त्यहि ऐसे खलन को भलो करैंगे भाव जीवन पर जिनकी सदा दयादृष्टि है ऐसे सुसा-हिब श्रीरघुनाथ सों तू कुचाल चलो भाव प्रभुसों विमुख ह्वै कुकर्म करने लगो सो त्यागि अब चेतु ५ काहेते चेतु हे तुलसी! भाव देहाभिमानी जीव अजहूं बूझे तेरी भलाई है काहेते फिरिकै जूझे रांड़उ राउत होत अर्थात् अनेक बार रणभूमि ते भागि गये ऐसेहू कादर जो पुनः शत्रु के सन्मुख जूझैं निर्भय ह्वै युद्ध करैं तौ कादर कोऊ न कहैगो वाकी शूरवीरन में गनती होइगी तथा जो आयु व्यर्थ गई सो जान दे अबहूं चेत करि विषय ते विमुख ह्वै छल छांड़ि रघुनाथजी की शरण गहु तौ अबहूं तेरा कल्याण होइगो ६ ॥

(१७८) जो तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागौं। परिहरि पायँ काहि अनुरागौं १
सुखद सुप्रभु तुमसों जग माहीं। श्रवण नयन मन गोचर नाहीं २
हौं जड़ जीव ईश रघुराया। तुम मायापति हौं वशमाया ३
हौं तौ कुयाचक स्वामी सुदाता। हौं कुपूत तुमहीं पितु माता ४
जोपै कहुँ कोउ बूझत बातो। तौ तुलसी विनु मोल बिकातो ५

टी०। हे श्रीरघुनाथजी! जो आप मोको त्यागौ अनादर करि खेदावौ तबहूं हौं न त्यागौं मैं किसीभांति द्वारते न डोलौंगो अर्थात् याचकन की यह रीति है कि अधर्मी सूमके द्वार तौ जाते नहीं उदार धर्मवन्त के द्वारपर जातेहैं तहां न धर्मवन्त मारैगो न उदार नाहीं करैगो काहे ते क्या आपने यश अमल चन्द्र में कलङ्क लगावैगो इस बलते विना दान पाये द्वार नहीं छोड़ता है तैसेही रघुवंशनाथ धर्मधुरीण उदार दानी जानि मैं याचना करता हौं विना परिपूर्ण दान पाये द्वारते डोलौंगो नहीं काहेते परिहरि पायँ आपके चरणारविन्द त्यागि काहि अनुरागौं और किसमें परिपूर्ण प्रीति करौं १ काहेते निश्चय आपही के पायँन में अनुराग करौंगो कि तुमसों सुखद सुप्रभु हे श्रीरघुनाथजी! आप सरीखे सहजहीमें सब सुख देनहारे सेवा करिवे योग्य सुलभ स्वामी श्रवण गोचर नयन गोचर मन गोचर नहीं है गोचर नाम इन्द्रियनकी विषय यथा॥ गोचरा इन्द्रियार्थाश्च हृषीकं विषयीन्द्रियम्॥ (इत्यमरः) अर्थात् आप सरीखे सुखद सुस्वामी जग में दूसरा न काननते सुना अरु न नेत्रनसों देखा न मन के विचार में आवै ताते आप सरीखे सुखद सुस्वामी जग में दूसरा नहीं है सुलभ उदार स्वामी एक आपही हौ २ हे रघुराज, महाराज! आप ईश्वर हौ अरु मैं जड़ जीव हौं जाको हानि,लाभ,दुःख, सुख न सूझै ताको जड़ कही अर्थात् ऐश्वर्य में आप ईशनके ईश अरु माया के पति भाव आपकी आज्ञा ते माया लोकरचना करती है ताही माया के वश ते मैं जड़ हौं सो कृपाकरि माया रोंकि जीवकी जड़ता हरौ पुनः माधुर्य में आप रघुवंशनाथ सुलभ उदार पशुपक्षी जड़जीवन को उद्धार कीन्हेउ अरु मैं प्राकृतनर तनधारी हौं कृपाकरि मेरा भी उद्धारकरौ ३ हौं तौ कुयाचक मैं तौ कुत्सित याचक हौं काहेते उत्तम याचक तौ वे हैं जो सब गुणनते पूरे परिपूर्ण दाता को यश गावते हैं अरु अपनी मर्यादा योग्य दान मांगतेहैं अरु मैं गुणहीन यश गाइ नहीं आवत अरु तुच्छबुद्धि विषयी अल्पज्ञ जीव है अर्थादि मुक्त मुक्ति मांगता हौं इति मैं तौ यद्यपि कुयाचक हौं परन्तु हे स्वामि, श्रीरघुनाथजी! आपु सुदानी हौ अर्थात् पात्र कुपात्र कछु नहीं विचारतेहौ याचकमात्र को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष देतेहौ इस बलते मोको भी भरोसो है कि दान पावौंगो भाव जो भ्रमवश नाम लीन्हे अजामिल, यमनादि को उद्धार कीन्हों तौ मैंतौ अनेक बार नाम लेता हौं मेरा उद्धार क्यों न करौगे काहेते मैं तौ कुपूत हौं अर्थात् आपको गुलाम कहाय कामादिकनके वश परा असत् कर्म करत फिरता हौं तामें आपुको नाम धरावता हौं इति कुपूत हौं ताके पालनहार तुमहीं पिता माता हौ अर्थात् माता पिता अपने नाम की लाजसे कुपूतो

को पालन करत तथा यद्यपि मैं महाअधम अपराधी हौं परन्तु अपने नाम की लाज से मोको भी पालन करौगे ४ काहेते आपही पालन करौगे कि न मेरा कोऊ गाहक है अरु न मोको कहीं ठिकाना है काहेते जो चैतन्य होता तौ कोऊ गाहक होत जड़को कौन पूछै पुनः सुयाचक होता तौ कोऊ औरहू सन्मान करि दान दें तो कुयाचक को कौन पूछै तथा जो सपूत होता तौ कहीं बैठनेका ठौर मिलता कुपूतको कौन पूछै ताते सिवाय आपुके और मोको पूछनेवाला कोऊ कहीं नहीं है इसहेतु हठ करि आपही के द्वार परा हौं अन्त कहीं न जाउँगो काहेते जो पै कहीं कोऊ मोसों कोऊ वातौ बूझता अर्थात् जो औरो कोऊ मेरा गाहक होता तौ तुलसी मोल बिना बिकातो अर्थात् न बिकातो भाव काहे को आपही के द्वार परा रहतो ५॥

(१७६) भयहु उदास राम मेरे आश रावरी । आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी १ जीवनको दानी घन कहा ताहि चाहिये । प्रेमनेम को निबाहे चातक सराहिये २ मीनते न लाभ लेश पानी पुण्य पीन को। जल बिनु थल कहां मीच बिनु मीनको ३ बड़ेही की ओट बलि बचि आयें छोटे हैं । चलत खरे के संग जहां तहां खोटे हैं ४ यहि दर-बार भलो दाहिनेहू बाम को । मोको शुभदायक भरोसो रामनाम को ५ कहत नशानी हैहै हिये नाथ नीकी है । जानत कृपानिधान तुलसी के जीकी है ६

टी० । हे रघुनाथजी ! आपुके उदास भयेहू मेरे रावरीही आश है अर्थात् जो मेरे कर्म विचारि मोसों उदास तिसरिहा मानि मुखौ फेरि लेउगे तबहूं मैं आपही कृपा की आश राखे द्वारे पर परा रहौंगो दूसरे द्वार न जाउँगो अरु जो अनेक भांति की बातें कहि बार बार अपनी गर्ज सुनावत हौं सो कलियुग मोको भव-सागर में डारा चाहत है ताकी प्रेरणाते कामादिको पकरि घेरे मोको संकट में डारे है तिस भय ते आरत हौं पुनः बिना दादि पाये अपनी गर्जवश स्वारथी हौं ताते मेरी बातनको सुनि बुरा न मानौ काहेते आरत जे दुःखित हैं तथा स्वारथी जे गर्जमंद हैं ते सबै बावरी बावरे कीसी अप्रामाणिक बात कहते हैं ताको कौन प्रमाण है ताते मेरी बनी बिगरी बातपर दृष्टि न करौ मेरी गर्जपर दृष्टि करौ काहे ते निर्हेतु आपु उदार दानी हौ अरु आनको आश भरोसा त्यागि मैं आपहीको याचक हौं १ यथा जीवन जो जल ताको दानी घन जो मेघ है ताहि कहा चाहिये अर्थात् वे स्वारथ स्वाती में चातक को जलदान देता है तथा मेघन में प्रेम पुनः स्वाती वर्ष बुन्दजल को पान अन्य जल न पीना इति नेम इत्यादि प्रेम नेमके निबाहे ते चातक सराहिये व्रतधारिन में चातक की प्रशंसा होती है भाव मेघ की उदा-रता तें चातक की प्रशंसा है तथा आपुकी उदारता तें मेरी अनन्यता प्रशंसित होइगी २ पुनः पानी को पुण्य जो पावनता तथा पीन जो पुष्टता इत्यादि लाभ को लेशहू नहीं है मीन तें भाव बिना प्रयोजनै जल मछरी को पालन करता है पुनः मीनको बिना जल में रहे अन्यत्र मीचु बिन भाव सिवाय मरिजानेके अरु जीवने

को कहां थल ठिकाना है अर्थात् मीनको जीवन आधार केवल जलै है सो यथा अपना आश्रित जानि मेघ चातकपर दयाकरि अवश्यही जल देत कदाचित् मेघ निर्दयी भी होइ न जल देइ तबहूं चातक अपना प्रेम नेम नहीं छांड़त इसीसें सब पक्षिनते अधिक वाकी प्रशंसा है तथा अपना आश्रित जानि आप अवश्यही मोपर दया करि रक्षादान देउगे कदापि न दया करौ तौभी मैं सिवाय आपके दूसरेकी आश न करौंगो तबहूं मोको लोग रामानन्यभक्त कहैंगे भाव तबहूं आपही को कहा-वौंगो पुनः यथा अपना आश्रित जानि वै प्रयोजन जल मीनको पालत कदाचित् न पालै तौ मीनको अंते ठौर नहीं जहां जीसकै तथा अपना आश्रित जानि आप अवश्य ही मेरी पालना करौगे कदाचि न पालन करौ तौ मेरे दूसरा ठौर नहीं जहां भवसागर ते बचौं ताते जो आप न दया करौ तबहूं आपुको नाम लिहे आपहीके द्वारपर परारहौंगो तबहूं भवसागर ते बचौंगो काहेते सबलके द्वारपर कोऊ शत्रु बाधा नहीं करि सकत ३ काहे ते आपु के द्वार पर भवसागरते बचिहौं कि मैं बलिहारी हौं हे श्रीरघुनाथजी ! जहां जब कोऊ बचा है तहां बड़ेही की ओट सबल समर्थ को पाछ्रालैके छोटेहू बचि आये हैं यथा नामकी ओट अजामिल, यम-नादि, यमसाँसति ते बचत भाये तथा महूं आपके नाम की ओट लिहे परा हौं अवश्य भव ते बचौंगो पुनः जहां अनेकन खरे सिक्का हैं तिनके संग में राजा को नामांकित देखि खोटे भी रुपया जहां तहां चली जाते हैं अर्थात् ऊपर चांदी तामें महाराज को नामांकित देखि खरा सिक्का जानि लोग लैलेते हैं अरु वाके अन्तर में तांबा आदि खोटाई कोऊ नहीं देखता है तथा जहां आपके खरे गुलाम अनेकन हैं तहां मैं भी एक खोटा पार है जाउँगो भाव गुलामन के संग उनहीं कैसो वेष नाम लेते देखि मेरे अन्तर की विकार कौन देखैगो खरेन के संग मैंभी आपु के साकेत खजाने में परिजाउँगो ४ जब ते आपु के खजाने परिजाउँगो तबते मोको अपनी खोटाई की संशय नहीं है काहेते यहि आपु के दरबार में दाहिने अरु बाम दुहुं को भलो होत अर्थात् दाहिने जे शरणागत है भजन ध्यान करते हैं तथा बाम जे वैरभाव ते युद्ध करते हैं इति दोऊ को बराबरि सुगति मिलत है अथवा दाहिने जे विषय ते विमुख है शरणागत आइ श्रवण, कीर्त्तनादि भक्ति आचरण में लगे हैं पुनः बाम जे ईश्वर ते विमुख है विषयासक्त स्त्री, पुत्र, धन, धामादि संसारी सुख में लगे हैं इत्यादि दोऊ नाम रूप लीलाधामादि द्वार किसी भांति सन्मुख होइँ तौ दोऊ को बराबरिही कल्याण होता है ताते शुभदायक जीवन को कल्याणपद देनहारा जो रामनाम ताको भरोसा मोको है भाव रामनाम के अव-लम्बते मैंभी भवपार पावौंगो ५ हे नाथ, श्रीरघुनाथजी ! मैं स्वारथी आरत हौं ताते कहत में बातें नशानी हैं हैं यथा ॥ चौ० ॥ बात कहौं सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू ॥ इत्यादि वार्त्ता कहत में तौ अवश्यही बिगारिगई होइगी परन्तु हृदय में नीकी है अंतसते सत्य सत्य शरणागती चाहत हौं ताते मेरे उर में आपके चरणारविन्दन की प्रीति थिरहै भाव दूसरे को आश भरोसा त्यागि केवल आपही को आश भरोसा राखे हौं इत्यादि तुलसी के जी की अन्तर की जो निकाई है ताको हे कृपानिधान, श्रीरघुनाथजी। आपु जानते हौ ताते कृपा करौगे ६॥

राग विलावल ।

(१८०) कहां जाउँ कासों कहौं को सुनै दीन की ।
त्रिभुवन तुहीं गति सब संग हीन की १
जग जगदीश घर घरनि घनेरे हैं ।
निराधार को अधार गुण गण तेरे हैं २
गजराज काज खगराज तजि धायो को ।
मोसे दोषकोप पोसे, तोसे माय जायो को ३
मोसे क्रूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ।
किये बहु मोल तैं करैया गीध आध के ४
तुलसी कि तेरेही बनाये बलि बनैगी ।
प्रभुकी विलम्ब अम्ब दोष दुख जनैगी ५

टी० । हे श्रीरघुनाथजी ! स्वर्ग, भू, पातालादि कहां जाउँ सुर, नर, नागादि कासों अपनी दर्द कहौं काहे ते दीनजनकी पीर कौन ऐसा दयावन्त है जो सुनै त्रिभुवन में यावत् संग हीन हैं तिन सबन की गति तुम्हीं तक है अर्थात् तीनिहूं लोकन में यावत् अशरण हैं जिनको शरण में राखनेवाला कोऊ नहीं तिन सब की गति आप तक है भाव अशरण को शरण राखनेवाले एक आपही हौ दूसरा नहीं है १ काहेते दूसरा नहीं है कि जग में जगदीश जगत् के ईश जग के पालन-हारे घरघरन घनेरे लोक लोक देश देश ग्राम ग्राम बहुत ईश कहावते हैं तिन में बे प्रयोजन दयावन्त कोऊ नहीं है एक आपही हौ काहेते निराधार को आधार-दायक गुणन के गण तेरेही रूप में हैं अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी ! शोकसमुद्र में बूड़त समय जिनको आधार सहारा देनेवाला कोऊ नहीं ऐसे निराधारन को आधार भुजा गहि काढ़ि लेनेवाले कृपा, दया, करुणा, उदारतादि गुणन के गणसमूह आपही में देखि परते हैं दूसरे में नहीं भाव संकट में निर्हेतु सहायकर्ता आपही हौ दूसरा नहीं है २ काहेते जानिये दूसरा नहीं है कि जब ग्राहने ग्रस्यो तब गज-राज के उधारन काज को खगराज जो गरुड़ ताको तजि शीघ्रता ते को धायो अर्थात् जब गजराज ने संकट में पुकारे तब कोऊ सहायक न भया एक आपही धायकै उबारि लीन्हेउ पुनः मोसे दोपकोश अर्थात् हम ऐसे कलियुगी जीव पाप दोषन को भरा खजाना ताहूको पोपे पालन कीन्हेउ हे रघुनाथजी ! तोसे माय जायो को सेवाय कौशल्याजी के और दूसरी कौन माता ने आपु, सरीखे पुत्र उपजाये हैं ताते सब लायक एक आपही हौ ३ मोसे क्रूर कुमार्गी पुनः कायर अर्थात् धर्म कर्म करिबे में कादर पुनः कुपूत कुल के धर्म से विमुख ऐसो निकाम आध कहे फूटी कौड़ी को पोढ़ी कौड़िउ को नहीं ऐसे मोको गीध श्राद्ध के करैया अधमोद्धार जो श्रीरघुनाथजी ते बहुते मोल को रत्नसमान मोको बनाये अथवा क नाम जल ताको पूत आसमानी पत्थर कुपून है सो कूर याते कहे कि जहां

गिरत तहां कुपी दलिडारत अरु कायर याते कहे कि घाम बयारि नहीं सहि सकत तुरतही गलि जात मोल जाको समूची कौड़िउ को नहीं ऐसो कूर कादर कुपूत हिमोपल सम मैं रहीं ताको रघुनाथजी सुभग सुखद पुष्ट लाखन के मोल को हीरा बनाये सो जगत् में प्रकाशमान हौं यह अर्थ हम याते किया कि तन्त्रन में हिमोपल को हीरा है जाने की क्रिया लिखी है यथा ॥ चनखारस्य खवेदेः पुटं चर्खोर्हिमोपले । वेष्टित्वा मधुतैलेर्गिन सुपक्वं हीरकं भवेत् ॥ यह क्रिया शक्तिमान् समर्थन को काम है जो हिमोपल को हीरा बनाइ लेवैं यथा रघुनाथजी अधम गीध को चतुर्भुज बनाय स्वधाम को पठाये तुलसीदास ऐसे निकाम को लोक-विदित उत्तम रत्नसम बनाये ४ मैं बलि जाउँ और कछु मेरी अर्ज सुनिये कलियुग को पकरि मोको भवसागर में डारा चाहत ताकी प्रेरणा ते कामादि क्रोध किहे घेरे मोको संकट में डारे हैं इत्यादि तुलसीदास की बिगरी है सो तेरेही अर्थात् आपही की बनाई बनैगी भाव कलियुग को डाटि कामादिकन को हटाइ मेरी रक्षा कीजिये यामें विलम्ब न करिये काहेते हे प्रभु ! आपुकी जो विलम्ब है सो अम्ब माता है सो दोष दुःख जनैगी उपजावैगी अर्थात् जो आपु विलम्ब करौगे तौ कामादि प्रचण्ड है मेरे मन इन्द्रिन को बिगारि विषयन में लगाइ देहँगे तव पर-स्त्रीरत परहानि परधनहरण इत्यादि दोष करै लागैंगो ताको फल दुःख होइगो ताते विलम्ब न करौ ५ ॥

(१८१) थारक विलोकि बलि कीजै मोहिं आपनो ।

राय दशरथ के तू उथपन थापनो १
साहिब शरणपाल सबल न दूसरो ।
तेरो नाम लेतही सुखेन होत ऊसरो २
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं ।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ३
कौने कियो समाधान सनमान शिला को ।
भृगुनाथ सो ऋषी जितैया कौन लीला को ४
मातु पितु बन्धु हित लोक वेद पाल को ।
बोल को अचल नत करत निहाल को ५
संगही सनेह बश अधम असाधु को ।
गीध शवरी को कहौ करिहै शराध को ६
निराधार को अधार दीन को दयालु को ।
मीत कपि केवट रजनिचर भालु को ७
रङ्क निरगुणी नीच जिनने निवाजे हैं ।

महाराज सुजन समाज ते विराजे हैं ८
सांची बिरदावली न बढ़ि कहि गई है ।
शीलसिन्धु ढील तुलसी की वार भई है ६

टी० । मैं वलि जाउँ कैसे न विलम्ब कीजिये वारक विलोकि एकवार कृपा-दृष्टि हेरि अभय वांह दै मोहिं आपनो कीजे भाव अपनो जानि कलि कामादि शत्रुन सों मेरी रक्षा राखिये काहेते तू राय दशरथ के अर्थात् जिन अपनी पुरी प्रजनपर आवत जानि शनैश्चर ऐसे सवल ग्रहको रोकि शान्त करि दिया ऐसे महाराज दशरथ के आपु लाड़िले हौ पुनः उथपन थापनो यथा सुग्रीव विभीषण जे जरमूरते उखरिगये रहैं तिनको अचल करि थापि दीन्हेउ जे काहूके उखारे उखरि नहीं सकैं हैं १ पुनः तेज प्रताप वीरता वल करिकै परिपूर्ण ऐसा सवल पुनः शरणागत को सव भांति पालनहारा आपु सरीखे साहिव लोकन में दूसरा कोऊ नहीं है सवल शरणपाल एक आपही हौ काहेते तेरो नाम लेतही ऊसरो सुखेत होत अर्थात् राक्षस, व्याध, केवट, गणिका, कोल इत्यादि ऊसर सम रहैं जिनमें धर्म-कर्म को वीजौ नहीं जामि सक्ता रहै ते रामनाम लै सुखेतसम भागवत भये जिनमें भक्ति उपजी जो उत्तम धान्यसम है २ तेरे वचन करम मेरे मन में गड़िगये हैं हे श्रीरघुनाथजी ! आपुके जो अविचल वचन हैं पुनः पतित पावनता दीनदयालुता अधमोद्धारता सुलभ उदारता इत्यादि जो आपुके कर्म हैं इत्यादि मेरे मन में दृढ़ करि वसे हैं भाव मैं निश्चयकरि जानि लिहेउँ कि आप की समान सत्यवादी निर्हेतु परहित करनेवाला कोऊ नहीं है काहेते जहान में जेते वड़े कहावते हैं तिन सवको मैं देखे पुराणन में सुने ताते सवके गुण जानि लीन्हे आपु सम कोऊ नहीं है ३ काहेते आपकी समान दूसरा नहीं है कि पत्थर के शिला को कौने स्वामी ने समाधान चित्त की थिरता सन्मान आदर कियो भाव वे प्रयोजन एक आपही ने अहल्या को पापशाप हरि शुद्धकरि पति को संयोग कराइ चित्तको समाधान कीन्हेउ पुनः भक्ति वरदान दै सन्मान कीन्हेउ ऐसा दीनवन्धु कृपासिन्धु कौन दूसरा है पुनः भृगुनाथ ऋषि सौं सवल को लीलामात्र को जितैया कौन दूसरा है अर्थात् जिन सहसवाहु आदि महावली राजनको मारि मारि इकइस वार पृथ्वी ब्राह्मणन को संकल्प दी ऐसे तपोधनी सवल समर्थ परशुराम तिनको लीलामात्र में जीति हथियार धराइ लीन्हेउ विनती करि चलेगये ऐसा सवल समर्थ वीर लोक में दूसरा कौन है सवल प्रतापी वीर-शिरोमणि ऐश्वर्यवन्त एक आपही हौ ४ छोटे भाई भरत तिनके राज्यसुखहित माता पिता को वचन मानि हर्षसहित वनको चले गये पुनः लोककी मर्यादा वेद को धर्म परिपूर्ण पालन कीन्हेउ इति माता पिता वन्धुको हितकर्ता पुनः लोक वेदधर्म पालनकर्ता सिवाय एक आप और दूसरा को है पुनः सिवाय सत्य झूठ वचन कवहूं नहीं वोल्यो जो कह्यो सोई कीन्हेउ पुनः सुग्रीव विभीषण एकवार प्रणाममात्र कीन्हे तिनको लोक में राज्यसुख परलोक में मुक्ति दीन्हेउ इत्यादि वोल को अचल सत्य-वादी तथा नतप्रणाम करनेवालेको निहाल करनेवाला सिवाय आपके दूसरा कौन

शरणपाल हैं ५ स्नेहवश से अधम असाधुन को संग्रही संग्रह करनेवाला अर्थात् आपनी समान करनेवाला यथा अधम मांसाहारी आदि मलीन क्रियावाले जो स्वाभाविक अपावन कहावतेहैं पुनः असाधु जे हिंसकी आदि क्रूर स्वभाववाले तिनको ग्रहण करनेवाला और कौन है काहेते गीध को पितासम मानि तथा शवरीको मातासम मानि को श्राद्ध करी है भाव अशरण शरण अधमोद्धार एक आपही हौ दूसरा नहीं है ६ शोकसमुद्र में बूड़तसन्ते जाको आधार कोऊ नहीं जो बांह गहि बचाइ राखै यथा सुग्रीव विभीषण ऐसे निराधारन को आधार देनहारे एक आपही हौ दूसरा नहीं है तथा दीन पुरुषारथहीन पर दयालु दयाकरनेवाले एक आपही हौ दूसरा कौन है काहेते कपि सुग्रीवादि वानर निषादादि केवट रजनिचर विभीषणादि निशाचर भालु जामवन्तादि ऋक्ष इत्यादिकनको मित्र करनेवाले एक आपही हौ दूसरा कौन गरीबनिवाज है ७ काहेते एक आपही गरीबनिवाज हौ कि रंक जे कंगाल निर्गुणी जे गुणहीन नीच हीनजाति इत्यादि जे जे तैं निवाजे हैं अर्थात् कृपाकरि जिन जिनको आप पावनता ऐश्वर्य बड़ाई दै थापे हे महाराज, श्रीरघुनाथजी ! ते ते सब सुजनन की समाज विषे ऊंचे पदपर विराजतेहैं भाव सुजन समाज में उनकी प्रशंसा होतीहै अथवा आपके यश के संग उनको भी यश सुजन जन गावते हैं ८ यह यावत् वार्ता मैं कहि आयो हौं सो आपुकी विरुदावली सब सांची है अर्थात् वेद पुराण गावत हैं बढ़िके नहीं कही गई है भाव अपने स्वार्थ हेतु मैं बढ़ाइके नहीं कहेउँ वेदप्रामाणिक सांची कहतहौं पतितपावन अधमोद्धार गरीबनिवाज इति आपको बाना सनातन है हे शीलसिन्धु, नीच ऊंच को बढ़ाईदेनहारे प्रभु ! अब तुलसीदासै की बार ढील भई है कृपाकरने में विलम्ब किहे हौ ६॥

(१८२) केहू भांति कृपासिन्धु मेरी ओर हेरिये।

मोको और ठौर न सुटेक एक तेरिये १।
सहस शिला ते अति जड़मति भई है।
कासों कहौं कौने गति पाहनहि दई है २।
पदरागयाग चहौं कौशिक ज्यों कियो है।
कलिमल खल देखि भारी भीत भियो है ३।
करम कपीश बालि बली त्रास त्रस्यो हौं।
चाहत अनाथ नाथ तेरी बांह बस्यो हौं ४।
महामोह रावण विभीषण ज्यों हयो है।
त्राहि तुलसीश त्राहि तिहूं ताप तयो है ५।

टी०। कृपालुता सुजनपालता दीनदयालुता प्रणतपालता इत्यादि केहू भांति हे कृपासिन्धु ! मेरी ओर हेरिये मोहूं पर कृपादृष्टि कीजिये काहेते मोको सुखपूर्वक बैठनेको और ठौर नहीं है तेरिये एक सुटेक है अर्थात् आपही की शरण

गति में बनै तौ बनै नातरु भाग्यवश चहै बिगरि जाइ दूसरेते याचना न करौंगो इति एक सुंदर टेक अनन्यता व्रत आपही में धारण किहे हौं १ यथा अहल्या पर-पतिरत पापहेतु पतिकी शापते पत्थर की शिला ह्वैगई रहै ताको कृपा करि सुन्दर गति दीन्हेउ तथा परपति अज्ञान में रत भये महापापन हेतुक ज्ञान पतिशापते पत्थर के शिलाते सहस हजारगुण अधिक मेरी मति जड़ ह्वैगई है अत्यन्त करिकै त्यहि जड़बुद्धि को शुद्ध करने हेतु सुर नर नागादि कासों कहौं क्योंकि पाहनहि कौने गति दई है पत्थरशिला को और किसने उद्धार किया भाव आपहीने उद्धार किया ताते आपहीते कहत हौं कृपा करि मेरी मति को शुद्धकरि सुमति बनाय ज्ञानकी संयोगी बनाइये २ पुनः यथा विश्वामित्रजी जब यज्ञ करने लागैं तब ताड़का, सुबाहु, मारीच क्रोध करि धावैं आइ विध्वंस करि देतेरहैं तहां जाइ सुजनपालता करि निशाचरन को मारि यज्ञ की रक्षा कीन्हेउ तथा मैं पद्राग याग चहौं प्रभुपद में अनुरागरूप यज्ञ महं कौन चाहतहौं तहां कुमति ताड़का पुनः काम मारीच लोभ सुबाहु पुनः क्रोध मद मात्सर्य ईर्षा राग द्वेषादि निशाच-रनकी सेना लै धावते हैं कलियुगरूप रावण की प्रेरणाते अनेक पापकर्मरूप उपद्रवकरि आपके पदकमलन को अनुराग थिर प्रीतिरूप यज्ञ भंग करिदेते हैं इति कलिमल कलिप्रेरित कराल पाप पुनः कामादि खलन की भीर देखि भारी भीति बड़ीभारी भय मेरे भई है सो या भांति आपकी सहायताते कौशिक, विश्वामित्र यज्ञ पूर्ण कियो तैसेही आपकी सहायता ते पद्राग याग महं कौन चाहत हौं ताते सुजनपालता करि कलिमलखलन को नाश करि पदकमलन की प्रीतिरूप यज्ञ मेरी भी पूर्ण कराइ दीजिये ३ यथा कपिराज महाबली बालि विरोध करि बरबस सुग्रीव को सर्वस सुख स्त्री छीनि मारि निकारिदियो ताके डरते कहीं बैठेको ठिकाना नहीं रहै सो आपकी शरण आयो ताके हेतु बालिको मारि दीनदयालुता करि सुग्रीव को अभय सुवश बसायो तथा कुटिल कर्मरूप कपिन को ईश बली बालिसम है समता, शान्ति, सन्तोष, विरागादि मेरा सर्वस सुख सुमति स्त्री हरि लियो पुनः रुज हानि वियोग शोक दण्ड दैके विवेक देशते निकारि दियो त्यहि त्रास त्रस्यों डरते डर्यो हौं ताते अनाथ है शरण हौं हे अनाथनके नाथ! तेरी बाँह बस्यो चाहत हौं भाव कर्म बालिको नाश करि मोको भी सुवश बसावौ दीनपर दया करौ ४ पुनः यथा रावण ने मारिके विभीषण को निकारि दियो सो अशरण है आपकी शरण आयो तब रावण को नाश करि विभीषण को भयरहित अचल थपेउ तथा महामोहरूप रावण मोको विभीषण ज्यों हयो मार्यो पूर्वरूप नाश कियो ताते दैहिक, दैविक, भौतिकादि तीनिहूं तापन करिकै तयो जरता हौं इसहेतु आपकी शरण आयउँ है तुलसीश, तुलसीदास के स्वामी श्रीरघुनाथ जी! त्राहि त्राहि मेरी रक्षा करौ आप शरणपाल हौ मोको भी शरण में राखौ कलिप्रेरित मोहादिते रक्षा करौ ५॥

(१८३) नाथ गुणगाथ सुनि होत चित चाउ सो।

राम रीझिबे की जानौं भगति न भाउ सो १

करम स्वभाव काल ठाकुर न ठांउ सो ।
सुधन न सुतन सुमन न सुआउ सो २
याचों जल जाहि कहै अमिय पियाउ सो ।
कासों कहौं काहू सों न वढ़त हिआउ सो ३
वाप वलि जाउँ आप करिये उपाउ सो ।
तेरही निहारे परै हारेहू सुदाउ सो ४
तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो ।
तेरेही वुझाये वूझै अवुझ वुझाउ सो ५
नाम अवलम्ब अम्वु दीन मीन राउ सो ।
प्रभुसों वनाइ कहौं जीह जरिजाउ सो ६
सव भांति विगरी है एक सुवनाउ सो ।
तुलसी सुसाहिवहि दियो है जनाउ सो ७

टी० । हे रघुनाथजी ! आपको रीझिवे को जामें आप प्रसन्न होउ सो नवधा प्रेमापरादि भक्ति भाव कछु जानत नहींहौं केवल नाथके गुणगाथ हे श्रीरघुनाथजी! दीनदयालुता अधम उद्धारता पतितपावनता गरीवनिवाजता इत्यादि आपके गुणन की गाथा कथा सुनि चित में चाउ सो होत आनन्द उपजत भाव दीन-दयालु दीन जानि मोहूंपर दया करैंगे यही भरोसा है नातरु मैं काहूभांति किसी काम को नहींहौं १ कैसा निकाम हौं कि पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दानादि उत्तमकर्म भी नहीं हैसक्तेहैं तथा शान्ति, संतोप, शील, सुलभ स्वभाव भी नहीं तथा सतयुगादि काल भी उत्तम नहीं अर्थात् एकतौ कलियुग कराल काल दूसरे कुटिलस्वभाव ताते सत्कर्म कैसे ह्वै सकै ताते निपेधे कर्म होतेहैं पुनः सो ठाउँ नहीं जहां को ठाकुर होउँ अपना स्थानौ कहीं नहीं सुन्दर धनौ नहीं कंगाल हौं न सुतन सुन्दर तनौ नहीं कुरूप अथवा सुत न पुत्री नहीं अकेलही हौं सुन्दर मनौ नहीं विपयी चञ्चल हौं पुनः सुआउ सुन्दर आयुर्वलौ नहीं अल्पकाल जीवन तामें क्या ह्वैसक्ताहै इत्यादि कारण किसी कामको नहीं हौं भाव लोक परलोक दोऊ रहित २ पुनः जव भिक्षा मांगने की इच्छा कीन्हेउँ तव कोऊ उदार दानी नहीं देखात सुर, मुनि, नर, नागादि सव स्वार्थीही मिले काहेते जाहि मैं जल याचौं कि प्यासा हौं मोको लोटाभरि जल दैदेउ सोई लौटि मोसों कहै कि प्रथम तू हमैं अमी अमृत पियाउ तव हम तोको जल देवैं भाव लोक अनते जो एक दिनको भोजन मांगौं तौ वे मोसों पुत्र, अन्न, धन, धरणी, धामादि परिपूर्ण ऐश्वर्य मांगते हैं तथा देवादिकनते जो चाटक नाटकादि तुच्छौ सिद्धाई आदि याचत हौं तौ वे मोको अपना गुलाम वनाइ परिपूर्ण सेवकाई करावा चाहतेहैं ताते मैं अपनी गर्ज कासों कहौं काहूसों कहिवे को हियाउ नहीं परत सवको सूम स्वार्थी विचारि मन फ़्छरि आवत ३ मैं वलिहारी हौं हे वाप ! अर्थात् पालन, पोपणकर्ता आपही

हौ अरु मैं निकाम पुत्र हौं आपना जानि मेरो कल्याण जामें होइ सो उपाय आपही करौ काहेते जे खेल में हारेहू हैं तिनपर तेरे निहारे ते सुदाउँ ऐसो परेउ जीति गये अर्थात् जे विषयी जीव लौकिक सुखहेतु अनेक पापकर्म करि यमलोक के अधिकारी भये तिनहुँन पर जब आपकी कृपादृष्टि परी तब परमपद के अधिकारी भये यथा केवट किरात गीधादि तैसेही कृपादृष्टि निहारि मेरा भी कल्याण कीजिये ४ असुझ जिनको हानि, लाभ, सुख, दुःख कछु नहीं सूझि परता है ऐसेऊ अन्धे जे जड़जीव हैं तिनहूं को आपुके सुझायेते ऐसा सूझि परता है कि सुझाउसों होते हैं भाव औरन को सुझावते हैं अर्थात् उनहीं जीवनपर जब आपु कृपा करते हैं तब ऐसा अमल दिव्यज्ञान उदय होता है कि माया जीव आत्म परमात्म इत्यादि सब यथार्थ देखि परता ताते त्रिकालज्ञ ह्वै औरन को उपदेश दै ज्ञानवन्त करि देते हैं यथा आपुको नाम लै वाल्मीकि व्याधा ते महामुनि भये पुनः जे ऐसे अबूझ हैं जिनको किसी बात को भावार्थ जानिवेको विद्या बुद्धि नहीं है ऐसेऊ अज्ञ जे जीव हैं तिनहूं को आपुके बुझायेते ऐसा बूझि परता है कि बुझाऊ सो होते हैं भाव औरनको बुझावते हैं अर्थात् उनहीं अज्ञ जीवनपर जब आपु कृपा करतेहौ तब ऐसी अमलबुद्धि विद्या उत्पन्न होती है कि वेद वेदान्त को सिद्धान्तार्थ यथार्थ बूझिपरत ताते औरनौको समुझावते हैं यथा ध्रुव बाल अवस्थाते यह न बूझिसके कि भगवान् आगे ठाढ़े तिनकी दण्डवत् स्तुति कछु न करते बना जब भगवान् ने कानमें शंख फूंकिदिया तब वेद शास्त्रादि सब विद्या पेट में भरिगई सुन्दर बुद्धि उदय ह्वै आई दण्डवत् करि स्तुति करनेलगे इसीभांति महूं असूझ अबूझ हौं महूं को कृपाकरि सुझावौ बुझावौ ५ काहेते आपही सुझावौ बुझावौ कि मेरे दूसरे को आश भरोसा नहीं है केवल एक आपके नामही को अवलम्ब है दीनजन को कौन भांति यथा अम्बु जल मीनराउ सो महामच्छ ऐसो भाव छोटी मछरी सरिता तड़ागादि थोरेहू जल में रहिसकत हैं अरु महामच्छ अगाधजल समुद्रमें रहिसके हैं तथा औरनको औरहू साधन को आश भरोसा है अरु दीनजन जो मैं हौं ताको अगाध समुद्रसम रामनाम है सोई अवलम्ब है यह बात मैं सांची कहत हौं अरु हे प्रभु ! जो आपुते बनाइकै कहत होउँ सो जीह जरिजाउ भाव झूंठी जिह्वा में आगि लागै भाव साँचे की साक्षी अग्नि है जो झूंठ कहत होउँ तौ जिह्वा को जराइ देइ ६ काल कराल स्वभाव नष्ट पापकर्म इत्यादि सब भांतिते मेरी बिगरी है परलोक बनिवेको कर्म धर्मादि और कछु नहीं है सुबनाउ सो सुन्दरी भांति परलोक बनिवे हेतु एकही उपाय है क्या उपाय है कि तुलसी अपने बिगरबे को पुनः प्रभु के नाम अवलम्ब इत्यादि जो अपना हाल है सो सुसाहिबहि जनाइ दिहेउ भाव दीनदयालु शरणपाल पतितपावन ऐसे सुन्दर साहिब श्रीरघुनाथजी सों अपना हाल कहेउ कृपासिन्धु कृपा करि मेरा भी कल्याण करैंगे इति एक उपाय है ७ ॥

राग आसावरी ।

(१८४) राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत हैं । बड़े की बड़ाई छोटे की छोटाई दूरि करैं ऐसी बिरदावलि बलि वेद मनि-

यत हैं १ गीध को कियो शराध भीलनी को खायो फल सोऊ साधु सभा भलीभांति भनियत हैं। रावरे आदरे लोक वेदहुँ आदरियत योग ज्ञानहूं ते गरूगनियत हैं २ प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलिहूं काल महिमा समुझि उर अनियत हैं। तुलसी पराये वश भये रस अनरस दीनबन्धु द्वारे तेरे हठ ठनियत हैं ३

टी०। प्रीति यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ अत्यन्तभोग्यतां बुद्धिरानुकूलादिशालिनी। परिपूर्णस्वरूपा या सा स्यात्प्रीतिरनुत्तमा ॥ प्रीतिकी रीति ॥ यथा ॥ ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति। भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥ अर्थात् इन्द्रिय मनादिकी वृत्ति एकाग्र है ज्यहि के रस की भोगी है सर्वाङ्ग परिपूर्ण रहै ताको प्रीति कही पुनः अभिलाष सहित अपनी वस्तु मित्र को देना निःशङ्क मित्र की वस्तु लेना अपनी गुप्त बात कहना मित्र की गुप्त पूछना हर्ष ते खाना तथा खवाना इत्यादि परिपूर्ण जन्मभरि निर्वाहना प्रीति की रीति है इत्यादि हे श्रीरघुनाथजी! प्रीति की जो रीतिहै सो आप नीकी भांति जानते हौ भाव नीकी भांति निर्वाहते हौ पुनः सबल प्रतापवन्त कैसे हौ कि बड़े जे सबल हैं तिनकी बड़ाई जो जबरई है तथा छोटे जो निर्बल हैं तिनकी छोटाई जो भयशङ्का है इति दोऊ को आपको प्रताप दूरि करैहै मैं बलि जाउँ ऐसी बिरदावली वेदन में नियत कहे विधि है यथा ॥ "नियतिर्विधिः" (इत्यमरः) अर्थात् ऐश्वर्य में वेदविधि है कि ईश्वर के लग कोऊ छोटा बड़ा नहीं है जीवमात्र पर एक दृष्टि है तथा माधुर्य में वेदविधिते विदित है कि आपके प्रतापते गाय बाघ एकै घाटपर पानी पियत यथा ॥ चौपाई ॥ बैर न कर काहूसन कोई। रामप्रतापविषमताखोई १ अब यथा प्रीति की रीति निवाहै सो कहत गीध अधम पक्षी ताकी प्रीतिवशते श्राद्ध किये अर्थात् पिता की तुल्य मानि तिलाञ्जलि पिण्डदान दीन्हे पुनः जातिकी भीलिनिं शवरी ताको प्रीतिवश माता तुल्य मानि वाके जूठे फल खाये सोऊ साधुन की सभा विषे भली भांति भनियत है हर्षसहित बारम्बार बखान करतेहौ अथवा साधुन की समाज में गीधशवरीकी प्रशंसा भलीभांति होती है काहेते हे श्रीरघुनाथजी! रावरे आदरे अर्थात् नीचनो को जो आप आदर करते हौ तौ लोक वेदहू आदरियत अर्थात् रामसनेहिनकी महिमा वेद में बड़ीभारी लिखी है यथा ॥ अथर्वणे ॥ यश्चाण्डालोपि रामेति वाचं वदेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संभुञ्जीयात् ॥ इत्यादि माहात्म्य जानि लोकहू में सब वाको आदर करते हैं काहेते योग ज्ञानहूते गरू गनियत है अर्थात् यम नियमादि अष्टाङ्ग योग करनेवाले जे योगी हैं तथा विराग विवेकादिवाले जे ज्ञानी ताकी गुरुताते गरूपद भक्तन को गनते हैं भाव भक्त सबते अधिक हैं यथा ॥ अध्यात्मे ॥ मद्भक्तमादरेद्यस्तु मनःस्पर्शनभाषणैः। तं हितं मयि पश्यामि वशिष्ठमहतामिव २ कृपा ॥ दोहा ॥ रक्षक सबसंसारको हौं समर्थ मैं एक। यह मन अनुसन्धान दृढ़ सो गुण कृपाविवेक ॥ इति कृपाभरे मन्दिर हे कृपालु, प्रभु! कलिकालहू ऐसे कठिन युग में आपकी

कृपाकी महिमा यथा कैसहू पतित अधम पातकी होइ सोऊ शरणमात्र प्रभुकी कृपा ते पावन ह्वै भवपार होता है इत्यादि समुझि कृपा को भरोसा दृढ़ उर आनियत है भाव यद्यपि महाखल हौं तथापि शरण जानि अवश्य प्रभु कृपा करि मेरा भी कल्याण करैंगे इत्यादि भरोसे ते तुलसीदास यद्यपि पराये वश इन्द्रिय विषय कामादि के वश मैं परि प्रभुपद प्रेम रसते अनरस विमुख भये संसारीसुख में भूले रहे तथापि हे दीनवन्धु ! भाव वन्धुसम दीनजनन के सहायकर्ता दीनदयालु-ताको भरोसा राखि आपुके द्वारपर हठ ठानियत है अर्थात् विना कृपा दान पाये गरियाये खेदे मारे घसीटे इत्यादि किसी भांति ते द्वार न छांड़ौंगो ३ ॥

(१८५) रामनाम के जपे जाय जिय की जरनि । कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये जैसे तम नाशिवे को चित्र के तरनि १ करम कलाप परिताप पाप साने सब ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि । दम्भ लोभ लालच उपासना विनाश नीके सुगति साधन भई उदर भरनि २ योग न समाधि निरुपाधि न विराग ज्ञान वचन विशेष वेष कबहूं न करनि । कपट कुपथ कोटि कहनि रहनि खोटि सकल सराहैं निज निज आचरनि ३ मरत महेश उपदेश हैं कहा करत सुरसरि तीर काशी धरमधरनि । रामनाम को प्रताप हर कहैं जपैं आप युग युग जानै जग वेदहूं बरनि ४ मति रामनामही सों रति रामनामही सों गति रामनामही की विपतिहरनि । रामनाम सों प्रतीति प्रीति राखै कबहुंक तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ५

टी० । केवल रामनाम को अवलम्ब राखना यही हठ करि प्रभु के द्वार पर परा रहना है ताको कारण यह है कि सब साधनशून्य केवल रामनाम जपते तीनिउ तापादि जीवकी जरनि सो जात रहती और उपायते कल्याण नहीं ह्वै सक्ता है काहेते भव पार होवे हेतु कर्म योग ज्ञानादि जो अपर उपाय अन्य युग में रहैं ते सब कलिकाल विषे अपांय विना पांय के पंगु भये भाव सब साधनन के पांय तौ केवल धर्म हैं इसीकी परिपूर्णता ते सब साधन चलि सक्ते हैं तिस धर्म को तौ कलियुग ने तोरि डारा तौ विना पांय साधन कैसे चलि सकैं ताते सब साधन अपांय भये कौन भांति जैसे तम अंधकार नाशिवे को चित्र के तरनि चित्र-सारी में वने हुये सूर्य नाममात्र कहिवे को हैं उनते कहूं अंधकार नाश ह्वै सक्ता है तथा कर्मादि साधन कलि में भवनाश नहीं करिसक्ते हैं १ काहेते साधन भव-नाश नहीं करिसक्ते हैं कि कलाप नाम बहुत जो कर्म हैं यथा ॥ अर्थपञ्चके ॥ तत्र कर्म परिज्ञेयं वर्णाश्रमानुरूपितः । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रेधा कर्म फला-र्थिनाम् ॥ यज्ञो दानं तपो होमं व्रतं स्वाध्यायसंयमः । संध्योपास्तिर्जपः स्नानं-पुण्यदेशाटनालयम् ॥ चान्द्रायणाद्युपवासश्चातुर्मास्यादिकानि च । फलमूला-शनश्चैव समाराधनतर्पणम् ॥ इत्यादि समूह कर्म कलियुग में जे लोग करते हैं

ते पाप अरु परिताप के साने होते हैं काहेते जो मन धर्म पर आरूढ़ होइ तौ श्रद्धा सहित निर्वासनिक कर्म करि हरि अर्पण करि मुक्ति को अधिकारी होइ यथा यज्ञ करि पृथु तप करि ध्रुव पूजादि क्रिया करि अम्बरीप इत्यादि तहां धर्म तौ रहा नहीं अधर्म वश श्रद्धा तौ है नहीं फल की चाह ते राजस तामस सहित करते हैं तामें कामवश तिन को अवलोकन क्रोधवश किसीको दण्ड किसीको कुवचन बोलत हैं लोभवश परधन हरण इत्यादि पाप साने तिनको फल उदय होत ताते रुज वियोग हानि संकट इत्यादि अनेक प्रकार की तापैं सानी रहत अर्थात् अनेक विघ्न बने रहत पुनः अनेक संकट सहि जो कर्म करते भी हैं तौ अधर्म के प्रभावते कैसे निष्फल जाते हैं सब कर्म ज्यों सुन्दर फूल फूले तरुवृक्ष अरु फोकट फरनि फले अर्थात् फलन में फोकला देखनेमात्र है अरु अन्तर वाके कछु नहीं इत्यादि कर्मन का परिश्रम व्यर्थ जाता है पुनः श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दन, सेवन, सुमि-रण, दास्यतादि जो भगवत् उपासना है ताको दम्भ जो वेष वचन साधु के ऐसे भीतर लोभ परधन पर ध्यान लाग पुनः लालच नीकि वस्तु देखि मांगना इत्यादि ने तौ उपासना को भली भांति नाश करि दिया काहेते भजन ध्यानादि जो सुन्दरी गति की साधना सो उदर भरनि भई परमार्थ त्यागि स्वार्थ हेतु भई सो भी व्यर्थ २ योग-अष्टाङ्ग करि मन को थिर राखना पुनः समाधि इन्द्रिय मन आदि की वृत्ति बटोरि हरिरूप में थिर राखना इत्यादि निरुपाधि नहीं रुजहानि धर्महानि आदि बाधा लागी रहत समाधि नहीं लागने पावत पुनः विराग जो लोक सुख को त्याग ज्ञान जो आत्मरूप को पहिंचान अर्थात् संसार असार त्यागि आत्मरूप को सत्य जानना इत्यादि वचनमात्र मुखैते कहना पुनः विशेषि कोपीन कमण्डलु आदि वेषै बनाये रहना इतनेही में विराग ज्ञान है अरु बाकी जो करणी है विशेषि कर्तव्यता सो कबहुं नहीं ह्वैसक्ती है इत्यादि मुखते कहनि तौ ऐसी है कि सकल निज निज आचरनि सराहैं अर्थात् विरागादि आपनी आपनी आचरनि जो कर्तव्यता है ताकी सबै प्रशंसा करते हैं यथा हम संसार वृथा जाने हैं देह व्यवहार त्यागे हैं परलोक साधते हैं इत्यादि कहनि है पुनः रहनि कर्तव्यता खोटी है क्योंकि कपटते कोटिन कुपथ चलते हैं भाव वेष तौ विराग कैसो वचन उत्तम साधुन के ऐसे अरु काम क्रोध लोभादिवश अनेकन कुकर्म करते हैं इत्यादि ज्ञानमार्गी हैं २ पूर्व कही रीति साधन तौ सबै व्यर्थ हैं अरु रामनाम को प्रभाव कैसा है कि जहां काशी ऐसी पुरी धर्म की धरणि धर्म उत्पन्न की सुन्दरि भूमिका अर्थात् मुक्ति की खानि ऐसी तौ पुरी पुनः सुरसरि गङ्गाजी जो सुलभै जीवन को कल्याणकर्ता तिनके तीर पुनः सब भांति समर्थ ईश्वर ऐसे शिवजी तिनहूं जीवनको मरत समय काशीजी में कहा उपदेशहि करते हैं भाव रामनामै तौ उपदेश करि सब जीवन को सुलभ मुक्त करि देते हैं यह रघुनाथजी सों वरदान मांगिलिये हैं शिवजी यथा रामतापिन्याम् ॥ श्रीरामचन्द्रस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः। मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्च्चनादिभिः ॥ ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम्। वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ! ॥ इति ततः सत्यानन्दचिदात्मा श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ इति सहोवाच ॥ मणिकर्णिकायां

क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः। म्रियते देहं तज्जन्तोर्मुक्ति नातः परं वरान्तरमिति। अथ सहोवाच श्रीरामः। क्षेत्रेत्र तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः। कृमिकीटादयोप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा। अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये॥ इत्यादि गंगातीर काशी ऐसी पुरी में शिव ऐसे समर्थ तेऊ रामै नाम उपदेश करि सब जीवन को मुक्त करते हैं याते यह सूचित कि जैसे रामनाम के प्रभावते जीवनको सुलभ उद्धार होत तैसे अन्य किसी साधन ते नहीं है सक्ते हैं इस हेतु हर जो महादेव ते रामनाम को प्रताप सदा कहा करते हैं यथा काशीखण्डे॥ पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्। जल्प्यं जल्प्यं प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोपि काशीनिवासी॥ केदारखण्डे शिववाक्यम्॥ रामनामसमं तत्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्। यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोऽमलाम्॥ अध्यात्मे॥ अहोभवन्नामगृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥ पुनः शिवजी आपहू रामनाम सदा जपते हैं यथा आदिपुराणे शिववाक्यम्॥ अहं जपाम्रि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्। श्रीसीतायाः स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदिस्थले॥ स्कन्दे॥ भवन्नामामृतं पीत्वा गीत्वा च भवतां यशः। शिवोहं सर्वदेवैश्च पूजनीयो दयानिधे॥ पुनः रामनाम को प्रताप युगयुगप्रति प्रसिद्ध रहा है सो सब जग जानत है यथा सतयुग में वाल्मीकि नाम उलटा जपि व्याधाते महामुनि भये तथा प्रह्लादद्वारा प्रसिद्धही है त्रेता में शबरी द्वारा द्वापर में श्वपच द्वारा कलि में रैदासादि द्वारा प्रसिद्ध है पुनः वेदहू रामनाम को प्रताप वर्णन करते हैं यथा ऋग्वेदे॥ परंब्रह्म ज्योतिर्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः॥ यजुर्वेदे॥ रामनामजपेनैव देवतादर्शनं करोति॥ सामवेदे॥ रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति॥ अथर्वणे यथा॥ यश्चाण्डालोपि रामेति वाचं वदेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संभुञ्जीयात्॥ इत्यादि सबको सिद्धान्त है यथा पाद्मे॥ न तत्पुराणं न हि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा। स नेतिहासो न हि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्न हि यत्र रामः॥ तथा लोक में विशेषि प्रसिद्ध है ४ और साधन सब काल में सिद्ध नहीं होते हैं पुनः सब जीवनको कल्याण भी नहीं करिसक्ते हैं क्योंकि उत्तम कर्म, योग, ज्ञान, साधन नीच जातिनको अधिकार नहीं पुनः परिश्रम बड़ा ताको होना दुर्घट ताहू में अनेक विघ्न लागते हैं ताते सब साधन को आश भरोसा त्यागि केवल रामनामही सों मति राखै अर्थात् बुद्धि विचार ते रामनाम को माहात्म्य प्रताप जानि उर में दृढ़ करि धरै ताकें बल ते रामनाम सों रति राखै अर्थात् मन, वचन, कर्म, अमल प्रीति सहित सदा रामनाम जपै कबहूं अन्तर न परने पावै तब रामनामही गति अर्थात् भरोसा राखै भाव रामनाम मेरा सब भांति कल्याण करैगो इत्यादि रामनाम की गति कैसी है कि विपत्तिहरणि जीव की यावत् विपत्ति है ताको हरिलेती है अर्थात् रोग, वियोग, हानि, दरिद्रता, राज, चौर, अग्नि, शत्रुकृत संकट इत्यादि जो लौकिक विपत्ति पुनः गर्भवास, यमसांसति आदि जो पारलौकिक विपत्ति इत्यादि सर्व नाशकरि सुखी राखत इत्यादि विचारि रामनाम सों प्रतीति अर्थात् रामनाम निश्चय मेरा कल्याण करैगो इति

दृढ़ विश्वास राखे रामनाम सों प्रीति राखे अर्थात् मन वचन कर्मते प्रेम सहित निरन्तर रामनाम जपा करै तौ तुलसीदास को इस बात का निश्चय है कि कबहूं राम आपनी ढरनि ढरैंगे अर्थात् यथा उलटा नाम जपत सन्ते वाल्मीकि पर ढरे प्रसन्न ह्वै महामुनि बनाइ दिये सुवा के मुख ते सुनि गणिका रामनाम लिये ताको निज धाम दिये यवन भ्रम ते अर्थात् हराम के बहाने रामनाम निसरि आयो ताको यमसांसति छुड़ाइ निज धाम दियो इत्यादि आपनी विरदावली रीति ते अवश्य कबहूं कृपा करैंगे ५॥

(१८६)लाज न लागत दास कहावत।
सो आचरण बिसारि शोच तजि जो हरि तुम कहँ भावत १
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि जप तप याग बनावत।
मो सम मन्द महाखल पामर कौन यतन तेहि पावत २
हरि निर्मल मलग्रसित हृदय असमंजस मोहिं जनावत।
जेहि सर काक कंक बक शूकर क्यों मराल तहँ आवत ३
जाकी शरण जाय कोविद दारुण त्रय ताप बुझावत।
तहूं गये मद मोह लोभ अति सरगहु मिटत न सावत ४
भवसरिता कहँ नाव संत यह कहि औरनि समुझावत।
हौं तिन सों हरि परमवैर करि तुम सों भलो मनावत ५
नाहिंन और ठौर मो कहँ ताते हठि नातो लावत।
राखु शरण उदारचूड़ामणि तुलसिदास गुण गावत ६

टी०। हे श्रीरघुनाथजी! विषय सुख में परा काम तौ विमुखन को करता हौं अरु कहावत हौं आपुको दास तापर मेरे लाज नहीं लागत भाव वही काम पुनः करता हौं क्या काम करता हौं कि विराग विवेक समता श्रवण कीर्तनादि जो आपुको भावते हैं सो आचरण शोच तजि बिसारि अर्थात् जामें आपु प्रसन्न होते हौ सो कर्तव्यता त्यागि विषय सुख में परा हौं ताहूपर कछु शोच नहीं हर्षसहित रहत हौं ताहूपर आपुकी प्रसन्नता चाहत हौं १ इन्द्रिय विषयदेह सम्बन्धी इत्यादि सकल संग तजि विरागवान् ह्वै मन्त्र जप पञ्चाग्नि आदि तपस्या करि यांग बनावत अष्टाङ्ग योग करि मन थिरकरि मुनि मननशील ज्यहि प्रभु को भजते हैं त्यहि प्रभु को मो सम मतिमन्द निर्बुद्धि पुनः महाखल दुष्ट पापी पुनः पामर धर्म कर्मरहित महानीच सो कौन यतन त्यहि पावत अर्थात् अनेक साधन करि देहेन्द्रिय मनआदि शुद्धकरि मुनि जाको हृदय में ध्यान धरते हैं ताही प्रभु को मैं अस नीच दुष्ट निर्बुद्धि कौन यत्नकरि पाइ सक्ता हौं भाव मेरे आचरण सब विमुखता के हैं कैसे प्रभु प्राप्त ह्वै सकै हैं २ काहेते नहीं प्राप्त ह्वैसकै हैं कि हरि निर्मल अर्थात् श्रीरघुनाथजी शुद्धता स्वच्छता अमलता पावनता इत्यादि सब भांति अमल अरु

मेरो हृदय मलग्रसित अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि विषयते काम वश परस्त्री की वासना क्रोधवश परहानि की चाह लोभवश परधन हरणकी चाह इत्यादि मल हृदय में भरा है यह असमंजस मोहिं जनावत मन में दुविधा जानि परत क्या दुविधा आवत कि ज्यहि सर तड़ागविषे काक कौवा कंक चीलहैं बक बगुला शूकर इत्यादि अपावन पशु पक्षी बसते हैं क्यों मराल तहँ आवत त्यहि तड़ाग में हंस कैसे आइ सकेंहैं अर्थात् जिनके हृदयरूप तड़ाग में प्रेमरूप पावन अमल जलभरा समता शान्ति संतोष ज्ञान विराग विवेकादि कमल फूले रामनाम स्मरणरूप मुक्तासमूह तहां रामरूप हंस वास करते हैं अरु मेरा हृदयरूप जो तड़ाग तामें विषय वासनारूप मैला जल भरा परस्त्री चाह विष्ठा है ताते कामरूप शूकर बसत परधन चाह शम्बुक भेक हैं ताहेतु लोभरूप बगुला है परहानि अपवाद मृतक मांस है ताहेतु क्रोध ईर्षा काक कंक बसत तहां राघवरूप हंस कैसे आवहिंगे यह असमंजस है पुनः कामादि जीवके संगी कैसे पुष्ट अचल हैं सो आगे कहत ३ कोविद जो हैं वेदवेदान्त सिद्धान्त तत्त्वज्ञाता विद्वान् बुद्धिवन्त तेऊ जो ईश्वर की शरण जाइके दारुण त्रयताप बुझावत अर्थात् ज्वरादि दैहिक हानि वियोग आदि दैविक शत्रु चौरादि भौतिक इत्यादि महाकठिन जो तीनिहु तापैं हैं तिनको हरि शरणागतिरूप जल में बुझाइ डारते हैं तहूं भगवत् शरणागतौ में गये जीवके संग में मद अर्थात् जाति विद्या महत्त्वादि में मन का हर्ष पुनः मोह अर्थात् देहाभिमान ते लोकसम्बन्ध सुख की सत्यता पुनः लोभ परधन हरने पर ध्यान इत्यादि अति सबल बनेरहते हैं तौ वही मसल है कि सरगहु गये सावत सवतिया वैर नहीं मिटत अर्थात् एक सत् पुरुष के कई स्त्री हैं जब वह मरा सब सती ह्वै पतिसंग स्वर्गको गईं तहाँ सवति भाव नहीं मिटिसक्ता है काहेते पति की प्यारी सबै हैं अरु सबको अवलम्ब एकै पति है ताते जहँ रहिहैं तहँ परस्पर विरोध बने रहो तथा प्रवृत्ति निवृत्ति दोऊ जीव की प्रियपत्नी हैं जहां जीव जाई तहां दोऊ संगही रहैंगी तिनको परस्पर विरोध बनेरहैगो अरु प्रवृत्ति के पुत्र हैं मोह, काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, गर्व, मद, अधर्मादि बहुत परिवार हैं तथा निवृत्ति के पुत्र विवेक, विचार, धैर्य, संतोष, सत्य, शील, वैराग्य, धर्मादि बहुत परिवार हैं सो जहँ जीव जात तहँ दोऊ के परिवार संगहीं रहत ताते हरिशरणागती में मोहादि जीवके संगहीं रहत ४ मोहादि सदा संगही रहत ताते आपकी शरणागति में भी मेरा स्वभाव ऐसा है कि सन्तजन भवसरिता जो नदी ताको तरिवे हेतु नाव है भाव प्रीतिपूर्वक सन्तनकी सेवा कीन्हेते सहजही जीव भव ते पार ह्वै जाता है यह बात सिद्धान्तकरि औरनिको तौ समुझावत हौं पुनः मैं कैसा हौं हे हरि, श्रीरघुनाथजी ! तिन सन्तनसों वैर करि परम कहे अत्यन्त दुर्भावते कुटिलता करि अवगुण कहा करत हौं ताहू पर तुमसों भलो मनावत हौं तौ आपने प्यारे सन्तनके विरोधीको भलो कैसे करौगे कारण यह कि आपसों भलो चाहत यह तौ शरणागति है तहाँ क्रोधादि संगही हैं ताके वशते उहां आपके सेवकनते वैर करताहौं ५ जो हमारे सेवकनते वैर करते हौ तौ हमारे सनेही नहीं हौ क्यों हमसों भलो चाहते हौ तापर कहत हे प्रणतपाल ! मों कहँ और कहाँ बैठनेको

ठौर नहीं है ताते हठि नातो लावत अर्थात् जबरदन आपको सम्बन्धी बनता हौं ताते शरण में राखिये काहेते उदारचूड़ामणि हौ अर्थात् पात्र कुपात्र कछु न विचारै याचकमात्र को परिपूर्ण दान देवै ताको उदार कही तिनमें आप शिरोमणि हौ अरु तुलसीदास आपके गुण गावत भाव याचना करत हौं आपनी उदारता करि कुयाचक को भी दान दीजिये शरण राखिये ६॥

(१८७) कौन यतन विनती करिये।

निज आचरण विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये १
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिये।
जाते विपतिजाल निशि दिन दुख तेहि पथ अनुसरिये २
जानतहूं मन कर्म वचन परहित कीन्हें तरिये।
सो विपरीत देखि परसुख विनु कारणही जरिये ३
श्रुति पुराण सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये।
निज अभिमान मोह ईर्षा वश तिन्हहिं न आदरिये ४
सन्तत सोइ प्रिय मोहिं सदा जाते भवनिधि परिये।
कहो अब नाथ कौन बल ते संसार शोक हरिये ५
जब कब निज करुणास्वभाव ते द्रवहु तो निस्तरिये।
तुलसिदास विश्वास आन नहिं कत पचि पचि मरिये ६

टी०। रामसनेहिनके आचरण एकहू नहीं हे श्रीरघुनाथजी! कौन यत्न ते आपसों विनती करौं गर्ज सुनावौं काहेते निज आचरण भाव विषयी विमुखन के ऐसे आपने सब कर्म विचारि तिनको फल करालदण्ड चाहिये इत्यादि जानि हियेते हारि मानि डरिये सम्मुख आवत डरतहौं विनती कैसे करौं १ काहेते सम्मुख होत डरत हौं हे हरि, श्रीरघुनाथजी! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दनादि ज्यहि साधन कीन्हेते आपनो जन जानि द्रवहु प्रसन्न होतेहौ सो हठि परिहरिये श्रवण कीर्तनादि कारण भये पर भी हठि करिकै मिटाइ देता हौं तौ कैसे आप प्रसन्न होउ पुनः परधन परस्त्रीहरण परहानि परअपवाद कामवार्ता इत्यादि जा आचरण ते हानि वियोग रुज दरिद्रता शत्रु संकटादि विपत्ति जालसमूह निशिदिन रातिउ दिन महादुःख होवे त्यहि पथ अनुसरिये जाको फल महादुःख ताही कुमार्गपर चलत हौं २ पुनः यह बात वेद पुराण करिकै भलीभांति जानत हौं कि मन करिकै कर्म करिकै वचन करिकै परार हित कीन्हेते तरिये भाव जब धर्मबुद्धि होई तब भव तरिवे के सब साधन बनि जाइँगे सो परहित दयाबुद्धि त्यहिते विपरीत उलटे आचरण करता हौं कौनभांति कि परसुख देखि विना कारणही जरि मरत हौं ३ श्रुति वेद तथा पुराणादि सब सद्ग्रन्थनको यह मत है कि सत्संग दृढ़ धरिये अर्थात् सब ग्रन्थनमें लिखा है कि सन्तन को संग पुण्ता सहित कीन करिये यह विधि है पुनः निषेध क्या कीजिये कि निज अभि-

मान् अर्थात् आपनी बड़ाई पर चित्त उन्नति करना पुनः मोह देहाभिमान ते लोक की सत्यता पुनः ईर्षा जननते विरोध राखना इत्यादि के वश होना तिन्हहिं न आदरिये अर्थात् अभिमान मोह ईर्षादि मन में न आवने पावै भाव सब विकार त्यागि सत्संग करि ईश्वर में-मन लगावना चाहिये तब भवसागर तरिये सो तौ कहू नहीं ४ पुनः जाते भवनिधि परिये अर्थात् परधन परस्त्री परापवाद परहानि आदि जा कर्मन के कीन्हेते भवनिधि भवसागर में परिये सोई कर्म सदा दिनौ-राति संतत निरंतर जामें अन्तर नहीं परत ऐसे मोको प्रिय हैं भाव तन मन ते सदा पापै कर्मन में लाग रहत हौं तब हे नाथ! कहौ अब कौन बलते संसार को शोक जन्म मरणादि दुःख ताको कौन बलते हरिये नाश कीजै अर्थात् संसार दुःख छूटने को कछु भी उपाय नहीं ह्वैसक्ता है तब किसको भरोसा राखिये ५ हे श्रीरघुनाथजी! नामके अवलम्ब आपके द्वारपर परा हौं निज करुणा अर्थात् सेवकन को दुःख देखि आप दुःखित ह्वै शीघ्रही सेवक को दुःख हरि सुखी करना इत्यादि जो आपना करुणा स्वभाव है त्यहिते अब अथवा जब कबहुँ द्रवहु प्रसन्न होउ कृपा करहु तौ तो निस्तारिये भवसागर उतारिदीजै तौ तौ भले पार ह्वैसक्ता हौं नातरु तुलसीदास को आन दूसरे किसी साधन को विश्वास नहीं है भव पार जानेको ताते कत पचि पचि मरिये भाव वृथा परिश्रम करि करि काहेको मरि मिटिये केवल नाम अवलम्ब है ६ ॥

(१८८) ताहि ते आयों शरण सबेरे।

ज्ञान विराग भक्ति साधन कछु सपनेहु नाथ न मेरे १
लोभ मोह मद क्रोध बोधरिपु फिरत रैनि दिन घेरे।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथरत फिरै तिहारेहि फेरे २
दोषनिलय यह विषय शोकप्रद कहत संत श्रुति टेरे।
जानतहूं अनुराग तहां अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ३
विष पियूष सम करहु अगिन हिम तारिसकहु बिनु बेरे।
तुम सम ईश कृपालु परमहित पुनि न पाइहौं हेरे ४
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यहि विपति बागुरो तुम सों बनिहि निबेरे ५

टी०। ज्ञान जो आत्मरूप की पहिचान ताके साधन यथा विराग लोकसुख को त्यागना विवेक लोक व्यवहार असार त्यागि आत्मरूप सारांश ग्रहण करना पुनः शम वासना त्याग दम, इन्द्रिय विषयते रोकना उपराम विषय ते विमुख रहना तथा तितीक्षा दुःख सुख सम जानना श्रद्धा वेदान्त में विश्वास समाधान मनादि थिरतादि षट् सम्पत्ति पुनः मुमुक्षुता मेरी मुक्ति निश्चय होइगी इत्यादि पुनः भक्ति के साधन भागवते॥श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ इत्यादि कछु साधन मेरे सपनेहू में नहीं हैं ताते हे नाथ।

रघुनाथजी ! सबेरे मरणकाल के पूर्वही आपकी शरण आयों याहीमें निस्तार को भरोसा है दूसरो उपाय नहीं १ काहेते दूसरो उपाय नहीं है कि लोभ परधन हरनेपर ध्यान मोह देहाभिमान ते लोक की सत्यता पुनः मद जाति विद्या धनादि पाइ हर्ष बढ़ावना क्रोध अकारण सबसों वैर करना पुनः बोध, रिपु, अज्ञान, जड़ता, हानि, लाभ न विचारना इत्यादि रातिउ दिन मोको घेरे फिरत स्वाधीन कीन्हे रहत तिनहिनमें मिलेरहेते मन कुपथ रत भयो परापवाद परधन परस्त्री इत्यादि पर प्रीति करत सो तिहारे फेरे फिरै आपकी प्रेरणाते विषय त्यागि आपके सन्मुख होई २ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि यह जो इन्द्रियनके विषय हैं सो दोषनिलय अर्थात् अवगुणनको भरा मन्दिर है इसीते पापकर्म होतेहैं ताको फल दुःख इत्यादि विचारि सन्तजन तथा श्रुति वेद टेरे पुकारे कहत कि दोष मन्दिर यह जो विषय हैं सोई शोकप्रद दुःखन को प्रकर्ष करिकै देनहारी है यह जानत हौं तबहूं जहां इन्द्रियनके विषय देखतहौं तहां अत्यन्त अनुराग करताहौं सो तुम्हारेही प्रेरे है हरि ! यह आपही की प्रेरणाते मन विषय में आसक्त होत नातरु जानिकै कैसे दुःख को व्यापार करतो जान को अज्ञान अजान को जान करि देना यह आपकी शक्ति है ३ कैसी शक्ति है कि विष को जो चाहौ तौ पियूष अमृत सम करहु यथा आपके नाम के बलते शिवजी हलाहल पानकरि अमर भये तथा अग्नि को चहौ तौ हिम पाला सं शीतल करिदेउ यथा प्रह्लाद आपको नाम लेत सन्ते अग्नि में न जरे पुनः बिनु बेरे तारिलकहु अर्थात् कर्म ज्ञान भक्ति आदि नाव जहाज़ बेरा बिनाके एकबार नाम लीन्हे भवसागर उतारि देते हौ यथा अजामिल यवनादि महापापी तारेउ ऐसे अकारण जीवनके परम हितकार कृपालु कृपागुण मन्दिर तुमसम ईश हे श्रीरघुनाथजी ! आपसम ईश्वर कृपालु परम हित सो यथा या जन्म में पायों तथा जन्मान्तर भये पर पुनः हेरे न पाइहौं ४ जन्मान्तर में आप को न पाइहौं यह जीव ते जानिकै सब तजि सब साधन को आश भरोसा त्यागिकै हे श्रीरघुनाथजी ! आपहीके भरोसे रहिहौं अर्थात् नाम के अवलम्ब आपही के द्वारपर परा रहिहौं किसहेतु कि मोहादिके वशते मन कुपथी भयो ताते विषयन में प्रीति भयेते अनेक पाप कर्म करि जन्म मरणादि दुःख में परेउ यहि विपत्तिरूप बागुर फन्दा में तुलसीदास परा है सो तुमसों निबेरे छोरे बनिहि भाव जो मैं द्वारे परा हौं तौ आप अवश्य मेरा कल्याण करौगे ५ ॥

(१८६) मैं तू अब जान्यो संसार।

बांधि न सकहि मोहिं हरि के बल प्रकट कपटआगार १
देखतही कमनीय कछु नाहिंन पुनि पुनि किये विचार।
ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकरत सार २
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार।
महामोह मृगजल सरिता महँ बोरो हौं बारहिं बार ३
सुनु खल छल बल कोटि किये वश होहिं न भक्तउदार।

साहित सहाय तहां बसि अब जेहि हृदय न नन्दकुमार ४
तासों करहु चातुरी जो नहिं जाने मर्म तुम्हार।
सो परि मरै डरै रजु अहितें बूझै नहिं व्यवहार ५
निजहित सुनु शठ हठ न करहि जो चहहि कुशल परिवार।
तुलसिदास प्रभुके दासन्ह तजि भजहि जहां मद मार ६

टी०। हे संसार! मैं तू मैंने तोको अब जान्यउँ भाव अबतक तोको सांचो मानि तेरेही में परारहा अब तेरा यथार्थरूप पहिचानि लिये अर्थात् सर्वथा तू वृथै है हे कपटआगार, कपटभरा मन्दिर! अबतक तेरा कपट गुप्त रहा तामें भूला मैं बँधारहा अब तेरा कपट प्रकट भया मैं जानि लिया ताते हरि केवल रघुनाथजी की शरणागति को बल मेरे है ताते अब तू मोंको न बांधि सकहिगो वृथा श्रम क्यों करताहै १ हे संसार! कैसा तेरा रूप है कि देखतमात्रही कमनीय सुन्दर तू देखाता है अरु पुनि पुनि बारम्बार विचार करनेते तेरेमें कछु भी सारांश नहीं कौन भांति ज्यों कदली तरु केला के वृक्षमध्य निहारत चीरिकै देखत सन्ते सार कबहूं नहीं निकरत अर्थात् ऊपर तौ सब बकले हैं जामें फल लागत ताहूको चीरे भीतर कोमलै गूदा होत तथा संसार में राज्य, धन, धाम इत्यादि सब देखनेमात्र हैं निश्चय किसी वस्तु के रहने की नहीं है भ्रममात्र ही सब शोभा देखात मरेपर कछु संग नहीं जात तथा जीवतही सब नाश ह्वै जात यथा भागवते॥ रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा महीकुञ्जरकोषभूतयः। सर्वेऽर्थकामाःक्षणभंगुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः २ हे संसार! तेरे लिये अर्थात् संसारी सुखके हेतु मैं अनेक जन्म धरत मरत सन्ते चौरासी लक्ष योनिरूप आवर्त में फिरतै रहेउँ पार कबहूं नहीं पायों संसारसागर को पार न मिला भाव जो सांचा सागर नदी होइ तौ कबहूं कहीं पार मिलवै करै इहां महामोह मृगजल अर्थात् यथा रविकिरण को मृगा जल माने तृषावश धावा करत कहीं वार पार नहीं पावत तैसही देहाभिमानते झूंठी संसार पदार्थ को सांची माने इति महामोहरूप मृगजल है जामें ऐसी सरिता नदी में हौं कहे मोंको वारहुवार बोरो अर्थात् सुरासुर नरादि जे चैतन्य देहैं पावत तावत् उतरात हैं अरु पशु, पक्षी, कीट, तरु, तृणादि देहै बूड़ना है ३ हे खल, संसार! सुनु काम लोभादि दश बीस नहीं जो छल बल ते कोटिन किये अर्थात् देखावमें सुखद हितकार बनि स्वाधीन करि पीछे शत्रु बनि वध बन्धन करै ताको छल कही यथा सुन्दरि स्त्री, धन, लाभ देखाइ काम लोभ बढ़ाइ स्वाधीन करि दुःख देना पुनः जो शत्रुता देखाइ बरबस बांधि दण्ड करै सो बल है इत्यादि करोरिन छल बल करनेते उदार सरल भक्त वश नहीं होते हैं ऐसा विचारि मेरी फिकिरि में न परौ अब तुम कामादि सहाय सेनासहित तहां जाइ बसौ ज्यहिके हृदय में नन्दकुमार अर्थात् भगवान् न वास किहे होइँ भाव विषयी विमुखनके उरमें बसौ ४ सुन्दर युवती सुवर्णपूजा लिहे मेरे पास पठावतेहौ यह छल चातुरी तासों करौ जो तुम्हार मरम गुप्त भेद न जानता होइ मैं तुम्हार सबहाल जानतहौं

ताते तुम्हारे फन्दमें न परेंगो काहेते रज्जु अहिते रसरी के सर्पते सो डरिमरै जो याको व्यवहार आदि कारण न बूझै न समुझै होइ अर्थात् जो पूर्वको व्यापार जानेहै कि इस ठौर रसरी डारि दीगई है सोई परी है यह सर्प नहीं तैसेही जे लोकव्यवहार जाने हैं कि सदा झूंठा है ते संसार को सांचा कवहूं न मानैंगे ५ हे शठ, संसार ! हठ न करहि मेरी फिकिरि में न रहु जो निज आपने परिवार की कुशल चहु तौ निज आपने हित की वात सुनु अङ्गीकार करु क्या अङ्गीकार करु कि तुलसीदास के प्रभु जो श्रीरघुनाथजी तिनके दासनको तजि रामानुरागी भक्तनको छांड़िकै उन जननको तू आपने फन्द में डारु जहां मदमार भजहिं अर्थात् जहां लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य सेवन करते होइँ तिनको फन्दन में डारि बांधु तव तेरी कुशल है अरु रामभक्तनको बांधने जाइगो तहां तेरा परिवारसमेत नाश होई ६ ॥

राग गौरी।

(१६०)राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
नहिं तो भववेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे १
बांस पुरान साज सब अठकठ सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहलकरि कुटिल करमचँद मंद मोल विनु डोला रे २
विषम कहार मार मदमाते चलहिं न पांव बटोरा रे।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ३
कांट कुराय लपेटन लोटन ठांवहिं ठांव बझाऊ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज वास न भेंट लगाऊ रे ४
मारग अगम सङ्ग नहिं संवल नांव गांव कर भूला रे।
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे ५

टी०। पूर्व संसार को अनादर किये ताको क्रोधित जानि अब जीव को सजग करावत कि यह संसार राजा की राज्य है इहां जो जीव आवता है ताको राजा वेगारि पकरि लेत पुनः कवहूं छोड़ता नहीं है अरु सांचे रामसेवकन को नहीं पकरिसक्ता है ताहू में वेष देखि तथा वचन सुनि नहीं छोड़ता है जब अन्तरीते सांचा रामसेवक जानि लेते हैं तव नहीं पकरते हैं ताते सेवकन की जो उपासना-मार्ग है तापर चलु रे भाई, जीव ! कौन भांति चलु प्रथम कर्म करि राम राम कहत चलु अर्थात् यावत् देह बुद्धि है तावत् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दन, दास्यता इत्यादि सेवक सेव्य भाव ते नाम जपु याके प्रभावते जब देहाभिमान छूटै जीवबुद्धि आवै तब प्रभु को अंशी जानि अपना को अंश मानि सख्यभावते अमल प्रेमसहित राम राम कहत चलु काल व्यतीत करु ताके प्रभावते जब जीवत्व त्यागि आत्मबुद्धि आवै तब प्रभु को आनन्दसिन्धु जानु तिनहीं को एक बुन्द अपना को जानि आत्म प्रभु पर वारन करि पराभक्ति ते अचल अनुराग

सहित राम राम कहत चलु तब संसार तोको पकरि न सकहिगो अरु सहजही प्रभु के समीप प्राप्त होइगो इत्यादि करु तौ तौ प्यारा भाई है नहीं तौ अर्थात् जो पूर्व तन करेगा तौ रे तुच्छ, जीव ! जामें पूर्व परे रह्यो ताही भवबेगारि में परिहौ तौ अब छूटव अत्यन्त कठिनाई है अर्थात् अबहीं छूटना सहज है क्योंकि प्रतिकूल नहीं भये रहे अब प्रभु को सेवक बनि संसार को अनादर करि चुके अब जो प्रभु को सांचा सेवक न ठहरे तौ संसार पकरि ऐसे पुष्ट बन्धन डारैगा जाते कबहूं न छूटि सकौगे १ जिस बेगारि में पुनः परैगा सो पूर्व की अबहीं वर्तमान है सो देखिले जो तेरे पर बोझा है अर्थात् ईश्वर ते विमुख विषयासक्त है जिस देह को तू चन्द्रडोला जानि सुखी रहना सवारी मने है सोई मन्दडोला तेरे ऊपर बोझा है पुनः सुगन्ध, वनिता, वसन, भोजन, पान, भूषण, वाहनादि जाको तू सुख माने है सोई तोको दुःखरूप हैं ज्यों ज्यों सुख की चाह बढ़ती है त्यों त्यों तेरे पुष्ट बन्धन परत जात जन्म मरणादि दण्ड हैं जो संसार को सांचा माने सोई भवबेगारि है पुनः जो विषयते विमुख है ईश्वर में आसक्त हो तौ यही देह सुन्दर चन्द्रडोलाकी सवारी सुखपूर्वक रामधाम को ले जाई यथा ईश्वरप्राप्ति की नवीन वासना सोई जामें नये बांस सत्य, शौच, तप, दान, चारि पावा सद्-ग्रन्थावलोकन अक्षोभ रहन द्वै पाटी धैर्य क्षमा द्वै सिरवा श्रद्धारूप रस्सीते बीना शमता, शान्ति, संतोष, विचार, चारि खंभा शील छतुरी उदारता उहार इति सुभग साज सहित सुकर्मरूप बढ़ई को बनावा देहरूप अमोल चन्द्रडोला है बड़ी सुकृत धन दीन्हे ते पाइ तापर जब जीव सवार भया तब हरियश श्रवण आगे मार्ग देखावनेवाला है तथा कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन इति आठौ कहार सुखपूर्वक ले चलनेवाले हैं विराग, विवेक, ज्ञान, विज्ञान, सुभट रक्षक हैं पुनः प्रेमाभक्ति ईश्वर के समीप पहुँचाइ देनेवाली है पराभक्ति ईश्वर के समीप सदा सुखपूर्वक राखनेवाली तथा जब जीव ईश्वर ते विमुख विषयी भयो तब यही देह मन्दडोला है जामें किंचित् तेज प्रकाश नहीं है काहेते जामें बांस पुरान हैं पुनः पावा पाटी आदि साज सब अठकठ अर्थात् टूटे फाटे सरे उखरे अथवा आठ छः चौदह सब गनती में हैं पुनः तीनि कोन को खटोला सरल मगध देशबोली ते सरा पुनः ताको कुटिल कर्मरूप बढ़ई ने करि अर्थात् बनाइकै चन्द्रडोला नाम कहि विना मोल सेंतिही हमहिं दिहल अर्थात् दीन्हे सो विचार करि देखे ते मन्दडोला किसी काम को नहीं सेंतिहु महँग है क्योंकि जीव को दुःखरूप है अब रूपक यथा अनादि काल ते जीव में जो विषय-सुख की वासना हैं सोई पुरान बांस हैं पुनः आदि प्रकृति महातत्त्व अहंकार ये तीनि पाटी हैं अरु रजोगुण तमोगुण सतोगुण ये तीनि पावा हैं इति षट्वस्तुन करिकै तीनि कोन को खटोला है पुनः अश्रद्धा अर्थात् आलसरूप रस्सी ते बीना इन वस्तुन में पुष्टता किसीमें नहीं क्षण में सबल क्षणै में अबल इसीते खटोला सरा कहे पुनः खटोला में तीनि कोन तब तीनिही खंभा चाहिये सो शब्द, स्पर्श, रूप ये तीनि खंभ हैं गन्धविषय छतुरी है रस उहार है पुनः मन, चित्त, बुद्धि में विषयमय जो वासना है सोई तीनिहु कोनन में तीनि बांस हैं इति आठ वस्तु

ऊपर की साज में हैं ताको बनावनहार असत् कर्म जो अनेकन जन्म ते जीव करि रहा है तिनहीं के फल भोग हेतु अवश्य जीव को देह धरना परत इति कुटिल कर्मरूप बढ़ई ने बनाइके विना जीव की चाह बरबस विना मोलही दिया सो विपर्यो दृष्टि ते देह की सुन्दरता सोई सुभग चन्द्रडोला करि मान्यो तथा देह में लोक सुख देखि आपनी सुखद सवारी मान्यो सोई विवेक ते विचारे पर देह मन्दडोला दुःखद है जीव के ऊपर भार लदा है काहेते देहैं के सुखहेतु अनेक कर्म करि ताके फल भोग हेतु जीव अनेकन योनिन में जन्मत मरत सोई भार विचारते हैं २ अब जो विपर्यो दृष्टि ते देहको सवारी सम सुखद माने है ताही को विवेकदृष्टि ते भार सम दुःखद देखावत तथा चन्द्रडोला में गनतीते सम कहार चारि आठ इत्यादि लागते हैं पुनः पाय बटोरे पउदरि मिलाये एकमन है सीधे चलते हैं अरु इस देहरूप मन्दडोला में विषम कहार हैं अर्थात् पांचौं इन्द्रिय पांच कहार हैं ते मार जो काम भाव आपनी विषयन की कामना ताही मद में माते हैं ताते पांउ बटोरे नहीं चलत जहां आपनी विषय देखत हैं धावत अर्थात् डोला में द्वै कोना आगे एक पाछे तामें आगे दहिनी दिशि तमोगुण कोना है तहां तमोगुणी मनकी वासनारूप बांस है तामें आगे श्रवणेन्द्रिय कहार हैं सो जहां शब्दविषय देखत तहां धावत ताके पीछे नेत्रेन्द्रिय कहार सो जहां रूपविषय देखत तहां धावत पुनः वामदिशि आगे रजोगुण कोन है तहां रजोगुणी चित्त की वासनारूप बांस है तहां आगे जिह्वा इन्द्रिय कहार है सो जहां षट्रसविषय देखत तहां धावत ताके पीछे त्वचा इन्द्रिय कहार है सो जहां स्पर्शविषय देखत तहां धावत इत्यादि सबल चारिउ कहार पुनः विषय कामना मद में माते चारिउ चारि राहनको चलते हैं पुनः डोला में पीछे सतोगुणी कोना है तहां सतोगुणी बुद्धि की वासनारूप बांस है तहां केवल एक नासिका इन्द्रिय कहार है सो जहां गन्धविषय देखत तहां धावत इत्यादि पांचौं कहार बली मतवारे हैं ताते लोकरीति जो सुलभ सामान्य मार्ग तथा वेदरीति जो परम सुलभ विशेषि राजमार्ग इत्यादि त्यागि जब इच्छानुकूल अपनी अपनी ओर चले तब विषम भूमि अर्थात् अनीति अधर्म मार्ग में परे तहां कैसी विषम भूमि है कहीं मन्द खाली भूमि अर्थात् जहां तमोगुणी वासनाहै यथा परहानि देखना पर अवगुण अपवाद सुनवे परस्त्री परधन हरण देखना इत्यादि पुनः कहीं बिलन्द ऊँची भूमि अर्थात् रजोगुणी चाह यथा भूषण, वसन, वाहन, राज्य, धन, धाम, उत्तम भोजन, परलोक में स्वर्ग इत्यादि प्राप्तिके व्यापार करना पुनः अभेरा जहां खाईं करार देवारादि मार्गके समीप ऊंची भूमि है चलतसमय जहां धक्का लागत पुनः दलकनि अधिक कीचर अथवा नदीआदि तट दलदल अर्थात् सतोगुणी वासना में जहां गुरुजनकृत उपाधि सहन सो अभेरा है जहां विशेषि धर्मसंकट सो दलकनि है इत्यादि त्रिगुणात्म इन्द्रियनकी विषयवासना में धावत खाले ऊंचे ठोकर दलदल आदिके झकझोरा पेंचापेंची में जीव अत्यन्त दुःख पाइ-यत चिन्ता हानि वियोग संकटादिते स्वतंत्रता नाश होत ३ पुनः कुराहमें चलते बबुर बैभरा पेला मकोय गुखुरू आदि कांटा ठौर ठौर पांयनमें गड़त कपरा फारत देह में गड़िजात तथा क्रोधते परहानि करते वा लोभते चोरी ठगी बरवारी आदि

पकरेगये दण्डबन्धन अपमानादि लौकिक कांटा वा सुखद व्यापार में अनेक विघ्न लागत तेई कांटा सम वा स्वाभाविक हानि वियोगादि कांटा सम लागत वा जन्म मरणादि दुःख कांटा हैं पुनः नदी में जल भीतर कुराय नामे सघन विस्तार सहित एक बेलि होती है ताकी लपेटन पांयनमें ऐसी लपटि जाती है जासों चलि नहीं सकत तथा कामवश परस्त्रीआदि नदी हैं तिनकी प्रीति कुरायसम इन्द्रियन में लपटि जाती है तासों छूटना दुर्घट अथवा देहव्यवहार में ममता कुराइ सम लपटी है पुनः वन में लोटन एक तृण होत सो सब देह में लपटिजात तथा अनेक व्यापार जीवमें लपटे रहत इत्यादि देहसम्बन्धते जीवको ठावँ ठाँव जन्म जन्मप्रति वझाउ बन्धन होत पुनः जस जस चलिये अर्थात् ज्यों ज्यों चौरासीमें जन्मत मरत जाइये त्यों त्यों आपने पूर्व धामते दूरि होत जाइये अर्थात् देवता मनुष्यतनलौं नेरे हैं जब पशु पक्षी कीट वृक्षादि में जात तब दूरि होत जात पुनः निज आपने वास-स्थान के लगाऊ लगके रहनेवाले तिनहुनते भेंट नहीं होत अर्थात् मनुष्यतनतक साधु गुरुको संग होताहै अन्य योनिनमें नहीं मिलतेहैं ४ मार्ग अगम अर्थात् सुन्दर संगी उत्तम सवारी राजमार्ग में चलन साथ खर्चा इत्यादि सब अनुकूल होइँ तब सुलभ ठेकानेपर पहुँचिजाइ अब इहां देहरूप मन्द डोला तामें कहार मदमाते मार्ग छांड़ि कुपथ चलते हैं तहां खाले ऊंचे ठोकर दलदल कांट कुराइ इत्यादि रास्ता अगम भाव सुगम घर जानेको अभाव अर्थात् घर पूर्व में औ जाना पश्चिम तहाँ सजातीते भेंट नहीं पुनः संबल राहको खर्चा संग नहीं अर्थात् सुकृतरूप परि-पूर्ण धन पास नहीं अथवा ज्ञान विरागादि सुन्दर धन नहीं पुनः जहांको जाना उचित है उस गांव को नामै भूलिगया अर्थात् जो नाम जाने रहत तौ पूछत पूछत चलाजात जो नामै भूलिगया तब केवल हरिकृपैते पहुँचना है अन्य उपाय नहीं अर्थात् आदिकारण मायावश आत्मरूप भुलाइ जीव भया तब बुद्धि के वश त्रिगु-णात्म अहंकार भया सात्त्विकते देवता राजसते इन्द्रिय तामसते विषय इति कार्य माया इन्द्रिय विषय के वश करि दिया शब्द, स्पर्श, रूप तक ज्ञान रहा रसते विमुख भया गन्धते जीव विषयी भया विषयसंग ते कामना बढ़ी कामहानि ते क्रोध क्रोध ते मोह मोह ते अचेत चैतन्यता गये बुद्धिनाश ते जीव नाश भया ॥ यथा गीता-याम् ॥ ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते । संगात्संजायते कामः कामा-त्क्रोधोऽभिजायते ॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ इत्यादि जीव नाश भया ताको केवल ईश्वर-कृपैते कल्याण इसहेतु कहत कि हे श्रीरघुनाथजी ! अब अनुकूल होहु कृपादृष्टि करि तुलसीदास की जो भवत्रास जन्म, मरणादि भय ताको हरहु शरण राखहु ५ ॥

(१९१) सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह ।
तातें भवभाजन भयो सुनु अजहुँ सिखावन येह १
ज्यों मुख मुकुर विलोकिये अरु चित न रहे अनुहारि ।
त्यों सेवतहु न आपने ये मातु पिता सुत नारि २

दै दै सुमन तिल बासिकै अरु परिहरि रस लेत।
स्वारथहित भूतल भरे मन मेचक तनु सेत ३
करि बीत्यो अब करत हौं करिबे हित मीत अपार।
कबहुँ न कोउ रघुबीर सों नेह निबाहनहार ४
जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहिंचानि।
तातें कछु समुझै नहीं कहा लाभ कह हानि ५
सांचो जान्यो झूंठ कै झूंठे कहँ सांचो जानि।
को न गयो को न जात है को न जैहै करि हित हानि ६
वेद कह्यो बुध कहत हैं अरु हौंहुँ कहतहौं टेरि।
तुलसी प्रभु सांचो हितू तू हियेकी आंखिनहेरि ७

टी०। सहजसनेही राम जे सहजस्वभावते जीवनपर कृपादृष्टि राखे ऐसे सहजसनेही कृपासिन्धु श्रीरघुनाथजीसों हे जीव ! तू सहज सनेह न कियो अर्थात् विमुख है विषयासक्त भयो ताते भवभाजन जन्म मरणादि संसारी दुःख को पात्र भयो सो जो गया सो जानदे अजहूं अबहूं मेरा कहा येहु यह सिखावन सुनु अङ्गीकार करु १ क्या सिखावन है सो कहत ज्यों मुकुर में मुख विलोकिये यथा शीशा में आपने मुखकी प्रतिबिम्ब देखिये सो आपने मुख को सुख स्वरूपतादि व्यापार साधन हेतु देखनमात्र है अरु वाकी अनुहार अर्थात् प्रतिबिम्ब की चेष्टा चित्त में नहीं रहता बेप्रयोजन समुझि तुरतही भूलिजात अर्थात् आपने स्वार्थमात्र वाको देखना है नातरु सर्वथा वृथा जाने है त्योंही माता, पिता, स्त्री, पुत्र इत्यादि यावत् सम्बन्धी हैं ते सेवतहू आपने करि न जानिये अर्थात् सब अनुकूल है सहज सनेहसहित जो सदा सुखदायक व्यापार में लगेरहैं अरु कबहूं प्रतिकूल न होवैं तबहूं उन लोगन को सांचा सम्बन्धी मानि ममता न कीजिये भाव परमार्थ के सबै बाधक हैं केवल आपने आपने स्वार्थ के साथी हैं ऐसा निश्चय जानि किसीमें अपनपो न मानु २ कैसे सब स्वार्थ के साथी हैं यथा सुमन दै दै अर्थात् एकपात्र में तरे बेला चँबेली गुलाबादि के सुगन्धित फूल धरते हैं तापर तिलधरि तापर फूल पुनः तिल फूल इसीभांति कई तह दै बन्द करि राति भरि धरिराखते हैं प्रभात वे फूल निकारि नये फूल उसी भांति देते हैं ऐसेही फूल दै दै चारि पांच बार तिलवासिकै अर्थात् फूलनकी सुगन्ध तिलनमें प्रवेश करिकै तब तिन तिलन को पेरते हैं इस भांति वाकी खरी परिहरि त्यागिकै तिलनको रस जो सुगन्धित तैल ताको लेत तथा देहरूप तिलन में अनेक व्यञ्जन, अन्न, घृत, दुग्ध, दधि इत्यादि सुगन्धित फूलनको दै दै पुष्टता बासिकै सुखद व्यापार में पेरिकै आपना स्वार्थरूप रस सब लेते हैं पुनः वृद्धावस्था तथा व्याधि आदि देखि जहां जानिलिये कि सिवाय भोजन और किसी काम के नहीं रहे तबै

खरीसम त्यागिदेते हैं कोऊ वाके निकट नहीं जात इत्यादि स्वार्थी हितकार तौ भूतल पृथिवी परभरे हैं परन्तु मन मेचक नाम काला है अरु तन सेत नाम उज्ज्वल है अर्थात् स्वार्थमात्र सब ऊपरही ते सनेही बने हैं अन्तर कोऊ आपना नहीं यथा नारदजी एक साहूकारते कहा कि संसार में कोऊ आपना नहीं है इसहेतु सबको स्नेह त्यागि भगवत् में सनेह करौ जामें परलोक बनै साह ने कहा हमारे स्त्री पुत्र पतेहैं पौत्रादि सब सुखदायक हैं क्यों उनको त्यागैं तैसे नारद की प्रेरणा ते साह के पेटमें कराले पीड़ा उपजी किसी उपाय ते न मिटी तब नारद दूध बतासा घोरि धरे अरु कहे कि जो याको पीवे सो मरिजायगा साह अच्छे ह्वै जायँगे ताको पीनेवाला कोऊ न ठहरा तब नारद कहा तुम्हारी मौत हम लेते हैं ऐसा कहि पीगये तीर्थ पर को मरने चले साह आराम ह्वै पठावने चले जब साह लौटने को कहे तब नारद कहा तीर्थपर तक चलो वहांते जब बिदा मांगे तब नारद कहा घर में तेरा कौन है जाके हेतु जाता है भगवत्भजन करु इत्यादि ३ भूतकाल में करि बीत्यो अर्थात् जब जहँ जन्म धरै तब तहँ स्वार्थी अनेक मित्र कीन्हे तथा अब स्वार्थिनते मित्रता करत हैं तथा आगेभी मित्रता स्वार्थ करिबे हित अपार बहुत मीत होइँगे परन्तु बिनु स्वार्थ जीवको कल्याणकर्ता मीत जहान में कोऊ नहीं है बिन स्वार्थ जीवके हितकार एक रघुनाथैजी हैं रघुनाथजीकी समान नेहको निबाहनहार कोऊ कबहूं नहीं है ४ जासों सब नाते फुरैं अर्थात् जा प्रभुकी कृपाते गर्भवास में रक्षा होत पुनः जाकी कृपा बालकुमारादि अवस्था होत तब माता पिता बन्धुको जानत पुनः बिवाहते स्त्री जानत प्रभुकी कृपाते पुत्र पौत्रादि मिले तब अनेक सम्बन्धी भये इत्यादि जाकी कृपा ते सुन्दर तन पायो निरुज देह बुद्धि विद्या भई सब सुखसम्बन्धी भये इति जा श्रीरघुनाथजीकी कृपासों सब नाते सांचे देखाते हैं तासों पहिचान न करी अर्थात् जिनकी कृपाते सब भांति सुखी समर्थ भये ऐसे कृपासिन्धु रघुनाथजी सों प्रीति सम्बन्ध न कीन्हे विमुख ह्वै विषय में आसक्त भये इस कारण जड़ ह्वै गये ताते आपना दुःख सुख कछु नहीं समुझत हैं कि काह लाभ है पुनः काह हानि है भाव प्रभु सों प्रीति करु तौ लौकिक पार-लौकिक सबै सुख तोको लाभ है पुनः विमुख भये सबै सुख की हानि है सो तोको नहीं सूझत ५ क्या नहीं सूझत सो कहत सांचो जो आत्मरूप सदा अखण्ड आनन्द ताको झूंठकै जान्यो भाव आतम कछु वस्तुइ नहीं है पुनः झूंठे संसार देहसम्बन्ध कहँ सांचु जान्यो यथा हम ब्राह्मण हम क्षत्रिय इत्यादि झूंठे को सांचा जानि आपना हित कल्याण ताकी हानि करि पूर्वको जीव भवसागर में को न गयो तथा देहाभिमान करि वर्तमान में को नहीं जात है तथा आत्मरूप भुलाइ देहै व्यवहार को सांचामानि भविष्यकाल में को जीव न भवसागर को जैहै भाव ईश्वर को भुलाइ देहाभिमानी ह्वै तीनि काल में जीव को कल्याण नहीं है ६ बिना संसार की आशा छांड़े बिना रघुनाथजीकी शरण गये जीव को कल्याण नहीं है इत्यादि बचन वेद कह्यो तथा बुध वेदतत्त्व ज्ञाता यही कहतेहैं पुनः गोसाईंजी कहत कि महूं टेरि पुकारिकै कहत हौं पुनः तू हियकी आंखिन हेरि हे जीव! तोहूं ज्ञानदृष्टि ते देखु प्रभु सांचो हितू है अर्थात् तेरे सांचे हितकर्ता रघुनाथैजी हैं ७॥

(१९२) एक सनेही सांचिलो केवल कोशलपालु।
प्रेमकनौड़ो राम सों नहिं दूसरो दयालु १
तनु साथी सब स्वारथी सुर व्यवहार सुजान।
आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान २
नाद निठुर समचर शिखी सलिल सनेह न शूर।
शशि सरोग दिनकर बड़े पयद प्रेमपथ क्रूर ३
जाको मन जासों बँध्यो ताको सुखदायक सोइ।
सरल शील साहब सदा सीतापति सरिस न कोइ ४
सुनि सेवा सहि को करै परिहरै को दूषण देखि।
केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग विशेखि ५
खग शबरी पितु मातु ज्यों माने कपि को किये मीत।
केवट भेंट्यो भरत ज्यों ऐसो को कहु पतित पुनीत ६
देइ अभागहि भाग को को राखे शरण सभीत।
वेद विदित विरदावली कवि कोविद गावत गीत ७
कैसेउ पामर पातकी जेहि लई नाम की ओट।
गांठी बांध्यो राम सो परख्यो न फेरि खर खोट ८
मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज।
सो तुलसी कियो आपनो रघुबीर गरीबनिवाज ९

टी०। जीवनके सुलभ कल्याणकर्त्ता सांचे सनेही केवल एक कोशलपाल हैं भाव यावत् भूतल में विचरे तावत् मार्गमार्ग पतित जीवनको पावन करतफिरे पुनः यावत् राज्य कीन्हे तावत् प्रजन को सब सुख दीन्हे पुनः जब परधामको चले तब चराचर को साथही लेगये इत्यादि कोशलपाल रघुनन्दन महाराजै एक जीवमात्र के सांचे सनेही हैं जिनकी समान दूसरा नहीं है काहेते प्रेम को कनौड़ो प्रेमीजनन को दबाव माननेवाले एक रघुनाथैजीहैं ऐसो दयालु दूसरो नहीं है १ काहेते रघुनाथजी की समान दयालु निर्हेतु जीवनको दुःख मिटावनहार दूसरा कोऊ नहीं है कि माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्रादि यावत् तनु साथी देहसम्बन्धी हैं ते सब स्वार्थी स्वार्थ के मीत हैं व्याधि जरादि दुःख में कोऊ साथी नहीं पुनः सुर देवता व्यवहार में सुजान चतुर हैं अर्थात् यज्ञ पूजा जपादि विधिपूर्वक करने ते यथायोग्य फल देत अरु अविधि भये पर हानि करते हैं तब दया कहां है अरु आरत जो दुःखपीड़ित अधम जो पापी अनाथ जाको सहायक कोऊ नहीं इत्यादिकन को हितकार रघुनाथजी की समान दयालु को है अर्थात् कोऊ नहीं निर्हेतु दीननको दुःखहर्त्ता रघुनाथैजी हैं २ औरहू प्रेमिन के स्वामी दयाहीन हैं यथा

नाद गान बाजा को शब्द सो मृगाप्रति निठुर है अर्थात् व्याधा वीणादि बाजा बजाइ गान करत ताको सुनि मृग मोहित हैजात तैसे बाणते मारिदेत इति मृगा तौ प्रेमी अरु नाद वाके बचावनेकी उपाय नहीं करत इति नादनिठुर निर्दयी है ताही सम चर आचरण करनेवाला शिखी दीपक सोऊ पतंगप्रति निठुरहै अर्थात् पांखी तौ धाइ दीप में देह जरावंत अरु दीप वाके बचावनेकी उपाय नहीं करत ताते दीपकौ निठुर है पुनः सलिल जल भी सनेहपथ में शूर नहीं अर्थात् मीन तौ जल विन पलमात्र नहीं जी सक्ती है ऐसी प्रेमी है अरु जलैमें प्रवेशकरि लोग मछरी को मारि लेतेहैं तहां जल मछरिन को बचावनेकी उपाय नहीं करत ताते कादर है भाव आपने शरण की रक्षा नहीं करता है पुनः शशि सरोग चन्द्रमा क्षयीरोग सहित पुनः कलंकित है इति अवगुण त्यागि चकोर तौ प्रेम सहित देखते रहत उसी विह्वलता में वाको वधिक पकरि लेता है सो चन्द्रमा रक्षा नहीं करत पुनः दिनकर सूर्य तथा पयद मेघ ये दोऊ प्रेमपथ में बड़े क्रूरहैं सनेहीपर दुखद व्यापार करते हैं अर्थात् कमल तौ ऐसा प्रेमी कि विना सूर्यन को देखे प्रफुल्लित नहीं होत अरु सूर्य कैसे क्रूर हैं कि जलसूखे पर कमलको भस्म करिदेते हैं तथा चातकतौ ऐसा प्रेमी है कि सब जल त्यागि केवल स्वाती मेघन के जलबुन्द की आश राखत अरु मेघ कैसा क्रूर है कि पाथर बर्षत ताते नाद दीपक जल चन्द्रमा सूर्य मेघ ये छवो प्रेमपथ में क्रूर हैं भाव आपने प्रेमीपर दया नहीं करते हैं पुनः मृगा, पतङ्ग, मछरी, चकोर, कमल ये छवो प्रेमपथ में शूर हैं भाव प्राणगयेतक प्रेम नहीं छांड़ते हैं ऐसेहू सांचे प्रेमिनके स्वामी निर्दयी हैं तौ निर्हेतु कौन दया करैगो ३ पूर्व कहे हुये स्वामी जो निर्दयी हैं तौ प्रेमी क्यों नहीं मन फेरि लेते हैं तापर कहत कि जाको मन प्रेमबन्धन सों जा स्वामी सों बँध्यो अर्थात् जाको मन जिसमें लागि-गयो ताको सोई सुखदायक है अर्थात् वामें दुःखौ होत तवहूं सुखै मानिरहत ताते मनु नहीं फेरत ऐसेही रीति ते जो चहै सो तामें सनेह करै ताको कौन समुझावै परन्तु सदा सरल सहज शीलमय स्वभाव अर्थात् नीच ऊंच कोऊ सन्मुख आवै सबको सन्मान करि बड़ाई देना ऐसा रघुपति सरिस साहब प्रीति पालनहार दूसरा कोई नहीं है ४ काहेते श्रीरघुनाथजी की समान कोऊ नहीं है कि को ऐसा दूसरा है जो सेवककृत परोक्ष सेवा और के मुखते सुनि सही करै सांची सेवकाई मानिलेवै पुनः को ऐसा है जो सेवकनके दूषण अवगुण आपनी आंखिन देखि परिहरै दूषण भुलाइ देवै अर्थात् सेवक के अवगुण देखे भुलाइ देना अरु सुनी सेवाको सत्य मानिलेना ऐसे क्षमावन्त अरु कृतज्ञ एक रघुनाथजी हैं दूसरा नहीं है पुनः क्यहि दीवान क्यहिके दरबार में दिनप्रति दीनन को आदर तथा दीनजनपर अनुराग रहत अर्थात् एक रघुनाथजी विशेषि दीनजनन पर अनुराग राखते हैं ताते उनहीं के दरबार में प्रतिदिन नित नवा दीनजनन को आदरभी होताहै अन्ते नहीं है ५ खग जटायु ज्यों पिता तथा शवरी ज्यों माता माने तथा कपि वानरन को सखा इत्यादि सेवाय रघुनाथजी और दूसरा को किया तथा केवट नीच को भरत ज्यों प्रियबन्धु की समान उर में लगाइ भेंटेउ ऐसे पतितनको पुनीत पवित्र करनेवाला दूसरा कौन है अर्थात् दीन-

दयालु पतितपावन अधमोद्धार सिवाय रघुनाथजी और दूसरा नहीं है जो ऐसे अधमन को उद्धार करै ६ पुनः को ऐसा दूसरा है जो अभागहि भाग देइ अर्थात् रघुनाथजी ऐसे दयालु सबल समर्थ हैं कि जाकी भाग्य में सुख की छींट नहीं ऐसेहू अभागी सुग्रीव को पूर्णभाग्य सबप्रकार को सुख दीन्हे पुनः और को ऐसा है जो सभीत सडरको शरण अर्थात् रघुनाथजी ऐसे शरणपाल हैं कि जाको रावण के डरते कोऊ राखि नहीं सक्ता रहै ऐसेहू विभीषणको शरणमें राखे ऐसी विरदावली पतितपावन धानाकृत व्यापारनको माला वेदमें विदितहै पुनः ताहीके गीत कथाप्रबन्ध व्यास वाल्मीक्यादि कवि तथा कोविद विद्वान्जन सदा गावते हैं अथवा कवि कोविद संहिता पुराण रामायणादि द्वारा गावते हैं अरु आपनी रुचि अनुकूल गीतन में सब जाति गावते हैं ऐसी विरदावली लोक में विदित है ७ कैसहू पांवर नीच वा पातकी पापकर्मनको भरा पात्र है ज्यहि नाम की ओट लई रामनाम की अवलम्ब पकरिलिया सो खरा है वा खोटा है ऐसा विचारि फिरि परखें नहीं रघुनाथजी वाको गांठी में बांधिलिये भाव शुद्धहृदय है अथवा अशुद्ध है सो न विचारे नामकी ओट देखि वाको तुरतही शरण में राखिलिये यथा वाल्मीकि गणिका यमनादि इनमें कौन खरा रहा है नामांकितते खरे ह्वैगये सोऊ पुराणनद्वारा प्रमाण प्रसिद्ध है यथा वृहद्विष्णुपुराणे॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥ पाद्मे ॥ सकृदुच्चारयेधस्तु रामनाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ८ आपनीद्वारा प्रसिद्ध प्रमाण देखावत कि मैं कैसा कुटिल पापभाजन रहौं जासु कृत काज जाके कियेहुये पापकर्मनको सुनिकै कलियुग विषे औरहू लोगन के मन मलीन ह्वै किल्बिषी होत भाव मेरे कर्म देखि उनहूंके मनकुमार्गी ह्वै महापापकर्म करने लागत ऐसा कुमार्गिनको आचार्य सोऊ तुलसीदास को रघुबीर गरीबनिवाज आपनो कियो अर्थात् कलियुगी मैं हम ऐसे अधमन को नाम की अवलम्बते गुण अवगुण कछु न विचारे रघुनाथजी आपनी शरण में राखिलिये यह लोकशिक्षात्मक है सब आश त्यागि रामनाम जपौ ६॥

(१६३) जो पै जानकीनाथ सों नातो नेह न नीच।
स्वारथ परमारथ कहां कलि कुटिल बिगोयो बीच १
धर्म वर्ण आश्रमनि के पैयत पोथिहि पुराण।
करतब बिनु बेष देखिये ज्यों शरीर बिनु प्राण २
वेद विदित साधन सबै सुनियत दायक फल चारि।
राम प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर सरिता बिनु बारि ३
नाना पथ निर्वाण के नाना विधान बहु भांति।
तुलसी तू मेरे कहे जपु राम नाम दिन राति ४

टी०। विमुख विषयी ह्वै अन्यसाधन करि सुख चाहता है ताते हे नीच। तुच्छ बुद्धि जीव जो पै जो निश्चय करिकै जानकीनाथ सों नातो नेह न भाव

सेवक सेव्यभावते रघुनाथजी में प्रीति न कीन्हे तौ अन्य साधनते स्वार्थ लौकिक सुख तथा परमार्थ पारलौकिक सुख कहां है कैसे लाभ होइगो काहेते कालिकुटिल वीचही बिगोयो अर्थात् साधन अन्त तौ होइ न पावेंगे कुटिल स्वभाववालो कलियुग वीचही में सब धर्म कर्म नाश करिदेइगो फलप्राप्ति कैसे होइगी १ काहे ते जानिये कलि वीचही बिगोयो कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि चारिवर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि चारि आश्रम इति वर्णाश्रमनि के जो जो धर्मनके कर्म हैं यथा ब्राह्मण क्षत्रिय को धर्म सत्य, शौच, तप, दान, वैश्य शूद्र को धर्म सत्य, शौच, दया, दान इत्यादि अनुकूल ब्राह्मणकर्म ॥ गीतायाम् ॥ शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ पुनः क्षत्रिय के यथा ॥ शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम् ॥ वैश्य कृषी, वाणिज, गोरक्षा, शूद्र-तीनि वर्ण की सेवा ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, गुरुसेवा, गृहस्थ, अतिथिसेवन, कुटुम्बपाल, वानप्रस्थ, इन्द्रियजित् वन में तप करै संन्यासी सदा असंग ब्रह्मविचार में तत्पर रहै इत्यादि धर्म कर्म कलिकाल ने लोप करि दिये ताते कर्त्तव्यता तौ यथार्थ किसी में है नहीं केवल पुराणादि ग्रन्थन में, लिखी हैं सोई सुनि पड़यत है अरु करतब बिन अर्थात् कर्मन के यथार्थ आचरण तौ किसी में हैं नहीं केवल वेष मात्र कैसे देखिये ज्यों विना प्राणन को शरीर शून्य किसी काम को नहीं ऐसे संन्यासादि वेष देखनमात्र हैं २ पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दान इत्यादि कर्मसाधन यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि इति योगसाधन शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान इत्यादि षट्सम्पत्ति तथा विवेक, विराग, मुमुक्षुता इति ज्ञान के साधन तथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यता, सख्य, आत्मनिवेदन इति भक्ति साधन इत्यादि सबै साधन वेदशास्त्र पुराणादि ते लोक में विदित हैं तिनको प्रभाव सुनियत है कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इत्यादि चारिहु फलन के दायक अर्थात् साधननते चारिहु फल लाभ होते हैं परन्तु राम प्रेम विना अर्थात् रघुनाथ जी के चरणारविन्दन में जो प्रेम नहीं है तौ रूखे सब साधन कैसे असार हैं जैसे सर सरिता विना वारि अर्थात् तड़ाग नदी विना जल के तैसेही सब साधन जानिबो भाव किसी को कछु प्रयोजन नहीं है सक्ता है वृथाही परिश्रम है ३ निर्वाण जो मोक्ष सो जीव को प्राप्त होने के नाना पंथ अनेक मार्ग हैं तिनके अन्तर नानाविधान अनेक प्रकार विधि हैं ताहू में बहुत प्रकारके कर्म हैं बहुपथवज्रसूच्याम् ॥ "सांख्या वैष्णववैदिकाविधिपराःसंन्यासिनस्स्मार्त्तिकाःसौरा नीलपटाश्च बोध निरता बौद्धा जिनाःश्रावकाः। शैवाः पाशुपताः महाव्रतधराः कालीमुखा जंगमा गाणेशाः सकलेप्टदं गणपतिं ध्यायन्ति चित्तेनिशम् ॥ शाक्ताःकौलकुलात्मचारनिरताः कापालकाः संभखाः आचार्यावत्कुक्षिता द्रुतरता नग्नव्रतास्तापसाः। नानातीर्थनिषेवका जपपरा मौने स्थिता नित्यशश्चार्वाकाश्चतुराःस्वतर्कनिपुणा देहात्मवादेरताः ॥" तिनमें अनेक विधान यथा ॥ सावयववस्तुज्ञानं मोक्ष इति केचित् । शास्त्रार्थनिर्दिष्टाचारकरणं मोक्ष इति केचित् । मनोवाञ्छाविकल्पविच्छेदलक्षणो

मोक्ष इति केचित्। मनःपवनध्येयध्यानधारणकरणं मोक्ष इति केचित्। दृश्यादृश्योभयज्ञानाभावो मोक्ष इति केचित्। महावाक्यविवरणं मोक्ष इति केचित् अस्ति नास्तीत्युभयज्ञानविच्छेदो मोक्ष इति केचित् सोऽहंभावस्मरणं सत्त्वं मोक्ष इति केचित्। स्वात्मानन्दबोधमयो मोक्ष इति केचित्॥ इति ज्ञानपथ में अनेक विधान पुनः कर्मपथ मद्यमांसास्वादनसुरतक्रीडाविलासविभ्रमानन्दमयो मोक्ष इति केचित् नानातीर्थयात्राजपहवनदानव्रतैरेव मोक्ष इति केचित्॥ पुनः भक्ति में विधान एकदेशिकसिद्धान्तकथितभक्तिविधानं मोक्ष इति केचित्॥ तामें अनेक कर्म यथा नारदसूत्रे॥ पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः। कथादिष्विति गर्गः आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः। नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारतातद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति इत्यादि अनेकपथ मुक्ति हेतु हैं तिनको भरोसा छांड़ि हे तुलसी के जीव! मेरे कहेते तू राति दिन रामनाम जपु ४॥

(१९४) अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होय।
कहँ तू कहँ कोशलधनी तोकों कहा कहत सब कोय १
रीझि निवाज्यो कबहिं तू कब खीझि दई तोहिं गारि।
दर्पण वदन निहारिकै सुविचार मान हिय हारि २
बिगरी जन्म अनेक की सुधरत पल लगै न आधु।
पाहि कृपानिधि प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु ३
बालमीकि केवट कथा कपि भील भालु सनमान।
सुनि सन्मुख जो न राम सों तिहि को उपदेशहि ज्ञान ४
का सेवा सुग्रीव की का प्रीति रीति निरबाहु।
जासु बन्धु बध्यो व्याध ज्यों सो सुनत सोहात न काहु ५
भजन बिभीषण को कहा फल कहा दियो रघुराज।
राम गरीबनिवाज के बड़ी बांह बोल की लाज ६
जपहि नाम रघुनाथ को चर्चा दूसरी न चालु।
सुमुख सुखद साहिब सुधी समरथ कृपालु नतपालु ७
सजल नयन गदगद गिरा गहवर मन पुलक शरीर।
गावत गुणगण राम के केहि की न मिटी भव भीर ८
प्रभु कृतज्ञ सर्वज्ञ हैं परिहरु पाछिली गलानि।
तुलसी तोसों राम सों कछु नइ न जान पहिंचानि ९

टी०। हे जीव! विमुख है जो गया सो जानदे अजहूं आपने अरु रघुनाथजीके करतब समुझत संते तेरा हित होइगो कैसे करतब कि कहां तू अधम अपावन कुसेवक है पुनः कहां कोशलधनी श्रीरघुनाथजी सबल समर्थ सुलभ उदार

उत्तमस्वामी तिनसों सवन्ध योग्य तू नहीं है सो तोको सब कोई कहा कहत हैं भाव ब्रह्मादिकनके पूज्य श्रीरघुनाथजी तिनको गुलाम तुलसीदास है यह राम-सम्बन्ध वड़ी भाग्य ते भया है यह विचारु स्वाभाविक तोको रघुनाथजी आपनो माने हैं १ काहेते जानिये प्रभु आपनो माने हैं सबै प्रभुन की यहै रीति है कि जो स्वाभाविक सेवक काम कीनकरता है तव स्वामी भला बुरा कछु नहीं कहता है अरु जो विशेषि काम करता है तब प्रसन्नह्वै मौज देत अरु जो कछु काम विगारत तब नाराज ह्वै दण्ड देत सो रीति विचारु रीझिकै रघुनाथजी तोको कव निवाज्यो भाव तेरी विशेषि सुन्दर सेवकाई देखि कब रघुनाथजी प्रसन्न ह्वै कब तोको उत्तम बनाइ ऊंचापद दियो इसकारण आपनी सेवकाई में दूषण विचारु पुनः तेरी सेवकाई में विशेषि खोटाई मानि खीझि नाराज़ ह्वै कब रघुनाथजी तोहिं गारी दई भाव नीचा बनाइ तेरा अपमान किया इसकारण ते प्रभु तोको त्यागे नहीं हैं आपना गुलाम करि जाने हैं जब तोसों विशेषि सुन्दर सेवकाई बनै तब तौ प्रसन्नता दर्शित होई इस हेतु आपनी खोटाई समुझि मिटाइदे कौनभांति दर्पण वदन निहारि अर्थात् आपने मुखादिकी कुरूपता स्वरूपता आपना को नहीं देखात इस हेतु दर्पण में देखत तैसेही आपने दूषण अपना को नहीं देखात इसहेतु बुद्धि विवेक नेत्रन सों ज्ञानरूप दर्पण में वदन निहारि जीवकी शुद्धता देखि सुन्दरी प्रकार त्रिचारि भाव आपने दूषण समुझि हियेमें हारि मानि दूषण मिटाइ डारु सज्जनन-के लक्षण धारण करु॥ यथा सवैया॥ शील उदार दया बुधि कोमल तोष क्षमा सम-भाव कियेहैं। ज्ञान विराग जितेन्द्रिय राग मुमूक्षुन रीति शमादि हियेहैं॥ आपु अमान सुमानद दानद सत्य सुपावन नेमलियेहैं। रामसनेह सबैजसुनाथहि सद्गुण सज्जनके तकियेहैं॥ पुनः महारामायणे॥ अन्ये विहायसकलं सदसद्धकार्यं श्रीरामप-ङ्कजपदं सततं स्मरन्ति। श्रीरामनामरसनाग्रपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽप्यथ हृष्टलोमः॥ सीतायुतं रघुपतिं च किशोरमूर्त्तिं पश्यन्त्यहर्निशमुदा परमेण रम्यम्। शान्ताः समानमनसश्च सुशीलयुक्तास्तोपक्षमागुणदयामृजुबुद्धियुक्ताः॥ विज्ञान-ज्ञानविरतिः परमार्थवेत्ता निर्धामकोऽभयमनाः सच रामभक्तः॥ इत्यादि लक्षण जो परिपूर्ण होइँ सोई जीव की सुन्दर स्वरूपता है इनते प्रतिकूल जे कुलक्षण होइँ सोई कुरूपता है तिसको विचारिकरि कुरूपता यावत् कुलक्षण होइँ तिन सबको मिटाइ परिपूर्ण सुलक्षणयुत स्वरूपता सहित जीव प्रभु की सेवा में तत्पर रहु २ जो अवगुण त्यागि शुद्ध ह्वै सनेह सहित प्रभु की सेवकाई करु तौ जो अनेकन जन्म की बिगरी है ताके सुधरत में आधी पलक की देर न लागी अर्थात् शुद्ध-सन्मुख होतही अनेकन जन्म के जो संचित पापकर्म हैं ते सब नाश ह्वै जाइँगे शुद्ध साधु बनाइ रघुनाथजी शरण में राखेंगे काहेते प्रणतपालता प्रभु की सना-तन रीति है कौनभांति कि जो सब आश भरोसा त्यागि दीन अधीन ह्वै सन्मुख आइ प्रेमसों कहा कि हे कृपानिधि! पाहि अर्थात् शरण हौं मेरी रक्षा करौ ऐसा कहनेवाले कौनको रघुनाथजी उत्तम साधु नहीं किया भाव यह तौ प्रभु की प्रतिज्ञै है यथा॥ चौपाई॥ सन्मुख होय जीव म्वहिं जबहीं। कोटिजन्म अघ नाशौं तबहीं॥ तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य त्यहि साधु समाना॥ पुनः वाल्मीकीये॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ३ त्यहि प्रतिज्ञा की प्रमाण देखावत यथा बाल्मीकि व्याधा रहे हिंसकी क्रिया ते जीविका रही ते उलटा नाम जपि महामुनि भये पुनः केवट नीचजाति जाके कुलै मैं हिंसाव्यापार है ताको दर्शनमात्र ते चरणोदक दै कुलसमेत पावन कीन्हे पुनः कपि चंचल पशु पुनः भालु तामसी कराल पशु तिनको सखा मानि सन्मान कीन्हे लोक मैं बड़ाई परलोक मैं मुक्ति दीन्हे तथा भील महाअधम तिनको सेवक मानि सन्मान कीन्हे पावन करि परमपद को अधिकारी कीन्हे इत्यादि सुलभ उदार प्रभु की प्रणतपालता की कथा सुनि जो रघुनाथजीके सन्मुख न भया त्यहि जड़जीव को कौन ज्ञान उपदेश करिसक्ता है भाव उनको कल्याण किसी जन्म मैं न होई ४ सुग्रीवने प्रभुकी क्या सेवकाई किया अर्थात् प्रणाममात्रै तौ किया पुनः दोऊ दिशिते प्रीति रीति को निर्वाह कौन प्रकार ते भया अर्थात् प्रभुतौ परिपूर्ण प्रीति की रीति निर्वाह कीन्हे अरु सुग्रीव परिपूर्ण नहीं निर्वाह कीन्हे काहेते सुग्रीव को दुःख देखि प्रभु अपना दुःख भुलाइ दिया मित्र के दुःखको मिटावने के व्यापार में लगे दया वीरताते नीतिरस ऐसा भूलिगये कि जासु बन्धु व्याध ज्यों वध्यो अर्थात् सुग्रीव के बन्धु बालिको व्याधा की नाईं वृक्ष की ओट छिपिकै प्रभु मारे सो सुनत काहू को सुहात नहीं भाव सब अनीति न विचारे ऐसा अयश सहि सुग्रीव को परिपूर्ण सुख दीन्हे अरु सुग्रीव आपने सुख मैं परि प्रभुको दुःख भूलिगये तब कैसे प्रीति निर्वाहे तथा सेवकाई भी कछु नहीं ताते पूर्व प्रणाममात्र ते प्रभुलोक में ऐश्वर्य सहित सबभांति को सुख दीन्हे अन्त में परधाम को लेगये उत्तम यश दीन्हे ५ पुनः विभीषण को भजन कहा राक्षस तामसी तन लंका कुसंग मैं वास विषयव्यवहार में लीन कौन भजन करि सक्तारहै अर्थात् प्रणाममात्रै तौ शरण आयो ताको रघुराज महाराज कहा फल दियो अर्थात् महाऐश्वर्यमय अकण्टक लङ्का को राज्य दीन्हे कल्पभरि जीवन अन्त मैं मुक्ति को अधिकार दीन्हे ऐसे गरीबनिवाज रघुनाथजी हैं पुनः आपने बोल की अरु बांह देवेकी बड़ी लाज है भाव सुग्रीव को बांह दै शरण राखे बोल बालि को मारने को कहे ताको मारि सुग्रीव को राजा बनाये तथा विभीषण को बांह दै राखे लंकेश करि बोलाये ताको सब सुख दीन्हे इति लाज है ६ हे जीव! ऐसे गरीबनिवाज श्रीरघुनाथजी को नाम जपु दूसरी चरचा न चालु दूसरे किसी साधन को नाम न ले सबको आश भरोसा त्यागिः केवल रामनाम की अवलम्ब गहु काहे ते श्रीरघुनाथजी सुमुख सुखद हैं अर्थात् सब भरोसा त्यागि जो सन्मुख आवत ताको सब प्रकार को सुख देत भाव प्रणतपाल हैं पुनः सुधी सुंदर बुद्धि साहिब हैं भाव सुन्दर शुभ बुद्धिकर्त्ता पुनः शूरता वीरता तेज बल प्रतापादि सब भांति समर्थ हैं भाव सर्वोपरि स्वामी हैं पुनः कृपालु जीवमात्र के रक्षक हैं सबही को पालन करते हैं पुनः नतपाल जो प्रणाममात्र करत ताको विशेषि पालन करते हैं ऐसे स्वामी को नाम प्रेम सहित जपु स्वाभाविक तेरा कल्याण करैंगे ७ काहे ते तेरा कल्याण करैंगे सदा सबही को कल्याण करत आये कौन भांति कि जे सजल-नयन प्रेमकी उमंगते नेत्रन में आंशु भरे पुनः गद्गद गिरा कण्ठारोध ते वचन रुके

मन गहर संभ्रम शरीर पुलक रोम खड़े ऐसी प्रेमा दशाते रघुनाथजी के गुणन के गण गावतसंते कयहि की भवभीर नहीं मिटी भाष असंख्यन को कल्याण होत आवत तैसेही तेरा भी कल्याण होइगो संदेह मति करु न काहेते संदेह न करु प्रभु कृतज्ञ हैं थोरिही सेवा को बहुत मानि लेते हैं पुनः सर्वज्ञ हैं सबके अन्तर बाहिर की बात जानते हैं ताते हे जीव! पाछिली गलानि परिहरु पूर्व जो विमुखता कीन्हे ताकी गलानि त्यागिदे अब शुद्ध है प्रभु की शरणागती गहु काहेते हे तुलसीदास! भाव देहाभिमानी जीव तोसों अरु श्रीरघुनाथजी सों नई पहिचान नहीं है भाव इसी जन्म को सम्बन्ध नहीं है सेवक सेव्यभाव अनादि कालते चला आवा है वा बहुते जन्मनते सम्बन्ध है ताते प्रभु आपना जाने हैं ६॥

(१६५)जोअनुराग न रामसनेहीसों। तो लह्यो लाहुकहानरदेहीसों १
जो तनु धरि परिहरि सब सुख भयसुमति रामअनुरागी।
सो तनु पाइ अघाइ किये अघ अवगुण अधम अभागी २
ज्ञान विराग योग जप तप मख जग मुद मग नहिं थोरे।
राम प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृगजल जलधि हिलोरे ३
लोक विलोकि पुराण वेद सुनि समुझि बूझि गुरु ज्ञानी।
प्रीति प्रतीति रामपदपङ्कज सकल सुमङ्गलखानी ४
अजहुँ जानि जिय हारि मानि हिय होय पलक महँ नीको।
सुमिरु सनेह सहित हित रामहिं मानु मतो तुलसीको ५

टी०। हे जीव! जो रामसनेही सों अर्थात् जीवमात्र के निर्हेतु रक्षा करनेवाले ऐसे जीवन के परमसनेही श्रीरघुनाथजी सों जो अनुराग न कीन्हेउ तौ नरदेही सों कहा लाभ लह्यो मनुष्य तनु धरेते कौन पदार्थ लाभ भयो भाव वृथै तौ खोइ दीन्हेउ १ काहेते वृथा खोयो कि जो मनुष्य तनु धरिकै ऐसा चाहिये कि सुगन्ध, वनिता, वस्त्र, गीत, ताम्बूल, भोजन, वाहन, भूषण, राज्यादि सबप्रकार को सुख तथा शत्रु, चौर, यमराज इत्यादि भय डर त्यागिकै पुनः इन्द्रिय मनादि की वृत्ति बटोरि सुमति सहित राम अनुरागी होना चाहिये यह नरतनु धरे को लाभ है सो मनुष्यतनु पाय काम, क्रोध, लोभ, मद, अहंकारादि अवगुण धारण करि पुनः परस्त्री, परधन, परअपवाद, चोरी, हिंसा, परहानि इत्यादि पाप अघाइकै कीन्हेउ ऐसा अधम महापातकी तथा अभागी अर्थात् सुखद भाग्यहीन दुःखको पात्र महाअभागी है २ ज्ञान अर्थात् देहाभिमान त्यागि आत्मरूप को सत्य जाने रहना पुनः विराग अर्थात् स्वर्ग पर्यन्त लोकसुख को त्यागे रहना पुनः यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि अष्टाङ्ग योग विधिवत् मन्त्र, जप पञ्चाग्न्यादि तपस्या मख अश्वमेधादि इत्यादि मुदमग जीव को आनन्द पदप्राप्ति के पथ थोरे नहीं जगमें बहुत परमार्थ पथ हैं परन्तु बिनु रामप्रेम सब नेम जाय अर्थात् जो रघुनाथजी में प्रेम नहीं है तौ सब साधननकी श्रम वृथा है कौन भांति जैसे मृगजल रविकिरण में झूंठा जल मृग को देखात

ताको भरा जलधि समुद्र तामें हलोरे गोता मारे केवल ताप लाभ है तैसे राम-सनेह विना सब साधन श्रममात्र हैं यथा रुद्रयामले ॥ ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः । जपं तपं दया शौचं शास्त्राणामवगाहनम् ॥ सर्वं वृथा विना येन शृणु त्वं पार्वति प्रिये । भागवते ॥ श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये । तेषामसौ क्लेशलएव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ३ विना रामभक्ति किसीभांति जीवको कल्याण नहीं है इत्यादि लोक में विलोकि देखि लिये पुनः वेद पुराणन ते सुने पुनः गुरु ते अरु ज्ञानी जननते बूझि पूछिकै जानिलिये अंतस में निश्चयकरि धारण किये कि रामपदपङ्कज की प्रीति तथा प्रतीति सो सकल सुमंगल की खानि है अर्थात् आपने कल्याण की प्रतीति राखे जो रघुनाथजी के पदकमलन में प्रीति किहे रहै तौ सबप्रकारके मंगल उत्पन्न होतेहैं ४ हे जीव! तुलसी को मतो मानु दृढ़करि अंगीकार करु क्या अंगीकार करु कि जो आयु व्यर्थ गई सो जानदे अजहूं जो मैं कहेउँ सो पुष्टकरि जियते जानि सेवकाई में जो कसरि होइ ताकी हियेते हारि मानि अर्थात् सब दूषण त्यागि शुद्ध ह्वै सनेहसहित हित रामहि सुमिरु अर्थात् सब आश भरोसा त्यागि अमल हृदयमें प्रेम सहित श्रीरघुनाथजी को नाम स्मरणरूप को ध्यान गुणनको गान करु तौ होइ पलकमहँ नीको भाव अनेकन जन्म के पाप कर्म जो तेरे संचित हैं ते सब नाश ह्वै जाइँगे परिश्रम करने में वार न होइगी एक पलकमात्र में तेरा कल्याण ह्वै जाइगो ५ ॥

(१६६) वलि जाउँ हौं राम गुसाईं । कीजिये कृपा आपनी नाईं १
परमारथ सुरपुर साधन सब स्वारथ सुखद भलाई ।
कलि सकोप लोपी सुचाल निज कठिन कुचाल चलाई २
जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नितनव विषाद अधिकाई ।
रुचि भावती भभरि भागहि समुहाहिं अमित अनभाई ३
आधि मगन मन व्याधि विकल तनु वचन मलीन झुठाई ।
येतेहुँ पर तुमसों तुलसीकी प्रभु सकल सनेह सगाई ४

टी० । हे राम, गोसाईं ! वलि जाउँ अर्थात् धर्म, कर्म, सहितआत्म आपु पर वारन करत हौं हे रघुनाथजी ! जा भांति सब दीनन पर कृपा करते हौ सोई आपनी नाईं आपनी ओरते मोपर भी कृपा कीजिये आपनी शरण में राखिये १ काहेते आपनी ओर ते कृपा कीजिये कि परमारथ जो मुक्ति ताके साधन, विवेक, विरागादि तथा सुरपुर जो देवलोक ताकी प्राप्ति के साधन यथा तीर्थ, व्रत, पूजा, पाठ, जप, तपादि पुनः स्वारथ सुखद यथा वनिता, भोजन, वसन, वाहन, भूषण इत्यादि जो लोक में सुख हैं ताके देनहारे सवासनिक कर्म पुनः भलाई लोक में प्रशंसा के साधन सुनीति पथपर चलना इत्यादि यावत् सुचाल हैं तिनको कलि-युग ने कोप करिकै लोप करिदिया अर्थात् एकहू को निर्वाह नहीं होन पावत जब कोऊ शुभकार्य करै लागत तापर क्रोध करि अनेक विघ्नबाधा लगाइ भङ्ग करि

देत पुनः चोरी, जुँवा, हिंसा, परहानि, अपवाद, व्यभिचार, विरोध, छल, दम्भ, पाखण्ड इत्यादि निज आपनी रुचि ते कठिन कुचाल कुमार्ग चलाई २ पुनः सत्संग तीर्थ हरि उत्सव वा लौकि व्यवहारादिकन में जहां जहां चित आपना हित चितवत आपना भला देखत तहां दिनप्रति नित नवा विषाद अर्थात् हानि रुज वियोगादि संकट के व्यापार अधिक अधिक बढ़ते हैं हित नहीं पूरापरता है यही कुचाल को फल है पुनः लाभ प्रियमिलन आरोग्यतादि सब भांति के सुख इत्यादि जो मनरुचि की भावती यावत् बात है सो भभरि कलियुग की भय करिकै गड़बड़ाइकै भागती हैं पुनः हानि, रुज, वियोग, दरिद्रतादि जो रुचि की अनभाई है ते अमित समुहाहिं अर्थात् जो मन को नहीं भावत ते असंख्यन आगे खड़ी हैं ३ आधि जो मानसी व्यथा यथा भय, शङ्का, लज्जा, विषादादि तामें तौ मन मगन संताप में बूड़ा रहत पुनः व्याधि जो ज्वर, शूल, संग्रहणी, श्वास कासादि तिनते तन विकल रहत अर्थात् एक नहीं एकरोग बनै रहत पुनः झुठाई झूंठ बोलत बोलत वचन मलीन ह्वै गये एतेहु पर ऐसेहू कर्म करि हे प्रभु, रघुनाथजी! आपु सों तुलसी की सकल सनेह सहित सगाई होइ भाव कुटिलकर्म करि कैसे आपुसों नेह नाता ह्वैसक्ता है ताते आपनी ओर हेरि कृपा करि शरण में राखि लीजै मेरा कछु उपाय नहीं ४॥

(१६७) काहे को फिरत मन करत बहु यतन मिटै न दुख विमुख रघुकुलवीर। कीजै जो कोटि उपाय त्रिविध ताप न जाय कह्यो जो भुज उठाय मुनिवर कीर १ सहज टेव विसारि तुहीं धौं देखु विचारि मिलै न मथत वारि घृत विनु क्षीर। समुझि तजहि भ्रम भजहिपद युगम सेवत सुगम गुण गहन गँभीर २ आगम निगम ग्रन्थ ऋषि मुनि सुर सन्त सबही को एक मत सुनु मति धीर। तुलसिदास प्रभु विनु प्यास मरै पशु यद्यपि है निकट सुरसरि तीर३

टी०। हे मन! सुख के हेतु कर्मयोग विरागादि बहुती यत्न करत काहेको घूमत फिरत भाव कलियुग में एकहू साधन नहीं पूरे परतेहैं तिनकी श्रम वृथा है पुनः रघुकुल में जे उत्तमवीर अवतीर्ण भये अर्थात् सुलभ जीवन के कल्याण-कर्ता रघुनाथजी तिनसों विमुख भये किसी उपायते जीवनको दुःख नहीं मिटता है काहेते एकनहीं जप, तप, पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, यम, नियम, शम, दमादि जो करोरिन उपाय करै तौभी दैहिक, दैविक, भौतिकादि त्रिविध ताप वा काम, क्रोध लोभादि त्रिविध तापै न जाइँगी यही बात मुनिन में वर कीर शुक अर्थात् शुक-देवजी भुजा उठाइ बारम्बार भागवत में कह्यो है यथा॥ घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्व-धर्मविवर्जिताः। वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः॥ पुनः॥ श्रेयः स्रुतिं भक्ति-मुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये। तेषामसौ क्लेशलएव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥ पुनः॥ संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः सवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य। लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्विविधदुःख

दुर्बांदितस्य १ सहज टेव यथा ॥ चौपाई ॥ हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना ॥ इत्यादि सहज स्वभाव बिसारि चैतन्य है हे जीव ! तुहीं धौं विचारि देखु विना क्षीर वारि मथत घृत है सकत अर्थात् घिउ तौ दूध में है कहीं जल मथे घृत निसरिसकत तथा सब साधन असार हैं एक हरिभक्ति सारांश है ऐसा समुझि झूंठे में जो सचाई की भ्रम है ताको तजहि सब साधन को आश भरोसा त्यागि जो सेवा करिबे को सुगम अर्थात् पूजा, जप, तपादि श्रमरहित शुद्ध प्रेम ते प्रसन्न होते हैं ऐसे रघुनाथजी के युगम दोऊ पद भजहि सदा सेवन करु जिनमें कृपा, दया, शील, करुणा, सुलभ, उदारतादि गुण गहन समूह गंभीर अगाध हैं २ आगम शास्त्र निगम वेद पुराणादि सब ग्रन्थ पुनः जप, तपादि करनेवाले ऋषि, मननशील मुनि, सुर इन्द्रादि सब देवता हरिभजन करनेवाले संत इत्यादि सबनको एकही मत है हे जीव ! मति में धैर्य धरिकै सुनु विना प्रभु की कृपा तोको सुख नहीं है कौन भांति सो गोसाईंजी कहत यद्यपि सुरसरित गङ्गाजी के तीर निकटही पशु गो महिषी वृषभादि बांधे हैं परन्तु उनको प्रभु पालनहार जबतक छोरिकै पियावत नहीं है तबतक प्यासन मराकरते हैं तैसे पशुवत् जीव ब्रह्मानन्दके समीप ही माया में बांधा है अनेक दुःख सहता है ताको पालनहार प्रभु यावत् कृपा करि मायाबन्धनते छोरता नहीं है तबतक जीव को दुःख कैसे मिटै ताते शुद्ध है रघुनाथजी की शरण गहु यही सबको मत है ३ ॥

(१९८) नाहिंन चरणरति ताहि ते सहौं विपति कहत श्रुति सकल मुनि मतिधीर । बसै जो शशि उछङ्ग सुधास्वादित कुरङ्ग ताहि क्यों भ्रम निरखि रविकर नीर १ सुनिय नाना पुराण मिटत नहीं अज्ञान पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर । बूझत बिनहिं पास सेमरसुमन आस करत चरत तेइ फल बिनु हीर २ कछु न साधन सिधि जानों न निगम विधि नहिं जप तप वश मन न समीर । तुलसिदास भरोस परमकरुणाकोस प्रभु हरिहैं विषम भव भीर ३

टी०। रघुनाथजी के चरणारविन्दन में रति प्रीति नहीं है ताहिते जन्म मरणादि विपत्ति सहत हौं हरिविमुखताको यही फल है सोई बात श्रुति वेद तथा मति के धीर मुनिजन कहते हैं भाव विना हरिकृपा काहू भांति जीव सुखी नहीं होत कौन भांति यथा कुरंग शशि उछंग बसै तहां सुधास्वादित अर्थात् जो मृगवर्ग चन्द्रमा की अकोरा में बसत तहां अमृत की स्वाद पावत ताहि मृग क्यों विना हरिकृपा रविकर सूर्यकिरण में नीर की भ्रम होती है अर्थात् लहरिनको जल माने धावा धावा फिरता है भाव जे शरण गये प्रभु की कृपा भई ते भक्तिरूप चन्द्रमा के अङ्क में बैठे प्रेमामृत पान करते हैं तिनहूं एकजीव हैं पुनः उनहूं एकजीव हैं जे ईश्वर ते विमुख भयेते विना हरिकृपा सर्वथा झूंठी संसारी वस्तु ताहीमें सुख माने धाइ धाइ मरते हैं १ कैसे भ्रम है कि भागवत पद्मादि नाना अनेक पुराणन में सुनियत है कि संसार सर्वथा झूंठे हैं इति सुने भी अज्ञान देहाभिमान मिटत

नहीं पुनः सोई पुराणादि पढ़ियत है अरु वाको कहा सिद्धान्त जीव सो समुझत नहीं हौं जिमि खग कीर पक्षी सुवा पढ़त सब कछु परन्तु हानि लाभ दुःख सुख नहीं समुझत कैसे नहीं समुझत कि बिनहिं पास बूझत अर्थात् बिना फन्दा के आपही चोंगली पकरि लटकि रहता है बधिक पकरि लेत पुनः सेमर सुमन आस अर्थात् सेमर के फूल फूले देखि तामें प्रतिसाल फलनकी आशा राखत पुनः तेई फल बिनु हीर बिना सारांश रस प्रतिसाल चरत वामें मुख लगावत जब अन्तर रुई कढ़त तब पछितात पुनः बसन्त पाइ भूलिजात ऐसेही विषय में जीव भूला रहत कौन भांति यथा भूषण वसनयुत स्त्री देखि वाके मिलन की आशा किये वाकी प्राप्ति पर दण्ड अपमानादि दुःख परा तब पछिताने पुनः स्वरूपवन्त भूषित स्त्री देखिकै भूलिजात पुनः वैसहीं करत यथा षट्रस स्वादवश विषम तीक्ष्ण गरिष्ठ आसूदा ह्वै खाइगये जब वमन, विरेचन, अफरा, शूलादि दुःख भये तब पछिताने पुनः वैसही करत इत्यादि जानि जानि बारम्बार भूलत तब आपनी क्रिया को भरोसा कैसे राखिसकौं २ काहेते क्रिया को भरोसा नहीं है कि शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, विवेक, विराग, मुमुक्षुतादि साधन की सिद्धि एकहू नहीं तथा निगम जो वेद तामें धर्म की जो विधि है यथा सत्य, शौच, दानादि सो एकहु नहीं जानत हौं पुनः पुरश्चरण विधिवत् मन्त्रजप तथा पञ्चाग्नि जलशयनादि तपस्यादि सोऊ नहीं पुनः योगी योगक्रिया करि मनको तथा समीर जो पवन ताको वश करते हैं सोऊ मन पवन भी मेरे वश नहीं है ताते सब आस भरोसा त्यागि तुलसीदासको परम भरोसा एक यही है कि प्रभु करुणाकोस हैं यथा॥ दोहा॥ सेवकदुखते दुखित ह्वै, स्वामि विकल ह्वैजाइ। दुख हरि सुख साजै तुरत, करुणागुण सो आइ॥ भगवद्गुणदर्पणे॥ आश्रितार्त्यग्निना हेम्नो रक्षितुर्हृदयद्रवः। अत्यन्तमृदुचित्तत्वमश्रुपातादिकृद्रवत्॥ परदुःखानुसंधानाद्विह्वलीभवनं विभोः। कारुण्यात्मगुणस्त्वेष आर्त्तानां भीतिवारकः॥ कथं कुर्यां कदा कुर्यामाश्रितार्त्तिनिवारणम्। इतिव्यादुःखदुःखित्वमार्त्तानां रक्षणे त्वरा॥ इति जो करुणागुण है ताके भरे खजाना हैं रघुनाथजी ताते विषम जो भवभीर जन्म मरणादि कठिन दुःख मेरा ताको प्रभु कृपा करिकै हरिहैं शरण में राखिहैं ३॥

(१९९) मन पछितैहै अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाय हरिपद भजु करम वचन अरु हीते १
सहसबाहु दशवदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते २
सुत वनितादि जानि स्वारथरत करु न नेह सबही ते।
अन्तहु तोहिं तजैंगे पामर तू न तजहि अबही ते ३
अब नाथहि अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुराशा जीते।
बुझै न कामअगिनि तुलसी कहुँ विषयभोग बहु घीते ४

टी०। अबहीं कछु गया नहीं है चेत करु हे मन! अवसर बीते फिरि पछितैहै

भाव आयुर्बल वृथा बीतिगये जब मरणकाल यमसांसति में परिहै तब पश्चात्ताप करिहै ताते जो देवन को दुर्लभ दुखौ करिकै नहीं लाभ होत ऐसी उत्तम नरदेह पाय कर्म वचन अरु हीतें हरिपद भजु अर्थात् कर्मन करिकै सेवा पूजा वचन करिकै हरियश गान हिये में नामस्मरण रूप ध्यान इत्यादि रघुनाथजी को भजु १ अरु जो देहाभिमान में परा है तिस देह को क्षणभरे को ठिकाना नहीं है काहेते और तुच्छ देहधारिनकी कौन गनती है सहस्रबाहु दशवदन रावण ऐसे नृप राजा जिनके बल प्रताप की थाह नहीं रहै लोकविजयी रहैं तेऊ काल बली ते बचि नहीं सके ते सब हम हम करि अर्थात् हम महाबली प्रतापवन्त महाराज हैं हमारी सम कोऊ नहीं ऐसा अभिमान करि धन बटोरे तथा धाम घर सँवारिकै उत्तम बनाये अर्थात् धन धामादि सब आपनो जाने रहे अरु अन्त मरणकाल में रीते खाली हाथै उठि चले गये भाव धन धामादि कोई विभव साथ नहीं गया तब ताको कैसे आपनी जानना चाहिये सर्वदा वृथा है २ पुनः सुत जो पुत्र वनिता जो स्त्री इत्यादि यावत् देहसम्बन्धी परिवार हैं ते सब स्वारथरत आपने स्वारथै हेतु सब प्रीति करतेहैं बिना स्वारथ कोऊ आपना नहीं है ऐसा जानि सबहिनते नेह प्रीति न करु अपनपौ न राखु काहेते हे पामर! अंतहु मरणकाल में सब तोको तजैंगे त्यागि देहिंगे ऐसा विचारि तू अबहीं ते नहीं तजहि भाव अबहिंने सबसों प्रीति त्यागि रघुनाथजी को भजु ३ मोहवश ते आपनी हानि लाभ दुःख सुख न सूझिपरै ताको जड़ कही पुनः इन्द्रिय द्वारा मन विषयी है कामवश परस्त्रीप्राप्ति की आशा क्रोधवश परहानि की आशा लोभवश परधन हरने की आशा इत्यादि दुराशा है सो कहत हे जड़, जीव! मोहनिद्रा में बहुत काल सोवत बीते तावत् तेरा सब धन लूटिगया ताते अब जागु जड़ता त्यागि चैतन्य हो पुनः दुराशा अर्थात् देहसुख हेतु विषयन की आशा तिनको त्यागि अब नाथहि अनुरागु रघुनाथजी में अचल प्रीति करु यथा॥ दोहा॥ व्यापकता जो प्रीतिकी, जिमि सुठि बसन सुरंग। हगनद्वार दरशै चटक, सो अनुराग अभंग॥ अर्थात् रामप्रीति रंग में मनेंद्रिय सदा एकरस रँगीरहै यथा॥ सवैया॥ साधनशून्य लिये शरणागत नैन रँगे अनुरागनसाहै। पावक व्योम जलानिल भूतल बाहर भीतर रूप बसा है॥ चितव ना हम बुद्धिमयी मधुज्यों मखियामनजाहि फँसाहै। बैजनाथ सदारस एकहि याविधिसों संतृप्तदसाहै॥ इस भांति श्रीरघुनाथजी में अनुराग राखु जो कहु कि कछु काल विषय भोग करिकै तृप्त होई तब भगवत्भजन में लागी तौ यही दुष्ट आशा जीव को नाश करनेवाली है अर्थात् विषयभोग करि जीव कबहूं तृप्त नहीं होता है कौन भांति सो गोसाईंजी कहत कि विषयभोग बहु बीते कहौं कामअग्नि बुझती नहीं है अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि जो इन्द्रियन के विषय हैं तिनके द्वारा देहसुखभोग करत सन्ते कामनारूप अग्नि प्रतिदिन प्रचण्ड परत जाती है बुझाना कैसा यथा॥ गीतायाम्॥ ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ इति दुराशा त्यागि प्रभु में पूर्वही अनुराग करु ४॥

(२००) काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।
तजि हरिचरण सरोज सुधारस रविकर जल लय लायो १
त्रियग देव नर असुर अपर जग योनि सकल भ्रमि आयो ।
गृह वनिता सुत वन्धु भये वहु मातु पिता जिन्ह जायो २
जाते निरय निकाय निरन्तर सोउ न तोहिं सिखायो ।
तव हित होय कटहि भववन्धन सो मगु तोहिं न वतायो ३
अजहुँ विषय कहँ यतन करत यद्यपि वहु विधि डहकायो ।
पावककाम भोगघृतते शठ कैसे परत वुझायो ४
विषयहीन दुख मिले विपतिअति सुख सपनेहुँ नहिं पायो ।
उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो ५
क्षण क्षण क्षीण होत जीवन दुर्लभ तनु वृथा गँवायो ।
तुलसिदास हरि भजहि आश तजि काल उरग जग खायो ६

टी० । हे मूढ़, महाअज्ञानी, मन ! झूंठा संसारी सुख ताके हेतु विषयवश काहे को धावा धावा फिरता है इसमें कबहूं सुख न पावैगो काहेते हरिचरण सरोज सुधारस तजि रघुनाथ के पदकमल अमृतरस ताको त्यागिकै रविकर सूर्यकिरण में जो झूंठा जल तामें लय लगायो इन्द्रियन सहित आसक्त भयो तहां धाइ धाइ मरना है १ काहेते धाइ धाइ मरना है कि तिर्यग् जो नागादि तथा देव पुनः नर मनुष्य असुर दैत्य राक्षसादि अपर पशु पक्षी आदि यावत् जगमें योनि हैं तिन सकलमें भ्रमि आयो जन्मत मरत सन्ते सबमें घूमिआयो तहां तहां जिन्ह जायो उत्पन्न कीन्हेउ ते माता पिता वहुत भये पुनः जहां जन्म भया तहां गृह जो घर वनिता जो स्त्री सुत जो पुत्र वन्धु जो भाई इत्यादि वहुत भये २ जहां जन्म धरे तहँ माता पिता बन्धु स्त्री पुत्रादि परिवार रहे सो उनहूं निरंतर सदा सब काल में तोहिं ओही उपाय सिखायो जाते निरय नरक निकाय समूह अर्थात् बहुते नरकन में दुःख भोगनापरै ऐसे हिंसा, चोरी, ठगी, परधन हरन, परहानि इत्यादि पापकर्म सिखावते रहे तावत् काल आइगया पुनः जामें तव हित तेरा कल्याण होय जन्म मरणादि भववन्धन कटहि सो मगु हरिभक्तिपथ सो तोको किसीने न वतायो तव परिवार में किसको हितकार मानता है ३ यद्यपि वहुते जन्मन में वहुविधि डहकायो सुख देखाय पीछे दुःख दीन्हेउ सो नहीं विचारता ऐसा मूढ़ है कि अजहूं विषयसुख प्राप्ति का यतन करि रहा है जामें परि अनेकन जन्म खराव भया त्यहि विषयसुख भोगकरि तृप्त भया चाहताहै सो कैसे हैसक्ताहै काहेते हे शठ ! कामपावक कामनारूप अग्नि वरती है तामें विषय भोगरूप घृत डारेते कैसे वुझायो परत क्योंकर वुझाइ सक्ती है ? अर्थात् प्रतिदिन अधिकाते जाइगी ऐसा विचारि अवश्य याको त्यागना चाहिये ४ काहेते अवश्य विषय की

वासनै त्यागना चाहिये ताको हेतु यह कि यावत् धनादि परिपूर्ण तावत् इन्द्रिय विषयसुख में आसक्त रहना सोई भवदुःखकी मूल है पुनः जिस जन्ममें विषयसुख हीन भये धनादि नहीं है तब वासनावश ते विना सुख पाये बहुत भांति को दुःख मिलता है यथा सुन्दर भोजन वसन की चाह अरु मोटा अन्न वसन परिश्रम ते मिलता है सोई दुःख होताहै पुनः दरिद्रता अधिकारते अत्यन्त करिकै विपत्ति अर्थात् भोजन वसनौते तबाही परती है तब सपनेहू में सुख नहीं है पुनः विषय सुखप्राप्ति में जो सुख माने है सोभी झूंठे है वाहूको अन्त महादुःखरूप है ताते प्राप्ति अरु वेप्राप्ति उभय नाम दोऊ प्रकार धन दुःखप्रद श्रुति गायो प्रकर्ष दुःखदायक करि वेद गावत है कौन प्रकार विषय है ज्यों प्रेत पावक प्रेतके मुख में जो आगि वरत देखात अरु सत्यता वामें कबहूं नहीं है तथा विषयसुख सदा झूंठही है ५ क्षण दण्ड को तीसरा भाग ज्यों ज्यों क्षण बीतत त्यों त्यों जीवन क्षीण होत आयुर्बल घटतजात अरु जीव को दुर्लभ जो मनुष्यतनु सो झूंठे विषयसुख के हेतु वृथा गँवायो विना हरिभक्ति कीन्हे सेंतिही जन्म विताय दीन्हेउ पुनः गोसाईंजी कहत कि काल सब जग को खायेजात एक दिन तोको भी खाय जायगो ताते विषय आशा त्यागि शुद्ध हृदय ते श्रीरघुनाथजी को भजहु इसीमें कल्याण है दूसरो उपाय नहीं है ६ ॥

(२०१)तांबे सों पीठि मनहुँ तनु पायो ।

नीच मीच जानत न शीश पर ईश निपट विसरायो १
अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत के न इनहिं अपनायो ।
काके भये गये सँग काके सब सनेह छल छायो २
जिन्ह भूपनि जग जीति बांधि यम अपनी बांह बसायो ।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हे तू गिनती कब आयो ३
देखु विचारि सार का सांचो कहा निगम निज गायो ।
भजहि न अजहुँसमुझि तुलसी तेहि जेहि महेश मनलायो ४

टी० । पानीभरी खाल क्षण भरि रहवेको देहको ठेकाना नहीं तिस देहको कैसा अभिमान किहेहै मानहु तांबेते पीठि मढ़ायकै तनु पायो भाव क्षणभंगी देहको अजर अमर करि माने है काहेते ऐसा जीव नीच हैं कि मीच जो मृत्यु सो तो शीशपर खड़ी है ताको तौ जानत नहीं अरु देहाभिमानते ईश को निपटि विसरायो ईश्वर को विशेषि भूलिगयो १ कैसा देहाभिमान है कि अवनि जो भूमि रवनि जो स्त्री धन द्रव्य धाम मन्दिर सुहृद जो मित्र सुत जो पुत्र इनहिं के न अपनायो भाव स्त्री पुत्रादिकन में किसने अपनपौ नहीं मानि लिया ते काके भये अर्थात् धरणी, धन, धाम, पुत्रादि किसके जीवके सहायक भये पुनः मरे पीछे काके संग गये भाव न किसीके भये अरु न किसीके संग गये सबके सनेह में छलै छायो है स्वारथमात्रै सब झूंठही सनेह किहे हैं अन्तकाल कोऊ किसीको नहीं अरु न अचल ह्वैकै कोऊ रहिसकै २ काहेते कोऊ अचल नहीं है कि जिन

भूपनि हिरण्यकशिपु रावणादि राजन जे सब जग को जीति पुनः यमराजादि दिक्पालनको बांधि स्ववश करि पुनः आपनी बांह दै वसाये अर्थात् यमराजौ जिनकी आधीन में रहे ऐसे सबल जे रहे तेऊ तिनहूं को काल कलेऊ कीन्हे स्वाभाविकही खाइगया जहां हिरण्यकशिपु रावणादिक ऐसेहू बलवन्तन को काल खाइलिया तहां तू कब कौनी गिनती में आयो भाव न बली प्रतापी न उत्तम तुच्छ जीव है ३ जिस देहको अभिमान कीन्हे सो सर्वथा असार है ताते विचार करि ज्ञानदृष्टिते देखु तौ क्या सारांश है अरु क्या सत्य है पुनः निगम जो वेद सो निज आपने सिद्धान्तमें काह सत्यसार करि गायो है अर्थात् सारांश ईश्वर है तथा सत्य रामनाम है ऐसा समुझि गोसाईंजी कहत कि ज्यहि में महेश मन लगाये हैं हे जीव ! त्यहि रघुनाथजीको भजत क्यों नहीं है ४ ॥

(२०२)लाभ कहा मानुष तनु पाये।

काय वचन मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराये १
जो सुख सुरपुर नरक गेह वन आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुखकहँ बहु यतन करत मन समुझत नहिं समुझाये २
परदारा परद्रोह मोहवश किये मूढ़ मन भाये।
गर्भवास दुखराशि यातना तीव्र विपति बिसराये ३
भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाये।
सुरदुर्लभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवाये ४
गई न निज पर बुद्धि शुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये।
तुलसिदास यहि अवसर बीते का पुनि कै पछिताये ५

टी०। मनुष्यतनु पाइ प्रयोजनरहित परोपकार करना चाहिये यह दया धर्म की मूल परमारथ पथको आदिकारण है सो काय देह करिकै वचन करिकै मन करिकै कबहूं सपनेहूमें पराये काज में घटत नहीं भाव परहित कबहूं सपने में नहीं करताहै तौ मनुष्यतनु पायेते तोको काह लाभ भयो भाव इन्द्रियसुख के व्यापार में लागेते पापै कर्म तौ कमायो १ जो इन्द्रियनकी विषयसुख सुरपुर देव-लोक तथा नरक गेह घर में तथा वनमें इत्यादि सर्वत्र विना बोलाये आपही आवत त्यहि विषयसुख प्राप्तिहेतु बहुती यत्नैं करत अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि इन्द्रियसुख के हेतु अनेकन उपाय करत धावा धावा फिरत ताहूपर हे मन ! समुझाये परभी नहीं समुझत भाव विषयनै में आसक्त रहत सोई जीवके नाशको कारण है २ काहे में धावा धावा फिरत कि परदारा पराई स्त्री हेतु धावत भाव कामासक्त है पुनः परद्रोह भाव क्रोधवश ते सबसों वैर विरोध करता है इत्यादि मोहवशते अर्थात् आत्मरूप भुलाइ देहाभिमान ते हे मूढ़ ! मन-भायो जो कछु मन में भायो तामें विचार विना करतगयो पुनः विषय में आसक्त रहे को फल जो दुःखराशि दुःखकी ढेरी गर्भवास पुनः जन्म धरेपर हानि वियोग

रुज दरिद्रतादि विपत्ति मरण पीछे तीव्र कठिन यमयातना नरकसांसति इत्यादि बिसराइ दिहे भाव सोई राह पुनः चलता है इत्यादि बिना विचारे मनभायो करत है ३ भय सबल शत्रुको डर निद्रा सोइ जाना पुनः मैथुन युवतिनसंग भोग-विलास पुनः अहार भोजन इत्यादि जग में जीवन में सबहिंनके समान जाये सबके बराबरिही उत्पन्न होतेहैं तिनहिनके वशमें परि जो सुरदुर्लभ तनु देवनको दुःख करिकै जो मनुष्यतनु लाभ होताहै सो तनु धरि हरि श्रीरघुनाथजीको नहीं भजे अरु मद अर्थात् जाति विद्या महत्त्वादि पाइ हर्ष बढ़ावना पुनः अभिमान अर्थात् आपनी बड़ाई पर चित्त उन्नति करना इत्यादि मद अभिमानवश ते मनुष्य-तनु वृथा गँवाइ दिहे ४ निज पर आपना परारी अर्थात् द्वैतबुद्धि न गई पुनः विषय विकार तजि अंतर ते शुद्ध है रामलय लाये न रहे श्रीरघुनाथजी में प्रेमसहित मन न लगाये रहे तापर गोसाईंजी कहत कि यहि अवसर बीते अर्थात् सुन्दर मनुष्यतनु सत्संगसहित सो आयुर्बल बीतिगये पर पुनि पीछेकै पछिताये का है ५॥

(२०३) काज कहा नरतनु धरि सारेउ।

पर उपकार सार श्रुति को सो धोखेउ में न विचारेउ १
द्वैतमूल भय शूल शोक फल भवतरु टरै न टारेउ।
रामभजन तीक्षण कुठार लै सो नहिं काटि निवारेउ २
संशय सिन्धु नाम बोहित भजि निज आतमा न तारेउ।
जन्म अनेक विवेकहीन बहुयोनि भ्रमत नहिं हारेउ ३
देखि आन की सहज सम्पदा द्वेषअनल मन जारेउ।
शम दम दया दीनपालन शीतलहिय हरि न सँभारेउ ४
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति में मन क्रम वचन बिसारेउ।
तुलसिदास यहि आशशरण राखिहि जेहि गीध उधारेउ ५

टी०। नर मनुष्यतनु धरिकै कहा काज सारेउ क्या प्रयोजन हासिल कीन्हेउ भाव वृथै तौ गँवायो काहेते परउपकार श्रुतिको सार है अर्थात् बेप्रयोजन परार हित करना यह दया धर्म की मूल सोई वेदन को सार सिद्धान्तहै सो धोखेउ में न विचारेउ भूलिहूकै परउपकार न कीन्हेउ तौ वृथाही नरतनु पायो १ संसार को वृक्षकरि कहत द्वैत संसार को सत्य जानना सोई जाकी मूल है अर्थात् भगवत् अंश आत्मरूप प्रकृति में मिलि जीव भयो सोई संसार को आदि कारण है पुनः महातत्त्व अंकुर निकारा पुनः त्रिगुणात्म अहंकार नीचे पिंड बँध्यो तमोगुण ऊपर की त्वचा श्याम रजोगुण मध्यत्वचा अरुण सतोगुण भीतरकी त्वचा श्वेत पुनः पांचौ तत्त्व स्कन्ध भये तिनते पांच पांच प्रकृतीशाखा भये यथा काम, क्रोध, लोभ, मद, मान ये आकाश ते भये धावन, चलन, सकोरण, पसारण, उत्क्रमण पवनते भये निद्रा, कान्ति, क्षुधा, आलस्य, जमुहाई अग्निते भये रक्त, पसीना, लार, मूत्र, बीज जलते भये हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोमा पृथिवी ते भये इति पचीस शाखा

हैं पुनः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि में नित नई चाह सोई हरित दल है सवासनिक कर्म फूल है पुनः विषयसुख प्राप्ति मीठा फल है ताको अन्त फल गर्भवास यमसांसति इत्यादि जो शूल होनहार है ताकी भय सो देखावमात्र मीठा फल पीछे दुःखदायक पुनः रुज हानि वियोगादि शोक दुःख सो प्रसिद्ध करू फल है इत्यादि भवतरु संसाररूप वृक्ष सो किसीभांति ते काहू को टारेउ टरत नहीं है ताके हेतु रामभजनरूप तीक्ष्ण कुठार लैकै ताकी पैनी धारते काटिकै सो संसाररूप वृक्ष निवारेउ नहीं अर्थात् आदि प्रकृति महातत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इति आठ आवरण आत्मरूप में हैं तिनको क्रम क्रम निवारण हेतु नवधा भक्ति करु यथा सत्संग में हरियश श्रवण करि गन्धविषय निवारु पुनः यश कीर्तन करि रस विषय निवारु पुनः स्मरणकरि रूपविषय निवारु पुनः पदसेवन करि स्पर्शविषय निवारु अर्चन करि शब्दविषय निवारु वन्दन करि अहंकार निवारु दास्यता करि महातत्त्व निवारु सख्यता करि प्रकृति निवारु शुद्ध आत्मरूप प्रभु पर वारण करु स्वाभाविकही भव नाश होइ इत्यादि क्यों नहीं करताहै २ झूंठा लोक व्यवहार में सचाई की भ्रम इति संशयरूप सिन्धुमें जीव बूड़ा है ताते पार जाने हेतु नाम बोहित जहाज़ है त्यहि रामनामको भजिकै आत्मा को तारेउ नहीं अरु विवेकहीन अर्थात् आत्मरूप सार त्यागि देहाभिमानवश अनेक जन्म धरि नर, नाग, पशु, पक्षी आदि बहु योनिन में भ्रमत संते हियेते हारेउ नहीं भाव हिये में हारि मानि लोकव्यवहार असार त्यागि सत्य आत्मरूप ग्रहण करि रामनाम भजि आत्मरूप को बन्धन छुड़ाउ ३ आनकी सहजसंपदा बढ़ती होत देखि द्वेष अनल विरोधरूप अग्नि में मन जारेउ सहज विरोधी मन सहि नहीं सकत ताते आनकी बढ़ती देखि जरा करत सो तौ सुगम अरु शम वासना त्यागि पुनः दम इन्द्रियनको विषयते रोंकि पुनः दीन जीवन पर रक्षा इति दयापालन शीतल हिये में हरिको सँभारेउ न शुद्ध हृदय में रघुनाथजी को ध्यान न धरे भाव राग द्वेष विषय वासना त्यागि सदा हृदय में प्रभु को ध्यान करु ४ सब सम्बन्ध ते सब भांति प्रभुको ध्यान राखना चाहिये सो विसारि दीन्हेउ तब भी हे तुलसीदास! श्रीरघुनाथजी तोको इस आशा से शरण राखहिंगे काहेते ज्यहि गीध अधम पक्षी को क्षण में उद्धार कीन्हे सो तेराभी उद्धार करहिंगे ५॥

(२०४) श्रीहरि गुरु पदकमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुखनिधान भगवान १
परिवा प्रथम प्रेम विनु राम मिलन अति दूरि।
यद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरि पूरि २
दुइज द्वैत मति छांड़ि चरहि महिमण्डल धीर।
विगत मोह माया मद हृदय सदा रघुवीर ३
तीज त्रिगुण पर परम पुरुष श्रीरमण मुकुन्द।
गुण स्वभाव त्यागे विनु दुर्लभ परमानन्द ४

चौथि चारि परिहरहु बुद्धि मन चित अहँकार।
विमल विचार परमपद निज सुख सहज उदार ५
पांचइ पांच परस रस शब्द गन्ध अरु रूप।
इन्ह कर कहा न कीजिये बहुरि परब भवकूप ६
छठि षटवर्ग करिय जय जनकसुतापति लागि।
रघुपतिकृपा वारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि ७
सातैं सप्तधातु निर्मित तनु करिय विचार।
तेहि तनु केर एक फल कीजिय पर उपकार ८
आठइँ आठ प्रकृति पर निर्विकार श्रीराम।
केहि प्रकार पाइय हरि हृदय बसहिं बहु काम ९
नवमी नवद्वार पर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह।
ते नर योनि अनेक भ्रमत दारुण दुख दीन्ह १०
दशइँ दशहुँ कर संयम जो न करिय जिय जानि।
साधन वृथा होइँ सब मिलहिं न शारँगपानि ११
एकादशी एक मन वशकै सेवहु जाइ।
सोइ व्रतकर फल पावै आवागमन नशाइ १२
द्वादशि दान देहु अस अभय होय त्रैलोक।
परहित निरत सो पारन बहुरि न व्यापै शोक १३
तेरसिं तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनन्त १४
चौदशि चौदह भुवन अचर रूप गोपाल।
भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल १५
पूनो प्रेम भक्तिरस हरिरस जानहिं दास।
सम शीतल गतमान ज्ञानरत विषय उदास १६
त्रिविध शूल होलिय जालिय खेलिय अब फागु।
जो जिय चहसि परम सुख तौ यहि मारग लागु १७
श्रुति पुराण बुध सम्मत चांचरि चरित मुरारि।
करि विचार भव तरिय परिय न कबहुँ यमधारि १८
संशयशमन दमनदुख सुखनिधान हरि एक।
साधुकृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाय अनेक १९

भवसागर कहँ नाव शुद्ध सन्तन के चरण।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरण २०

टी०। अब चन्द्रमा की रीति जीव की क्षीणता वृद्धता देखावत तहां चन्द्रमा में षोड़श कला हैं यथा शारदातिलके ॥ अमृतां मानदां तुष्टिम्पुष्टिम्प्रीतिं रतिं तथा। लज्जां श्रियं स्वधां रात्रिं ज्योत्स्नां हंसवतीन्ततः ॥ छायां च पूरणीं वामाममाचन्द्रकला इमाः ॥ इत्यादि पूर्णमासी को षोड़शौ कला पूर्ण चन्द्रमा रहत पुनः कृष्णपक्ष पाइ परेवा ते एक एक कला घटत जात अमावस को पन्द्रह कला घटि एक रहि जात सो सूर्यन के संग परि लोप है आइ औषधन में प्रवेश होत ताको चरि गौवन के घृत होत ताके हवनादिसुकृति ते शुक्लपक्ष पाइ एक एक कला बढ़त जात पूर्णमासी को पूर्ण होत तैसेही जीव में षोड़श कला यथा निराशा, सद्वासना, कीर्त्ति, जिज्ञासा, करुणा, मुदिता, स्थिरता, असंग, उदासीनता, श्रद्धा, लज्जा, साधुता, तृप्ति, क्षमा, विवेक, विद्या इत्यादि भक्ति पूर्णमासी को पूर्ण रहत सोई कुसंग कृष्णपक्ष पाइ विषय आश परेवा को निराशा कलाहीन भई स्पर्द्धा द्वितीया को सद्वासना कलाहीन भई अपकीर्ति तृतीया को कीर्ति कलाहीन भई अविद्या चतुर्थी को जिज्ञासा कलाहीन भई चिन्ता पञ्चमी को करुणा कलाहीन भई मूल षष्ठी को मुदिता कलाहीन भई लोलुपता सप्तमी को स्थिरता कलाहीन भई ममता अष्टमी को असंग कलाहीन भई ईर्षा नवमी को उदासीनता कलाहीन भई अश्रद्धा दशमी को श्रद्धा कलाहीन भई लालच एकादशी को लज्जा कलाहीन भई निन्दा द्वादशी को साधुता कलाहीन भई तृष्णा त्रयोदशी को तृप्ति कलाहीन भई हिंसा चौदसि को क्षमा कलाहीन भई मिथ्या दृष्टि अमावस को विवेक विद्या कलाहीन भई केवल एक प्रेमा कला रही सो अविवेकरूप सूर्यन के संग अस्त है आइ इन्द्रियरूप औषधिन में व्याप्त गुप्त रही इत्यादि मन्द जीव को उपदेश है हे मन। अभिमान जो आपनी बड़ाई पर चित्त उन्नति करना यही हरिविमुखता है ताको तजि अमान है हरि संन्मुख होउ ताकी मार्ग बतावने हेतु गुरु रूप जो श्री हरिहैं तिनको भजहु भाव गुरु को ईश्वर मानि सेवन करौ ज्यहि सेवत सुखनिधान लौकिक पारलौकिक सब भांति के सुख भरे मन्दिर हैं पुनः भगवान् सब ऐश्वर्य सहित हरि दुःखहर्ता श्रीरघुनाथजी को पाइये भाव गुरु की सेवा करत तिनकी कृपा उपदेशमार्ग पर चलैगा तौ रघुनाथजी प्राप्त होइँगे १ कैसे प्राप्त होइँगे सो मार्ग देखावत यथा परेवा शुक्लपक्ष की प्रथम तिथि सो चन्द्रमा की जन्मराति कहावत अर्थात् अमावस की जो एककला क्षीण रही सो दूसरी कला पाइ किंचित् प्रकाशमान होत. तथा मन्दजीव हेतु सत्संग शुक्लपक्ष है तामें अभ्यास सोई परेवा अर्थात् शुक्लपक्ष की प्रथम तिथि है इति सत्सङ्ग में अभ्यास परेवा पुनः प्रथम प्रेमभाव जो जीव की एक प्रेमाकला शेष रही सो इन्द्रियन में व्याप्त है गुप्त रही सो सत्संग में अभ्यासरूप परेवा पाइ किंचित् प्रकाशमान होत कौन भांति कि कथा वार्ता में प्रभु के गुणानुवाद सुनत में कानन में रुचि भई नेत्रन में आंशु निसरि आये त्वचा में रोमांच भये कण्ठावरोधन इत्यादि जीव में किंचित् प्रकाश

होत इति परेवा जो सत्संग में अभ्यास पुनः इन्द्रियन में गुप्त जो प्रथम को प्रेम एकत्र होना सोई प्रभुप्राप्ति को सुगम मार्ग है पुनः परेवा अरु प्रथम प्रेम विना राम मिलन अति दूरि है यद्यपि आपने हृदय में निकटही हैं काहेते सकल घट में भरिपूरिरहे परन्तु सत्संग अरु प्रेम विना मिलना अत्यन्त दुर्घट है ताते प्रेमसहित सत्संग करु २ द्वितीया को चन्द्रमा में तीनि कला एकत्र होत तव प्रसिद्ध प्रकाश-मान देखात तव सव संसार दर्श प्रणाम करत तथा इहां सत्संग के प्रभावते जव उर में चैतन्यता आवै तव देहाभिमान ते जो संसारी व्यवहार को सत्य माने है इति द्वैत मति छांड़ि पुनः कामादि को वेग मन में न व्यापने पावै इति धीरसहित महिमण्डल में यावत् शुभ तीर्थ हैं तिनमें विचरहि कौन भांति कि मोह जो देहा-भिमान माया जो इन्द्रिय विषय मद जो जाति विद्या महत्त्वादि पर हर्ष होना इत्यादि विगत नाम त्यागिकै हृदय में रघुनाथजी को धारण किहेरहु इति प्रकाश द्वितीया को जीव में सद्वासनारूप तीसरी कला प्रकट होइगी ३ तीज को चंद्रमा में चारि कला एकत्र होत ताते अधिक प्रकाशमान अरु शुभ कार्य में मंगलकारी है तथा इहां प्रेम सहित सत्संग के प्रताप ते सद्वासना उठी तव धर्मसहित शुभ कर्म करने लगा सत्य, शौच, तप इत्यादि सुयश तृतीया को दान करि कीर्तिकला प्रकटी जीव हरि प्राप्ति को अधिकारी भया नातरु तीनिहु गुणन ते परे परम पुरुष श्रीरमण भगवान् हैं तिनकी प्राप्ति परम आनन्द है सो विना रज तमादि गुणन मय स्वभाव त्यागे परम आनन्द प्राप्ति दुर्लभ है ताते सतोगुणते लोभी स्वभाव रजोगुण ते कामी स्वभाव तमोगुण ते क्रोधी स्वभाव इत्यादि त्यागि शुभ आच-रण पर चलै सो सुयश तीज को कीर्तिकला प्रकटी ४ चौथि को चन्द्रमा पांच कला युत प्रकाशमान तौ अधिक होत परंतु कलंकी मानि लोग त्यागत तैसेही मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार इन चारिहू की असद्वासना छल कपट त्याग करहु इति निष्कपट चौथि को जिज्ञासा कला प्रकटै अर्थात् गुरु के उपदेश ते परमपद जो मुक्ति ताकी प्राप्ति हेतु विमल हृदय ते विचारपूर्वक असद्वस्तु को त्यागि निज आपना उत्तम उदार जो सहज सुख ताको प्राप्त रहै ५ पञ्चमी को षट्कला युत चन्द्र अधिक प्रकाशमान विघ्नहर्ता राजसन्मानादि आनन्ददाता है तथा इहां विघ्न-कर्ता शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि जो पांचौ इन्द्रियन के विषय हैं इनकर कहा न कीजिये विषयन में इन्द्रिय न लगाइये नातरु बहुरि भवकूप में परिहौ अर्थात् जव इन्द्रियन को विषयन ते रोकि ईश्वर में प्रीति लगाइये तव सहजेही आनन्द होइगो तव दूसरे को दुःख देखि सहि न सकैगो इति आनन्द पञ्चमी को जीव में करुणा कला प्रकट होत तामें विघ्न कछु नहीं सहजही सर्वत्र सन्मान होत ६ छठि को चन्द्रमा में सात कला एकत्र होत तव अधिक प्रकाशमान होत परन्तु शत्रुता-वर्द्धक है ताते काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि षड्वर्ग इनसों युद्ध करि आपनी जय करिये भाव धैर्यते काम को जीतिये क्षमा सों क्रोध जीतौ संतोषते लोभ जीतौ विवेकते मोह जीतिये शान्ति ते मद जीतिये शमता ते मत्सर जीतौ किस हेतु जनकसुतापति लागि अर्थात् प्रेमपूर्वक श्रीरघुनाथजीकी प्राप्ति हेतु कामादि विघ्नकर्ता शत्रुन को जीतिये शुद्ध अन्तस में प्रभुको ध्यान राखिये तव

प्रभु की कृपा ते लोभादि आपही नाश है मन आनन्द रहैगो अरु रघुनाथजीकी कृपारूप वारि जल बिना लोभरूप अग्नि नहीं बुझाती है ताते सदा कृपा को भरोसा राखिये इति कामादि जीतना श्रेष्ठता सोई आर्जव षष्ठी को आनन्द होना सोई मुदिता कला प्रकटी ७ सप्तमी को आठ कलायुत चन्द्र अधिक प्रकाशमान मङ्गलकारी है तथा त्वचा, रक्त, मांस, हाड़, मज्जा, मेद, शुक्र इति सातौ धातुनते निर्मित उत्पन्न तनु तामें विचार करिये तेहि तनु धरेको एक यहै फल है कि पर-उपकार करिये अर्थात् देहाभिमान त्यागि दयावन्त मन स्थिर राखि भजन करिये इति त्याग सप्तमी को स्थिरता कला प्रकटती है ८ अष्टमी को नव कलायुत चन्द्र अधिक प्रकाशमान रहत परन्तु शुभकार्य में त्याग है तथा जीव में आठ प्रकृति हैं यथा आदिकारण माया पुनः बुद्धि पुनः अहंकार पुनः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इत्यादि के वशते जीव में अनेक कामना उठती हैं इस व्यवहार में रहे प्रभु की प्राप्ति कहां ह्वैसक्तीहै काहेते श्रीरघुनाथजी तो विकार कामादिरहित निर्विकार पुनः कारणादि आठो प्रकृति ते परे सच्चिदानन्द हैं अरु इहां विषयवश ते अनेक कामना हृदय में बसीहैं तौ क्यहि प्रकार हरि को पाइये सो उपाय करना चाहिये अस विचारि मुमुक्षु ह्वै शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानादि करि कामना मिटाय विरागते विषय त्यागि विवेक ते अहंकार बुद्धि कारण माया मिटाय ज्ञानदृष्टिते शुद्ध आत्मरूप सँभारहेतु असंग रहि प्रभु को सेवन करै इति ज्ञान अष्टमी को असंगकला प्रकटत है ९ नवमी को दश कलायुत चन्द्र अधिक प्रकाश परन्तु शुभकार्य को त्याग है तथा इहां नवद्वार पर यथा गुदा, लिङ्ग, मुख अरु द्वै नासिका में द्वै नेत्र द्वै कान इति नव छिद्र हैं जामें ऐसी देह सोई नवद्वारको पुर है तामें बसि भाव देहाभिमान ते इन्द्रियनके वश रहिकै जो जीव आपना भला कल्याण का उपाय न कीन ते नर जन्म मरणादि दारुण कठिन दुःख सहत दीन पौरुषहीन अनेकन योनिन में भ्रमत है इति भय मानि देहाभिमान इन्द्रिय विषयनको सुख त्यागि लोकव्यवहार ते उदासीन ह्वै प्रभु को भजिये इति वैराग्य नवमी को उदासीनता कला प्रकटत १० दशमी को गेरहकलायुत चन्द्रमा अधिक प्रकाशमान अरु धर्म लाभदायक है तथा दशौ इन्द्रियनकर संयम करु अर्थात् श्रवण, नेत्र, रसना, त्वचा, नासिकादि पञ्चज्ञानेन्द्रिय हाथ, पद, मुख, गुदा, लिङ्गादि कर्मेन्द्रिय इत्यादि को संयम जीवते जानिकै जो न कीन तौ कर्म ज्ञानादि के साधन सब वृथा होहिंगे शारँगपाणि रघुनाथजी न मिलहिंगे संयम किसको कहिये यथा समाधि धारणा ध्यान तीनिहूको एकत्र होना ताको संयम कही अर्थात् नाभि चक्रादि एकदेश में चित्त को स्थिरराखना ताको धारणा कही ताही देश में इष्टमूर्ति स्थिरराखना ध्यान है इष्टरूप में लय ह्वै जाना समाधि है यथा पातंजलयोगशास्त्रे ॥ देशबन्धश्चित्तस्य धारणा तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम् । तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यमिव समाधिः त्रयमेकत्र संयमः ॥ इत्यादि को कारण यथा सत्य, शौच, दया, दानादि धर्म करि इन्द्रिय स्ववश करै तब श्रद्धा करि मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार स्थिर करै तब हृदयकमल में चित्त स्थिर करै तथा ताही कमल में श्रीरघुनाथजीको रूप स्थिर राखै पुनः इन्द्रिय मनादि की सुधि भुलाइ श्रीरामरूप में शुद्ध आत्मरूप की प्रत्यय

प्रवाह तैलधारवत् सदा एकरस लगीरहै तब श्रीरघुनाथजी की प्राप्ति होइगी अरु जो या भांति संयम न करी इन्द्रिय विषयनद्वारा मन धावा करी तौ यावत् साधन करी सबकी श्रम व्यर्थ जाइगी किसीभांति रघुनाथजी नहीं मिलहिंगे इति धर्मरूप दशमी को श्रद्धा कला प्रकट होइगी ११ एकादशी को बारह कला चन्द्रमा होत व्रत परमारथ शुभकारी है तथा शील स्वभाव धारण करि मनको स्वाधीन राखै अर्थात् लोकवेदरीतिते प्रतिकूल आचरण न करने पावै पुनः प्रियवचन ते छोटे बड़े सबको सन्मान करै अरु शीलस्वभाव ते लज्जा उत्पन्न होती है ताके प्रभावते इन्द्रिय भी विषय व्यवहार न करिसकैंगी इत्यादि सब इन्द्रियन को स्वामी पुनः अन्तःकरण में सबल जो एक मन ताको आपनी वश करिकै तब जाइ प्रभुको सेवहु अर्थात् अनन्यताव्रत धारण करि श्रीरघुनाथजीके पदकमल सेवन करु सोई अनन्यताव्रत को फल प्रभु की समीपता पावै जग को आवन स्वर्ग नरकादि गवन इत्यादि बन्धन नाश ह्वै जाइ इति शील एकादशी को लज्जा कला प्रकटी १२ द्वादशी को तेरह कलायुत चन्द्रमा अधिक प्रकाशमान परन्तु शुभकार्य में वर्जित पुनः जो एकादशी व्रत करत सो द्वादशी को पूर्वदान दै पुनः पारन करत तथा असत्य त्यागकरि सत्य धारण करै पुनः सहजस्वभाव जीवन की रक्षा इति दया ऐसा दान करौ जामें त्रैलोकते अभय होइ जाको विरोधी कहीं कोऊ नहीं है पुनः परहित निरत अर्थात् साधुता स्वभावते किसीको अनभल न देखै भूतमात्र पर समभाव दया राखै सदा परार हिते करिवे में लागरहै इति परहित में निश्चय करिकै रत होना सोई व्रत के पश्चात् पारण अर्थात् भोजन करना है त्यहि करिकै बहुरि शोक न व्यापै जन्म मरणादि दुःख पुनः न होइ अर्थात् सत्यता सहित जीवनपर दया करि रक्षा किहे पुनः साधुता स्वभाव ते परोपकार कीन करै इस रीति हरि को भजन करै तौ वाको जन्म, मरणादि पुनः दुःख न होवै इति सत्य द्वादशी को साधुता कला प्रकट होत १३ त्रयोदशी को चौदह कलायुत चन्द्र अधिक प्रकाशवन्त अशुभ त्यागि शुभ कार्य करिवेयोग्य है तथा इहां जो तीन अवस्था हैं यथा तत्त्वबोधप्रकरणे ॥ अवस्थात्रयं किम् जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्तयः। तत्र जाग्रदवस्था का श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैश्शब्दादिविषयं ज्ञायते इति जाग्रदवस्था स्थूलशरीराभिमानी विश्वात्मा उच्यते ॥ पुनः स्वप्नावस्था का चेति जाग्रदवस्थायां यद्दृष्टं यच्छ्रुतं च तत्तज्जनितवासनया निद्रासमये यः प्रपञ्चः प्रतीयते सा स्वप्नावस्था सूक्ष्मशरीराभिमानी तैजस आत्मा उच्यते ॥ पुनः सुषुप्त्यवस्था का अहं किमपि न जानामि सुखेन मया निद्राऽनुभूयते। इति सुषुप्त्यवस्थाकारण-शरीराभिमानी आत्मा प्राज्ञ इत्युच्यते ॥ इत्यादि जो तीनिहु अवस्था हैं तिनको व्यवहार त्यागि अर्थात् संतोष धारण करि इन्द्रियन का विषय त्यागै अन्तसमय तृप्ति धारण करि मनादि की वासना त्यागि शुद्ध आत्मरूप ते भगवान् ऐश्वर्यवन्त श्रीरघुनाथजी को भजहु कैसे रघुनाथजी हैं मन, क्रम, वचन, अगोचर अर्थात् न मनकी गति न कर्मकरि प्राप्ति न वचनते कहत बनत पुनः चराचर में व्यापक जो आत्मरूप ताके व्याप्य प्रकाशक हैं पुनः अनन्त जिनको अन्त कोऊ नहीं पावत शुद्ध आत्मरूप के अनुरागते प्राप्त होत इति संतोष तेरसि को तृप्तिकला प्रकट

होत १४ चतुर्दशी को पन्द्रह कलायुत चन्द्रमा अति प्रकाशमान होत सो बहुते शुभकार्य में वर्जित परन्तु धर्मक्रिया में शुभ है तथा इहां चौदह भुवन-यथा भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तप, सत्यादि सात भुवन ऊपर हैं तथा तल, तलातल, महातल, सुतल, वितल, रसातल, पातालादि सात तरे इति चौदह भुवन तिनमें तृण गुल्म वृक्षादि यावत् अचर हैं तामें गोपालरूप बसा है भाव गो नाम इन्द्रिय ताको पालनहार गोपाल अर्थात् जिनके प्रकाश ते सब इन्द्रिय चैतन्य हैं ऐसा अन्तर्यामीरूप सर्वत्र सब में बसा है भाव सबके समीप ही है परन्तु भेद जो देहाभिमान ते जीव में द्वैतबुद्धि है ताके मिटिगये विना जीवको जो बन्धन मोह ममतादि जगजाल है ताको रघुनाथजी अत्यन्त करिकै नहीं हरिसक्ते हैं भाव ज्यों ज्यों जीव द्वैत त्यागत त्यों त्यों प्रभु बन्धन तोरते हैं ऐसा विचारि दृढ़ धैर्य धारण करि लोभ मोह काम को वेग निवारु तथा क्षमा धारण करि क्रोध मान मदादि को वेग निवारि अभेदबुद्धि करि रघुनाथजी को भजु तब तेरे भवबन्धन रघुनाथजी हरि लेहिंगे इति धैर्य चतुर्दशी को क्षमा कला प्रकटत है १५ पूर्णमासी को षोड़श कलायुत परिपूर्ण प्रकाशमान चन्द्र होत शीतल सब को सुखद भुवन भूषण है तथा इहां पूर्ण प्रेमाभक्ति पूर्णमासी को विवेक विद्या-कला प्रकट भयेते षोड़शौ कलायुत पूर्ण प्रकाशमान जीव भयो सोई प्रेमाभक्ति को रस जिनको प्राप्तभया तेई दास हरिके रसका स्वाद जानतेहैं कैसे दास सम-बुद्धिवाले जे चराचर में एकदृष्टि किहेहैं पुनः सदा शीतल हृदय हैं क्षमा दया धारण किहे हैं पुनः गतमान अर्थात् आपनी बड़ाईपर चित्त उन्नति करना ताको मान कही सो मान गत नाम जात रहाहै जिनके अर्थात् जे सदा अमान रहतेहैं पुनः इन्द्रिय विषयन को जो लौकिक सुख है यथा सुगन्ध, युवती, वसन, भूषण, वाहन, भोजन, पान, नृत्य, गानादि त्यहिते उदास अर्थात् सदा त्यागे रहते हैं पुनः ज्ञानरत अर्थात् आत्मअनुभवके व्यापार में सदा लगे हैं यही विवेकविद्या सोरहीं कला है तहां प्रथम प्रेमाकला पुनः विषय ते निराशा, सद्वासना, कीर्ति, जिज्ञासा, करुणा, मुदिता, स्थिरता, असंग, उदासीनता, श्रद्धा, लज्जा, साधुता, तृप्ति, क्षमा, विवेक, विद्या इत्यादि षोड़शकला तामें आदि प्रेम कहे पुनः अन्त पूर्ण प्रेमा भक्ति कहे पुनः मध्य में विवेकके साधन ज्ञान विरागादि जीव के गुण कहे ताको भाव कि जामें रामप्रेम है सो कुसंग पाइ जो जीव विषयन के वश ह्वै मन्द भी ह्वैजात तबहूं उस जीव का नाश नहीं होत जब सत्संग पावत तब पुनः चैतन्य ह्वैजात तब विवेकादि साधन करि विषय त्याग करै अरु शुद्ध प्रेम रघुनाथजी में लगावै तब पूर्ण प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है इसी हेतु कहे कि समशील अमान विषयनते उदास है जे ज्ञान में रत हैं ऐसे हरिके दास ज्ञानी भक्त तेई हरि की प्रेमाभक्ति को रस जानते हैं यथा महारामायणे ॥ ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधि-भिरहो रतब्रह्मज्ञानात्। ते देवि धन्यमनुजा हृदि बाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ १६ यद्यपि पूर्णिमा पूर्णचन्द्र सब मासन में होते हैं परन्तु संवत् को अन्तफाल्गुनहै तथा आवागवनको अन्त इसी देहते चाहत ताते फागुनको रूपक कहत तामें अरण्डवृक्ष तृण बल्ला संचित करि होली फूंकि फागु खेलत

निर्लज्ज ह्वै अनुचित कहत तथा विराग अग्निते दैहिक दैविक भौतिकादि तीनि विधिकी तापैं होली जारिये अर्थात् तापैं तौ पापनते होती हैं पापै न करौ तब तापैं काहेको होत पुनः जब देहाभिमानै नहीं तब प्रारब्ध होती है सो व्यापतै नहीं इति होली जारिये पुनः फागु खेलिये भाव परलोक के कामवश लोक की लाज त्यागि देहसम्बन्धिनते प्रतिकूल रहिये हे जीव। जो परमसुख आपना कल्याण चहसि तौ यहि पूर्व कही मग लागु अर्थात् विषय आशा त्यागि प्रेमसहित रघुनाथ जी को सेवन करु १७ मुरारि जो भगवान् तिनको चरित जो रामायणादि पुनः श्रुति जो चारिहु वेद भागवतादि अठारहौ पुराणैं तथा बुध जो सर्व सिद्धान्तज्ञाता इत्यादि सबको संमत यह चांचरि होरीराग है अथवा वेद पुराण बुधसंमत लिहे यह चांचरि भगवान् को चरित है ताको विचार करि याको सिद्धान्त समुझि ताही राह पर चलिये भाव अभिमान तजि गुरु की शरण ह्वै विवेक विरागादि साधनकरि विषय आशा त्यागि शुद्ध ह्वै प्रेमसहित रघुनाथजी को भजिये जिनकी कृपा ते यमधारि यमगणन की सेना में कबहूं न परिये भाव अजामिल यमनादि के प्रसंगते डराइ गये ताते जो भूलिहू के रामनाम लेत ताके निकट यमदूत नहीं जाते हैं ऐसा विचारि प्रेमसहित नाम स्मरण रामरूप हृदय में राखि सहजही भवसागर तरिजाइये १८ संशय जो संसार में सचाई की भ्रम ताके शमन नाशकर्ता भाव जिनको यश हृदय में आवतही संसारी व्यवहार हेराइ जात पुनः रुज वियोग हानि दरिद्रतादि लौकिक दुःख गर्भवास यमसांसति आदि पारलौकिक इत्यादि दुःख के दमन दलि डारनहार भाव जिनको नाम लेतही सब दुःख दूर होत पुनः सुखनिधान सुखके भरे स्थान हैं भाव जिनको रूप हृदय में आनतही सब सुख आपही प्राप्त होत ऐसे हरि एक श्रीरघुनाथजी हैं ते केवल साधुन की कृपैते प्राप्त होते हैं अरु विना साधुनकी कृपा कर्म योग ज्ञान विरागादि जो अनेकन उपाय करौ तौ मिलते नहीं हैं १९ गोसाईंजी कहत कि सब प्रकार के दुःखनके हरणहारे श्रीरघुनाथजी सोऊ अन्य उपाय करि नहीं मिलते हैं तेऊ जिनकी कृपा ते प्रयास विनु स्वाभाविकही रघुनाथजी मिलिजाते हैं ताते जीवन को सुगम भवसागर तरिबे हेतु नावसम शुद्ध सन्तन के चरणारविन्द हैं इसहेतु सन्तन की संगति करि गुरु के उपदेशते प्रेम विवेक सहित प्रभु को आराधन करिये २० ॥

राग कान्हरा।

(२०५) जो मन लागै रामचरण अस।

देह गेह सुत वित कलत्र महँ मगन होत विनु यतन किये जस १
द्वन्द्वरहित गतमान ज्ञानरत विषय विरत खटाइ नाना कस।
सुखनिधान सुजान कोशलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस २
सर्व भूतहित निर्व्यलीक चित भक्ति प्रेम दृढ़ नेम एकरस।
तुलसिदास यह होय तबहिं जब द्रवैं ईश जेहि हत्यो शीशदश ३

टी०। देह में इन्द्रिय विषयन के सुख में तथा गेह जो घर तामें सुत जो पुत्र

वित जो धन कलत्र जो स्त्री इत्यादिकन में जैसे विना यत्न कीन्हे सहजस्वभाव ते मगन बूड़ारहत ऐसेही जो मन रामचरण में लागै अर्थात् देह में दश इन्द्रिय हैं यथा श्रवण ताकी विषय शब्द है तहां स्त्रियनकी वार्ता कामगीत इत्यादि सुनबे हेतु विना उपाय सहजही श्रवणद्वारा मन लाग रहत दूसरी इन्द्रिय त्वचा ताकी विषय स्पर्श है तहां सुन्दर वसन कोमल शय्या इत्यादि में त्वचा द्वारा मन लाग रहत तथा युवती आदि सुन्दररूप देखि नेत्र द्वारा षट्रस देखि जिह्वा द्वारा सुगन्ध देखि नासिका द्वारा सहजही मन लाग रहत मैथुनहेतु लिङ्गद्वारा मांगिवेहेतु मुख द्वारा पाइवेहेतु करपदद्वारा इति इन्द्रिय विषय हेतु देहमें यथा मन मगन पुनः घर में मोह-वश पुत्र में मन सहजही लागरहत लोभवशते धनमें सहजही लाग रहत तथा काम-वश ते सहजही मन स्त्री में लागरहत इत्यादि देह व्यवहार में तथा गेह में विना उपाय किहे सहजही स्वभाव ते मन आनन्द माने रहत ऐसेही विरागादि साधन विना किहे सहज स्वभावते सर्व इन्द्रियन सहित जो रघुनाथजीके चरणारविन्दन में लागरहै कौनभांति यथा कवित्त ॥ काननसुयशरामध्यानमनमाहिंदेखि श्यामरूप नैनबैनरामगुणगाइहीं । राघवप्रसादमालसूंघिउरधारिनितरसनासोंरामहीकोजूठ अन्नपाइहीं ॥ कररामसंदिरकोमार्जनादिसेवसाज पादरामधामहीकोनितप्रतिजाइ हौं । धामधनवामसुतमोहिंपकरघुनाथ वैजनाथमाथनितरामपदनाइहौं ॥ यथा अम्बरीषप्रसंगे भागवते ॥ स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने । करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रं स्पर्शेऽङ्गसंगमम् । घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्यारसनां तदर्पिते ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने । कामं च दास्ये नतु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकगुणाश्रया रतिः ॥ इत्यादि यावत् देह बुद्धि रहै तावत् सेवक सेव्यभाव ते सर्व इन्द्रियनसहित मन प्रभु की कैंकर्यतामें लगाये अभय आनन्द रहै १ पुनः जव श्रवण, कीर्तनादि के प्रभाव ते देहाभिमान छूटि जाय जीव बुद्धि आवै तव अंश अंशी मानि सख्यभाव ते द्वन्द्व जो मायाकृत विकार यथा मैं मोर तैं तोर राग, द्वेष, हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान इत्यादि द्वन्द्वरहित पुनः मानगत अर्थात् आपनी बड़ाई पर चित्त उन्नति करना इति मान गत नाम जातरहा है भाव मान त्यागि अमान है ज्ञान में रत आत्म अनुभव में लागरहै पुनः विषय ते विरत इन्द्रियन की विषयन ते मन फेररहै कौन भांति खटाइ नानाकस अर्थात् खट्टी, मीठी, घृत, दुग्ध, दधि इत्यादि षट्रस सोई जव कसकुट आदि बुरे पात्रन में धरि राखौ तव उन पात्रन को कस नानाभांतिको छूटी तव सव रस खट्टे है जाते हैं अर्थात् खातेमें वदस्वाद पाछे व्याधिकारी इसहेतु उनको कोऊ ग्रहण नहीं करता है तैसेही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि सन्मुख होत सन्ते इन्द्रिय न ग्रहण करने पावैं तौ सव विषयी हैं तौ कुपात्रनै में तिनको अनेक भांतिको कस छूटे अर्थात् जिनमेंते विषय देखानी है उनको विकार विचार करनेते खट्टी हैजाती हैं यथा शब्द, रूप, मैथुन परस्त्रीमें है ताको ग्रहण कीन्हे लोक परलोक दोऊ नाश होइँगे इत्यादि विचारि वाको न ग्रहणकरना यही इति खट्टा जानि विषयनते वैराग्य राखे प्रेमसहित रघुनाथजीको भजन करै तौ सुखके निधान सुखभरे मन्दिर

पुनः सुजान परमचतुर कोशलपति श्रीरघुनाथजी सो प्रसन्न ह्वै क्यों न वश होहिं अर्थात् प्रभु सुजान हैं ताते थोरी सेवा को बहुत मानते हैं ऐसे कृतज्ञ हैं तहां जब तैं सब विषयनते विमुख ह्वै सबन को आश भरोसा त्यागि शुद्ध हृदय ते प्रेम सहित जो एक रघुनाथैजी में लागरहैगा तब प्रभु तेरे वश क्यों न होइँगे पुनः जो सुख के भरे मन्दिर हैं ते जब तेरे वश हैं तौ तोको सबभांति को सुख देइँगे इत्यादि तौ मेरा कहा है याके प्रतिकूल जो उत्तर होइ ताको हे मन! तू कहु नातरु विषय आशा त्यागि मेरी कही हुई राहपर प्रमुदित चलु २ पुनः सर्वविकार त्यागि शुद्ध हृदय ते प्रेमाभक्ति के प्रभावते जीवत्व त्यागि आत्मबुद्धि आवै तब लोकव्यवहार में सर्वभूत जो चराचर जीवमात्र तिन को हित करै अर्थात् समतादृष्टि ते सब पर दया राखै पुनः निर्व्यलीक अर्थात् अवरन के पीड़ा देने हेत उपाय करना ताको व्यलीक कही यथा ॥ पीडार्थेऽपि व्यलीकं स्यादित्यमरः ॥ पुनः निरुपसर्ग को अर्थ नहीं है अर्थात् नहीं है व्यलीक ऐसा दयावन्त चितभाव ऐसा काम न करै जामें किसी जीव को दुःख होइ सब के सुखै का उपाय करै इति शुद्धहृदय में प्रेमाभक्ति को नेम सदा एकरस दृढ़ राखै अर्थात् चित में प्रीति की उमंग ताको प्रेम कही सोई प्रेम सदा एकरस उर में पुष्ट करिकै परिपूर्ण बनारहै यामें भेद ऐसा है यथा काहू कुमारी कुमार में प्रीति लगी है सो उनको संयोग तौ बड़ी परिश्रम ते कबहूं क्षणमात्र को होता है अरु वियोग सर्वदा रहता है ताते मिलन चाहते उनकी प्रीति उमँगा करती है अरु जब उनको विवाह ह्वै गया अभय ह्वै एक मन्दिर में वास करने लगे तब वही प्रीति थिर ह्वै अन्तर बाहेर सर्वांग में सदा एकरस परिपूर्ण बनी रहती है तैसेही यावत् जीव बुद्धि है तावत् हर्ष, विषाद, अहमिति, अभिमानादि, अज्ञानते एकरस तौ ज्ञान रहत नहीं ताते ईश्वर को ध्यान भी सदा एकरस नहीं रहत इस वियोग में प्राप्ति हेत स्वामी के गुण विचारि विचारि जो प्रीति उमँगती है सोई प्रेमाभक्ति है अरु जब आत्मबुद्धि आई तब परिपूर्ण ज्ञान रहेते शुद्ध आत्मरूप की प्रीति परमात्मारूप में सदा एकरस थिर बनी रहती है इसीको नाम अनुराग है यथा ॥ दोहा ॥ व्यापकता जो प्रीति की ज्यों छुठि बसन सुरंग। दृगनद्वार दरशै चटक सो अनुराग अभङ्ग ॥ एकरस सदा अनुराग बना रहना यही पराभक्ति है यथा ॥ शाण्डिल्यसूत्रे ॥ अथातो भक्ति-जिज्ञासा सा पराअनुरक्ति ईश्वरे ॥ तहां प्रेमाभक्ति में नेम नहीं रहत अरु जब प्रेमा-भक्ति को नेम सदा एकरस पुष्टकरि हृदय में धारण किहे रहत सोई पराभक्ति है अब गोसाईंजी कहत कि जीव में यह भक्ति साधन करिकै होना अगम है यथा ॥ महारामायणे ॥ ये कल्पकोटि सततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहोरतब्रह्म-ज्ञानात्। ते देवि धन्य मनुजा हृदि वाह्य शुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ॥ इत्यादि परिश्रम जो करोरिन जन्म किहे मिलती है तौ काहेको किसी जीव को भक्ति मिलैगी तापर कहत कि ज्यहि दशशीश को हत्यो सोई ईश जब द्रवैं प्रसन्न ह्वै कृपा करैं तबै यह भक्ति सुलभ ही होइ अर्थात् ब्रह्माण्ड में जब परिवार सहित रावण प्रचण्ड परा तब सुर, नर, नागादि सबको मारि विकल करिदिया जब सब देवगण दीन अधीन ह्वै शरण गये तब अवतीर्ण ह्वैकै रघुनाथजी परिवार सहित

रावण को मारि मुक्ति का अधिकारी करि विभीषण को अचल राज्य दिये देवादि सबको अभय किये तैसेही पिण्ड में कामादि परिवार सहित मोह रावण दश इन्द्रिय जाके शीश हैं सो विवेक विरागादि को विकल किहे हैं सोऊ जब प्रभु को पुकारैं अर्थात् शरणागति को भरोसा राखे प्रेमसहित सब साधन करैं तब रघुनाथ जी कृपा करि कामादि सहित मोह को नाश करि ज्ञानादि को अभय करैं जीव को पराभक्ति सुलभ करि देवैं ३॥

(२०६)जो मन भज्यो चहै हरिसुरतरु।

तौ तजि विषय विकार सार भजु अजहूं जो मैं कहौं सोइ करु१

समसन्तोष विचारविमलअति सतसङ्गति ए चारि दृढ़ करि धरु।

काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निशेष करि परिहरु २

श्रवण कथा मुख नाम हृदय हरि शिर प्रणाम सेवाकर अनुसरु।

नैनन निरखि कृपासमुद्र हरि अग जग रूप भूप सीतावरु ३

यहै भक्ति वैराग्य ज्ञान यह हरि तोषन यह शुभ व्रत आचरु।

तुलसिदास शिवमत मारग यह चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु४

टी०। हे मन! जो हरिसुरतरु की प्राप्ति चहै तौ भजै अर्थात् कल्पवृक्षसम सुलभ उदार श्रीरघुनाथजी की प्राप्ति समीपता चहु तौ भजु रघुनाथजीकी कैंकर्यता करु अथवा कल्पवृक्षसम सब फलदायक श्रीरघुनाथजी को भजा चहु तौ हे मन! अजहूं अवहीं कछु बिगरा नहीं है ताते जो मैं कहौं सोई निश्चय करियो करु क्या करु प्रथम तौ असार देह को सांची मानि इन्द्रियसुख में भूलापरा सारांश आत्मरूप को बिसारे है ताते विषय विकार तजि अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि जो इन्द्रियन में विकार आत्मरूप में आवरण किहे सो विषयवासना त्यागि देहेन्द्रियन को चैतन्यकर्त्ता जो यामें सार है ताको भजु अर्थात् देहाभिमान त्यागि शुद्ध इन्द्रियन की वृत्ति आत्मरूप पर लगाउ भाव प्रथम आपना शुद्ध स्वरूप जानि तब रामरूप जानिवे की उपाय करु १ यावत् मन में विषमता चित्त में चाह बुद्धि में मन्दता अहंकार में ममता बनी है तावत् कैसे इन्द्रियविषयन को त्यागिसकत ताहेत कहत कि समता अरु संतोष पुनः अति विमल विचार अरु सतसंग में प्रीति ये चारि उपक्रम दृढ़ पुष्टकरि उर में धरु अर्थात् समता करि मनकी विषमता हरु संतोष ते चित्तकी चाह हरु अत्यन्त विमल विचार करि बुद्धि की मन्दता हरु सतसंग करि अहंकार की ममता हरु इत्यादि दृढ़ राखने हेत काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि त्याग करु अरु सबको कारण राग द्वेष किसी ते प्रीति किसीते विरोध ताको विशेषि परिहरु त्याग करु २ प्रथम कही विधिते देहाभिमान त्यागि आत्मरूप जानिकै पुनः रामरूप प्राप्तिहेत श्रवण कथा कानते रामयश श्रवण करु मुखते रामनाम स्मरण करु तथा हृदय में हरि रामरूप को ध्यान राखु पुनः शिर ते प्रणाम करु पुनः करते सेवा अनुसरु अर्थात् हाथन ते रघुनाथजी की परिचर्या करु पुनः नयननते हरिरूप निरखु कैसे हरि अगजगरूप

स्थावर जंगमादि सब में जे अन्तर्यामीरूपते वास किहे हैं यतनोही वेदादि कहत और जिनकी ऐश्वर्य कोऊ नहीं जानि सकत सोई सीतावर भूपरूप धारण कीन्हे किसहेत कृपासिन्धु हैं कृपा यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी ॥ अर्थात् भूतमात्र रक्षा करने को हमहीं समर्थ हैं यह दृढ़ानुसंधान राखना सो कृपा है तेहि कृपारूप जलभरे समुद्र हैं अर्थात् सुलभ जीवन को उद्धार हेत राजकुमाररूपते अवतीर्ण भये ३ देहाभिमान त्यागि आत्मरूप ते शुद्ध सनेह सहित मन लगाइ सर्वाङ्गते रघुनाथजी की परिचर्या यह शुभ व्रत आचरु मङ्गलकर्त्ता जो अन्यता वा उपासना व्रत है ताही के सब आचरण करु आचरण यथा महारामायणे ॥ गुरुमन्त्रानुसारेण लयं ध्यानं जपं तथा। पाठं तीर्थं च संस्कारमिष्टं सर्वपरात्परम् ॥ इष्टपूजां प्रकुर्याद्धि तत्कथां शृणुयात् पठेत्। तदङ्गव्यापकं विश्वं कथ्यते साप्युपासना ॥ पुनः अन्यता यथा ॥ न विधिर्न निषेधश्च प्रेमयुक्तं रघूत्तमे। इन्द्रियाणामभावः स्यात्सोनन्यो-पासकः स्मृतः ॥ इति हरितोषण रघुनाथजी को प्रसन्न करनहारा यह शुभ व्रत है पुनः ज्ञान वैराग्य सहित यही भक्ति है पुनः गोसाँइजी कहत कि जे देवन में श्रेष्ठ वैष्णवन में श्रेष्ठ ऐसे उत्तम समर्थ शिवजी के मत को यह मारग श्रीरामपद प्राप्ति को सुगम रास्ता है तामें सदा चलत सपनेहू में डर नहीं है अर्थात् कलियुग में अन्य साधन में बाधा होत अरु रघुनाथजी की शरणागति सब युगन में अभय है ४ ॥

(२०७) नहिंन और कोउ शरण लायक दूजो श्रीरघुपति सम विपति निवारन। काको सहजस्वभाव सेवकवश काहि प्रणत पर प्रीति अकारन १ जन गुण अलप गनत सुमेरु करि अवगुण कोटि विलोकि बिसारन। परमकृपालु भक्त चिन्तामणि विरद पुनीत पतित जन तारन २ सुमिरत सुलभ दासदुख सुनि हरि चलत तुरत पटपीत सँभारन। साखि पुराण निगम आगम सब जानत द्रुपदसुता अरु वारन ३ जाको यश गावत कवि कोविद जिन के लोभ मोह मद मारन। तुलसिदास तजि आश सकल भजु कोशलपति मुनिवधू उधारन ४

टी०। रुज, वियोग, हानि, दरिद्रता, सबल शत्रु, राजक्रोध, व्याघ्र, सर्प, भूत, देव, राक्षस, यमगणपर्यन्त सब भांति को संकट शरणमात्र ही रघुनाथजी छुड़ाइ देतेहैं यह प्रभु की प्रतिज्ञा है यथा वाल्मीकीये ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ इति विपति निवारण विपति मिटावनेवाला रघुनाथजीकी समान दूसरा और कोऊ इस लायक नहीं है जाकी शरण जाइये ताते केवलशरणपाल एक श्रीरघुनाथैजी हैं काहेते और काको सहज स्वभाव ऐसा है कि सेवक के वश में रहै पुनः अकारण काहि प्रणतपर प्रीति है अर्थात् शरणागतपर बेप्रयोजन और कौन प्रीति करनेवाला है १ जन गुण अलप

आपने दासनके गुण थोरेहू सुनते हैं ताको सुमेरुगिरि पर्वत समान करि गनते हैं तथा कोटिन अवगुण विलोकि विसारन अर्थात् सेवकन के अवगुण जो करोरिन देखैं तिनको विसराइ देतेहैं पुनः परम कृपालु अत्यन्त कृपागुण के भरे मन्दिर हैं अर्थात् जीवमात्र रक्षा करिवे को आपही को समर्थ माने हैं पुनः भक्तन हेत सब सुखदायक चिन्तामणि सम हैं चिन्तित फल देतेहैं पुनः पतित जननं को तारनहार इति विरद पुनीत बाना पवित्र विदित है अर्थात् अजामिल, यमन, गणिका, गीधादि तारने को पावन यश वेद पुराण द्वारा लोक में विदित है २ पुनः जिन को नाम सुमिरत में ऐसा सुलभ है कि दीक्षा मुहूर्त क्षेत्र आसन पुरश्चरणविधि नियम निषेध की कछु जरूरति नहीं उच्चारणमात्र मुक्ति पर्यन्त सब प्रयोग शीघ्रही सिद्धिदायक हैं यथा शुकसंहितायाम् ॥ आकृष्टः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचांएडाल-मनुष्यलोकसुलभो वश्यं च मुक्तिश्रियः। नो दीक्षां नच दक्षिणां न च पुरश्चर्यामना-गीक्षते मन्त्रोयं रसनास्पृशेव फलति श्रीरामनामात्मकः ॥ पुनः पद्मपुराणे ॥ ये ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम्। तत्सर्वं सिद्ध्यति क्षिप्रं रामनाम्नैव कीर्तनात् ॥ इत्यादि सुमिरत सन्ते जिनको नाम सदा सुलभ है पुनः करुणा दया भक्तवत्सलता करिके रूप कैसा सुलभ उदार है कि भक्तनको दुःख सुनत हीं तुरत उठि ऐसे संभ्रम ते हरि रघुनाथजी चलते हैं कि पीतपट सँभारने की सुधि नहीं रहत ताकी निगम, वेद, आगम, शास्त्र, पुराणादि सबै साखी हैं पुनः द्रुपदसुता द्रौपदी पुनः वारण गजराज इत्यादि भक्तवत्सलता को हाल भलीभांति जानते हैं भाव द्रौपदी की लज्जा राखे गजराज के प्राण राखे ३ जा रघुनाथजी को पावनयश कवि वाल्मीक्यादि कोविद वेदतत्त्वज्ञाता विद्वान् शुकदेवादि गावते हैं कैसे कवि, कोविद जिनके लोभ परधन परध्यान मोह आत्मरूप बिसारि देहाभिमान करना मद विद्याधन पाइ हर्ष बढ़ावना मार काम परस्त्री आदि कामना इत्यादि नहीं है भाव सबविकार जे त्यागे आत्मदर्शी हैं ते यश गावते हैं पुनः गोसाईंजी कहत कि स्त्री, पुत्र, धन, धाम, स्वर्गादि सकल आश तजि मुनिवधू अहल्या को उद्धार करनहारे कोशलपति श्रीरघुनाथजी को भजु भाव जे बेप्रयोजन अहल्या के पाप शाप हरे ऐसे कृपासिन्धु हैं ४ ॥

(२०८) भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस शरणप्रद दूजो नाहिंन । आनँदभवन दुखदवन शोकशमन रमारमण गुण गनत सिराहिं न १ आरत अधम कुजाति कुटिल खल पतित सभीत कहूं जे समाहिं न । सुमिरत नाम विवशहू वारक पावत सो पद जहां सुर जाहिं न २ जाके पदकमल लुब्ध मुनिमधुकर विरति जे परमसुगतिहु लुभाहिं न । तुलसिदास शठ तेहि न भजसि कस कारुणीक जो अनाथहि दाहिंन ३

टी० । भजिबेलायक अर्थात् सबल समर्थ शील क्षमायुत कोमल स्वभाव कृतज्ञ थोरी सेवा को बहुत मानि सर्वसदै ताहूपर वाकी आधीन रहते हैं ऐसे सेवकन

को सुख देनहारे सुलभ उदार रघुनायक सरिस शरणप्रद अर्थात् शरणागत को अभयपद देनहारा रघुनाथजी की समान दूसरा कोऊ नहीं है काहेते आनन्दभवन सब आनन्द के भरे मन्दिर हैं भाव सन्मुख होतही सब आनन्द प्राप्त करि देते हैं पुनः दुःखद मन अर्थात् शूल, व्याधि, शत्रु, राजदण्ड, बध, बन्धनादि जो दुःख ताको दलिडारते हैं पुनः शोकशमन अर्थात् हानि, वियोग, दरिद्रतादि शोक है ताके नाशकर्त्ता इत्यादि रमारमण के दिव्यगुणगणतसन्ते सिरात नहीं गने चुकत नहीं असंख्य हैं १ आरत दुःखित सुग्रीवादि अधम जटायु आदि कुजाति शवरी कुटिल वानर खल राक्षस पतित यमनादि सभीत जे कहूं न समाहिं यमसांसति भय ते कहीं नहीं बचिसकते रहैं ते विवशहू बारक बेसुधि में एकबार रामनाम सुमिरत सन्ते सो परमपद पावत जहां सुर देवता नहीं जाइ सकते हैं भाव हराम कहि यमन परमपद पायो २ पुनः जे विरति ऐसे वैराग्यमान हैं कि सुगतिहू न लोभाहिं जिनके मुक्तिहू को लोभ नहीं है अरु मन लुब्ध मधुकर आपने मनको लोभी भ्रमर बनाये जिनके पदकमलन में बसाये हैं गोसाईंजी कहत हे शठ, महाअज्ञ, मन ! तेहि कारुणीक करुणाकरको नहीं भजता है जो अनाथहि दाहिन जिन को कोऊ दाहिन सुखद नहीं है ताहूपर करुणा करि सुखी करते हैं ३ ॥

राग कल्याण।

(२०६) नाथ सों कौन विनती कहि सुनावों। त्रिविध अन गणित अवलोकि अघ आपने शरण सम्मुख होत सकुचि शिर नावों १ विरंचि हरि भक्त को वेष वरटाटिका कपट दल हरित पल्लवनि छावों। नामलगि लाइ लासा ललित वचन कहि व्याधज्यों विषय विहँगनि बझावों २ कुटिल शत कोटि मेरे रोम पर वारि-यहि साधुगनतीमों पहिलहिं गनावों। परमबर्बर खर्ब गर्ब पर्वत चढ़्यो अज्ञ सर्वज्ञ जनमणि जनावों ३ सांच किधौं झूंठ मोको कहत कोउ कोउ राम रावरो होहुँ तुमरोइ कहावों। विरद की लाज करि दासतुलसीहि देव लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावों ४

टी० हे रघुनाथजी! आपु सों कौन भांति विनती कहि सुनावों भाव आपुते सांची बात कहना उचित सो अन्तर में विकार भरा अरु मुख ते शुद्ध सेवक बनि कैसे झूंठी कहौं काहे ते आपने त्रिविध अघ अर्थात् आपने किये हुये मन वचन कर्मादि तीनि विधि के पाप यथा परधन परध्यान अनिष्ट चिन्तवन नास्तिकता ये तीनि मन के अघकर्म पुनः कठोर झूंठ परदोष वेप्रयोजन बोलना ये चारि वचन अघ-कर्म पुनः विना दिहे पर वस्तु लैलेना हिंसा परस्त्रीगमन ये तीनि कर्म अघ हैं यथा मनुस्मृतौ ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानम्मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्ममानसम्॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्। अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च

शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ इति मन वचन कर्मन करि किये हुये आपने पाप सो अगणित विलोकि असंख्यन देखि तेहि भयते हे प्रभु ! आपुके सन्मुख शरण होत सन्ते सकुचि शिर नावों अर्थात् अपने पाप कर्म विचारि सकुच लागत ताते आपुके सामने मुहड़ नहीं होत तौ विनती कैसे करौं १ काहेते आपुके सन्मुख मुख नहीं होत कि आचरण तौ मेरे ऐसे हैं कि हरिभक्त को वरवेष विरचि अर्थात् कण्ठ में तुलसी दाम उरपर पद्ममाल पुनः कमलाक्ष तुलसी की माला द्वादश तिलक हरिआयुध छाप अंगन में अंकित पीताम्बर धारण ठाकुर कण्ठ में बांधे उपासना के ग्रन्थ लीन्हे इत्यादि हरिभक्तन को उत्तम वेष सोऊ विशेषि रचिकै बनाये अरु अन्तर काम लोभादि वासना भरी सो कैसा है यथा वधिक पक्षी पकरिबे हेत वांस की टट्टी बनाय ताको हरित दल पल्लवनते छावत ताकी ओटते लग्गीते लासा लगाइ पक्षी को पकरिलेत तथा सुन्दर वेष सोई उत्तम टट्टी है पुनः कपट अर्थात् मुख ते साधुता अन्तर ते दुष्टता इत्यादि नितनवा कपट सोई हरित दल पल्लवनते छावत हौं पुनः लग्गी लासा चाहिये इहां नाम लग्गी है अर्थात् राम नाम को प्रभाव बढ़ाइ कै कहना यथा ॥ भाव कुभाव अनख आलसहूं । नाम कहत मङ्गल दिशि दशहूं ॥ करौं कहां लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥ आदिपुराणे ॥ श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि । तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥ इति रामनाम को प्रभाव बढ़ावना सोई लग्गी है ताके संग ललित मनोहर वचन कहत हौं सोई लासा लगाय विषयरूप विहग पक्षिन को बझावत हौं मनरोचक वाणी ते नाम प्रतापमय कथा सुनाय मेला बटोरि तामें सबभांति के विषयसुख ग्रहण करता हौं अर्थात् सवन के दिये हुये विचित्र वसन अङ्गमें धारण कोमल शय्यापर शयन करता हौं पुनः बहुतभांति के व्यञ्जन, खटाई, तरकारी, मालपुवा, मोहनभोग, पूरी, कचौरी, मठरी, समोसा, पेराक, लड्डू, पेड़ा, बरफ़ी, खाझा आदि मिठाई इत्यादि षट्रस भोजन करता हौं पुनः भूषण, वसन, सजे युवतिन के वृन्द आवते हैं तिनको रूप नेत्रन भरि देखता हौं उनके वचन गान सुनता हौं इति व्याधा की नाईं विषयसुखरूप पक्षी बझावता हौं इति कायिक पापकर्म हैं २ पुनः परस्त्री परधनहरन परहानि परद्रोह इत्यादि मन करिकै कैसा पापी कुटिल हौं कि समता योग्य तौ कोऊ हैही नहीं मेरे एक रोम पर सौकरोरि कुटिलन को वारण करि दीजिये ऐसा तौ अन्तर ते कुटिल हौं तापर जहां साधुन की गनती होती है तिन में पहिलेही अपना को गनावता हौं भाव साधुन में शिरोमणि बनता हौं पुनः वचन करिकै कैसा पापी हौं कि परम बर्बर वृथा बकनेवाला अत्यन्त बकवादी खर्व तुच्छ गर्वरूप पर्वतपर चढ़ो विद्या चातुरी महत्त्वादि बड़ाभारी गर्व लिहे रहता हौं ऐसा तौ अज्ञान हौं अरु सर्वज्ञ जे सर्व सिद्धान्त के जाननेवाले तिन जनन में शिरोमणि अपना को जनावता हौं भाव छल चातुरी ते तीनिहूं काल की अदेख वार्त्ता कहा करता हौं ३ इति काय, मन, वचन कृत पापकर्मन को विचारि आपु के सन्मुख विनती तौ नहीं करिसक्ता हौं परन्तु हे श्रीरघुनाथजी ! आपु को सांचा गुलाम हौं कि धौं झूंठा बना हुआ हौं सो तौ कोऊ जानता नहींहै वेष देखि वचन सुनि कोऊ कोऊ रावरो कहत अर्थात् कोऊ

कोऊ जन कहत कि तुलसीदास राम को गुलाम है तथा हौंहूं तुम्हारोई जन कहावों अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी ! सांचा कहते हैं कि धौं झूंठे कहते हैं लोकहू में कोऊ कोऊ मोको रामगुलाम कहते हैं तथा महूं अपना को आपही को गुलाम सबनसों कहवावत हौं भाव पूंछे पर अपना को रामगुलाम बतावतहौं ताते हे देव, रघुनन्दन, महाराज ! बिरद की लाज करि अर्थात् पतितपावन अधम उद्धारण दीनबन्धु प्रणतपाल इत्यादि जो आप को बाना है ताकी लाज करिकै अब बावों जनि देहु तुलसिहि अपनाइलेहु अर्थात् अब त्याग न कीजिये तुलसीदास को भी आपनी शरण में राखेरहिये भाव आपना जानि कालकर्म कामादि ते रक्षा कीजिये आत्मशुद्ध राखिये ४ ॥

(२१०) नाहिंनो नाथ अवलम्ब मोहिं आन की। कर्म मन वचन प्रण सत्य करुणानिधे एकगति राम भवदीय पदत्रान की १ कोह मद मोह ममतायतन जानि मन बात नहिं जात कहि ज्ञान विज्ञान की। कामसङ्कल्प उर निरखि बहु वासनहिं आश नहिं एकहू आंक निर्वान की २ वेदबोधित कर्म धर्म बिनु अगमअति यदपि जिय लालसा अमरपुर जान की। सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन द्रवहिं हठयोग दिये भोग बलि प्रान की ३ भक्ति दुर्लभ परम शम्भु शुक मुनि मधुप प्यास पदकंज मकरंद मधुपान की। पतितपावन सुनत नाम विश्रामकृत भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान की ४ नरक अधिकार मम घोर संसार तमकूप कहि भूप मोहिं शक्ति आपान की। दास तुलसी सोऊ त्रास नहिं गनत मन सुमिरि गुह गीध गजज्ञाति हनुमान की ५

टी०। काहेते बिरद की लाजते मोको अपनाइ लीजै हे नाथ ! मोहिं आनकी अवलम्ब दूसरे को आशभरोसा नहीं है हे करुणानिधे ! करुणा जलभरे सिन्धु, रघुनाथजी ! मेरे कर्म करिकै मन करिकै वचन करिकै प्रणसत्य भवदीय पदत्राण की एकगति है अर्थात् आपके पायँन की जूतिन की गति आशभरोसा है यही एक सत्य प्रतिज्ञा है १ कोह, क्रोध, भाव स्वारथहानिकर्त्ता जानि वैर विरोध राखना पुनः मदविद्या धनादि पर हर्ष बढ़ावना पुनः मोह आत्मरूप भुलाइ देहाभिमान करना पुनः ममता देहसम्बन्धिन में अपनपौ मानना इत्यादि को भरा आयतन मन्दिर मन को जानिकै ज्ञान विज्ञान की बात नहीं कहिजात अर्थात् मन में तौ क्रोध, मद, मोह, ममतादि भरेते तौ देहाभिमान को सत्य पुष्टकरिरहे हैं तौ मुख ते झूंठी ज्ञान की वार्त्ता भाव विवेक ते संसार झूंठा विराग ते लोकसुख त्याग इति कैसे कहौं काहेते काम संकल्प की बहुत वासना उर में निरखि निर्वान मुक्ति की आश एकहू आंक नहीं अर्थात् इन्द्रिय विषयन में लागेते कामना बढ़त कामना हानि भये क्रोध होत क्रोधते मोह देहाभिमान बढ़त ताते चैतन्यता नाश

ताते बुद्धिनाश ते जीव नाश होत यथा ॥ गीतायाम् ॥ ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते । संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते ॥ क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ इति इन्द्रियविषयन में आसक्त ताते कामसंकल्प भाव कामना की निश्चय यथा यह स्त्री हमको अवश्य प्राप्त होइ इत्यादि उरमें बहुती वासना उठत देखता हौं तिस कामना के व्यापार में जो हानि करता है तापर क्रोध करता हौं क्रोधते मद मोहादि अनेक दुःख खुशीते जीवग्रहण किहे देखाता है ताते भवसागर जाने की निश्चय है अरु जाते मुक्ति की आशा होइ सो कर्म ज्ञानभक्ति साधनरूप अक दुःख करिकै आक दुःखित जीव एकहू भांति देखि नहीं परता है आकार्थ यथा अकं दुःखं विद्यते यस्यासौ आकः अर्थात् अक जो दुःख विद्यमान होइ जिहिके तिहिका कही आक अर्थात् भव को लैजानेवाले जो काम, क्रोध, ममता, मोहादि दुःखनते हर्षसहित सदा जीव दुःखित देखाता है ताते भव जाने की निश्चय है अरु कर्म ज्ञान भक्ति साधन दुःखन ते एकहू वार दुःखित जीव नहीं देखिपरता है तौ कैसे मुक्ति की आशा करौं २ पुनः औरहू विधि परलोक सुख की आश नहीं है काहेते अमरपुर जो देवलोक तहां को जाने की यद्यपि जीव में लालसा अत्यन्त चाह है परन्तु सोऊ सुखप्राप्ति की उपाय नहीं है काहेते वेदबोधित वेद आज्ञाते जे कर्म हैं यथा ॥ अर्थपञ्चके ॥ तत्र कर्म परिज्ञेयं वर्णाश्रमानुरूपितः । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रेधा कर्म फलार्थिनाम् ॥ यज्ञो दानं तपो होमं व्रतं स्वाध्याय-संयमः । संध्योपास्तिर्जपः स्नानं पुण्यदेशाटनालयम् ॥ चान्द्रायणाद्युपवासश्चा-तुर्मास्यादिकानि च । फलमूलाशनश्चैव समाराधनतर्पणम् ॥ इति देवलोक प्राप्ति योग्य जे वेदबोधित कर्म हैं ते विना धर्म, श्रद्धा, यज्ञादि कर्म अत्यन्त अगम हैं नहीं ह्वै सक्के हैं पुनः सिद्धि जो अणिमादिक सुर जो इन्द्रादिक मनुज कार्तवीर्यादि दनुज दैत्य ब्रह्मराक्षसादि तिनहूं सेवने में कठिन हैं काहेते हठयोग अष्टाङ्ग करने ते सिद्धि द्रवत प्रसन्न होत पुनः यज्ञादि भाग देनेते देवता द्रवत तथा विधिवत् पूजा मन्त्र जपादि में जब प्राण बलिदेउ तब द्रवते हैं इति सेवत में कठिनता है ताते स्वर्गप्राप्ति अरु सिद्धाइउ की आश नहीं है ३ पुनः हे रघुनाथजी! जीवको परमकल्याण करता आप की भक्ति है सो परम दुर्लभ है दुःखौ करि किसी को लाभ नहीं होती है काहेते शम्भु ऐसे समर्थ देवन में श्रेष्ठ पुनः शुकदेव ऐसे विरक्त मुनिन में श्रेष्ठ इत्यादि भ्रमर ह्वै आपके पदरूप कञ्ज कमलन को अनुरागरूप मकरन्द मधु मीठा रस ताके पान करिवे की सदा प्यास राखे हैं ऐसे ईश्वरन को अगम है तौ हम ऐसे विषयिन अधमन की कौन गनती है जो भक्ति की आशा राखौं तहां यमनादि महापापी भूलिके नाम कहे तेऊ पावन ह्वै परमपद पाये इत्यादि पतितन को पावन करता आपको नाम है यह पुराणन में सुनत विश्रामकृत नामके भरोसे अन्तस स्थिर करत हौं परन्तु अभिमान की ग्रन्थि समुझि अर्थात् जीव तौ देहाभिमान पुष्ट किहे है तौ विषयसुख में लागैगा नाम की अवलम्ब क्यों गहैगो यह समुझि पुनः चित्त भ्रमत स्थिर नहीं रहत ४ हे भूप, रघुनन्दन, महाराज! आपान की आपनी पैदा की हुई शक्ति म्वहिं घोर भयंकर संसाररूप तम अँधेराकूप

कद जाने की है भाव आपने कर्मन के बल करिके मैं भवसागर को जाइसक्ता हौं तथापि अधिक पापनने मम मेरा नरक जावे को अधिकार है सोऊ त्रास तुलसीदास नहीं गनत हैं काहेते गुह नीच अधम जाति ताको प्रणाममात्र से पावन कीन्हेउ तथा गीध अधम पक्षी ताको दर्शनमात्र से परमपद दीन्हेउ हनुमान्‌की ज्ञाति जाति वानर चञ्चल पशु तिनको पावन कीन्हेउ इत्यादिकन की गति सुमिरि मेरेभी दृढ़ भरोसा है कि प्रणाममात्र से मेरा भी उद्धार करौगे इस हेतु संसार नरक ते अभय हौं ५॥

(२११) और कहँ ठौर रघुबंशमणि मेरे। पतितपावन प्रणतपाल अशरणशरण बांकुरे विरद विरुदैत केहि केरे १ समुझि जिय दोष अति रोष करि राम जेहि करत नहिं कान विनती वदन फेरे। तदपि ह्वै निडर हौं कहौं करुणासिंधु क्यों बरहि जात सुनि बात बिनु हेरे २ मुख्य रुचि होत बसिबे को पुर रावरे राम तेहि रुचिहि कामादिगण घेरे। अगम अपवर्ग अरु स्वर्ग सुकृतैकफल नामबल क्यों बसों यमनगर नेरे ३ कतहुँ नहिं ठाउँ कहँ जाउँ कोशलनाथ दीन वितहीन हौं विकल बिनु डेरे। दासतुलसिहि बास देहु अब करि कृपा बसत जग गृध्र व्याधादि जेहि खेरे ४

टी०। हे रघुवंश के शिरोमणि, रघुनन्दन, महाराज! आपने पापकर्मन करिके महापतित हौं पुनः आपके नाम का अवलम्ब राखे द्वार पर परा हौं तो जो आप त्यागकरौ तौ और मेरे कहां ठौर है जहांको जाउँ भाव आपही के द्वारपर ठौर है काहेते पतितन को पावन करनहार प्रणत शरणागतको पालनहार जाको शरण राखनेवाला कोऊ नहीं है ऐसे अशरण को शरण राखनहार ऐसे बांकुरे विरद बांका बाना और दूसरे क्यहि विरुदैतबानावालेकेरे है अर्थात् पतितपावन प्रणतपाल अशरणशरण ऐसी विरदावली एक आपही की है ताते आपही के द्वारपर मोको ठौर है १ हे श्रीरघुनाथजी! मैं जानता हौं कि आप सबके अन्तर बाहर की जानते हौ तहां मेरे ऊपरते साधुवेष अनुरागिनके ऐसे वचन अरु अन्तरते खल हौं तैसे ही पापकर्म करताहौं इत्यादि मेरे दोष आपने जीवते जानि ज्यहि अत्यन्तरोष करि मेरी विनती पर कान नहीं करतेहौ अरु वदन मुख फेरलेते हौ अर्थात् मेरे दोषन ते रोष करि न विनती सुनौ न कृपादृष्टि करौ सो मैं जानत हौं तदपि हौं मैं निडर ह्वै ढिठाईकरि वचन कहत हौं हे करुणासिन्धु! आर्तजन की बात सुनत बिन कृपा दृष्टि मोपर हेरे आपते क्यों बरहिजात अर्थात् करुणागुण को यह लक्षण है यथा॥ दो०॥ सेवकदुखते दुखित ह्वै, स्वामि विकल ह्वैजाय। दुख हरि सुख साजै तुरत, करुणागुण सो आय॥ अर्थात् मेरे दुःख भरे वचन सुनत कैसे आपते रहा जाइगा करुणागुण ते विनय सुनि अवश्य मोपर कृपादृष्टि हेरैगे क्योंके आगे अव शब्द की अकार (एदोतोतः) सूत्रते लोप ह्वैगई है ताते क्यों अव को क्यों व रहि

गया २ हे प्रभु ! जो आप पूछौ कि तेरी क्या रुचि है ताते बार बार विनती करता है तहां इन्द्रियनकी रुचि तौ आपने विषयन पर है मनआदि की रुचि, स्त्री, पुत्र, धरणी, धाम, धन, भोजन, बसन, ऐश्वर्य, स्वर्ग पर्यन्त सुखकी है तथा संगति अनुकूल अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि जीवौ में अनेक रुचि हैं परन्तु जीवकी मुख्य रुचि तौ होती है आपके पुरमें साकेत लोक में बसिवेकी परन्तु हे राम ! त्यहि रुचिहि कामादिगण घेरे अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यादि झुंड गांसिकै बरबस आपनी आपनी ओर खैंचत भाव मुख्य रुचि को व्यापार जीव करने नहीं पावत सो कैसे सफल होवै पुनः अपवर्ग जो मोक्ष सो अगम है अर्थात् मुमुक्षुता, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, विवेक, विरागादि साधन परिपूर्ण करि जब ज्ञान होवै तब मुक्ति मिलै सो हमैं अल्पज्ञ जीवन को सुगम नहीं है अरु स्वर्गप्राप्ति सोतौ यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रतादि सुकृतिनको एक फल है सोतौ है नहीं सकी स्वर्गसुख कैसे पावौं तहां पापकर्मन करिकै नरक में वास उचित रहै तहां कबहूं कबहूं आपको नाम लेताहौं सो रामनाम लेते सुनि यमगण निकट नहीं आवते हैं तहां का वास कैसा नाम ऐसा सबल है जाके बलते यमपुर के नेरे क्यों बसने पावौंगो ३ साकेत मोक्ष स्वर्गादि को साधन नहीं पुनः कामादि पापकर्म बाधक हैं नरक को साधक रहौं तहां आपको नाम बाधक है ताते मोको बसिबे को कतहूं ठांव ठेकाना नहीं है तौ कहां जाउँ हे कोशलनाथ, रघुनन्दन, महाराज ! मैं दीन-पुरुपार्थरहित पुनः सुकृतिरूप वित्त धनहीन ताहूपर बिन डेरे वासस्थान बिना पाये मैं विकल हौं हे प्रभु ! अब कृपा करिकै तुलसीदासहि तहां वास देहु ज्यहि खेरे में गजराज, गृध्र, जटायु, व्याध, वाल्मीकि इत्यादि बसते हैं अर्थात् यथा इन अधमनपर निर्हेतु कृपा कीन्हेउ तथा अधम जानि मोपर भी कृपा करौ ४॥

(२१२) कबहुँ रघुबंशमणि सो कृपा करहुगे। जेहि कृपा व्याध गज विप्र खल तरु तरे तिनहिं सम मानि मोहिं नाथ उद्धरहुगे १ योनि बहु जन्मि किय कर्म खल विविध विधि अधम आचरण कलु हृदय नहिं धरहुगे। दीनहित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रणतपाल चितमृदुल निजगुणनि अनुसरहुगे २ मोह मद मान कामादि खल मंडली सकुल निर्मूल करि दुसह दुख हरहुगे। योग जप यज्ञ विज्ञान ते अधिक अति अमल दृढ़ भक्ति दै परमसुख भरहुगे ३ मन्दजन-मौलिमणि सकल साधनहीन कुटिल मन मलिन जिय जानि जो डरहुगे। दासतुलसी वेद विदित विरदावली विमल यश नाथ केहि भांति विस्तरहुगे ४

टी०। अब पूर्वाभिलापपूर्वक प्रार्थना करत हे रघुवंशशिरोमणि, रघुनन्दन, महाराज ! कबहूं मोहूंपर सो कृपा करहुगे ज्यहि कृपाकरि व्याध ते वाल्मीकि को

महामुनि कीन्हेउ पुनः ज्यहि कृपा करि गजराज पशु को शरणमात्र उद्धार कीन्हेउ पुनः ज्यहि कृपाकरि खल विप्र अजामिल को निर्हेतु उद्धार कीन्हेउ पुनः ज्यहि कृपा करि दण्डकवन के जरे तरु हरे कीन्हेउ इत्यादि यथा तरे तिनहीं की समान मानि अधम शरणागत जानि हे नाथ! कबहुं मेरा भी उद्धार करहुगे १ कौन भांति उद्धार की अभिलाषा है यथा व्याध अजामिलादि महापाप कीन्हे तिनकी अधमताई पर दृष्टि नहीं कीन्हेउ कृपामात्र उद्धार कीन्हेउ तथा मैं भी ऐसा खल दुष्ट हौं कि बहुती योनिन में जन्म लैके विविध विधि यथा परधन, परस्त्रीहरण, परहानि, अपवाद, हिंसा, दण्ड, चोरी, ठगी, बटपारी इत्यादि अनेकविधि के पापकर्म अवलम्बन कीन्हेउँ हैं इत्यादि मेरेभी अधमता के आचरण कुछभी हृदय में न धरहुगे काहेते हे दीनजनन के हितकर्ता! आपु अजित हौ भाव काल कर्म स्वभाव अपर ईशादि सबको जीतनेवाले हौ आपु किसीके जीतवेयोग्य नहीं हौ पुनः सर्वज्ञभाव सबके अन्तर बाहर की बात सबकाल की जाननेवाले हौ पुनः सब ईशन को ऐश्वर्य देनहारे ऐसे समर्थ हौ प्रणत जो शरणागत ताको पालनकर्ता मृदुल कोमल चित्त इत्यादि निजगुणनि अनुसरहुगे अर्थात् प्रणतपालतादि गुण प्रकटकरि मेरा भी उद्धार करहुगे २ कौन भांति गुण अनुसरहु अर्थात् मेरे जीव की रुचि है कि आपके पुर में बसहुँ तहां कामादि वैरिकै उस मार्ग में नहीं जानेदेते हैं इत्यादि सर्वज्ञतागुण ते जानिकै मोको प्रणाम करते देखि प्रणतपालता गुणते मेरा पालन करहु कौन भांति कि आपु अजित हौ त्यहि दया वीरतागुण ते मोह जो देहाभिमान मद जो विद्या धनादि पाइ दर्प मान जो आपनी बड़ाई पर चित्त उन्नति करना काम स्त्रीपर आसक्त रहना इत्यादि जो खलमण्डली दुष्टन की समाज ताको संकुल अविवेक को परिवारसहित निर्मूल करि अविद्यासहित नाश करि दुसह जो सहि न जाइ ऐसा दुःख हरहुगे पुनः समर्थ गुणते क्या करहु कि अष्टाङ्गयोग ते मन्त्र जपते अश्वमेधादि यज्ञते विज्ञान ब्रह्मानन्दते अधिक प्रभाव जामें विषयवासनादि मलरहित ऐसी अत्यन्त अमल प्रेमाभक्ति सो दृढ़ पुष्टकै दैकै परमसुख भरहुगे अखण्ड प्रेमानन्द उर में निरन्तर परिपूर्ण राखहुगे ३ दीन जनजानि मेराभी हित करौ नातरु जैसा मैंहौं मन्दजनमौलि मतिमन्दन में शिरोमणि पुनः कर्म ज्ञान भक्ति के साधनहीन अश्रद्धावन्त आलसी पुनः स्वभाव कुटिल मनमलिन विषय वासना भरे ऐसा जीवते जानि जो दरहुगे मोको अङ्गीकार न करहुगे तापर गोसाईंजी कहत हे नाथ! प्रणतपाल पतितपावन अधम उद्धारण इत्यादि जो विरदावली वेदते विदित है सो विमल धवल यश क्यहि भांति विस्तरहुगे कौनभांति जग में यश फैलावहुगे भाव जो मोको त्यागि देहुगे तौ वर्तमान में तौ अयश ह्वै जाइगो अरु पूर्वयश में मलिनता आइ जाइगी ४॥

राग केदारा।

(२१३.) रघुपति विपतिदवन।

परमकृपालु प्रणतप्रतिपालक पतित पवन १

क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन यवन।

सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन २
गज पिंगला अजामिल से खल गने धौं कवन ।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन गति जानकीरवन ३

टी० । शत्रुसंकट राजदण्ड दरिद्रता कर्ज वृद्धि यमसांसति इति विपत्ति है ताको दवन नाशकर्ता एक रघुनाथैजी हैं काहेते परम कृपालु हैं कृपा यथा ॥ दो० ॥ रक्षक सब संसार को, हौं समर्थ मैं एक । दृढ़ मन अनुसंधान यह, सो गुण कृपा विवेक ॥ इति अत्यन्त कृपागुण के भरे मन्दिर हैं पुनः प्रणत प्रतिपालक हैं अर्थात् दीन ह्वै जे प्रणाम करते हैं ऐसे प्रति जो सम्मुख तिनको पालनकर्ता पुनः धर्म-कर्मरहित महापातकी ऐसे जे पतित जन तिनको पावनकर्ता १ क्रूर जे परद्रोह करनेवाले यथा व्याध पुनः कुटिल टेढ़े स्वभाववाले यथा कोल, भील, कुलहीन यथा शबरी दीन निषाद तथा यवन अत्यन्त मलिन मुसल्मान ऐसेहू पापी अध-मन को रामनाम सुमिरत संते रघुनाथजी अपने भवन परमपद को पठाइ दिये भाव केवल नाम के प्रताप ते अधमनो को उद्धार कीन्हे २ गजराज को जब ग्राह ग्रस्यो तब पुकार कीन्हे धाइकै तुरतही उद्धार कीन्हे पिंगला पतुरिया जब धनी न पाये तब संतोष करि प्रभु को सुमिरि तरी अजामिल जाति विप्र महा-पापी रहा मरत समय पुत्रहेतुक हरि नाम लै परमगति पाई ऐसे खल असंख्यन को उद्धार कीन्हे तिनको कौन धौं गनि सक्ता है ऐसेही तुलसीदास के प्रभु जानकीरवन रघुनाथजी नाम लेत मात्र क्यहिका शुभगति नहीं दीन ३ ॥

(२१४) हरिसम आपदा को हरन ।

नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह दुख सागर तरन १
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो शरन ।
दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभायुधधरन २
द्रुपदसुता कहँ लग्यो दुशासन नगन करन ।
हा हरि पाहि कहत पूरे पट विविध बरन ३
इहै जानि सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन ।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग उद्धरन ४

टी० । धरणी, धन, धाम छूटि जाना, स्त्री, पुत्र, बन्धु को वियोग, कर्ज वृद्धि, परदेशगमन इत्यादि आपदा जो विपत्तिकाल ताको हरिलेनेवाला तथा रुज शूल, शत्रुवशता राजदण्ड बन्धन भूत ग्रहबाधा इत्यादि दुसह जो सहि न जाइ ऐसा दुःखरूप सागर समुद्र सम अपार ताको तरण पार उतारनेवाला सहज कृपालु अर्थात् जप तप पूजा यज्ञादि परिश्रम विना किहे प्रणाममात्र नाम लै पुकारतही कृपा करनेवाला हरिके समान दूसरा कोऊ नहीं है केवल एक ईश्वरै है १ सहज कृपालुता की प्रमाण देखावत कि जा समय ग्राह ने पकरिलियो तब गजराज

आपने बलते छूटा चहे न छूटे तब वाको परिवार भरि खैंचि थके न छूटि सके मृत्युकाल देखि परा इति गज निज आपना बल अवलोकि देखि हारिमानि कमल फूल शुण्ड में गहि भेंट दै प्रभु की शरण गयो हे दीनबन्धु! मोको उबारो इति दीन वचन सुनि सुन्दर कमलनाभ आयुध धरण चक्रधारी गरुड़ तजि पैदर चले शीघ्र आइ उद्धार कीन्हे २ द्रुपद भूप की सुता द्रौपदी को चीर खैंचि दुश्शासन नगन करने लगो त्यहि संकट में द्रौपदी शरण ह्वै पुकारा हा हरि! पाहि मेरी रक्षा करौ इति कहतही सुनि भगवान् रक्षा कीन्हे विविध वर्ण पट पूरे ज्यों ज्यों खैंचत गयो त्यों त्यों अनेक रंग के बसन निसरत गये तनमें परिपूर्ण बने रहे अंग न खुले ३ गज द्रौपदी के पुकारतही धाइ रक्षा कीन्हे इहै दीनबन्धु की सहज कृपालुता जानि सुर ब्रह्मादि, नर ध्रुवादि, मुनि सनकादि, कोविद यावत् विद्वान् हैं ते सब भगवान् के चरण सेवते हैं गोसाईंजी कहत जे राजा नृग को निर्हेतु उद्धार कीन्हे भाव एक गऊ द्वय विप्रन को संकल्पि गये ताके शापते गिरगिट भये ताको दिव्य देह कीन्हे ऐसे प्रभु को न अभय किये शरणमात्र किसको डर नहीं छुड़ाये ४ ॥

(२१५) ऐसी कौन प्रभु की रीति।

विरद हेतु पुनीत परिहरि पांवरनि पर प्रीति १
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु यादवराइ २
काममोहित गोपिकन पर कृपा अतुलित कीन्ह।
जगतपिता विरंचि जिन्हके चरण की रज लीन्ह ३
नेम ते शिशुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि।
कियो लीन सो आपु में हरि राजसभा मँझारि ४
व्याध चित दै चरण मार्यो मूढ़मति मृग जानि।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रकट करि निज बानि ५
कौन तिन्हकी कहै जिनके सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रकट पातकरूप तुलसी शरण राख्यो सोउ ६

टी०। विरद आपने पतितपावन बाना को पुष्ट राखिबे हेतु पुनीत परिहरि पवित्र मुनीश्वरनको त्यागि पांवर केवट कोल शबरी गीधआदि नीचन पर प्रीति करना ऐसी रीति दूसरे कौन प्रभु में है केवल एक ईश्वरै में है १ कंस की पठाई पूतना कुच कालकूट छाती में विष लगाइ कृष्णचन्द्र को मारन हेतु गई विषभरी छाती में लगाइ दूध पिआवने लगी इस वैरभाव ते वाको शत्रु ह्वै प्राप्त भये पातकी तन ते दूध द्वारा वाके प्राण खैंचि लीन्हे पुनः यादवराय ऐसे कृपालु हैं कि मातु के समान मानि पूतना को सुन्दर गति दीन्हीं २ ईश्वर जानि शुद्ध हृदय ते नहीं सुन्दररूप देखि कामवश ते मोहित भईं तिन गोपिकन पर अतुलित कृपा कीन

अर्थात् उनके वश में रहि अनेक नाच नाचे पुनः अनेक भांति के कूट वचन अनादर सहे इति आसक्ति के आचरण देखि उनपर जो कृपा है ताकी तौल कोऊ नहीं जानि सकत इसी हेतु जगत्पिता विरंचि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा सोऊ जिन गोपिन के चरणरज पाँयन की धूरि शीशपर धरि लिये सो भागवत में प्रसिद्ध है ३ शिशुपाल बरात लैकरि ब्याहन आया अरु कृष्णचन्द्र पूर्वही रुक्मिणी को हरिलैगये इस वैर ते शिशुपाल दिनप्रति नेम ते गनि गनि गारी देता रहै ऐसेहू वैर करने वाले को युधिष्ठिर के यज्ञसमय राजसभा के मांझ वाको मारिकै सो शिशुपाल को हरि श्रीकृष्णचन्द्र अपना में लीन कियो भाव वाके दोष त्यागि कृपा करि मुक्त किये ४ व्याध ऐसा मति का मूढ़ कि मृगा जानि चित्त दै भगवान् के चरण में बाण मारे ताकी अज्ञता दोष नहीं विचारे आपनी बानि पतितपावनतादि आपना बाना प्रकट करिकै सो व्याध को सदेह स्व आपने लोक को पठाये ५ इस पद भरे में केवल कृष्णावतारै की विरदावली है ताको हेतु यह है कि ईश्वरमात्र में अधम उद्धारता है तहां यावत् प्रभु के अन्यरूप हैं तिन कौन्यउ प्रभु में ऐसी रीति नहीं है जैसी पतित अधमन पर प्रीति तथा सुलभ उद्धारता रीति रामरूप में है याकी प्रमाण हेतु कृष्णचन्द्र की विरदावली कहे काहेते जे वैकुण्ठवासी रूप हैं तिनतक पतित अधमन की गति नहीं है अवतारन में है तहां मच्छादि और अवतार एक प्रयोजनमात्र भये पुनः लोप ह्वै गये अरु कृष्णचन्द्र बहुत काल रहे बहुत लीला भी किये पुनः स्वयं अवतार भी हैं तेऊ नाम लेत दर्शनमात्र प्रीति कीन्हे अकारण कृपाकरि किसीको सुगति नहीं दीन्हे क्योंकि उद्धव को बदरिकाश्रम को पठाये यदुवंश को नाश कराये अर्जुनादि हेवार में सीझे घर की स्त्री अर्जुन के साथ वन में लुटीं तब ताल में बूड़ि गईं आपने संग किसीको न लैगये तापर गोसाईंजी कहत कि जिन जीवन के पूर्व की सुकृति पश्चात् पाप शापादि ते अधम दैत्य राक्षसादि भये भगवत् के हाथमारे गये तिनकी गतिन की कौन प्रशंसा इति जिनके सुकृति और अघ दोऊ हैं तिनकी कौन कहै उनको गति देने ते कौन प्रशंसा यथा पूर्व अप्सरा ऋषि शापते पूतना भई सोई अनुग्रह ते ईश्वर को अंग संग पाइ मरिकै तरी तथा गोपी सब गोलोक के पार्षदै हैं पुनः सनकादि के शाप ते जय, विजय, दन्तवक्र, शिशुपाल भये भगवान् के हाथ मरे पुनः अपनी गति पाये तथा व्याध पूर्व को सुनते हैं अंगद है बाप को दांव व्याज बाणसहि वाको सदेह पठाये इनको कौन प्रशंसा है पुनः सनेही सखा परिवारादि सबको त्यागि केवल आपु शरीर त्यागि आपने लोक को गये हैं यथा 'भारते' स्वर्गारोहपर्वणि पञ्चमाध्याये ॥ यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः। तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोन्ते विवेश ह ॥ पुनः मुशलपर्वणि सप्तमाध्याये ॥ ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः। अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ विष्णुपुराणे पञ्चमांशे सप्तत्रिंशत्तमेऽध्याये ॥ गते तस्मिन्स भगवान् संयोज्यात्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतेऽव्ययेचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥ अजन्मन्यजरे नाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि। तत्याज मानुषं देहमतीत्य त्रिविधां गतिम् ॥ अष्टत्रिंशत्तमेऽध्याये ॥ अर्जुनोऽपि तदन्विष्य कृष्णरामकलेवरौ। संस्कारं लम्भयामास तथान्येषामनुक्रमात् ॥ अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणी-

प्रमुखास्तु याः । उपगुह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम् ॥ अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम् । नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतद्भवतां बलम् ॥ प्रेक्षतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः । जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समस्ता मुनिसत्तम ॥ पुनः रामावतार में अहल्या दण्डकवन में शाप अनुग्रह है तथा राक्षसन में शाप अनुग्रह तिनके तारिबेकी प्रशंसा नहीं है अरु गुह, केवट, कोल, शवरी, गीध, बानर, ऋक्ष, परिवार, प्रजा, सनेही तथा जे सपनेहु में दर्शन कीन्हे तिन सबको हर्ष सहित परधाम को पठै पाछे प्रभु परधाम को गये यथा भागवते ॥ सुरोऽसुरो वाप्यथवानरो नरःसर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् । भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान् दिवम् ॥ पुनः वाल्मीकीये उत्तरकाण्डे ॥ सपुत्रदाराःकाकुत्स्थमनुजग्मुर्महामतिम् । मन्त्रिणोभृत्यवर्गाश्च सपुत्रपशुबान्धवाः ॥ सर्वे सहानुगा राममन्वगच्छन्प्रहृष्टवत् । ततः सर्वाःप्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ॥ गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥ ततः सस्त्रीपुमांसस्ते सपक्षिपशुबान्धवाः । राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतमत्सराः ॥ स्नाताः प्रमुदिताः सर्वे हृष्टा पुष्टाश्च वानराः । दृढं किलकिलाशब्दैः सर्वे राममनुव्रताः ॥ न कश्चित्तत्र दीनो वा व्रीडितो वापि दुःखितः । हृष्टं समुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥ द्रष्टुकामोथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः । यः प्राप्तः सोपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो जनः ॥ ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः । अगच्छन् परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः ॥ यानि भूतानि नगरेप्यन्तर्धानगतानि च । राघवं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम् ॥ यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च । सर्वाणि स्वर्गगमने अनुजग्मुर्हि तान्यपि ॥ नासीत्कश्चिदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते । तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः ॥ पुनः रूप को ध्यान, धाम, यात्रा, लीला, श्रवण इत्यादि द्वारा सुलभ जीवन को मुक्ति देते हैं अरु नाम में तौ ऐसा प्रभाव प्रकट कीन्हे हैं कि जाको भूलिहू कै उच्चार होवे ताहूको परधाम पठाइ देत इति करुणा, कृपा, दया, सुलभ उदारता है सो जगत् कल्याण करने हेतु है पुनः सदा पावनता शील कोमलता वीरता नीति धर्मधुरीणता एकपत्नीव्रत क्षमा शरणपालता सबलता सयत्नौ अजित सत्यव्रत इत्यादि असंख्यन गुण विदित हैं यथा वाल्मीकीये ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥ बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमच्छत्रुनिवर्हणः । धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हितेरतः ॥ यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् । रक्षितः स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षितः ॥ इत्यादि उत्तम आचरण अनेक रघुनाथजी में हैं ते परिपूर्ण एकरस निर्वाहे इति जैसी रीति रघुनाथजी में है ऐसी रीति दूसरे कौन प्रभु में केवल एक रघुनाथैजीमें है काहेते व्याध, गणिका, यवनादि की प्रमाण परोक्ष है प्रसिद्धही प्रमाण देखिये सुकृतहीन प्रकटपातक पापहीरूप धरे ऐसो तुलसीदास सोऊ शरण में राखे ६ ॥

(२१६) श्रीरघुबीर की यह बानि ।

नीचहू सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि १

परमअधम निषाद पांवर कौनि ताकी कानि ।
लियो सो उरलाइ सुत ज्यों प्रेम की पहिंचानि २
गीध कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सानि ।
जनक ज्यों रघुनाथ ता कहँ दियो जल निज पानि ३
प्रकृतिमलिन कुजाति शबरी सकल अवगुण खानि ।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ४
रजनिचर अरु रिपु विभीषण शरण आयो जानि ।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह दशा भुलानि ५
कौन सौम्य सुशील बानर जिनहि सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा पूजे भवन अपने आनि ६
राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिन दानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ७

टी० । जैसी रीति रघुनाथजी में है तैसी रीति औरे प्रभुन में नहीं है काहेते जिनके अन्तर बाहर प्रीतिपावनता होत तिनपर सब प्रीति करते हैं यथा विष्णु भगवान् ध्रुव सों कहे कि अबहीं तुम्हारे भीतर राज्य की वासना है जब यह मिटि जाइगी तब हमारे लोकको आवना बनैगो तथा कृष्णचन्द्र उद्धवते कहे कि तुम्हारे अन्तर कसरि है ताते बद्रिकाश्रम में जाइ मन इन्द्रियन को जीति शुद्ध होउ तब हमको प्राप्त होउगे ये दोऊ भागवत में प्रसिद्ध हैं अरु रघुवीर की यह बानि रीति स्वभाव है कि मन की प्रीति अनुमानि नीचहू सों नेह करतेहैं यथा केवट नीच पुनः वार्त्ता भी गँवारी करता रहा ताके वचनन ते मन की प्रीति अनुमान करि जानि लिये ताते सनेह सहित चरणोदक दै कृतार्थ कीन्हे तथा आगे है १ निषाद परम अधम जीव वध करनेते जाकी जीविका ऐसा महापापी नीच जाति ऐसा पांवर सबभांति नीच ताकी कौनि कानि दबाव रहै ताको प्रणामकरते देखि अन्तरको प्रेम पहिंचानि बाहर के दोषन पर दृष्टि न कीन्हे ज्यों सुत प्यारापुत्र ताही सनेहते सो निषाद को प्रभु उरमें लगाइ लीन्हेउ पुत्र में अपावनता कोऊ नहीं देखत इस भाव ते पुत्रसम कहे २ तथा गीध कौन दयालु दयावन्त रहै काहेते जाको हिंसा में सानि के शरीरही विरंचि ब्रह्मा ने रच्यो अर्थात् जाको आहार केवल मांसैहै ऐसेहू अधम ताके अन्तर की प्रीति पहिंचानि ज्यों जनक यथा पिता तैसेही सनेह सहित निज पानि आपने हाथन ता गीध कहँ रघुनाथजी तिलांजलि दीन्हे यह सौशील्यता कृतज्ञता सहित पतितपावनता है अकोरा में लै प्रीतिपूर्वक वार्त्ता कीन्हे यह सुशीलता है किशोरीजीके हेतु घायल भया ताते पिता तुल्य माने यह कृतज्ञता है अधम को तुरतही मुक्ति दीन्हे यह पतितपावनता है ३ पुनः जाकी प्रकृति स्वभाव मलिन हैं अर्थात् जाको अनूठे जूठे को ज्ञान नहीं है पुनः कुजाति भीलिनि इत्यादि सकल भांति अवगुणन की खानि रही ताके मन की प्रीति पहिंचानि शबरी के

दिये हुये फलन की माधुरी बखान करिकरि अत्यन्त रुचिसहित प्रभु खाये यह प्रीतिपालकता है तुरतही मुक्ति दीन्हे सो सुलभ उदारता है ४ पुनः रजनिचर जाति निशाचर अरु रिपु शत्रु रावण को भाई विभीषण शरण आयो ऐसा जानि अन्तर की प्रीति अनुमानि ऊपर के दूषण कछु न विचारे प्रणाम करते देखि तुरतही उठिकै ज्यों भरतप्रिय बन्धु सम मानि ऐसे प्रेम उमंगते भेंटे उठाइ छाती में लगाइ मिलत समय प्रेम की मिलित दशा ऐसी सर्वाङ्ग में परिपूर्ण ह्वैगई जाते देह की दशा चैतन्यता भुलाइ गई ५ पुनः जिनहिं सुमिरत हानि अर्थात् जिनको नाम लेत मङ्गलकार्य नाश ह्वैजात ऐसे अमङ्गलरूप वानर चञ्चल पशु तिनमें कौन सौम्य अर्थात् कौन सुन्दर सीधा शुद्धसाधुन कैसो स्वभाव रहा है भाव कुमार्गिन तौ होते हैं पुनः शील गुण लक्षण ॥ दो० ॥ हीनहु दीन मलीन खल, विन आवे ज्यहि देखि। सघन आदरै मानदै, गुण सौशील्य विशेखि ॥ इत्यादि वानर कौन सुशील होते हैं भाव ऐसे कुशील होते हैं कि जिनकी ओर दृष्टि करौ तौ घुरुकि देतेहैं ऐसे अवगुणी तिनकी प्रीति अन्तर की देखि तिनको प्रभु सखा कीन्हे बराबरि बैठाइ आपनी समान बड़ाई दीन्हे पुनः आपने भवन अयोध्याजी को आनि पूजे प्रीतिपूर्वक आदर सम्मान कीन्हे भूषण वसन दै बिदा कीन्हे ६ राम सहज कृपालु कृपा यथा ॥ दो० ॥ रक्षक सब संसारको, हौं समर्थ मैं एक। दृढ़मन अनुसंधान यह, सो गुण कृपाविवेक ॥ यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इतिसामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी ॥ यद्वा ॥ स्वसामर्थ्यानुसंधानाधीनकालुष्यनाशनः। हार्दोभावविशेषो यः कृपा सा जागदीश्वरी ॥ कृपू सामर्थ्ये धातुः इति सम्पन्नत्वात् कृपा ॥ अर्थात् जो भूतमात्र रक्षा करिबे को आपही को समर्थ माने है ताते विना उपाय बनावट रहित सहज स्वभाव ते कृपालु कृपागुण भरे मन्दिर हैं पुनः कोमल स्वभाव अर्थात् सेवक को दुःखित देखि आपहू दुःखित ह्वै जाते हैं पुनः शीघ्रही सेवक को दुःख मिटावते हैं यह करुणागुण को लक्षणहै यथा॥ दो० ॥ सेवकदुखते दुखित है, स्वामि विकल ह्वैजाइ। दुख हरि सुख साजै तुरत, करुणागुण सो आइ ॥ पुनः दीन हित दीन जो पुरुषार्थहीन है अरु शरण आवत ताको हित करते हैं यह दयागुण है बेप्रयोजन परदुःख हरना पुनः दिनदानि अर्थात् पात्र कुपात्र समय नहीं विचारत प्रतिदिन याचकमात्र को परिपूर्ण दान देते हैं यह उदारता गुण है ॥ यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ पात्रापात्रविवेकेन देशकालाद्युपेक्षणात्। वदान्यत्वं विदुर्वेदा औदार्यवचसा हरे ॥ ऐसे प्रभुहि कुटिल तुलसी कपटन ठानि भजहि भाव मन में कुकर्म लिहे देखावमात्र मुखते भजन के आचरण करता हौं ७ ॥

(२१७) हरि तजि और भजिये काहि।
नाहिंनै कोउ राम सों ममता प्रणत पर जाहि १
कनककशिपु विरंचि को जन कर्म मन अरु बात।
सुतहि दुखवत विधि न बरज्यो काल के घर जात २

शम्भु सेवक जान जग बहु बार दिये दशशीश।
करत राम विरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईश ३
और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मीन।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ शरण गये सभीन ४
को न सेवत देत सम्पति लोकहू यह रीति।
दासतुलसी दीन पर यक रामही की प्रीति ५

टी०। प्रणतजन पर जाहि ममता है अर्थात् अत्यन्त नम्रतापूर्वक शरणागतन को आपना करिलेनेवाला रघुनाथजी सों प्रणतपाल दूसरा देवादि कोऊ नहीं है ताते हरि को तजि और काहि भजिये भाव सब देवादिकन को आश भरोसा त्यागि केवल रघुनाथैजी को भजिये जिनकी सदा शरणागत पर ममता है अन्य देवन में नहीं है १ काहेते जानिये अन्य देवन के शरणागत पर ममता नहीं है हिरण्यकशिपु कर्म मन वाणी करिकै विरंचि को सेवक रहे अर्थात् निश्छल ह्वैकै ब्रह्मा को सेवन किया तापर प्रसन्न ह्वै मुखमांगा वरदान दीन्हे ताही बल गर्वते हरिभक्त प्रह्लाद ते वैर ठानि अनेक भांति को दण्ड दिया इन आचरणते काल के घर जाता रहै परन्तु सुत पुत्र जो प्रह्लाद तिनहिं दुःखवत् दण्ड देत सन्ते विरंचि वरज्यो नहीं अर्थात् हिरण्यकशिपु ब्रह्मा को सांचा सेवक रहे अरु ब्रह्मै के आशीर्वाद के बलते अभय ह्वै पुत्र को दण्ड देतारहै अरु ब्रह्माजी जानते रहैं कि हरिभक्तते वैर करता है मारि डारने ते बचैगा नहीं परन्तु वासों कबहूं कहे नहीं कि भक्तद्रोह छांड़िदे नहीं इसी में तेरी मृत्यु ह्वैजायगी इत्यादि नहीं किये तमाशा देखते देखत वाको मरायडारे तब प्रणतपर ममता कहां है पुनः रघुनाथजी की ममता ऐसी है कि प्रह्लाद की सबभांति रक्षा कीन्हे २ तथा रावण को जगत् सब जानत हैं कि शम्भु को सेवक है क्योंकि दशशीश बहुबार दिये अनेकन बार दशोंशीश काटि काटि शिव को चढ़ाये ऐसा सांचा सेवक रहा सोऊ जब रघुनाथजी सों विरोध करनेलगा यद्यपि जानते रहैं कि मारिडारने ते बचैगा नहीं परंतु ईश शिवजी सपनेहू में रावण को हटकेउ नहीं कि रघुनाथजी सों विरोध न करु यामें तेरा नाश है सो तौ न कीन्हे तमाशा देखते देखत वाको परिवार सहित नाश कराइ दिये तब प्रणत पर ममता कहां है पुनः विभीषण जनपर प्रभु की ऐसी ममता है कि परलोक ते अभय करिकै कल्पभरे की अकण्टक राज्य दिये ३ जब ब्रह्मा शिव में प्रणतपालता नहीं है तब इन्द्रादि और देवतन की कहा कहौं ते तौ सब स्वार्थहि के मीत हैं अर्थात् पूजा, जप, यज्ञ, बलिभाग पाये पर यथोचित फल देते हैं अरु विधि चूकि गये पर बाधा करते हैं ताते यह निश्चय है कि कोऊ सभीत सडर जन को शरण गये पर कबहूं काहूने नहीं राखि लियो अर्थात् संकटपरे पर पुकार कीन्हे रक्षा को करनेवाला कोऊ देवादि नहीं है ताते कौन को आश भरोसा कीजिये ४ पुनः जो कहिये कि पूजा पाठ करनेते देवता अनेक भांति की सम्पत्ति देते हैं तौ कैसे कहते हौ कि कोऊ देवता सेवक पर प्रीति नहीं करते तापर कहत कि देवता तौ ऊंचे पदपर हैं समर्थ

शक्तिमान् हैं पुनः देवता नामै उत्तमता को बोध करता है ते जो सेवत सन्ते सम्पत्ति देते हैं तामें कौन श्रेष्ठता है यह तो रीति लोकहू में प्रसिद्ध है सेवा करत सन्ते राजा धनी इत्यादि को नहीं सम्पत्ति देत अर्थात् सेवा करिकै सब संसारै की जीविका है तैसे सेवा करत सन्ते देवतौ सम्पत्ति देते हैं तामें क्या प्रशंसा है ताते यथा गजराज दीन ह्वै पुकारे द्रौपदी संकट में पुकारे इत्यादि आरत जनन की पुकार कोऊ देवादि नहीं सुनता है तापर गोसाईंजी कहत कि पुरुषार्थहीन दीन जननपै एक रघुनाथैजी की प्रीति है यथा सुग्रीव संकट में रहे तिनकी कोऊ न सुना तथा विभीषण इनको शरणपाल रघुनाथैजी हैं ५॥

(२१८) जो पै दूसरो कोउ होइ।

तौ हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ १
काहि ममता दीन पर को पतितपावन नाम।
पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम २
रहे शम्भु विरंचि सुरपति लोकपाल अनेक।
शोकसरि बूड़त करीशहि दई काहु न टेक ३
बिलखि भूपतिसदसि महँ नरनारि कह्यो प्रभु पाहि।
सकल समरथ रहे काहु न वसन दीन्हों ताहि ४
एक मुख क्यों कहौं करुणासिन्धु के गुणगाथ।
भक्तहित धरि देह काह न कियो कोशलनाथ ५
आपसे कहुँ सौंपिये मोहिं जोपै अतिहि घिनात।
दासतुलसी और विधि क्यों चरण परिहरि जात ६

टी०। जो पै जो निश्चय करिकै किसी लोक में कहीं कोऊ दूसरा स्वामी प्रणतपाल होइ तौ हे प्रभु! हौं कत मैं काहेको बारहिंबार रोइकै दुःख आपको सुनावौं भाव आपके सिवाय दूसरा कोऊ नहीं है १ काहेते कोऊ दूसरा नहीं है कि दीन पर ममता काहि भाव पुरुषार्थहीन दुःखित जननपर को अपनपौ राखनेवाला है पुनः को पतितपावन नाम कहावता है भाव दीननपर ममता करनेवाले पुनः पतितपावन नाम आपही को है काहेते पाप मूल समूह पापन को उपजावनेवाला अजामिलहि आपनो धाम क्यहि दियो अर्थात् मरणकाल पुत्रहेतुक भगवत् नाम लै परमपद पायो यह दयालुता देवादिकन में नहीं है २ काहेते देवादिकन में दयालुता नहीं है कि शम्भु शिवजी विरंचि ब्रह्मा सुरपति इन्द्र तथा वरुण कुबेरादि अनेकन लोकपाल बनेरहे परंतु जब ग्राह ने ग्रसा तब सबसों पुकार करि कहा तब करि ईशहि गजराजहि शोकसरि दुःखरूप नदी में बूड़त समय टेक काहूने न दई प्राण बचने का अवलम्ब किसीने न दिया केवल एक आपही ने धाइ गजराज को बचाइ लिया तौ आपके समान दूसरा दयालु कौन है ३ तथा भूपतिसदसि राजसभा के बीच में जब दुर्योधन की आज्ञाते दुश्शासन चीर खैंचनेलगा तब नर

अर्जुनादि की नारि द्रौपदी बिलखि रोदन करि कहा हे प्रभु! पाहि मेरी रक्षा करौ तब ब्रह्मा शिव इन्द्रादि सकल समर्थ बनेरहे वाको वसन किसीने न बढ़ाइ दीन्हो तासमय आपही दयाकरि वाको चीर ऐसा बढ़ाइ दीन्हेउ जो खैंचत खैंचत थकितह्वै हारि बैठिगयो ४ सेवक के दुःखते दुःखित ह्वै शीघ्रही दुःख मिटावना करुणा है त्यहि करुणारूप जल भरे समुद्र इति करुणासिन्धु श्रीरघुनाथजी के कृपा, दया, शील, प्रणतपालता, सुलभ उदारतादि असंख्य गुणन की गाथ कथा जाको ब्रह्मा शेषादि सहस्रमुख ते नहीं कहि पार पाइ सके हैं तिनके गुणगाथ मैं तुच्छ जीव एक मुख ते क्यों कहौं कैसे कहि सकौं परन्तु इतना कहत हौं हे कोशलनाथ, अवधेश, महाराज! भक्तन के हित देह धरि धरि नीच ऊँच काह कर्म नहीं किहेउ अर्थात् जाही भांति भक्तन को संकट मिटा सोई काम किहेउ ५ हे रघुनाथजी! भक्तन के हेतु अनेकन देहै धरि संकट मिटायो तहां अनेकन अधमपतितन को पावन कीन्हेउ तथा मोको भी पतित जानि पावन करौ अरु जो मोको देखि अतिहि घिनात अर्थात् निषाद को अङ्कभरि मिलत न घिन लागि तथा गीध रुधिर को भरा ताको अकोरा में बैठावत न घिन लागि पुनः भीलिनि शबरी के जूठेफल खात न घिन लागि वानर रीछ चंचल पशुन को सेवकाई में राखत न घिन लागि विभीषण राक्षस को अंकभरि मिलत न घिन लागि अब मेरी अधमता अपावनता देखि आपके अत्यन्त करि घिन लागती है जो द्वारपर भी नहीं परा रहने देते हौ तौ जो आपसों आपके समान कोऊ दूसरा कहूं पतितपावन अधमोद्धारण स्वामी होइ ताको मोहिं सौंपि दीजै ताकी शरण जाउँ नातरु आपनी शरण में राखिये सिवाय इसके और कोई विधि ते चरण परिहरि आपके पदकमल त्यागिके तुलसीदास क्यों जात अर्थात् और किसी भांतिते आपके पदकमल त्यागि अंते को न जाउँगो भाव दूसरा पतितपावन कहां है जहां जाउँ ६॥

(२१६) कबहिं देखाइहौ हरि चरण।

शमन सकल कलेश कलिमल सकल मंगल करण १
शरद्भव सुन्दर तरुणतर अरुण वारिज वरण।
लच्छि लालित ललित करतल छवि अनूपम धरण २
गंगजनक अनंग अरिप्रिय कपटबटु बलिछरण।
विप्रतिय नृग बधिक के दुख दोष दारुण दरण ३
सिद्ध सुर मुनि वृन्द वन्दित सुखद सब कहँ शरण।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारण तरण ४
कृपासिंधु सुजान रघुवर प्रणत आरति हरण।
दरश आश पियास तुलसीदास चाहत मरण ५

टी०। पुनः पूर्वाभिलापते प्रार्थना करते हैं हे हरि, श्रीरघुनाथजी! कबहूं चरण देखाइहौ भाव आपने पद कमलन को ध्यान कबहूं मेरे अन्तर में थिरकरि राखि

हौ कैसे चरण हैं सकल क्लेश कलिमल शमन पुनः सकल मङ्गल करनहार हैं अर्थात् कलियुग के प्रभाव ते मल जो कराल पाप होते हैं तिनको फल हानि वियोग रुज दरिद्रतादि लौकिक तथा गर्भवास, जन्म, मरण, यम साँसति आदि पारलौकिक इत्यादि सकल प्रकार के क्लेश इत्यादि के शमननाम नाशकर्ता हैं पुनः लाभ प्रिय मिलन आरोग्यता पुत्रप्राप्ति सम्पत्ति परलोक मुक्ति इत्यादि सकलप्रकार के मङ्गल उपजावनहारे हैं भाव रघुनाथजी के पद कमलन को ध्यान उर में थिर रहने ते कलिमल क्लेश नाश ह्वैजात अरु दिन प्रति नित नये मङ्गलानन्द उत्पन्न होते हैं १ पुनः स्वरूपता सुकुमारता सुन्दरतादि शोभा कैसी है सो कहत शरद् भव शरद्ऋतु को उत्पन्न हुआ तरुण नवीन तर कहे अत्यन्त नवीन फूला हुआ सुन्दर अरुण वारिज लालरंग को कमल तद्वत् वर्ण रंग है जिनको अर्थात् शरद् तरुण अरुण कमल वर्ण जे कोमल चरण हैं पुनः लच्छि ललित करतल लालित लक्ष्मीजी के सुन्दर कर कमलन करिकै आदरपूर्वक सेवित अर्थात् महारानीजी आपने हाथन सदा आदरसहित सेवा करती हैं पुनः जिनकी समता योग्य उपमान नहीं है ऐसी अनूपछवि सर्वांग शोभा धारण किहे हैं २ पुनः पावन कैसे हैं गंगजनक गंगाजी के पिता हैं कौन समय जब बलिको छलने हेतु कपट बटु बावनरूप धरे तासमय जो पाँव स्वर्ग को फैलाये तहाँ ब्रह्माजी धोइ लिये सोई गंगाजी लोक-पावनकर्ता हैं पुनः अनंग काम ताके अरि भस्मकर्ता तिनको प्रिय हैं जे चरण भाव शिवजी सदा उरमें धरे रहते हैं विप्र गौतम तिनकी तिय अहल्या तथा नृग जे विप्र के शापते गिरगिट भये तथा व्याध वाल्मीकि इत्यादि के दारुण दुःख दोप के दरण दलि डारनेवाले अथवा अहल्या नृग शाप वशते दारुण दुःख में परे रहे तिनको दुःख नाश किये पुनः व्याध के समूह दारुण दोप नाश किये ३ योग-क्रियाकरि अणिमादि प्राप्तिवाले सिद्ध यज्ञादि सुकृतिकरि देवलोक प्राप्तिवाले सुर इन्द्रादि देवता मननशील मुनिन के वृन्द इत्यादि करिकै वन्दित सब सदा वन्दना करते हैं अर्थात् उत्तम जीवन करिकै पूजित सबै फल देनहारे हैं पुनः शरण सबको सुखद हैं अर्थात् शरणागत गये पर ऊंच नीच सबही जीवन के सुख देनहारे हैं कैसे सुख देनहारे हैं कि जिनहिं सकृत् उर आनत जन तारण तरण होत अर्थात् जिन चरणारविन्दन को सकृत् कहे एकबार ध्यान उर में आनत सन्ते आप भव ते पार ह्वैजाता है पुनः सोई जन औरन को पार करनेवाला होता है अर्थात् वाको यश सुनि औरहू परमार्थ पथ पर आरूढ़ होते हैं ४ प्रणत जो शरणागत ताके आरति दुःख तिनको हरणहारे हे कृपासिन्धु, रघुवर! भाव रघुवंश उदारता में आप उत्तम हौ पुनः सुजान चतुरन में शिरोमणि हौ मेरी प्रार्थनापर श्रवण दीजै आपके पदकमलन के दर्शन की आशरूप पियास करिकै तुलसीदास मरण चाहत भाव पापकर्मन करिकै भवसागर को जात है दरश दै जीवन दान शरण में राखिये ५ ॥

(२२०) द्वारे हौं भोरही को आज।

रटत रिरिहा आरि और न कौरही के काज १

कलि कराल दुकाल दारुण सब कुभांति कुसाज।
नीच जन मन ऊंच जैसो कोढ़ में की खाज २
हहरि हिय मैं सदय बूझयों जाइ साधु समाज।
मोहुँ से कहु कतहुँ कोउ तिन कह्यो कोशलराज ३
दीनता दारिद दलै को कृपावारिधि बाज।
दानि दशरथराय के सुत बानइत शिरताज ४
जनम को भूखो भिखारी हौं गरीबनेवाज।
पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भक्ति सुधा सुनाज ५

टी०। मनुष्यतनु पाय जबते जीव चैतन्य भया सोई आज को भोर है शरणागति को दृढ़ भरोसा सोई प्रभुको द्वार है इत्यादि हे श्रीरघुनाथजी! आज भोरहीं ते हौं मैं ररिहौं आपके द्वारपर रटत हौं भूखा वारम्बार पुकारता हौं तहां याचक अनेक अर्थ ते याचना करते हैं यथा कोऊ भूषण, वसन, वाहन मांगत कोऊ धरणी, धन, धाम मांगत कोऊ अन्न मांगत इत्यादि और किसी बात की आरि नहीं हठि करि मांगने को और प्रयोजन नहीं है आपकी प्रसादी कौरहींते काज है अर्थात् वाहनादि सम ऋद्धि सिद्धि धनादि सम लोक सुख मान्यता अन्न सम नवधा इत्यादि नहीं मैं चाहत आपकी प्रसादी कृपादृष्टि कौरसम प्रेमाभक्ति मांगता हौं तहां नतौ आप खबरि लेवैं अरु मैं भूखा रटता नहीं विना पाये बारम्बार पुकारत में दम नहीं लेताहौं ताते ररिहाहौं अर्थात् देह यह आज्ञु चैतन्यता रूप भोरते शरणरूप द्वारपर यश गावते अबतक बीता सोई बारम्बार पुकार है १ जब कोई व्यापार है नहीं सकत अरु दरिद्र करिकै अत्यन्त कंगाल होत तब और मांगत ताको कारण कहत कराल जो कलियुग सोई दारुण दुकाल अवर्षण महँगी सम है तामें जीव को निर्वाह कठिन है काहेते कलि अवर्षणते धर्मरूप भूमिपर सत्कर्मरूप कृषि नाश भई अधर्म प्रचार दुकाल परा अश्रद्धा पौरुषहीन ताते देवसेवादि चाकरी नहीं लागत पुनः योग विरागादि व्यापार नहीं होत ताते ज्ञानरूप धन कैसे होइ विषयासक्ति दरिद्र ते अलक्षता कंगाल भयो पुनः साज इन्द्रिय मनआदिते कुसाज कुभांति के भये अर्थात् जीव के दुःखद कामादि के व्यापार में लागे तब कैसे जीव को निर्वाह होइ पुनः नीचजन विषयी अरु मन ऊंचभयो चाहत सो कोढ़ कैसो खाज अधिक दुःख होता है अर्थात् कोढ़ में देह फूट जाती है तामें जब खाज भयो सो खजुवावत में भला लागता है पाछे महापीड़ा होती है तथा ऊंचा बनवे हेतु वचन वेष तौ साधुनके ऐसे देखावत अरु कर्म नीच करत ताते अपमान दुःख अधिक होत अर्थात् जो नीचा बना नीच काम करत ताको अपमान तौ होतही नहीं दण्डभी थोरै होत अरु जो ऊंचा बनि नीच काम करत ताको दण्डो अधिक होत पुनः अपमान तौ बड़े भारी होत इति कोढ़ कैसो खाज अधिक दुःखद है २ कलिप्रभाव अधर्म अश्रद्धा ते सत्कर्महीन विषय वश अघ हौं अरु त्यागी वेष बनाये ज्ञानभक्ति नाचीते धनी अघान बना अरु ज्ञानधन

रामसनेह अन्न को भूखा कछु वनि न परा ताते हहरि हृदय ते हारि मानि जे सदय सहित दया अर्थात् जिनके उर में दया है निर्हेतु परदुःख हरते हैं ऐसे साधुन की समाज में जाइ बूझ्यों भाव आप त्रिकालज्ञ सर्व सिद्धान्त के जाननेवाले परोपकारी हौ कृपाकरि कहौ मोहूं से दरिद्र पीड़ित दीनन को पेटभरि भोजन वसन देनेवाला उदार स्वामी कहीं कोऊ है इति मेरी प्रार्थना सुनि तिन साधुन कह्यो तू से अधिक असंख्यन दरिद्री दीनन को सवभांति को सुख देनहारे कोशलराज अवधेश महाराज हैं कैसे हैं कोशलराज उदार हैं कि ३ याचकमात्र की दीनता तथा दारिद्र इत्यादि लवा तीतरआदि पक्षिन के झुंड हैं तिनको दलैको नाश करिवे को वाज हैं अर्थात् दुःखितजन शरण में देखतही दया वीरता करि शीघ्रही दुःख दारिद्र को नाश करिदेते हैं तहां वाज को स्वभाव क्रोधी तीक्ष्ण होता है सो नहीं कृपावारिधि हैं भाव कृपारूप जलभरे समुद्र हैं अर्थात् जीवमात्र की रक्षा करिवे को हमहीं समर्थ हैं यह दृढ़ानुसंधान राखना कृपा है सो कृपा जिनमें समुद्रवत् अथाह है तौ जो जीवमात्र की रक्षा करते हैं तौ दीन शरणागत को विशेषही पालन करते हैं इत्यादि सुनि भरोसा आवा तव पुनः मैं पूछेउँ कि अयोध्या में राजा तौ वहुत भये हैं जिनको आप वतावते हौ तिनको नाम क्या है अरु किसके पुत्र हैं तव उन कहा राय दशरथ को सुत दानि पुनः वानइत शिरताज अर्थात् माधुर्य में महाराज दशरथ पुत्र श्रीरघुनाथजी उदारदानी हैं पुनः ऐश्वर्य में प्रणतपाल अधमोद्धारण दीनवन्धु पतितपावन इत्यादि को जे वाना वांधे यावत् भगवत् रूप हैं तिनमें शिरमौर साकेतविहारी परात्पर परब्रह्म श्रीरामचन्द्र हैं इत्यादि हाल सन्तन के मुखते सुनि हे रघुनन्दन, महाराज! प्रणतपाल उदारदानी जानि आपके द्वारपर याचना करताहौं मेरी प्रार्थना सुनिये ४ क्या प्रार्थना है कि मैं भिखारी जन्म भरे को भूखो हौं अर्थात् जवते चैतन्य भयौं तवते चाहते रहेउँ परन्तु परिपूर्ण पेटभरि रामसनेह कवहूं पायौं नहीं इति रामसनेह को जन्मभरे को भूखा हौं पुनः धर्म, कर्म, ज्ञान, साधनादि धनरहित ताते मैं गरीव हौं पुनः तू गरीवनिवाज अर्थात् हे रघुनाथजी! आप गरीवन को ऐश्वर्यसहित सव भांति को सुख देतेहौ ताते हे श्रीरघुनाथजी! जन्मभरे को भूखो गरीव तुलसीदास को भक्तिरूप सुधा अमृतसम सुनाज जन्मभरि जेंवाइये प्रेमाभक्तिरूप सुन्दर अन्न भोजन जन्मभरि अघाइ दीजिये सदा भक्ति अचल राखिये ५॥

(२२१) करिय सँभार कोशलराय।

औरं ठौर न और गति अवलम्ब नाम विहाय १
बूझि अपनी आपनो हित आप वाप न माय।
राम राउर नाम गुरु सुर स्वामि सखा सहाय २
रामराज न चले मानसमलिन के छलछाय।
कोप तेहि कलिकाल कायर मुयहि घालत घाय ३
लेत केहरि मों वयर ज्यों भेक हति गोमाय।

त्योंहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय ४
अकनि याके कपट करतब अमित अनय अपाय ।
सुखी हरिपुर बसत होत परीक्षितहि पछिताय ५
कृपासिन्धु विलोकिये जन मन कि सांसति साय ।
शरण आयो देव दीनदयालु देखन पाय ६
निकट बोलि न बरजिये बलिजाउँ हनिय न हाय ।
देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ७
अरुणमुख भ्रूविकट पिङ्गलनयन रोष कषाय ।
वीर सुमिरि समीर को हटिहै चपल चित चाय ८
विनय सुनि बिहँसे अनुज सों वचन के कहि भाय ।
भली कही कह्यो लषणहूं हँसि बने सकल बनाय ९
दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन सदन बधाय ।
मिटे सङ्कट शोच पोच प्रपञ्च पाप निकाय १०
पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुण अनघ अमाय ।
दासतुलसी कहत मुनिगण जयति जय उरगाय ११

टी० । हे कोशलराय, अवधेश, महाराज ! मेरी दादि गफलत करने योग्य नहीं है ताते सँभार कीजिये सावधान है मेरी दादि सुनिये काहेते और ठौर कहूँ मोको नहीं है केवल आपही की शरणागति में ठौर है पुनः मेरे और गति नहीं केवल आपही की गति है पुनः नाम विहाय त्यागि और अवलम्ब काहू को भरोसा मोको नहीं आपके नाम का अवलम्ब है भाव धाम में ठौर रूप की गति नाम का अवलम्ब १ पुनः मोको आपनी बूझि अपने विचारते अपनो हितकार हे रघुनाथजी ! एक आपही देखातेहौ सिवाय आपके माय बापआदि दूसरा हितकार कोऊ नहीं है काहेते हे रघुनाथजी ! रावरो आपको नाम सोई गुरु उपदेश करता है पुनः सुरपूज्य देवता अर्थात् आपही को नाम मेरे इष्टदेव है पुनः स्वामी पालनकर्ता मोको आपको नामही है पुनः सखा मित्रवर्ग मेरे आपको नामही है पुनः सहाय हितकर्ता आपको नामही है यही अनन्य भक्तन को लक्षण है कि लोकसंबंधिनमें नेह नाता त्यागि सब नेह नाता एक रघुनाथैजीमें राखना चाहिये यथा हनुमान्जी कहे यथा शिवसंहितायाम् ॥ पुत्रवत्पितृवद्रामोमातृवन्मम सर्वदा । श्यालवद्धामवद्रामः श्वश्रूवच्छ्वशुरादिवत् ॥ पुत्रीवत्पौत्रवद्रामो भागिनेयादिवन्मम । सखीवत्सखिवद्रामः पत्नीवदनुजादिवत् । राजवत्स्वामिवद्रामो भ्रातृवद्बन्धुवत्सदा । धर्मवदर्थवद्रामः काममोक्षादिवन्मम ॥ व्रतवत्तीर्थवद्रामःसांख्ययोगादिवत्सदा । दानवज्जपवद्रामो यागवन्मन्त्रवद्बलम् ॥ राज्यवत्सिद्धिवद्रामो यशोवत्कीर्त्तिवन्मम । घृतादिरसवद्रामो भक्ष्यभोज्यादिवत्समे ॥ इत्यादि २ जो पूर्व कहे कि सावधान है मेरी दादि

सुनिये सो हाल कहत यथा मानसमलिन जो कलियुग ताके छलकी छाया भी रामराज में न चलने पाई भाव हे रघुनाथजी! आपतौ सबल रहौ अपनी राज्य में कलियुग को प्रभाव नहीं प्रकाश होने दीन्हेउ सो आपको कछ करिसकै त्यहि कोपते कलिकाल कायर मुयहि घाय घालत अर्थात् जो धर्म नीतिवन्त धीर होता तौ आपहीसों वैरके व्यापार करता तहां कलियुग तौ अनीतिरत अधर्मी कादर है ताते आपके गुलाम जे मरे हैं तिनपर घाय घालत चोट मारता है भाव विषयवशते मैं आपही मरा हौं तापर कामादि लगाइ मोको नाशकीन चाहता है तहां रामराज तौ त्रेतामें रहै तहां कलियुगते क्या प्रयोजन ताको कारण यह है कि यथा एक दिन के अन्तर सातौदिन आवते जो होरा कहावत प्रसिद्ध दुघरिया हैं तथा एक नक्षत्रके अन्तर सत्ताईसौ नक्षत्र लग्नद्वारा आवते हैं पुनः एक संक्रांतिमें बारहौ राशी नक्षत्रनद्वारा आवती हैं तथा एकयुगके अन्तर चारिहू युग सूक्ष्मरीतिते आवते हैं कौनभांति यथा योगिनीदशा में अन्तर्दशा आपनी अनुकूल हींसा पावती हैं तथा सब युगनके अन्तर सबैयुग आपनी अनुकूल हींसा पावतेहैं यथा सतयुग सत्रहलाख अट्ठाइसहज़ार वर्ष रहत तामें छालाख इक्यानबे हज़ार दुइसै वर्ष सतयुगमें शुद्ध सतयुग रहा पुनः सतयुग के अन्तर त्रेता लगा सो पांच लाख अठारह हज़ार चारिसै वर्ष रहा पुनः सतयुग के अन्तर द्वापर लाग सो तीनिलाख पैंतालिस हज़ार छासै वर्ष रहा पुनः सतयुग के अन्तर कलियुग लाग सो एक लाख बहत्तरि हज़ार आठ सै वर्ष रहा तबै वेनुद्वारा कुमार्ग भया पुनः त्रेता लगा तामें तीनि लाख अट्ठासी हज़ार आठसै वर्ष तक शुद्ध त्रेता रहा पुनः त्रेता के अन्तर द्वापर लगा सो दुइलाख उन्सठि हज़ार दुइसै वर्ष रहा तावत् त्रेता छालाख अरतालिस हज़ार वर्ष बीता तब त्रेता के अन्तर कलियुग लगा सो एक लाख उन्तिस हज़ार छासै वर्ष रहा अर्थात् नौलाख अठहत्तरि हज़ार वर्ष त्रेता बीते तक इसी समय कलियुग के प्रभाव ते रावणादि राक्षस महाअनीति करि अधर्म प्रचार कीन्हे तहां जब नौ लाख बहत्तरि हज़ार वर्ष त्रेता बीतः अर्थात् छःहज़ारवर्ष कलियुग शेष रहे तब रघुनाथजी को अवतार भया तब कलियुग को प्रभाव निर्मूल नाश करि धर्मनीति के प्रचार ते सब आचरण सतयुग के करि दिये इति रघुनाथजी के राज में कलियुग के छल व्यापारन की छाया नहीं चलने पाई भाव असत्य को नाम नहीं रहने पाया तहां प्रभुते तौ कछु बल चला नहीं ताही कोप ते मानसमलिन नीच दुष्ट कादर कलिकाल अब आपनी राज्य में पाये ते हे रघुनाथजी! आपके गुलाम हम ऐसे मरेन को मारा चाहता है सो नीच कादर दुष्टन की यही रीतिही होती है २ नीच दुष्ट कादरन की कैसी रीति होती है कि वैरते सबल को डरता हैं अरु ताको सम्बन्धी जानि सहवासी अनुमानि निर्बलन को स्ववश पाइ घात करते हैं तैसे हे श्रीरघुनाथजी! आपने कलियुग को दबावा सो सबल जानि आपु ते तौ बोलि न सका कौन भांति यथा जिस वन में सिंह रहत तहां अन्य चौपियन को नहीं रहने देत तहां गोमायु जो सियार नीच दुष्ट कादर केहरि जो सिंह ताके वैर ते ज्यौं भेक मेढ़क ते दांव लेत अर्थात् नाग अरि सिंहौ है नाग अरि मेढ़की है भाव नाग हाथी ताको घातक सिंह नाग

अरि कहावत पुनः नाग सर्प सो मेढ़क को खाइ जात ताते नाग अरि कहावत इति नाममात्र सम्बन्धते सिंह को वैर मेढ़क ते स्यार लेता है मेढ़क को मारता है त्योंहीं रामगुलाम जानि कलियुग निकाम बेप्रयोजने कुदाय देत कुत्सित दांवभरि पटका चाहत यह विचारि सँभार कीजिये आपने दासन की रक्षा कीजिये ४ दिग्विजयहेतु परीक्षित जातरहें कहीं धर्मरूप वृष को दण्ड देते कलियुग को देखि पूछि जानि कहे कि मेरी राज्य में अपना प्रभाव करैगा तौ तेरा शिर काटि डारौंगो कलि पूछा मैं कहां रहौं परीक्षित कहा जहां जुआ चोरी आदि होइँ तहँ रहु पीछे कहा महाराज एकतौ ठौर नीक बतावो तब सोना बताये सोने को मुकुट धरे रहैं ताही पर जाइ राजा की बुद्धिमन्द करिदिया एक समाधिस्थ ऋषि के गरे में मरा सर्प लपेटि दिये ऋषिपुत्र शाप दिया कि परीक्षित सर्प के काटे सतयें दिन मरैं इत्यादि या कलियुग के कपटमय करतब पुनः अनय अनीति सो अपाय प्रमाण रहित पुनः अमित इति नहीं अर्थात् अतोल अनीति प्रतिदिन अधिकै करतजाता है इत्यादि अकनि जानिकै हरिपुर वैकुण्ठ में सुखी बसत तबहूं परीक्षितहि पछिताव होत भाव नाहक को दुष्ट को मारलेते छांड़िदिया क्योंकि छूटतही हमारे साथ दांव भरा जो शुकदेव कृपा न करते तौ हम भवसागर को जाते ताते दुष्टपर कृपा करनो अपराध है इत्यादि पछिताव होत ५ दो० ॥ रक्षक सब संसारको, हौं समर्थ मैं एक। दृढ़मन अनुसंधान यह, सो गुण कृपाविवेक॥ सो कृपाजल भरे समुद्र इति हे कृपा-सिन्धु! आपुको जन जो मैं ताके मन की सांसति साय नाम समूह है सो विलो-किये देखिये अर्थात् कलिप्रेरित कामादिक घेरे मेरे मनको महादण्ड दिहे हैं ताही भयते हे देव, दीनदयालु दीननपर दया करनेवाले श्रीरघुनाथजी! पांय देखन आपु के पदकमल अवलोकन हेतु आप की शरण आयों भाव कलियुग ते मोको बचाइये ६ कौन भांति रक्षा कीजिये हे श्रीरघुनाथजी! निकट बोलि न बरजिये अर्थात् दादि सुनि प्रभु काहू पारषद्सों कहे कि कलियुग को बुलाइ लावौ वाको बरजि देवैं कि इस दीन तुलसीदास पर क्यों वृथा सांसति करता कदाचित् पुनः कोप करे तौ प्राणघात दण्ड पावै इत्यादि सुनि प्रार्थना करत हे प्रभु! आपने निकट बुलाइ न बरजिये भाव दुष्ट के बरजिबे में मैं बलिजाउँ आपको परिश्रम परैगो पुनः दुष्ट है कदाचित् आपके रोके परभी न मानै तौ प्राणघात दण्ड पावैगा सो हाय हाय भाव यह अपराध मेरे शिर होयगी ताते हनिये न भाव कलियुग को बध न कीजिये अच्छा फिरि तुमको दादि कैसे दीजाय सो कहौ तापर कहत रावरे भक्तन के रक्षक हनुमान्‌जी सदैव रहते हैं ताते इनहीं को आज्ञा दीजिये ते जाय गोमुख नाहरन के न्याय अर्थात् यथा गाई बरधन के सन्मुख व्याघ्रन की दृष्टि परती है तैसेही दृष्टि ते हनुमान्‌जी कलियुग पर देखि हैं अर्थात् आपु की आज्ञा-नुकूल हनुमान्‌जी सक्रोधित कलियुग को डाटिदेइँगे यथा सक्रोधित व्याघ्र को देखि वृषभ सभीत होत तैसेही हनुमान्‌जी को सक्रोधित मुख देखि कलियुग डराइ जाइगो ७ कैसे हनुमान्‌जी निहारैंगे रोषवश ते अरुण लालमुख तथा भ्रू विकट भृकुटी टेढ़ी तथा पिंगल जो पीतरंग के नयन तेऊ रोपकषाय अर्थात् क्रोधते नेत्रौ लाल इति सक्रोध चेष्टाते जब कलियुग को डाटैंगे तब समीर पवन ताके पुत्र जौ

हनुमान्जी तिनको सुमिरि पूर्व वीरता के व्यापार सुभिकरि चपल चितचाय हटि है चञ्चल स्वभाववाला जो कलियुग ताके चित की चाय जो हर्ष सो हटिजाई भाव सभीत है जायगो ८ कवि की उक्ति कि मेरी विनय सुनि तिन वचनन के भाय भावार्थ अनुज जो लक्ष्मणजी तिनसों कहि प्रभु विहँसे अर्थात् हे लक्ष्मणजी! देखिये सब गुनन के भक्तनते उत्तम कलियुग के भक्त होते हैं काहेते यथा दुकाल के दानी विचले के लड़नेवाले आपदा में धैर्य करनेवाले तैसे सुधर्मी वीर धैर्यवन्त ऐसे साहसी हैं कि यथा शशा सिंह को मारे तथा ये अवल बुद्धिबल ते सबल कलियुग को जीतिलिये अर्थात् अधर्मका प्रचार दुकाल में शरणागति के भरोसे धर्म राखे पुनः विवेकदल विचले नाम केवल कामादिकनते लड़े पुनः कलियुग के कोप आपदा में धैर्यकरि हमारे द्वार परारहि विनयपूर्वक हठकरि दादि लै लिया पुनः उत्तम साधुता देखिये हमको श्रम न परै कलियुग को विशेषि दण्ड न होवै केवल हनुमान्जी सक्रोधित मुखते डाटिदेवैं जामें उपद्रव न करिसकै इति वचनन को भावार्थ कहि पुनः विहँसे भाव नामके बलते तुलसीदास ऐसा सबल भया कि बरबस शरणागति को नेम निर्वाह करि कराल कलिकाल के मुखमें कालिमा लगाइ दिया भाव कलिकालहू में नामको प्रभाव दर्शाय भक्ति को प्रचार किया इत्यादि प्रभु के वचन सुनि लक्ष्मणजी हँसिकै कह्यो हे प्रभु! इस तुलसीदासने सबै वार्ता भली युक्ति ते कही है अब सकल बनाव बने अर्थात् नाम के माहात्म्य में तुलसीदास के दृढ़ विश्वास बनी ताते नाम में निष्ठा बनी नाम के प्रभाव ते शरणागति बनी शरणागति के प्रभावते प्रभुकी प्रसन्नता बनी प्रभुकी प्रसन्नता ते तुलसीदास के भक्ति प्रचार की महिमा कलियुग विषे निर्विघ्न निबहैगी ताके द्वारा अनेकन जीवनकी शुभगति बनैगी इति सकल बनाव भले बने ९ दीनहि दीन पौरुषहीन जो मैं तुलसीदास ताहि रघुनाथजी दादि दई अर्थात् हनुमान्जी को आज्ञा देदिये कि जैसा तुलसीदास कहै तैसाही दण्ड कलियुग को देउजाइ अथवा अर्ज सुनि कहे अच्छा ऐसेही करैंगे सो प्रभु की बानी अथवा तुलसीदास दादि पाइ कलियुग ते अभय भये इत्यादि हाल सुनि सुजन सदन बधाय सुजनन के घरन में बधाई बाजनेलगी अर्थात् सब आनन्द भये कि तुलसीकृत श्रवण कीर्तनद्वारा हमारी भी भक्ति निर्विघ्न निबहैगी काहेते जहां तुलसीकृत को प्रचार होइगो तहां कलियुग अपना प्रभाव न करिसकैगो ताते पोच नीच जो कलियुग ताको कियाहुआ प्रपञ्च छल कपटको व्यापार यथा कथा सुनत में सुन्दरी युवती अवलोकन को योग बांधिदिया तासमय कामासक्ति ते कुदृष्टिते अवलोकन प्रीति पूर्वक वार्ता इत्यादि कारणमय पोचकृत प्रपञ्च करिकै निकाय नाम समूह पाप होते हैं तिनको फल रुज शूल दरिद्र शत्रुवश होना राजदण्ड इत्यादि संकट पुनः हानि वियोग अपयश इत्यादि शोच होते हैं सो सब मिटे इति विचारि सुजन आनन्द भये १० गोसाईंजी कहत जन जो मैं तामें प्रभुकी प्रतीति रक्षा में दृढ़ विश्वास तथा जनपर प्रभुकी प्रीति आपनो जानि दयादृष्टि अवलोकन इत्यादि पेखि देखिकै मननशील मुनिगण आनन्द है उरमें प्रभु के गुणानुवाद गायकै पुनः प्रसिद्ध कहत कि अगुण जो तीनिहुं गुणते परे हैं पुनः अनत्र अत्र जो पाप तिन

करिकै रहित पुनः अमाय कारण मायारहित ऐसे सत् चित् आनन्दरूप परब्रह्म श्रीरघुनाथजी की जय होती है पुनः सदा जय होइ जे दुष्टन को दण्ड दै सदा सुजनन को पालन करते हौ ११ ॥

(२२२) नाथ कृपाही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति।
होइधौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति १
सुगुण ज्ञान विराग भक्ति सुसाधननि की पांति।
भजे विकल विलोकि कलि अघ अवगुणनि की थाति २
अति अनीति कुरीति भइ भुइँ तरणिहूं ते ताति।
जाउँ कहँ बलिजाउँ कहूं ना ठाउँ मति अकुलाति ३
आप सहित न आपनो कोउ बाप कठिन कुभांति।
श्यामघन सींचिये तुलसी शालि सफल सुखाति ४

टी०। हे नाथ, रघुनाथजी! हौं मैं दीन पौरुषहीन अर्थात् कछु साधन नहीं करिसक्ता हौं ताते रातिउ दिन आपुकी कृपा को पन्थ चितवत हौं हे दीनदयालु! सो जानि नहीं जात धौं केहि काल में कृपा होइगी १ किस हेतु कृपै की आश राखेहौं कि सुगुण अर्थात् क्षमा, दया, शान्ति, संतोष, कोमलता, विचारादि गुणनसहित विराग, विवेक, मुमुक्षुता, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान इत्यादि ज्ञानके साधन तथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यतादि भक्ति के साधन इत्यादि सुन्दरे साधननिकी पांति यावत् हैं ते कलि विलोकि कराल कलियुग को देखि सांसति सों विकल ह्वैके भजे जननके उरते निसरि भागे पुनः अघ अवगुणनिकी थाति अर्थात् जीवहिंसा, परस्त्रीगमन, परहानि, पर अपवाद, परधनहरण इत्यादि अघ नाम पाप पुनः काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान, दम्भ, पाखण्ड, लोलुपता, आलस, कठोरता, चपलता, वैर, विरोध, वृथावाद इत्यादि अवगुण इत्यादिकनकी थाति नाम थिरता भई कलियुग की सहायता ते जननके उरमें थिर अचल ह्वैकै वास कीन्हे अर्थात् अघ अवगुणनमयी सबै लोग देखाते हैं तब शुभसाधन कैसे ह्वैसकैं इसहेतु केवल आपुकी कृपैको आश भरोसा राखे हौं २ पुनः अति अनीति अर्थात् सुजननको वृथा दण्ड सापराधी दुष्टनको पालन परधन बरबस हरिलेना परस्त्री हरिलेना चोर बटपार को आदर गुणवन्तन को अनादर इति अत्यन्त अनीति होती है पुनः करज लै न देना वा एकके चारि लेना झूंठे साखी राजा रिशवतिहा पुत्र पिता को दण्ड देत स्त्रीके वश गुरुजनन को अनादर बिवाही त्यागि चेरी में प्रीति इत्यादि कुरीति आचरण ते तरणि सूर्यनउते अधिक ताती भुइँ ह्वैरही भाव भूमिपर लोग पाप तापन ते जरिरहे हैं ताते मैं बलिजाउँ भूमि पर सुखपूर्वक रहने को कहूं ठांव नहीं है तौ कहां जाउँ कहूं सुपास नहीं देखत हौं ताते मति अकुलाति सर्वत्र लोगनकी दुःखदशा देखि विचार में कछु नहीं करत बनत ताते बुद्धि विकल भई कछु करत बनता नहीं ३ काहेते कछु करते नहीं बनता है कि आप सहित आपनी देह

सहित देहसम्बन्धी कोऊ आपना नहीं है अर्थात् देह तौ इन्द्रियविषयिन के सुख में परि जीव को भवसागर को पठावा चाहत तथा बन्धु, स्त्री, पुत्र, पौत्र, सखा, सनेही, सम्बन्धी इत्यादि सब स्वारथ के साथी पुनः जीवके संकटसमय कोऊ लग नहीं आवत अर्थात् जब जानि जाय कि अब किसी काम के नहीं रहे तब कोऊ लग नहीं आवत बाप हे पिता रघुनाथजी! अर्थात् गर्भवास ते जन्मपर्यन्त नरक स्वर्ग सर्वत्र पालनहारे आपुही हौ अरु देहसम्बन्ध लौकिक व्यवहार सब कुभांति ते कठिन है अर्थात् विषयासक्ति देखत में सुख देखात विचारेते इहाँ दुःखद अरु अन्त में कठिन दुःखदायक है ताते हे रघुनाथजी! आपु निर्हेतु जगत् को पालनहार कृपाजल भरे श्यामघन मेघ हौ अरु सफल शालि फले हुये धानन सम तुलसी सुखात है ताको कृपाजल वर्षि सींचिये अर्थात् संसारते विमुख है आपुकी शरण सन्मुख आइचुकेउँ विना कृपा भये पुनः भवसागर को जाता हौं ताते कृपाकरि शरण में राखिये ४ ॥

(२२३) बलिजाउँ और कासों कहौं।
सद्‌गुणसिंधु स्वामि सेवकहित कहुँ न कृपानिधि सों लहौं १
जहँ जहँ लोभ लोल लालचवश निजहित चित चाहनि चहौं।
तहँ तहँ तरणि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरुकोटर गहौं २
काल स्वभाव करम विचित्र फलदायक सुनि शिर धुनि रहौं।
मोको तौ सकल सदा एकहि रस दुसहदाह दारुण दहौं ३
उचित अनाथ होइ दुखभाजन भयो नाथ किङ्कर न हौं।
अब रावरो कहाय न बूझिये शरणपाल सांसति सहौं ४
महाराज राजीवविलोचन मगन पाप संताप महौं।
तुलसी प्रभु जब तब जेहि तेहि विधि राम निबाहे निर्बहौं ५

टी०। मैं बलिजाउँ हे रघुनाथजी! आपको त्यागि और कासों आपनी गर्ज कहौं काहेते सद्‌गुणसिन्धु अर्थात् दया, कृपा, शील, करुणा, क्षमा, सुलभ, उदारतादि परम कल्याणादि सद्‌गुणरूप जलभरे समुद्र स्वामी सेवकन को हित करता कृपानिधिसों कहुँ न लहौं हे कृपानिधि! आपकी समान कहूं नहीं पावता हौं १ काहेते आप सरीखे कहौं नहीं पावता हौं कि लोभ मानसी चाहवश लालच प्रसिद्ध चाह दर्शाय लोल चञ्चल है चित्त की चाहनि ते निज आपना हित जहां जहां चाहता हौं तहांते कैसा मुख फेरि भागता हौं ज्यों उलूक घुघुवा पक्षी तरणि सूर्यन को तकत मुख फेरि भागि वृक्ष के खोढ़रामें लुकता है तैसेही मैं भटकि गड़बड़ाइके कुतरु कोटर गहौं कुवृक्षके खोढ़रा में लुकता हौं अर्थात् उलूक पक्षी नकाम वृक्ष में रहत अशुभकर्ता निशा में चरनेवाला है ताते सूर्यन के सन्मुख होत डरता है तथा मैं संसार असार वृक्ष को रहनेवाला अनीति राति को चरनेवाला ज्ञान सूर्यन के सन्मुख नहीं ह्वैसक्ता हौं पुनः कामते परस्त्रिन हेतु क्रोध ते

परहानि हेतु चञ्चल लोभते धन पाइवेके लालचवश अनेक दम्भ व्यापार इत्यादि अशुभ कर्म करनेवाला पुनः चित चैतन्य चाहते कर्मयोग, विवेक, विराग, भक्ति आदि जहां जिस साधनते आपना परलोक हित चाहत हौं तहँ ज्ञानरूप सूर्य भाव विना ज्ञान एकहू साधन नहीं है इति ज्ञानसूर्य देखत गड़बड़ाइके संसारवृक्ष में अश्रद्धारूप कोटर गहता हौं २ काल यथा तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न, पला, दण्ड, मास, ऋतु, संवत्, युग, कल्पादि सो शुभकाल शुभकार्य करता है अशुभ काल अशुभ कार्य करता है पुनः कोमल शील दयावन्त स्वभाव शुभकार्य करता पुनः कठोर कुशील निर्दयी स्वभाव अशुभकर्म करता पुनः शुभकर्मन को फल सुख है अशुभकर्मन को फल दुःख है ते काल स्वभाव कर्म परस्पर मिलेते विचित्र फलदायक हैं अर्थात् उत्तमकाल यथा युग में सतयुग, मासन में अगहन, ज्येष्ठ, भादवँ, फाल्गुन, पक्ष शुक्ल, तिथि तीज, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, तेरसि दिन में रवि, चन्द्र, गुरु, नक्षत्र अश्विनी, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, धनिष्ठा, श्रवण, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, लग्न जो वली होइ पुनः अशुभकाल यथा कलियुग पुनः मासन में वैशाख, श्रावण, कार्त्तिक, माघ, कृष्णपक्ष, तिथिन में चौथि, छठि, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, अमावस, दिनमें शनि, भौम, नक्षत्र भरणी, कृत्तिका, श्लेषा, मघा, विशाखा लग्न निर्वल पुनः शुभकर्म यथा यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, दान, पूजा, पाठ, जप, परोपकारादि अशुभ यथा हिंसा, चोरी, वेश्या परस्त्रीगमन, परहानि, निन्दा, गुरुजन अनादर, जुवा इत्यादि तहां शुभकाल में शुद्धस्वभाव ते जो सत्कर्म करत ताको फल पुत्र, पौत्र, धन, भोजन, वसन, धरणी, धाम प्राप्ति अन्त में स्वर्ग इति फल पुनः अशुभ काल में कठोर स्वभाव ते अशुभ कर्म कीन्हेते इष्टहानि, प्रिय वियोग, रुज, राजदण्ड, दरिद्रता, नरकवास इति फल पुनः काल, स्वभाव, कर्म जब परस्पर प्रतिकूल होत सो विचित्र फलदायक है यथा उत्तमकाल में आलसी स्वभावते सत्कर्म में भी विघ्न लागि दुःख होत यथा आलसते विना विचारे राजा नृग को एक गाइ दुइ ब्राह्मण को संकल्पिके गिरगिट होनापरा अरु अब तौ कलियुग ऐसा कराल काल ताके प्रभावते स्वभाव भी नष्ट तामें जो कोऊ शुभ कर्म कीन चहै तो ऐसे विघ्न लागते हैं कि एकहू कार्य सिद्ध नहीं होत श्रम वृथा जात इत्यादि काल अरु स्वभाव की विषमताते कर्म भी विचित्र फलदायक हैं अर्थात् न मालूम किस कर्म में क्या फल मिले इत्यादि सुनि शिर धुनि रहौं भाव सत्कर्मों नहीं करने योग्य हौं इसहेतु शिर पीटत हौं कि मोको तौ काल स्वभाव कर्मादि सकल एकही रस हैं अर्थात् यथा कलियुग कराल काल तथा मेरा स्वभाव भी नष्ट तैसेही नष्ट कर्म करता हौं ताते दुसह जो सहि न जाइ ऐसी दारुण कठिन दाह में दहौं जरता हौं ३ हे श्रीरघुनाथजी ! जो अनाथ होइ जाके रक्षा करनेवाला स्वामी नहीं है सो दुःखभाजन दुःख को भरा पात्र रहना उचित है क्योंकि अनाथकी कौन रक्षा करै अरु हे नाथ ! जब किंकर भयों तब दुःख को पात्र नहीं हौं कृपा को पात्र हौं अर्थात् जबतक मैं आपको गुलाम नहीं भयों विमुख रह्यों तबतक आपने कर्मनवश दुःख सहिवे योग्य रहौं अब आप ऐसे सबल समर्थ स्वामी को गुलाम भयों तब दुःख सहिवे योग्य नहीं हौं काहेते

हे शरणपाल ! अर्थात् आप शरणागत को पालनहारे हौ अरु अब मैं रावरो आप को गुलाम कहाय सांसति दुःख सहौं ऐसा न बूझिये आपको ऐसा करना उचित नहीं है कि आपके देखत मैं दुखित रहौं ४ हे रघुनन्दन, महाराज ! राजीवविलोचन कृपा रसभरे कमलसम नयन अर्थात् भूतमात्र पर कृपादिष्ट राखे सबको पालन करते हौ अरु मैं आपको कहाय पापफल सम्पूर्ण प्रकार की तापरूप समुद्र में मगन बूड़ता हौं हे प्रभु ! अब अथवा जब आपकी इच्छा होइ तब जेही विधि ते बनै तेही विधि ते मैं जो तुलसीदास हौं सो हे रघुनाथजी ! आपही के निवाहे निर्वहौं भवते छूटौंगो ५ ॥

(२२४)आपनो कबहूं करि जानिहो ।

राम गरीबनेवाज राजमणि विरद लाज उर आनि हो १
शीलसिन्धु सुन्दर सबलायक समरथ सदगुण खानि हो ।
पाल्यो है पालत पालहुगे प्रणत प्रेम पहिंचानि हो २
वेद पुराण कहत जग जानत दीनदयालु दीनदानि हो ।
कहि आवत बलि जाउँ मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हो ३
आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हो ।
है परिणाम भलो तुलसी को शरणागत भय भानि हो ४

टी० । पूर्वाभिलापपूर्वक प्रार्थना करत हे रघुनन्दन, महाराज, राजन में शिरोमणि ! कबहूं मोको आपनो करि जानि हो हे गरीबनेवाज ! विरद लाज गरीबनिवाजी बाना की लाज कबहूं उर में आनिहो भाव गरीब जानि मोको भी आपनो गुलाम जानि कबहूं शरण में राखिहो १ कैसा विरद आप में है कि शीलसिन्धु हौ अर्थात् जातिहीन कर्ममलीन कैसहू कुरूप अपावन सन्मुख आवै ताहू को आदर सन्मान करना ताको शील कही यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ हीनैर्दीनैश्च मलिनैर्बीभत्सैकुत्सितैरपि । महतोऽच्छिद्रसंश्लेषं सौशील्यं विदुरीश्वराः ॥ इति शीलरूप जल भरे समुद्र हौ पुनः सुन्दर मनोहरस्वरूप अर्थात् माधुरी दर्शाय सुलभै जीवन को कृतार्थ करनेवाले अरु समरथ अर्थात् सब ऐश्वर्यवन्तन को ऐश्वर्य देनहारे ऐश्वर्यरूप ते सर्वोपरि परब्रह्म साकेतविहारी हौ पुनः सदगुण यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः । भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥ पुनः ॥ सत्यत्वज्ञानत्वानन्तत्वैकत्वविभुत्वामलत्वस्वातन्त्र्यानन्दत्वादयो ह्यनिरूपितस्वरूपनिरूपिकाः॥ पुनः दयाकृपानुकम्पानृशंस्यवात्सल्यसौशील्यसौलभ्यकारुण्यक्षमागाम्भीर्यौदार्यस्थैर्यधैर्यचातुर्यकृतित्वकृतज्ञत्वमार्दवार्जवसौहार्दप्रमुखा भगवन्तः करणधर्मा निशिष्याश्रयणोपयुक्ताः ॥ पुनः सौन्दर्यमाधुर्यसौगन्ध्यसौकुमार्यौज्ज्वल्यलावण्याभिरूप्यकान्तितारुण्यप्रभृतयो दिव्यमङ्गलविग्रहगुणाः इत्यादि शुभगुणन के खानि हौ ताते सबलायक अर्थात् जो कौन चहौ सोई करौ तामें दूसरे की गति नहीं है यथा श्रुतिः ॥ कर्तुं विकर्तुं जगदन्यथा च कर्तुं ॥ कैसे सबलायक हौ कि सुजानता गुण ते अन्तर को प्रेम पहिचानि प्रणतपालता गुणते पूर्व बहुते प्रणतन

को पाल्यो है अरु वर्तमान में बहुतेन को पालते हौ ताते यह विश्वास है कि प्रणत जो नम्रतापूर्वक प्रणाम करनेवाला शरणागत जो मैं ताहू के अन्तर को प्रेम पहिचानिहो ताते मोको भी पालहुगे २ के प्रयोजन परदुःख हरना दयागुण है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ दया दयावतां ज्ञेया स्वार्थं तत्र न कारणम् । अर्थात् निर्हेतु दीनन को पालनहारे हे श्रीरघुनाथजी ! वेद पुराण आपको दीनदयालु कहत तथा च श्रुतिः ॥ एष भूतपतिरेष भूतपालः । एष सेतुर्विधारण एषां लोकनाम संभेदाय अमृतस्यैष सेतुः । पुनः अध्यात्मे ॥ को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो । स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वामृता मे स्वयमेव यातः ॥ पुनः दीनदानि हो अर्थात् याचक अयाचक सबका मनभावत दान देतेहो सो सब जगत् जानत है यथा वाल्मीकीये ॥ सत्येन लोकान् जयति दीनान् दानेन राघवः । सान्त्वेन सर्वभूतानि रामः शुद्धेन चेतसा ॥ गुरून् शुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान् । अर्थात् रघुनाथजीके सन्मुख आइकै सब अनिच्छित ह्वैगये अब जो मो पर दयादृष्टि नहीं करते हो अरु आरत के चित्त में चेत नहीं रहत त्यहि मान मर्प ताते ढीठी वात कहिआवत ताको बुरा न मानिये पूर्व जो दीनदयालुता वानि स्वभाव रीति रही सो मेरी वार को बिसारि दीन्हेउ है भाव निर्दयी बनेउ ३ काहेते निर्दयी बनेउ हे प्रभु ! आरत जे दुःख पीड़ित हैं पुनः दीन जे पौरुषहीन हैं पुनः अनाथ जिनको रक्षक कोऊ नहीं ऐसेन के हित करते आयेउ अरु अबहूं करतेहो अरु मेरी वारको लौकिक कानि मानते हो अर्थात् महाराज है नीचजन को शरण में राखत लोकलाजको डरते हौ इस लाजते मोको शरण में नहीं राखते हौ सो यह लाज कबले राखहुगे जब यमगण मोको बांधि लैचलैंगे तब आपको नाम पुकारत चलौंगो सो देखि जब सब कहैंगे कि रामगुलाम नरकको जाताहै इस आपने नामकी लाजते इस निर्दयता की लोकलाज भूलिजायगी तब धाइकै शरणागत की भय जो यमसांसति ताको भानि हो नाश करिहौ अर्थात् मोको छुड़ाइलेउगे तब शरण में राखहुगे इति परिणाम अन्तकाल में तुलसी को भलोहै ४॥

(२६५)रघुवरहि कबहु मन लागिहै ।

कुपथ कुचाल कुमति कुमनोरथ कुटिल कपट कब त्यागिहै १
जानत गरल अमिय विमोह वश अमिय गनत करि आगिहै ।
उलटी रीति प्रीति अपने की तजि प्रभुपद अनुरागिहै २
आखर अर्थ मंजु मृदु मोदक रामप्रेमपाग पागिहै ।
ऐसे गुण गाय रिझाय स्वामि सों पाइहै जो मुँह मांगिहै ३
तू यहि विधि सुख शयन सोइहै जिय की जरनि भूरि भागिहै ।
रामप्रसाद दासतुलसी उर रामभक्तियोग जागिहै ४

टी० । अब मनोराज करत हे मन ! यथा इन्द्रियद्वारा विषयन में लागता है ताही भांति कबहुँ किसीकाल रघुवरहि लागिहौ रघुनाथजी में प्रीति करिहौ सो मनके छा अंश होतें हैं यथा जिज्ञासापञ्चके ॥ कर्माकर्मविकर्मादावनियमेन वर्तते

संकल्पश्च विकल्पश्च मनसो बहुशो यथा ॥ तिनको निवारण कहत कुपथ जो कुसंग अनुकूल कर्म पर आरूढ़ हैं कुचालि जो काम, क्रोध, लोभवश, विकर्म विशेष कर्मन में लागता है कुमति जो घात में विकल्प झूंठी को सांची सांची को झूंठी करताहै कुमनोरथ जो परस्त्रीलाभादि संकल्प करताहै कुटिल टेढ़े स्वभावते अकर्म करता है परस्त्रीगमनादि कपट जो वेष वचनमें नेम नहीं राखता है यथा वेष वचन ते साधु बना अन्तर दुष्ट इति अनियम इत्यादि अंशव्यापार कब त्यागिहै १ कुमति ते जो विकल्प करता है अर्थात् विशेष मोहवश आत्मरूप विसारि देहाभिमान कुबुद्धिते गरल विष सम जो विषयसुख ताको अमिय अमृत सम जानत अर्थात् हर्षसहित ग्रहण करता है पुनः अमृतसम ईश्वर की शरणागति ताको आगिकरि जानता है भाव मुख फेरि भागताहै यह अपनी प्रीति की जो उलटी रीति है अर्थात् विषय ते पीठि दै ईश्वर में प्रीति करने ते जीवको कल्याण है अरु तू ईश्वर ते विमुखहै विषयमें प्रीति करताहै इति उलटी जो विषयनमें प्रीति किहे है ताको तजि प्रभु पद अनुरागि है अर्थात् विषय ते विमुख ह्वै रघुनाथजी के पदकमलन में कबहूं अनुरागसहित लागिहै २ रामरूप,रामधाम,रामनाम,रामलीला जामें वर्णन होताहै ते आखर अक्षर वा शब्द सब मञ्जु उज्ज्वल अमल माङ्गलिक होतेहैं यथा ॥श्लोक॥ रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूटपतिं हरिम् । कौशल्याशुक्तिसंभूतं जानकीकण्ठभूषणम् ॥ इत्यादि मञ्जु आखरन में मन लागेते मनौ उज्ज्वल ह्वैजात ताते आखर मञ्जु कहे पुनः जिन शब्दन के अन्तर्गत रामयश है सो अर्थ भी कोमल होता है भाव वामें लागेते मनौ कोमल होता है कैसे रामपद में अनुराग करु ताको कारण कहत यथा विषयसुख में प्रथम स्वादिष्ठ उत्तम लड्डूआदि भोजन करि पुष्ट होत तब सबै इन्द्रिय विषयन पर लागती हैं तथा इहां रामयशरूप मोदक की विधि कहत तहां प्रथम वेसन रवाआदि मैदा चाहिये सो रामयश वर्णन में जो आखर वर्ण शब्दादि हैं सोई मञ्जु उज्ज्वल मैदा है पुनः घृत चाहिये सो मञ्जु आखरन में जो मृदु कोमल अर्थ है सोई घृत है सुथल सत्संग चूल्हा विराग अग्नि शुभाशुभ कर्म ईंधन लगाइ श्रवण, कीर्तनादि में जो रघुनाथजी में प्रेम होता है सोई पाग शक्कर को जलाव सरीखे है तामें पागिहै भाव जब प्रेम सहित श्रवण कीर्तनरूप रामयश रूप मोदक पाइ जीव पुष्ट होइगो तब सर्वाङ्ग रामसनेह उत्पन्न होइगो ऐसे गुण गाय इस प्रकार श्रीरघुनाथजी के गुणानुवाद गान करि रिझाय प्रसन्न करि स्वामी सों जो आपने मुख सों मांगि है सोई पाइहै भाव विषयवासना त्यागि प्रेमपूर्वक रामयश श्रवण कीर्तन करनेते रघुनाथजी ऐसे प्रसन्न रहैंगे कि तेरे मनोरथमात्र सब प्रकार को सुख श्रीरघुनाथजी तोको स्वाभाविकही देहँगे ३ हे जीव ! तू यहि विधि अर्थात् श्रीरामयश श्रवण, कीर्तन प्रेमसहित निरन्तर करना यही विधि रहते रहते तीनिहुँ तापादि भूरि बड़ीभारी जो जीवकी तपनि है सो भागि है समग्र मिटिजाइगी तब सुखशयन सोइ है अर्थात् रामयश के प्रभावते पाप ताप नाश ह्वैजाइँगे ताते इन्द्रिय मनआदि देह की थिरता सोई शयनशय्या है विषय आशा त्यागि रामसनेह के व्यापार में आनन्द रहना सोई सुखपूर्वक सोवना है पुनः मन इन्द्रिय थिरतासहित प्रेमपूर्वक नाम स्मरण करत ध्यानविषे रामरूप को सेवन

करत हाथन ते श्रीविग्रह को अर्चन करत साष्टाङ्ग वन्दन करत इत्यादि दास्यता करि रामप्रसाद श्रीरघुनाथजी की कृपाते भक्तियोग जागि है अर्थात् देहाभिमान जीवत्वबुद्धि नाश ह्वै हे तुलसी ! तेरे भी उरमें प्रेमा परा भक्ति उत्पन्न होइगी ताके लक्षण यथा महारामायणे ॥ अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति । श्रीरामनामरसनाग्रपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽप्यथ हृष्टलोमाः ॥ सीतायुतं रघुपतिं च विशोकमूर्तिं पश्यन्त्यहर्निशमुदा परमेण रम्यम् । शान्ताः समानमनसश्च सुशीलयुक्तास्तोपक्षमागुणदयामृजुबुद्धियुक्ताः ॥ विज्ञानज्ञानविरतिः परमार्थवेत्ता निर्द्धामकोभयमनाः स च रामभक्तः । इति भक्तियोग जागिहै ४ ॥

(२२६) भरोसो और आइहै उर ताके ।

कै कहूं लहै जो रामहिं सो साहिब कै अपनो बल जाके १
कै कलिकाल कराल न सूझत मोह मार मद छाके ।
कै सुनि स्वामि स्वभाव न रह्यो चित जो हित सब अँग थाके २
हौं जानत भलिभांति अपनपौ प्रभु सों सुन्यो न शाके ।
उपल भील खग मृग रजनीचर भले भये करतब काके ३
मोको भलो रामनाम सुरतरु सो भयो प्रसाद कृपालु कृपा के ।
तुलसी सुखी निशोच राज ज्यों बालक माय बबा के ४

टी० । हे मन ! मेरे तौ भरोसा एक रघुनाथजी को है दूसरे को नहीं है काहेते औरे को भरोसा ताके उर में आइ है जो कैतौ शीलसिन्धु सुलभ उदार समर्थ रघुनाथजी के समान कहूँ स्वामी लहै पावै तिस औरे को भरोसा करै कैतौ विवेक विरागादि ज्ञानसाधन को आपनो बल होइ ताको भरोसा करै १ अथवा जे मोह देहाभिमान पुनः मार काम इत्यादि मद के छाके हैं अर्थात् जाति रूप यौवन ऐश्वर्य में हर्ष बढ़ाये सुन्दरी युवतिन में आसक्त ज्ञानदृष्टि रहित अन्धे हैं जिनको कराल कलिकाल नहीं सूझत भाव युग के प्रभाव ते हर्ष सहित भवसागर वा यमपुर को जाते हैं ते औरन को भरोसा करैं कैतो वे शख्स औरन को भरोसा करैं जो सन्तनते पुराणादि में रघुनन्दन स्वामी को स्वभाव सुन्यो पुनः चेत न रह्यो अज्ञताते भुलाइ दियो कैसा स्वभाव जो सब अङ्ग थाके को हितकर्ता हैं अर्थात् कर्म, ज्ञान, विद्या, बुद्धि, बलादि सब उपाय करि हारि गयो दुःख नहीं छूटता है अथवा दुःख छूटने योग्य उपाय जो नहीं करिसक्ता है इति सब अंग थाके ऐसे दीनन के हित करनेवाले दीनदयालु जो रघुनाथजी सुलभ, उदार, शील, करुणामय, कोमल स्वभाव सुनि जे चित्त में नहीं धरते हैं भाव रघुनाथजी की शरणागति नहीं गहते हैं ऐसे विमुख अभागी औरन को भरोसा करैं २ अरु मैं कौन भांति और को भरोसा करौं काहेते अपनपौ आपनी करतूति भलीभांति जानत हौं काहेते पूजा, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दानादि धर्म, कर्म के साधन तथा

यम, नियमादि योगसाधन पुनः विवेक विरागादि ज्ञान के साधन इत्यादि एकहू नहीं ह्वैसके हैं इति आपना बल ताको भरोसा नहीं है पुनः प्रभु सौं शाके न सुने शाका कही कीर्ति सुयश प्रताप को सो रघुनाथजी के समान दूसरे के शाके भी नहीं सुने तब और किसको भरोसा करौं काहेते प्रभु के समान शाके काहू के नहीं है कि उपल पत्थर तथा भील वनवासी किरात खग गीध मृग वानर रीछ आदि रजनीचर राक्षस इत्यादि काके करतब ते भले भये अर्थात् केवल रघुनाथैजी अहल्या को पाहनतें दिव्य देह बनाये भीलन को शुद्ध प्रेमी बनाये गीध को सबके देखत मुक्ति दीन्हे वानर रीछन को तथा निशाचरन को सखा बनाये परम पद दीन्हे ऐसे अधमउद्धारण पतितपावन करतब रघुनाथैजी में हैं ताते सबको भरोसो छांड़ि केवल श्रीरघुनाथैजी को भरोसा राखे हौं ३ पुनः मोको भलो कर्ता राम नाम सुरतरु कल्पवृक्ष है भाव मनोरथमात्र सब फल देता है सो कृपालु कृपा के प्रसाद ते भयो अर्थात् सुलभ जीवन के उद्धार हेतु कृपा करि रघुनाथजी नाम रूप लीला धामादि चारिहू द्वार खोले हैं इनहीं द्वारा सुगम जीव भगवत्पद को प्राप्त होते हैं तिनमें नाम अधिक सुगम है सोई मोको कल्पवृक्ष सम जो भलो करता है सोऊ कृपालु कृपागुण मन्दिर जो रघुनाथजी तिनकी कृपा के प्रसाद अनुग्रह ते रामनाम मोको कल्पवृक्ष भयो अर्थात् कृपा तौ भूतमात्र को रक्षा करनहारी है तिन में जे नाम रूप लीला धामादि द्वारा प्रभु की शरण होत तिनपर सदा दया करि दुःख हरि सुखी राखत सोई प्रभु की कृपा के भरोसे तुलसीदास शोचरहित सुखी हैं कौन भांति ज्यों माता पिता के राज्य में बालक निशोच रहत भाव वाको विघ्नकर्ता कोऊ नहीं सब रक्षे के करनहारे हैं तथा रामकृपाते मेरे रक्षक सब हैं ४॥

(२२७) भरोसो जाहि दूसरो सो करो।

मोको तौ राम को नाम कल्पतरु कलि कल्याण फरो १
कर्म उपासन ज्ञान वेद मत सो सब भांति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो २
चाटत रह्यौं श्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो ३
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुञ्जरो नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषानानि करि कपिकटक तरो ४
प्रीति प्रतीति जहां जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तौ माय बाप दोउ आखर हौं शिशु अरनि अरो ५
शङ्कर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो रामनामहि ते तुलसिहिं समुझि परो ६

टी०। जाहि दूसरो अवलम्ब होइ सो ताको भरोसो करो अर्थात् जाते कर्म, ज्ञान, भक्ति साधन ह्वैसकै सो ताको भरोसा करौ अरु मोको तौ श्रीरघुनाथजी

को नामै कल्पवृक्ष के समान है जो कलि में कल्याण करनि फरो कलियुग ऐसे कराल काल में अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि चारिहू फल सुगमै प्राप्त करता है ताते अन्य साधन को भरोसा मोको नहीं है १ यद्यपि कर्म यज्ञादि साधन उपासना, श्रवण, कीर्तनादि साधन ज्ञान विवेक विरागादि साधन इति कर्म उपासना ज्ञानादि जीव को भव पार करता है सोऊ नास्तिक अथवा आधुनिक पन्थ नहीं है क्योंकि सबको शिरमौर वेदमत है सो लोकमत साधुमत सब भांति ते खरो अर्थात् निर्विकार शुद्धमत है परन्तु जो कोऊ मोसे कहै कि जो जीवन को भव पारकर्ता शुद्ध वेदन को मत है तो जीवके कल्याण को भरोसा राखि पूजा, पाठ, मन्त्र, जप, तपस्यादि कर्म साधन वा श्रवण, कीर्तनादि उपासना के साधन वा विवेक, विराग, शम, दमादि ज्ञान के साधन इत्यादि क्यों नहीं करते हौ ताको उत्तर ये सब साधन यद्यपि उत्तम कल्याणकर्ता हैं परन्तु मोको कल्याणकर्ता करि नहीं देखाते हैं कौन भांति ज्यों सावन के अन्धहि हरो रंग सूझत अर्थात् सावन में अन्न तृणादि करि सर्वत्र पृथिवी हरित रहती है उसी समय जो आंधर भया ताको अन्य ऋतुन को व्यापार देखि तौ परता नहीं जो देखि अन्ध भया सोई ज्येष्ठादि सब मासन में वाको हरेरै रंग सूझत है तथा महाशोक में रामनाम करिकै परमहित सुख भया सोई सावन की हरेरी सम दृढ़विश्वास भया पुनः अन्य साधन को आश भरोसा उरते जातरहा सोई अन्धेसम दूसरी बात नहीं देखात केवल रामनाम को प्रभावरूप हरैरंग सूझता है ताते अन्य साधन को मैं क्या जानौं २ कैसे शोकसमय में मोको रामनाम सुखदायक भया कि ज्यों श्वान कुत्ता फेंकी जूंठी पतरी चाटता है तहां पेट कबहुँ नहीं भरता त्योंही मैं पूर्व में दुःख, दरिद्रपीड़ित, आशा, क्षुधार्त, अनेक पूजा, पाठ, मन्त्र, जप, तीर्थ, व्रतादि कर्तव्यतारूप जूंठी पतरी सम चाटता रहा तामें मेरा भी पेट कबहूं न भरा अर्थात् यथा लोक में धनीलोग अपनी शक्तिबल ते अनेक व्यञ्जन बनाइ पावते हैं पुनः पतरी फेंकिदेते हैं ताको कुत्ता चाटता है तैसेही अनेक ऋषि, साधु, सुजन, समर्थ शक्तिबल ते अनेक पूजा, पाठ, मन्त्र, जप, तीर्थ, व्रतादि श्रद्धाते श्रमरूप अनेक व्यञ्जन करि वाकी सिद्धिप्राप्ति भोजन करि तृप्त भये सोई माहात्म्य सुनि जूंठी पतरीसम शक्तिबलहीन सोई पूजादि मैं करता हौं इति जूंठी पतरीसम चाटत रहौं कबहूं पेट न भरो काहू सिद्धि की प्राप्ति न भई अर्थात् यथा अम्बरीष शुद्ध समर्थ श्रद्धा ते विधिवत् हरिअर्चन करि सिद्धि पाये तथा रुक्माङ्गद एकादशीव्रत करि नारद स्तवराज पाठ करि मार्कण्डेय जप करि ध्रुव तप करि पृथु यज्ञ करि इत्यादि द्वारा माहात्म्य सुनि विषयी तुच्छ जीव शक्तिहीन पूर्ववत् साधन कीन चहैं तौ कैसे सिद्धि पावैं इसीभांति मेरा पेट न भरा सोंहौं सोई मैं रामनाम सुमिरत सन्ते पेखत नाम देखता हौं कि रामनाम मेरे हेतु सुधारस अमृतवत् जामें स्वाद ऐसा उत्तम भोजन परसि धरो अर्थात् पूर्व साधन करि अर्थ काम चाहता रहौं जामें लोकै सुख स्वाद लोक माने पुष्टता रहै सो भी न मिला अरु नाम के प्रभाव ते धर्म, मोक्ष लाभ देखता हौं तहां जो कहौ कि और साधन हेतु तौ तुम समर्थ नहीं हौ तौ रामनाम का सुमिरण तुमसों कैसे ह्वैसकी तहां नाम का सुमिरण सबको सुलभ

है यथा ॥ चौ० ॥ भाव कुभाव अनख आलसहू । नाम कहत मङ्गल दिशि दसहू ॥ पुनः शुकसंहितायाम् ॥ आकृष्टः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचाण्डाल-मनुष्यलोकसुलभो वश्यं च मुक्तिस्त्रियाः । नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते मन्त्रोयं रसनास्पृशैव फलति श्रीरामनामात्मकः ॥ इत्यादि रामनाम सुमिरण करिबे को सुलभ अरु फल देबे को सब साधन ते अधिक सबल है ३ सब फल देबे को कैसा सबल रामनाम है कि सुमिरत सन्ते धन, धाम, स्त्री, पुत्र, पौत्र, भोजन, पान, गन्ध, नृत्य, गान, भूषण, वसन, वाहन, धरणी इत्यादि ऐश्वर्यसहित लोक में मान बड़ाई नीरुज सुखपूर्वक दीर्घायु इत्यादि स्वार्थ को परिपूर्ण देनहारा है रामनाम इति अर्थार्थी आर्तन के हेतु है पुनः जिज्ञासु तथा ज्ञानिन को सुमिरतसन्ते श्रद्धा, समता, शान्ति, संतोष, धैर्य, विचार, क्षमा, दया, कोमलता, शील, सत्य, धर्म, क्रिया, विवेक, विराग, शम, दमादि, मुमुक्षुता सहित श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन प्रेमापरा इत्यादि परमार्थहू को परिपूर्ण देनहारा है रामनाम इत्यादि वचन मैं सत्यप्रतिज्ञा ते शुद्ध सत्य करि कहत हौं युधिष्ठिर की ऐसी स्वार्थ मिली सत्य नहीं है जैसा महाभारत में कहे कि अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरः अर्थात् अश्वत्थामा नाम हाथी मरा रहै सो शुद्ध सत्य नहीं कहे स्वार्थ हेतु कहे अश्वत्थामा मरा मनुष्य है वा हाथी है इत्यादि स्वार्थ मिलाइ नहीं कहत हौं शुद्ध सत्य कहत हौं पुनः ताकी प्रत्यक्षप्रमाण है सुनियत है पयोधि समुद्र में पषाननि पहारन को रामनाम के प्रभाव ते सेतु करि कपिकटक तरो वानरन की सेना पार उतरि गई अर्थात् रामनाम लिखि देते रहैं ताही प्रभावते पहारन बूड़े तिनपर कपिन की सेना पार उतरी भाव पहार जड़ ते नाम के प्रभावते तरे तिनके आधार चञ्चल पशु वानर तरे तिस रामनाम के अवलम्ब ते मनुष्य चैतन्य क्यों न स्वार्थ परमार्थ पावै ऐसे सबल सुलभ भव पारकर्ता रामनाम को भरोसा राखे हौं ४ जो कोऊ कहै कि कर्म उपासना ज्ञानादि साधन करि अनेकन को भला होत आवत अरु बहुतलोग इनहीं में लगे हैं तिनको तुम क्यों अनादर करते हौ तापर उत्तर जाकी प्रीति प्रतीति जहां है अर्थात् जो जन कर्म ज्ञानादि जौने साधन ते अपने कल्याण का विश्वास किहे प्रीति सहित जौने साधन में लागरहा तहैं ताको काज सरो ताही साधनते वाको काज सरो कल्याण भयो वा मनोरथ सफल भयो अरु मेरे तौ निर्हेतु पालनहारे रामनाम के दोऊ आखर माय बाप हैं अरु मैं शिशु अरनि अरो यथा बालक हठ करि जो वस्तु माता ते मांगत तब माता पिता ते कहिकै तुरतही वह वस्तु मँगवाइ देत तैसेही मैं दोऊ वर्णन सों हठ करि अपना कल्याण करावता हौं दोऊ आखरन को भेद आगे कहब ५ शंकर साखि जो कछु अन्तर में कपट राखि मुखते झूंठ कहौं तौ मेरी जिह्वा जरिकै गिरि परै अर्थात् इस बात को शिवजी जानते हैं जो झूंठ कहौं तौ मोको सजाइ देवैं अरु सांची बात तौ तुलसी को यही समुझि परो है कि आपनो भलो अर्थात् मेरा कल्याण रामनामहीते होइगो अन्यसाधन ते नहीं दोऊ आखर माता पिता सम याते कहे कि रकार परब्रह्मरूप है मकार जीव है रकार की अकार महारानीजी को रूप सोई जीव को सम्बन्ध परब्रह्मते करावन-

हारी हैं यथा रामानुजमन्त्रार्थे ॥ रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधिर्मकारार्थो जीवः सकलविधिकैङ्कर्यनिपुणः। तयोर्मध्याकारो युगलमथ सम्बन्धमनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगमसुसारोयमतुलः ॥ अर्थात् मकार अर्थ शुद्धजीव है तामें आपने जीव को स्थित करि अकार अर्थ जो श्रीजानकीजी तिनकी शरण है तब जानकीजी की कृपा ते सुगम प्रभु की प्राप्ति होइगी सिवाय इस राह और साधन करि प्रभु की प्राप्ति अगम है किसी भांति नहीं हैसक्ती है यही सत्य बात मैं सत्यप्रतिज्ञा करि कहत हौं ताके साखी शंकर हैं काहेते दिव्य वर्षन सौंवर्षतक वेदविधि ते शिवजी राममन्त्र जाप कीन्हे तब प्रभु प्रसन्न है दर्शन दे कहे कि जो हमारी प्राप्ति चाहौ तौ किशोरीजी की आराधना करौ विना उन्हें हम क्षण भरि नहीं थँभि सक्के हैं सो सुनि शिवजी किशोरीजी की स्तुति कीन्हे सो जानकीस्तवराज अगस्त्यसंहिता में प्रसिद्ध है यथा ॥ चकाराराधनं तस्य मन्त्रराजेन भक्तितः। कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेः परम् ॥ दिव्यं वर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना। जजाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थितचेतसा ॥ प्रसन्नोऽभूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः। मन्त्राराध्येन रूपेण भजनीयः सतांप्रभुः ॥ द्रष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम्। आह्लादिनीं परां शक्तिं स्तुयाः सात्वतसंमताम् ॥ तदाराध्यस्तदारामस्तदाधीनस्तया विना। तिष्ठामि न क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशो वशीकरणमात्मनः। पश्यतस्तस्य रूपं स्वमन्तर्धानं दधौ प्रभुः ॥ श्रुत्वा रूपं तदा शम्भुस्तस्याः श्रीहरिचक्रतः। अचिन्तयत्समाधाय मनः कारणमात्मनः ॥ प्रस्फुरत्कृपया तस्य रूपं तस्याः परात्परम्। दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयंगमम् ॥ दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वं रूपं तस्याः परात्परम्। तुष्टाव जानकीं भक्त्या मूर्तियुक्तां प्रभाविनीम् ॥ श्रीशिव उवाच ॥ वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्। हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं सन्मानसालिपरपीतपरागपुञ्जम् ६ ॥

(२२८) नाम राम रावरोई हितु मेरे।

स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहौं टेरे १
जननी जनक तज्यो जन्मि कर्म बिनु विधिहू सृज्यो हौं अवड़ेरे।
मोह से कोउ कोउ कहत रामहिं को सो प्रसंग केहि केरे २
फिर्यो ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे ३
साधत साधु लोक परलोकहु सुनि गुनि यतन घनेरे।
तुलसी को अवलम्ब नाम को एक गांठि कइ फेरे ४

टी०। राम रावरोई नाम हे श्रीरघुनाथजी! आपको नामै मेरे हितू है कैसा हितू है स्वार्थ जो लौकिक सुख ताहू में हितकर्ता परमार्थ जो परलोकसुख ताहू में हितकर्ता इत्यादि मेरे हितकर्ता रामनाम है सोई बात मैं अपने साथिन सों भुजा उठाइ टेरे कहत हौं अर्थात् जे मोसों सनेह राखैं वा जे मेरी बात को विश्वास करैं ते मेरे साथी वा जे मेरे साथी निकाम अभागी आलसी हैं तिनसों

भुजा उठाइ अर्थात् प्रतिज्ञा करि पुकारिकै सत्य वचन कहत हौं जो स्वार्थ परमार्थ दोऊ सुख सुगम चहौ तौ श्रीरामनाम दृढ़ करि गहौ मोरा कल्याण रामनामै ते भया नातरु किसी काम को नहीं रहौं १ कैसा रहौं कि जननी जनक जन्मि कर्म विनु देखि तज्यो अर्थात् माता पिता उत्पन्न करि पालि सयान करि पुनः भाग्यहीन देखि त्यागिदियो घरते निकारि दियो तब लोक सम्बन्ध में कछु अवलम्ब न रहा पुनः जब आपनी भाग्य विचार करि देखेउँ तौ विधिहूहौं अव-ड़ेरे सृज्यो अवड़ेरे कहीं वड़ेरे नहीं अर्थात् हौं कहै मोको विधि सृज्यो ब्रह्मा ने जब रच्यो तब मेरे तन में एकहू रेखा वड़ाई को नहीं लिखे सर्व रेखा निचाइन के लिखे हैं भाव जन्मपत्री में कर्महीन देखि माता पिता त्यागेउ पुनः हस्त पद शीशादि उत्तम भाग्य के रेखा भी नहीं इत्यादि भाग्यहीन पुनः ऐसा आलसी कि धर्म कर्मादि कछु भी साधन नहीं ह्वै सक्है हैं पुनः निकाम ऐसा कि खेती, वनिज, चाकरी आदि कछु व्यापार भी नहीं करिसक्तारहौं ऐसा अभागी आलसी निकाम मैं रहौं सो अज्ञान से कोऊ कोऊ कहत कि रामही को गुलाम है यह लोकवाणी केहिकेरे प्रसंग ते है अर्थात् रामनामही के प्रभावते मोहू ऐसे निकाम को रघुनाथ जी आपनो गुलाम करि जाने हैं ताहीते औरौ लोग कहते हैं २ पुनः विनु नाम अर्थात् पूर्व अवस्था में यावत् रामनाम को अवलम्ब नहीं रहै तावत् ऐसा भाग्य-हीन रहौं कि उदरलगि क्षुधार्त भोजन पेटभरि पाइवे हेतु ग्राम ग्राम ललात फिरयौं अर्थात् आर्त ह्वै मांगते द्वार द्वार घूमैं किहेउँ पेट कवहूं न भरा इति मोहिं हेरे मेरी दुःख दशा देखि दुःखउ दुःखित होत अर्थात् दुःखौ के तरस लागत रहै पुनः भूत पिशाचादि तुच्छ सिद्धाई हेतु बबुर बहेराके वृक्षतर के पिशाची अभिचार को फल तुच्छ सिद्धि चाहता रहौं सो नहीं पायों अरु अब नाम प्रसाद रसालफल हौं लहत अर्थात् जबते रामनाम आराधन कीन्हेउँ ताकी अनुग्रह सदा दयाते रसाल आंवके वृक्षतर जो भगवत्अर्चन होताहै ताको फल भगवत् रूप की प्राप्ति पावताहौं भाव उरमें रामरूपको ध्यान थिर रहत ताते अर्थ धर्म काम मोक्षादि सुलभ हैं अर्थात् बबुर बहेराके वृक्षते रसाल फल पायों भाव पूर्व पिशाचै सिद्धि द्वारा रामभक्ति लाभ भई यह भक्तमाल में प्रसिद्ध है ३ वेद, शास्त्र, पुराण द्वारा सुनि तथा बुद्धि विचारते गुनि मनते समुझि उत्तम साधुजन कर्म योग विवेक विरागादि घनेरे वहुत यत्न करि लोकसिद्धाई महत्त्वादि परलोक में मुक्ति इत्यादि साधते हैं ते अपना जो भावै सो साधन साधै ताको भरोसा राखै परन्तु तुलसीदास को अवलम्ब भरोसा एक रामनाम ही को है साधन चहौ जेतने करौ अवलम्ब एक नामैका है कौन भांति यथा किसी वस्तु के बांधते में रसरी के चहै कई फेरा करै परन्तु गांठि वामें एकही रहती है ताहीते सब फेरा दृढ़ रहते हैं तथा नामके आधार सब साधन दृढ़ हैं ४ ॥

(२२६) प्रिय राम नाम ते जाहि न रामो।

ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिणामो १

सकुचत समुझि नाममहिमा मद लोभ मोह कोह कामो।

राम नाम जप निरत सुजन पर करत छांह घोर वामो २
नामप्रभाव सही जो कहै कोउ शिला सरोरुह जामो ।
जो सुनि सुमिरि भाग भाजन भई सुकृतशील भीलभामो ३
वाल्मीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो ।
उलटे पलटे नाम महातम गुञ्जनि जितो ललामो ४
राम ते अधिक नाम करतब जेहि किये नगर गत गामो ।
भये बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से वामो ५

टी० । रामनाम ते अधिक प्रिय जाहि रामौ नहीं भाव औरे साधनकी कौन गनती है रामरूप ते अधिक जाको रामनाम प्यारा है ताको कठिन कलिकालहुँ में भला है अर्थात् अन्य सतयुगादिकन की कौन कहै जिनमें धर्मके प्रचार ते ध्यान यज्ञ पूजादिक नेम सहित निवहतेरहैं अब अधर्म प्रचारते धर्म कर्मादि एकहू नेम नहीं निवहत ऐसे कठिन कलियुगहू में जाको नाम प्रिय है ताको भलो होता है कौन भांति आदि जो वालअवस्थैते रामनाम स्मरण करताहै ताके कामादि विकार नाश करि विवेक विरागादि सहित परिपूर्ण भक्ति पाइ जीवन्मुक्त ह्वै औरनको कल्याण करता है पुनः जे मध्य अवस्था ते रामनाम स्मरण करत तिनको विकार वाधा नहीं करिसकत श्रवण कीर्तनादि प्रेम सहित करते आपु कल्याणरूप ह्वैजाते हैं पुनः परिणाम अन्तकालहू में जो नाम स्मरण करै तबहूं जीवको कल्याण ह्वैजात इति आदि मध्य परिणामहू में कल्याण होताहै १ अब पूर्व कही वातको प्रसिद्ध करत काहेते कलियुगौ में रामनामते भलो होत कि जब जन रामनाम का दृढ़ विश्वास राखि स्मरण करनेलगा तौ नाम की महिमा यथा अग्निपुराणे ॥ न भयं यमदूतानां न भयं रौरवादिकम् । न भयं प्रेतराजस्य श्रीमन्नामानुकीर्तनात् ॥ रामरक्षायाम् ॥ पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मकारिणः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥ इत्यादि रामनाम को प्रताप समुझि काम क्रोध लोभ मोह मदादि कलि प्रेरित विघ्नकर्ता ते सकुचत नाम जापक जनके निकट नहीं जाते हैं यथा लोक में सबल महाराज को नाम लेत संते चोर ठग नहीं लग आवते हैं पुनः रामनाम जप निरत रामनामके जाप करिवेमें जे प्रीतिपूर्वक लगे हैं ऐसे सुजनपर घोर भयंकर संसाररूप घाम सोऊ छांह करत अर्थात् लोकव्यवहारौ सुखदायक होत यथा ध्रुव अम्वरीषादि लोकव्यवहारही में परमपद को प्राप्त रहे २ कैसहू अनहोनी होइ सोऊ नाम के प्रतापते ह्वै जानो कोऊ कहै यथा पत्थर की शिलापर सरोरुह कमल जामा सोऊ सही मानी अर्थात् कमल जलै में जामता है पत्थर पर कबहूं नहीं जामिसक्ता है परन्तु जो कोऊ कहै कि रामनाम के प्रताप ते शिलापर कमल जामा तौ सांची मानिलेई यामें क्या आश्चर्य है काहेते भीलभामा भीलकी स्त्री शवरी जो जातिहीन क्रियामलीन पापपीन धर्म कर्मरहित इत्यादि सब भांति ते अधम तामें कछु भी उत्तमता नहीं ह्वैसक्ती रहै सोऊ मतंग ऋषिके मुखते नाम को प्रताप सुनि रामनामको सुमिरिकै नाम के प्रभावते सुकृत जो

पुण्याय पुनः शील अर्थात् प्रियवाणी ते सबको सम्मान आदर करना इति कोमल स्वभाव पुनः भाग लौकिक पारलौकिकादि सबभांति को सुख इत्यादि सब वस्तु के परिपूर्ण भरी भाजन पात्र भई तहां शील स्वभाव तौ रामायण में वार्ताद्वारा प्रसिद्ध है अरु पुण्याय ऐसी कि जाके घर रघुनाथजी आपुही चलिकै गये तथा जाके मज्जन कीन्हेते गौतमी को जल पावन भया अरु भाग्य ऐसी कि तुरतही परमपद पाइसि ३ पुनः वाल्मीकि व्याध हिंसारत रहैं सप्तऋषिन के सत्संग ते उलटा नाम जपि महामुनि रामयश भविष्यवक्ता भये पुनः अजामिल जाति विप्र है परन्तु महापापी रहा ताके पुत्र को नारायण नाम रहा ताही निमित्त नारायण नाम लै मरा इसकारण यमदूतन ते छीनि भगवान् के पार्षद् वैकुण्ठ को लेगये सो कहत कि वाल्मीकि तथा अजामिल के कछु साधनको सामां नहीं हुतो यथा पूजा,जप,तप आदि कर्म साधन के सामां विवेक, विराग, शम, दमादि ज्ञान के सामां श्रवण, कीर्त्तनादि भक्ति के सामां इत्यादि एकहू नहीं रहै केवल पातकी खल दोऊ रहे ते किसी साधनते नहीं शुद्ध हैसक्ते रहैं सो वाल्मीकि उलटे नाम को कहि पावन भये तथा अजामिल पलटे पुत्रके हेतु नाम कहि वैकुण्ठवास पावा ऐसा नाम को माहात्म्य है कि गुंजनि ललाम को जीत्यो भाव घुंघुचिन आपनी प्रकाशकरि हीरा आदि रत्नन को मन्द करिदियो अर्थात् जे बाल अवस्थैते शुद्ध जीव जप, तप, योग, विराग, विवेक, श्रवण, कीर्त्तनादि साधन में सदा लगेरहते हैं ते रत्नसम शुद्ध अमल प्रकाशमान हैं यथा वशिष्ठ, अगस्त्य, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, पराशरादि ते मुनि कहावते हैं अरु हिंसारत व्याध ते नाम के प्रभावते ऐसे भये कि सौ करोरि श्लोक रामचरित भविष्य भाषे इति अधिक प्रकाशते वाल्मीकि सबसों अधिक महामुनि कहावते हैं तथा आत्मदर्शी मुनि मुक्ति पाइवे में संदेह राखे हैं अरु अजामिल महापापी सो पुत्रहेतु नाम लै परमपद को चला गया इति घुंघुचिन रत्नन को जीता ४ शबरी व्याध अजामिलादि अधमन को पावनकर्ता इत्यादि नाम को करतब रामते अधिक है जेहि गामो ग्रामीन अर्थात् निर्बुद्धि गँवारनको नगरगत किये साकेतनगरके अन्तर बसाये यथा यवनादि हराम कहि रामधाम का वास पाया इति नामको करतब रामते अधिक है तथा हनुमानजी को वचन है॥ राम त्वत्तोधिकं नाम इति मे निश्चला मतिः। त्वया तु तारिताऽयोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्॥ पुनः प्रत्यक्षप्रमाण कहत और तो परोक्ष में भये प्रत्यक्ष देखिये तुलसिदास से वामो जो जपि वजाइकै दाहिनो भयो अर्थात् मैं कुपथी विषयासक्त विमुख रहौं सोऊ नामकी जाप करि डंका बजाइ रघुनाथजी के सम्मुख भयो ऐसे अधम अभागी विमुखन को रामनाम शुद्ध सुभागी ईश्वर के सम्मुख करिदेनंहारा है ५॥

(२३०) गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।

जानकीजीवन जन्म जन्म जग ज्यायो तिहारेहि कौरको हौं १

तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं।

तुमसों कपट करि कल्पकल्प कृमि ह्वैहौं नरकघोर को हौं २

कहाभयो जो मनमलीन कलिकालहि कियो भुरुट भौंर को हौं।
तुलसिदास शीतल नित यहि बल बड़े ठिकाने ठौर को हौं २

टी०। हे जानकीजीवन, श्रीरघुनाथजी! जग में जन्म जन्मते तिहारेही कौरन को ज्यायो हौं अर्थात् अनेकन जन्मनते आपहीकी कृपारूप कौरन को पाला हौं ताते निश्चयकरि आपहीको गुलाम हौं अरु अब जो कहौं किसी और स्वामीको गुलाम हौं तौ मेरी जीभ सरि गलिके गिरिजाइगी ताते सबको भरोसा त्यागि केवल आपहीकी कृपाको भरोसा है १ काहेते आपही को भरोसा है कि हे श्रीरघुनाथजी! रावरे जोरको सुहृद् भाव आपके समता योग्य सौहार्द गुणको भरा सुहृद् मित्र ताको निर्वाह करनेवाला तीनिहुलोक तीनिहूकाल में नहीं देखता हौं अर्थात् सुर नर नागादिकन में आप सरीखे सुहृद् न भया है अरु न है तथा आगे होनहार भी नहीं देखि परताहै सौहार्द गुण को लक्षण यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वर्णाश्रम तथा योग ज्ञानादि साधन इत्यादि उत्तम गुणन की अपेक्षा विना कैसहू नीच ऊंच कोऊ सम्मुख होइ शरणमात्रसों प्रसन्न ह्वैके विशेष आपना करिलेना यथा भगवद्गुणदर्पणे॥ द्विजत्वाद्यनपेक्षेण येन सद्यो हरिः पुरा। गुणेन सगुणस्तस्य सौहार्दपरमं हरेः॥ स्वप्रीतिः स्वप्रयत्नश्च कारणं करुणाम्बुधेः। हेत्वन्तरानपेक्षं हि सौहार्दं शाश्वतं हरेः॥ यथा भागवते प्रह्लादवाक्यम्॥ नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वा सुरात्मजाः। प्राणनाथमुकुन्दस्य न यत्नं न बहुश्रुता॥ न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च। प्रीयतेमलया भक्त्या हरिरन्यद्विड-म्बनम्॥ तथा हनुमद्वाक्यम्॥ सुरोऽसुरो वाप्यथवानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृ-तज्ञमीश्वरम्। भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कौशलान्दिवम्॥ पुनः॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाग् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः। तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥ यथा गीतावल्याम्॥ कहँ हम पशु शाखामृग चंचल बात कहौं मैं विद्यमानकी। कहँ हरि शिव अज पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरत वह लगनि कानकी॥ ऐसे सुहृद् प्रणतपाल हे श्रीरघुनाथजी! आपु सरीखे स्वामी पाइ जो निश्छल न रहौं तौ तुमसों कपट करि क्या दशा होइगी कि हौं कहे मैं घोर महाभयंकर नरक को कृमि कीट ह्वैके कल्प कल्पान्तन तक नरकही परा दुःख पावा करौंगो इस कृतघ्नता भयते सब सत्यही बात कहताहौं केवल आपकी कृपाके भरोसे शरणागत में पराहौं २ भुरुट कीट श्यामरंग छोटी माछी भरि होता है सो जल के ऊपर थल की नाईं धावा करता है जो कबहूं वेगवन्त जलके भ्रमर में परिगया तब वह तौ ऊपरही चला करता है परन्तु जल के वेग ते चक्कर खाते वहा चलाजाता देखाता है परन्तु जलमें बूड़ने की भय ताप वाके नहीं व्यापती है काहेते परमेश्वर ने जो उसको गति दिया है ताके बलते वाको मन सदा शीतलै रहता है तथा नामके प्रतापते मैं भी भवसागर के ऊपर चलनेवाला हौं अब जो कलिकाल ने मेरा मन मलीन करि भौंरको भुरुट करि दिया तामें कहा भयो क्या मेरी हानि है काहेते बड़े ठिकाने ठौरको हौं जिनको सबते बड़ा दरबार है तौने ठौरको हौं अर्थात् परात्पर परब्रह्म श्रीरघुनाथजीको गुलाम हौं

तिनके नाम के प्रतापते भवसागर में नहीं बूड़ितहौं भाव शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि वेगवन्त धार है काम, क्रोध, लोभादि भ्रमर है त्यहि वेगते मेरा मन भ्रमित वहा सो जाता है परन्तु नामके प्रतापते भव की ताप मेरे नहीं व्यापती है यहि बलते तुलसीदास नित्यही शीतल रहत है ३॥

(२३१) अकारण को हितू और को है।

विरद गरीबनिवाज कौन को भौंह जासु जन जोहै १
छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ जो विरंचि विरचो है।
कोल कुटिल कपि भालु पालिवो कौन कृपालुहि सोहै २
काको नाम अनख आलस कहे अघ अवगुणनि विछोहै।
को तुलसीसे कुसेवक संग्रह्यो शठ सब दिन साईं द्रोहै ३

टी०। अकारण को हितू बेप्रयोजनै हितकर्ता और को है अर्थात् हे श्रीरघुनाथ जी! विनु स्वार्थ हितकर्ता एक आपही हौ दूसरा कोऊ नहीं है काहेते जानियत कि गरीबनिवाज विरद और कौन को है जासु भौंह जन जोहै भाव गरीबनिवाजी को वाना और कौन धारण किहेहै जाकी भौंहैं में निहारौं अर्थात् गरीबनिवाज वाना आपही को है इसहेतु मैं गरीब आपही की भौंहैं निहारता हौं कि कब कृपा-कटाक्ष होइगी सिवाय आपके लग अन्ते गरीबको ठेकाना कहीं नहीं लागैगो १ काहेतें अन्ते कहीं गरीबको ठेकाना नहीं है कि गरीबकी बात पूछने लायक सबल समर्थ सुलभ उदार और कौन है काहेते सुर नर नागादि जो विरंचि ब्रह्मा ने रचो यावत् सृष्टि उतपन्न कीन्हे तिनमें जो कोऊ छोटा बड़ाहै सो सब अपना स्वार्थ चाहत अर्थात् राजा लोग सेवा के अनुकूल सेवकन को धन देत गुण देखि याचकको दान देत तथा देवता इन्द्रादिकी पूजा पाठ मन्त्र जप यज्ञादि विधिवत् देखि ताके अनुकूल फल देत इति स्वार्थ के साथी हैं अरु कुटिल स्वभाववाले कोल भील तथा कपि वानर चञ्चल पशु भालु रीछ तामसी पशु इत्यादिकन को पालियो सेवक बनाइ उत्तम पद देवो सिवाय एक रघुनाथजी के दूसरा कौन ऐसा कृपालु है जामें ऐसी कृपालुता सोहती है भाव दूसरा कोई नहीं है २ पुनः काको ऐसा नाम है जो अनख अर्थात् क्रोध वा ईर्षाते कहे पुनः आलसते कहे अघ जो पाप अव-गुण काम क्रोध लोभ मदादि तिनको विछोहै छुड़ाइ देवै भाव ऐसा प्रभाव राम नामही में है कि अनख आलस भाव कुभावादि किसी भांति कहे तो पाप अवगुण नाश करि जीवको शुद्ध पावन करिदेत पुनः जो सब दिन स्वामी को द्रोहै करत ऐसे शठ महाअघ तुलसीदास ऐसे कुसेवक को संग्रह्यो बटोरिकै संग राखे ऐसा और को है अर्थात् पतितपावन अधमोद्धार दीनबन्धु एक श्रीरघुनाथजी हैं जे मोहिं ऐसे कुटिल कुसेवक को शरण में राखे ३॥

(२३२) और मोहिं को है काहि कहिहौं।

रंकराज ज्यों मन को मनोरथ जेहि सुनाय सुख लहिहौं १
यमयातना योनि संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं।

मोको अगम सुगम तुमको प्रभु तउ फल चारि न चहिहौं २
खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं।
यहि नाते नरकहु सचुपैहौं या बिनु परमपदहु दुख दहिहौं ३
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानहीं गहिहौं।
दीजै वचन कि हृदय आनिये तुलसी को पन निर्वहिहौं ४

टी०। रंक कंगालको ज्यों राज्य पाइवेको मनोरथ होइ त्योंही धर्म कर्म ज्ञान उपासनादि साधनहीन सब भांति ते नीच हौं अरु मनको मनोरथ है कि प्रभुकी सेवकाई पावौं उत्तम रामदासन में मेरी गनती होइ सो काहि कहिहौं काहेते मोहिं ऐसे अधम को पूछनेवाला शीलसिन्धु सुलभ उदार स्वामी और को है जेहिको आपना मनोरथ सुनाय सुख लहिहौं मनभावत सुख पइहौं अर्थात् हे श्रीरघुनाथ जी! मोहिं ऐसे कुटिल निकाम दीननको शरण राखने योग्य सबल समर्थ सुलभ उदार एक आपही हौ इस हेतु आपहीते प्रार्थना करता हौं १ मैं कैसाहौं कि यम-यातना यमलोक में नरकवासादि दण्ड तथा गर्भवास जन्म जरा रुज वियोग हानि दरिद्रता मरणादि दुःसह जो सहि न जाइँ ऐसे सब संकट अनेक योनिन में जन्मि पूर्व सहे अरु पुनः आगे सहिहौं अर्थात् इस जन्म में न बना तौ न मालूम कौन योनिन में कैसा दुःख पावौं इस बातको मोको संदेह नहींहै पुनः अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादिको सबै प्यास राखे हैं ते यद्यपि मोको अगमहैं मेरी सामर्थ्यते नहीं प्राप्त ह्वै सक्ते हैं परन्तु हे प्रभु! तुमको देनेमें तौ सुगम हैं तृण समान देसक्ते हौ सोऊ जो देउ तउ चारि फल अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि नहीं चाहता हौं अर्थात् चारिहू फल नहीं मांगता हौं २ प्रश्न जो यमसांसति पुनः योनिनमें दुःसह दुःख ताके सहिबे में खुशी पुनः अर्थ, धर्म, काम, मोक्षहू नहीं चाहतेहौ तौ फिरि क्या चाहते हौ तापर कहत हे श्रीरघुनाथजी! आपके खेलिबे को खग मृग तरु होउँ अर्थात् जो पक्षीयोनिमें जन्म पावौं तौ जो आपके खेलनेहेतु पक्षी हैं यथा शुक, सारिका, मोर, चकोर, कोकिल, पारावत, तीतर, बुलबुल, बटेर आदि जो आपके पालेहैं तिन पक्षिनमें मेरा जन्म होइ पुनः मृग अर्थात् जो पशु योनिनमें जन्म पावौं तौ आपके पाले हुये गज, बाजि, ऊंट, वृषभ, एण, मेख, अज, श्वान आदि होउँ पुनः तरु वृक्षन में जन्म पावौं तौ आपकी बाग में नींबू अनार आदि वा गुल्म लता आदि होउँ अरु जो मनुष्यतनु पावौं तौ रामरावरो चेरो ह्वै हौं रहिहौं हे श्रीरघुनाथ जी! यावत् नरतनु में रहौं तावत् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यतादि आपकी किंकरता करि गुलाम ह्वै रहिहौं यहि नाते रामगुलाम कहाय जो नरकहू में रहिहौं तहौं सचु नाम आनन्द पैहौं अर्थात् आपने कर्माधीन चहौ जौनी योनि को जाऊँ चहौ नरक को जाउँ सो दुःख मोको नेकहू नहीं है जो आपुको किंकर बनारहौं तौ सर्वत्र मोको आनन्द है अरु या बिनु आपकी गुलामी बिना परम पदहु दुख दहिहौं अर्थात् आपकी सेवकाई रहित मुक्तिपदौ मोको दुःख-दायक देखात भाव पूर्व मुक्त पदते तौ प्रकृतिवश आत्मरूप भुलाइ जीव ह्वै दुःख को पात्र भया तथा फिरि न क्या जीवत्व धारण करि लेइगो अरु भक्त को नाश

नहीं होताहै यथा गीतायाम्॥ अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो यतः॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ३ हे श्रीरघुनाथजी! दास जो मैं ताके जीव में इतनी लालसा है सो कहत हौं कृपाकरि सुनिये आपके पांयन की पनहीं गहिहौं भाव जब राजदरबार में बैठौगे तब पनहीं मैं लिहे रहिहौं अर्थात् चरणबरदार कीजिये यही वचन दीजिये मुख ते मकट कहि दीजिये वा हृदय आनिये मनैते माने रहिये इति तुलसीदास को पन निर्बहिहौ पूर्ण करौगे यह विश्वास राखे हौं ४॥

(२३१) दीनबन्धु दूसरो कहँ पावौं।

को तुम बिनु पर पीर पाइ है केहि दीनता सुनावौं १
प्रभु अकृपालु कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहि डुलावौं।
इहै समुझि सुनि रहौं मौनही कहि भ्रम कहा गँवावौं २
गोपद बुड़िबे योग करम करौं बातनि जलधि थहावौं।
अति लालची काम किङ्कर मन मुख रावरो कहावौं ३
तुलसी प्रभु जिय की जानत सब अपनो कछुक जनावौं।
सो कीजै जेहि भांति छांड़ि छल द्वार परो गुण गावौं४

टी०। पौरुषहीन दीन जनन के बन्धु समान हितकर्ता हे श्रीरघुनाथजी! आप समान दूसरो दीनबन्धु कहां पावौं तुम बिनु परपीर को पाइ है आप सिवाय पराई पीर और कौन जानिसक्ता है तौ आपनी दीनता मैं केहिते सुनावौं और कौन मेरा दुःख हरैगो १ काहेते कोऊ दुःख हरनेवाला नाहीं है कि जे प्रभु अर्थात् समर्थ हैं ते अकृपालु हैं उनमें कृपा गुण नहीं है अर्थात् भूतमात्र रक्षा करिबे पर दृष्टि नहीं राखते हैं ते कैसे दीन को दुःख हरैंगे पुनः जे कृपालु हैं भूतमात्र पालने पर दृष्टि राखते हैं ते अलायक अर्थात् समर्थ नहीं हैं तौ बिना सामर्थ्य कैसे पर दुःख हरिसकैं इत्यादि जहां जौने लोकन में जहां जौने सुर नर नागादिकन में चितहि डोलावौं चित्त सों चिन्तन करि देखता हौं तौ जे प्रभु हैं ते कृपाहीन अरु जिनमें कृपा है ते प्रभुताहीन तौ कौन सों याचना करै जो प्रयोजन होनहार नहीं तौ आपना दुःख कहिकै कहा भ्रम गँवावौं भाव अपनी मर्यादा वृथा क्यों खोइ देउँ इहै बात सुनि समुझि मौन ही रहौं किसीसों कछु नहीं कहता हौं २ अरु मैं कर्म तौ ऐसे करता हौं कि गौ के खुरमात्र जल में बूड़ि मरौं अरु बातन ते जलधि जो अगाधसमुद्र ताको थहावता हौं अर्थात् ज्ञान सहित मनुष्यतनु पाये पर भवसागर याको गोपद सम सुगम होता है पार जाना अरु जब चैतन्य नरतनु पाइ यही कामवश युवतिन में आसक्त भया क्रोधवश परहानि परदुःख देने के उपाय में लगा लोभवश चोरी, ठगी, छलवार्ता करि परधन हरनेलगा तब यही गोपद में बूड़ि जाता है स्वाभाविकही जीव नाश होता है इति काम, क्रोध, लोभादि व्यापार में लगा हौं अरु मुख ते विवेक, विराग, ज्ञान, भक्ति की वार्ता करि भव-सागर को तुच्छ बनावता हौं कौन भांति अति लालची लोभवश परधन हरने के

अनेक व्यापार करता हौं तथा मन काम को किंकर गुलाम बना युवती सेवन के व्यापार में लगा हौं अरु मुख रावरो कहावों मुखते सुधर्म विराग ज्ञान सहित नवधा प्रेमापरादि भक्तिवार्ता कहि हे रघुनाथजी! आपको उत्तम किंकर बना हौं इति आपने आचरण ते तौ भवसागरै को पात्र हौं पुनः समर्थ कोऊ दूसरा कृपालु नहीं जो शरण में राखि अभय करै ताते अब मेरे दूसरा अवलम्ब नहीं है केवल आपही को भरोसा है ३ हे प्रभु, श्रीरघुनाथजी! आप तौ अन्तर बाहर की तीनिहूँ काल की बात जानते हौ ताते जन जो मैं ताहू के जिय की यावत् भली बुरी बात है सो तौ सबै आप जानते हौ परन्तु अपनो कछु जनाऔं अर्थात् तुलसी-दास कछु आपने जीव की चाह प्रकट करि आपसों जनावत है सो सुनि कृपा करि दीजिये क्या कृपा करि दीजिये हे कृपासिन्धु! जेहि भांति छल छांड़ि द्वारपर परो गुण गावों सोई कीजिये अर्थात् कृपा करि काम, क्रोध, लोभादि को रोंकि इन्द्रिय विषयते फेरि मन आदि स्थिर करि तामें आपना सनेह भरि दीजिये जामें झूंठे लोक व्यवहार के व्यापार त्यागि सांचा जो आपको सनेह ताके व्यापार में लागौं आपके द्वारपर परा रहौं शुद्धहृदय ते आपके गुणानुवाद गावा करौं ४॥

(२३४)मनोरथ मन को एकै भांति।

> चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाति १
> कर्मभूमि कलि जन्म कुसंगति मति विमोह मद माति।
> करत कुयोग कोटि क्यों पैयत परमारथपद शांति २
> सेइ साधु गुरु सुनि पुराण श्रुति बूझेउ राग बाजी तांति।
> तुलसी प्रभु स्वभाव सुरतरु सो ज्यों दर्पण मुख कांति ३

टी०। यथा अन्न की तासीर एकै भांति है केवल देह को पुष्ट करता परन्तु स्वादु हेतु खटाई तरकारी तेल मसाला आदि अनुपान मिलेते अनेक विकार पैदा करता है तेहिते बहुत रुज होते हैं देह नाश ह्वैजाती है ताही भांति शुद्ध जीव के मन को मनोरथ तौ एकही भांति है कौन भांति है कि जो पद मननशील शुद्ध मुनिन के मन को पहुँचिवो अगम है ऐसी सुकृत को फल अर्थात् परम पद मनसा चाहत तेहि अनुकूल आचरण तौ करता नहीं अरु अघ जो पाप तिनको करत में अघात नहीं भाव कामवश परस्त्रीगमन क्रोधवश परहानि लोभवश परधन हरण इत्यादि सदा प्रतिदिन अधिकै करत जात कबहूं तृप्त नहीं होत १ काहेते नहीं तृप्त होत कि एक तौ कर्मभूमि में निवास अर्थात् यथा सुखेत में जौन वस्तु बोवो सोई अधिक उपजै तथा गङ्गा यमुना को बीच अन्तर्वेद उत्तम भूमि है इहां जो कर्म करै सोई अधिक उपजै पुनः कराल कलियुग में जन्म जामें पापैकर्म होते हैं ताहूपर कुसंगति कुटिलन को संग पुनः मति जो बुद्धि सो विशेष मोह देहा-भिमान तथा मद जाति विद्या धन महत्त्वादि पर हर्ष बढ़ावना इत्यादि में माती ताते कुयोग अर्थात् इन्द्रियद्वारा मन चञ्चलता के कर्म यथा छल दम्भ परधन-हरण परस्त्री में प्रीति परहानि इत्यादि करोरिन कुयोग कर्म करत भूमि के प्रभाव

ते अधिक बढ़ते हैं तब परमार्थ पद प्राप्ति योग्य मन की शान्ति कैसे पाइये भाव विषय वश कुकर्म करत सन्ते प्रतिदिन मन अधिक चञ्चल होत जात तब परलोक सुख साधन में कैसे लागि सक्ता है २ साधु जे सत्य करि परलोक पथ पर आरूढ़ हैं तथा गुरु तिनकी सेवा करि तिनके मुख ते वेद पुराण सुनि सिद्धान्त बात जानि लिये कैसे जानि लिये यथा उपाख्यान लोक में प्रसिद्ध हैं यथा तांति बाजी राग बूझा अर्थात् नृत्य गान समय सारंगी की तांति बाजी कि गायक जन राग बूझि लेते हैं तैसेही साधु गुरु के मुख ते वेद पुराण सुनि सिद्धान्त जानि लिहेउ कि तुलसी के प्रभु श्रीरघुनाथजी को स्वभाव सुरतरु कल्पवृक्ष के समान है छाया शरण में गये सब मनोरथ देते हैं परन्तु जीवन में अनेक भाव हैं इसहेतु कैसे देखाते हैं ज्यों दर्पण मुखकान्ति अर्थात् जैसी मुख की शोभा होती है तैसिही दर्पण में देखि परती है तथा जौने भाव ते जीव ईश्वर के सम्मुख होत तैसेही वाको ईश्वर प्राप्त होत अरु जे सम्मुखतामें जितनी कसरि राखत सोई ईश्वरो में देखात अरु जे सम्मुखै नहीं हैं तिनको कछु भी नहीं देखात ताते सब भांति शुद्ध है परिपूर्ण प्रीतिभाव ते ईश्वर के सम्मुख होना चाहिये तबै प्रीतिपूर्वक ईश्वर वाको प्राप्त रहता है ताते जो कछु हानि है सो जीवैकी दिशिते है ईश्वर की दिशिते नहीं कछु हानि है ३ ॥

(२३५)जन्म गयो बादिहि वर बीति ।

परमारथ पाले न पर्यो कछु अनुदिन अधिक अनीति १

खेलत खात लड़कपन गो चलि यौवन युवतिन्ह लियो जीति ।

रोग वियोग शोक श्रम संकुल बड़ी वय वृथाहि अतीति २

राग रोष ईर्षा विमोह वश रुची न साधु समीति ।

कहे न सुने गुणगण रघुपति के भइ न रामपद प्रीति ३

हृदय दहत पछिताय अनल अब सुनत दुसह भव भीति ।

तुलसी प्रभु ते होइ सो कीजिय समुझि विरद की रीति ४

टी० । मन की विमुखता देखि पश्चात्ताप करते हैं वर नाम श्रेष्ठ जन्म अर्थात् सुथल में विद्यापात्र ब्राह्मण इति उत्तम ब्राह्मण मनुष्यतनु पाइ सो जन्म बादिही वृथा ही बीति गयो जीव कल्याण का उपाय कछु भी न कियो कौन भांति कि परमार्थ कछु भी पाले न पर्यो अर्थात् शुद्ध धर्म निर्वासनिक हरिपूजा, पाठ, मन्त्रजप, सन्तन की सेवा, हरितीर्थगमन अथवा विवेक, विराग, मुमुक्षुता, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान अथवा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन , वन्दन, दास्यतादि इत्यादि एकहू स्वभाव में न परेउ पुनः अनुदिन दिन प्रति अधिक अधिक अनीति होतजात अर्थात् हिंसा, चोरी, ठगी, परस्त्रीगमन, परहानि, परअपवाद, झूंठीवार्ता इत्यादि अनीति बांटे परी सोई अधिकात जात १ कैसे बादिही जन्म गयो खेलत अर्थात् अनीति अधर्ममय बालक्रीड़ा यथा हिंसा, परहानि करना, गुरुजनन सों ढिठाई, छलवार्ता, परवस्तु चोराइलेना

वृथा कसमखाना इत्यादि पुनः खात अर्थात् स्वादुहेतु भक्ष्याभक्ष्य पावन अपावन उचित अनुचित न विचारना जो कछु नीक लागै खाना इत्यादि खेलत खात लड़कपन चलिगो वाल, पौगण्ड, किशोर अवस्था वृथा बीतिगई तवतों यही न जाने कि ईश्वर क्या वस्तु है पुनः यौवन युवा अवस्था को मद विद्या पढ़े ताको मद पुनः काम प्रचण्ड परा सो मद ताते अन्ध भये ताही समय विवाह भया युवा अवस्था की स्त्री मिली ताके संग दायज अर्थ मिला पाणिग्रहीताको ग्रहणधर्मौ है काम तौ प्रसिद्धै है प्रथममिलन मानो मुक्ति है ताके ऐसे आधीन भये कि ईश्वर की कौन कहै जे लोक में प्रसिद्ध पालनेवाले माता पिता बन्धुआदि तिनते विमुख भये पुनः आपनिहू स्त्री सों विमुख भये कामके वेगते नई नई युवती परस्त्री ढूंढ़ने लगे तब लोक लाजौ छांड़ि दिये धर्म कर्मते विशेष विमुख भये रातिउ दिन उनहीं की प्राप्ति के व्यापार में लगे अनेकन प्रबन्ध बांधते बीतनारहा इत्यादि यौवन अवस्था युवतिन जीति वरवस छीनिलियो तिनहीं कर्मनके पाप दोषनते ज्वर, अतीसार, शूल, वायु, श्वास, कास, ववासीर, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेहादि अनेकन रोग पुनः स्त्री, पुत्र, बन्धु, पौत्र, मित्रादि प्रिय जननको वियोग भयो तथा शत्रुसंकट, राजदण्ड, दरिद्रता, हितहानि इत्यादि शोक दुःख तथा अनेक भांति का परिश्रम इत्यादि संकुल नाम परिपूर्ण रहेते बड़ी वय मध्य अवस्था सों न लौकिकसुख में रहे अर्थात् स्त्री भोजन वसन वाहनादिकहू न रहा पुनः श्रवण, कीर्तन, भजन, ध्यानादि परलोकहू के साधन में न रहे ताते मध्य की बड़ी उत्तम मति वर अवस्था सो वृथाहीं अतीति नाम बीतिगई २ राग अर्थात् किसीको हित मानि प्रीति करना पुनः रोष अर्थात् किसीको अनहित मानि क्रोध करना ईर्षा मनसे बुरा माने रहना पुनः विमोह अर्थात् आत्मरूप विसारि विशेष देहाभिमान के वशते रुची न साधुसमीति साधुनकी सभा में बैठने में रुचि न भई विषयिन की समाज में विशेष रुचि रही ताते रघुपति के गुणगण न कहे न सुने अर्थात् कृपा दया करुणा क्षमा शील सुलभ उदारतादि समूह गुणन की भरी रामायणादि जो श्रीरघुनाथजी की कथा को न श्रवण कीन्हे न कीर्तन कीन्हे ताते राम पद प्रीति न भई अर्थात् इन्द्रिय मनआदि की वृत्ति एकत्र है रामसनेह में कबहूं न परिपूर्ण रही कामवश ते युवतिन में प्रीति रही लोभवश धन में प्रीति रही इस आचरण ते जन्म वादिही बीतिगयो कछु बनि न आयो ३ इधर तौ कछु बनि न आयो वृथाही जन्म बीति जातभयो मरणकाल निकट आयो जानि अरु दुःसह जो सहि न जाइ ऐसी भवसागर की भीति भय सुनत यथा गर्भवास जन्म रुज हानि वियोग दरिद्रता शूल संकटादि तीनिउँ तापैं जरा मरण यमपुर की घोर सांसति इत्यादि दुःसह भवसागर को डर सुनतसन्ते पछिताय अनल हृदय दहत अर्थात् पश्चात्तापरूप अग्नि में हृदय अन्तःकरण जराजात भाव पूर्व अवस्था में यावत् सबल शरीर रहा तावत् परलोक सुख के साधन कछु न किये अब कछु बात है नहीं सक्ती है तौ न मालूम कौन दशा होवै सो गोसाईंजी कहत कि मोते कछु बनो नहीं दीन है आपुकी शरण हौं हे प्रभु, श्रीरघुनाथजी! विरद दीनदयालुता को जो आपुको बाना है ताकी रीति ते जो कछु हैसकै सो कीजिये ४ ॥

(२३६) ऐसेहि जन्म समूह सिराने।
प्राणनाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरण बिराने १
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल साने।
सूखत वदन प्रशंसत तिन्ह कहँ हरि ते अधिक करि माने २
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पायँ पिराने।
सदा मलीन पन्थ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने ३
यह दीनता दूरि करिबे को अमित यतन उर आने।
तुलसी चित चिन्ता न मिटै बिनु चिन्तामणि पहिंचाने ४

टी०। ऐश्वर्यरूप ते प्राणनको पालनहारे भाव कृपागुण ते भूतमात्र की रक्षा करते हैं इति प्राणनाथ पुनः रघुनाथ अर्थात् सुलभ जीवन को उद्धार करनेहेतु रघुवंश में उत्तम उदाररूप ते अवतीर्ण भये ऐसे प्राणनाथ श्रीरघुनाथजी अनेक जन्म के तेरे स्वामी हैं तिन आपने स्वामी को तजि रघुनाथजी सों विमुख ह्वै बिराने राजा धनवानन के चरण सेवत द्वार द्वार याचना करत ऐसेही समूह बहुत जन्मादि सिराने बीतिगयो १ कैसेन को सेवत जन्म बीति गयो जे जड़जीव अर्थात् जिनको आपनी हानि लाभ तथा दुःख सुख नहीं सूझत ऐसे जड़जीव जिनको स्वभाव कुटिल टेढ़ी राह चलावते हैं पुनः कायर अर्थात् धर्मक्रिया में कादर हैं पुनः ऐसे खल दुष्ट हैं जे केवल कलिमल साने कलिमल जो पाप तिनमें लीन ह्वै रहे हैं अर्थात् मन वचन कर्म ते पापै में लगे रहते हैं ऐसेनको मुख न देखना चाहिये वार्ता संग कैसा परन्तु धन उनके पास है मान बड़ाई खुशामद करनेते कछु धन देतेहैं इसहेतु उन दुष्टन को हरिते अधिक करि माने भाव ईश्वर को पालन करना कोई देखता है येतो हमारे प्रसिद्ध अन्नदाता हैं इत्यादि स्वार्थ विचारि तिन्ह दुष्टनकहँ प्रशंसत बनाइ बनाइ यश गावत सन्ते वदन सूखत बहुत वार्ता करत में परिश्रमते मुख सुखाइजात लोभवश ऐसा परिश्रम करता रहा २ भोजन बसन पान गन्ध वाहन भूषणादि देहके सुखके हेतु कोटि उपाय यथा कथा सुनावना मनुष्यनको यश गावना मन्त्र पूजादि पर भला करना इत्यादि करोरिन भांति का उपाय निरंतर अंतररहित सदा करत लोक में ग्राम ग्राम धावत संते पायँ न पिराने श्रमित ह्वै थिर न भये आशावश अनेक मनोरथ बढ़त ताहीके व्यापार में सदा धावते बीततहै ताते विषय चाहरूप कीचड़ते अंतस सदा मलीने रहत कौन भांति ज्यों पन्थ को जल लोगन की आवाजाही बनी रहती है ताते राह को जल थिराने नहीं पावत तैसेही आशावशते अनेक मनोरथ उठा करते हैं ताते हृदय अन्तःकरण कबहूं थिरानेउ नहीं अर्थात् निराशाते संतोष करि बुद्धि में विचार अहंकार में शरणागति की निश्चय चित्तसों प्रभुगुणचिन्तन मनमें प्रभु पद प्राप्तिको मनोरथ इत्यादि हृदय अमल कबहूं नहीं भयो भाव लोकसुखवासना त्यागि मन श्रीरघुनाथजीके सम्मुख कबहूं न भयो ३ यावत् लोकसुख की चाहते धनादि पावने की आशा बनी है तावत् दीनता है अर्थात् मानभंग किहे अधीन

वचन कहत द्वार द्वार याचना करत फिरत पुनः यावत् आशा बनी है तावत् जो सुमेरु सम धन पावै तबहूं दीनता नहीं जाती है यथा ॥ आशापाशस्य ये दासा-स्ते दासा जगतामपि । आशा दासीकृता येन तस्य दासायते जगत् ॥ इत्यादि जब आशा मिटै संतोष आवै तौ दीनता आपही मिटिजाइ सो तौ नहीं किये अरु आशावश में याचकता यह जो दीनता है ताके मिटिजाने मनते दूरि करिदेवे हेतु अमितसंख्या रहित यहैं उर में आने विचार कीन्हे यथा जो सौ रुपया साल चंधान होवै तौ फिरि न काहूते मांगं जब ह्वैगये तब जो हज़ार मिला करैं तब न मांगं सोऊ भये तब दश हज़ार की चाह भई सोऊ भया तब लाखों की चाह भई इत्यादि गोसाईंजी कहत कि रामभक्तिरूप चिन्तामणि विना पहिंचाने चित्त की चिन्ता परधन हरने पर ध्यान नहीं मिटता है अरु चिन्तित फलदायक भक्ति पाइ संतोष आवत सब चिन्ता मिटि जाती है ४ ॥

(२३७) जोपै जिय जानकीनाथ न जाने ।

तौ सब कर्म धर्म श्रमदायक ऐसइ कहत सयाने १
जे सुर सिद्ध मुनीश योगविद वेद पुराण बखाने ।
पूजा लेत देत पलटे सुख हानि लाभ अनुमाने २
काको नाम धोखेहु सुमिरत पातकपुंज सिराने ।
विप्र वधिक गज गृध्र कोटि खल कौन के पेट समाने ३
मेरु से दोष दूरि करि जन के रेणु से गुण उर आने ।
तुलसिदास तेहि सकल आश तजि भजहि न अजहुँ अयाने ४

टी० । जिय जौपै हे जीव ! जो निश्चय करिकै जानकीनाथ श्रीरघुनाथजी को आपना स्वामी करि न जाने तौ यावत् धर्म धारण करि यावत् कर्म करताहि ते जप, तप, पूजा, पाठादि सब श्रमदायक केवल परिश्रमै लाभ है प्रयोजन कछु न होइगो जैसा मैं कहता हौं सोई वचन सयाने वेदतत्त्वज्ञाता चतुरजन कहते हैं यथा रुद्र-यामले शिववाक्यम् ॥ ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः । जपस्तपो दया शौचः शास्त्राणामवगाहनम् ॥ सर्वं वृथा विना येन शृणुष्वं पार्वति प्रिये ॥ पुनः पद्मपुराणे ॥ न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा । स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः ॥ शास्त्रं न तत्स्यान्न हि यत्र रामस्तीर्थं न तद्यत्र न रामचन्द्रः । यागः स आगो न हि यत्र रामो योगः स रोगो न हि यत्र रामः ॥ स्थानं भयस्थानमरामकीर्ति रामेतिनामामृतशून्यमास्यम् । सर्पालयं प्रेतगृहं गृहं तद्यत्रार्च्यते नैव महेन्द्रपूजा॥सर्वेषां वेदसाराणां रहस्यं ते प्रकाशितम् । एको देवो रामचन्द्रो व्रतमन्यन्न तत्समम्॥इत्यादि विना रामसनेह सब साधन वृथा हैं ताते रामसनेह दृढ़ होने हेतु अन्य साधन करना चाहिये १ पुनः सुर यथा गणेश, देवी, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पवन, यम, वरुण, कुवेर, इन्द्र, शिव, ब्रह्मापर्यंत यावत् देवता हैं तथा तपस्या, मन्त्र, जपादिकरि जे अणिमादिक सिद्धि स्वाधीन किहे हैं ऐसे जे सिद्ध देवजाति में हैं तथा मुनि मननशील कश्यप, अत्रि, भृगु,

अंगिरा, पराशर, अगस्त्य, वशिष्ठ, नारदादि जे मुनिन में श्रेष्ठ पुनः योगविद् अष्टाङ्गयोग को जाननेवाले जे योगी हैं याज्ञवल्क्यादि इत्यादिकन की रीति रहस्य वेद पुराण बखाने यथार्थ कहते हैं देवादि यज्ञभाग षोडशोपचार विधिवत् पूजा लेत ताके पलटे पूजादिके बदले धरणी, धन, धाम, भोजन, बसन, भूषण, वाहन, पुत्र, पौत्रादि सुख देते हैं ताहू में आपनी हानि लाभ अनुमानि लेतेहैं अर्थात् ऐसा परिपूर्ण अचल सुख नहीं दे देते हैं जामें स्वतन्त्र है पुनः पूजादि न करै ऐसा देते हैं जामें सदा सेवकाई किया करै २ अरु रघुनाथजी कैसे सबल समर्थ उदार दानी सुलभ प्रसन्न होते हैं कि काको नाम धोखेहू सुमिरत अर्थात् पूजा, पाठ, जप, तप विधिवत् सनेहते नहीं किसी बहाने भ्रमोवश ते जो रामनाम मुखते कहै तौ पातकपुञ्ज सिराने अर्थात् भूलिहूके रामनाम निसरि आवै तौ अनेक जन्म के समूह पाप नाश ह्वैजाते हैं पुनः उत्तमगति पावत यथा विष्णुपुराणे ॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः। पुमान्विमुच्यते सद्यस्सिंहत्रस्तमृगैरिव ॥ पद्मपुराणे ॥ सकृ-दुच्चारयेद्यस्तु रामनामपरात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥ आदिपुराणे ॥ श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि। तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥ नन्दीपुराणे ॥ सर्वदा सर्वकालेषु ये न कुर्वन्ति पातकम्। तेपि श्रीरामसन्नामजपं कृत्वा परंपदम् ॥ इत्यादि वचन हराम कहि परमपद पायो सो हाल लोकहू में विदित है तथा विप्र अजामिल महापापी रहा आपने पुत्र को नारायण नाम लै मरा ताको यमगणन ते भगवान् के पार्षद छीनि लै वैकुण्ठ को लैगये वधिक वाल्मीकि असंख्यन मनुष्यन को मारे जिनकी यही जीविका रही सप्तऋषिन के उपदेश ते उलटा नाम जपि महामुनि रामयश के भविष्यवक्ता भये गज पशुबलते मदान्ध अनयरत रहा वाको जब जलमध्य ग्राह गहि बोरने लगा तब अनाथ आर्त ह्वै पुकारा तुरतही धाय आइकै प्रभु उद्धार किया गृध्र मांस आहारी अधम पक्षी रहा किशोरीजी के हेतु रावणते युद्ध करि घायल भया ताको प्रभु तुरत आपनेलोकको पठाये इत्यादि करोरिन खल कौन के पेट समाने दूसरा कौन ऐसा समर्थ रहै जो ऐसे अधमन को उद्धार करिसक्ता रहै ३ पुनः सुलभ शीलवन्त रघुनाथजी जनगुणगाहक कैसे हैं कि आपने जन के जो सुमेरु पर्वतसम दोष होइँ तिनको दूर करि अर्थात् भुलाइ डारते हैं पुनः रेणुसम जो गुण सुनै ताको मेरुसमान करि उर में आनै भाव जो सब आश भरोसा त्यागि निश्छल शरणसम्मुख बना रहत मान के वश कबहूं नहीं होत तिनके अवगुण नहीं देखत थोरेहू गुणन को बहुत करि मानि लेत ऐसे कृतज्ञ उदार कृपासिन्धु श्रीरघुनाथजी जन गुणगाहक हैं हे तुलसीदास ! देहाभिमानी जीव अयाने महाअज्ञान अजहूं अबहूं सब को आश सकल भांति को भरोसा त्यागिकै अनन्य है तेहि रघुनाथजी को भजता नहीं सेवा में सम्मुख नहीं होता है ४ ॥

(२३८) काहे न रसना रामहिं गावहि।
निशि दिन पर अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि १
नर मुख सुन्दर मन्दिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि।

शशि समीप रहि त्यागि सुधा कत रविकरजल कहँ धावहि २
काम कथा कलि कैरवचन्दिनि सुनत श्रवण दै भावहि।
तिनहिं हटकि कहि हरि कल कीरति कर्ण कलंक नशावहि ३
जातरूप मति युवति रुचिर मणि रचि रचि हार बनावहिं।
शरणसुखद रविकुल सरोज रवि राम नृपहि पहिरावहि ४
वाद विवाद स्वाद तजि भजि हरि सरल चरित चित लावहि।
तुलसिदास भव तरहि तिहूं पुर तू पुनीत यश पावहि ५

टी०। परा पश्यन्ती मध्यमा वाणी नाभि हृदय कंठ में वास तिनते रामनाम गुणगान सुगम नहीं है तौ रसना जिह्वा काहे नहीं रामनाम लीला गुण गावती है जो रातिउदिन पर अपवाद अर्थात् एकनसों विरोध राखि ताकी निन्दा अवगुण रातिउ दिन रटि रटि ताके रोचक जननते राग प्रीति चढ़ावती है भाव किसीकी निन्दा करि वैर बढ़ावत किसीकी स्तुति करि प्रीति बढ़ावत तामें क्या प्रयोजन है १ पुनः नर मनुष्य को मुख सोई सर्वाङ्ग सुठौर बना ऐसा सुन्दर पावन मन्दिर है भाव सदा धोवा मांजा अथवा सर्वांग ते उत्तम वा नरतनु वेद उत्तम कहत इति उत्तम पवित्र मन्दिर में बसिकै भाव जाके मुखमें बसी है ताहि जन को जनि लजावहि भाव रसना कुत्सित भाषत तब वा जनको लज्जा होती है शशिसमीप रहि चन्द्रमाके निकट वास करि त्यहि में जो सुधा अमृत परिपूर्ण है सो त्यागि रविकर सूर्यकिरणको देखनमात्र झूँठा जल है ताके पीवनेहेतु कत काहेको वृथाही धावत अर्थात् चन्द्रमासम मनुष्यको मुख ताही समीप जिह्वा बसी है अरु अमृत सम रामयश कीर्तन सो त्यागि रविकर जलसम वृथा विषयवार्ता लोकप्रवाद क्यों करत २ कैसी विषयवार्ता है यथा कलिकैरव कलियुगरूप कोकाबेलीको वन है ताको प्रफुल्लितकर्ता कामकथा अर्थात् कोकसार नायिकाभेद इत्यादि यावत् स्त्रिनकी वार्ता है सो चांदनी रातिसम है भाव जहां कामकी वार्ता होत तहां कलियुग को प्रभाव पाप की वृद्धि होतीहै सो स्त्रिनकी वार्ता श्रवण दै कान लगाइ सुनत तोको भावती है इति जो विषयवार्ता कहत सुनत तोको प्रिय लागत हे जीव! तिनहिं हटकि जिह्वा श्रवणादि विषयनते रोंकि बरबस स्वाधीन करि पुनः हरिकलकीरति अर्थात् गुरुजनन सों नम्रतापूर्वक शीलमयवार्ता अथवा दीननको परिपूर्ण दानदेना इत्यादिते प्रशंसा इति रघुनाथजीकी सुन्दरि अमल कीरति श्रवण कीर्तनकरि कर्णकलङ्क नशावहि कर्ण जो श्रवणादि इन्द्रिय तिनमें जो विषयव्यापार इति कलङ्क ताको नशावहि नाश करिदेहि ३ हरिकलकीरति कौन भांति ग्रहण करु मति जो अमलबुद्धि सोई सुन्दर युवती करु पुनः हरिकीरति सोई जातरूप नाम सोना है पुनः हरिनाम सोई मुक्ता आदि मणि हैं रामचरित की लर सोई धागा है सोई बुद्धि रचिरचि हार बनावहि रामकथामय माला रचहि ताको रामनृपहि पहिरावहि रघुनन्दन महाराज को पहिराव कौन रामनृप रवि कुलसरोजरवि अर्थात् सूर्यवंशरूप कमलवन के प्रफुल्लितकर्ता सूर्य अवतीर्ण

भये तिनहिं पहिराउ किस प्रयोजन हेतु शरणसुखद जानि भाव शरणकाल में यमसांसति गर्भवासादि भय मिटाय कल्याणपद देइँगे ४ मुखते वाद विवाद अर्थात् बेप्रयोजन लोगन सों झूंठी सांची वार्ता करि हठवश उत्तर प्रत्युत्तर करता है पुनः श्रवणनते कामवार्ता रागताल की स्वाद लेता है नेत्रनसों परस्त्री आदि के सुन्दर रूपका स्वाद लेता है नासिका ते सुगन्ध का स्वाद लेताहै त्वचा ते कोमल वसन शय्यादि का स्वाद लेताहै जिह्वाते पट्रस भोजन का स्वाद लेता है लिङ्ग ते मैथुन का स्वाद लेता है इत्यादि जो इन्द्रियन द्वारा विषय स्वाद में आसक्त विषयी है ईश्वर को भुलाइ दिहे तिन विषयन को त्याग करु इति वादविवाद स्वाद तजि विषयते पीठि दै शरण सम्मुख ह्वै हरि भजि श्रीरघुनाथजी को भजु तामें प्रश्न करत कि विधिवत् पूजा, पाठ, जप, तप, यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि, विवेक, विराग, शम, दमादि अनेक साधन श्रम करने ते भजन नहीं बनता है सो केवल विषयते पीठि देनेते कैसे भजन ह्वैसकैगो तापर कहत कि साधन श्रम कछु न कर सरल चरित चित लावहि अर्थात् नाम को प्रताप रूप के गुणधाम को माहात्म्य ऐश्वर्य माधुर्यादि लीला वर्णन जामें ऐसे जो श्रीरघुनाथजी के चरित ताको मन लगाय श्रवण कीर्तन करना सबको सरल है तामें चित लावहि इसीके प्रभाव ते सब साधन आपही ह्वैजाहिंगे इसभांति भजन करि गोसाईंजी कहत हे जीव! पूर्व तौ तीनिहुं लोकन में पुनीत यश तू पावहिगो सुर नर नागादि तेरा पवित्र यश गावहिंगे पुनः विना परिश्रम भवसागर तरिजाइगो ५ ॥

(२३९) आपनो हित रावरे सों जोपै सूझै।
तौ जनु तनु पर अछत शीश सुधि क्यों कबन्ध ज्यों जूझै १
निज अवगुण गुण राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु विनु बूझै २

टी०। आपनो हित जोपै रावरे सों सूझै हे श्रीरघुनाथजी! लोक परलोकको सुख इत्यादि आपनो हित जो निश्चय करिकै आपही दे जीवको देखि परै तौ जनु तनुपर शीश अछत जैसे देहपर शिर बनेरहते सब भांति की सुधि बनी है तब ज्यों कबन्ध क्यों जूझै अर्थात् जो शिर कटिगिरे पर भी रुण्ड युद्ध कियाकरता है ताको कबन्ध कहीं ताको आपना परार कछु देखि तौ परता नहीं वाके आगे जोई परिजाय ताहीको मारत चलाजाताहै तौ वाके तौ शीश नहीं पुनः किसी बात की सुधि नहीं पुनः मृतक ह्वैचुका सो जो सम्मुख पाय सबको शत्रुइ करि जानै तौ क्या अनुचित है अरु मनुष्य के शीश लगा सब सुधि बनी जीवत कहावता है सो कैसे कबन्ध की नाईं हित अहित कछु न विचारना भूतमात्र सों वैर विरोध करि आपही नाश होना ऐसा क्यों करता अर्थात् श्रीरघुनाथजी ते हित नहीं देखत कामवश स्त्रिन ते हित लोभवश धनिनते हित त्यहि हितमें हानिकर्ता जानि क्रोधवश अनेकनते वैर माने रहत इसी दशा में अनेक पाप कर्म करतेहुये मर ते भवसागर को गये इति नेत्र सहित अन्धेहैं १ निज आपने अवगुण यथा॥

दोहा ॥ कामक्रोधयुत कृपाहत, दुर्वादी अतिलोभ। लंपट लज्जाहीन शाणि, विद्याहीन अशोभ॥ आलस अति निद्रा बहुत, दुष्टदया करि हीन। सूम दरिद्री जानिये, रागी सदा मलीन॥ देत कुपात्रहि दान पुनि, मरण दान दृढ़ नाहिं। भोगी सर्व न समुझई, कछु शास्त्रनके माहिं॥ अतिअहार प्रिय जानिये, अहंकारयुत देखु। महा अलक्षण पुरुषके, ये अट्ठाइस लेखु॥ पुनः रघुनाथजीके गुण ॥ वाल्मीकीये॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः। नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥ बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमच्छत्रुनिबर्हणः। धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः॥ यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्। प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः॥ रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता। रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः। सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभागवान्॥ सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः। सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः॥ आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः। स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः। समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥ विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः। कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥ धनदेन समस्त्यागे सत्यधर्म इवापरः। तमेव गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्॥ इत्यादि हे श्रीरघुनाथ! रावरे आपके गुणसमूह सो लखि देखि पुनः रामायणादि ते सुनिकै अथवा निज आपने अवगुण देखि पुनः हे रघुनाथजी! आपके गुण समूह सुनिकै मति मन रूझै अर्थात् सवगुणसम्पन्न उत्तम तौ स्वामी तिनकी सेवकाई में अवगुणन को भाजन विमुख मोहिं ऐसा कुसेवक कैसे सेवकाई में रहिसक्ता हौं इति अयोग्यता विचारि मति जो बुद्धि सो अयोग्यता विचारि मन प्रभुके पद कमलन में अरुझै नहीं है पछरि विलग ह्वैजाता है तौ मेरा तौ कछु उपाय नहीं चलता है केवल कृपा को भरोसा राखे दूरि द्वारपर परा हौं तहां तुलसी की जो रहनि है कर्तव्यता त्यहि में हानि लाभ की जो समुझनि है त्यहि अनुकूल जो आपने हित की बात कहनि है ताको हेतु हे कृपालु, कृपागुणमन्दिर, श्रीरघुनाथ जी! आपही जानतेहौ आप विना दूसरा मेरे कहने को हेतु कौन बूझिसकै कोऊ नहीं जानिसक्ता है अर्थात् मन इन्द्रियन द्वारा विषयन में आसक्त काम लोभादि वश ते अनेक बुरे कर्म करता हौं ताको फल भवसागर है तिस भय ते समुझनि यह कि पातकी अधम भयातुरन को प्रणाममात्र अभयकर्ता एक रघुनाथै जी हैं ऐसा विचारि शरण ह्वै आपने हित की बात कहताहौं हे कृपासिन्धु! भवभीत आपकी शरण हौं कृपा करि मेरा उद्धार करौ याको हेतु आप बूझते हौ काहेते यह आपकी प्रतिज्ञा है कि जो एकहू बार प्रणाम करि कहै कि मैं शरण हौं ताको सब भूतनते अभय करिदेउ यथा॥ वाल्मीकीये॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम २॥

(२४०) जाको हरि दृढ़ करि अंग करेउ।

सोइ सुशील पुनीत वेदविद विद्या गुणनि भरेउ १
उत्पति पाण्डुसुतन की करणी सुनि सतपंथ डरेउ।

त त्रैलोक्य पूज्य पावन यश सुनि सुनि लोक तरेउ २
जो निजधर्म वेदबोधित सो करत न कछु बिसरेउ।
बिनु अवगुण कृकलास कूप मज्जत कर गहि उधरेउ ३
ब्रह्मत्रिशिख ब्रह्माण्डदहन क्षम गर्भ न नृपति जरेउ।
अजर अमर कुलिशहु नाहिन बध सो पुनि फेन मरेउ ४
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं बिगरेउ।
उनको कियो सहाय बहुत उर को सन्ताप हरेउ ५
गणिका अरु कन्दर्प ते जग महँ अघ न करत उबरेउ।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि भवन धरेउ ६
केहि आचरण भलो मानै प्रभु सो तो न जानि परेउ।
तुलसिदास रघुनाथकृपा को चितवत पन्थ खरेउ ७

टी०। जाको दृढ़ करि हरि अंग करेउ जिस जन को भगवान् पुष्ट करि आपने अंग को सम्बन्धी करि लियो अर्थात् कैसहू अधम नीच पापी अपावन होइ जाको अङ्गीकार करि शरण में राखे सोई सुशील शीलवन्त सोई पुनीत सबभांति ते पवित्र सोई वेदविद् वेदतत्त्व को जाननेवाला है सोई विद्या आदि सब गुणनि को भरो परिपूर्ण गुणग्राम है १ ताको प्रमाण देखावत कि भगवत् के अङ्गीकार करने की महिमा देखिये पाण्डुसुत युधिष्ठिरादि तिनकी उत्पत्ति अर्थात् पाण्डु के वीर्य ते एकहू नहीं हैं सब व्यभिचार ते जारजात पांचौ पांच जनेन के हैं ऐसी तौ उत्पत्ति में नीचे हैं पुनः करणी कैसी है कि एक स्त्री द्रौपदी ताके पांचौ पति बने भोग करते हैं तिनहूं में अर्जुन मामा की पुत्री सुभद्रा को चोरी ते हरि लै गये स्त्री बनाये इत्यादि पाण्डुसुतन की उत्पत्ति अरु करणी ऐसी नीच पापमयी है जाको सुनि सत्पन्थ डरेउ अर्थात् सुमार्गी लोगन के रोम खड़े होते हैं भाव ऐसा कर्म अधर्मी नहीं करते हैं जैसे पाण्डव हैं तेई युधिष्ठिरादि भगवान् के अङ्गीकार कीन्हे ते त्रैलोक्यपूज्य भये सब जिनको पूजते हैं नाम स्मरण करते हैं पुनः भारत आदि जिनको पावन यश लोक पवित्र करता है जाकी कथा पारायण सुनि सुनि औरहू लोग भवसागर तरि जाते हैं २ पुनः राजा नृग वेदबोधित निज धर्म पर आरूढ़ रहें अर्थात् वेद आज्ञा अनुकूल आपने क्षत्रिय धर्म पर चलते रहे ताही अनुकूल कर्म करत में कछु बिसरि नहीं गये आपनी कर्तव्यता में कछु नहीं चूके कारण क्या भयो कि पूर्व दिन की संकल्पी गौ भागि राजा की गौवन में मिलि गई ताको जाने नहीं दूसरे दिन औरे को संकल्प दिये इसी कारण पूर्व ब्राह्मण ने शाप दिया ताते गिरगिट भये एक कूप में परे रहे तिनको भगवान् आइ हाथ पकरि निकारि उद्धार कीन्हे सो कहत ऐसे धर्म करत में तौ यह दशा भई कि बिन अवगुण निरपराध कृकलास नाम गिरगिट ते मज्जत कूप में बूड़े परे रहें त्यहि मन्द दशा में कर गहि उधरेउ भगवान् के हाथ को अवलम्ब पाइ उद्धार

भयो शुभ गति पाये ३ जब परीक्षित् गर्भवास में रहैं तिनके नाश हेतु अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र मारा तहां भगवान् रक्षा कीन्हे कछु दुःख न व्यापा सुखपूर्वक प्रसव ह्वै आनन्दित रहे सो कहत कि ब्रह्म विशिख जो ब्रह्मास्त्र सो ब्रह्माण्ड दहन क्षम सो ब्रह्मास्त्र ब्रह्माण्ड भरे को दहन भस्म करिदेवे को क्षम नाम समर्थ रहै ताके ज्वालन ते नृपति जो परीक्षित् ते गर्भवास में न जरेउ ऐसी कराल भय ते भगवान् उबारि लिये ब्रह्मास्त्र को कछु वनावा न बना पुनः नमुचि नाम दैत्य ने तपस्या करि ऐसा वरदान मांगि लिया जाके प्रभाव ते अजर जरा वृद्धावस्था रहित सदा यौवनै बना रहै तथा अमर जाके निकट मृत्यु नहीं आवती है ताते कुलिशहु नाहिन वध इन्द्र ने वज्र मारा ताहू ते नहीं मरा ऐसा अभय रहै सो पुनि फेन मरेउ ताही पर जब भगवान् की अकृपा भई मारा चहे सो पुनि पानी के फेन में मरिगया भाव अस्त्र शस्त्र की कौन कहै कोमलै वस्तु सों मरिगया ४ अजामिल नाम विप्र रहा त्यहिते तथा इन्द्र ते कौन नीच काम जो विगरेउ नहीं अर्थात् अजामिल वेश्या में रत रहा ताके वश ते कौन पाप नहीं किया भाव हिंसा परधन हरण मद्यपान इत्यादि सबै नष्ट कर्म करता रहा तथा सुरपति इन्द्र काम क्रोधवश ते कौन काम नहीं विगारा अर्थात् कामवश मुनिपत्नी अहल्या के साथ छल ते भोग किया पुनः क्रोधवश विश्वरूप विप्र को वध किया ऐसे कर्मादिते पाप की हद्द है नातरु राजमद ते विश्वामित्र नारदादि अनेकन की तपस्या में वाधक भये इत्यादि अजामिल सुरपति ये दोऊ महाअपराध के पात्र रहे तहां उन इन्द्र की तौ बहुत विधि ते सहाय कीन्हे अर्थात् अनेक दैत्य राक्षसन को मारि इन्द्र को अभय करत रहे पुनः अजामिल के उर में जो संताप रहा अर्थात् पापन को फल भोग करावने हेतु यमगण बांधे लिहे जाते रहैं तहां नरक में क्या दशा होइगी इति संपूर्ण प्रकार की तापैं रहीं तिनको हरि लीन्हे आपने लोक में बसाये ५ गणिका वेश्या तथा कन्दर्प कामदेव इन दोउन ते जगत्‌विषे अघ करत उबरेउ नहीं ऐसा कोई पाप नहीं जो न करि डारे होइ अर्थात् वेश्या नित नये परपुरुषन में रत झूठी मीठी वार्ता छल करि सर्वस्व धन लैके वाको त्यागि देना ताके अन्तर कौन पाप नहीं होते हैं तथा काम सज्जन की सुकृति में सदा बाधा करत तौ जाकी दृष्टि सन्मार्ग हानि करने पर है सो कौन पाप न करैगो ऐसे कुमार्गी दोऊ रहैं तिनको चरित आचरण पवित्र जानिकै हरि निज हृदि भवन धरेउ भगवान् आपने हृदयरूप मन्दिर में धारण कीन्हेउ तामें काम तौ भगवान् को पुत्र है ताको चरित स्वाभाविकही हृदय में धरे हैं ताकी कौन प्रमाणहै अरु पिंगला नाम वेश्या जनक-पुर में रही ताको चरित विरागदेश में भगवान् ऊधवप्रति कहे भागवत एकादशे ६ पूर्व जो कहि आये ताको हेतु कहत कि प्रभु केहि आचरणते भलो मानते अर्थात् भले अथवा बुरे कौने कर्म कीन्हेते श्रीरघुनाथजी भलो जीव मानि प्रसन्न होते हैं सो तौ न जानि परेउ अर्थात् ज्यहि आचरण ते प्रभु प्रसन्न होते हैं सो कोऊ जानि नहीं सक्ता है भाव शरणमात्र प्रसन्न ह्वै कृपा करत गुण अवगुण कछु नहीं विचा-रत ऐसा जानि तुलसीदास शरणागत द्वार पै खरेउ श्रीरघुनाथजी की कृपा को पन्थ चितवत कब कृपा करैंगे इति राह निहारि रहा हौं ७ ॥

(२४१) सोइ सुकृती शुचि सांचो जाहि राम तुम रीझे।
गणिका गीध वधिक हरिपुर गये ले काशी प्रयाग कब सीझे १
कबहुँ न डिग्यो निगम मगते पग नृग जगजानि जिते दुखपाये।
गज धौं कौन दीक्षित जाके सुमिरत नभवाहन तजि धाये २
सुर मुनि विप्र विहायबड़े कुल गोकुल जन्म गोपगृह लीन्हो।
बायों दियो विभव कुरुपति को भोजन जाइ विदुर घर कीन्हो ३
मानत भलहि भलो भक्तनि ते कछुक रीति पारथहि जनाई।
तुलसी सहज सनेह राम वश और सबै जलकी चिकनाई ४

टी०। जाहि राम तुम रीझे सोई शुचि पवित्र पुनः सांचो सुकृती सोई है अर्थात् पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दानादि कीन्हेते क्या होता है? तथा नीच अधम पापी चाण्डाल कैसहू होइ ताहू ते कछु हानि नहीं है काहेते हे श्रीरघुनाथजी! जापर आप प्रसन्न है कृपा कीन्हेउ आपनी शरण में राखेउ सोई सब प्रकार की सुकृति को करनेवाला उत्तम सुकृती है सोई परम पवित्र लोकपावनकर्ता वाको यश होता है काहेते गणिका व्यभिचारिणी वेश्या तथा गीध मांसआहारी अधम पक्षी पुनः वधिक व्याध मनुष्यन को मारि वाको धन लेलेते रहैं इत्यादि हरिपुर भगवद्धाम को गये ते कब काशीजी में करवट लीन्हे अथवा कब प्रयाग में कल्प-वास करि प्रातही त्रिवेणी में मज्जन करत में शीत में सीझे अर्थात् गणिका सुवा के मुखते रामनाम सुनि धारण करि तरी गीध किशोरीजी के हेतु रावणते युद्ध करि घायल भया ताको प्रभु कृपा करि तुरतही आपने धाम को पठाये पुनः वाल्मीकि सप्तऋषिन के उपदेशते उलटा नाम जपि जीवन्मुक्त महामुनि भये १ पुनः हे रघुनाथजी! यावत् आप न रीझैं तावत् सुकृति करनेवालेन की दुर्दशा ह्वैजाती है जिन ऐसा स्वधर्म दृढ़ करि धारण किये कि निगममग ते कबहूं नहीं पग डिग्यो वेदधर्म पर चलिवे में कबहू नहीं चूके सदा वेद आज्ञा स्वधर्म पर चलत रहे ते राजा नृग जेतरे दुःख पाये सो सब जगत् जानत है अर्थात् एक गऊ भूलते द्वय विप्रन को संकल्पि गये पूर्व विप्र के शापते गिरगिट ह्वै अनेकन वर्ष कूप में परे रहे यह हाल लोक में विदित है ताही दशा में प्रभु कृपा करि हाथ गहि उद्धार कीन्हे पुनः गज धौं कौन दीक्षित अर्थात् सोमयतीयज्ञ को कब किया भाव बल मद अन्ध अनीतिरत पशुइ तौ रहा जाके सुमिरत नाम लै पुकार किया ताके सुनतही नभवाहन तजि गरुड़को त्यागि धाये तुरन्तही आइ वाको उद्धार कीन्हे तामें केवल कृपे को प्रभाव है दूसरी करणी कछु नहीं है २ सुर, इन्द्र, वरुण, कुवेरादि यावत् देवता हैं पुनः मुनि कश्यपादि पुनः विप्र जे साधारण गृहस्थाश्रम में जे साधारण आपने धर्म कर्म पर आरूढ़ हैं इत्यादि बड़े कुल विहाय ऊंचे कुलन को त्यागि गोकुल में जाइ गोपगृह जन्म लीन्हो अर्थात् जन्म यद्यपि मथुरा में देवकी वसुदेव के लीन्हे परन्तु प्रसिद्ध नन्द गोप के घर में भये गोपाल कहाये पुनः कुरु-पति जो दुर्योधन ताको विभव बायां दियो ऐश्वर्य को तुच्छ माने भाव छप्पनौ

प्रकार भोजन विना आदर त्यागि दिये अर्थात् दुर्योधन ने जब भोजन हेतु बोलाये तब भगवान् कहे कि नातौ तुम्हारे स्नेहहै अरु न कछु बड़े हो जो तुम्हारे दबावते खाउँ पुनः न हम भूखे हैं तौ कैसे भोजन करैं ऐसा कहि चले गये जाइ विदुर के घर में भोजन कीन्हो सो विदुर को साग प्रसिद्ध है अर्थात् भगवान् को देखतै विदुर की स्त्री जल लै पायँ धोवने चली तब भगवान् कहे पायँ धोवने को रहिदेउ हमारे भूख लगी है भोजन लावो सो सुनि केला की छीमी लाई प्रेम की विह्वलता ते गूदा भूमि में फेंकि दिये छिलका भगवान् को देती गई हर्षते खातेरहे तावत् विदुर आइ स्त्री को कुवचन कहि आपु छीलि गूदा दिये तब भगवान् कहे जैसा स्वादु छिलकन में रहै तैसा स्वादु यामें नहीं है अब न खाइँगे इति साग है ३ यह निश्चय है कि भले भक्तन ते प्रभु भलो मानते हैं अर्थात् प्रेमी भक्तन के आधीन रहते हैं वह चाहे नीच होइ चाहे ऊंच होइ सांची प्रीति ते रीझते हैं किसी साधन ते नहीं रीझते हैं यह रीति कछुक थोरी पारथहि अर्जुन को जनाये हैं अर्थात् मुख्य तौ यही प्रसिद्ध है कि अर्जुन जब रथ पर आरूढ़ है चलैं तब भगवान् रथ हांकैं पुनः जरासन्ध के पास जाइ ब्राह्मण बनि भिक्षा मांगे वन में जब दुर्वासा धर्म संकट डारे तब आइ उबारे लाक्षाभवन में जरत बचाये द्रौपदी को चीर बढ़ाये विप्र बालक हेतु अर्जुन भस्म होत रहे तिनको बचाइबे हेतु विप्र बालक को आनि दिये अरु भारत में अनेकन कार्य कीन्हे सो कहां तक कहैं इत्यादि आचरण विचारि तुलसीदास कहत कि यह बात मैं निश्चय जान्यउँ कि श्रीरघुनाथजी सहज सनेह ते वश होते हैं और सबै साधन उपाय जल की चिकनाई है अर्थात् सनेह नाम है तैल को ताको लगावो तौ बहुत दिनतक देह में चिकनाई बनी रहती है अरु जल के लागे क्षणमात्र चिकनाई रहती है बयारि घाम लागे मिटि जाती है तैसेही जप, तप, यम, नियम, विराग, विवेकादि साधन ते किंचित् शुद्धता जीव को होती है परन्तु विषय बयारि लोक ताप लागे मिटि जाती है ताते प्रभु वश नहीं होते हैं अरु जहां सहज स्वभाव ते रामसनेह बना है तहां सदा एक रस जीव शुद्ध बना रहत ताहीते प्रभु वाके वश रहते हैं ४ ॥

(२४२) तो तुम मोहूं से शठनि हठि न गति देते ।

कैसेहु नाम लेत कोउ पामर सुनि सादर आगे है लेते १
पापखानि जियजानिअजामिल यमगणतमकि ताइ ताको भेते ।
लिये छुड़ाय चले कर मींजत पीसत दांत गये रिसि रेते २
गौतमतिय गज गृध्र विटप कपि हैं नाथहि नीके मालुम तेते ।
तिन्ह तिन्ह काजनिसाधुसमाजतजि कृपासिंधुतबतबउठिगेते ३
अजहुँ अधिक आदर यहि द्वारे पतित पुनीत होत नहिं केते ।
मेरे पासंगहु न पूजिहैं ह्वैगये हैं ह्वैने खल जेते ४
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते ।
अब तुलसी पूतरो बांधिहै सहि न जात मोपै परिहास एते ५

टी०। महाराजन को यह स्वभाव होत कि यशवृद्धि हेतु सामान्य दान देते हैं अयश मिटावने हेतु विशेष दान देते हैं काहेते याचक कविन को ऐसा बेताली स्वभाव होता है कि दानी राजद्वार पर याचना किये जो शीघ्रही मन भावत दान न पाये तौ भँडौवा करने लागते हैं तैसेही बहुत विनती करिचुके मनभावत दान न पाये ताते कहत हे रघुनाथजी! जो पूर्व आपु अधम पतित शठन को हठि हठि न उद्धार करते होते तौ आजु तुम मोहूं ऐसे शठन को हठ करि न गति देते तौ मेरे आरु न आवता अरु जब सदा ते अनेकन शठन को तौ गति देते आये तौ मोको क्यों नहीं देते हौ पूर्व तौ ऐसा करत आये कि कोऊ पामर कैसहू अधम नीच होइ सो भाव कुभाव भ्रमवश भूलिकै काहू बहाने इत्यादि कैसहू आपुको नाम लेत सो सुनि सहित आदर उठिके आगे ह्वै लेते रहेउ तौ अब मेरी ओर क्यों नहीं देखतेही मेरी बूदें क्यों नहीं पूछतेहौ इसहेतु मेरे मन में आरु आवत १ जो कहौ कि कैसेहू नाम लेत किस पामर को हम आगे ह्वै लिये आदर कीन्हे सो सुनिये अजामिल विप्र धर्म त्यागि वेश्यारत मदपान परहानि अपवाद जीवहिंसा इत्यादि पापन की खानिसमूह महापापन को भरा जीवते जानि मरणसमय जो यमगण आये ते तमकि ताको ताइमे महापापी विचारि अत्यन्त क्रोध करि तापदायक भये अर्थात् फांस में बांधि महादण्ड देते लै चले परंतु मरणसमय आपने पुत्र को नारायण नाम लै पुकारा इसी कारण आपुके पार्षद वाको छीनि लिये ताको आवत देखि उठि आदरते आपने समीप वास दिहेउ अरु यमगण रेते रीते खाली हाथ रिसि ते दांत पीसत हाथ मींजत चले यमपुर को २ गौतममुनि की तिया अहल्या पति शाप ते पाषाण भई परी रहै ताको पदरज दै उद्धार कीन्हेउ गजराज बलते मदान्ध पशु रहा जब ग्राह के संकट में परा तब नाम लिया ताको तुरतही आइ उद्धार कीन्हेउ गीध मांसआहारी अधम पक्षी ताको तुरतही शुभ गति दीन्हेउ दण्डकवन के विटप सब सूखे परेरहैं ते आपके पायँ परतही सब वृक्ष हरित ह्वैगये कपि चञ्चल पशु तिनको सखा बनाये इत्यादि जे जे उद्धार कीन्हेउ ते ते हे नाथ! आपही को नीके मालूम हैं और कोऊ कहां तक जानिसकै तिनके तिनके काज करिबे हेतु साधुन की समाज तजिकै हे कृपासिन्धु! जब जब काज लाग तब तब आपही उठिगये थाको काज करिदीन्हेउ अर्थात् अधमन के उद्धारिबे हेतु साधुसमाज त्यागि तुरत ही धावत रहेउ ३ आजहूं यहि आपके द्वारे पर दीनन को अधिक आदर है ताते केतने पतित नहीं पुनीत होते हैं अर्थात् अबहूं बहुत पतितपावन होते हैं तथा आगेहू बहुत पतित पुनीत होइ हैं तहां जेते खल पूर्व ह्वैगये तथा जेते अब हैं पुनः जेते आगे होइँगे ते सब मेरे पासंगहु न पूजि हैं अर्थात् मैं ऐसा भारी गरू खल हौं कि मेरी तौल समता की कौन कहै सब मिलि मेरे पसंगा में न आवहिंगे भाव पूर्व उत्तम युग रहे तथा आगे कलियुग के अन्तर अन्य युगन को अंश व्यापैगो अरु मैं शुद्ध कलि में हौं वर्तमान मेरी सम कोऊ देखि नहीं परता है भाव खलन में राजा हौं ताते सुगम खलन के उद्धार के उपाय में लगा हौं ४ हे श्रीरघुनन्दन, महाराज! अबलौं तौ मैं आपकी करतूति चितवत हुतो अब तक उदारता गुणकी कर्तव्यता के आसरे रहेउँ भाव याचकमात्र को परिपूर्ण दान देते हैं तथा मोकोभी

देइँगे इस आशा ते यशगानपूर्वक याचना करत रहेउँ अरु रावरे अयनके न चेने आप अवतक उदारता गुण न सँभारे भाव कृपादान मोको नहीं दिये तो अब मोको निश्चय समुझि परा कि सबन के हेतु तौ उदार बनेहौ अरु मेरे हेतु सूमन के शिरताज बन्यउ तौ जो आपको आपना अयश बढ़ावना मंजूर है तौ अब तुलसीदास आपको पुतरो बांधि है काहेते जब आपके द्वारते मैं खाली हाथ लौटौंगो तब सब लोग यही कहैंगे कि ऐसे उदार के द्वारते यह अभागी खाली आया तौ इसीते कछु नहीं बनिपरा तब तौ नहीं पाया तौ याको कहीं ठेकाना नहीं अथवा भले ठेठे मोठे उद्धार होने गये रहैं देखो उद्धार ह्वै आये इत्यादि एतो परिहास लोक में होइगो सो मोपै नहीं सहिजाइगो ताते आपकी नकल वसन को पुतरा बनाइ लम्बे बांस में बांधे कांधे पर धरे देश देश लिहे फिरौंगो जब कोऊ पूछी यह क्या है तब यही बतावौंगो कि अयोध्याधिप रघुनन्दन महाराज हैं अब तक उदार रहैं अब सूम शिरताज बने हैं ५॥

(२४३) तुम सम दीनबन्धु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिलमौलिमणि नहिं जग तुम सम हरि न हरणकुटिलाई १
हौं मन वचन कर्म पातक रत तुम कृपालु पतितनि गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु तुम अनाथहित चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई २
हौं आरत आरतिनाशक तुम कीरति निगम पुराणनि गाई।
हौं सभीत तुम हरण सकल भय कारण कौन कृपा बिसराई ३
तुम सुखधाम राम श्रमभंजन हौं अतिदुखित त्रिविध श्रम पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ राखहु शरण समुझि प्रभुताई ४

टी०। प्रश्न है प्रभु की अबतक न हमारा कोऊ पुतरा बांधा अरु न कोऊ सूम कहा तू क्यों सूम बनाइ पुतरा बांधता है तापर कहत नृपति रघुराई सुनहु हे महाराज, रघुवंशनाथ! मेरी अर्ज सुनिये भाव उदार रघुवंश तामें शिरोमणि उत्तम उदाररूप ते आप अवतीर्ण भये अरु बेप्रयोजन दीनजननको बन्धु समान सदा हित करत रहेउ ताते आपके समान दीनबन्धु दूसरा कोऊ नहीं है तथा मोसम मेरे समान दूसरा कोऊ दीन नहीं है पुनः जे लोक वेदते प्रतिकूल मन वचन कर्म टेढ़ी राह चलते हैं ऐसे कुटिलनमें शिरोमणि हौं इति कुटिलमौलिमणि मोसम मेरे समान जगमें दूसरा नहीं है तथा हे हरि! आपके समान कुटिलाई को हरणहार दूसरा नहीं है भाव मैं दीन आप दीनबन्धु हौ मैं अधम आप अधम उद्धारण हौ १ परधन पर ध्यान अनिष्टचिन्तन नास्तिकता ये तीनि मन के पाप हैं पुनः कठोर झूंठ चुगुली वृथा बकना ये चारि वचन के पाप हैं पुनः परधनहरण हिंसा परस्त्रीरत ये कर्म के पाप हैं इत्यादि हौं मन वचन कर्म पापरत मैं तो मन करि वचन करि कर्म करि पापकर्मन में प्रीति किहे अर्थात् पापनते पतित हौं अरु तुम कृपालु पतितनि गतिदायी हे प्रभु, कृपागुणभरे मन्दिर! पतितजीवन को सुगति देनहारे हौ पुनः हौं अनाथ मोको शरण राखनेवाला कोऊ नाथ नहीं है ताते मैं

अनाथ हौं तथा हे प्रभु! तुम अनाथहित आपु अनाथन के हित सब भांति भलाई करनेवाले हौ यह सुरति चितते कवहूं नहीं जाई अर्थात् आपुके गुणनका चिन्तन सदा चित्त में बनारहता है २ पुनः हौं आर्त तथा तुम आर्तिनाशक अर्थात् कलिकामादि करि दुःखपीड़ित इति आर्त हौं अरु हे श्रीरघुनाथजी! आपु आर्तजन शरणागति ते दुःखनको नाश करिवेनहारे हौ इत्यादि कीर्ति निगम वेद तथा पुराणनि गाई अर्थात् दीनबन्धु अधमोद्धारण पतितपावन अनाथनिके नाथ आर्तिहरण इत्यादि कीर्ति आपकी वेद पुराण गावत हैं ताते सत्य वाणी है ये गुण आपुके प्रसिद्ध हैं तथा दीन अधम पतित अनाथ आर्त हौं सभीत भवकी भय ते भयातुर हैं आपुकी शरण हौं अरु तुम सकल भयहरण हे श्रीरघुनाथजी! गर्भवास, जन्म, व्याधि, जरा, मृत्यु, यमसांसति इत्यादि सकल प्रकारकी भय डर तिनके आपु हरिलेनहारेहौ तौ कौन कारण कृपा बिसराई अर्थात् कौन कारण मोपर कृपा नहीं करते हौ इसीकारण अति आर्त हैं मैं प्रौढ़ता बोलता हौं ३ हे श्रीरघुनाथजी! आपु सुखधाम सब सुखनके भरे मन्दिरहौ भाव आपुको रूप अन्तर बाहरके नेत्रन में परतही सब प्रकार को सुख प्राप्त होत पुनः श्रमभंजन त्रिविध ताप जन्म मरणादि जो जीवका परिश्रम है ताको तोरि डारते हौ भाव आपुको नाम लेतही भवश्रम नाश होत जीव कल्याणपद पावत ऐसे सबल समर्थ सुलभ उद्धारकर्ता स्वामी आपु तिनकी शरण में हौं त्रिविध श्रम पाइ अति दुःखित अर्थात् जन्म, जरा, मरण अथवा काम, क्रोध, लोभ अथवा दैहिक, दैविक, भौतिकादि तीनिहूं विधिते श्रम पाइ थकित अत्यन्त करिकै दुःखितहौं अरु आपु सहजही जीवनके उद्धारकर्ता यह जीवते जानि प्रभुताई समुझि आपना ऐश्वर्य विचारि तुलसीदास कहँ शरण में राखहु ४॥

(२४४) यहै जानि चरणनि चित लायो।

नाहिन नाथ अकारण को हित तुम समान पुराण श्रुति गायो १
जननि जनक सुत दार वन्धु जन भये बहुत जहँ जहँ हौं जायो।
सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित काहू नहिं हरिभजन सिखायो २
सुर मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर मैं तनु धरि शिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रय ताप पापवश काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ३
यत्न अनेक किये सुख कारण हरिपद विमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत विपतिजाल जग छायो ४
मो कहँ नाथ बूझिये यह गति सुखनिधान निज पति बिसरायो।
अब तजि रोष करहु करुणा हरि तुलसिदास शरणागति आयो ५

टी०। हे रघुनाथजी! अकारण को हित बेप्रयोजन हितकर्ता आपुके समान कोऊ दूसरा नाथ नाहिन है अर्थात् बेप्रयोजन हितकर्ता एक आपही हौ यही पुराण श्रुति वेदन गायो यही जानि हे प्रभु! आपुके चरणारविन्दनमें चित्त लगायो

चरणशरण गह्यो १ पुनः जहँ जहँ हौं जायो जहां जहां मेरा जन्म भया तहां तहां जननि जो माता जनक जो पिता सुत जो पुत्र दार जो स्त्री बन्धु जो भाई इत्यादि देहसम्बन्धी बहुत भये ते सब स्वार्थके हितकारी हैं चित्तमें कपट राखे अन्तरते मित्र कोऊ नहीं है भाव परमार्थको हितकर्ता कोऊ नहीं है काहेते हरिभजन कोऊ नहीं सिखायो भाव श्रवण, कीर्तन, सुमिरण, अर्चन, वन्दनादि प्रभुकी दास्यता किसीने नहीं सिखायो २ सुर इन्द्र, बृहस्पति आदि देवता, मुनि कश्यप आदि, मनुज कार्त्तवीर्यादि यावत् राजा मनुष्य हैं दनुज दैत्य राक्षसादि जिनके उड्डीस तन्त्रादि हैं अहि वासुकी, कर्कोटकादि यावत् नाग हैं किन्नर अश्वाकारमुख देव इत्यादि यावत् ऐश्वर्यवन्त कहावते हैं तिनमें काहि मैं तनुधरि शिर नहीं नायों अर्थात् जब जब तनु धर्‍यो तब तब अनेक देवादिकनको पूजत रहेउँ अरु पापनवश त्रयतापन में जरत फिर्‍यों अर्थात् मन, वचन, कर्म ते काल स्वभाव आधीन सदा पापकर्म करतरहेउँ तिनके वश परा दैहिक, दैविक, भौतिकादि तीनिहू तापनमें जरत फिरत रहेउँ तहां हे हरि, श्रीरघुनाथजी! सुर, नर, नागादि जिनको पूजत रहेउँ तिन काहू तौ न कृपा करि छुड़ायो पाप, ताप कोऊ न मिटाइ सका भाव देवादिकौ सब स्वार्थ के मीत हैं सेवा अनुरूपै फल देते हैं दुःखके साथी नहीं हैं ३ खेती, वणिज, चाकरी, दम्भ, छल, चोरी, ठगी वा पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रत इत्यादि अनेक यत्न सुख होनेकारण किये परन्तु हे हरि, श्रीरघुनाथजी! आपके पद कमलनते विमुख रह्यों ताते सुख हेतु यावत् उपाय करतरहेउँ तिनमें सदा दुःखै पावतरहेउँ सुखी कबहूं नहीं भयों हानि, रुज, वियोग, दरिद्रता, संकट बनै रहेउ भाव सुख की मूल हरिपद सनेह सो तौ रहा नहीं देहाभिमान विषय वश सुख के चाहते शुभौ कर्म कीन्हे तिनमें अशुभ असंख्यन भये तिनको फल दुःखहू न कीन्हेउ अब थाक्यो कौन भांति यथा जलहीन नाव अर्थात् यथा विना जल के आधार नाव नहीं चलसक्ती है तथा विषयवासना ते लोकसुख हेतु जो अनेक मनोरथ उठते हैं तिनहिनकी आधार जीव अनेक योनिन में भ्रमता है सो विषय मनोरथ मन्द परो काहेते गर्भवास, जन्म, जरा, मरण, यमसांसति आदि विपत्तिजाल जग छायो अर्थात् जहां वधिक जाल लगावत तहां चारा धरिदेत ताहीको देखि पक्षी जात तब जाल में फँसाइ मारत तथा काल वधिक लौकिक सुख चारा देखाइ चौरासी जाल लगाये है जहां सुख में जीव परा तहां चौरासी में फँसाइ जीव को नाश किया इति विपत्तिजाल जग में छायो देखि भय मानि थक्यों ४ हे नाथ, श्रीरघुनाथजी! मोको जो पूर्व यह गति भई ताको बूझिये विचारि लीजिये काहेते यह दुर्गति भई कि सुखनिधान निजपति बिसराये अर्थात् सब सुखन को भरा स्थान जो परमेश्वर सोई जीव को पति है ताही की शरणागति में जीव को सुख है तासों जब विमुख है विषयवश देहाभिमानी है लोक सुख में भूला ताहीते दुःख को पात्र भया इत्यादि कारण में परि अबतक मैं सब भांति को दुःख सहत रह्यों सो तौ आपुते विमुख है संसार के सम्मुख रहौं ताते विषय सुख में भूलारह्यों तावत् जो दुःख सह्यों सो तौ उचित रहै अरु अब जो काल वधिक कामादि कांपा में विषय लासा लगाये मेरे पाछे परा है यह

दुःख होना अब उचित नहीं है काहेते तुलसीदास शरणागति आयो अर्थात् लोक सुख को मनोरथ त्यागि विषयन ते विमुख है हे श्रीरघुनाथजी ! मनको सम्मुख करि आपुकी शरणागति आया हौं अब रोष तजिकै करुणा करहु रोष को कारण यह कि यथा माता पिता पुत्रन को तैसे कृपादृष्टि ते प्रभु भूतमात्र की रक्षा करते हैं यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यानु-संधानं कृपा सा पारमेश्वरी ॥ इत्यादि परमेश्वर तौ रक्षा करत अरु जीव विमुख विषयी है भवसागर को जात सो यावत् सम्मुख नहीं होत तावत् परमेश्वर को रोष है सो कहत कि अब मैं सम्मुख हौं ताते रोष त्यागि अब करुणा करहु करुणालक्षण ॥ दो० ॥ सेवक दुख मैं दुखित ह्वै, स्वामि विकल ह्वैजाइ। दुख हरि सुख साजै तुरत, करुणा गुण सो आइ ॥ भाव करुणा करि मेरा दुःख हरहु ५ ॥

(२४५) याहि ते मैं हरि ज्ञान गँवायो।

परिहरि हृदयकमल रघुनाथहि बाहर फिरत विकल भयो धायो १
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मर्म नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल परमसुगन्ध कहँते धौं आयो २
ज्यों सर विमल वारि परिपूरण ऊपर कछु सिवार तृण छायो।
जारत हियो ताहि तजि हौं शठ चाहत यहि विधि तृषा बुझायो ३
व्यापत त्रिविध ताप तनु दारुण तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहि धाम नाम सुरतरु तजि विषय बबूर बाग मन लायो ४
तुम सम ज्ञाननिधान मोहिं सम मूढ़ न आन पुराणनि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ५

टी० । पूर्व काहेते विमुख भयों कि हृदयकमल विषे जो रघुनाथजी वास किहे हैं तिनहिं परिहरि त्यागकरि बाहर धायो फिरत विकल भयों अर्थात् हृदयकमल में यावत् श्रीरामरूप को ध्यान थिर बनारहत तावत् आत्मरूप को ज्ञान अरु आनन्द बनारहत सो हृदय को ध्यान त्यागि बाहर रामरूप को ढूंढ़िवे हेतु धायो फिरत रहौं कहीं नहीं पायों तब विकल भयों याही कारण ते हे हरि, श्रीरघुनाथजी ! मैं आपना ज्ञान गँवायों अर्थात् देहाभिमानी है इन्द्रिय विषयन के वश में परि काल स्वभाव के प्रभाव कर्मबन्धन में परि दुःखपात्र भयों १ कौन भांति हृदय में रामरूप त्यागि बाहर ढूंढ़त फिरत मैं विकल भयों ज्यों कुरंग मृग निज आपने अंग को रुचिर सुन्दर मद जो सुगन्धित कस्तूरी यद्यपि वाकी नाभिन में है परन्तु वह ऐसा अति मतिमन्द अत्यन्त मन्दबुद्धि मर्म वाको निश्चय हाल नहीं पायो कि मेरीही नाभि में यह सुगन्ध है इति विना जाने सुगन्ध थल जानिवे हेतु गिरि जो पर्वत तरु जो वृक्ष लता जो वेलि तथा भूमि विषे जो बिल हैं इत्यादि सर्वत्र खोजत फिरत जब कहीं नहीं पावत तब मन में शोच विचार सन्देह करत कि परम उत्तम सुगन्ध कहांते धौं आवती है अर्थात् यथा मृग आपने तन मद की सुगन्ध

अज्ञानताते बाहर ढूंढ़ता है तैसेही जीव के अन्तर जो रामरूप बसा है ताके सम्मुख रहे को आनन्द आतमा जानता है जब प्रकृतिवश जीव देहाभिमानी अज्ञ भयो तब अन्तर के रूप को जानता तौ है नहीं जब सत्संग कथा श्रवणादि में किंचित् जीव थिर भया तैसेही आतमरूप में परमेश्वर के प्राप्ति की वासना उठी तब बाहर हरिधाम हरि की पुरी इत्यादिकन में ढूंढ़त फिरत परन्तु वह प्राप्ति को सुख तौ होत नहीं अरु वासना बनी है इत्यादि यावत् हृदय में रामरूप की प्राप्ति नहीं तावत् जीव स्थिर नहीं २ ज्यों विमल वारि परिपूर्ण सर यथा अमल जल भरा तड़ाग तामें जल के ऊपर सिवार कछुक अरु नरई, मोथा, गोंद इत्यादि तृण छायो प्रसिद्ध जल नहीं देखात अरु ऐसा ज्ञान है नहीं जो अनुमान ते जानि लेवें कि जो मोथाआदि तृण है तौ अवश्यही जल होइगो इत्यादि विना विचारे वाको त्यागि चले ऊपर में परे प्यास ते हियो जरावत यही विधि हौं शठ तृषा बुझायो चाहत अर्थात् हृदयरूप तड़ाग में अमल जलसम रामरूप परिपूर्ण है तापर विषय वासना सिवार कामादि विकार तृण छायो है इत्यादि भ्रमते ताहि हृदय में श्रीरामरूप को त्यागि लोक तापन में हृदय जरावत हौं ऐसा शठ मैं हौं यहि विधि तृषा, आशा, तृष्णा बुझावा चाहत हौं सो कैसे जीव सुखी है सकत हैं ३ ज्वर, शूलादि व्याधि दैहिक ताप हैं अनाश्रित इष्टहानि, वियोगादि दैविक ताप हैं राजदण्ड, चौर, व्याघ्रादि वं शत्रुबाधा भौतिक ताप हैं इत्यादि त्रिविध तीनिउँ विधि की तापैं दारुण कठिन तनु में व्यापती हैं ताहू पर दुःसह जो सहि न जाइ ऐसा दरिद्र सतायो महादुःखदायक भया यथा प्रथम ज्वरादि व्याधि भई तथा व्यापार में हानि होने लगी इधर चोरी भई पोत हेतु राजा दण्ड देत कर्ज हेतु महाजन सताये घर तौ खाने को नहीं आपद काल सुनि मित्रसम्बन्धी आवने लगे सोई दुःसह दरिद्र है इत्यादि काहेते भयो ताको कारण कहत कि अपनेहि धाम अर्थात् देश विदेश कहीं ढूंढ़ने नहीं जाइ को है आपने घरही में नाम सुरतरु अर्थात् रामनामरूप कल्पवृक्ष प्राप्त है जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि सब फल सुलभै देनहारा ताको त्यागि विषयरूप बबूर की बाग मन में लगायो अर्थात् एक तौ सकंटक वृक्ष पुनः फूल फल किसी काम के नहीं पुनः जामें पिशाचन की वासते घोर गति को लै जानेवाले तथा विषय व्यापार में अपमान दण्डादि कांटा हैं ताकी वासना फूल प्राप्ति फल सहजही भवदुःखदायक तामें कामादि वसत ते घोर गति को लै जानेवाले इत्यादि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इत्यादि विषयवासना सदा मन में बसी हैं सोई बबूर बाग सम मन में लगाये हौं ताहीते दुःख को भाजन हौं अरु जो विषय बबूर बाग काटि रामनामरूप कल्पवृक्ष मन में लगावौं तब सबै पदार्थ सुलभ पावौं ४ हे श्रीरघुनाथजी! तुम सम ज्ञाननिधान ज्ञानरूप जल को भरा समुद्र दूसरा कोऊ नहीं है अर्थात् परिपूर्ण अखण्ड सदा एकरस ज्ञान ऐसा दूसरे में नहीं है एक आपही में परिपूर्ण ज्ञान है इत्यादि पुराणै गावत यथा वाल्मीकीये ॥ बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम् । परिवादोपवादो वा राघवे नोपपद्यते ॥ सान्त्वयन्सर्वभूतानि रामः शुद्धेन चेतसा। गृह्णाति मनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः ॥ सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान्दानेन राघवः । गुरूञ्छुश्रूषया

धीरो धनुपा युधि शास्त्रवान् ॥ सत्यन्दानन्तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् । विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥ इत्यादि यथा आपुके समान ज्ञान-निधान कोऊ नहीं है तथा मोसम मूढ़ न मेरे समान मूढ़ दूसरा संसार में नहीं अर्थात् लोकोत्तर महाअज्ञानी एक महीं हौं तहां जो सेवक स्वामी दोऊ मूढ़ होते हैं तब नहीं निर्वाह होता है अरु दुइ में एकहू सज्ञान होइ तौ निर्वाह होत अरु जो स्वामी सज्ञान तौ निर्वाहना केतनी बात ताते गोसाईंजी कहत कि हे प्रभु ! मैं सेवक यद्यपि मूढ़ हौं तहां स्वामी आपु तौ ज्ञाननिधान हौ यह जीव में विचारि हे नाथ ! जैसा उचित समुझि परै तैसा मन भायो जो कछु मन में नीक लागै सो कीजिये ५ ॥

(२४६) मोहिं मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।

याके लिये सुनहु करुणामय मैं जग जन्म जन्म दुख रोयो १
शीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भांतिन श्रम करत मोह वश वृथहि मन्दमति वारि विलोयो २
कर्मकीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावन्त सुरसरि बिहाय शठ फिरि फिरि विकल अकाश निचोयो ३
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो ।
डासतही गइ बीति निशा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो ४

टी० । प्रभु को प्रश्न है कि हृदयकमल में जो हमारा रूप ताको जानते हौ तौ आपना पूर्वरूप जानते हौ तौ तुम चैतन्य जीव है क्यों हमको त्यागि ज्ञान गँवाइ मूढ़ बने तापर प्रार्थना करत कि मैं क्या करौं मूढ़ मन मोहिं बहुत बिगोयो मेरी चैतन्यता नाश करि अपनी अनुकूल करि लियो संदेह है कि मन कौन है जीव की चैतन्यता नाश करनेवाला तहां यथा माता पिता को अंश मिलि पुत्र होता है तैसे ही ईश्वर को अरु प्रकृति को अंश मिले जीव भया तहां आत्मा ईश्वर को अंश सो तौ अमल निर्विकार सदा थिर रहत अरु मन प्रकृति को अंश सो विकार सहित सदा चञ्चल है तहां अन्तर में जो ईश्वररूप बसा है तापर यावत् दृष्टि रहत तावत् जीव आत्मरूप बना रहत अरु बाह्य जो लौकिक सुख सम्बन्धी इन्द्रियन की विषय इत्यादि पर इन्द्रिय द्वारा यावत् जीव की दृष्टि रहत तावत् जीव मनरूप है यथा प्रकृति जड़ है तैसे वाको अंश मनौ जड़ मूढ़ चंचल है तहां ईश्वर प्राप्ति को आत्मरूप में जो आनन्द है सो यद्यपि अद्भुत है परन्तु वह आनन्द अन्तर में गुप्त है पुनः उहां को कोऊ सहायक नहीं विवेक विरागादि जे सहायक हैं ते अबल हैं अरु विघ्नकर्ता कामादि अनेकन ते महासबल हैं पुनः इन्द्रियन की विषय तथा लौकिक सुख देहसम्बन्धी देहाभिमान ऐश्वर्य इत्यादि बाहेर को सुख सो प्रसिद्ध है पुनः सहायक सबै हैं-इस बलते मूढ़ मन मोहिं बहुत बिगोयो कैसे बिगोयो हे करुणामय ! मेरी अर्ज सुनिये करुणा यथा ॥ दो० ॥ सेवक दुखते दुखित है, स्वामि विकल है जाइ । दुख हरि सुख साजै तुरत, करुणा गुण सो

आइ ॥ भाव करुणासहित मेरी प्रार्थना सुनिये याके लिये जग में जन्म जन्म दुख रोयो अर्थात् इस मन के सुख के हेतु विषयन में परि अनेक कर्म कीन्हेउँ ताके भोग हेतु अनेकन देह धर्यो जन्म जन्मप्रति दुःख के वश मोको रोवतै बीत्यो १ शीतल जाके प्राप्त रहे तीनिहु तापैं जीव को नहीं तप्त करि सकत पुनः मधुर मीठो स्वाद जामें पान करत प्रिय लागत ऐसा पियूष अमृत सम जीव को अमर करता ऐसा सहज सुख अर्थात् परमेश्वररूप प्राप्ति को शुद्ध आत्मरूप को जो सदा एकरस अखण्ड आनन्द है सो अन्तर में आपने निकटहिं रहत सो मन के कहेते ऐसा खोयों त्याग करि दिहेउँ सो जनु अत्यन्त दूरि है गया कौन भांति दूर भया मोहवश अर्थात् कारण मायावश आत्मरूप भुलाइ देहाभिमानी है लोक सुखहेतु बहुत भांति को श्रम करत रहेउँ कौन भांति श्रम करत रहेउँ कि मतिमन्द वारि बिलोयों ऐसा निर्बुद्धि हौं कि घृत पाइबे हेतु जल मथत रहेउँ जहां तीन काल में सुख नहीं सोई लौकिक व्यापार में लाग रहेउँ २ कैसे व्यापार में लाग रहेउँ कर्मकीच जिय जानि चित सानि जीव ते जानत हौं कि कर्म कीचर है यामें परि अवश्य फँसि जाना है सो जानि बूझि कै कर्मकीच में चित्त सान्यो अर्थात् यह जानत हौं कि कर्मन को फल विना भोगे छुट्टी नहीं मिलती है परन्तु देहसुख के हेतु अनेक कर्म करता हौं तहां शुभकर्म तौ सुख की वासना राखि करता हौं अरु अशुभ कर्म आपही होत यथा जप, पूजा, पाठ, तप, तीर्थ, व्रत, दानादि किहे होत भाव सुख वासना हेतु श्रद्धा श्रम ते होत अरु क्रोधवश परहानि, क्षुधा दण्ड, जीवहिंसा आपही होत लोभवश चोरी, ठगी, छल, दम्भादि ते परधन हरण आपही होत कामवश वेश्या, परस्त्रीरत आपही होत इत्यादि शुभाशुभ कर्म करि ताके भोगहेतु देह धरि सुख दुःख भोगेउँ अरु सुखी होने हेतु सोई कर्म पुनः करता हौं ऐसा कुटिल हौं कि मलै ते मल धोवता हौं जिन करि जीव मलीन भया सोई सवासनिक कर्म पुनः करता रहेउँ पुनः सुरसरि विहाय गङ्गाजी को त्यागि तृषावन्त फिरि फिरि प्यास के मारे विकल वारम्वार आकाश निचोवता हौं सुरसरि सरीखे राम भक्ति त्यागि सुख की चाहवश सवासनिक कर्मन करि सुख चाहत हौं ऐसा शठ महामूर्ख हौं अथवा सुख के प्यास ते दैवाधीन भाग्य ढूंढ़ता हौं ३ डासतही बिछौना बिछावतही सब निशा बीति गई हे नाथ ! नींद भरि सुख ते कबहूं नहीं सोयों अर्थात् सुख के उपायन करत जन्म बीति गयो जीव सुखी कबहूं नहीं भयो इत्यादि निज आपने दोष कछू नहिं गोयों चोराइ नहीं राख्यों भाव प्रसिद्ध आपने अवगुण कहि अब दीन है शुद्ध भाव ते आपु की शरण हौं ताते हे प्रभु ! तुलसीदास पर अब कृपा करहु आपनी शरण में राखि सब विकार ते रक्षा करहु ४ ॥

(२४७) लोक वेदहूं विदित बात सुनि समुझि मोह मोहित विकल मति थिति न लहति । छोटे बड़े खोटे खरे मोटेहू दूबरे राम रावरे निबाहे सबही की निबहति १ होती जो आपने वश रहती एकही रस दुनी न हरष शोक सासति सहति । चहतो जो जोइ

जोइ लहतो सो सोइ सोइ केहू भांति काहूकी न लालसा रहति २ कर्म काल स्वभाव गुण दोष जीव जग माया ते सो सभै भौंह चकित चहति। ईशनि दिगीशनि योगीशनि मुनीशनिहूं छोड़ति छोड़ायेते गहायेते गहति ३ शतरंज को सो राज काठ को सब समाज महाराज बाजी रची प्रथम न हति। तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ बहु वेष बहु मुख शारदा कहति ४॥

टी०। छोटे मनुष्यादि बड़े देवादि अथवा छोटे सुर नर नागादि बड़े शिव ब्रह्मादि पुनः खोटे जे ईश्वर ते विमुख दैत्य-राक्षसादि तथा खरे जे ईश्वर के सम्मुख हैं मुनीश्वरादि पुनः मोटे जिनमें काहू प्रकार को अहंकार है यथा राजा, धनी, विद्वान्, सुकृती, तपोधनी इत्यादि पुनः दूबरे जे मानभंग हैं यथा सेवक निर्धन धर्म कर्मरहित इत्यादि सबकी राम रावरे निवाहे निबहत है श्रीरघुनाथजी! आपुहीके निर्वाह कीन्हे सबही की सब बात निबहती है अर्थात् आपुके भृकुटी फेरेते छोटे बड़े ह्वैजाते हैं यथा शबरी गीध उत्तमगति पाये तथा बड़े छोटे ह्वैजाते हैं यथा नृग गिरगिट भये खोटे प्रह्लाद खरे भये खरे रावण उत्तम ब्राह्मण ते खोटे भये मोटेहू दक्ष तिनकी दुर्दशा भई दूबरे निषाद मोटे भये यह लोक में विदित है तथा वेदहू में विदित है यथा ॥ चौ० ॥ रामकीन चाहैं सो होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई ॥ पुनः पद्मपुराणे ॥ रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम्। नहि रामात्परो योगो नहि रामात्परो मखः ॥ स्कन्दपुराणे ॥ ब्रह्मविष्णु-महेशाद्या यस्यांशे लोकनायकाः। तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥ पुनः श्रुतिः "सश्रीरामः सवितारी सर्वेषामीश्वरः यमेवेशः वृणुते सः पुमानस्तु यमवेदस्माद्भूर्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव" इत्यादि लोक वेद में विदित सो बात सुनि पुनः वाको समुझि अन्तर में दृढ़ करता हौं परन्तु मोह करिकै मोहित मति सो थिति नहीं लहत अर्थात् कारण मायावश आत्मरूप भुलाइ देहाभिमान ते विषयनके वश परे काम क्रोधादि वेगते बुद्धि स्थिर नहीं होने पावती है १ विषय कामादि के वशते मति स्ववश नहीं है ताते अनेकन दुःख सहती है अरु जो आपने वश होती तौ सदा एकैरस रहती तौ दुनी जो दुनियां तामें स्वारथ लाभ पाइ हर्ष खुशी पुनः हानि भये पर शोक दुःख होत इति हर्ष शोक के वशते सासति न सहत अर्थात् जो बुद्धि स्वतन्त्र होती तौ सदा एकरस आनन्द रहत भाव जो इन्द्रियविषय त्यागि मनआदि एकत्र है शुद्धजीव की प्रीति रामरूप में लगी रहती तौ सदा आनन्द बना रहता पुनः इस आचरणवाला जो जन लौकिक तथा पारलौकिक जोई जोई पदार्थ चाहता सो जन सोई सोई पदार्थ लहता पावता तब स्वारथ परमारथादि केहू भांति की लालसा मनकी अभिलाष काहू की न बाकी रहिजाती सर्वांग सुख सुलभ प्राप्त रहता २ कर्म यथा ॥ दोहा ॥ संग राग अरु द्वेष बिन, नित्यकर्म जो होइ। तजि फल इच्छा कीजिये, सात्त्विक कर्म सुजोइ ॥ जो कीजे करि कामना, कीधौं करि हंकार। जामें श्रम है अतिघनो, सो

राजस निर्धार ॥ पौरुष हिंसा शुभाशुभ, ज्ञान न वचन विचार। जो कीजै अज्ञानते, तामस कर्म निहार ॥ सत्कर्म यथा अर्थपञ्चके ॥ यज्ञो दानं तपो होमं व्रतं स्वाध्यायसंयमः। संध्योपास्तिर्जपः स्नानं पुण्यदेशाटनालयम् ॥ चान्द्रायणाद्युपपवासश्चातुर्मास्यादिकानि च ॥ फलमूलाशनश्चैव समाराधनतर्पणम् ॥ इति शुभ पुनः अशुभ यथा ॥ हिंसा, चोरी, ठगी, परस्त्रीगमन, जुवा, मद्यपान, मांसभोजन, नास्तिकता, परनिन्दा, कृतघ्नता, शरणहन्ता, स्त्रीहन्ता, चुगुली, गुरुजनअपवाद इत्यादि शुभाशुभ कर्म पुनः सतोगुणी कोमलस्वभाव, रजोगुणी भोगीस्वभाव, तमोगुणी कठोर इति स्वभाव गुण यथा ॥ दोहा ॥ सकल वस्तुको ज्ञान अरु, बुद्धि विमल जब होय। तबै सतोगुण जानिये, कहत सयाने लोय ॥ लोभ लिहे व्यवहार जो, सोई रजगुण मान। आलस निद्रा विकल मन, मोह तमोगुण जान ॥ अथवा शान्ति, समता, शील, विवेक, विराग, क्षमा, दयादि गुण पुनः दोष यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इत्यादि पुनः जीव जो कारण मायावश आत्मरूप भुलाइ अल्पज्ञ ह्वै विषयवश भयो तथा जग पञ्चभौतिक लोकरचना माया पञ्चप्रकार भगवत्शक्ति यथा अविद्या जो जीवको भुलावत १ विद्या जो जीव को चैतन्य करत २ संधिनी जो जीव ईश्वर की संधि मिलावत ३ संदीपिनी जो जीवके अन्तर ईश्वर की दीप्ति प्रकाशत ४ आह्लादिनी जो जीवके अन्तर परब्रह्म का आनन्द प्रकाशत इत्यादि तोसों सभय चकित भौंहैं चहत हे श्रीरघुनाथजी! आपके डरते सब चित चकित आपकी भृकुटी निहारत रहते हैं भाव जैसी आपकी मरजी देखत तैसेही काम सब करते हैं यथा जटायुके सब कुकर्म रहैं ते आपकी मर्जी सुकर्म ह्वैगये नृगके सुकर्म ते कुकर्म भये तथा कोलभीलन को कठोर स्वभाव सो कोमल ह्वैगया विभीषण तमोगुणी ते सतोगुणी भये वानरनके दोषते सब गुण ह्वै गये इत्यादि पुनः अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, ब्रह्मा, शिवादि ईशनि पुनः इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम, अग्नि, पवनादि दिगीशनि दिक्पालनि पुनः लोमश, याज्ञवल्क्य, मार्कण्डेयादि योगीशनि पुनः भृगु, नारद, सनकादि, शुकदेवादि मुनीशनहू को आपही के छुड़ाये ते माया छाड़ती है अरु आपही के गहाये ते गहति पकरि लेती है भाव आपहीके वश सब हैं स्वतन्त्र कोऊ नहीं एक आपही स्वतन्त्र हौ ४ हे श्रीरघुनाथजी! आपकीप्रेरणा अनुकूल देहान्तर जीवके स्वतन्त्रता परतन्त्रता के यावत् व्यापार हैं ते कौन भांति हैं यथा शतरंज को सो राज नाममात्र जामें काठे को सब राज समाज अर्थात् दोऊ पक्षनमें द्वै रंगमात्र भेद तामें बादशाह वजीर पुनः द्वै द्वै पील द्वै द्वै घोड़े द्वै द्वै रथ आठ आठ पियादे होतेहैं पुनः आधगज लंबी चौड़ी बनात तामें टँके डोरनते आठ घरन की आठ पांती इति चौंसठि कोठा बने होते हैं–दोऊ खेलारी आपनी आपनी दिशि किनारे पर सब समाज स्थापित करते हैं यथा कोनेनमें दोऊ रथ ताकी चाल चारिहू दिशि जहां तक खाली कोठा पावैं तहांतक चलैं अरु शत्रुदलको मारैं तिनके भीतर दोऊ घोड़े रहत ते अढ़ाई घर चलत अरु मारत सब दिशों में ताके भीतर द्वै पील रहते हैं ते तिरछा तीसरे घर पर चलते मारते हैं ताके भीतर द्वै घर रहे तामें बामदिशि वजीर तिरछा चारिहु दिशि में एक घर चलत मारत ताके दहिने बादशाह आठों दिशि को एक

घर चलत मारत आगे आठ प्यादे सीधे चलत तिरछे मारत इत्यादि चाल खेलत सन्ते जब बादशाह को बचावने को ठौर न रहै सोई हारि गया सो सबनाममात्रैहैं तामें हारि जीति खेलारी की होनी है इसी भांति हे रघुनन्दन, महाराज! मोह-दल लैके माया तथा विवेकदल लैके जीव दोऊ बाजी रचे खेलिरहे हैं तहां प्रथम जो मोह की सेना है सो न हति नहीं मारे जाते हैं अरु पीछे कहे जो विवेकसेना सो मरत जाती है अर्थात् श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिका, हाथ, पद, लिङ्ग इति आठ कोठा हैं पुनः प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इति आठो पांतिन के चौंसठि कोठा भये पुनः माया के दिशि मोह बादशाह ताकी मिथ्या दृष्टि आठहू दिशि की चाल विवेकदल को नाश करता है काम वजीर परस्त्री में रति टेढ़ी चाल विवेक नाश करता पुनः एक पील मद है त्यहि करिकै तिसरिहन सो ईर्षा दूसरा पील गर्व है त्यहि करिकै तीसरेन की निन्दा इति तीसरे घरकी चाल है एक मित्र दूसरा शत्रु तीसरा उदासीन तहां एक घोड़ा क्रोध है त्यहि करिकै जो भूल हैं सो तिसरेको भी शत्रु बनाइ लेत सोई अढ़ाई घर की चाल है दूसरा घोड़ा लोभ है त्यहि करिकै तृष्णा सो उचित अनुचित कछु नहीं विचारत सोऊ अढ़ाई घर की चाल है पुनः एकरथ अधर्म है तामें अश्रद्धा आठहू धर्मांगनको नाश करत ॥ धर्मांग यथा धर्मशास्त्रे ॥ इज्याध्ययनदानानि तपःसत्यं धृतिः क्षमा। अक्षोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्चाष्टविधःस्मृतः॥ दूसरा रथ दम्भ है तामें आशा करिकै चारिहु दिशि को धावना इति आठो घरन तक चारिहु दिशि की चाल है पुनः अहंकार १ लालच २ अविचार ३ पाप ४ पाखण्ड ५ अपयश ६ विरोध ७ असत्य ८ इति आठो प्यादे आगे के घरन में हैं सो ये करत में तो भले लागत सो सीधी चाल है अरु फल टेढ़ सोई तिरछे मारना है पुनः ये जब विवेक के स्थान पर पहुँचि जाते हैं तब वजीर की तुल्य चाल भी टेढ़ी है जाती है अर्थात् विवेकी जनन में जब अहंकार लालच अविचारादि आया तब बाकी चाल भी टेढ़ी ह्वैजाती है इति माया के दिशि की साज पुनः जीव के दिशि की साज यथा विवेक बादशाह है ताकी ब्रह्मविद्या आठो दिशि की चाल है पुनः विचार वजीर है सत् असत् को निरुवार तिरछी चाल है पुनः एक पील संतोष है तामें हानि लाभ को वेग त्यागि तृप्त होना तीसरे घर की चाल है दूसरा पील धैर्य है ताते शत्रु मित्र उदासीनो पर क्षमा तीजे घर की चाल है पुनः एक घोड़ा सत्य है तामें साधुताते उदासीन शत्रु को भी मित्र तुल्य जानना अढ़ाई घरकी चाल पुनः दूसरा घोड़ा शील है ताते उदासीन शत्रुवों से मित्रतुल्य लज्जा करना अढ़ाई घर की चाल है पुनः एकरथ धर्म है तामें श्रद्धाते सत्य, शौच, तप, दानादि चारिहु दिशि की चाल है पुनः दूसरा रथ वैराग्य है तामें उदासीनताते मन्द, तीव, तीव्रतर, तीव्रतम इति चारिहु दिशि की चाल है पुनः ज्ञान १ आर्जव २ आनन्द ३ निष्कपट ४ सुयश ५ प्रकाश ६ असंग ७ अभ्यास ८ इति आठो प्यादे आगे हैं ते कहनेमात्र सुगम सीधी चाल है अरु क्रिया टेढ़ी तिरछी मारु है ये भी मोह के स्थान जाइ वजीरवत् होते हैं अर्थात् मोही पुरुषन में जात तब कहनूति भी टेढ़ी ह्वै जाती है इत्यादि बाजी रची है तामें दोऊ राजसमाज काठकी ऐसी साज है अर्थात् हे रघुनाथजी! आपही की

प्रेरणाते दोऊ समाज चैतन्य होते हैं नातरु दोऊ चैतन्यता रहित हैं पुनः दोऊ समाज में बहुत प्रकारके वेष हैं तथा बहुत प्रकार के सुख हैं इत्यादि शारदा कहत अर्थात् शारदा कही वाणी तामें वेद, शास्त्र, संहिता, पुराण, यामल, रहस्य, नाटकादि में वर्णन है प्रथम मोह दिशि को वेष यथा ब्राह्मणवेष, क्षत्रियवेष, वैश्यवेष, शूद्रवेष, राजावेष, पण्डितवेष, कविवेष, छैलवेष, दूलहवेष इत्यादि देश देशन में बहुतभांति के होते हैं तहां को सुख यथा॥सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम्। भूषणं वाहनं चेति भोगाष्टकप्रकीर्त्तितम्॥ इत्यादि सहित धन, धाम, धरणी, बन्धु, पुत्रादि, आरोग्य, जीवन इत्यादि पुनः विवेक दिशि को वेष सुख यथा ब्रह्मचर्यवेष, वानप्रस्थवेष, संन्यासवेष, शैववेष, शाक्तवेष, वैष्णववेष इत्यादिकन में बहुत भेष हैं तहां को सुख यथा भजनानन्द, प्रेमानन्द, ब्रह्मानन्द इत्यादि अनेक सुख हैं सो वेदादि वाणी वर्णन करत तापर गोसाईंजी कहत हे प्रभु! हारि आपही के हाथ है अर्थात् जीव विषयासक्त है जब आपुते विमुख भया तब मोहदल को सबल करि दीन्हेउ माया जीति गई जीव हारिकै वाही को गुलाम है गया तथा हे नाथ! जीतिबो आपही के हाथ है अर्थात् विषय आशा त्यागि जब जीव आपु के सन्मुख भया प्रेम समेत श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि करने लगा तब आपु कृपा करि विवेकदलको सबल करि दीन्हेउ जीव जीति गया माया हारिकै उसीकी परिचर्या करने लगी यथा अम्बरीषादि ४॥

(२४८) राम जपु जीह जानि प्रीतिसों प्रतीति मानि रामनाम जपे जैहै जियकी जरनि। रामनाम सों रहनि रामनाम की कहनि कुटिल कलिमल शोक सङ्कट हरनि १ रामनाम को प्रभाव पूजियत गणराव कियो न दुराव कही आपनी करनि। भवसागर को सेतु काशीहूं सुगति हेतु जपत सादर शम्भु सहित घरनि २ वालमीकि व्याध है अगाध अपराधनिधि मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि। रोंक्यो विन्ध्य सोख्यो सिन्धु घटजहूं नामबल हार्यो हिय खारो भयो भूसुर डरनि ३ नाम महिमा अपार शेष शुक बार बार मति अनुसार बुध वेदहु बरनि। नामरति कामधेनु तुलसी को कामतरु रामनाम है विमोह तिमिर तरनि ४॥

टी०। हे जीह! रामनाम को प्रभाव जानि ताकी प्रतीति मानि प्रीति सों रामनाम जपु कौन प्रयोजन हेतु कि रामनाम जपेते जन्म, मरण तीनहुँ तापादि जीव की जरनि नाश हैजैहैं अर्थात् वालमीकि उलटा नाम जपि महामुनि भये पुनः यमन मरण समय हराम कहिकै परमपद पायो इत्यादि प्रभाव सुनि ताकी विश्वास राखि पुन इन्द्रिय मनादि सर्वांग में रामसनेह परिपूर्ण बना रहै इति प्रीति सों रामनाम जपेते लोक में दैहिक, दैविक, भौतिकादि तापैं पुनः परलोक में गर्भवास यम सांसति आदि ताप इत्यादि सब मिटि जाइ जीव सदा आनन्द रही काहेते

जीव को आन्द रही कि रामनाम के जाप करनेमें प्रीतिपूर्वक अभ्यास राखना अर्थात् एक लक्ष वा दुइ लक्ष नित नेम ते रोज जाप करना इति रामनाम सों रहनि पुनः रामनाम को प्रताप वर्णन करना अथवा रामचरित सब रामनाम ही है ताको कीर्तन करना इति रामनाम की कहनि सो कैसी पावन प्रतापवन्त है कि कुटिल जो कलिकाल ताके प्रभाव ते मल जो महापापहैं सो वर्तमान में जीवन ते हुआ करते हैं सोई जीव में मैलसम लागत जात तथा पूर्व के पापकर्मन के फल हानि, वियोग, दरिद्रतादि शोक मानसी दुःख पुनः शूल व्याधि राजदण्डादि संकट इत्यादि को हरि लेनहारी है अर्थात् रामनाम स्मरण कीर्तन कीन्हे कलि प्रभाव पापकर्म दुःख संकटादि नाश ह्वै जात शुद्ध जीव रामानुरागी औरन को पावनकर्ता है सो आगे बखान करत १ रामनाम के प्रभाव ते गणराव प्रथम पूजियत अर्थात् एकती पशुवदन ताहीते बल मद उन्मत्त अनयरत रहे पुनः शिव के गणन को विषम तीक्ष्ण स्वभाव तिन के नायक रहे ताते महाउपद्रव करते रहे अर्थात् घन, वृक्ष, पर्वत तोरि डारैं अनेकन मुनिन को मारि डारैं इति महाउपद्रव देखि शिवजी प्रभु को आराधन कीन्हे रघुनाथजी प्रसिद्ध ह्वै " वरंब्रूहि " बोले शिवजी कहे मेरा पुत्र अनेकन मुनिन को मारा है ताको निष्पाप करौ तब रघुनाथ जी आपना सहस्रनाम गणेश को उपदेश किये ताही के स्मरण करत संते सब पाप नाश भया सब अवगुण मिटि गये शुद्ध स्वभाव ते रामानुरागी ह्वै गये ताही के प्रभाव ते मंगल मूर्ति भये ताते मंगलकार्य में लोग प्रथमही गणेशजी को पूजते हैं ऐसा रामनाम में प्रभाव है गणेश प्रथम पूजित भये इत्यादि सब अपनी करनी दुराव नहीं किये छिपाये नहीं गणेशजी आपनी सब करनी आपनेही मुख ते सनत्कुमार ते कहे यथा ब्रह्माण्डपुराणे ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वविघ्नविनाशन । निष्कृतिं ब्रह्महत्यानां वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥ त्वां विनाशुष्यधर्मस्य वक्ता नास्ति जगत्त्रये । तस्माद्गणपते मह्यं प्रसादं कुरु निर्भरम् ॥ श्रीविनायक उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारकम् । मया चिरकृतं कर्म स्मारतो भवतानघ॥ पुराहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः। मत्तो वृक्षान्समुत्पाट्य मुनिहिंसां समारभम् ॥ तदा मया मुनिगणा हिंसिता बहवो बलात् । हाहाकारो महानासी- द्ब्राह्मणानां समन्ततः ॥ तदा हत्यासहस्रेण वेष्टितः परितोस्म्यहम् । निःसंज्ञं मत्त- कल्पं च वीक्ष्य देवो पिता मम॥ आराध्य जगतामीशं रामं सर्वहृदि स्थितम् । प्रत्यक्ष- मकरोद्देवं मन्दितं रघुनन्दनम् ॥ तदा प्रोवाच भगवान् श्रीरामः पितरं मम । ब्रह्म- विष्णुमहेशानपूजितांघ्रिसरोरुहः ॥ श्रीराम उवाच ॥ प्रसन्नोस्मि महादेव किं प्रार्थ- यसि मे प्रभो । दास्यामि यदभीष्टं त्वत् त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ महादेव उवाच ॥ ब्रह्महत्यासमाविष्टं मम पुत्रमिमं प्रभो । निष्पापं कुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥ तथेत्युक्त्वा तदा तेन दयया वीक्षितोस्म्यहम् । तत्क्षणाल्लब्धचैतन्यो निर्मलं ज्ञान- बृंहितः ॥ बहुभिर्गद्यपद्यैश्च स्तुत्वा तं प्रणतोस्म्यहम् । ततः प्रोवाच मां राम सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ श्रीराम उवाच ॥ ब्रह्महत्यासहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामिते । मुच्यते कोटिहत्याभ्यो जपन्नामसहस्रकम् ॥ इति गुह्यं ददौ रामो निजनामसहस्र- कम् । धर्मार्थकाममोक्षादिसर्ववाञ्छितसाधनम् ॥ ततस्तद्ग्रहणादेव निष्पापोस्मि

तदैव हि । तदादि सर्वदेवानां पूज्योस्मि मुनिसत्तम ॥ इत्यादि पुनः भवसागर को सुगम उतारिदेवे हेतु रामनाम सेतु है अर्थात् कर्मज्ञान उपासना नाव जहाज़ बेरा की समान तिनमें भय परिश्रम ते सबको सुलभ नहीं है अरु रामनामकी अवलम्ब नीच ऊंच अधम पतितादि सब जीव सुगमै भवसागर तरिजाते हैं ताते सेतुसम है पुनः काशीजीमें सहजही सब जीवनको सुगति मुक्ति देवे हेतु घरनि जो पार्वति तिन सहित शिवजी आदरसहित सदा रामनाम जपते हैं यथा अध्यात्मे ॥ अहो भवन्नामगृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या । मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम २ वाल्मीकि व्याधा रहे मनुष्यन को मारि वाकी वस्तु लै जीविका करते रहे ऐसे अपराध अगाधनिधि अपराधरूप जल के भरे अगाधसमुद्र सम रहे तेऊ मरा मरा उलटा नाम जपिकै ऐसे रामभक्त महामुनि भये जिनको अपर मुनि पुनः अमर देवतनि पूजे बड़ा माने रहे ऐसा रामनामको प्रभाव है पुनः रामै नाम जपिकै अगस्त्य मुनि ऐसे सबल महान् भये कि विंध्य रोक्यो विंध्याचल ऐसा आकाशको बाढ़तजाइ कि सूर्यनको मार्ग बंद ह्वैगया रहा ताके हेतु देवता प्रार्थना कीन्हे सो मुनि अगस्त्य मुनि आइ विंध्याचल को रोकि दिये तथा समुद्र दैत्यनको सुपास थल जानि देवतनके कहे समुद्र को पान करि गये इत्यादि भूसुर ब्राह्मण अगस्त्य के डरते समुद्र हियेते हारि मान्यो काहेते नाम को बल देखि आपना बल कछु न चलत देख्यो इति हियेते हारि खारा ह्वैगयो पान करिबे योग्य न रह्यो ३ रामनाम की महिमा ऐसी अपार है कि शेषादि कवि शुकदेवादि मुनि बारम्बार बखान करते हैं तथा व्यास वाल्मीक्यादि बुधजन अरु वेदहू वर्णन करत पार कोऊ नहीं पावत ताको प्रभाव हम कहांतक कहैं आपनी मति अनुसार इतनी कहत हौं कि रामनामरति श्रीरघुनाथजी के नाम विषे जो प्रीति है सो तुलसीदास के हेतु कामधेनु पुनः कामतरु कल्पवृक्ष सम अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि सब फल देनहार है पुनः विमोह विशेषि मोहरूप जो तिमिर हृदय में अन्धकार है ताके नाश करिबे हेतु तरणिनाम सूर्य है अर्थात् रामनाम के स्मरण कीन्हे मोह नाश होत है ४ ॥

(२४६) पाहि पाहि राम पाहि रामभद्र रामचंद्र सुयश श्रवण सुनि आयो हौं शरण । दीनबंधु दीनता दरिद्र दाह दोष दुख दारुण दुसह दर दरप हरण १ जब जब जगजाल व्याकुल करम काल सब खल भूप भये भूतल भरण । तब तब तनु धरि भूमिभार दूरि करि थापे मुनि सुर साधु आश्रम बरण २ वेद लोक सब साखी काहूकी रती न राखी रावणकी बन्दि लागे अमर मरण । ओकदै विशोक किये लोकपति लोकनाथ रामराज भयो धर्म चारिहु चरण ३ शिला गुह गृध्र कपि भील भालु रातिचर ख्यालहीं कृपालु कीन्ह तारण तरण । पील उद्धरण शील सिन्धु ढील देखियत तुलसीपै चाहत गलानिही गरण४॥

टी०। हे रामभद्र! अर्थात् ऐश्वर्यरूप ते भूतमात्र के कल्याणकर्ता हौ पुनः हे रामचन्द्र! अर्थात् माधुर्यरूप ते सुर, नर, नागादि सब के दुःख ताप के हर्ता हौ भक्त चकोरन को आनन्दकर्ता अर्थार्थी कुमुदन को प्रसन्नकर्ता हौ इत्यादि आपुको सुन्दर यश श्रवण कानन सों सुनि हौं मैं आपुकी शरण आयों दीन पौरुषहीनन के बन्धु समान हितकर्ता इति हे दीनबन्धु, राम, श्रीरघुनाथजी! पाहि अर्थात् दीनता करिकै रक्षा करौ पुनः पाहि अर्थात् दरिद्र करिकै रक्षा करौ पुनः पाहि अर्थात् दाह जो तापैं तिनकरिकै रक्षा करौ काहेते जीवहिंसादि जो दोष तथा परस्त्रीगमन परहानि परधनहरण इत्यादि भय व घमंड हैं तिन करिकै दुःसह जो सहि न जाइ ऐसे दारुण कठिन दुःख, दरिद्रता, दीनता आदि मोको तापदायक हैं अरु आपु इन सब के हरणहारे हौ १ जगजाल जामें सुर, नर, नागादि चराचर देहन में जीव जग में फँसे हैं अर्थात् आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथिवी, स्थूलरूप तथा सूक्ष्मरूप ते शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इत्यादि में फँसे यावत् चराचर जीव हैं सो जब कराल काल आया तब कर्म भी असत् होनेलगे अरु सब भूप खल भये तिनते भूतल भरण अर्थात् सब राजा दुष्ट भये ताते सब दुष्टन करिकै पृथिवी भरिगई तब चराचर को महादुःख होनेलगा ताते सब व्याकुल भये इति जब जब जगजाल व्याकुल भया धर्म कर्म लोप भया पापते पृथिवी गरुआइ गई तब तब हे प्रभु! आपही अनेक तनु धरि धरि खलन को मारि भूमि को भार दूरि करि पुनः मुनि, सुर, साधु अरु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि चारि वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि आश्रम तिन सब को थापेउ आपने आपने धर्म कर्म पर आरूढ़ भये सब बाधा मिटाइ दीन्हेउ २ जा काल में दशमुख कराल खल भया ताने जैसी अनीति अधर्म प्रचार किया ताकी लोक वेद दोऊ साखी हैं जिन जिनकी रत्ती जोर रही ऐश्वर्यवन्त रहे तिन काहू की रत्ती न राखी अर्थात् इन्द्र, वरुण, कुबेरादि सब को ऐश्वर्य छीनि लिया सब देवतन को पकरि बन्दीखाने में डारि दिया इति रावण के बन्दी में अमर देवता शत्रुवश महादण्डते मरनेलगे उस दुःखमय जीवन ते मरिजाना भला माने ऐसे दुःख में सब ब्रह्मादिक देवता जब पुकार किये तब ओक यथा॥ "ओकस्त्वाश्रयमात्रे स्यात्" (इति हैमः) ओक आश्रय अर्थात् भरोसा दै विशोक शोकरहित कियो सब दुःख हरिलिये अर्थात् सेन परिवार सहित रावण को मारि सब देवादिकन को दुःख मिटाइ सुखी करिदियो इति लोकपति लोकनाथ किये अर्थात् इन्द्रादि लोकपति जे रावण की भयते भागे भागे फिरते रहैं तिनको राजधानी में अभय करि स्थित कीन्हें तथा प्रजादि सब को सुखी राखे काहेते रघुनाथजी की राज्य समय सत्य अर्थात् जो कहैं सोई करैं जो करैं जो सुनैं जो देखैं सोई प्रत्यक्षर कहैं पुनः शौच अर्थात् देह स्नानादिते इन्द्रिय मनआदि शम दमादि पवित्र राखत पुनः तप काय क्लेश दै पाप नाश करि जीव प्रकाशित करना पुनः दान, देश, काल, सुपात्र विचारि भोजन, धन, गौ, भूम्यादि श्रद्धाते देना इति चारिहू चरणते धर्म पूर्ण भयो ३ शिला अहल्या, गुह निषादराज, गृध्र जटायु, कपि सुग्रीवादि वानर, भील चित्रकूटवनवासी, भालु रीछ जामवन्तआदि, रातिचर विभीषणादि निशा-

चर इत्यादिकनको कृपालु ख्यालही तारण तरण कीन्ह कृपा गुण भरे मन्दिर श्रीरघुनाथजी लीलामात्रही ऐसे उत्तम वनाय दीन्हे कि आपु तरे अरु जिनको यश सुनि औरहू तरिजाते हैं हे शीलसिन्धु ! अर्थात् हीन दीन मलीनआदि नीचनोको सम्मान करते हौ पुनः पील उद्धरण अर्थात् वल मदगर्वित अनयरत पशु ताको जब ग्राह ने ग्रसा तव अनाथ आर्त ह्वै आपुको पुकारा तव तुरतही धाइ आइ ताको उद्धार कीन्हेउ इति पीलउद्धरण हे शीलसिन्धु ! अव ढील देखियत अर्थात् मोको उद्धारकी वार कृपा करिवे मैं ढील किहेहौ इति तुलसीपै कृपा करिवे मैं ढील देखियत ताते मैं गलानि मैं गरन चाहत हौं मरण चाहतहौं ताते शीघ्र कृपा कीजै ४ ॥

(२५०) भलीभांति पहिंचाने जाने साहब जहांलों जग जूड़े होत थोरेही थोरेही गरम । प्रीति न प्रवीन नीति हीन रीतिके मलीन मायाधीन सव किये कालहूं करम १ दानव दनुज वड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े जीते लोकनाथ नाथ वलनि भरम । रीझि रीझि दिये वर खीझि खीझि घाले घर आपने निवाजे की न काहूके शरम २ सेवा सावधान तू सुजान समरथ सांचो सद्गुणधाम राम पावन परम । सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहिं विदित विशेषि घट घटके मरम ३ तोसों नतपाल न कृपाल कंगाल मोसों दया मैं वसत देव सकल धरम । राम कामतरु छाहँ चाहै रुचि मन माहँ तुलसी विकल वलि कलि कुधरम ४

टी० । काहेते गलानि ते गरन चाहत हौं कि मोको अनत कहूं ठौर नहीं देखाता है काहेते जग में सुर, नर, नागादि जहां लौं साहब ऐश्वर्यवन्त हैं तिन सवको भली भांति ते पहिंचाने पुनः सवकी रीतिरहस्य जानिलिये क्या जानि लिये कि थोरेही में जूड़े होत पुनः थोरेही में गरम ह्वैजाते हैं अर्थात् जीवकी शुद्धताते काम नहीं विधिवत् यज्ञ पूजा सेवा पाइ थोरेही में जूड़े होत अर्थात् थोरेही अनुकूलता में प्रसन्न ह्वैकै जो मांगत सो वर देत अथवा ऐश्वर्य देत पुनः थोरेही में गरम होत अर्थात् थोरेही में प्रतिकूलता देखि क्रोध करि वाके नाश का उपाय बांधत इत्यादि सव क्षणकबुद्धि हैं पुनः प्रीति की रीति निर्वाह करिवे में प्रवीण कोऊ नहीं है क्या प्रीति को लक्षण है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ अत्यन्तभोग्यताबुद्धिरानुकूल्यादिशालिनी । परिपूर्णस्वरूपा या सा स्यात्प्रीतिरनुत्तमा ॥ पुनः रीति यथा ॥ ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति । भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥ अर्थात् मन इन्द्रियनकी वृत्ति एकत्र ह्वै सनेहीके सुख हेतु सदा लाखन अभिलाषा उठाकरै ताही अनुकूल खाना, खवाना, गुप्तकहना, पूछना, मित्रकी वस्तु निश्शंक लेना, आपनी देना इत्यादि सदा एकरस बनी रहना सोई प्रीतिरीति निर्वाहना है इति प्रीति को निर्वाह करनेवाला कोऊ नहीं सव स्वार्थके मीत हैं

पुनः सब नीतिहीन हैं नीति यथा अग्निपुराणे॥ राम उवाच॥ न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्धनं रक्षणं चरेत्। सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम्॥ शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता। उत्साहो वाग्मितौदार्यमापत्कालसहिष्णुता॥ प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागः सत्यं कृतज्ञता। कुलं शीलं दमश्चेति गुणाः संपत्तिहेतवः॥ ज्ञानाङ्कुशेन कुर्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनम्। कामः क्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा॥ षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः॥ इत्यादि अनेक अंग हैं सो नीतिके अंग और किसी प्रभु में नहीं देखि पड़ते हैं पुनः कालहू कर्म मिलि सबको माया के वश करिदिये ताते सब प्रभु रीतिके मलिन हैं अर्थात् कलियुग कराल काल आया ताके प्रभाव ते असत्कर्म होनेलगे ते दोऊ मिलि सबको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि विषयनके वश करिदिये ताते रीतिरहस्य सबकी मलिन ह्वैगई भाव काम, क्रोध, लोभादि लिहे सब आचरण करते हैं पावनरीति रहस्य किसी में न रहिगई १ पुनः दानव हिरण्याक्षादि जे पूर्व दैत्य भये भाव जे प्रथम ही आसुरीधर्म धारण किये पुनः दनुज जे दैत्यवंश में पश्चात् होतगये ते सब महामूढ़ मूड़ चढ़े अर्थात् जाको आपनी हानि लाभ दुःख सुख न सूझि परै मोहके वश रहै ताको मूढ़ कहीं ऐसे मूढ़ जो दानवादि ते तपस्या पूजादि करि शिव ब्रह्मादि ते वरदान पाये तब मूढ़ जो पद रहा ताके शीशपर चढ़े महामूढ़ भये भाव उनको आपना जीवन मरण भी नहीं सूझिपरा अर्थात् यह निश्चय जानिलिये कि अब हम किसीके मारे मरी नहीं सके हैं इत्यादि आपने नाथ इष्टदेवन के बलते निभरम रहे काल मृत्यु ईश्वरौ की भरम नहीं राखे अरु यावत् लोकनाथ इन्द्रादि रहे तिनको जीतिलिये जब महाअनीति करनेलगे, तब जे पूर्व वरदान दिये रहैं तिनहीं क्रोध करि अनेक प्रबन्ध बांधि नाश कराय दीन्हे इत्यादि ब्रह्मा शिवादि प्रथम तौ रीझि रीझि वर दीन्हे पीछे खीझि खीझि वरवाले अर्थात् यथा हिरण्यकशिपु रावणादिको वर दै महासबल अजित ऐश्वर्यवन्त करिदिये सो सबको स्वाधीन करिलिये जब पृथिवी देवादि सब व्याकुल ह्वै पुकार कीन्हे तब प्रार्थना करि अवतार को कारण बांधि नाश कराइ दिये इति आपने निवाजे की काहूको शर्म नहीं है भाव आपने बनाये को बिगारिवेमें कोऊ लज्जा नहीं करता है तिनको कौन भरोसा राखी २ हे श्रीरघुनाथजी! सद्गुणधाम परमपावन सांचे समर्थ सेवामें सावधान ऐसे सुजान स्वामी एक आपही हौ सद्गुणधाम यथा वाल्मीकीये॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामोनाम जनैःश्रुतः। नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी॥ बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः। धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः॥ यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्। सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥ इत्यादि पुनः परमपावन अर्थात् माधुर्यरूपते पावनता यथा उत्तम पावन रघुवंश उत्तम पावन माता पिता पुनः विषयवार्ता परस्त्री वृथा वचन असत्कर्म सदा त्याग सत्यवचन सत्कर्म एकपत्नीव्रत इति परम पावन पुनः ऐश्वर्य रूप ते नाम रूप लीला धाम ये चारिहू लोकपावनकर्ता हैं पुनः सांचे समर्थ एक आपुही हौ अर्थात् ब्रह्मा शिवादि यावत् समर्थ हैं तिनकी समर्थता आपुकी दीन्ही है तौ ये सांचे समर्थ नहीं हैं अरु आपु सर्वोपरि स्वयं स्वतन्त्र स्वामी हौ यथा

वशिष्ठसंहितायाम् ॥ जय मत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण। ब्रह्मविष्णुमहेशादि-संसेव्यचरणाम्बुज ॥ स्कन्दपुराणे ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशे लोकसाधकाः। तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥ इति सर्वोपरि स्वतन्त्र स्वामी हौ ताते आपु सांचे समर्थ हौ भाव जापर आपु रक्षा करौ ताको बाधा करनेवाला दूसरा नहीं है पुनः जाको आपु नाश कीन चाहौ ताकी रक्षा करनेवालो कोऊ नहीं है पुनः सुजान अर्थात् वेद, शास्त्र, चौदहौ विद्या, देशन की भाषा, सब जीवन की भाषा, लोक सामयिक व्यवहार वार्ता इत्यादि में परम प्रवीण इति चातुर्यता गुण है सो परिपूर्ण है ताते सेवा में सदा सावधान रहतेहौ जो भूलिहूके थोरिहू सेवा करत ताको नीकी भांति जानेरहतेहौ ताते सुखजन के सदा एकरस सुमुख बने रहते हौ अर्थात् जो जन सुंदरी प्रकार आपुकी दिशि रुख करता है ताके सम्मुख आपु सदा एकरस बने रहते हौ ताते एकरूप रहतेहौ अर्थात् कबहूं प्रसन्न रूप कबहूं क्रोधरूप कबहूं उदासीनरूप इत्यादि रहित सदा एकरस प्रसन्नरूप रहते हौ पुनः अंतर्यामी हौ ताते घट घटके मरम आपुको विशेष विदित हैं सबके अंतर की नीकी भांति जानते हो ३ सब भूतमात्र रक्षा करिबे को जो आपुही को समर्थ मानै ताको कृपालु कही पुनः नत जो नमस्कार करनेवाले तिनकी विशेष रक्षा करै ताको नतपाल कही हे कृपालु, कृपागुणमंदिर, रघुनाथजी! आपुके समान नतपाल दूसरा कोऊ नहीं है तथा मोसों कंगाल कोऊ नहीं है भाव सुकृति धन-हीन पाप तापपीड़ित आपुकी शरण हौं तहां वेस्वार्थ दीनिन को दुःख मिटावना दयागुण है सो मोपर कीजिये हे देव! दया के मध्य सब धर्म बसते हैं आपुको धर्मधुरीण जानि याचना करता हौं सो सुनिये कलियुग प्रेरित जो कुधर्म यथा असत्य, अपावनता, निर्दयता, परधन-स्त्रीहरणादि घेरे हैं तिन करिके विकल त्रयतापनते तप्त हौं ताते मैं बलि जाउँ राम कामतरु हे रघुनंदन! आपु कल्पवृक्ष हौ तिनकी कृपारूप छाहँ में वास यही मन में रुचि है सोई तुलसीदास चाहते हैं कृपा करि शरण में सदा राखिये दया करि दुःख हरिये ४ ॥

(२५१) तौ हौं बार बार प्रभुहि पुकारिकै खिझावतो न जो पै मोको होतो कहूं ठाकुर ठहर। आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजा राम अवध शहर १ सेये न दिगीशन दिनेश न गणेश गौरी हितकै न माने विधि हरिऊ न हर। रामनामही सों योग क्षेम नेम प्रेमपण सुधासों भरोसो यह दूसरो जहर २ समा-चार साथ के अनाथनाथ कासों कहौं नाथही के हाथ सब चोरऊ पहर। निजकाज सुरकाज आरत के काज राज बूझिये विलम्ब कत कहूं न गहर ३ रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सों डरतहौं देखि कलिकाल को कहर। कहेही बनेगी कै कहाये बलि जाउँ राम तुलसी तू मेरी हारि हिये न हहर ४

टी०। हे रघुनन्दन, महाराज! जोपै जो निश्चय करिकै मोको ठाकुर ठहर अर्थात् मैं ऐसे अधमन को रक्षा करिवे योग्य और कोऊ महाराज होतो वा मोको दूसरा कहीं सुवास ठौर होतो तौ हौं अर्थात् मैं वारम्बार पुकार करि प्रभुहि न खिझावतो भाव मेरे रक्षा करिवे योग्य एक आपुही स्वामीही ताते वारबार आपुही को पुकारता हौं काहेते आपुको खिझावता हौं कि मोसे आलसी अभागेन को हे कृपालु! आपुही पाले पोसे अर्थात् जे आलस करिकै वर्तमान में जप तपआदि कुछ नहीं करसके हैं पुनः न पूर्व की भाग्य रही ऐसेहू निकाम शरणागत आये तिनहूंको आपु कृपादृष्टि ते पालन करि पुष्ट करिदिये उत्तम सुकृती बनाय दिये इसी आसरेते राजाराम मेरे राजा हैं भाव हे रघुनन्दन, महाराज! आपुहीको गुलाम हौं पुनः अवध शहर जो आपुको धाम सोई मोको मवास ठौर है अथवा जहां के वासी चराचरन को प्रभु परधाम पठाये त्यहि अवध शहर के रघुनन्दन महाराज मेरे पालनकर्ता प्रभु हैं दूसरे को भरोसा नहीं राखे हौं १ काहेते दूसरे को भरोसा नहीं है तहां भरोसा तौ तब होइ जब किसीकी सेवा करै अरु मैं दिगीश जो इन्द्रादि दिक्पाल तिनको नहीं सेये पुनः दिनेश सूर्य तिनको नहीं सेये पुनः गणेश गौरी तिनको नहीं सेये पुनः अन्य देवादिकनकी कौन कहै विधि जो ब्रह्मा हरि जो विष्णु हर जो महादेव जे जग के उत्पत्ति पालन संहारकर्ता हैं तिनहूं को आपना हित करिकै नहीं माने तब किसको भरोसा राखौं ताते सबको भरोसा त्यागि क्षेम आपना कल्याणकर्ता जानि रामनामही सों योग अर्थात् इन्द्रियन की वृत्तिसहित मनको रामनाम में लगावना कौन भांति नेम प्रेमको प्रण किहे अर्थात् एक दुइ लक्ष नित जाप करना इति नेम लिहे पुनः रघुनाथजी के कृपा दया करुणा सुलभ उदारतादि गुण सुमिरि प्रतिक्षण प्रीति उमँगा करै इति प्रेम नित निर्वाहना इत्यादि कल्याणकर्ता रामनाम के योग में नेम प्रेम को प्रण सोई मोको जो भरोसो है यही एक सुधा सों अर्थात् अमृत के तुल्य है पुनः दूसरो जहर और साधन मोको विषके तुल्य है २ जिनको रक्षा करनेवाला कोऊ नाथ नहीं है ऐसे अनाथन को शरण में राखनेवाले आपुही इति हे अनाथनाथ! मेरे साथ में जे पहरू हैं अरु चोर हैं ते नाथही के आपुही के हाथ हैं ताते साथ के समाचार अर्थात् साथिन के कर्तव्यता के हाल और कासों कहौं भाव आपुही सों कहतहौं चोरन को हटकि पहरुन को चैतन्य करि दीजिये अर्थात् जीव के रखानेवाले विवेक, विराग, संतोष, ज्ञानादि हैं पुनः काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यादि जीवको धन चोरावनेवाले हैं पुनः जीव के अन्तर राम रूप बसा है ताके सम्मुख है श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यतादि आचरण में जीव लागता है तब प्रभु कृपा करि विवेकादि को सबल करिदेते हैं तब जीव धन रक्षा हेतु पहरू खबरदार बने रहते हैं तथा जीव के बाहर माया लपटी है ताके सम्मुख है इन्द्रियद्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि व्यापार में जीव लगा तब प्रभु की प्रेरणा ते विवेकादि तौ सोइगये अरु कामादि जीव को पूर्वरूप धन चोरावने लगे इत्यादि चोर अरु पहरू हे रघुनाथ जी! सबकी सबलता निर्बलता आपुही के हाथ है सो पहरू तौ सोवते हैं अरु चोर मेरा पीछा किहे हैं अरु मैं आपुकी शरण हौं ताते आपुसों अर्ज करता हौं

कृपा करि मेरी भी रक्षा कीजिये तामें विलम्ब न कीजिये काहेते निज आपने काज तथा सुर देवतन के काज पुनः आर्त दुःखित जनन के काज इत्यादि कहूं न गहर कही किसी काजमें देर न कीन्हेउ अब हे राज, रघुनन्दन, महाराज! मेरी रक्षाकी बार कत विलम्ब बूझिये भाव किस हेतु विलम्ब करते हौ अर्थात् आपने भक्त, प्रह्लादादि के काज को विलम्ब नहीं कीन्हेउ तुरतही नृसिंहरूप धरि रक्षा कीन्हेउ पुनः देवन के काज अनेक रूप धरि धरि रक्षा करतरहेउ तथा आर्त गज द्रौपदी आदि जब पुकारे तब तुरतही धाइ आय रक्षा कीन्हेउ इत्यादि कहीं नहीं विलम्ब कीन्हेउ तौ मेरे हेतु क्यों विलम्ब करते हौ भाव आर्त अनाथ महूं शरणागत हौं ताते मेरी भी शीघ्रही रक्षा करौ ३ रीति यथा ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन। दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ अर्थात् कैसहू पापी अधम सभीत होइ जो एकहू बार प्रणाम करि कहै कि मैं शरण हौं मेरी रक्षा करौ ताको सब भूतमात्र ते अभय करि देउँ पुनः जे मित्रभाव करि मेरे सम्मुख होते हैं तिनको किसी भांति नहीं त्यागता हौं यद्यपि उनमें कुछ दोषो होते हैं तिनको नहीं ग्रहण करता हौं इति प्रभु के वचन वाल्मीकि में प्रसिद्ध हैं इति रावरी रीति हे श्रीरघुनाथजी! आपुकी रीति सुनि तिन वचनन पर प्रतीति लायों भाव अहल्या, केवट, कोलादिकन पर कृपा कीन्हेउ तथा निश्चयकरि प्रभु मोहूं पर कृपाकरैंगे इति विश्वास राखि रावरे सों प्रीति किहेउँ सेवकाई में मन लगायों परन्तु कलिकाल को कहर अर्थात् काम, क्रोधादि लगाइ सुकृती जीवन को भी जबरदस्तिन पकरि पकरि कलियुग भवसागर में डारताहै सो देखि डरत हौं कि मोको भी न पकरि लैजाइ ताते आतुरहौं मैं बलिजाउँ हे रघुनाथजी! अब ऐसा वचन प्रसिद्ध कहि दीजिये कि हे तुलसीदास! तू मेरा गुलाम है ताते हियेते हारिकै हहर न सडर ह्वै हाइ हाइ न करु मैं तेरा रक्षक हौं इत्यादि कहेही बनैगी कै कहाये हनुमान्आदि औरते कहवाइ दीन्हे बनैगी अर्थात् आपु बड़े महाराज हौ थोरी बात आपने मुख ते न कहौ तौ कलियुग प्रति हनुमान्जीसों कहवाइ दीजिये कि तुलसीदास मेरा गुलाम है तासों जो जबरई करैगा तौ भलीभांति दण्ड पावैगा इत्यादि कहाये मेरी बनि जाइगी ४ ॥

(२५२) राम रावरो स्वभाव गुण शील महिमा प्रभाव जान्यो हर हनुमान लषण भरत। जिनके हिये सुथल राम प्रेम सुरतरु लसत सरस सुख फूलत फरत १ आप माने स्वामी के सखा सुभाइ पति ते सनेह सावधान रहत डरत। साहब सेवक रीति प्रीति परिमिति नीति नेम को निबाह एक टेक न टरत २ शुक सनकादि प्रह्लाद नारदादि कहैं राम की भगति बड़ी विरत निरत। जाने बिनु भक्ति न जानिबो तिहारे हाथ समुझि सयाने नाथ पगनि परत ३ छमत विमत न पुराणमत एकमत नेति नेति नेति नित निगम करत। औरन की कहा चली एकै बात भले भली रामनाम लिये तुलसीहू से तरत ४

टी०। राम राघरो हे रघुनाथजी! आपुको जैसा कोमलस्वभाव है सो नीकी भांति एक भरतजी जानते हैं यथा॥ चौ०॥ मैं जानौं निज स्वामिस्वभाऊ। अपराधिहु पर कोप न काऊ॥ मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥ पुनः दया, कृपा, करुणा, शील, क्षमादि यावत् गुण हैं तिनको एक लक्ष्मणजी जानते हैं काहेते बालअवस्थाते सदा साथही रहे ताते भलीभांति जानते हैं यथा॥ दो०॥ नाथ सुहृद सुठि सरलचित, शील सनेहनिधान। सबपर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥ पुनः आपु में जैसा शील है सो हनुमान्जी जानते हैं यथा गीतावली में कहे हैं॥ कहँ हम पशु शाखामृग चञ्चल बात कहौं मैं विद्यमानकी। कहँ हरि शिव अज पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरत वह लगनि कान की॥ पुनः भागवते॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः। तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥ पुनः महिमा अर्थात् आपुके रूप का ऐश्वर्य पुनः प्रभाव अर्थात् नाम को प्रताप इति महिमा पुनः प्रभाव ताको हर महादेवजी जानते हैं यथा॥ आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥ पग बिनु चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥ आननरहित सकलरसभोगी। बिनु बानी वक्ता बड़ योगी॥ तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। गहै घ्राण बिनु बास अशेखा॥ अस सब भांति अलौकिक करणी। महिमा जासु जाय नहिं बरणी॥ ज्यहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान। स्वइ दशरथसुत भक्तहित, कोशलपति भगवान॥ काशी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नामबल करौं विशोकी॥ विवशहु जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक सँचित अघ दहहीं॥ अध्यात्म्ये॥ अहो भवन्नामगृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥ इत्यादि अथवा हे श्रीरघुनाथजी! आपुको जो माधुर्यरूप है तामें शीलादि स्वभाव के यावत् गुण हैं पुनः महिमा जो ऐश्वर्य ताको जैसा प्रभाव है सो शिव, हनुमान्, लषण, भरत इत्यादि जानते हैं काहेते जिनके हिये सुथल अर्थात् अमल हृदय रूप सुन्दर भूमि में सुमतिरूप सुन्दर थालहा है तामें रामप्रेम सुरतरु लसत श्रीरघुनाथजी को प्रेमरूप कल्पवृक्ष शोभित है सो सरससुख फूलत फरत है अर्थात् ब्रह्मसुख में रस नहीं है सो नीरस फल है ताकी वासना अद्वैतबुद्धि सो फूल भी नीरस है सो नहीं सेवक सेव्य भाव को जो सुख सोई फूल है पुनः प्रभुप्राप्ति में प्रेमरस सहित जो सुख है सो फल है इति सरस फूल फल है सोई नित फूलत फरत भाव शुद्ध सेवक भावते सदा प्रेमानन्द परिपूर्ण बना रहत ताते रामतत्त्व को भलीभांति ते जानते हैं १ शिवादि तौ सब सेवकै बने रहत काहेते ऐश्वर्यरूप को जानते हैं पुनः हे रघुनाथजी! आपु माधुर्यरूप को भूपित किहे हौ ताते देवरूप हैं इस हेतु शिवजी को स्वामी करि माने अरु हनुमान्जी को सखा करि माने पुनः भरत लक्ष्मण में सहजस्वभाव ते भायप राखे रहेउ भाव आपने तुल्य जाने रहेउ पुनः ते शिवादि सब सनेह में सावधान रहत ताहूपर सदा डरत रहते हैं अर्थात् स्वामीकी प्रीति तौ सदा एकरस किहे रहते हैं कबहूं खण्डित नहीं होने पावत तबहूं सनेह भंग को डर राखे रहते हैं कैसे सनेह में

सावधान रहते हैं कि साहब विषे जो सेवक की रीति है यथा सिद्धान्तमुक्तावल्याम् ॥ दो० ॥ सर्वेश्वर सर्वज्ञ प्रभु, अतिशय कृपानिधान। इत्यादिक गुणआश्रयण, सो आलम्बन मान ॥ आठौं अंग प्रणामकै, पादप्रक्षालनपान । कृपादृष्टिकी चांह नित, सो उद्दीपन जान ॥ आज्ञा शिर धारे सदा, सेवन चतुर अमान। ढीठ वचन बोलै नहीं, यह अनुभाव बखान ॥ हर्ष गर्व चिन्ता स्मृती, मति धृति अरु निर्वेद। तर्क शंक पुनि दीनता, सब संचारि सुवेद ॥ जिय प्रभुताको ज्ञान पुनि, संभ्रम आदरदान। स्वामि भाव करि प्रीति यह, थाइभाव जिय जान ॥ प्रथमहिं ते सियरामको, दर्शनही संयोग। दर्शन पुनि अन्तर परे, ताकहँ जानि वियोग ॥ इत्यादि सेवकभाव की जो रीति है ताकी प्रीति अर्थात् मन कर्म वचन श्रद्धा स्नेह सहित सम्मुख सेवा में तत्पर रहना इति प्रीति की जो परिमिति मर्यादा प्रीति की हद्द ताकी नीति अर्थात् न्यायपूर्वक जैसा उचित चाही ताके नेम को निवाह अर्थात् किसी समय कोई रीति छूटि न जाने पावै सर्वांग परिपूर्ण बने रहैं पुनः रामसेवकाई के सेवाइ दूसरा कार्य हम न करैंगे इति एक टेकते कबहूं टरते नहीं हैं सो सबकी टेक लोकविदित है २ श्रीशुकदेवादि परमहंस सनकादि महामननशील प्रह्लादादि हरिभक्त नारदादि मुनिन में भक्त इत्यादि सबै कहते हैं कि बड़ी विरत निरत भाव बड़े भारी वैराग्यपर तत्पर रहे ते रामजी की भक्ति उत्पन्न होती भागवते शुकवाक्यम् ॥ भजन्ति ये विष्णुमनन्यचेतसस्तथैव तत्कर्मपरायणा जनाः। विनष्टरागादिविमत्सरा नरास्तरन्ति संसारसमुद्रमश्रमम् ॥ तत्र सनत्कुमारवाक्यम् ॥ कृच्छ्रोमहानिह भवार्णवमप्लवेषां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षयन्ति । तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तरदुस्तरार्णम् ॥ तत्र प्रह्लादवाक्यम् ॥ तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोऽज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरञ्च्यात्। नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥ तत्र नारदवाक्यम् ॥ यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्मभावितः। स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ इत्यादि बड़े वैराग्य में तत्पर रहे अर्थात् देहाभिमान विषयसुख परिपूर्ण त्याग करने ते रामभक्ति होती है इत्यादि विना जाने भक्ति नहीं होतीहै सो जानिबो तिहारे हाथहै अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! ज्ञान विरागादि जीवकी चैतन्यता विना आपुकी कृपा नहीं है भक्ती है भाव साधन साध्य नहीं है केवल कृपा साध्य है ऐसा समुझि सयाने नाथ पगनि परत हैं अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! विना आपुकी कृपा ज्ञान विरागादि सब गुणन सहित भक्ति नहीं होती है यह समुझि जे चतुर सयाने जन हैं ते बारम्बार आपुके पदवन्दन किया करते हैं जामें सदा आपुकी कृपा बनी रहै सोई सब साधन को निर्वाहक है यथा ॥ चौ० ॥ राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ रामप्रभुताई ॥ जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥ प्रीति विना नहिं भक्ति दृढ़ाई। जिमि खगेश जल की चिकनाई ॥ इत्यादि विचारि शुक सनकादि नारद भुशुण्डि इत्यादि यावत् सुजान हैं ते सब साधन को भरोसा त्यागि केवल प्रभु की शरणागति को भरोसा राखते हैं इति उत्तम भक्तन को मत है ३ छमत जो छयो शास्त्र तिनके विशेष मत छह भांति के हैं यथा प्रथम मीमांसा-

शास्त्र ताके आचार्य जैमिनि यामें यज्ञादि धर्मविषय है धर्मज्ञानही प्रयोजन है यथोक्त कर्म के अनुष्ठान करिके पुरुष को परम पुरुषार्थ लाभ होत है द्वितीय वैशेषिकशास्त्र याके आचार्य कणादमुनि यामें पदार्थ विषय है पदार्थतत्त्वज्ञान प्रयोजन है भावाभाव द्वै पदार्थ में द्रव्यादि छह पदार्थ भाव में ताके समान विरुद्ध धर्म जानिबेते पदार्थन के अनेक धर्म को ज्ञान होत तामें निवृत्तिधर्म उत्पन्न जो आत्म-साक्षात्कार ताते मोक्ष होत तृतीय न्यायशास्त्र याके आचार्य गौतममुनि याके विषय प्रमाणादि सोलह पदार्थ हैं ताको ज्ञान प्रयोजन पदार्थ तत्त्व ज्ञानते मोक्ष होत चतुर्थ योगशास्त्र याके आचार्य पतञ्जलि मुनि चित्तवृत्ति रोकना विषय है निर्विकल्प समाधि प्रयोजन है आपने रूप में स्थित सो मोक्ष है पंचम सांख्यशास्त्र याके आचार्य कपिलमुनि यामें प्रकृति पुरुष को विवेक विषय है और आत्यन्तिकी दुःखत्रय की निवृत्ति प्रयोजन है विवेकते मोक्ष होत षष्ठ वेदान्तशास्त्र याके आचार्य वेदव्यासमुनि यामें जीव ब्रह्म की एकता शुद्ध चैतन्यता विषय है आनन्द प्राप्ति प्रयोजन है सारासार विवेक ते मोक्ष होत इति शास्त्रन के न्यारे न्यारे मत हैं पुनः अठारह पुराणैं हैं तिनको भी एकमत नहीं है काहेते ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, वामन, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्यादि षट् पुराणैं राजसी हैं पुनः नारदीय, विष्णु, वाराह, गरुड़, पद्म, भागवतादि षट् पुराणैं सात्त्विकी हैं पुनः मीन, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्न्यादि षट् पुराणैं तामसी हैं पुनः निगम जो वेद सो लोक में सुखपूर्वक रहै हेतु जीवन को धर्म कर्म तौ भले बतावत अरु परमेश्वर की गति पूछिये तौ नेति नेति परमेश्वर की महिमा की इति अंत हम नहीं जानते हैं तौ जाकी महिमा वेदै नहीं जानि सकत तब औरन की कहा चली जीवन में कहा शक्ति है जो परमेश्वर की गति जानि सकैं ताते सब साधन उपाय त्यागि सब मत रहित एकही बात ते भले सहजही जीव को भली है कौन भांति कि रामनाम लेत सन्ते तुलसीदास ऐसे नीच निकम्मे सहजही भवसागर तरि जाते हैं ४॥

(२५३) बाप आपने करत मेरी घनी घटि गई। लालची लबार की सुधारिये बारक बलि रावरी भलाई सबहीकी भली भई १ रोग वश तनु कुमनोरथ मलीन मन पर अपवाद मिथ्यावाद वाणी हई। साधनकी ऐसी विधि साधन बिना न सिधि बिगरी बनावै कृपानिधि कृपा नई २ पतितपावन हित आरत अनाथनि को निराधार को अधार दीनबन्धु दई। इनमें न एको भयो बूझि न जूझे न जयो ताही ते त्रिताप तयो लुनियत बई ३ स्वांग सूधो साधुको कुचाल कलिते अधिक परलोक फीकी मति लोकरँग रई। बड़े कुसमाज राज आजलौं जो खोये दिन महाराज केहू भांति नाम ओट लई ४ रामनाम को प्रताप जानियत नीके आप मोको गति दूसरी न विधि निरमई। खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु रीझिबे लायक तुलसीकी निलजई ५

टी०। यथा माता में पिता को अंश मिलि पुत्र ह्वै उत्पन्न होता है तैसेही ईश्वर को अंश प्रकृति में परि जीव उत्पन्न भया पुनः यथा बालक आपनी कर्तव्यताते सदा बिगारे करत परन्तु पिता सदा रक्षा राखत इति अभिप्राय ते कहत हे बाप, श्रीरघुनाथजी! आपने मनते अनेक कर्म करत सन्ते मेरी पूर्व की उत्तमता घनी बहुत रहै सो घटि गई भाव कर्माधीन पूर्वरूप नाश भयो मोहवश देहाभिमानी ह्वै लौकिक सुखहेतु विषय व्यापार में लाग्यों लोभवश धन पावबे हेतु दम्भ किहे अनेकन झूंठे वचन कहत फिरता हौं इति लालची लबार झूंठा जो मैं ताकी बिगरी ताको बलि बारक सुधारिये मैं बलिहारी हौं हे रघुनाथजी! एक बार मेरी बिगारी को आपु सुधारि दीजिये काहेते अहल्या, केवट, किरात, शबरी, गीधआदि जिन जिनकी बिगरी सो रावरी आपुही की भलाई कीन्हते सबही की भली भई आपुही कृपा करि सबको कृतार्थ किया तैसेही मोपर भी कृपा करौ १ मेरी कैसी बिगरी सो सुनिये पूर्व पापन को फल उदय भया ताते वात शूल ज्वरातीसारादि रोगनके वशते तनु मलिन भयो भाव अबलते धर्म कर्मादि श्रम नहीं होसका है पुनः परस्त्री परधनहरण परहानि इत्यादि कुमनोरथन करिकै मन मलिन भयो ताते सत्कर्म में मन लागतै नहीं है पुनः परअपवाद, परारी निन्दा, परपापकथन तथा मिथ्या झूंठी बात कहत सन्ते वाणी हई वाणी की अनुकूलता उत्तमता नाश ह्वैगई ताते वाद, विवाद अथवा बेप्रयोजन वार्ता के सिवाय वाणी को हरियशकीर्तन भावतही नहीं ताते तन, मन, वचनते मलिन श्रद्धाहीन हौं तब मोसन क्या धर्म कर्म साधन ह्वैसके हैं पुनः साधन विधि यथा अर्थपञ्चके॥ तत्र कर्म परिज्ञेयं वर्णाश्रमानुरूपितः। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिधा कर्म फलार्थिनाम्॥ यज्ञो दानं तपो होमो व्रतं स्वाध्यायसंयमः। संध्योपास्तिर्जपःस्नानं पुण्यदेशाटनालयम्॥ चान्द्रायणाद्युपवासश्चातुर्मास्यादिकानि च। फलमूलाशनश्चैव समाराधनतर्पणम्॥ इति कर्मसाधन॥ पुनः योगशास्त्रे॥ यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि॥ इति योगसाधन॥ पुनः वेदान्ते॥ साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां मोक्षसाधनम्॥ साधनचतुष्टयं किम्॥ नित्यानित्यवस्तुविवेकः इहामुत्रार्थफलभोगविरागः शमदमादिषट्संपत्तिः मुमुक्षुत्वं चेति॥ इति ज्ञानसाधन॥ पुनः भागवते॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ इति भक्ति के साधन इत्यादि यावत् साधन हैं तिनकी विधि ऐसी है कि श्रद्धा श्रम सहित विना साधन किहे सिद्ध नहीं होत ते साधन मोसन ह्वै नहीं सकै हैं तिनको भरोसा कैसे करौं ताते मोको यही एक भरोसा है कि कृपानिधि की जो नई कृपा है सोई मेरी बिगरी को बनावैगी कृपा यथा भगवद्गुणदर्पणे॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी॥ अर्थात् भूतमात्र की रक्षा करिबे को हमहीं समर्थ हैं यह दृढ़ानुसंधान राखना सो कृपा है इति कृपागुणरूप जलभरे समुद्र जो श्रीरघुनाथजी तिनकी नई जो कृपा है यथा भगवद्गुणदर्पणे॥ स्वसामर्थ्यानुसंधानाधीनकालुष्यनाशनः। हार्दोभावविशेषो यः कृपा सा जागदीश्वरी॥ अर्थात् सोई परमेश्वर जब जगदीश्वर भया भाव जगत् के रक्षा करिबे हेतु अवतार धारण किया तब जो कैसेहू अधम

पापी पतित नीच शरण आवे ताके कालुष्य जो पाप ताके नाश करिदेवे को आपही को समर्थ मानना अर्थात् शरणमात्र वाके पाप नाश करि शुद्ध करिदेना पुनः हार्द जो मित्रता भाव सो विशेष करिकै माने रहना यह नई कृपा है सोई कृपानिधि की नई कृपा है सोई मेरी बिगरी को बनावैंगी भाव मेरे पाप अवगुण नाश करि शुद्ध आपना गुलाम बनाय शरण में राखेंगे २ प्रभु पतितपावन हैं पतित जीवन को शरणमात्र से पावन करिदेते हैं पुनः आर्तहित आर्त जो दुःखित जन पुकार करत सो सुनि परमहितकारी सम तुरतही रक्षा करत तथा अनाथनि को हित अर्थात् जिनको सहायक शरण राखनेवाला कोऊ नहीं ऐसेहु अनाथ जो शरण आवत ताके नाथ ह्वै शरण में राखि अभय करते हैं पुनः निराधार को आधार हैं अर्थात् भवसागर में गिरत समय वा यमलोक को जात समय कोऊ आधार सहारा देनेवाला नहीं है ताकी बांह पकरि उबारि लेनेवाले हैं इत्यादि जो दीनबन्धु देव प्रभु के बाना हैं इनमें जीव को जैसी कर्तव्यता चाही सो मोसन पकहू न भयो भाव पतित ह्वै वा आर्त ह्वै वा अनाथ ह्वै वा निराधार ह्वै वा दीन ह्वै कबहूं शरण न गयो अर्थात् अपना को पावन माने लौकिकसुख में सुखी बने अनेकन देवादिकन को नाथ बनाये कर्मन के आधार पौरुषी बना हौं विचारे पर किसी काम को नहीं हौं काहेते बूझि न जूझे विचारपूर्वक शत्रुन सों युद्ध न कीन्हे अर्थात् विवेक दल साजि मोहदल सों संग्राम न कीन्हे इस भांति संसार को न जयो जीति न लीन्हे हारिकै पूर्वरूप राजधानी त्यागि मोह के आधीन देहाभिमानी ह्वै लौकिक सुख हेतु इन्द्रिय विषयासक्त अनेक कर्म किया ताते तीनिहू तापन में जरि रहा हौं इति बयो लुनियत जो कर्म किया ताहीको फल भोगता हौं ३ तिलक, छाप, माला व ठाकुर गरे में बांधे, मृगचर्म, अचला, कोपीन, कमण्डलु, पुस्तक इत्यादि सूधे साधु कासा स्वांग बनाये भाव ऊपरते झूंठा वेष कीन्हे पुनः वेद धर्म प्रतिकूल यथा परहानि, परधनहरण, परस्त्रीगमन, परअपवाद, मिथ्याभाषण, चोरी, ठगी इत्यादि कुचाल जैसी कलिकाल की रुचि है ताहूते अधिक करत हौं काहेते विराग, ज्ञान, भजन, ध्यान, रामयशआदि यावत् परलोक की वार्ता हैं सो फीकी लागत अरु मति लोकरंग रई भाव स्त्री, पुत्र, धन, धाम, भोजन, वसन, वाहन, भूषणादि की चाह रूप रंग में बुद्धि रँगि गई काहेते कलिकाल को राज ताके परिचर काम, क्रोध, लोभादि के वेगते इन्द्रिय मन आदि विषय में रत इत्यादि बड़े कुसमाज में परे आजुलौं जो दिन खोये सो तौ मिथ्या गये हे रघुनन्दन, महाराज! काहू भांति ते अब आपुके नाम की ओट लई नाम का अवलम्ब गहेउँ ४ हे श्रीरघुनाथजी! रामनाम को जैसा प्रताप है सो और कोऊ तौ यथार्थ जानि नहीं सक्ता है नीकी भांति ते एक आपही जानते हौ भाव नाम की ओट गहे ऐसा पापी अधम कोई नहीं है जिसको पार न करिदेउ तथा मैं ऐसा अधम आलसी हौं कि मोको परलोक में सुगति थल जाने की दूसरी गति विधि न निरमई मेरे तरिवे योग्य दूसरा उपाय ब्रह्मा ने रचवै नहीं किया तब अन्य उपायते कैसे मेरा कल्याण ह्वैसक्ता है काहेते खीझिवे लायक आपुको नाराज करिदेवे योग्य तौ कोटिन करोरिन करोरि कटु करतब नष्ट कर्म मेरे हैं ऐसे को तरिवे योग्य दूसरा उपाय कहां है ताते रीझिवे

लायक आपुको प्रसन्न करिबे योग्य केवल तुलसीदास की निलजई है भाव आपुके सम्मुख भये पर भी कुमार्गही में मन लगाये रहता हौं ताहूपर लज्जा त्यागि आपुते प्रार्थना करता हौं कि हे प्रभु! मोको भी तारौ ऐसे को तारिबे योग्य केवल आपुको नाम है जाने यवन को तारा ५॥

(२५४) राम राखिये शरण राखि आये सब दिन। विदित त्रिलोक तिहूं काल न दयाल दूजो आरत प्रणतपाल को है प्रभु बिन १ लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी नाथपै अनाथनि सों भये न उऋन। स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो काल चाल हेरि होति हिये घनी घिन २ रीझि खीझि बिहँसि अनख क्योंहूं एकबार तुलसी तू मेरो बलि कहियत किन। जाहिं शूल निरमूल होहिं सुख अनुकूल महाराज राम रावरी सों तेहि छिन ३

टी०। गणिका, व्याध, अजामिल, यवन, पाषाण, केवट, कोल, शवरी, गीध, सुग्रीव, विभीषणादि अनेकन अधम अनाथ आर्त पतितनको सदा सब दिन शरणमें राखि आये ताते हे रघुनाथजी! मोको भी शरण में राखिये काहेते शरण में राखिये कि स्वर्ग, भू, पातालादि तीनिहू लोकन में विदित है अर्थात् सुर, नर, नागादि सबै आपुको यश कीर्ति गावते हैं क्या यश कीर्ति विदितहै कि भूत, भविष्य, वर्तमानादि तीनिहू काल में प्रभु विनु आर्त प्रणतपाल दूजो दयालु और को है अर्थात् आर्त जो दुःखित प्रणत जो नम्रतापूर्वक प्रणाम करनेवाले ऐसेन को पालनेवाला दयावन्त एक रघुनाथजी के सिवाय अरु दूसरा न भूतकाल में कोऊ भया तथा न वर्तमान में दूसरा कोऊ है तथा वेद पुराण में लिखा नहीं ताते अनुमानते जानते हैं कि भविष्य में भी न कोऊ होइगा ताते बेप्रयोजन दीन के दुःख हरनेवाले दयावन्त एक आपुही लोक में प्रसिद्ध हौ ताते मोको भी शरण में राखौ १ कैसेन को सदा शरण में राखत आयो आलसी आलसवश जिनते धर्म कर्म ह्वैही नहीं सक्ते हैं पुनः अभागी अर्थात् पूर्वहू जन्म में सुकृति नहीं करि राखे जाके फलते सुख को आसरा होइ सोभी नहीं पुनः अघी पापी अर्थात् अनेक जन्म ते पापै कर्म करत आये सोई वर्तमानौ में करते रहे ऐसेन को लाले दुलारे पाले सदा रक्षा कीन्हे पोषे पुष्ट कीन्हे तोषे संतुष्ट कीन्हे ताहूपै हे नाथ! अनाथनि सों कबहूं उऋण नहीं भयो अर्थात् जिनको शरण राखनेवाला कोऊ नहीं ऐसे अनाथन को शरण में राखेउ तिनके थोरेहू श्रम को बड़ी सेवा माने ऋणियां बने रहेउ ऐसे समर्थ आपु स्वामी हौ अरु हौं मैं जैसो भला बुरा हौं तैसो आपुही को गुलाम हौं दूसरे को आश भरोसा नहीं है केवल एक आपुही को भरोसा है तौ आपने नाम की लाज करि आखिर तौ अन्त में आपुही को तारना परी तौ क्यों विलम्ब करते हौ जो कहौ तू क्यों ऊबता है तहां कालचाल हेरि कलियुग की कुचाल देखि हिये में घनी बड़ी भारी घिन होत भाव पापकर्मन को अधिक प्रचार देखि जीव अकुलात है इस हेतु बार बार आपुते प्रार्थना करता हौं २ यथा औरन की थोरिही सेवकाई

को बहुत मानि लिहेउ तैसेही आपनी ओर ते रीझि प्रसन्न है बिहँसि प्रसिद्ध प्रसन्नता दर्शाय आपना कहिये अथवा जा भांति बालक कुछ काम बिगारि अपने महादुःख का उपाय बांधि लिया सो जानि पिता कटु वाणीते वाके अनेक अवगुण कथन करि महाक्रोधपूर्वक वाको उबारता है तैसेही खीझि मेरे अवगुण कथन करि अनख अर्थात् क्रोध दर्शाय आपना कहिये इत्यादि केहू भांति मैं बलि जाउँ एक बार कहियत किन क्यों नहीं कहते हौ कि तुलसीदास तू मेरो गुलाम है मैं रक्षक हौं अब किसीको मति डरु इत्यादि शब्द आपुके मुख ते निसरतही हे रघुनन्दन, महाराज ! तेही क्षण शूल निर्मूल जाहिं अर्थात् यमसांसति, गर्भवास, जन्म, जरा, मरण, तापादि यावत् जीवकी पीड़ा है सो पावदण्ड में जरसहित नाश ह्वैजाहि पुनः सुख अनुकूल होहि अर्थात् श्रवण, कीर्तन, भजन, ध्यान, विवेक, विरागसहित प्रेमानन्द प्रसन्न ह्वै आपही बनारहै भाव आपुकी कृपामात्र से सब सुख आपही बने रहते हैं २ ॥

(२५५) राम रावरो नाम मेरो मातु पितु है। सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद रामनाम प्रेम अविचल वितु है १ शतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि वामदेव राम नाम घृतु है। नाम को भरोसो बल चारिहूं फल को फल सुमिरिये छांड़ि छल सोई भलो कृतु है २ स्वारथ साधक परमारथ दायक नाम रामनाम सारिखो न और दूजो हितु है। तुलसी स्वभाव कही सांचिये परैगी सही सीतानाथ नाम नित चितहू को चितु है ३

टी०। राम रावरो नाम हे रघुनन्दन, महाराज ! आपुको नाम सोई मेरो माता पिता है अर्थात् रकार परब्रह्मरूप है मकार जीव है मध्यकी अकार महारानी जीको रूप है सोई परब्रह्म सों जीवको सम्बन्ध करावनहारी है यथा रामानुजमन्त्रार्थे ॥ रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधिर्मकारार्थो जीवःसकलविधिकैङ्कर्यनिपुणः। तयोर्मध्याकारो युगलमथ सम्बन्धमनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगमसुसारोयमतुलः ॥ अर्थात् मकार शुद्ध जीव तामें अपने जीवको स्थित करि अकार जो श्रीजानकीजी तिनकी शरण ह्वै तिनकी कृपाते सुगम प्रभुकी प्राप्ति होइगी सिवाय महारानीजीकी कृपा अन्य उपायते प्रभुकी प्राप्ति अगम है यथा अगस्त्यसंहितायां जानकीस्तवराजे शिववाक्यम् ॥ यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे न स्याद्रतिस्तनयाङ्कुरखण्डितांशे। तावत्कथं फणिमौलिमणे जनानां ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे ॥ इत्यादि रामनाम माता पिता है मैं लघु बालकसम हठकरि आपना कल्याण बेपरिश्रम करावा चाहताहौं पुनः स्वजन आपने सम्बन्धी जन पुनः सनेही जे सनेह राखते हैं पुनः गुरुउपदेशकर्ता साहब पालनकर्ता सखा आपनी तुल्य जा सनेहीको मानना सुहृद् सहज स्वभावते प्रीति करना नीच ऊंच कछु न विचारना इत्यादि सब भाव करिकै जो रामनाम विषे प्रेम प्रण है अर्थात् सब भांति हितकर्ता निश्चय करिकै मेरे एक रामनामही है इति विचारि प्रतिक्षण

प्रीतिकी उमंग सोई मेरे अविचल जो कबहूं चलायमान न होइ ऐसा अचल वितु धन है १ शतकोटि चरित अर्थात् वेदरूप कामधेनु दुहि सिद्धान्त सार दूधसम ले शक्तिरूप अग्निमें औटि काव्य कलारूप जावन दै सौ करोरि श्लोक रामचरित रूप दधिनिधि दहीभरा समुद्र जो वाल्मीकिजी बनाइके धरा ताको मथिके वामदेव शिवजी रामनामरूप घृत काढ़िलियो भाव निश्चय जानिलियो कि सबको सारांश रामनामै है ऐसा विचारि जो सब साधनको भरोसा त्यागि रामनामको भरोसा राखे यथा ॥ दो० ॥ एक भरोसो एकबल, एक आश विश्वास। स्वाति बुन्द रघुवंशमणि, चातक तुलसीदास॥ भाव मोको सब फल सिद्धिदायक केवल रामनामही है इति अनन्यता सहित सदा जप करना सो तौ रामनाम को भरोसा है पुनः मोको सब समय सबसों रक्षा करनहारा रामनामही है इति दृढ़ विश्वास राखना सो बल है ॥ यथा रामरक्षायाम् ॥ पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥ रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ इत्यादि राम नामको भरोसो तथा रामनामको बल सो चारिहू फल यथा अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इत्यादिकनके प्राप्त भये को फल है अर्थात् सवासनिक सुकृत करि अर्थ काम प्राप्त भया तब लौकिक सुखते तृप्त भया तब निर्वासनिक सुकृत करि धर्म प्राप्त भया तब मुमुक्षु ह्वै शम दमादि विवेक विरागादि साधन करि मोक्षको अधिकारी भया अर्थात् आत्मरूप को, ज्ञान भयो तब रामभक्तिको अधिकारी होत॥ यथा महारामायणे ॥ ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहोरतब्रह्मज्ञानात् । ते देवि धन्यमनुजा हृदि बाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादौ ॥ सोई राम भक्ति रामनाम जपे तुच्छ जीवनको सुलभै प्राप्त होती है इति सब फलनको फल जो, रामनाम ताको छल छांड़ि अर्थात् विषय वासना दम्भरहित शुद्ध हृदयते सांचे सनेह सहित सुमिरिये सोई भलो क्रतु अर्थात् सब साधनते भली उत्तम क्रिया है काहेते औरी क्रियनमें विधि निषेध परिश्रमते एक भांतिको फल देत अरु रामनाम विधि निषेध रहित आराधन सुलभ अरु सब फल देत २ कैसे आराधन सुलभ अरु सब फलदायक है कि शुद्ध स्थान चौका आसन स्नान न्यास पावनता इत्यादिको प्रयोजन नहीं इन्द्रिय मनआदि एकत्र किहे सदा रसनाते उच्चारण किया करै ताहीते कैसा फलदायक है कि लोक विषे स्वार्थको साधक अर्थात् धरणी, धन, धाम, भोजन, बसन, भूषण, वाहन, पान, गंध, गान, नृत्य, स्त्री, पुत्र, पौत्र इत्यादि अर्थ काम लौकिक सुख सब देत पुनः नाम परमार्थदायकहै अर्थात् धर्म के आचरण सहित सहजही मुक्ति देत इत्यादि रामनाम सरीखे जीवको हितू दूसरा और कोऊ नहीं है इत्यादि वार्ता तुलसीदास तौ सहज स्वभावते कही है परन्तु वेद पुराणन में विचार करनेते सांची सही परैगी अर्थात् पुराणादिते जब सही मिलैगो तब मेरी बात सांची ठहरैगी यथा शुकसंहितायाम् ॥ आकृष्टः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसामाचाण्डालममनुष्यलोकसुलभोवश्यं च मुक्तिस्त्रियाः । नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते मन्त्रोयं रसनास्पृशैव फलति श्रीरामनामात्मकः ॥ पद्मपुराणे ॥ ये ये प्रयोगास्तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम् । तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं राम-

नीचेहूको तथा ब्राह्मण क्षत्रिय सुर मुनि आदि ऊंचेहूको तथा निर्धन अथवा सुकृत-हीन इत्यादि रंक कंगालहूको पुनः नरराज सुरराज मुनिराज योगिराज इत्यादि रायहूको इत्यादि सबहिनको सुमिरिवेमें सुलभ अर्थात् विधि अविधि विघ्नबाधा की भय नहीं है पुनः सबको सुखदायक कैसाहै रामनाम आपनो ऐसो घरहै अर्थात् जा सुखमें चिन्ता किसी बात की नहीं स्वइच्छित आचरना २ वेदहू कहत पुराणहू कहत तथा पुरारि जो शिवजी सो पुकारिकै कह्यो है कि रामनाम को जो प्रेम है सो अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि चारिहू फलन को फल है अर्थात् सवासनिक सुकृत करने ते अर्थ काम प्राप्त होत ताते तृप्तहै निर्वासनिक सुकृत करने ते धर्म प्राप्तभया तब विवेक विराग शम दमादि साधन करि ज्ञान उदय भये ते मुक्तिको अधिकारी भया सो यावत् रामभक्ति नहीं करता है तावत् सब साधन भंग होनेकी भय बनी रहती है भक्ति प्राप्तभये पर फिरि बाधा नहीं रहती है इत्यादि सब साधन सहित राम भक्ति रामनामजपे ते सुलभही प्राप्त होती है नीचहू जीव तुरतही कृतार्थ होता है इत्यादि वेद कहत यथा ऋग्वेदे ॥ परंब्रह्म ज्योतिष्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः ॥ यजुर्वेदे ॥ रामनाम जप तेनैव देवतादर्शनं करोति कलौ नान्येषाम् ॥ सामवेदे ॥ रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति ॥ अथर्वणे ॥ यश्चाण्डालोपि रामेति वाचं वदेत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह संभुञ्जीयात् ॥ पुनः पद्मपुराणे ॥ सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम् । शुद्धान्तःकरणोभूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥ विष्णुपुराणे ॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः । पुमान्विमुच्यते सद्यस्सिंहत्रस्त-मृगैरिव ॥ पुनः शिववचन अध्यात्म्ये ॥ अहो भवन्नाम गृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या । मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥ पुनः काशीखण्डे ॥ पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् । जल्प्यं जल्प्यं प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोपि काशीनिवासी ॥ ऐसा रामनामको माहात्म्य विदित है ताको सुनिकै जो जन मनमें प्रतीति न लावा भाव सबके माहात्म्य की यही रीति है बहुत बढ़ाइकै कहत तैसेंही रामनामहूको माहात्म्य कहे होइँगे इत्यादि तर्कणाकरि जे रामनाम में प्रीति नहीं करत अर्थात् इन्द्रियनकी वृत्ति मनआदि बटोरि हर्ष सहित श्रद्धाते नामस्मरण नहीं करते हैं सो मेरे जान सोई नर खर हैं ऐसा जानि वे मनुष्य नहीं गदहा हैं बुद्धिविद्यादि सब चैतन्यता भार अस लादे हैं यथा भागवते ॥ विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् । मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थः प्राणं पुनाति सकुलं नतु भूरिमानः॥ पुनः भगवद्वाक्यम् ॥ यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता नतु चन्दनस्य । तथा हि विप्राः षट्शास्त्रयुक्ता मद्भक्तिहीनाः खरवद्वहन्ति ॥ इत्यादि उन मनुष्यन को गदहा सम जानना चाहिये ३ रामनाममें जो रकार सोई रामरूपहै पिताते अधिक रक्षा करनहार पुनः मकार जीवहै मध्यकी अकार महारानीजी हैं जब जीव शुद्धहै मकारमें स्थित है माता की शरण जात तब महारानीजी पालन करती हैं अरु सुलभै रघुनाथजी को प्राप्त करिदेती हैं तब कोऊ भय नहीं रहिजात अरु माता पिता पुत्रको पालनै पोषण करत कछु जीवको दुःख नहीं हरिसकत ताते रामनामके समान माता पिता

नहीं हैं पुनः मित्रलोग विपत्ति में सहायक तथा हितकारी लौकिकै हित करिसक्तेहैं अरु रामनाम लोकौ में विपत्तिहर्ता हितकर्ता तथा गर्भवास यमसांसति आदि परलोकमों विपत्तिहर्ता तथा शुभगति हितकर्ता ताते रामनाम के समान मित्र हितकर्ता भी कोऊ नहीं है पुनः बन्धु एक तौ लोकै में सहायकर्ता परलोक में नहीं पुनः आपने स्वार्थ हेतु शत्रुता भी करता है अरु रामनाम लोकहू परलोक में सदा एकरस सहायकर्ता है ताते रामनाम सम सहायक बंधु नहीं है पुनः गुरु उपदेशकर्ता है सो जब वाके उपदेश अनुकूल चलौ तबै हित है कछु आपु नहीं बनावता है अरु रामनाम सुमिरण करत लोक में सुखी राखत अरु परलोक में मरणकाल जो भूलिहू कै उच्चार होइ तौ शुभगति देता है ताते रामनाम के समान गुरु भी नहीं है पुनः साहब रक्षा करनेवाला सो जो सुराह चलौ तौ रक्षा करत अपराध किहे दण्ड देत अरु रामनाम सब अपराधन को नाश करि सदा रक्षा किहे रहत पुनः शुभी मंगल काजकर्ता पुरोहितादि यावत् दान दक्षिणा पावत तावत् कल्याणकर्ता रहत नातरु अशुभकारी ह्वैजात अरु रामनाम पूजाविधि रहित स्वाभाविक उच्चारणमात्र से शुभकारी है कैसा सुशील सुधाकर है छोटे बड़े हीन मलिन सबको मानदायक पुनः जीवको शीतल आनन्दकर्ता चन्द्रमासमान है हे दीनदयालु! मैं बलिहारी हौं सोई रामनाम विषे नेह प्रीति को; निबाह सदा एकरसैं बनारहना इति बड़ा भारी वरदान तुलसीदास को दीजिये रामनाम मैं सदा मेरी प्रीति बनी रहै यह कृपाकरि दीजिये ३ ॥

(२५७) कहे बिनु रह्यो न परत कहे राम रस न रहत। तुमसे सुसाहब की ओट जन खोटो खरो काल की करम की कुसांसति सहत १ करत बिचार सार पैयत न कहूं कछू सकल बड़ाई सब कहां ते लहत। नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर हेरिकै हारि हरि हृदय दहत २ सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप माय बाप तुही सांची तुलसी कहत। मेरी तो थोरी है सुधरैगी बिगरियो बलि राम रावरी सों रहि रावरो चहत ३

टी०। हे रघुनाथजी! सांची बात कहेते सनेहरस नहीं रहत अर्थात् सत्यवचन कटु होत ताके कहे विरोध पैदा होत अरु आर्त अर्थार्थी याचक जो मन भावत मांगन नहीं पावत तौ वाके उर में चेत तौ रहता नहीं ताते विना कहे रहा नहीं जात इस हेतु आकुलीते कटुवचन कहतहौं सो क्षमा कीजिये क्योंकि यह सांची प्रौढ़ता नहीं है स्वार्थी की मानमर्पता है तिन वचनन का अभिप्राय विचारिये क्या विचारिये कि आपु ऐसे सुस्वामीहौ कि कैसहू पापी अधम पतित नीच होइ अरु आपके सम्मुख प्रणाम करि एकहू बार कहै कि मैं शरणहौं ताको सब भूतनते अभय करि शरण में राखते हौ यही आपुकी प्रतिज्ञा है यथा वाल्मीकीये ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ इत्यादि अरु मैं खोटो चाकरी चोर वा खरो सेवकाई विधि में प्रवीण उत्तम सेवक

इत्यादि खरो खोटो जन जो कछु हौं सो दूसरे को नहीं केवल आपही को गुलाम हौं कल्याणहेतु केवल शरणागते के भरोसे हौं इति हे श्रीरघुनाथजी ! आपु ऐसे सुसाहब की ओट लिहे जन जो मैं सो काल की तथा कर्म की कुसांसति सहता हौं अर्थात् काल वर्तमान जो कलियुग सो कोप किहे कामादिकन को लगाये है ते परस्त्रीगमन परधनहरण परहानि इत्यादि करावते हैं ताते अपमान अनादर कुवचन दण्डादि कुत्सित सांसति सहना परता है पुनः पूर्व जो पापकर्म कीन्हेउ ताको फल रुज हानि संकट वियोग दरिद्रतादि कुत्सित सांसति सहना परता है सो आपुको न चाहिये कि शरणागत जन को कोऊ दण्ड देइ अरु आपु तमाशा देखौ १ हे प्रभु ! मैं विचार करता हौं कि जे छोटे ते बड़े ह्वैगये ते सब सकल प्रकार की बड़ाई कहांते लहत कौन समर्थ स्वामी ते पावते हैं इत्यादि विचार करतसंते कहूं किसी लोक में किसी स्वामी में कृपा दया करुणा शील सुलभ उदारता सामर्थ्यादि कछु भी सार नहीं देखियत अर्थात् वाल्मीकि व्याध ते महामुनि भविष्य रामयश के वक्ता भये काकभुशुण्डि तुच्छशूद्र ते ऐसे समर्थ परमभक्त भये जिनके योजन भरेते निकट माया नहीं जाती है नारद दासीपुत्र ते देवऋषि परम भक्त भये इत्यादिकन को बड़ाई देनेवाला कहीं कोऊ देखि नहीं परता है यह उदारताशक्ति एक आपही में देखि परती है इति वेद पुराणन ते नाथकी महिमा सुनि हे रघुनाथजी ! आपुको प्रभाव समुझि पुनः आपनी ओर हेरिकै भाव प्रभु तौ ऐसे समर्थ कि अहल्या केवट,कोल शबरी गीधआदि को दर्शनमात्र से पावन करिदीन्हे तिनहीं की मैं शरण हौं अरु मोपर कृपा नहीं करते हौ हे हरि, श्रीरघुनाथजी! इत्यादि आपुकी निठुरता देखि अरु उधर कालकी कर्मनकी प्रबल करालता देखि मन ते हारि मानि हृदय दहत मेरा अंतस जराजात ताहीकी लपक मुखद्वारा कुवचन कढ़ते हैं जो कृपा करौ तौ इसी क्षण बुझिजाइ २ हे श्रीरघुनाथजी ! मैं काहेते द्वार परा बारबार आपुको पुकारताहौं ताको कारण यह है कि मेरे न कोऊ सखा सनेही है जो सुंदरी भांतिते सहायता करे तथा सुसेवक न अर्थात् पुत्र भतीज पौत्र दासादि कोऊ सुंदर सेवक नहीं जो नीकी भांति सेवाकरै तथा सुतीय सुंदरि अनुकूल स्त्री नहीं जो सब भांति लौकिक सुख देवै इत्यादि लोक में आधार कोऊ नहीं लोकहू परलोक के पालनहार हे प्रभु ! आपही मायहौ लालन पालन कर्ता तथा बाप तुही अर्थात् रक्षा करनहारे पिता आपही हौ और मेरे कोऊ नहीं सब विधि आपही के आसरे हौं इति तुलसीदास सांची कहत मेरी तौ थोरी बात है जो बिगरी भी है तौ भक्तिबीज नाश तौ होता नहीं है किसी जन्म में सुधरि ही जाइगी हे राम ! रावरीसौं हे रघुनन्दन, महाराज ! आपुकी सौगंद करि कहा तहौं रहि रावरी चहतहौं अर्थात् आपुकी बड़ी ऊंची बात है ताको मैं ऊंचा राखा चाहतहौं ताते द्वार ते नहीं टरता हौं भाव मेरे लौटिजानेपर सब यही कहैंगे कि रघुनाथजी को गरीबनिवाज पतितपावन अधम उद्धार इत्यादि झूंठही वेद कहता है ३ ॥

(२५८) दीनबंधु दूरिकियो ये दीन को न दूसरो शरण। आपको भलेहैं सब आपने को कोऊ कहूं सबको भले हैं राम रावरे चरण १

पाहन पशु पतंग कोल भील निशिचर कांचते कृपानिधान किये सुच-रण। दण्डक पुहुमि पायँ परशि पुनीत भई उकठे विटप लागे फूलन फरण २ पतितपावन नाम वामहू दाहिनो देव दुनी न दुसह दुख दूषण दरण। शीलसिंधु तोसों ऊंची नीचियो कहत शोभा भलो तोसों तुही तुलसी की आरतिहरण ३

टी०। दीन पुरुषार्थहीननको बन्धु समान हितकर्ता इति हे दीनबन्धु, रघुनाथजी! जो मोको शरण में न राखौगे तौ आपके दूरिकिये भी दीनको दूसरो शरण नहीं है अर्थात् जो मोहिं दीन जनको आपु त्याग करौगे तबहूं मोको शरण में राखने-वाला कहीं किसी लोक में कोऊ स्वामी नहीं है एक आपही हौ काहेते आपहीहौ कि आपको आपनी भलाई करिबे को तौ सबै स्वामी भले हैं पुनः आपने को अर्थात् आपने सेवक संबन्धी सनेहिनको हित करनेवाला भलो कोऊ कोऊ कहीं ढूंढ़े ठहरैगो अरु राम रावरे चरण सबको भले हैं अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी! आपुके चरणारविन्द शरणमात्र में सब भूतनको भले भाव चराचर के कल्याण-कर्ता हैं अर्थात् आपके पद कमल दर्शन स्पर्शमात्रते ऐसा कोई जीव स्थावर जंगम नहीं है जाको कल्याण न ह्वैगया होइ सो प्रत्यक्ष प्रमाण आगे देखावते हैं १ पाहन अहल्या पत्थर ह्वैगईरहै तामें पदरज लगाइ नवीन दिव्य स्त्री करिदिहेउ पुनः पशु यथा बिल्वनाम गन्धर्व नारद के शापते महिष भया रहै ताको प्रभु उद्धार किया सो बिल्व हरिस्थान अवध के पूर्व प्रसिद्ध है तथा गज सिंह मृग अश्व मगर इत्यादि बहुतेन को रघुनाथजी उद्धार किया सो सत्योपाख्यान में प्रसिद्ध है पुनः पतंग पक्षी यथा जटायु मांसाहारी अधम ताको चतुर्भुजरूप बनाइ तुरतही आपने धाम को पठाइ दिहेउ पुनः चित्रकूटवासी कोल भीलन को पावन करिदीन्हेउ तथा निशाचर विभीषणादि उत्तम करिदिहेउ इत्यादि कांचसम रहे भाव कठोरचित्त लघुमोलसम तुच्छ जीव ऐसेनको हे कृपानिधान! आपु सुवर्ण करिदिये भाव कोमल चित्त बड़े मोलसम पावन उत्तम जीव परमपद के अधिकारी करिदिये पुनः दण्डक पुहुमि अर्थात् शुक्राचार्य के शापते दण्डकवन की भूमि में तृण गुल्म वृक्षादि सब भस्म ह्वै गये रहैं इति दण्डक पुहुमि भूमिके पायँ परशि आपुके पद कमल परतही पुनीत शापोद्धारते पवित्र भई अरु उकठे भस्म भये पर जे सूखे विटप वृक्ष खड़े रहैं ते पल्लवदलांकुर सहित नवीन हरित ह्वैगये ताते फूलने फलने लगे इत्यादि निर्हेतु स्थावर जंगम को कल्याणकर्ता आपही के पदकमल समर्थ हैं दूसरा कोऊ नहीं है आंपुके समान दयावंत यथा अध्यात्म्ये ॥ को वा दयालुःस्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो। स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वामृतामेस्वयमेवभाजा २ हे देव, श्रीरघुनाथजी! पतितपावन नाम आपुको नाम पतितनहू को पावन करिदेत ताहू पर वाम जे विमुखहैं दाहिने जे सम्मुखहैं इत्यादि सबको उच्चारणमात्रहीसे पावन करिदेत यथा विष्णुपुराणे ॥ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥ पुनः दुःसह जो सहि न जाइ ऐसा गर्भवास जन्म

मरण यमसांसति आदि दुःख पुनः दूषण पाप व अवगुण काम क्रोधादि तिनको दरण शरणमात्रसे नाश करिदेनहारा आपुके समान दुनिया में दूसरा कोऊ नहीं है पुनः शील यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ हीनैर्दीनैश्च मलिनैर्वीभत्सैः कुत्सितैरपि । महतोछिद्रसंश्लेपसौशील्यं विदुरीश्वराः ॥ अर्थात् दीन हीन पतित अपावन सबको सम्मान बड़ाई देना शील इति शीलरूप जलभरे समुद्र हे शीलसिंधु ! तोसों ऊंची नीचियो कहत शोभा है अर्थात् आपुको जो मैं ऊंची नीची वातें कहताहौं ताहूमें शोभा है भाव शील स्वभावते जो सबकी सहते हौ यह एक आपुकी बड़ाई है ताते तोसो तुही भलो है अर्थात् जैसे भले आपुहौ ऐसा दूसरा नहीं है ताते आपुके समान आपही भलेहौ ताते तुलसीकी आर्ति जो दुःख ताके हरणहारे एक आपही हौ ताते आपही के द्वारपरा पुकारताहौं ३ ॥

(२५६) जानि पहिंचानि मैं विसारे हौं कृपानिधान एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरिहौं । करत यतन जासों जोरिवे को योगी जनतासों क्योंहूं जुरी सो अभागो वैठि तोरिहौं १ मोसों दोष कोप को भुवन कोष दूसरो न आपनी समुझि सूझि आयों टकटोरिहौं । गाड़ी के श्वानकी नाईं माया मोह की वड़ाई क्षणहिं तजत क्षण भजत बहोरिहौं २ बड़ो साईं द्रोही न वरावरी मेरी को कोऊ नाथ की शपथ किये कहत करोरिहौं । दूरि कीजै द्वारते लवार लालची प्रपंची सुधासों सलिल शूकरी ज्यों गहडोरिहौं ३ राखिये नीके सुधारि नीचको डारिये मारि दुहूं ओर की विचारि अब न निहोरि हौं । तुलसी कही है सांची रेख बारवार खांची ढील किये नाममहिमा की नाव बोरिहौं ४

टी० । भूतमात्र पालिवे को हमहीं समर्थ हैं यह दृढानुसंधान राखना कृपाहै ताके भरे स्थान इति हे कृपानिधान ! जानि पहिंचानि विसारेहौं अर्थात् सत्संगमें सुनेउँ कि जीव ईश्वरको गुलाम है इति आपनो रूप पहिंचानि पुनः गुरु के उपदेशते सुनेउँ कि ईश्वर तौ सबके समीपही है परंतु जब जीव विषय में आसक्त है तौ दूरि देखात जबै विषय आशा त्यागि शुद्ध है सांचा सनेह लगावै तब निकट ही देखि परत इत्यादि जानिकै पुनः विषयन में आसक्त आपुको विसारेहौं ताहू पर ऐसा ढीठहौं कि एतो मान किहेपर उलटिकै आपही को खोरिदेत हौं दोष लगाये हौं कि मोपर कृपा नहीं करतेहौ ताको अंत ऐसा है कि जा प्रभु सों सनेह जोरिबे को योगीजन अनेक यत्नैं करत सोऊ अगम है ताही प्रभुसों क्योंहूं भांति जो किंचित्प्रीति जुरीहै सो मैं ऐसा अभागाहौं कि वैठिकै तोरिडारिहौं भाव आपुके सम्मुखै वैठ ढिठाई करि विमुख होताहौं १ काहेते विमुख होताहौं कि मोसों दोष कोप को मेरे समान दोषनको भरा खज़ाना को है काहेते आपनी समुझदारीते जो कछु मोको सूझा त्यहि रीति हौं मैं सर्वत्र टकटोरि ढूंढ़ि आयों परन्तु भुवनकोष

चौदहौंभुवन मध्यदेशनमें मेरे समान दोषनको भरा दूसरा कोऊ नहीं है कैसा मैंहौं गाड़ीके श्वानकी नाईं अर्थात् गाड़ीवान का पाला कुत्ता क्षणमात्र तौ गाड़ीके संग, वा आरूढ़ ह्वै चलता है पुनः क्षणैमात्र में कछु शिकार देखा वा दूसरा कुत्ता देखा तापर धावा जब उहांते घूमा तबतक आपनी गाड़ी तौ आगे बढ़िगई पीछे अनेकन गाड़ी चलीजातीहैं जाहीको देखा ताही के संग चला जब आपने मालिक को न देखा तब वाको त्यागि दूसरी के संग लगा इसी भांति यावत् आपनी गाड़ी नहीं पावत तावत् क्षणैमें एक गहत क्षणैमें त्यागि दूसरी गहत इसीभांति मैं माया मोह की बड़ाई अर्थात् माया देह को व्यवहार पुनः मोह देहाभिमान ताकी बड़ाई यथा मैं ब्राह्मण विद्वान् तपस्वी मैं क्षत्रिय राजा वीर मैं वैष्णव सबको पूज्य महात्मा इत्यादि बड़ाई को क्षण में त्यागत हौं क्षणैमें भजत ग्रहण करतहौं पुनः अर्थात् क्षणमात्र आपुके सम्मुख होताहौं तौ विषयव्यवहार त्यागिदेताहौं क्षणै में विमुख ह्वै विषय को ग्रहण करता हौं ऐसा दोषनको भरा झूंठही गुलाम बना आपुको खोरि देता हौं २ स्वामी सों विरोध करनेवाला मैं बड़ो साईं द्रोही हौं मेरी बराबरी को कहीं किसी लोक में कोऊ नहीं है हे नाथ! आपुकी करोरिन शपथ किहे कहत हौं लबार झूंठ कहनेवाला लालची परधन हरनेवाला प्रपञ्ची जालसाज ऐसे को आपने द्वारते दूर कीजे खेदवाइदीजे नातरु सुधा सों सलिल अमृतजलसम आपुको यश ताको ज्यों शूकरी तैसेही मैं गहडोरिहौं कि दैडारिहैं ताते स्वहि ऐसेनको द्वारपर राखना भला नहीं है भाव आपकी रीतिहै कि सम्मुख जनके पाप अवगुण दूरि करि शरण में राखतेहौ अरु विमुखनको मारिकै शुद्ध करि आपना करिलेतेहौ सो जो मैं सम्मुख होउँ तौ मेरे अवगुण दूरि कीजे सो आगे कहत ३ हे प्रभु! जो सम्मुख होउँ तौ मेरे अवगुण मिटाइ सुधारि शुद्ध करि नीके मोको शरण में राखिये अरु जो विमुख होउँ तौ नीच जो मैं ताको मारि डारिये पाप अवगुण नाश करि शुद्ध जीव बनाइ तब आपना कीजे इत्यादि सम्मुख विमुख दुहूंओर की विचारि जैसा उचित होइ तैसा कीजिये अब न निहोरिहौं बारम्बार प्रार्थना अब न करिहौं काहेते, बारम्बार रेखा खांचिकै तुलसीदास सांची बात कही है सो निश्चय जानि शीघ्रही कीजिये अरु ढील कीन्हे पर हे नाथ! आपुके नाम की जो महिमा की नावहै ताको बोरिदेउँगो अर्थात् नाम के अवलम्ब शरण आयों जो मेरा कल्याण न करौगे तौ नाम की महिमा नाश ह्वैजायगी ऐसा विचारि जैसा उचित जानौ सो कीजिये ४॥

(२६०) रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी कहौ बलि वेद किन लोक कहा कहैगो। प्रभु को उदास भाव जन को पाप प्रभाव दुहूं भांति दीनबंधु दीन दुख दहैगो १ मैं तो दियो छाती पवि लयो कलिकाल दवि सांसति सहत परवश को न सहैगो। बांकी बिरदावलि बनैगी पालेही कृपालु अन्त मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो २ करमी धरमी साधु सेवक बिरत रत आपनी भलाई थल

कहां को न लहैगो। तेरे मुहँ फेरे मोसों कायर कपूत कूर लटे लटपं-टनि को कौन परिगहैगो ३ काल पाय फिरत दशा दयालु सबही की तोहिं बिनु मोहिं कबहूं न कोऊ चहैगो। बचन करम हिये कहौं राम सौंह किये तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ४

टी०। जो आपु कहौ कि हम तौ कृपा किहे हैं कि तेरी बनै अरु तू आपनेही हाथ अपनी बिगारता है तौ हम क्या करैं सो हे प्रभु! ऐसा तौ हैई नहीं सकत काहेते यथा॥ चौपाई॥ राम कीन चाहैं सो होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥ पुनः श्रुतिः॥ कर्तुमकर्तुं जगदन्यथा कर्तुमिति॥ हे रघुनाथजी! रावरी सुधारी जाको आपु सुधारिकै बनावौ सो तौ वेदवचन प्रमाणते ब्रह्मा विष्णु महेशादिको बिगारिबेकी शक्ति नहीं है यथा वशिष्ठसंहितायाम्॥ जय मत्स्याद्यसंख्येयावतारो-द्भवकारण। ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यचरणाम्बुज॥ स्कन्दपुराणे॥ ब्रह्मविष्णु-महेशाद्या यस्यांशे लोकसाधकाः। तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे॥ पुनः श्रुतिः॥ सः श्रीरामः सवितारी सर्वेषामीश्वरः यमेवेशः वृणुते सः पुमानस्तु यमवैदस्माद्भूर्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव इति यं नरहरिः स्तौति यं गन्धमादनः स्तौति यं यज्ञतनुः स्तौति यं महाविष्णुः स्तौति यं विष्णुः स्तौति यं महाशम्भुः स्तौति यं ह्वैतं मण्डलं तपति तत्पुरुषं दक्षिणस्थं मण्डलो वै मण्डलार्च्यः मण्डलस्थ-मिति सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम्॥ ऐसी महिमा वेद कहत हे रघुनाथजी! सोई जो आपकी बनाई हुई सो मेरी तुच्छ जीवकी बिगारी बिगरिजाइगी तौ मैं बलि जाउँ आपही कहिये वेद किन क्या है अर्थात् वेद तौ सर्वथै वृथा होता है अथ लोक कहा कहैगो लोकवासी जन आपुको क्या कहैंगे भाव अधमोद्धारण पतित-पावन दीनबन्धु इत्यादि आपुके नाम अब कोऊ न कहैगो तौ एक तुच्छके हेतु आपनी महिमा क्यों बिगारतेहौ हे प्रभु! उधर आपुको उदासभाव पुनः इधर जन जो मैं ताको पाप प्रभाव इन दुहूं भांतिनते हे दीनबन्धु! यह दीनजन दुःख दहैगो दुःखाग्नि में मैं भस्म ह्वैजाउँगो अर्थात् असंख्यन मेरे पाप पूर्वके रहैं तिनके नाश हेतु मैं आपुके नाम का अवलम्ब गह्यौं तापर कलियुग मोपर क्रोध करि कामादि को लगाइदिया तिनके वेगते नित नवीन पाप होनेलगे त्यहि सहायताते पूर्वपाप प्रचण्ड है मोको दुःख देवे हेतु खड़े दांत पीसते हैं आपुकी शरण जानि निकट नहीं आवते हैं अब जो आपुकी उदासीनता जानि पावैंगे तौ तुरतही मोको चबाइ जाइँगे इति दीन जन दुःख दहैगो १-पुनः दुःखनको तौ मैं पात्रै हौं ताते मैं तो छाती पवि दियों अर्थात् दुःख सहवे हेतु छातीपर वज्र वेठाये हौं काहेते संमय को राजा कराव निर्दयी कलिकाल सो तौ कोप करि पूर्वही मोको दावि लियो कामादिकन को लगाइ व्याध मृगवत् बांधि स्वाधीन करि राखे है ताकी दीन्ही सहस हज़ारन भांति की सांसति दण्ड सहतहौं सो तौ रीतिही है क्योंकि परवश में परे को न सहैगो भाव सबको सहना परता है तथा छाती वज्र दिहे मैं भी सहत हौं और जो कछु परी सोऊ सहिलेहौं परन्तु हे कृपालु, कृपागुण भरे मन्दिर, श्रीरघुनाथजी! आपुकी जो बांकी बिरदावली है ताको जो परिपूर्ण बनाये

राखा चाहौ तौ मेरे पालेही बनैगी काहेते जो अबहीं मेरे कहेते आपुके मन में दया नहीं आवती है तौ यमसांसति आदि अन्त में मरणकाल समय मेरो हाल हेरि अर्थात् यमगणन के फन्द में परा आपको नाम लै त्राहि त्राहि करत जब चलौंगो सो देखिकै तब आपुको मन यों इस प्रकार को न रहैगो आखिर दया आई तब धाइकै छुड़ावोगे तौ पूर्वही क्यों नहीं कृपा करि रक्षा करते हौ इस रीति में पतितपावनादि बाना में दाग़ लागि जाइगो २ पूजा, पाठ, जप, तप, संध्या, तर्पण, तीर्थ, व्रत, दानादि करनेवाले जे कर्मी हैं तथा सत्य, शौच, तप, दानादि अथवा वर्णाश्रम को जो कछु आपना धर्म है तापर जे दृढ़ हैं ऐसे धर्मी पुनः भजन ध्यानादि परमार्थ आचरण में जे शुद्ध स्वभावते सत्य सत्य लगे हैं ऐसे जे साधु हैं पुनः यश श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, पूजन, वन्दन, दास्यतादि आचरण में लगे जे आपुके सेवक हैं पुनः विरतरत विरत जो वैराग्य तामें तत्पर अर्थात् जे मुक्ति के साधन में लगे हैं इत्यादि आपनी भलाई आपने परिश्रम ते सुकृत करिकै को कहां न थल लहैंगो स्वर्ग मुक्ति वैकुण्ठादि कहां न ठौर पावहिंगो भाव परमार्थिन को सर्वत्र ठेकाना है अरु मोसों कायर हम ऐसे धर्म कर्म में कादर तथा कुपूत प्राचीनधर्म को त्यागे कूर कुटिल स्वभाववाले लटे पुरुषार्थहीन लटपटे कामादि वेग में आसक्त इत्यादिकन को हे प्रभु! आपुके मुख फेरे कौन परिगहैगो ऐसा और कौन समर्थ है जो मोहिं ऐसेन को भव में गिरत समय हाथ गहि निकारि लेइगो भाव मोहिं ऐसे निकम्मन को आपही कल्याण करिबे को समर्थ हौ दूसरा ठेकाना नहीं है ३ काहेते दूसरा ठेकाना नहीं है कि हे दयालु, निर्हेतु दुखियन को दुःख हरणहारे, श्रीरघुनाथजी! लोक में यह रीति है कि काल पाय सबही की दशा फिरती है भाव समय पाय पाप उदय भये दुःख की दशा आवती है तैसेही समय पाय सुकृत उदय होता है तब सुख की दशा आवती है इति किंचित्काल प्रभाव जन्मपत्री से प्रसिद्ध है परन्तु सुकृत तौ तब उदय होत जो पूर्व किसी जन्म में सत्कर्म करि राखा है अरु मैं तौ किसी जन्म में सत्कर्म करवै नहीं किया है तौ क्या उदय होइगो ताते तोहिं बिनु मोहिं कोऊ कबहूं न चहैगो अर्थात् हे रघुनाथजी! विना आपुकी कृपा मोको सुखदायक कहौं कोऊ नहीं है ताते वचन कर्म हिय राम सौंह किये कहौं वचन करिकै कर्म करिकै हिये में मन करिकै हे रघुनाथजी! आपुकी सौगन्द करि कहत हौं तुलसी पै नाथ के तुलसीदास निश्चय करिकै आपही के निवाहे निवहैगो भवते पार होइगो अन्य उपाय मेरे हेतु नहीं है ४॥

(२६१) साहब उदास भये दास खास खीस होत मेरी कहा चली हौं बजाय जाय रह्यो हौं। लोकमें न ठाउँ परलोक को भरोसो कौन हौं तो बलि जाउँ रामनाम ही ते लह्यो हौं १ करम स्वभाव काल काम कोह लोभ मोह ग्राह अति गहनि गरीब गाढ़े गह्यो हौं। छोरिबे को महाराज बांधिबे को कोटि भट पाहि प्रभु पाहि तिहुँ पाप ताप दह्यो हौं २ रीझि बूझि सब की प्रतीति प्रीति यही द्वार

दूध को जख्यो पियत फूंकि फूंकि मह्यो हौं। रटत रटत लह्यो जाति पांति भांति घट्यो जूठनि को लालची चहौं न दूधौ घ्यौ हौं ३ अनत चह्यों न भलो सुपथ सुचाल चल्यो नीके जिय जानि इहां भलो अनचह्यो हौं। तुलसी समुझि समुझायों मन वारवार अपनो सों नाथहूं सों कहि निरवह्यो हौं ४

टी०। साहब उदास भये खास दास खीस होत हे रघुनाथजी! जैसे जनपर स्वामी उदास ह्वै मन फेरि लेता है सो जो खास सब विधि ते सांचा उत्तमौ दास होइ सोऊ खीस खराव जाता है यथा नारद के सब कर्म हैगये तहां मेरी कहा चली हौं तौ वजाय जाय रह्यो हौं मेरी कौन गनती है जो स्वामी के उदास भये पर फिरि किसी काम को रहिजाऊँ काहेते मैं तौ डङ्का वजाय अर्थात् लोक में प्रसिद्ध महापाप करि नाश है रह्यो है भाव विषयन में आसक्त रहेउँ ताते अनेक कामना बनी रहीं तिनके व्यापार में लाग्यों जब किसीने मेरे स्वार्थ में हानि किया तापर क्रोध भया क्रोधते मोह भया चैतन्यता गई बुद्धि नाश है गई तब जीव नाश भया यथा गीतायाम्॥ ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। सङ्गात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ इस आचरण ते वजायकै नाश भयो पुनः लोक में न ठाउँ अर्थात् विना आपुकी कृपा लोकै में कोई ऐसा हितू नहीं देखात जो अपने ढिग वैठारि सब भांतिको सुख देवै तब परलोकमें कौन भरोसो है कौन उत्तम कर्म कीन्हेउँ है जासों सुगति पावोंगे ताते वलि जाउँ हौं तो रामनामै हीते लह्यो हौं आपना को सुखद यावत् लाभ देखता हौं सो केवल रामनामही के प्रभावते पायों है दूसरा अवलम्व नहीं है १ काहेते परलोक को भरोसा नहीं है कि जन्म जन्मान्तरते विषयासक्त रह्यो ताते अनेकन पापकर्म कीन्हेउँ ते सब घेरे हैं पुनः विषयी क्रूरस्वभाव जो परिगया सो छूटता नहीं तापर काल कलियुग ऐसा कराल है जो सन्मार्ग को नाश करि कुमार्गही पर चलावता है पुनः काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी ग्राह दुःखदायी वनेही रहते हैं अरु अतिही गहनि हौं गरीव को गाढ़े गह्यो मोहिं गरीव को अत्यन्त पुष्ट पकरनिते पुष्टकरि पकरे हैं इत्यादि मोको वांधिवे को कोटि भट करोरिन वली योधा घेरे हैं पुनः छोरिवे हेतु महाराज रघुनाथजी एक आपही हौ ताते हे प्रभु! पाहि पाहि मेरी रक्षा करहु मैं आपमे पापनकरि दैहिक, दैविक, भौतिकादि तीनिहूं तापन करिकै दह्यों भस्म होता हौं २ काहेते जान्यों कि छोरनहारे एक आपही हौ कि प्रथम सब की रीझि बूझि लिहेउँ तब पाछे यहि दरवार में प्रतीति आई तब आपुमें प्रीति किहेउँ अर्थात् ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि सब देवतन की प्रसन्नता को हाल भली भांति ते जानि लिहेउँ कि तपस्या, पूजा, यज्ञादि जब विधिवत् श्रम करै अरु परिपूर्ण वनि परै तौ यथायोग्य फल दै देते हैं पुनः वाके दुःख सुखते प्रयोजन नहीं राखते हैं अरु आर्त अधम अनाथ को पूछनेवाला कोऊ नहीं है इत्यादि सब देवतन की रीझि प्रसन्नता बूझि जानि लिहेउँ पुनः हे रघुनाथजी! आपहू को हाल सुनेउँ यथा वाल्मीकीये॥ सकृदेव प्रपन्नाय

तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ अर्थात् यह आप की प्रतिज्ञा है कि कैसहू पापी अधम अनाथ आर्त होइ जो एकहू बार प्रणाम करि कहै कि मैं शरण हौं ताको सब भूतनते अभय करिदेता हौं इत्यादि प्रतिज्ञा सुनि पुनः अहल्या, केवट, कोल, शबरी,गीध,सुग्रीव, विभीषणादिको हाल जानि प्रतीति भई ताते आपही में प्रीति किहे द्वारपर परा पुकारता हौं तहां जो आप कहौ कि जो तेरे प्रतीति प्रीति है तौ क्यों अधीर ह्वै वारवार पुकारता है इहां कौन तोको सताइसक्ता है ऐसा जानि चुप क्यों नहीं रहता है सो तौ महाराज सांचिही है परन्तु मेरी ऐसी बूझ है जैसा उपाख्यान प्रसिद्ध है कि कोऊ गरम दूध पीवत में जरिगया रहै सोई भयते माठा फूंकि फूंकि पीवतारहै जामें गरमी का लेशहू नहीं होता है भाव काल कर्म पाप दोपन को सतावा आर्त ह्वै अनेकन देवादिकन को पुकार्यों सो कोऊ मेरा दुःख हरि न सका ताही भयते अब आपहू के द्वारपर वारम्बार पुकारता हौं परन्तु करुणासिन्धु मेरी भी सुनिये जाति ब्राह्मणत्वको मान पांति ऊंचे कुल को मान भांति ऊंचे सम्बन्धते जो लोक में मर्याद इत्यादि घट्यो भाव देहाभिमान छूटेउ पुनः रटत रटत लस्यो द्वार पर पुकारत पुकारत श्रमते थकित भयों पुनः दूध घृतादि उत्तम भोजन चाहता नहीं हौं आपकी बची जूंठनि को लालची हौं भाव न सुधर्मी बना चाहौं न ज्ञानीहू बना चाहौं केवल आपकी गुलामी चाहताहौं तामें इतनी देर क्यों करते हौ ताते शीघ्र कृपा करि आपना बनाइ शरण में राखिये ३ काहेते शरण में राखिये कि अनत भल्यो सुपथ तामें सुचाल चल्यो नहीं चाहतहौं अरु इहां अनचह्यो भी जियते नीके जानि भलो मानत हौं अर्थात् अन्य देवादि के शरण में जो धर्म ज्ञानादि सुन्दर पन्थ मिलैं ताहू में सज्जनतापूर्वक निर्विघ्न निर्वाह इति सुचाल चल्यो नहीं चाहतहौं भाव शरणपाल तौ कोऊ हैही नहीं तौ सुपथ ते चूके पर को सँभारिकै शुद्ध राखैगो पुनः हे श्रीरघुनाथजी! इहां आपुके दरबार में अनचह्यो अर्थात् जो अनादरौ सहित द्वारपर परा रहनेदेउ सोऊ जीवते नीक जानिकै भलो मानतहौं भाव आपु शरणपाल तौ हौ तहां जो मैं आपनी करणीते लाखु चूकौंगो तबहूं आपु सँभारि शुद्ध करिलेउगे इस हेतु इहां को अनादरौ भलाहै इत्यादि तुलसीदास जीयते समुझि पुनः मनको भी वारम्बार समुझायो कि रघुनाथजी के द्वारपर परे रहे कल्याण है अन्य आशा त्यागु सोई आपनो सो आपने अंतसमें जो दृढ़ मत धारण किहेहौं सो बात मैं आपने नाथहू सों कहि निरबह्यो अर्थात् आपनी ओरते कहि मैं छुट्टी लेताहौं आगे स्वामीके हाथहै ४॥

(२६२) मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कल्प लौं राम रावरे बनाये बनै पल पाउ मैं। निपट सयाने हौ कृपानिधान कहा कहौं लिये बेर बदलि अमोलमणि आउ मैं १ मानस मलीन करतब कलिमलपीन जीहहूं न जप्यो नाम बक्यो आउबाउ मैं। कुपथ कुचाल चल्यो भयो न भूलिहूं भलो बालदशाहूं न खेल्यो खेलत सुदाउ मैं २ देखी-

देखा दम्भते कि संग ते भई भलाई प्रकटि जनाई कियो दुरित दुराउ मैं। राग रोष दोष पोषे गोगण समेत मन इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाउ मैं ३ आगिलो पाछिलो अवहूं को अनुमान ही ते बूझियत गति कछु कीन्हों तो न काउ मैं। जग कहै राम को प्रतीति प्रीति तुलसीहू झूठे सांचे आश्रय साहब रघुराउ मैं ४

टी०। मेरे बनाये तौ मेरी कोटि कल्प लौं न बनैगी अर्थात् आपने कल्याण हेतु जो मैं करोरिन कल्पतरु जप, होम, योग, धारणा, ध्यान, समाधि, ब्रह्मज्ञानादि अनेकन साधन किया करौं तबहूं मेरा कल्याण न होइगो भाव इसी भांति तौ पूर्वजन्म व्यतीते भये तामें क्या प्रयोजन भया ज्यों ज्यों छूटने का उपाय करताहौं त्यों त्यों अधिक बँधत जात हौं पुनः राम रावरे बनाये पाउ पलमें बनैगी हे रघुनाथजी! जो आपु मेरी बनावा चाहौ तौ आपुके कृपा कीन्हे पलकके चतुर्थांश में मेरा कल्याण ह्वैसक्ता है इसी हेतु द्वारपर पराहौं अरु हे कृपानिधान! आपु तौ निपट सयाने अत्यन्त चतुर हौ आपुते मैं आपना हाल कहा कहौं ऐसा निर्बुद्धि जड़हौं कि अमोल मणिसम आउ आयुर्बल देकै ताके बदले बेरफल सम तुच्छ विषयसुख लिहेउँ भाव तुच्छ विषयसुख हेतु सब आयु वृथाही बिताइ दिहेउँ १ कैसे आयु वृथा गँवायों कि विषय आशा कुमनोरथ करि मानस मलिन भयो पुनः देहते यावत् करतब कीन्हेउँ ते कलिमल जो पाप तिन करिकै पीन पुष्ट अर्थात् कामते परस्त्रीगमन क्रोधते वैर विरोध परहानि अपवाद लोभ ते चोरी, ठगी, छल, दम्भादि करि परधनहरण मानते सबको अपमान इत्यादि पापकर्मन करि देह मलिन भई भाव देहौते हरि अर्चनादि न कीन्हे पुनः जीभौ करिकै आपको नाम न जपेउँ आउवाउ विषयी वार्ता बक्यों इत्यादि कुपथ लोक वेद प्रतिकूल आचरण में कुचाल चल्यों पापकर्मनैमें लागरह्यों ताते सिवाय अनभलेके कबहूं भूलिहूके कछु भलो न भयो पुनः बालदशा थोरी उमिरि में खेलत समय सुदाउँ में खेलहू नहीं खेलेउँ अर्थात् जन्म विवाह वनगमन रावणवध राज्याभिषेक इत्यादि रामलीला में खेलहू नहीं खेलेउँ इत्यादि सब आयु वृथा खोयों २ पुनः औरनकी देखीदेखा अर्थात् साधुनके आचरण देखि मैं भी परमार्थ पथी आचरण करने लगेउँ अथवा दम्भते पुजावने हेतु साधुवेषते आशावश शुभ आचरण करने लगे किधौं साधुनके संगते उनको स्वभाव लागि गया ताते सांचही श्रवण कीर्तनादि करने लगे इत्यादि किसी कारण ते जो कछु भलाई परमार्थ पथी आचरण भये सो तौं प्रकट करि लोगनको जनाई भाव जैसा कछु करताहौं त्यहिते सौ गुण अधिक बढ़ाइकै सबसों कहा करताहौं पुनः दुरित जे पापकर्म करताहौं सो मैं दुराउ करताहौं अर्थात् पापनको ऐसा चोरावता हौं कि कोऊ जानै न पावै इति पापनको गुप्त राखि वृद्धि करताहौं तथा सुकृत को प्रकट करि नाश करताहौं पुनः राग अर्थात् काम लोभवशते काहूको हितकारी जानि तासों प्रीति करता हौं तथा काहूको आपने हितको हानिकर्ता जानि तापर रोष क्रोध करताहौं इत्यादि राग

रोषादि दोषनको पोषे पालिकै पुष्ट कीन्हे काहेते गोगण इन्द्रियसमूह यथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, लिंग, कर, पद, मुख, गुदादि इन्द्रियगण समेत मन जीव सो राग रोषादि जो दोष हैं इनहिनसों प्रीतिभाव कीन्हेउँ तथा इनकी भक्ति कीन्हीं भाव इन्द्रिय मन आदि सबते दोषनै को सेवन कीन कीन्हेउँ ३ आगिलो जो यह देह छूटेपर जन्म होइगो तथा पाछिलो जो जन्म व्यतीत है मरे पर यह जन्म भया है तथा अयहूं जो वर्तमान जन्म है इत्यादि काऊ कहे काहू जन्म में कछु तौ सुकृत नहीं कीन्हा ताते तीनिहू जन्म की आपनी गति अनुमानहीते बूझियतहौं निश्चय जानि लीन्हेउँ तौ अनुमान किसे कहिये यह प्रमाण को एक अंग है प्रमाण क्या वस्तु है जिसके द्वारा किसी बात का निश्चय कियाजाय ताको प्रमाण कहिये तामें भेद तौ आठ हैं परन्तु प्रत्यक्ष अरु अनुमान ये दो मुख्य हैं तामें जो नेत्रनके सम्मुखै देखाता है सो तौ प्रत्यक्ष प्रमाण है पुनः जब काहू चिह्न को देखकर उस चिह्नवाले को बोध होवै उस विचार को अनुमान कहिये सो तीनि भांति है यथा पूर्ववत् शेषवत् सामान्य तो दृष्टता में पूर्ववत् यह है जहां कारण देखकर कार्य को निश्चय किया जाय यथा वर्तमान में मैं पापकर्म करिरहा हौं तौ याको फल अवश्य ही दुःख भोगना परी पुनः शेषवत् अनुमान यह है जहां कार्य देखकर कारण का निश्चय किया जाय यथा आपना स्वभाव पापही कर्म में रत देखता हौं ताते यही निश्चय होत कि पूर्वहू जन्म में मैं पापही कर्म करता रहा हौं तब तौ वही स्वभाव बना है पुनः सामान्य तो दृष्ट अनुमान यह है जिसते चिह्न और चिह्नवाले को सम्बन्ध प्रत्यक्ष न होने पर किसी दृष्टि प्रकार की भांति अवगमन किया जाय यथा जो असत्कर्मनै की वासना बनी है तो औरहू जन्म में पापैकर्म करौंगो इत्यादि अनुमान ही ते मैं आपनी गति तीनिहूं जन्म की जानता हौं ताते कोटिन कल्पलौं आपने कर्मनते मेरा कल्याण नहीं है परंतु जगत् सब कहत कि तुलसीदास राम को गुलाम है तथा तुलसीदासहू को प्रतीति प्रीति भई भाव प्रणतपालादि महिमा सुनि प्रतीति भई ताते पदकमलन में प्रीति किहेहौं ताते झूठो हौं वा सांचो हौं जो कुछ हौं सो साहब रघुराउ के आश्रय हौं सोई कल्याण का उपाय है ४॥

(२६३) कह्यो न परत बिनु कह्यो न रह्यो परत बड़ो सुख कहत बड़े सो बलि दीनता। प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोटाई छोटी प्रभु की पुनीतता आपनी पापपीनता १ दुहूं ओर समुझि सकुचि सहमत मन सम्मुख होत सुनि स्वामी समीचीनता। नाथ गुणगाथ गाये हाथ जोरि माथ नाये नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता २ यहि दरबार है गरब ते सरब हानि लाभ योग क्षेम को गरीबी मिसकीनता। मोटो दशकंध सों न दूबरो बिभीषण सों बूझि परी रावरे की प्रेम पराधीनता ३ यहां की सयानप अयानप

सहस सम सूधो सतिभाय कहै मिटति मलीनता। गृध्र शिला शबरी की सुधि सब दिन किये होयगी न साईं सों सनेह हित हीनता ४ सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु सुमिरत होत कलिमल छल छीनता। करुणानिधान वरदान तुलसी चहत सीतापति भक्ति सुरसरिनीर मीनता ५

टी०। हे रघुनाथजी! आपने कर्म विचारि कह्यो नहीं परत सम्मुख वार्ता करत मन पछुरत है पुनः स्वार्थवशते विना कहे रहा नहीं जात ताते प्रौढ़ता करि कहत हौं काहेते मैं बलि जाउँ वड़े उत्तम उदारस्वामी सों दीनता कहत सते वड़ो सुख है भाव उदार याचकमात्र को परिपूर्ण दान देता है तहां याचना किहे कछु हानि नहीं है परंतु मन इस कारण ते पछुरता है कि प्रभु की वड़ी वड़ाई है यथा ॥ विधि हरि हर वन्दित पदरेणू ॥ पुनः आपनी छोटाई अत्यन्त छोटी अर्थात् मैं तुच्छ जीव अल्पज्ञ नीच तथा प्रभु की पुनीतता पावनता भाव जिनके पग धूरि पाइ अहल्या पुनीत भई दण्डकवन पावन भया जिनको धोवन गंगा लोक पावन करती हैं पुनः आपनी पापपीनता पापकर्मन की पुष्टता यह योग्यता नहीं है १ कैसे योग्यता नहीं है कि जब वड़ा उत्तम पावन स्वामी अरु नीच पापी सेवक तौ कैसे सम्मुख होवै इत्यादि दुहूं ओर की उँचाई निचाई समुझि सकुचि सहमत अर्थात् लज्जा करि डरता है मन इस हेतु पछुरत है परंतु स्वामी की समीचीनता अर्थात् केवट को सखा मानि अंक भरि मिले गीध को पिता तुल्य मानि तिलाञ्जलि पिण्डदान दीन्हे शबरी को माता तुल्य मानि जूठे फल खाये इत्यादि प्राचीन कीर्ति सुनि पतितपावन अधमोद्धारण जानि पुनः मन प्रभु के सम्मुख होत ताही बलते हे नाथ! कृपा, करुणा, दया, शील, सुलभ, उदारतादि आपुके गुणन की गाथा कथा गान कीन्हे तथा हाथ जोरि आपुके पांयन को माथौ नाये परंतु आपु तिरस्कार नहीं कीन्हे नीच जो मैं ताहूको निवाजे सो यह आपु में प्रीति रीति की प्रवीणता है प्रीति निवाहते हौ २ जाति, कुल, प्रतिष्ठा, धन, राज्य, विद्या, बल, रूप, चातुरी इत्यादि पाइ आपने समान दूसरे को न गनना इत्यादि गर्व करने ते यहि दरवार में सर्व सुख की हानि है अरु मिसकीनता सहित जो गरीबी है सो इस दरवार में योग जो सबप्रकार के सुखन की प्राप्ति तथा क्षेम जो कल्याण इत्यादि की लाभदायक है मिसकीन लफ़्ज़ अरबी है इसके माने करीमु-ल्लुगात में लिखे हैं गरीब फकीर नातवां भाव मैं किसी लायक को नहीं हौं अर्थात् गरीब अमानी फकीर सर्वस्वत्यागी नातवां किसी बल को भरोसा नहीं राखे इस भांति गरीबी अर्थात् अमान है जे प्रभु के सम्मुख आवत ताको सब सुखसहित कल्याण करते हैं ताकी प्रमाण देखावत दशकन्ध अर्थात् दश हैं माथ जाके बीस भुजा पुनः शूरवीर बली अरु तपस्या को बल वरदानते ऐसा प्रतापी कि सब लोक के नायकन को जीति सबकी संपत्ति छीनि लिया इत्यादि रावण सम मोटा सब भांति को गर्व भरा दूसरा कोऊ नहीं रहा पुनः विभीषण रावण का मारा निकारा धन धाम राज्य वलवीरताहीन जाको बैठनेको कहीं ठौर नहीं रहै

इति विभीषण सम दूसरो दूसरा कोऊ नहीं रहै सोई अनाथ ह्वै सम्मुख आइ प्रणाम किया ताको अभय करि शरण में राखे अरु रावण अभिमानते वैर किया ताको बन्धु पुत्रादि परिवार सेनासहित नाश करि सोई लंका के ऐश्वर्यसहित अकण्टक राज्य विभीषण को दै पुनः परलोकहूते अभय कीन्हेउ इत्यादि हाल सुनि हे प्रभु! रावरे की प्रेमपराधीनता मोको बूझि परी समुझि लिहेउँ अर्थात् हे रघुनाथजी! प्रेमी जनन के आपु विशेष आधीन रहते हौ जो कहैं सोई करौ अरु सब भांति कौ सुख देते हौ तथा मानी जनन को सर्वस्व नाश करिदेते हौ ३ यहां की सयानप सहस अयानप सम है हे रघुनाथजी! आपुके सम्मुख चतुरताते वार्ता करना सो हजार अज्ञानपना सम है यथा नारद चतुर, सज्ञान बनि भगवान्‌ते कामचरित सुनाये ताहीते ऐसे अज्ञान भये कि जे विवाह हेतु विक्षिप्त भये इत्यादि जो ज्ञानवन्तौ होइ सो आपुके सम्मुख चतुरता करै तौ मानते अज्ञान बनाइ देउ तथा जो अज्ञानी पापी क्रियाहीन अधमौ होइ अरु आपुके सम्मुख सूधे सत्य भावते आपने अवगुण यथार्थ कहै तौ शरणप्रभाव आपुकी कृपाते वाकी मलिनता मिटि जाती है वाके पाप अवगुण अज्ञतादि नाश है शुद्ध ह्वैजाता है पुनः गृध्र अधम को शरणमात्र पिता तुल्य मानि तुरतही शुभ गति दीन्हे अहल्या पाषाण ह्वैगई रहै ताको पावन करिदीन्हे पुनः शबरी भीलिनि ताको माता तुल्य मानि तुरतही शुभ गति दीन्हे इत्यादि अधम उद्धारता प्रणतपालता गुण दर्शित गृध्र, शिला, शबरी की सुधि सदा सब दिन किये सन्ते स्वामी सों सहज सनेह की तथा आपने हित की हीनता कबहूं न होइगी अर्थात् अधम उद्धारतादि गुण सुमिरि स्वामी में सनेह बढ़त ताते स्वामी सदा हित करत तब कैसे हीनता हानि होवै प्रतिदिन बढ़ता है ४ तेरो नाम कामतरु हे रघुनाथजी! आपुको नाम कल्पवृक्ष के समान सकल प्रकार की मनोकामना पूर्ण करिदेत पुनः सब समय को रक्षक कैसा है कि सुमिरतमात्रही कलिमल छल क्षीण होत अर्थात् कलियुग को छल सत्कर्म में बाधा का उपाय पुनः कलि प्रेरित जो कामादि वेगते मल जो पाप होते हैं इत्यादि को मन्द करिदेता है भाव नाम के प्रतापते कलि को प्रभाव मन्द परिजाता है ऐसा उदार आपुको जानि मोहूं याचना करता हौं हे करुणानिधान! भाव सेवक के दुःख में आपहू दुःखित है शीघ्र ही वाको दुःख मिटावते हौ ताते मेरी दुःखित की अर्जी सुनिये सीतापति की भक्ति सोई सुरसरि नीर गंगाजी को जल है तामें मीनता मछरी सम सदा वाही में मग्न रहना पलभरि विलग न होना इति वरदान तुलसी चहत सो कृपाकरि दीजिये भाव सदा आपु में अचल अनुराग बना रहै तथा देहते श्रवणादि में लगा रहौं ५॥

(२३४) नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन जीयकी। रावरो भरोसो नाह कैसो प्रेम नेम लियो रुचिर रहनि रुचि गति मति तीयकी १ दुष्कृत सुकृत वश सबही सों सङ्ग पर्यो परखि पराई गति आपनेहूं कीयकी। मेरे भले को गोसाईं पोचको सकल भाव हौंहूं किये कहौं सौंह सांची सीयपीयकी २ ज्ञानहू गिराके स्वामी बाहर अन्तर्यामी

यहां क्यों दुरैगी बात मुखकी औ हीयकी। तुलसी तिहारो तुमहीं पै तुलसी के हित राखिकै कहेते कछु है हौं आखी घीकी २

टी०। हे नाथ, रघुनाथजी! जन आपुको गुलाम जो मैं हौं ताके जीय की जो आपुमें प्रीति है सो नीके कै ठीक भलीभांति सांची जानिवी कैसी प्रीति जीय में है कि रावरो भरोसो नाह कैसो अर्थात् आपुको जो भरोसा है कि निश्चय स्वामी मेरा कल्याण करैंगे इति जो आपुको भरोसो है ताही विषे नाहपति कैसो भाव कि हे मेरी मतिरूप जो तीय स्वधर्मरत परी ताकी रुचि गति ऐसी है कि प्रेम सहित पतिव्रता को नेम लियो ऐसी रुचिर सुंदरि रहनि हैं अर्थात् यथा पतिव्रता अन्य पुरुष को स्वप्नेहू में न जानत केवल आपनेही पति में दृढ़ नेमसहित प्रेम राखती है यथा शिवपुराणे ॥ स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्। नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा पतिव्रता ॥ तैसेही अन्य रूप देवादि को आशा भरोसा मैं स्वप्नेहू में नहीं करता हौं हे रघुनाथजी! एक आपही के भरोसा में मेरी मति अनन्यता व्रतसों लगी है यथा॥ दो० ॥ एक भरोसो एकबल, एक आश विश्वास। स्वाति सलिल रघुवंशमणि, चातक तुलसीदास ॥ पुनः शिवसंहितायाम्॥ मधुरे भोजने पुंसो विषवद्भोजने मलम्। मलं स्यादन्यदेवानां सेवनं फलवाञ्छया ॥ तस्मादनन्यसेवी सन्सर्वकामपराङ्मुखः। जितेन्द्रियमनःकायो रामं ध्यायेदनन्यधीः १ दुष्कृत पाप कर्म करतसन्ते दुष्टन को संग रह्यो तथा सुकृत जो सत्कर्म करत सन्ते सुजनन को संग रह्यो इति दुष्कृत सुकृत वशते सवहिन को संग पर्‍यो ताते पाप पुण्य करने की पराई जो गति भई तथा आपनेहूं किये की जो गति मेरी भई सो सब भली भांति परखि लियो कि मेरे पोचहू को भाव स्वार्थ ऐसे नीचहू को गोसाइयों गोसाईं जो रघुनाथजी तिनहीं सकल विधि ते भलो कियो यह बात सियपिय की सौंह सौगन्द करि सांची कहत हौं यामें झूठी न कोऊ मानै अर्थात् सुजनन के संग जब सत्कर्म करनेलगे तहां औरन के तौ कर्म पूरे परे ताको फल पाये अरु मेरे कर्मही न पूरे निवहे फल कहांते होवैं ताते सत्कर्मों मेरा भला न करिसके तथा जब विषयी मनुष्यन के संग असत्कर्म करनेलगे तहां औरन को देखा जे स्त्री आदिक में आसक्त रहे ते भवबन्धन में परे पुनः जे पिशाचादि सिद्ध कीन्हे वे पिशाची घोरगति पाये अरु मैं ऐसा विषयी कि स्त्री विषे ऐसा आसक्त रहेउँ कि वह काहू समय पाइ पिता के घर गई इहां मोसों न रहागया पीछे मैंभी उहां को चला गया तहां रघुनन्दन स्वामीकी ऐसी अनुग्रह भई कि सोई स्त्री मोको उपदेशकर्ता ह्वैगई कि मैं तौ आपुकी दासी हौं जो आपुकी आज्ञा होइ सोई करौं तौ मेरे विषे ऐसा मन लगावने में क्या लाभ है वृथा उपहासै तौ है ताते इसी भांति मन परमेश्वर में लगावो जामें जीव को कल्याण देहकी प्रशंसा है यही बात मेरे पुष्ट परिगई प्रभु में मन लगायों ताही समय पिशाची साधन करता रहों सो जब सिद्ध है मोसों मांगने को कहा तब मैं हरिभक्ति मांगेउँ ताने हनुमान्जी के दर्शन की युक्ति बताई हनुमान्जी के दर्शन ते प्रभुकी शरणागति सुलभ भई इति असत्कर्मनो में प्रभु की अनुग्रह ते मेरा भले भया इत्यादि शुभाशुभ कर्म करि

संग परि औरनो की गति देखेउँ अरु आपनी करणी की गति देखेउँ ताते सौगंद करि सांचो बात कहतहौं कि मैं ऐसे नीच को रघुनाथजी सकल भांति ते भला कीन्हेउ ताते सिवाय रघुनाथजी की कृपाते और दूसरी भांति मेरा कल्याण नहीं है २ ज्ञान जासों जीव को सिद्धान्त वस्तु कहवे समुझवे की गति होती है अर्थात् ब्रह्मात्मरूप को अनुभव ताके स्वामी परब्रह्म हौ पुनः ॥ जापर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं वानी ॥ अर्थात् आपुकी प्रेरणाते वाणी कढ़ती है ताते वाणी के भी स्वामी हौ इत्यादि वाहर की जाननहार ज्ञान अरु गिरा वाणी के स्वामी हौ ताते झूंठी सांची जानिलेउगे पुनः भीतर जो कछु कपट राखे होउँगो तौ सब घट में अंतर्यामीरूपते वास किहेहौ ताते अंतरको भी कपट जानि लेउगे तौ यहां आपुके सम्मुख मुख की कही बात अर्थात् जो कछु कहता हौं तथा हिये की बात जो कछु कपट राखे होउँगो सो क्यों दुरैगी अर्थात् अन्तर बाहर की जाननेवाले आपुके सम्मुख मेरी झूठी क्यों निवाह होइगी ताते सांचही कहतहौं हे रघुनाथजी ! तुलसी तिहारो तुलसीदास आपही को गुलाम है दूसरे को आश भरोसा नहीं राखे है तथा तुलसी के हित तुमहीं पै अर्थात् निश्चय करिकै तुलसीदास को लोकहू परलोक में हित करनेवाले एक आपही माता,पिता, बन्धु, मित्र, गुरु, इष्टदेव हौ दूसरा कोऊ कहीं लोक परलोक में हितकर्ता नहीं है इत्यादि अनन्यता ब्रत जो तौ बाहर भीतर सत्य करिकै दृढ़ होवै तौ हे करुणा-सिन्धु ! कृपा करि शीघ्रही मेरा कल्याण कीजिये अरु कछु राखिकै कहेते घीय की माखी है हौं अर्थात् जो अन्तर में कछु कपट राखि झूंठी कहत होउँ तौ मैं आपही आपने कर्मनते घीकी परी माछी सम तुरतही नाश ह्वै जाइहौं ३॥

(२६५) मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहिं करि सो । चारिहूं विलोचन विलोक तू तिलोकमहँ तेरो तिहूं काल कहूं को है हितु हरिसो १ नये नये नेह अनुभये देह गेह वसि परिखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो । सुहृद समाज दगाबाजिही को सौदा सूत जब जाको काज तब मिलो पायँ परि सो २ विबुध सयाने पहिंचाने कैधौं नाहीं नीके देत एक गुण लेत कोटिगुण भरि सो । करम धरम श्रम फल रघुवर बिनु राखको सो होम है ऊसर को सो बरिसो ३ आदि अन्त बीच भलो भलो करै सबही को जाको यश लोक वेद रह्यो है बगरि सो । सीतापति सारिखो न साहब शीलनिधान कैसे कल परै शठ बैठो सो बिसरि सो ४ जीव को जीवन प्राण प्राण को परमहित प्रीतम पुनीतकृत नीचन निदरि सो । तुलसी तोको कृपाल जो कियो कोशलपाल चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ५

टी० । हे जीव, अज्ञ ! कहां वृथा विषय भोग में भूला है प्रथम मेरो कह्यो हितो-पदेश सुनिकै पीछे विचार करि पुनः जो बात तोहिं भावै सोई करियो है तौ नेत्र

देह में हैं तिनकी दृष्टि सूर्यन की अथवा अग्निकी प्रकाश ते प्रकाशित होती हैं तिनते लोक व्यवहार सब देखु तथा अन्तर में चित्त बुद्धि नेत्र हैं तिनमें विचार दृष्टि है सो ज्ञान के अथवा विराग के प्रकाशते प्रकाशित हैं त्यहि करिके लोकहू परलोक में विन स्वार्थ को हितकारी देखु तेरा कौन हितकर्ता है इति चारिहू विलोचन नेत्रन करिके विलोक देख तौ तू स्वर्ग भूपातालादि तिहूं लोकन में तथा भूत भविष्य वर्तमानादि तिहूं काल में हरि के समान तेरो हितू कहीं कोऊ है भाव रघुनाथजी के समान जीव को हितकर्ता सुर, नर, नागादि न कोऊ भया न है न होनहार है तिन प्रभु को त्यागि वृथा सनेह में क्यों भूला परा है १ कैसा वृथा सनेह कि जहां जहां देह धरि गेह में वास कीन्हे तहां तहां माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्र, पौत्र, श्वशुर, सार, हित, मित्रादिकन में नये नये नेह अनुभये नई नई प्रीति पैदा कीन कीन्हे तिन विषे प्रपंची छली अर्थात् देखनेमात्रही ऊपर तौ प्रेम अरु अन्तर ते कोऊ आपना नहीं सो प्रपंची प्रेम परखेते उघरि परत अर्थात् अतिविपत्ति संकट आपत्काल परेपर कोऊ लगे नहीं ठाढ़ होताहै काहेते सुहृद् जो मित्रवर्ग तिनकी समाज भरि सब दगाबाजिही को सौदासूत लेन देन व्यवहार है भाव स्वार्थ हेतु तौ परमहितू बने वेस्वार्थ कोऊ बात नहीं करताहै अरु जब जाको काज लागत तब आपने स्वार्थ हेतु सो जन पांय परिकै आइ मिलताहै भाव यावत् प्रयोजन नहीं है जात तावत् गुलाम बने हैं स्वार्थ भये पीछे लगे नहीं आवते हैं २ लोक जनन को वृथा व्यवहार कहि अब देवन में वृथा व्यवहार देखावते हैं कि विबुध सयाने भाव देवता बड़े चतुर हैं तिनको पहिंचाने किधौं नीके नहीं पहिं-चाने अर्थात् व्यवहार करि उनकी चातुरी जानि लिहे कि नहीं जानता है भाव देवता बड़ेही स्वार्थी निर्दयी हैं काहेते पूजा, पाठ, जप, तप, यज्ञादि जब कोटि गुण परिश्रम कराय लेते हैं तब एक गुण भरि फल देते हैं ताहू में जो विधिपूर्वक आचार बनि परे तौ नाहीं तौ विघ्न करते हैं पुनः देदिहे पीछे जो वाको संकट परे तौ विना पूजादि किहे सहायता न करैं तथा सत्य, शौच, तप, दानादि वर्णा-श्रमादि के जो धर्म हैं ताके अनुकूल सन्ध्या, तर्पण, पूजा, पाठ, जप, तीर्थ, व्रत, दानादि यावत् कर्म हैं सो विना रघुवर के सनेह भये कर्म धर्मादि करना तामें केवल परिश्रमै लाभ है भाव वृथाही श्रम करना है लाभ कछु भी न होइगो कौन भांति यथा विना आगि राख कैसो होम करना साकल्य बहाइ देना है सुकृत कछु भी न होइगो तथा ऊसर कैसो बरसिबो अन्नादि कछु न होइगो ऐसेही विना राम सनेह सब धर्म कर्म वृथा हैं यथा रुद्रयामले ॥ ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मु-खाः । जपस्तपो दया शौचः शास्त्राणामवगाहनम् ॥ सर्वं वृथा विना येन शृणुत्वं पार्वति प्रिये॥ महाशम्भुसंहितायाम्॥कृपा च साधनं सिद्धिर्भक्तिः श्रीमैथिलीपतेः । अन्यत्तु केवलं व्यर्थं साधितं मतवादिभिः ३ अरु रघुनाथजी कैसे जीवन के हित-कर्ता हैं कि आदि भलो अर्थात् गर्भवास में रक्षा कीन्हे पुनः अन्त भलो मरण समय रक्षक बीच जीवनपर्यन्त रक्षा कीन्हे इति सब जीवमात्र को सदा भलो करते हैं अथवा सत्ययुगादिते रक्षा करत आये आगे करैंगे वर्तमान में रक्षा करते हैं अथवा आदि साकेतलोक ते सुलभ लोकोद्धार हेतु कृपा करि लोक में अवतीर्ण

भये पुनः अन्त में चराचर को परधाम को लैगये पुनः बीच में यावत् लोक में रहे तब राह राह जीवन को कल्याण करत फिरे तथा अबहूं सबको भलो करते हैं अर्थात् नाम रूप लीला धाम द्वारा सहजही जीवन को कल्याण करते हैं इत्यादि जो रघुनन्दन को अमल यश लोकन में तथा वेदन में बगरि फैलि रह्यो है यथा भागवते ॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेदपट्टम्। तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥ ऐसे सीता के पति शीलनिधान शीलभरे स्थान साहब सेवा करिबे में सुलभ इति रघुनाथजी सरीखे स्वामी को बिसारि विमुख है बैठेहै तौ हे शठ, जीव ! तू कैसे कल पावैगो भाव सदा दुःखै भोगत जन्म बीतैगो ऐसा विचारि सब आशा त्यागि प्रभु की शरण गहु ४ जामें जीव नाश न होवै इस रक्षाहेतु अन्तर्यामीरूप ते सदा जीव के अन्तर बास किहे हैं इति जीव के जीवन पुनः प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान इति प्राण पञ्च जो वायु हैं तिनको आत्मरूप ते चैतन्य किहे हैं इति प्राणन को प्राण पुनः शरणमात्रही सब प्रकार को हित करतेहैं पुनः सदा आपना प्यारा करि जानते हैं इति परम हितकर्ता प्रीतम परम प्यारे हैं पुनः नीचनि पुनीत कृतनीच जो निषाद कोल शबरी गीधादि तिनको पुनीत करनेवाले ऐसो सुलभ उदार प्रणत-पाल स्वामी सोई रघुनाथजी निदरि त्याग करि सुख चाहता है सो कैसे होइगो हे तुलसी ! कोशलपाल कृपालु तोको जो कियो सो चित्रकूट को चरित्र चित्त में चेत करि विचारु तौ अर्थात् सुलभ लोकोद्धारहित अवतीर्ण है असंख्यन जीवन को कल्याण कीन्हे पुनः अवधपुरवासिन को जन्मभरि सुखी राखि अन्त में परधाम को ले गये इति कोशलपाल ऐसे कृपालु हैं कि चित्रकूट में तोको प्रत्यक्ष दर्शन दीन्हे ताको चेत करि चितसों विचारु कैसी अनुग्रह कीन्ही तिनसों विमुख भये कहां तेरा ठेकाना है ताते प्रभु की शरण दृढ़ गहु ५ ॥

(२६६) तन शुचि मन रुचि मुख कहौं जन हौं सियपी को। केहि अभाग जान्यो नहीं जो न होय नाथसों नातो नेह न नीको ? जल चाहत पावक लहौं विष होत अमीको। कलि कुचाल सन्तनि कही सोइ सही मोहिं कछु फहम न तरनि तमीको २ जानि अन्ध अञ्जन कहै वन बाघिनि घी को। सुनि उपचार विकारको सुविचार करौं जब तब बुद्धि बल हरै हीको ३ प्रभु सों कहत सकुचत हौं परौं जनि फिरि फीको। निकट बोलि बलि बरजिये परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़जीको ४

टी०। हे रघुनन्दन, महाराज ! आपकी अद्भुतगति है सो मेरी समुझ में नहीं आवत क्या समुझ में नहीं आवत कि तन शुचि पवित्र किहे आपकी क्रिया व्यापार में लगाये हौं तैसेही मनकी रुचि आपकी प्राप्ति चाहत हौं तथा मुखौते कहतहौं कि सिय पीय को जन राम को गुलाम हौं ताहूपर जो नाथ सों नेह नातो नीक न होइ सो कारण नहीं जान्यों कि केहि अभाग्य ते यह विघ्न होता है अर्थात्

तन, मन, वचनते आपही के व्यापार में लगा हौं तबहूं जो आपु में सम्बन्ध सनेह सांचा नहीं होता है तौ कौन मेरी अभाग्य उदय है जो वाधा करती है यह कारण मेरी समुझ में नहीं आवत भाव आपकी शरण में वाधा करनेवाला कौन है सो जाना चाहत हौं १ क्या बाधा होती है कि जल चाहत हौं अरु पावक लहौं अग्नि पावता हौं अर्थात् जौनी उपायते अन्तर शीतल कीन चाहत हौं ताहीते तीनिहूँ तापै उत्पन्न ह्वै मोको जरावती हैं यथा हरियश पारायण होत तहां गये वा पर्वां पाइ तीर्थ पर गये वा हरिउत्सव होता है तहां गये कि इहां पाप नाश होइ सुकृत पाइ जीवमें सुख शीतलता आवै सो तौ होता नहीं वहां वाधा क्या भई कि स्त्रीगण सर्वत्रै रहती हैं तिनके गानवार्ता में कान लागि गये उनके रूप में नेत्र लागि गये उन सों वार्ता करतेमें मुख लागिगया आवत जात में अंग स्पर्श में त्वचा लागि गई इति शुभस्थान में थोरेही कारण ते महापाप पैदा भये तिनको फल महादुःख में तप्त होता हौं तथा अमी को विष होत जिस उपायते जीव को अमर कीन चाहत हौं तिनहीं ते जीवके नाश का उपाय बँधि जाता है यथा जप, तप, पूजा, पाठ, विवेक, विरागादि जो कछु जीव के कल्याण का उपाय करता हौं सो तौ होता नहीं वाधा क्या भई कि ताही में लोभ पैदा है गया ताते दम्भ करने लगेउ पुजावने हेतु तथा काम पैदा भया परस्त्री अवलोकन लगेउ इन व्यापारन में जो वाधा किया तापर क्रोध किहेउ ताहीते मोह भया सोई विष सम जीव को नाश करता है पुनः तरनि सूर्य अर्थात् ज्ञान तमी रात्री अर्थात् अविद्या इत्यादि जानिवे को मोको फहम नहीं है भाव मेरे ऐसी चैतन्यता नहीं है कि ज्ञान अथवा अविद्या पहिचानि सकौं परन्तु कलियुग की कुचाल कराल है इति सन्तनि कही हैं सोई सही है अर्थात् सन्तजन कहते हैं कि कलियुग प्रेरित ऐसी कुचाल है जामें परमार्थ पथी कोऊ निवहने नहीं पावता है सो अब मैं सांची मानी अर्थात् वाधा करता कलिकाल ही है २ पुनः मोको भी मोह करिकै अन्धा जानिकै कलियुग वन की वाघिनि के घी को अञ्जन लगावने को कहता है भाव जो तू वन की वाघिनि को नेत्रन में लगाउ तौ तेरी दृष्टि खुलिजाइ इहां घर की पाली हुई वाघिनि जो चारा पानी देता है ताको हिंसा होइ तौ आश्चर्य नहीं जो दूध गारि लेवै ताको नहीं कहे अरु वन की वाघिनि सम्मुख जातही खाइ जायगी इस हेतु वनवाघिनि कहे इहां विद्या माया घरवाघिनि है अविद्या माया वनवाघिनि है संसार वन है तामें धन, धाम, धरणी, स्त्री, पुत्र, हित, मित्र, नृत्य, गान, कौतुक, कला, भोजन, वसन, वाहन, भूषणादि यावत् लौकिकसुख हैं सोई अनेक भांति सघन वृक्ष लगे हैं तिनहिन में अविद्या वाघिनि वसी है विषयसुख में परिवद्ध होना सोई जीवन को खाइ जाना है पुनः घृत तौ दूध को सारांश है इहां दूध है शृंगाररस यथा ॥ दो० ॥ वुधि विलासयुत जहँ रहै, रति को पूरण अंग । ताहि कहत शृंगाररस, केवल मदनप्रसंग ॥ तामें जो विभाव अर्थात् हर्षसहित युवतिन को परस्पर अवलोकन सो दुहव है पुनः रोमाञ्च स्वेद-कण्ठारोधादि सात्विक औटव है पुनः अनुभाव कामासक्ति सो जमावव है पुनः हर्ष चिन्ता स्मृति उत्कण्ठादि संचारी सो मथिवो है पुनः स्थायी रति की प्राप्ति सोई घी है पुनः विषयी कुटिल कलियुगी जीवन के जो वचन हैं यथा ॥ पान पुराना

थीं नवा, अरु कुलवन्ती नारि। चौथी पीठि तुरंग की, वैकुण्ठनिशानी चारि॥ इत्यादि कलियुगै को कहिबो है कि यही औषधि करौ तौ तुम्हारी दृष्टि खुलि जाइ कौन भांति यथा श्लोक॥ तीर्थाटनं पण्डितमित्रता च वारांगनाराजसभाप्रवेशः। अनेक शास्त्राणि विलोकितानि चातुर्यमूलानि वसन्ति पञ्च॥ इसमें यद्यपि उत्तमौ बातें हैं परन्तु कलियुग की सहायताते याकी रीति यथा दशवीस कोस के तीर्थन को पर्वा परे पर स्त्री पुरुषन की समाज जोरि हँसी मसखरी करते गये वहां भी स्त्री अवलोकनै करत में विषय बढ़ी पुनः जे कोकसार नायकाभेदादि सुनावते हैं ऐसे पण्डितनते मित्रता भई राजन की सभा में भी कामै क्रोध लोभ को व्यवहार तथा रसग्रन्थन को अवलोकन पुनः वेश्यन को संग तौ विषय की पूर्णतै है इत्यादि द्वारा चातुर्यता की उत्पत्ति बतावना इति दृष्टि खुलने हेतु कलियुग बनवाधिनि को घी अञ्जन मोको बतावता है सोई विकार को उपचार अर्थात् चित्त-बुद्धि आदि नेत्रन में विचारहीनता जो मोतियाविन्दु विकार है ताको उपचार औषध जो कुसंगद्वारा कलियुग कहता है सो सुनिकै जब वामें सुन्दरी तरहते विचार करता हौं भाव इस औषध करनेते क्या हानि होइगी ? पुनः क्या लाभ होइगो इति सुविचार करत समय तब कलियुग मेरे हृदय को जो बुद्धि बल अर्थात् ज्ञान विचार ताको हरि लेता है ताते उसीकी बनाई औषध करना मोको भावता है अर्थात् विषयसुख भोग ही रुचता है ३ पूर्व विचारते निश्चय होत कि शरणागत में बाधा करनेवाला कलिकालही है ताको हाल हे प्रभु! आपुसों कहत सकुचात हौं काहेते पुनः फीको जनि परौं अर्थात् पूर्व विमुख है प्रभु को फीको लग्यों ताहीं ते महादुःख भोगत रहेउँ अब किसी कारण सम्मुख भयों कछु प्रभु को मीठाभी लग्यों ताते बारबार अर्ज करत सकुचत हौं कि प्रौढ़ता ते पुनः न फीको परिजाउँ परन्तु आपनी गर्ज स्वार्थता ते बिना कहे रहा नहीं जात ताते कहत हौं निकट बोलि बलि बर्जिये जामें अब तुलसीदास जड़ जी को ख्याल परिहरै अर्थात् कलियुग को आपने निकट बोलाइ वाको हटकि दीजिये कि हमारे गुलाम पर जो बाधा करेंगो तौ दण्ड पावैगो इत्यादि कौन हेतु मैं बलि जाउँ मेरे नाश करिबे की जो ख्याल सुधि राखे है सो त्यागि देवै काहे ते एक तौ मैं जड़जीव आपनी हानि लाभ ऐसे ही नहीं सूझत ताहूपर कलिकाल बाधा करत तब कैसे मेरा निस्तार होइगो४॥

(२६७) ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्यो हौं। तुम चहुँयुग रस एक राम हौं हूं रावरो यदपि अघ अवगुणनि भर्यो हौं १ बीच पाइ नीच बीचहीं छरनि छर्यो हौं। हौं सुवरण कुवरण कियो नृपते भिखारि करि सुमतिते कुमति कर्योहौं २ अगणित गिरि कानन फिर्यो बिनु आगि जर्यो हौं। चित्रकूट गये मैं लखी कलि की कुचाल सब अब अपडरनि डर्यो हौं ३ माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खर्यो हौं। चीन्हो चोर जिय मारि है तुलसी सो कथा सुनि प्रभुसों गुदरि बर्यो हौं ४

टी०। दोहा॥ रक्षक सब संसार को, हौं समर्थ मैं एक। दृढ़मन अनुसंधान यह, सो गुण कृपा विवेक॥ सोई कृपा गुणभरे स्थान इति हे कृपालु, श्रीरघुनाथ जी! मैं ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं अर्थात् सत्कर्मादि करि आप के समीप प्राप्त हुन चाहत हौं त्यों त्यों आपते दूरि पस्यो हौं यथा कर्म करत समय मान बड़ाई महत्त्व ऐश्वर्यादि की वासना उठि आवती है ताको फल सुख भोग सोभी बन्धन भया तथा असत्कर्म आपही होते हैं तिनको फल दुःखभोग सो विशेषिही बन्धन भया इसीकारण जन्म मरण होते होते विमुख विषयी ह्वै गया ताते आपते दूरि परि-गया हौं परन्तु हे रघुनाथजी! आपतौ चारिहू युगन में सदा एकरसै उत्तम उदार हौ अरु हौंहू सदा सर्वदाते रावरो आपहीको गुलाम हौं यदपि अघपापनते तथा कामादि अवगुणन ते भरा हौं तवहूं आश भरोसा आपही को राखे हौं भाव सब युगन में सुलभ अधमन को उद्धार करते रहेउ तौ अब कलियुग में मोको क्यों नहीं अभय करि शरण में राखते हौ १ हे प्रभु! मैं तौ अल्पज्ञ जड़ जीव आपनी हानि लाभ नहीं जानता हौं ताते जा समय आपते मुख फेरि लोक सुख में परेउँ सोई बीच पाइ नीच जो कलियुग सो बीचही छरनि छस्यो हौं अर्थात् जब सम्मुख ह्वै श्रवण कीर्तनादि द्वारा आप के निकट आवा चाहत हौं सो बीचही में छल चातुरी करि मेरा सर्वस्व धन लूटि लियो यथा स्त्री देखाइ काम प्रचण्ड करि संयोग को कारण बांधि दियो लाभ देखाइ लोभ प्रचण्ड करि किसी के सनेह बन्धन में डारि दियो हानि कर्ता देखाइ क्रोध प्रचण्ड करि किसीते वैर कराइ दियो इत्यादि कारण प्रचण्ड मोह उपजाइ अन्धा करि मेरा सर्वस्व अर्थात् ज्ञान विचार हरिलियो मैं किसी काम को नहीं रहि गयों ऐसा निकम्मा करि दियो कैसा निकम्मा करिदियो कि हौं सुवरण ताको कुवरण पीतरि ताम करि दियो अर्थात् कुन्दन सोना सम सच्चित् आनन्द उत्तम आत्मरूप मैं रहौं तामें कारण माया लगाय आत्मदृष्टि खैंचि जीवत्व करि दागी बनाइ दियो तवहूं अंशांशी भावते प्रेम प्रभावते इन्द्रिय मनादि को स्वाधीन किहे तनरूप देश में राज्य करता रहौं सोऊ नृपते भिखारि करि दियो भाव कारज माया लगाय स्वतन्त्रता खैंचि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मैथुनादि विषयन में इन्द्रियन को आसक्त कराय कामी लोभी बनाइ दियो तवहूं सेवक सेव्य भावते सुमति विचारते श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यतादि करि मति को थिर किहे रहौं तब सुमति ते कुमति करेहौं अर्थात् मोह को लगाइ सुन्दरि मति को नाश करि कुमति करि दियो ताते देहाभि-मानी ह्वै सुगन्ध, वनिता, वसन, भोजन, वाहन, भूषणादि सुख में परि अनीति रत भयों २ प्रथम तौ यथा सब पण्डित लोग होते हैं तैसेही लोकव्यवहारही में घूमे फिरे जब हनुमान्जी के दर्शन भये तब नरहरि स्वामीजीते उपदेश लै चित्रकूट में बैठि चारि करोरि राम मन्त्र जाप किये ताके प्रभावते चैतन्य भये राम नाम को प्रचार करने लगे तबै कलियुग सहाय सहित मूर्तिमान् ह्वै इनको डाटा इसी हेतु स्वामी सों प्रार्थना करते हैं हे प्रभु! पूर्व मैं अगणित गिरि पर्वतन में तथा कानन वनन में फिरत रहेउँ तहां विनु आगि जस्यों भाव दुःख के कारणै नहीं करों अरु सुख के उपाय पूजा, पाठ, जपादि कीन्हें कीन्हेउँ तवहूं अकारणै

दुःख हूने कीन्हेउ जब चित्रकूट को गयों तहां आपकी कृपा प्रभाव ते मैं लखी देखी कि यावत् बाधा होती हैं सो कलियुगै की कुचाल है अब अपडरनि डर्यो आपनी ओरते डराइ गयों भाव एक तौ अनेक जन्म के पापै दुःखदायक पुनः सत्पथ मैं बाधा करते हैं ताहूपर कलिकाल छल ते कामादि लगाय महाबाधा करि रहा है ताको मैं देखि लिहेउँ तहां जो मैं सबल होता तौ वाको गहि दण्ड देता अरु इहां तौ कलियुग सबल है अरु मैं निर्बल हौं ताते आपही डरता हौं ३ किस हेतु डरता हौं कि यह रीति है कि जब चोरी करत में साहु चोर को चीन्हि लेता है तब जो सबल प्रतापी वीर होइ तौ तौ चोर को पकरै मारै अरु जो धनी अबल है तौ चोर अवश्यही प्राणघात करैगो इस भय ते हे नाथ! माथ नाइ हाथ जोरि सम्मुख खरो आपसों कहत हौं कि चीन्हे पर चोर घात करता है यह कथा पूर्व लोगनते सुनि निश्चय माने हौं कि कलियुग भी चीन्हों चोर है अवश्य मेरा जीव मारि है सोइ प्रभुसों गुदरि बखो हौं तुलसी आपनो हाल प्रभु सों कहिकै छुट्टी लेत जो भावै सो करौ ४॥

(२६८) प्रण करि हौं हठि आजते राम द्वार पखो हौं।
तू मेरो यह बिनुकहे उठिहौं न जनम भरि प्रभुकीसौं करि निबखो हौं १
दै दै धक्का यमभट थके टारे न टखो हौं।
उदर दुसह सासति सही बहुबार जनमि जग नरक निदरि निकखो हौं २
हौं मचला लै छांड़िहौं जेहि लागि अखो हौं।
तुम दयालु बनिहै दिये बलि बिलम्ब न कीजिय जात गलानि गखो हौं ३
प्रकट कहत जो सकुचिये अपराध भख्यो हौं।
तौ मनमें अपनाइये तुलसिहि कृपाकरि कलि बिलोकि हहरयो हौं ४

टी०। हे श्रीरघुनाथजी! हौं मैं आज ते हठि प्रण करि आपके द्वारपर पखो हौं कौन हेतु कि यह कहिये हे तुलसीदास! तू मेरो गुलाम है मैं तेरो रक्षक हौं अब काहू की भय न करु यह वचन बिना कहे जन्म भरि द्वारपरते न उठि हौं तापर प्रभु की सौंह करि निबखो हौं रघुनाथजी की सौगन्द है सब सत्यही कहेउँ है इति काहे छुट्टी लेता हौं आगे जैसा भावै सो करौ परन्तु यह निश्चय जाने रहौ कि और किसी उपायते न टरौंगो १ काहेते न टरौंगो कौन पुष्टता मेरे है कि आप को द्वार सुख को स्थान है पुनः आप के पार्षद साधु सुजनपाल दयावन्त सुधर्मी तिनके धकन को मैं क्या भटकता हौं मैं ऐसा पोढ़ा हौं कि कराल निर्दयी यम के भटते मोको धका दैदै थके दुःखद स्थान नरक में तहांते उनके टारे नहीं टखों अर्थात् जब महापाप करि नरक को गयों जब भोग करि वहां ते चल्यों तब यम-गण भारी धका दैदै निकारे कि अब इहां न आवना परन्तु मैं जहां जन्म धखों तहां पुनः महापाप करि फिरि नरक में पहुँचेउँ पुनः भोग करि जब चल्यों तब यमगण पुनः कठोर धका दै निसारे कि अब न इहां आवना पुनः जन्म धरि महा-पाप करि फिरि नरक मे जाइ पहुँचा इसीभांति यमभट धका दैदै निकारा कीन्हे

ते तौ थकि बैठे परन्तु मैं नरक जाना बन्द नहीं कीन्हेउँ इसी भांति वहां वास करते करते नरक दुःख सहते सहते पोढ़ा है गया तहां को वासौ तुच्छ मानि लिया भाव नरक में भी विशेषि दुःख नहीं है पुनः बहुत बार जग में जन्म धरि धरि हिंसा, चोरी, जुवा, परहानि, परस्त्रीगमन, परअपवाद इत्यादि अनेकन पाप करिकरि ताको फल दुसह अर्थात् कराल रोग, पुत्र, बन्धु, स्त्री आदिकों वियोग राजदण्ड बन्धन शत्रुवश संकट दरिद्रता इत्यादि जो सहा न जाइ ऐसी सांसति महादुःख तथा उदर माताके गर्भवास में इत्यादि जगमें बहुत बार जन्मिकै दुसह सांसति मैं सही अरु नरककी निन्दाकरि निकस्यों अर्थात् जब माताकेउदरमें गर्भवास को दुसह दुःख सहेउँ पुनः जन्म धरि तीनिउँ तापैं सहेउँ मरण पीछे नरक को दुःख सह्यों इन दुःखन को जो मैं कछु नहीं गन्यउँ तब सुखद स्थान पर साधु दयावन्तन के धक्का दण्डादि को क्या मैं भटकना हौं ताते किसी भांति ते द्वार ते न टरौंगो २ हौं जेहि लागि अर्यो हौं मैं जौनी बात हेतु द्वारपर अरो खरो हौं सो मचला हठि मांगन लै लेहौं तब आप को छांड़ि हौं स्वतन्त्र बैठने देहौं काहेते तुम दयालु अर्थात् बेप्रयोजन पर दुःख हरते हौ ऐसे दयावन्त हौ तौ मेरा मांगन दियेही बनि है ताते मैं बलि जाउँ हे रघुनाथजी! अब बिलम्ब न कीजिये क्योंकि गलानि मैं गर्यो जात हौं अर्थात् प्रार्थना करत बहुत काल बीते ताते मारे गलानि के मरा जात हौं भाव लोग मेरी उपहास करते होइँगे कि ऐसे सबल समर्थ उदार सुस्वामी के द्वार पर ऐसी बिलम्ब लागि तौ बड़ा अभागी है इस हेतु बिलम्ब में मोको बड़ी गलानि है ताते बिलम्ब न कीजिये ३ हे रघुनाथजी! आप त्रिदेव पूजित बड़े महाराज परमपावन उत्तम स्वामी हौ अरु आपके गुलाम हनुमान् ऐसे सब भांति उत्तम हैं तहां मैं तुच्छ जीव महापापी अधम सब भांति ते नीच हौं ताको आपना गुलाम कैसे कहौं इस विचारते जो प्रकट कहत सकुचिये क्योंकि अपराध भर्यो हौं मैं महाअपराधन को भरा पात्र ताको कैसे प्रकट कहौं यह संकोच करते होउ तौ कृपा करि मनै में अपनाइये आपना सांचा गुलाम मानि लीजिये काहेते कलि-बिलोकि हहर्यो हौं कराल कलियुग को सकोधित देखि तुलसीदास हियेते हारि मानि अत्यन्त भयातुर आपकी शरण आयो है ४॥

(२६९) तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै। जेहि स्वभाव विषयनि लग्यो तेहि सहज नाथसों नेह छांड़ि छल करिहै १ सुत की प्रीति प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरिहै। अपनो सो स्वारथ स्वामी सों चहुंविधि चातक ज्यों एक टेकते नहिं टरिहै २ हरषि है न अति आदरै निदरै न जरि मरिहै। हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित कलिकुचाल परिहरिहै ३ प्रभु गुण सुनि मन हरषि है नीर नयननि ढरिहै। तुलसिदास भयो रामको विश्वास प्रेम लखि आनन्द उमँगि उर भरिहै ४

टी०। हे श्रीरघुनाथजी! मेरा मन जो देह सुखसाधन में धाया फिरता सो

अब फिरि परि है देह व्यवहार त्यागि आपुकी सम्मुख ह्वै जीव कल्याण के साधन अर्थात् श्रवण कीर्तनादि में जब मन लागो तब जानि हौं कि आपु मोको अपनायो आपना सांचा गुलाम बनायो कैसा सांचा गुलाम कि जेहि स्वभाव विषयनि-लग्यो अर्थात् जैसे सहज स्वभाव इन्द्रियनद्वारा मन विषयन में लागता है तेही सहज स्वभाव छल चातुरी छांड़ि जब नाथ सों लागिहै यथा श्रवणद्वारा शब्द में लाग विषयवार्ता सुनता है तैसेही जब आपु के यश श्रवण में लागैगो यथा नेत्र-द्वारा रूप में लाग युवतिन को देखता है तैसेही जब साधुजन हरिधामरूप लीला अवलोकन में लागैगो यथा रसनाद्वारा षट्रस में लागता है तैसेही जब चरणा-मृत भगवत् प्रसादी में लागैगो इसी भांति जब आपु में लागै १ सुत की प्रीति यथा चक्रवर्ती महाराज कहे कि ॥ मणि बिनु फणि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहिं अधीना ॥ ऐसी पुत्रविषयक शुद्ध प्रीति राखै पुनः मीत की प्रतीति सांचे मित्र सम हित करिबे में विश्वास राखो पुनः नृप ज्यों डर डरिहै यथा प्रजा सेवकादिकन को अनीति करिबे में राजा के दण्ड देवे की भय राखत तैसेही अनुचित करिबे में सदा स्वामी की भय राखे रही भाव वात्सल्यरस की प्रीति सख्यरस को विश्वास दास्यरस की भय माने सेवन करै पुनः अपनो सो अर्थात् आपनी दिशि सो यावत् स्वार्थ है सो एक स्वामी सों चाही सो अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि चारिहूं विधि सो जो कछु चाह करी सो रघुनाथजी सों कौन भांति ज्यों चातक स्वातिही के आश्रित तैसे ही रघुनाथजी की एक टेकते जब कबहूं न टरिहै २ पुनः जब अति आदरे हर्षि है न तथा निदरे जारि न मरिहै अर्थात् जहां कोऊ बड़ा मानि साष्टाङ्ग प्रणाम करि ऊंचा बैठक दै उत्तम भोजन पूजा दै स्तुति करै तहां खुशी न मानी पुनः जहां कोऊ कुवचन आदि निरादर करी तहां जब क्रोधते तस न होइ भाव जब निन्दा स्तुति दोऊ सम मानै पुनः हानि भये तथा व्याधि दरिद्रादि दुःख परे उदास न होइ पुनः धनादि लाभ पाइ पुनः भोजन, वसन, भूषण, वाहनादि सुख पाइ प्रसन्न न होई इति हानि, लाभ तथा सुख, दुःखादि सबै चित्त ते सम बराबरिही मानी पुनः काहू को स्वार्थ-साधक जानि याको हितकार मानै है काहू को हानिकर्ता जानि ताको अनहित माने है पुनः कलियुगप्रेरित कामादिकन के वश है परस्त्री परधन परहानि इत्यादि कलिकुचाल तिन सबन को जब परिहरि है अर्थात् हित अनहित कुचा-लादि जब त्यागि शुद्ध एकरस सदा बना रहिहै ३ कैसा शुद्ध एकरस कि कृपा, दया, क्षमा, शील, करुणा, सुलभ, उदारतादि प्रभु के गुणानुवाद वर्णन सुनि जब मन हर्षि है आनन्द है स्मरण करत संते प्रेम उमँगि नीर नयननि ढरि है नेत्रन ते आंशु नीर बहाकरि है यह सब उत्तम रामभक्तन के लक्षण हैं यथा महारामायणे॥ अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति। श्रीरामनाम-रसनाग्र पठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोप्यश हृष्टलोमाः ॥ सीतायुतं रघुपतिं च विशोकमूर्तिं पश्यन्त्यहर्निशमुदा परमेण रम्यम् ॥ शान्ताः समानमनसश्च सुशीलयुक्तास्तोषक्षमागुणदयामृदुबुद्धियुक्ताः ॥ विज्ञानज्ञानविरतिः परमार्थ-वेत्ता निर्धामकोऽभयमनाः स च रामभक्तः ॥ इत्यादि लक्षण विचारि तब निश्चय

होइगी कि अब तुलसीदास सांचो रघुनाथजी को गुलाम भयो ऐसा विश्वास तथा पदकमलन में प्रेम इत्यादि लखि देखिकै तब आनन्द प्रवाह उमँगाइ उरमें भरे रहिहौं भाव अब मोको काहू की भय नहीं है स्वामी आपनो मानि लिये ४॥

(२७०) राम कबहुँ प्रिय लागि हौ जैसे नीर मीन को। सुख जीवन ज्यों जीवको मणि ज्यों फणिको हित ज्यों धन लोभलीन को१ ज्यों स्वभाव प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को। त्यों मेरे मन लालसा करिये करुणाकर पावन प्रेम पीन को२ मनसा को दाता कहैं श्रुति प्रभु प्रवीन को। तुलसिदास को भावतो बलिजाउँ दयानिधि दीजै दान दीन को ३

टी०। सांचे सनेह की पूर्वाभिलाष करते हैं हे रघुनाथजी! जैसे मीन को नीर जा भांति मछरी को जल प्यारा है भाव क्षणमात्र विलग नहीं होत तैसेही कबहूं आपु मोको प्रिय लागि हौ भाव श्यामरूप की माधुरी अवलोकन ते मन-नेत्र क्षण-भरि न जब विलग ह्वै हैं कौन भांति ज्यों जीव को आपना जीवन सुखपूर्वक जीवित रहना प्यारा होता है पुनः फणि को ज्यों मणि अर्थात् सर्प को जा भांति मणि प्रिय लागती जाके वियोग को नहीं सहिसक्ता है इसीभांति मोको आपु कब प्रिय लागहुगे ये तीनों विशेषण पराभक्ति के लक्षण में मिलते हैं काहेते न तौ मछरी जल ते भिन्न होती है अरु न जीव आपना जीवन त्यागता है तथा सर्प आपनी मणि नहीं त्यागता है इन सबकी अचल प्रीति है तैसेही शुद्ध आत्मरूप से अचल अनुराग रामरूप में कबहूं बना रही तामें तीनि विशेषण को यह भाव कि यावत् जाग्रत् अवस्था रहै तावत् जल मीन कैसो सनेह रहै जब सुषुप्ति अवस्था आवै तब जीव जीवन कैसो सनेह रहै जब स्वप्न अवस्था आवै तब सर्प मणि को ऐसो सनेह रहै अरु तुरीय अवस्था आत्म परमात्म को सनेह अनूप लोकविदित है यथा छूटी राज्य का पुनः प्राप्त होना पुनः कहत कि लोभलीन महालोभी जनको ज्यों धनलाभ में हित देखात अर्थात् भूख-प्यास-थिरता-निद्रा-स्त्री-पुत्र इत्यादि सबसों सनेह त्यागे मन-वचन-कर्मते सदा धन लाभै के व्यापार में लगा रहताहै तैसेही मेरी यावत् देहबुद्धि है तावत् सब सम्बन्धिन सों नेह त्यागि रामयश श्रवण-कीर्तन-नामस्मरणरूप को सेवन, अर्चन, वन्दनादि, दास्यता, आच-रण में सनेह बना रही आपु विषे १ पुनः हे श्रीरघुनाथजी! ज्यों नवीन नागरी नवयौवना स्त्रियन को नवीन नागर किशोर युवापुरुष सहज स्वभाव ते जा भांति अवलोकन बोलन हँसन मिलन को परम प्रेमाभिलाष राखते हैं इसी भांति हे करुणाकर! आपु विषे पावन स्वार्थरहित प्रेम पीन पुष्ट सो मेरे मन में कबहूं अभिलाषा करियेगा अर्थात् यथा नवीन नायिका नायकन की प्राप्ति की प्रेमासक्ति किसी समय मनते नहीं भूलती है ताही भांति मेरी यावत् जीवबुद्धि रहै तावत् प्रेमासक्ति कबहूं आपु में बनी रहैगी इति प्रेमाभक्ति को लक्षण है २ श्रुति कहै मनसा को दाता को प्रभु प्रवीण हैं हे श्रीरघुनाथजी! आपुकी उदारता वेद कहतेहैं

कि याचकमात्र की मनोकामना को परिपूर्ण दाता सिवाय एक रघुनाथजी दूसरा और कौन प्रभु है काहेते अर्थ, धर्म, काम की कौन कहै पात्रापात्र विवेकरहित अधमन को मारग मारग मुक्ति बांटत घूमे अन्त में यावत् सनेही पुरजन चराचरादि सबको परधाम पठाइ दिये ऐसे उदार दानी जानि प्रथम तौ पराभक्ति याचना करता हौं कि जल मीनवत् जीवन जीववत् मणि सर्पवत् इत्यादि मेरे शुद्ध आत्मरूप में अचल अनुराग आपु में बना रहै पुनः जो पराभक्ति को पात्र न होउँ क्योंकि देहाभिमानी हौं तौ लोभी धनलाभवत् नवधा भक्ति दीजे सेवक सेव्य-भाव ते सनेह सहित श्रवण कीर्तनादि करौं पुनः जो देहाभिमान रहित जीव बुद्धि होवै तौ प्रेमाभक्ति दीजे अर्थात् यथा नवल नायक अंकुरित यौवना पर आसक्त रहत तैसेही शुद्ध जीव में आपु विषे प्रेम बना रहै इत्यादि तौ मेरी प्रार्थना है पुनः हे दयानिधि! अर्थात् विन स्वार्थ दीनन को दुःख हरणहारे श्रीरघुनाथजी मैं बलि जाउँ भाव तो जो कुछ आपुके मन में भावै सो दान दीन तुलसीदास को दीजे ३॥

(२७१) कबहुँ कृपा करि रघुबीर मोहूं चितैहौ।
भलो बुरो जन आपनो जियजानि दयानिधि अवगुण अमित बितैहौ १
जन्म जन्म हौं मन जित्यो अब मोहिं जितैहौ।
हौं सनाथ ह्वैहौं सही तुमहूं अनाथपति ज्यों लघुतहिं न भितैहौ २
विनय करौं अपभयहुँ ते तुम परम हितैहौ।
तुलसिदास कासों कहै तुमहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितैहौ ३

टी०। रघुबीर अर्थात् पांचौ वीरता करिकै परिपूर्ण यथा भगवद्गुणदर्पणे॥ त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः। पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः पञ्चवीराः समाख्याता राम एव सपञ्चधा। रघुवीर इति ख्यातिः सर्ववीरोपलक्षणः॥ अर्थात् त्यागवीरता ते विषय व्यवहार जीते दयावीरता ते दीनन को दान दे जीते विद्या ते सब को जीते युद्धवीरता ते सबल शत्रुन को जीते धर्मवीरता ते सब लोकनको जीते इहां दयावीरता को उद्दीपन करते हैं भाव कलिप्रेरित कामादि शत्रु घेरे हैं ताते भयातुर पौरुषहीन दीन है आपुको पुकारता हौं हे रघुबीर! दयावीरताते दीन जनन को दुःख मिटावनहारे कबहुँ कृपा करि मोहूं पर दयादृष्टि चितैहौ कृपागुण को लक्षण॥ दो०॥ रक्षक सब संसार को, हौं समर्थ मैं एक। इद मन अनुसंधान यह, सो गुण कृपा विवेक॥ अर्थात् भूतमात्र के रक्षक हौ ताते मोपर भी कृपा करौ रक्षक होउ पुनः दयालक्षण यथा॥ दया दयावतां ज्ञेया स्वार्थस्तत्र न दृश्यते॥ अर्थात् बेप्रयोजन दीनन को दुःख हरते हौ तहां भलो उत्तम हौं वा बुरो कुसेवक हौं जो कछु हौं आपही को गुलाम हौं ताते जीवते आपनो जन जानि हे दयानिधि दयारूप जल भरे समुद्र! अवगुण अमित बितैहौ काम, क्रोध, लोभ, मोहादि असंख्यन अवगुण भरे भरे हैं तेई अनेक दुःख दे रहे हैं सोई दुःखित मोको देखि दया करि अवगुणन को मिटाइ कौनहू काल

मैं मोको भी शुद्ध करौगे १ कैसी शुद्धता चाहत हौं कि हौं मैं जो जीव ताको जन्म जन्म मन जीत्यो मोको स्वाधीन किहे रहो अर्थात् देह सुखहेतु इन्द्रियद्वारा विषयन में लागरहा ताही में मोको भी लगाये रहा अब मोहिं जिते हौ अर्थात् संसारसुख को मैं दुःख मानि आपुकी शरणागति चाहता हौं सो अब मन को कबहूं मेरे आधीन करि देहौ जामें विषय आशा त्यागि मन को आपुके चरणारविन्दन में लगाये इन्द्रियन ते श्रवण-कीर्तनादि करौं जो कृपा करि मोको इन आचरण में लगावोगे तौ हौं तौ सही सनाथ होउँगो अर्थात् मैं तौ सत्यही कृतार्थ ह्वैहौं अरु जो आपु लघुतहि न भितै हौ तौ तुमहूं अनाथपति कहै हौ अर्थात् लघु नीचजन इति लघु जो मैं ताहि न भितै हौ भीत नाम डर सो जो डरैहौ ना अर्थात् नीच अधम महापापी जानि उद्धार करबे में जो डरि न जैहौ निश्शङ्क मेरा उद्धार जो करि देहौ तौ कलियुगौ में आपु सांचे अनाथन के नाथ कहावोगे भाव मेरेही द्वारा आपुको पतितपावन यश जो प्राचीन चला आवता है अब नवीन ह्वैजाइगो २ मैं तौ आपना कार्य अपभयहु ते आपु सों विनय करौंगो क्योंकि तुम परमहितैहौ अर्थात् तत्काल जो आप मेरा कछु भी कार्य न करौ तबहूं मैं आपुते बारम्बार विनती किया करौंगो काहेते आपु मेरे परम हितकारै तौ हौ सदा ते मेरा सब भांति को परम हित आपै तौ करत आये ताते गुरुसम उपदेशकर्ता मातासम पालनकर्ता पितासम रक्षाकर्ता इत्यादि सब भांति हितकर्ता एक आपही तौ हौ हे प्रभु ! तौ तुलसीदास अपना दुःख कासों कहै और कौन मेरो हितकार है एक आपही हौ इस हेतु आपुते विनती करता हौं अब जैसा रुचै सो करौ ३ ॥

(२७२) जैसो हौं तैसो हौं राम रावरो जन जनि परिहरिये ।
क्षमासिंधु कोशलधनी शरणागतपालक ढरनि आपनी ढरिये १
हौं तो बिगरायल और को बिगरो न बिगारिये।
तुम सुधारि आये सदा सबकी सबही विधि अब मेरियो सुधरिये २
जग हँसिहै मेरे सँग रहे कत यहि डर डरिये
कपि केवट कीन्हें सखा जेहि शील सरल चित तेहि स्वभाव अनुसरिये ३
अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिये ।
टूटियो बांह गरे परै फूटेहूं बिलोचन पीर होत हित करिये ४

टी० । हे रघुनाथजी ! भलो बुरो जैसो हौं तैसो रावरो जन हौं निश्चय करिकै आपही को गुलाम हौं ताते जनि परिहरिये मोको त्याग मति करिये यामें आपको अयश होइगो क्योंकि यह रीति आपकी नहीं है कैसी रीति है हे कोशलधनी ! आप क्षमासिन्धु अर्थात् कैसहू अपराध करि सन्मुख आवै ताको कछु न कहना आदरते शरण में राखना इति क्षमारूप जलभरे समुद्र हौ पुनः कैसहू नीच अधम पापी सभीत जो शरण में आवै ताको अवश्यही पालन करतेहौ इत्यादि शरण-पाल हौ इति क्षमासिन्धु शरणागतपालक आपनी ढरनि ढरिये यथा सदाते अप-राधै क्षमा करि शरणागतन को पालन करत आयो तथा मेरे भी अपराधनको

क्षमा करि मोको भी पालन कीजै १ काहेते पालन कीजै कि हौं तो औरन को बिगारो पूर्वहीको बिगरायल तौ पूर्वही को बिगरो हौं तब आप न बिगारिये अर्थात् आदिकारण माया मेरी आत्मदृष्टि खैंचिलिया जीवबुद्धि भई पुनः त्रिगुणात्म अहंकारबुद्धि चञ्चल करिदिया पुनः कार्यमाया इन्द्रियविषय में लगाय देहाभिमानी करिदिया विषयी है लोकसुख में परेउँ तब कामी-लोभी-क्रोधी भया तब मोह प्रचण्ड है बुद्धि नष्ट करिदिया इत्यादि औरन को बिगारा मैं आपहीं भवसागर को पात्र हौं ताको कृपासिन्धु आप क्यों बिगारते हौ भाव मरे को मारना कादरों का काम है आप तौ उत्तम वीर हौ तुलमै उदारता करत आयो कैसी उदारता कि आप तौ स्थावर जंगमादि सबही जीवन की जो कछु बिगरी रही सो लोक परलोकादि सब विधि ते सदा सब काल में सुधारि आये सोई आपनी रीति पुष्ट धारण करि कृपासिन्धु अब मेरी भी बिगरीको सुधारिये मोको भी शुद्ध करि शरण में राखिये २ मेरे संग रहे जग हँसिहै यह विचारते हौ तौ अब यहि डरते कत डरिये अब क्यों डरते हौ अर्थात् जो मैं नीच अधम महापापी हौं अरु आप परमपावन बड़े महाराज उत्तम स्वामी हौ सो मोको संग राखौगे तौ लोक आपको हँसैगो कि उत्तम पावन स्वामी है नीच अपावन को सेवक करि संग राखते हैं इस हँसी की भय करते हौ तौ प्रणतपाल अब काहे को डरते हौ पूर्व तौ ऐसी लाज नहीं किहेउ काहेते जब कपि वानर चञ्चल पशु तिनको सखा कीन्हेउ तथा केवट नीच जाति हिंसकी क्रिया सब भांति अपावन ताको सखा कीन्हेउ तेहि समय में जेहि शील ते सरल चित्त रहा तेहि स्वभाव अनुसरिये तैसही स्वभाव धारण करिये अर्थात् कैसहू हीन दीन मलीन अधम अपावन होइ जो सन्मुख आवै ताहू को सहज स्वभाव सन्मान करि बड़ाई देना यही शील है यथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ हीनैर्दीनैश्च मलिनैर्बीभत्सैः कुत्सितैरपि। महतोच्छिद्रसंश्लेषं सौशील्यं विदुरीश्वराः ॥ इत्यादि शीलमय सरलस्वभाव धारण करि मोको भी अपनाइये ३ हे करुणानिधि, प्रणतपाल! जो मैं अपराधी भी हौं तबहूं आपही को गुलाम हौं ताते आपनो गुलाम जानि तुलसीदास को न बिसारिये निश्चय शरण में राखिये अपराधै नाश की उपाय कीजिये काहेते जो कछु अपना निकामौ होत सोऊ फेंका नहीं जात सो लोकविदित रीति देखिये टूटियो बांह गरे परै अर्थात् जो आपनी बांह टूटि भी जाती है ताको कोऊ काटि फेंकि नहीं देता है वाकी औषध करता है अरु सुखपूर्वक रहने हेतु गलजिंदा अर्थात् मालसरीखे गलेमें कपरा बांधि तामें बांह को धरे रहता है तथा बिलोचन आंखि फूटेहू पर पीर होत हित करिये अर्थात् दृष्टि नाश हैगये पर भी जो किसी रोग करि वामें जब पीर होती है तब वाहू की औषध कीन जाती है कोऊ काढ़िकै फेंकि नहीं देताहै तैसेही अपना जानि मोहिं अपराधिहु को शरण में राखिये ४ ॥

(२७३) तुम जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो।

सुनहु राम बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ कोउ न कहूं हितु मेरो १

अगुण अलायक आलसी जानि अधन अनेरो।

स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा कैसो टोटक औचट उलटि न हेरो २
भक्तिहीन वेद बाहिरो लखि कलिमल घेरो।
देवनिहूं देव परिहस्यो अन्याय न तिनको हौं अपराधी सब केरो ३
नाम की ओट लै पेट भरत हौं पै कहावत चेरो।
जगत विदित बात ह्वै परी समुझिये धौं अपने लोक की वेद बड़ेरो ४
ह्वैहै जब तब तुमहिं ते तुलसी को भलेरो।
दिन दिनहूं दिन बिगरिहै बलि जाउँ विलंब किये अपनाइये सवेरो ५

टी०। हे रघुनाथजी! आप मन मैलो जनि करौ मोसों मन उदास न करौ भाव अन्तरते आपना जाने रहिउ तथा लोचन नेत्र जनि फेरौ भाव कृपादृष्टि बनी रहै काहेते हे रघुनाथजी! मेरी अर्ज सुनिये रावरे बिन अर्थात् बिना आपकी कृपा माता पितादि लोकहू में तथा इष्टदेवादि साधन सुकृत परलोकहू में इत्यादि कहीं कोऊ मेरा हितकार नहीं है भाव सबको आश भरोसा त्यागि केवल आपही को आश भरोसा राखे शरण आया हौं ऐसा विचारि आपनो ही गुलाम जानि सदा कृपादृष्टि राखे रहिये १ लोक में काहेते मेरा कोऊ नहीं है कि विद्या, गान, कारीगरी, कला-चातुरीरहित इति अगुण हौं तथा अन्न, धन, धरणी, विभव, विद्या, परहित, सुमार्गी, शीलवन्त इत्यादि लायकती एकहू नहीं ताते अलायक अर्थात् किसी लायक को नहीं पुनः ऐसा आलसी हौं कि खेती, वणिज, चाकरी आदि कुछ भी व्यापार नहीं करिसक्ता हौं ताहूपर अघन पापही कर्मन में रत हौं ऐसा जानि सबन अनेरो अर्थात् मेरे नेरे कोऊ नहीं ठाढ़ होता है देह के सम्बन्धी अर्थात् माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्रादि परिवार नात मित्रादि सब कैसे तज्यो त्यागि दीन्हे यथा तिजरा कैसो टोटक अर्थात् तीसरे दिन जूड़ी ताप जाके आवती है ताको निरुज होने हेतु इसभांति टोटक किया जाता है यथा माटी को कच्चा कूंड़ा तामें सघृत पिसान के सात दीपक बारि धरि तथा खीर सुहारी बरा हल्दी सेंदुर श्वेत फूल धरि रविवार आधीराति को सात बार रोगी पर उतारि पूर्वदिशि जाइ चौराहा में धरिदेवै पीछे फिरि वाकी दिशि न देखै पुनः जहां श्वेत धतूरा होइ तहां जाइ वाकी जर खोदिलेइ सो रोगी के दहिने हाथ में बांधि देते हैं इत्यादि तिजरा कैसो टोटक मोको सब त्यागि दिये अवचट उलटि न हेरो अचाकौ भूमिकै मेरी ओर न देखे इति लोक में मेरा कहीं कोऊ नहीं है २ पुनः परलोक में मुख्य सहायकर्ता रामभक्ति है जो पतितनहू को पावन करत तिस भक्ति करिकै हीन हौं श्रवण-कीर्तनादि भी नहीं करिसक्ता हौं पुनः वेदधर्म ते बाहर अर्थात् छल-चातुरी अपावनतादि रीति निर्दयता परस्त्री। धनादिहरण इत्यादि अधर्म के आचरण में लगा हौं सो देखि कलिमल पाप मोको घेरे हैं पुनः हे देव! श्रीरघुनाथजी! देवनिहू परिहस्यो त्याग कियो अर्थात् ब्रह्मा-शिव-देवी-गणेश-इन्द्रादि यावत् देवता हैं तिनहूं त्यागे मोपर सक्रोध दृष्टि किहे हैं सो तिनको अन्याय बेइन्साफी नहीं है जैसा उचित चाहिये सोई सब करते हैं काहेते मैं सब देवतन केरो अपराधी

हौं कौन हेतु वेदरीति तें सब लोक उनको बड़ा मानि पूजता है अरु मैं विमुख है बारम्बार सब देवन को अनादर करता हौं यथा विबुध सयाने सब देव अलायक इत्यादि अनादर वचन इसी ग्रन्थ में अनेक हैं सो जो मही अनादर करता हौं तौ कैसे न क्रोधदृष्टि राखैं ताते देवता भी आपने नहीं जो स्वर्गादि के सुख की आशा होवै सोऊ नहीं है ताते परलोकहू में मेरा सहायकर्ता कहीं कोऊ नहीं है ३ हे प्रभु ! जो आप कहौ कि जो तू सब देवन को अपराधी अरु अगुण अलायक आलसी है तौ कौनी सुकृतबल सों हमते कृपा करावा चाहता है तापर कृपासिन्धु सुनिये आपके नाम की ओट लै पेट भरत हौं अर्थात् राम नाम लेत वेष बनाये महात्मा बना दम्भमात्र पूजा पाठ करता हौं कथादि सुनाइ लोक में पुजाइ जीविका करता हौं इत्यादि यद्यपि पेट के हेतु नाम की ओट गहे हौं पै चेरो कहावत अर्थात् झूंठे बना हौं तौ भी कहावता तौ हौं आपुको गुलाम यही बात जगत् विदित ह्वैपरी अर्थात् लोक जन यही कहते हैं कि तुलसीदास रघुनाथजी को गुलाम है तौ हे रघुनाथ जी ! अपने मनते आपही समुझिये वेद बड़ो किधौं लोक बड़ो है अर्थात् वेदते लोक बड़ा है काहेते वेद में लिखा है कि जो विप्र रात दिन सन्ध्या न करै तौ शूद्रवत् है द्विजकर्मते बाह्य है यथा मनुस्मृतौ ॥ न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ पुनः लिखा है कि जो विप्र विधिवत् आशीर्वाद देने नहीं जानता है ताको प्रणाम न करना चाहिये क्योंकि वह शूद्रतुल्य है यथा ॥ यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ इत्यादि वेद को कहा कोऊ नहीं सुनता है अरु लोकरीति कि विप्रमात्र को प्रणाम करना चाहिये इसीते जिनको गायत्री भी नहीं आवती है तिनहू को सब ब्राह्मण माने प्रणाम करते हैं ताते लोक बड़ा है पुनः हे रघुनाथजी ! आपुको वेद परब्रह्म कहता है अरु लोकरीति आपु राजकुमार बने हौ सो विश्वामित्र वशिष्ठादि वेदतत्त्व भलीभांति जानते हैं त्यहि आचरण पर कोऊ नहीं बरतत अरु लोकरीति ते आपुको राजकुमार माने तथा अपना को उत्तम ऋषीश्वर माने आपुते प्रणाम करावत अरु पायँ मिजावते हैं तब लोकरीति के आगे वेद की कौन गनती है तैसेही वेदरीति ते जो आपुके भक्तन के लक्षण चाहिये सो तौ मेरे एकहू नहीं है परंतु लोक तौ सर्वथा कहि रहा है कि तुलसीदास सांचा रघुनाथजी को दास है यथा नाभा ऐसे महात्मा भक्तमाल में लिखे यथा कलिकुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भये इत्यादि जो सब कहि रहे हैं सो लोक बड़ाई भी आपही की दीन्हीं है सोई प्रमाण करि तुलसीदास को शरण में राखिये ४ हे श्रीरघुनाथजी ! तुलसी को भलेरो जब ह्वैहै तब तुमहीं ते होइगो आन भांति नहीं अर्थात् जे पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रतादि सत्कर्म में लगे हैं तिनको करते करते कछु काल में उसी द्वारा भला ह्वैजाइगो जे अष्टाङ्गयोग करते हैं अथवा विवेक विरागादि साधन में लगे हैं उनको उसी द्वारा कबहूं भला ह्वैजाइगो जे श्रवणादि नवधा भक्ति में लगे हैं ते तौ कल्याणरूपै हैं अरु मैं तौ सब साधनहीन केवल आपुके नाम के आधार हौं ताते इस जन्म में वा कबहूं जब आपही कृपा करौगे तबै मेरा भला होइगो तहां स्वामी की जैसी रजाय

होइ सोई सही है सेवक की कितनी वात जो आपना स्वार्थ वारवार कहै परंतु मैं बलिजाउँ अबहीं थोरी बिगरी है अब विलम्ब कियेते दिनहू दिन प्रतिदिन अधिक बिगरिहै तब आपुको श्रम अधिक परैगो ताते सवेरोही अर्थात् इसी जन्म में अपनाइये शरण में राखिये ५ ॥

(२७४) तुम तजि हौं कासों कहौं और को हितु मेरे।
दीनबन्धु सेवक सखा आरत अनाथ पर सहज छोह केहिकेरे १
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरनी बिनु बेरे।
कृपा कोप सतिभायहुँ धोखेहुँ तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे २
जो चितवनि सौंधी लगे चितइये सबेरे।
तुलसिदास अपनाइये कीजै न ढील अब जीवन अवधि अति नेरे ३

टी०। जो तुम तजिहौ हे श्रीरघुनाथजी! जो आपु मोको त्यागि देउगे तौ और दूसरा को मेरे हितकारी है भाव मोहिं ऐसे निकामन को भला करनेवाला और कौन है जासों मैं अपना दुःख कहौं पौरुषहीन दीनजनन को बन्धुसमान हितकर्ता हे दीनबन्धु! सेवक जे दास भावते पादप्रक्षालनादि कैंकर्यता करते हैं सखा जे वेष वाहनादि समान किये अस्त्रधारण संग में रहि क्रीड़ा मृगया आदि करतेहैं आर्त जे किसी भांति संकट में परि दुःखित ह्वै पुकारते हैं अनाथ जिनको रक्षक कहीं कोऊ नहीं है सभीत ह्वै शरण में आवत इनपर केहि स्वामी के उर में सहज स्वभाव ते छोहमयी है अर्थात् सेवकादिकन पर सहज स्वभाव ते अनुग्रह करनेवाले एक आप ही हौ ऐसा जानि आपही की शरण गहे हौं १ कृपा करि यथा जटायु पुनः कोप करि जाके प्राण हरे यथा रावणादि सत्य भायहू जाको आपना करि लिहेउ यथा निषाद सुग्रीव विभीषणादि धोखेहू जे भूलिकै नाम लैलिये यथा यवनादि राह चलत वे प्रयोजन जापर तिरछिहु नजरि परिगै इत्यादि राम तिहारेही हेरे विना नाव विना बेरे बहुत पतित भवनिधि तरे अर्थात् कर्म-ज्ञानादिसाधन विना किहे हे रघुनाथजी! आपुकी दृष्टि परेते बहुत पतित परमपद पाइ कृतार्थ भये ऐसा सुलभ उदार और कौन स्वामी है जाकी शरण जाउँ ताते आपही की कृपादृष्टि के आश्रित हौं हे महाराज! जौनी कृपादृष्टि ते सदा सब पतितन को कृतार्थ करत आयो सोई कृपादृष्टि मोपर भी कीजिये २ मीठी करू खट्टी आदि साधारण सब भली लागती हैं अरु अत्यन्त खाने पर सबै रसनसों जीव ऊबिजाता है अरु सोंधाई सब रसन में स्वाद बढ़ावनेवाली है पुनः सोंधाई ते जीव ऊबता नहीं इहां लक्षणा ते मिठाई प्रीति है खटाई उदासीनता है करोई वैर है सोंधाई सहज स्वभाव ते सबको सम्मान है तहां समय पाय प्रीति वैर उदासीनता सबै भले लागत अरु अत्यन्त ह्वै गये पर एकहू सुखद नहीं हैं अरु सहजस्वभाव ते सबको सम्मान करना सो सबको सुखद है इति सहज स्वभाव ते सबको सम्मान करि कृपादृष्टि राखे रहेउ हे श्रीरघुनाथजी! सोई चितवनि जो सोंधी लगै अर्थात् सहज स्वभाव ते सम्मान सहित कृपादृष्टि करना इत्यादि पूर्ववत् स्वभाव बना होइ तौ सबेरे चितइये भाव

इसी जन्म में कृपा करि तुलसीदास को अपनाइये सांचा गुलाम बनाइ लीजै काहे ते अब जीवन अवधि अतिनेरे अर्थात् मरणकाल निकट आइगयो ताते अब विलम्ब न कीजै भाव मरे पीछे न मालूम कहां जन्म पावों कैसी संगति कैसा स्वभाव होइ न चैतन्य होउँ तौ फिरि वियोग होइ जाइगो ताते इसी जन्म में कृपा कीजै ३॥

(२७५) जाऊं कहां ठौर है कहां देव दुखित दीन को।
को कृपालु स्वामी सारिखो राखै शरणागत सब अँग बलविहीनको १
गणिहि गुणहि साहब लहै सेवा समीचीनको।
अधम अगुण आलसिन को पालिवो फबि आयो रघुनायक नवीनको २
मुखकै कहा कहौं विदित है जी की प्रभु प्रवीन को।
तिहुँ काल तिहुँ लोक में एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन को ३

टी०। हे देव! दुःखित दीन को सुखद में वास कहां ठौर है भाव कहीं नहीं है ताते कहां जाउँ अर्थात् कलिप्रेरित कामादि को सतावा दुःखित पुनः दीन पौरुषहीन में किसी काम को नहीं ऐसे जनन को सुखपूर्वक रहने को कौने स्वामी के दरबार में वास ठेकान कहां है भाव आपही के शरण में ठौर है ताते आपुके पद-कमल त्यागिकै कहां जाउँ काहेते हे स्वामी! आपु सरीखे को कृपालहै जो सबअंग बलविहीन को शरण राखै अर्थात् कर्म योग ज्ञानादि सब साधन बल करिकै मैं विशेष हीन हों ऐसेन को शरणागत राखनेवाले कृपा गुणमन्दिर एक आपही हौ ताते आपही की शरण आयों मेरा भी उद्धार कीजिये १ काहेते अन्ते कहीं ठौर नहीं है कि गणी जे गनतीवाले वा धनवन्त हैं गुणी जे विद्या गान वाद्य कारीगरी कला में प्रवीण हैं तथा सेवासमीचीन को अर्थात् सेवकाईविधि में जे सदाते प्रवीण हैं ऐसे सेवकन को साहब लहै अर्थात् धनी गुणी सुसेवक इत्यादिकनको सबै स्वामी चाह करते हैं अरु निकामन को पूछनेवाला कोऊ नहीं है अरु अधम जे पापकर्मन में रत हैं पुनः अगुण जिनमें किसी भांति को गुण नहीं है पुनः आलसी जिनते लोक परलोक हितकारक कुछभी काम नहीं ह्वैसक्ता है इत्यादि को पालिवो एक रघुनायक को फबि आयो अरु नवीन को है अर्थात् अधमोद्धार आदि गुण रघुनाथै जी में प्राचीन चले आवते हैं अरु नवीन अधमोद्धार दूसरा को है अर्थात् सिवाय रघुनाथजी दूसरा अधमोद्धार नहीं है अथवा पतितपावन अधमोद्धारन प्रणतपा-लन इत्यादि बाना एक रघुनाथैजीको है सो आदि ते अन्त तक प्रतिदिन नित नवीन शोभा बढ़त आवती है यही जानि मैं शरण आया हौं २ मुखकै कहा कहौं अर्थात् झूठी सांची बनाय बनाय मुखते कहा कहौं प्रभु प्रवीणको तौ जीकी विदित है अर्थात् अंतरकी गति जानिबे में आपु परम प्रवीण हौ ताते जो मेरे जीवके अंतर है सो आपु भलीभांति जानते हौ ताते मुख्य जीवकी चाह कहता हौं तुलसी से मनमलीनको तिहूं काल तिहूंलोक में रामरावरी एक टेक है अर्थात् पूर्व जन्म भूतकाल में स्वर्ग भू पातालादि जहां रहाहोउँगो तथा भविष्यमें चहै तिस लोक में जन्म पावों तथा वर्तमान में मैं जो मनको मलीन विषयी तुलसीदास ताके हे रघुनाथजी! सदा एक आपही की शरणागति की टेक है दूसरे को भरोसा नहीं है ३॥

(२७६) द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूं ।
है दयालु दुनि दश दिशा दुख दोषदलन क्षम कियो न संभाषण काहूं १
त्वचा तजत कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहूं ।
काहेको रोषदोष काहिधौं मेरेही अभाग मोसों सकुचत सबछुइ छाहूं २
दुखित देखि सन्तन कह्यो शोचै जनि मनमाहूं ।
तोसे पशु पामर पातकी परिहरे न शरण गये रघुबर ओर निबाहूं ३
तुलसी तिहारो भये भयो सुख प्रीति प्रतीति बिनाहूं ।
नामकीमहिमाशीलनाथकोमेरोभलोबिलोकिअबतेसकुचाहुँसिहाहूं ४

टी० । हे रघुनाथजी ! काहेते एक आपही की टेक है सबकी करणी देखि चुकेउँ क्या देखि चुकेउँ कि सब लोकन में सब स्वामिन के द्वार द्वार घूमि रद दांत काढ़ि तथा पायँन परि दीनता कही प्रणामपूर्वक हाहा बिनती करि सबसों याचना करत फिरेउँ मेरी आश किसीने न पूर्ण किया जो कहौं कि कहूं एकै थल सों नहीं दुनि दुनिया भरे में पुनः दशौ दिशा में घूमेउँ जो कहौ कोऊ समर्थ दयावंत नहीं है सोऊ नहीं दयालु भी कहावते हैं पुनः दुःखहानि बियोग दरिद्र शत्रु संकटादि पुनः दोष पाप कर्म इत्यादिको दलन नाश करिबेको क्षम समर्थ कहावते हैं परंतु मोसन सम्भाषण काहू न किया संपूर्ण प्रकार हितकार है मेरे दुःखकी बात किसीने न पूछा तौ कौनकी आश राखौं १ कुटिल कीट सर्प सो बेप्रयोजन जानि आपनी त्वचा त्यागि देत अर्थात् केचुलि छांड़ि देताहै तथा मातु पिताहू तज्यो अर्थात् भाग्यहीन निकम्मा जानि त्यागि दियो तब हितकार को रहा ताते काहि धौं दोष दीजे अरु कासों रोष कीजे काहूको कछु लागु नहीं है यह मेरिही अभाग्य है काहेते मेरी छांह छुवत सब सकुचत हैं भाव हित करना कैसा कोऊ मेरे लग नहीं ठाढ़ होता है महाअपावन जानि सब दूरि दूरि भागते हैं २ जब मेरा अवलम्ब कहीं कोऊ न देखि परा तब महाअधीर है परस्वार्थी समुझि संतन के ढिग गयउँ तब मोको दुखित देखि मोसों सन्तन कह्यो कि तू मनमाहिं शोचै जनि उदास न हो तोसे पशु पामर तोहिं ऐसे पशुवत् स्वभाव निर्बुद्धि पामर नीच पातकी पापकर्म करनेवाले ऐसेहू जन जे शरण गये तिनहूंको रघुबर परिहरे न और आदिते अन्ततक निवाह कीन्हे अर्थात् वानर चंचल पशु शबरी गीध पामर निषाद पातकी इत्यादिको शरण में राखि पुनः एकरस प्रीति को निर्वाह सदा कीन्हे ऐसे शरणपाल सुलभ उदार स्वामी श्रीरघुनाथजीकी शरण जा इति सन्तन के वचन सुनि मैं शरण आया हौं ३ प्रीति प्रतीति बिनाहू तुलसी तिहारो भये पर मोको सुख भयो हे रघुनाथजी ! आपुके पदकमलन विषे सांची प्रीति बिना भये अरु आपुकी महिमा की प्रतीति बिना आये केवल सन्तनके कहे यही निश्चय मनमें करिलिहेउँ कि मैं राम गुलाम हौं इति आपुको गुलाम भये संते मोको परम सुख प्राप्त भयो अर्थात् हृदयमें जो विषय आशा कंगालता गई सन्तोष आयो मन कामादि को शत्रु करि जाने स्वतन्त्रता सुख भयो सब लोक रामगुलाम

कहताहैं बड़ा मानि माथ नावते हैं ऐसी रामनामकी महिमा है कि कलियुग में म्वाहैं ऐसे अधम आलसी जो पेटहेतु रामनाम लिहेउँ ताहूको नाम प्रभुके सम्मुख करिदिया पुनः रघुनाथजीको शील अर्थात् मोहिं ऐसे नीचको सम्मान करि बड़ाई दीन्हें इत्यादि मेरो भलो विलोकि देखिकै जे पूर्व मेरा अनादर किहेरहैं ते अब सकुचाइ सिहाइ अर्थात् पूर्व जो अपावन मानि लगे नहीं आवते रहैं तेई अब प्रणाम करते हैं सो पूर्व बात सुधि करि सकुचाते हैं पुनः ऐसी बड़ाई हमको न मिली इति सिहाते अर्थात् ललचाते हैं इत्यादि विचारि हे रघुनाथजी। मेरे दृढ़ करि एक आपही की शरण रहवेकी टेक है ४॥

(२७७) कहा न कियों कहां न गयों शीश काहि न नायों।
राम रावरो बिनु भये जन जन्मि जन्मि जग दुख दशहूं दिशि पायों १
आश विवश खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायों।
हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार परी न छार मुँह बायों २
अशन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायों।
महिमाअनिप्रियप्राणतेतजिखोलिखलनिआगेखिनखिनपेटखलायों ३
नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायों।
सांच कहौं नाच कौन सो जो न मोहिं लोभ लघु निलज नचायों ४
श्रवण नयन मन मग लगे सब थल पतितायों।
मूंड़ मारि हिय हारिकै हित हेरि हहरि अब चरणशरण तकि आयों ५
दशरथ के समरथ तुम्हीं त्रिभुवन यश गायों।
तुलसी नमत अवलोकिये बलि बांह बोलदै बिरदावली बुलायों ६

टी०। सेवा, पूजा, जप, हाहा, विनती, याचकतादि कहा कर्म न कियों पुनः स्वर्ग, भू, पातालादि कहां न गयों तहां सुर, नर, नागादि काहि शीश न नायों भाव दीनतापूर्वक प्रणाम करि सबसों याचना कीन्हेउँ परन्तु हे रघुनाथजी! रावरे भये बिन आपको गुलाम जब तक नहीं भयों तब तक जन जो मैं सो जग विषे अनेक योनिन में जन्मि देह धरि धरि आठ दिशि भूतल में स्वर्ग पाताल इति दशहु दिशन में सुख कहीं नहीं सर्वत्र रुज हानि वियोग दरिद्रतादि दुःखै पायों १ खास दास ह्वै आशविवश परि ऐसा नीच भयों कि आपनी दशा प्रभु सों न जनायों अर्थात् प्रकाश प्रकाशी अंश अंशी शेष शेषी सेवक सेव्य इत्यादि अनेक सम्बन्ध जीव ईश्वर ते अनादि कालते चला आवता है इत्यादि रघुनाथजी को खास दास ह्वैकै शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि इन्द्रिय विषयन के विशेष वश में परि नीच, कामी, क्रोधी, लोभी, विषयी ह्वै गयों ताते आपनोही रूप भूलि गया ताते आपने दुःख को हाल हे प्रभु! आपते कबहूं न सुनायों अर्थात् विमुख भयों ताते सबन के द्वार द्वार हाहा विनती करि मुँह बाये बार बार सबन सों दीनता

कहीं याचना करतै फिर्यों तहां भोजन की को कहै मुख में छार खाकहू न परी भाव वड़े सुख की को कहै तुच्छ लौकिकौ सुख न मिला दरिद्रता कबहूं न गई २ कैसी दरिद्रता अशन, वसन विनु बावरो और दरिद्रता की कौन कहै विना भोजन भूख ते बुद्धि नष्ट भई वस्त्र विनु कुरूपता इति वावरो सरीखे जहां दाता सुनेउँ तहैं उठि धायों पुनः प्राणहूं ते अधिक प्रिय महिमा अर्थात् लोक में प्रतिष्ठा इत्यादि को लोक प्राणन ते अधिक मानते हैं अर्थात् प्राण चहै जाइ परन्तु प्रतिष्ठा मान बना रहै यथा ॥ चौपाई ॥ संभावित कहँ अपयश लाहू । मरण कोटि सम दारुण दाहू ॥ इति प्राणन ते अधिक महिमा ताको तजि अर्थात् प्रतिष्ठा त्यागि पुनः जो मान अंतर मूँदे ताको खोलि मान त्यागि अमान ह्वै खलनि आगे खिन खिन पेट खलायों अर्थात् निर्दयी दुष्टन को भी धनी देखि छिन छिन प्रति पेट खलायों भूखा वनि याचना कीन कीन्हेउँ भाव न पाये पर भी बारम्बार याचना कीन्है कीन्हेउँ ३ हे नाथ, रघुनाथजी ! लालच जो प्रसिद्ध लोभ सो ललचायों याचना के व्यापार में लगाये रहेउँ परन्तु हाथ कछु न लग्यो किसीने कछु न दिया धावतै बीता कौन भांति कि मैं सांच कहत हौं सो ऐसा कौन नाच है जो लघु नीच निलज लज्जा-हीन लोभ ने मोको नहीं नचायो भाव लोभते धन पाइबे हेतु दम्भादि अनेक स्वांग बनाइ लोगन को रिझावने हेतु अनेक व्यापार कीन्है कीन्हेउँ ४ श्रवण नयन मग मन विषय में लगे अर्थात् काननद्वारा शब्द कामवार्ता में लगाये नेत्रद्वारा युवती आदि के रूप में लगाये इत्यादि विषयन वश सब थल पतितायों सबै स्थान पर अधिक पतितै होत गयों तब मूंड़ मारि सब कर्म करि थकेउँ हिये हारि मानि हहरि मूंड़ पीटि हाय हाय करि पुनः हित हेरि अर्थात् प्रभु पद कमलन में आपना हित जीवैं को कल्याण देखि हे रघुनाथजी ! अभय थल तकि आपके चरणार-विन्दन की शरण आयों भाव सर्वत्र घूमि सब थल को हाल जानि जब कहौं कछु हित न देखि परो तब हिये ते हारि मानि आपना कल्याण जानि तब आपकी शरणागति में सभीत ह्वै आया हौं अब दूसरे को आश भरोसा नहीं है केवल आप ही को आश भरोसा है ५ काहेते आश भरोसा आपही को है दशरथ के लाड़िले नीच ऊँच सबन को कल्याण करिवे को एक आपुही समर्थ हौ सो महीं नहीं कहता हौं त्रिभुवन यश गायो तीनिहूं लोकवासी सुर, मुनि, नर, नागादि सबै आपुको पावन यश गावते हैं यथा भागवते ॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् । तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥ सोई जानि तुलसी नमत बलि अवलोकिये सोई यश सुनि आपने कल्याण हेतु अब तुलसीदासभी प्रणाम करताहै मैं बलि जाउँ अब मेरी भी दिशि कृपादृष्टि कीजिये काहेते आपुकी विरुदावलीने बांह बोल दै मोको बुलाया है अर्थात् पतितपावनादि जो बाना आपु धारण करि ताके द्वारा जो अनेक पतित-तन को पावन कीन्हेउ है ताही यश की अवली पंक्तिजो विदित हैं सोई बांहवोल दै मोको बुलाई भाव सोई यश सुनि मेरे मनमें भरोसा भयो कि जो सब पतितनको पावन करत आवते हैं तौ शरण गये मोको भी पावन करेंगे यह विचारि शरण आयों ताते मोपरभी कृपा कीजिये शरण राखिये ६ ॥

(२७८) राम राय विनु रावरे मेरे को हितू सांचो।
स्वामी सहित सबसों कहौं सुनि गुनि विशेषि कोउ रेख दूसरी खांचो १
देह जीव योग के सखा मृषा टांचन टांचो।
कियेविचारसारकदली ज्यों मणिकनकसंगलघुलसतबीचविचकांचो २
विनयपत्रिका दीन की बापु आपु ही बांचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो स्वभाव सही करि बहुरि पूछियेहि पांचो ३

टी०। राम राय रावरे विनु मेरे सांचो हितू को है अर्थात् पतित अधम नीच पापिन को सहजही सुगति देनहारे एक आपही हौ दूसरा कोऊ नहीं है ताते हे रघुनाथजी! मोहिं ऐसे अधमको विना आपु और सांचा हितकर्ता दूसरा कोऊ नहीं है भाव झूठे हितकारी तौ बहुत हैं अरु सांचे हितकारी एक आपहीहौ इस बात को एकरेखा खैंचि मैं कहताहौं तापर स्वामीसहित सबसों कहौं अर्थात् आपनी रेखाके समान दूसरी कदापि होवै ताके जानिवे हेतु मैं प्रश्न करताहौं कौन भांति कि स्वामी श्रीरघुनाथजी तिन सहित यावत् राजसभा में सुजान जन हैं तिन सबसों कहत हौं कि मेरी जो रेख खैंची बात है ताको सुनि पुनः वाको गुनि विचार करि देखिलेउ जो मेरी बातते विशेष कुछ देखाइ अर्थात् रघुनाथजीसों अधिक कोऊ मोसे अधमनको हितकर्ता होइ तौ दूसरी रेखा खांचौं भाव पतित-पावन दूसरा स्वामी बतावों इस प्रश्नको उत्तर न मिला तापर आपही आगे कहत १ देह जीवयोग के सखा अर्थात् जब जीव देह धारण करता है ताके सम्बन्धी यावत् सखा सनेही हैं ते मृषा टांचन टांचो झूठही टांकी लगाय टांचे नाम जटित कियेगये हैं अर्थात् यावत् जीव देहमें बनाहै तबै लग सब सखा सनेही बने हैं अरु जब देह जीवको वियोग भया तब जीवको सनेही कोऊ नहींहै पुनः विचार करने ते ज्यों कदलीमें सार यथा केला को वृक्ष चीरे पर कछु सारांश नहीं निसरता है तैसेही देहाभिमानते कामादिकन के वश यावत् नेह नाता में अपनपौ माने है ताको विचार करने ते इसमें भी सारांश कछु नहीं भाव सब व्यवहार झूंठ ही है अन्तकाल जीव को साथी कोऊ नहीं है तामें संदेह होत कि लोकव्यव-हार कैसे झूंठाहै काहेते श्रवणादि पितै माताको सांचा मानेते पावन उत्तम कहाये पतिव्रता स्त्री पतिनको सत्य मानि परम पद पावती हैं ध्रुव प्रह्लाद अम्बरीषादि लोकव्यवहारही में परम उत्तम भक्त भये पुनः लोकै मैं ईश्वरौ देह धारि माता पिता की आज्ञापालन को उत्तम धर्म करि थापे ब्रजयुवती यारै भावते कृष्णजी में प्रीति करि परम उत्तम भई पुनः माता पिता आदि गुरुजन की सेवा जीव को उत्तम धर्म करि धर्मशास्त्रन में लिखा है यथा औशनसस्मृतौ प्रथमाध्याये॥ उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः। मातुलश्वशुरभ्रातृमातामहपिता-मही॥ वर्णकाश्च पितृव्यश्च पञ्चैते पितरः स्मृताः। माता मातामही गुर्वी पितृमा-तृष्वसादयः॥ श्वशुरपितामहीज्येष्ठा ज्ञातव्या गुरवः स्त्रियः। इत्युक्ता गुरवः सर्वे मातृतः पितृतस्तथा॥ अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः। गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठे-

दभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ न तैरुपवसेत्सार्द्धं विवादेनार्थकारणात् । जीवितार्थे-मपि द्वेषं गुरुभिर्नैव भाषणम् ॥ उदितोऽपि गणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः ॥ इत्यादि सब बार्ता सत्यही देखाती हैं तौ लोकव्यवहार कैसे झूंठा है तापर कहत ज्यों मणि अरु कनक सुवर्ण के भूषण के बीच बीच लघु कांचौ लसत शोभा देत है अर्थात् जब मणि सांची जटित उत्तम सोने के भूषण विचित्र बनते हैं तिनमें बीच बीच कोरि कोरि हरित अरुण नीलादि रंग अमल कांच को मीना करिदेते हैं सो मणि सोना ते अधिक शोभा देता है इसी भांति अमोल मणि सम ईश्वर में सोना सम उत्तम जीव सनेह किया वा धर्मवन्त जीव केवल सोने के भूषण सम हैं तिन में लोक व्यवहार झूंठा भी अधिक शोभा देता है सो यथा थोरा कांच एक कौड़िउ को नहीं होत परन्तु मणि जटित स्वर्ण भूषण में लागि सोनेही के भाव बिकाता है अरु सोनेही की शोभा बढ़ावना है कछु न्यारी आपनी शोभा नहीं प्रकाश करिसक्ता है ताहू पर जब मीना करनेवाला कारीगर होइ तब बनता है तथा लोकव्यवहार सर्वथा झूंठे हैं परन्तु हरिसनेहिन में वा धर्मवन्तन के संग पाइ लोकव्यवहारहू सत्यवत् देखात अरु भक्ति वा धर्म की शोभा बढ़ावता है कछु निराला सत्यत्व नहीं करता है ताहू पर जब उत्तम गुरु उपदेश करता मिलै सो जब लखाइ देवै यथा ॥ स्वइ मित्र स्वइ हितू हमारो पूज्य प्राण ते प्यारो। जासों बढ़ै सनेह राम सों एतो मतो हमारो ॥ पुनः भागवते ॥ गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्यात् जननी न सा स्यात् । दैवं न तत्स्या-न्नपतिर्न स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ अर्थात् जे राम सनेह में सहाय करैं तिनको सांचे सनेही मानी अरु जे विरोधी होवैं तिनको सनेह झूंठा मानि त्याग करी तथा धर्म में जे सहाय करैं तिनही को सांचे सनेही मानना चाहिये अरु जे बाधा करैं तिनहू को झूंठा जानि त्याग करिये यथा वाल्मीकीय में लिखा है भरत संग चित्रकूट में जाबालि मुनि धर्म को खंडन किये तिनको रघुनाथजी अनादर कीन्हे तथा पति के संग बनवास में रही तामें विरोध आवत देखि जानकीजी बन में भी माता पिता के समीप राति को वास न कीन्ही पुनः गोदी को बालक त्यागि स्त्री पति संग सती हैजाती हैं पुनः गुरुजनन में जब स्वार्थरहित परमार्थी प्रीति ते सेवा करै ताको धर्म कहिये यथा अन्धे माता पिता को सरवन सांची सेवा कीन्हे अरु यह नहीं कि पिता कमाइ लावै जरै मरै अरु पुत्र बैठा सुख भोगै मन भावत धन उड़ावै सोई स्वार्थ हेतु जो प्रीतिपूर्वक पिता की सेवा करता है सो धर्म में नहीं गिनती है तथा अन्धा पंगु निकम्मा पति होइ ताकी प्रीतिपूर्वक जब स्त्री सेवा करै ताको धर्म कहिये अरु जो स्वरूपवंत पुष्ट कमाइ करि खवावता भोग देता है इस स्वार्थ ते स्त्री प्रीतिपूर्वक सेवत सो धर्म नहीं है इत्यादि उपदेशी मिलै तब भक्ति धर्म में मिलाइ देवै तिनके संग सत्यवत् शोभित होता है नातरु लौकिक सनेह सर्वथा झूंठा है २ अब यही बात दृढ़ किये कि यावत् लोकव्य-वहार हैं सो सब झूंठे ही हैं सांचे सनेही जीव के हितकर्ता एक रघुनाथजी हैं काहेते यथा पुत्रन की रक्षा निहेंतु पिता करत तैसेही पुत्रवत् प्रजन की रक्षा राजा करत तथा जीवमात्र रक्षा करिबे को ईश्वर आपही को समर्थ माने है यही

कृपागुण है ॥ तथा भगवद्गुणदर्पणे ॥ रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी ॥ इसी कृपागुण को भरोसा राखि कहत हे वापु! अर्थात् आपको अंश आदि प्रकृतिमें परि पुत्रवत् जीव है उत्पन्न भयों पुनः विषयन वश विमुख है कुपूत भयों ताते मारा मारा फिरा कीन्हेउँ अब कलि प्रेरित कामादि को सतावा दादि पत्रयुत शरण आया हौं इति हे पिता, श्रीरघुनाथ जी! पौरुषहीन दीनजन में जो आपको गुलाम ताकी जो विनयपत्रिका है सो आपही बांचो भाव महाराज स्वयं स्वतंत्र हौ बनी होइ व न बनी होइ आपको ग्रहण करिलेबे को अख्त्यार है ताते जब आप ग्रहण करिलेउगे तब वामें कोऊ दूषण न देखैंगे अरु आपकी भय ते सतसभाजन बेकायदे काम नहीं करिसक्के हैं तौ जो और किसीते बँचावौगे तब वह बनी बिगरी यथार्थ प्रथमही कहि देइगा भाव यह बेकायदे लिखी है याको फिरि से सुधारिकै लिखिलावो इति भय ते प्रार्थना है हे महाराज! हिये हेरि तुलसी लिखी अर्थात् तुलसीदास के हृदय में यावत् विद्या बुद्धि बल रहै सो हेरि भली भांति विचारिकै लिखे सो जो बिगरी होइगी सो अब मेरी सुधारी कैसे सुधरैगी ताते याको बांचि स्वभाव ते सही करि बहुरि पांचो जनन सों पूंछिये अर्थात् अहल्या, केवट, कोल, शबरी, गीधआदिकन को जौने स्वभाव ते सम्मान कीन्हेउ सोई पतितपावन अधमोद्धारण प्रणतपालन कृपा दया करुणा शीलमय कोमल सुलभ उदार स्वभाव ते सही विनयपत्रिका सांची करि भाव मंजूरी के दस्तखत करि पुनः किशोरीजीते भरतजी ते लक्ष्मणजी ते शत्रुघ्नजी ते हनुमान्‌जीते इति पांचहू जनन सों पूछिये सब को मन्त्र लै तब कृपा करि दादिफल दीजिये ३ ॥

(२७६) पवनसुवन रिपुदवन भरत लाल लषण दीन की।
निजनिजअवसरसुधिकियेबलिजाउँदासआसपूजिहैखासखीनकी १
राजद्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की।
सुकृत सुयश साहबकृपा स्वारथ परमारथ गति भये गति विहीन की २
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परिमिति पराधीन की ३

टी०। स्वामी सों कहि चुके अब सभाजनन सों प्रार्थना करते हैं हे पवनसुवन, हनुमान्‌जी! आपु परस्वार्थी के पुत्र हौ ताते अनुग्रह करि मेरी विनयपत्रिका स्वामी के सम्मुख करौ हे रिपुदवन! आपु शत्रुन के नाशकर्ता हौ ताते मेरी दादि व्यापारवार्ता में जो कछु विघ्न बाधा होवे ताको निवारण किहेउ हे भरतजी! आपु विश्व के भरण पोषणहारे हौ मेरा भी मनोरथ पूर्ण करावौ हे लषणलाल! आपु लक्षणधाम रघुनाथजी के परम प्यारे हौ ताते कृपा करि मेरा हाल प्रभु सों आपही सुनाइये इत्यादि सबसों प्रार्थना करत कि दीन पौरुषहीन जो मैं दुःखित दादिवंत हौं ताकी भलाई के व्यापारवार्तादि निज निज आपनी ओरते सुधि किये रहियो अवसर पाइ कृपा करि मेरी सहाय कीजियो अर्थात् हे हनुमान्‌जी! जा

समय सावकाशसहित प्रभु प्रसन्न होइँ सोई अवसर सुन्दर समय पाय इस दीन की विनयपत्रिका प्रभु के सम्मुख करि दीजिये पुनः हे शत्रुघ्नजी! जा समय प्रभु दीन की विनयपत्रिका बांचैलागैं तामें जो कोऊ और वार्ता कहै ताको देखि आपु रोकि दीजियो जामें दूसरी वार्ता न होने पावे जो मेरे स्वार्थ में हानि परै पुनः हे भरतजी! जा समय कछु मेरे स्वार्थ की बात आइ जाइ तब मेरे हित बात कहि दीजिये हे लषणलाल! जब मेरे हित की बात आवै तब आपु कृपा करि कहि दीजिये कि जो कलिकाल में यह दीन शरण आया है यापर प्रभु अवश्य कृपा कीजिये आप लोगन की मैं बलिहारी हौं मेरी भलाई करि आपको यशै लैलेना है काहेते खास दासवत् खीन दास की आश पूजि है खीन दुःख करि दुर्बल जन जो मैं ताकी आश खास सांचे दासन की नाईं पूजि है पूर्ण होइगी अर्थात् श्रीरघुनाथ जी अवश्य मोपर कृपा करेंगे आप लोगन को सहारा देना है ताते दीनपर आपहू लोग दया करौ १ काहेते दीनपर दया करौ कि आप दयावन्त समर्थ हौ ताते आपते प्रार्थना करता हौं दीनन पर दया करनेवाले आपही हौ अरु कर्म, धर्म, ज्ञान, भक्ति की जो प्राचीन सनातन रीति है तापर परिपूर्ण चलनेवाले उत्तम ऐसे समीचीन साधुन की भली तौ राजद्वार में सबै कहते हैं तहां वेतौ आपही भले हैं तिनकी भलाई करनेवाले को कौन उत्तमता है अरु गतिविहीन अर्थात् जाकी शुभ गति किसी भांति नहीं ह्वैसकती है ऐसा अधम जो मैं ताकी गति भये भाव आपके भलाई करनेते मोसे पातकी की शुभगति होनेपर आपकी सुकृत पुण्याय बढ़ैगी पुनः लोक मे आपको सुन्दर यश फैलैगो ताहूपर परोपकारी जानि साहब श्री रघुनाथजी की कृपा तुमपर अधिक होइगी ताते स्वार्थ लौकिक सुखसहित पर-मार्थ परलोक सुख सो सिद्ध होइगो ताते दीनपर दया आप लोग करौ किसी भांति कछु आपकी हानि नहीं है २ जब हानि कछु नहीं है अरु लाभै बहुती भांति की हैं ताते मलीन जन जो तुलसी ताकी समय पाय सुधि बुधि सँभारिकै सुधा-रिबी कैसे सुधारिबी कि पराधीन की प्रीति रीति की परिमिति नतपाल कृपालुहि समुझाइबी अर्थात् पराधीन कलिप्रेरित कामादिकन के वश में परा जो मैं ताकी जो रामनाम विषे प्रीति की रीति है ताकी परिमिति मर्याद सो नतपाल कृपालु श्रीरघुनाथजी सों समुझाइकै कहबी कृपालु भूतमात्र के पालनहारे पुनः नत जो दीन ह्वै प्रणाम करनेवाले तिनको विशेष सुखदायक है त्यहि स्वभाव को उद्दीपन करि मेरा हाल कहियो अथवा सुधारिबी समुझाइबी ये वाचक स्त्रीलिंग में हैं ताते यह प्रार्थना किशोरीजीसों है हे अम्ब! मलीनजन की समय पाय बिगरी बात सँभारि सुधारबी कौन भांति कि पराधीन की प्रीति रीति की परिमिति सो नतपाल कृपा-लुहि समुझाइबी भाव तुलसीदास तौ अनन्यभावते प्रीति आपके नाम में किहे है ताको कलियुग कामादि लगाय स्वाधीन कीन चाहता है अरु आप कृपागुण ते जीवमात्र की रक्षा करते हौ अरु दीन प्रणाम करनेवालेन को विशेष सुखदायक हौ ताते कलि को हटैकि वाको शरण में राखौ ३॥

(२८०) मारुति मन रुचि भरत की लखि लषण कही है।
कलिकालहूं नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है १

सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीवनिवाज की देखत गरीब को साहब बांह गही है २
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूं लही है।
मुदित माथ नावत वनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है ३

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृता विनयपत्रिका समाप्ता ॥

टी०। अब जैसा हाल राजसभा में भया है सो कहते हैं तहां किशोरीजी तौ एकान्त समय पाय मेरा हाल पूर्वही समुझाइकै प्रभुसों कहि राखो पुनः राजदरबार में जब प्रभु बैठे तब सुन्दर समय देखि मारुति जो हनुमान्जी सोई स्वहस्त विनयपत्रिका लैकै प्रभु के सम्मुख कीन्हे अरु शत्रुघ्न तौ केवल बाधा के रक्षक हैं इस हेतु चुप बैठे रहे पुनः भरतजी सनकारे इति भरतजी के मन की रुचि लखि देखिकै लक्ष्मणजी प्रसिद्ध कहे काहेते भरत शत्रुघ्न सब काल समीप नहीं रहते हैं इसहेतु वार्ता करिबे में प्रौढ़ नहीं हैं अरु लक्ष्मणजी सदा प्रभु के निकट रहते हैं ताते वार्ता करिबे में प्रौढ़ हैं ताते लक्ष्मणजी कहे कि हे नाथ! कलिकालहू ऐसे कराल युग में तुलसीदासनामे एक आपके किंकर टहलुवा की प्रीति प्रतीति नाम सो निबही है अर्थात् नाम को माहात्म्य सुनि तापर प्रतीति करि रामनाम सों प्रीति किया नाम के प्रभाव को लोक में प्रचार किया तापर कलिकाल याको सतावतै रहा परन्तु वाने आपनी प्रीति दृढ़ै राखा सोई कलि की भय ते आप सों दादि करता है ताकी रक्षा कीजिये १ लक्ष्मणजी के वचन सुनि सकल सभा लै उठी बोलि उठे कि जानी रीति रही है भाव तुलसीदासजी की जो रीति रही सो हमलोगनकी सबकी जानी है उसने नामपर भले निष्ठा निर्वाह किया कलिप्रेरित कामादिकी बाधा वामें नहीं व्यापी सो आश्चर्य नहीं है काहेते जो नाम पर विश्वास किहे प्रीति किया ताते गरीवनिवाज जो रघुनाथजी तिनकी कृपा सोई गरीब तुलसीदासको दुःखित देखत स्वामी हठ करि बांह गही है अर्थात् प्रभुकी कृपाते कलिकृत बाधा न व्यापसकी नातरु तुच्छ जीवकी कौन गति रहै जो कलिके दरेरामें बचिसक्ता भाव उसने आपने साधनको बल नहीं राखा केवल रामकृपा को बल राखा सोई जनकी दीनता देखि दीनदयालु कृपा किहेरहे तामें कलियुग क्या करिसक्ता है २ इहां किशोरीजी सों पूर्वही सब हाल सुनिचुके हैं ताते राम बिहँसि कह्यो श्रीरघुनाथजी बिहँसि मन्द मुसुकाइकै कहेउ कि सब सभाजन जो बात कहतेहौ सो सब सत्य है काहेते मैंहू सुधि लही है इस किंकरके समग्र हाल हम पूर्वही सुनिचुके हैं इति प्रभुके वचन सुनि मैं आनन्द सहित प्रणाम कीन्हेउँ प्रभु माथेपर हाथ धरि कहिदियो कि तू हमारा सांचा गुलाम है अब उत्तम दासन में तेरा नाम लिखा जाइगा हर्षसहित अपनी सेवकाई में तत्पर रहु इति मुदित आनन्दपूर्वक माथ नावत बनिगई क्या बनिगई कि तुलसीदास अनाथकी रघुनाथजी के समीप सही परी है अर्थात् विनयपत्रिक

मंजूर करि सांचे गुलामनमें मेरा नाम लिखाये इसीमें लोकशिक्षात्मक ग्रन्थको माहात्म्य भी है अर्थात् यथा दीन ह्वै विनय करत संते तुलसी अनाथकी प्रभुके ढिग सहीपरी तैसेही जो कोऊ दीन ह्वै विश्वास करि इस ग्रन्थको गान करि प्रभु के सम्मुख बना रहैगो सोऊ एक दिन सांचा रामदास ह्वैजाइगो २ ॥

इति श्रीरसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियवल्लभपदशरणागत-
वैजनाथविरचितविनयप्रदीपकतिलकः समाप्तः ॥

पद ॥

पतित पुनीत प्रणत आरतिहर बिनती सुनहु कृपा करि मेरी ।
हौं सभीत हरि विपतिनिवारन विषयनि विपति जाल म्वहिं घेरी १
पूर्व रूप हौं अंश तिहारो पावन सत चित आनँद ढेरी ।
सो हौं बँध्यों कीर मर्कट ज्यों वश कारण बुधि जीव गहेरी २
त्रिगुण भुलाय कार्य मायावश देह बुद्धि अभिमान लहेरी ।
शब्द परश रस रूप गन्ध सरि मन समेत श्रवणादि बहेरी ३
लोभ काम क्रोधादि प्रबल ह्वै मोह मान मद गांसि रहेरी ।
धन युवती अपवाद रह्यो भरि बुधि विवेक थिर ज्ञान ढहेरी ४
कछु न सुहात विषम भवसागर देखि विकल लघु जीवन हेरी ।
हौं जन दीन शरण आयों जग आश सकल विश्वास दहेरी ५
सीतानाथ सुजन सुखदायक बैजनाथ नहिं आन चहेरी ।
मन चकोर मुख चन्द विलोकनि सूरति करहु कमल पद चेरी ६

कवित्त ॥

कायर सुधर्म सों कुमारगी कठोर चित्त वित्त वाम धामही सरित मोह पापकी ।
बुद्धि विन विद्या शुभ संग न कुदेश वास वेषहू न कलागुण चातुरी न हाथकी ॥
तुलसी प्रसादसो निदेश सत्य स्वप्न पाइ भाषणार्थ गति मति प्रौढ़ बैजनाथकी ।
पाण्डुयक्ष श्वपच शबरि गौतमी सुवारि बनी है तौ साहिबो बनाई सीतानाथकी १

छन्द ॥

योजन दोय लखनऊ पूरव जीला बारहवंकी नाम ।
नम्बरदार सुवैजनाथ बसिं डेहवा निकट मानपुर ग्राम ॥
नग श्रुति अंक मयंक भाद्र शुभ एकादशी सहित बुधवार ।
गुरु करुणा बल सुलभ यथा मति विनयप्रदीपक भयो तयार २

इति श्रीरामार्पणमस्तु ।